राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रबन्ध–सम्पादक
जितेन्द्रकुमार जैन
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

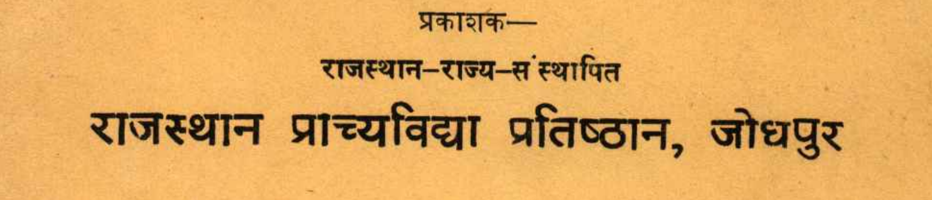
ग्रन्थाङ्क १२३

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीतः

सिद्धसिद्धान्तसिन्धुः

(द्वितीयः खण्डः)

सम्पादक :
गोस्वामिश्रीलक्ष्मीनारायणदीक्षितः



प्रकाशक—
राजस्थान–राज्य–संस्थापित
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute
JODHPUR

1976

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—जितेन्द्रकुमार जैन, एम. ए.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १२१

मुंहता नैणसी री लिखी

मारवाड़ रा परगनां री विगत

तृतीय भाग

सम्पादक

नारायणसिंह भाटी, एम.ए., एल.एल.बी., पी-एच.डी.



प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.

1 9 7 4

प्रथ

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रबन्ध-सम्पादक
जिनेन्द्रकुमार जैन
(निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

ग्रन्थाङ्क १२३

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीत :

सिंहसिद्धान्तसिन्धुः

(द्वितीयः खण्डः)

सम्पादक :

गोस्वामिश्रीलक्ष्मीनारायणदीक्षितः

प्रकाशक
राजस्थान-राज्य-संस्थापित
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute,
Jodhpur.

1976

प्रथमावृत्ति 1000

मूल्य रु० 16.75

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान-राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानप्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्टग्रन्थावली

प्रबन्ध-सम्पादक
जितेन्द्रकुमार जैन

ग्रन्थाङ्क १२३

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीतः

सिंहसिद्धान्तसिन्धुः

(द्वितीयः खण्डः)

प्रकाशक
राजस्थान-राज्याज्ञानुसार
निदेशक,
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर (राज.)

1976

वि. सं. २०३३ ● ● शकाब्द १८९८

मुद्रक
समयसार प्रेस एवं साधना प्रेस, जोधपुर

अनुक्रमः

तरङ्गानुक्रमः

प्रबन्ध-सम्पादकीय

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' का यह द्वितीय खण्ड ग्रन्थांक १२३ के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इससे पूर्व इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड ग्रन्थांक ११५ के रूप में सन् १९७० में निकल चुका है।

सिंहसिद्धान्तसिन्धु तन्त्र-मन्त्रशास्त्र–विषयक एक प्रौढ़ निबन्ध ग्रन्थ है जिसमें सैकड़ों तद्विषयक ग्रन्थों का सार संकलित किया गया है, और तत्तत्स्थलों पर उनके प्रमाण-वचनों का उल्लेख भी किया गया है. जिससे यह एक अनूठा सन्दर्भग्रन्थ तैयार हो गया है और सम्बन्धित विषयों के अध्ययन के लिये केवल इस ग्रन्थ के अनुशीलन की ही उपादेयता उससे निर्विवाद प्रमाणित हो गई है।

भारतीय विद्वानों ने अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये परम विशिष्ट महासत्ता की कल्पना की है और उसकी प्रसाद-सिद्धि के लिये विविध विधियों का वर्णन किया है; उन्हीं विधियों में अन्यतम मंत्र-तंत्र-साधना भी है। मंत्र, यंत्र, और तन्त्र तीनों की विधियाँ परस्पराश्रित भी हैं तो कहीं स्वतन्त्र भी। इन प्रक्रियाओं के भी बहुत से भेद हैं जिनका विस्तृत विवेचन तत्सम्बन्धी विशाल वाङ्मय में है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, सब ग्रन्थ सबके लिये न तो सर्वदा सुप्राप्य ही हैं, और न सामान्य जिज्ञासु के पास इतना समय ही होता है कि वह सब ग्रन्थों में से अपनी किसी इच्छित विधि का उपयोगी अंश निकाल कर उससे स्वल्प समय में ही लाभ उठा सके, अतः ऐसे निबन्ध-ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी इस दृष्टि से रहते हैं कि एक ही स्थान पर अनेक उपयोगी विषय ऐसे लोगों को कें।

सिंहसिद्धान्तसिन्धु इस दृष्टि से बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है और इसके प्रस्तुत द्वितीय खण्ड में १५ से ३६ तरङ्ग या अध्याय हैं। इन तरङ्गों में पुरश्चरण-विधि, माला-विधान, षट्कर्म-प्रयोग, गणेश, नवग्रह, नारायण, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण, शिव, भैरव आदि देवताओं के विविध स्वरूपों के अर्चनादि काम्य प्रयोगों के विस्तृत विधान दिये गये हैं।

इस शास्त्र में अभिरुचि रखने वाले विद्वानों और जिज्ञासुजनों को इस ग्रन्थ के अवलोकन से अवश्य ही आत्मिक आनन्द की अनुभूति होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ने इस ग्रन्थ के सम्पादन में बड़ा परिश्रम किया है। अपने सम्पादकीय में उन्होंने ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दिया है जिसके अध्ययन से इस ग्रन्थ के प्रति पाठकों की जिज्ञासा और बढ़ जाती है।

जे० के० जैन
निदेशक

१५ जुलाई, १९७६

सम्पादकीय

प्रस्तुत 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' आगमशास्त्र का एक महान् निबन्धग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का वास्तविक मूल्याङ्कन एवं विश्लेषणात्मक विशद विवेचन प्रस्तुत करना तब तक सम्भाव्य एवं उपयुक्त नहीं है जब तक कि इस सम्पूर्ण ग्रन्थ की मुद्रित प्रति सामने न हो। अतः इसके अभाव में यहाँ पर इस ग्रन्थ के यावन्मुद्रित अंश एवं पाण्डुलिपि में प्राप्त कुछ सङ्केतों के आधार पर ही इस ग्रन्थ का आवश्यक संक्षिप्त परिचय ही दिया जा रहा है।

इस ग्रन्थ का ग्रथन गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट ने बुन्देलदेशाधीश्वर श्रीदेवीसिंह[1] की प्रार्थना पर किया, जैसा कि इस पद्य से स्पष्ट होता है.

ज्येष्ठस्तस्य सुतो जनोदितशिवानन्दाभिधानः क्षितौ,
श्रीविद्याचरणारविन्दयुगलध्यानैकतानोऽनिशम्।
देवीसिंहनृपेण धर्मकलितस्वान्तेन सम्प्रार्थित-
स्तत्प्रीत्यै वितनोति धार्मिकजनश्रव्यं निबन्धोत्तमम्॥ ३६॥

[सि० सि० सिन्धु-प्रथमतरङ्ग]

ग्रन्थ के अन्त में अङ्कित अधोलिखित पुष्पिकांश से यह प्रमाणित होता है कि यह निबन्ध ९२ तरङ्गों में निबद्ध है और इसका निर्माण विक्रम संवत् १७३१, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में बुधवार को सम्पन्न हुआ। इस में तिथि का उल्लेख नहीं है।

"इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ द्विनवतितमस्तरङ्गः॥९२॥

चन्द्रवह्नितुरगैकसम्मिते वत्सरे सहसि शुक्लपक्षतौ।
शीतरश्मिसुतवासरे शुभे ग्रन्थ एष परिपूर्णतामगात्॥ २॥ १७३१॥

ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव तथा शक्ति का मङ्गलाचरण के रूप में वन्दन करके वागीश्वरी को नमन किया है। तदनन्तर बुन्देलदेश के अधीश्वर श्रीदेवीसिंह के वंशानुक्रम के विस्तृत वर्णन के साथ ही अपने वंश का संक्षिप्त परिचय दिया है। इस के पश्चात् ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ को निखिल मंत्रों के रहस्यों का उद्बोधक बतलाते हुए यह कामना की है कि

---

१. देवीसिंह का वंश इसी ग्रन्थ के प्रथम तरङ्ग में पद्य-संख्या ७ से ३२ तक वर्णित है। तदनुसार वंशक्रम इस प्रकार है—श्रीमधुकर, श्रीरामसाहि, श्रीसंग्रामसाहि, श्रीभारत तथा श्रीदेवीसिंह।

यह निबन्धग्रन्थ 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' के नाम से संसार में सुप्रसिद्ध हो। यथा—

गुरुचरणसरोजानुग्रहप्राप्यबोधश्रवणजनितभक्तस्वान्तभूरिप्रमोदः।
निखिलमनुरहस्योद्बोधकोऽयं निबन्धो जयतु जगति नाम्ना सिंहसिद्धान्तसिन्धुः ॥ ३७ ॥

[प्रथमतरङ्ग]

ग्रन्थकार द्वारा ७६ अनुष्टप् पद्यों में आबद्ध वर्णनीय विषयों की एक तालिका प्रस्तुत की गई है जिस के अनुसार इस ग्रन्थ में २६८ विषयों को सङ्कलित किया गया है। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि इस ग्रन्थ की समग्र पाण्डुलिपि को देखने से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार द्वारा सङ्कलित विषयों के सूक्ष्म समीक्षण के साथ विश्लेषणात्मक विशद विवेचन के लिये अनुमानतः तीन सौ (३००) के लगभग प्रामाणिक ग्रन्थों, आर्ष एवं आप्त पुरुषों के वाक्यों का प्रमाणरूप में उद्धरण देकर उपयोग किया गया है जो कि निश्चय ही इस ग्रन्थ की सुविशालता, प्रामाणिकता एवं विषयवैशिष्टच का तो प्रतीक है ही, ग्रन्थकार के निष्कर्षात्मक विशद अध्ययन एवं विशिष्टतम वैदुष्य का भी परिचायक है।

विषयवस्तु को उपन्यस्त करने से पूर्व ग्रन्थकार ने ग्रन्थ को ग्रथित करने के उद्देश्य एवं उसकी उपादेयता को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

"त्रिविधाः पुरुषाः सन्ति रजःसत्वतमोगुणैः ॥ ७७ ॥
तथैव प्रकृतिस्तेषां श्रद्धाश्चैव तथाविधाः ॥
कल्पिता आगमग्रन्थास्तद्धितार्थं सविस्तराः ॥ ७८ ॥
तथा नानाविधा मार्गा गिरिजापतिना स्वयम्।
यथा वेदेऽपि दृश्यन्ते प्रयोगाः कामनाप्रदाः ॥ ७९ ॥
तथैवाऽऽगममध्येऽपि संसारस्य प्रवृत्तये।
सर्वे नैव तु सर्वेषामिति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ८० ॥

अधिकारिणान्तु फलदानं तथाऽनधिकारिणामित्युक्तत्वादस्माभिरत्र सर्वेऽप्युपासनामार्गा निरूप्यन्ते। यस्य यत्राऽधिकारस्तेन तथाऽभ्युपगमो विधेयः।

[प्रथमतरङ्ग]

अर्थात् रज, सत्व, तम इन तीन गुणों के आधार पर तीन प्रकार के पुरुष होते हैं और तदनुसार उनकी प्रकृति तथा श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती हैं। उन्हीं के हितार्थ गिरिजापति श्रीशिव ने आगमग्रन्थों तथा विस्तारपूर्वक नानाविध मार्गों को प्रकल्पित किया है। संसार की प्रवृत्ति के लिये जिस प्रकार वेदों में अनेक कामनाप्रद प्रयोग प्राप्त होते हैं उसी प्रकार आगम में भी अनेक प्रयोग विद्यमान हैं। किन्तु, यह एक शास्त्रसम्मत सिद्धान्त है कि ये सभी प्रयोग सबके लिये नहीं होते। इनकी सफलता अनधिकारी को प्राप्त न होकर अधिकारी को ही प्राप्त होती है। इसी अधिकारभेद को दृष्टि में रखकर ही इस ग्रन्थ में सभी प्रकार के उपासना के मार्गों का निरूपण

किया जा रहा है जिससे कि सभी साधक अपने अधिकार के अनुसार अपने अभीष्टमार्ग को चुन कर अपना हित-साधन कर सकें।

उपर्युक्त संकेतों से जहाँ इस बात का स्पष्ट आभास होता है कि यह ग्रन्थ अन्वर्थतः सिन्धु की तरह सुविशाल और सिद्धान्तरत्नों का आकर है वहाँ इस ग्रन्थ की समग्र पाण्डुलिपि का सम्यक् अवलोकन करने से विदित होता है कि इस ग्रन्थ में गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट ने हिमालय से कन्या-कुमारी तक प्रचलित गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त आदि सम्प्रदायों की आगमसम्मत समस्त उपासनाओं के उत्कृष्ट सिद्धान्तों का सूक्ष्म निरीक्षण के साथ निष्कर्षात्मक निरूपण कर समन्वित आगमदृष्टि को उपस्थित किया है। साथ ही उन्होंने मन्त्रों, यन्त्रों, मुद्राओं एवं आयुधों के उद्धारों को प्रस्तुत करते हुए तान्त्रिक सम्प्रदायों के गुरुगम्य रहस्यों तथा पारिभाषिक शब्दनिर्वचनों को सम्यक्तया व्यक्त किया है जिसे देख कर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ सभी सम्प्रदाय के समस्त साधकों के लिए समानरूप से समधिक समुपयोगी एवं समुपादेय है और ग्रन्थकार का यह आशीर्वचन जो कि ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका में अङ्कित है, सर्वथा समुचित है—

प्रोक्तं गणेशप्रमुखामराणामुपासनाया निखिलं विधानम्।

विलोक्य तच्चेतसि साधकानां भूयादमन्दः सततम्प्रमोदः ॥१॥

परम प्रसन्नता का विषय है कि इसी ग्रन्थ का यह द्वितीय खण्ड सुधी साधकों के समक्ष समुपस्थित किया जा रहा है जो कि ग्रन्थ के १५ वें तरंग से ३६ वें तरंग तक की सामग्री से संयुत है। इस खण्ड का प्रकाशन उस योजना के अन्तर्गत हुआ है जिसका सकेत इस ग्रन्थ के पूर्वप्रकाशित प्रथम खण्ड के प्रधान-सम्पादकीय में इस प्रकार किया गया है–"सम्पूर्ण ग्रन्थ की ९२ तरंगों को ५ खण्डों में समाप्त करने की योजना है"।

इस द्वितीय खण्ड में ग्रन्थकार द्वारा निबद्ध पद्यात्मक तालिका के अनुसार पुरश्चरणविधि से पराप्रासादमन्त्रपर्यन्त (१२८ से २२५) विषयों का संकलन किया गया है जिन में मुख्यतः पुरश्चरण-विधि, काम्यपूजाविधि, गणेशमन्त्रविधान, सौरमन्त्रविधान, बटुकभैरव का एकविंशाक्षरमन्त्रविधान, मृत्युञ्जयमन्त्रविधान, गजाश्वादिप्रयोगविधि, वीरसाधनविधि, ऊर्द्ध्वाम्नायमाहात्म्य तथा पराप्रासाद-मन्त्रविधि का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। उल्लेखनीय है कि इस खण्ड से पूर्व राजस्थान-प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से ही सन् १९७० ई० में प्रकाशित प्रथम खण्ड में प्रथमतरंग से १४ तरंगों तक की सामग्री का प्रकाशन किया जा चुका है जिसमें उक्तपद्यात्मक विषयतालिका के अनुसार प्रातःकृत्य से लेकर नैमित्तिकार्चनपर्य्यन्त १२७ विषयों का समावेश कर शौचविधि, स्नानविधि, सन्ध्याविधि, नित्यपूजाविधि, दीक्षाविधि एवं नैमित्तिकार्चनविधि के अङ्गभूत सभी विषयों का विशद विश्लेषण किया गया है।

ग्रन्थकृद्वंश-परिचय—

वैसे तो इस ग्रन्थ के निर्माता गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट का नाम संस्कृत-साहित्य के इतिहास में सुप्रसिद्ध ही है तथा इनका परिचय डॉ. सी. कुन्हन राजा[१], के. माधवकृष्णन् शर्मा[२], कविशिरोमणि देवर्षिभट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री[३] एवं डॉ० प्रभाकर शर्मा शास्त्री[४] आदि शोध विद्वानों तथा गोस्वामिवंशज श्रीश्रीगोपालगोस्वामी[५] आदि द्वारा पत्र-पत्रिकाओं आदि के माध्यम से प्रकाशित किया जा चुका है। फिर भी प्रसङ्गतः इनका प्रामाणिक संक्षिप्त परिचय देना यहाँ पर इसलिये आवश्यक है कि शोधार्थी इस ग्रन्थ के परिचय के साथ ही ग्रन्थकार के विषय में भी कुछ जान सकें।

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट का प्रादुर्भाव एक सकलविद्यापारङ्गत धुरीण विद्वद्वंश में हुआ था। इस वंश का मूल निवासस्थान दक्षिणभारतीय द्रविडदेश के अन्तर्गत शिवकाञ्ची—नामक नगरी से दक्षिण दिशा की ओर पेणानदी के तट पर अवस्थित **पाणम्पट्ट** नामक नगर में था जो कि सुप्रसिद्ध सकलविद्यानिष्णात श्रेष्ठतम याज्ञिकों के यागमण्डपों से मण्डित था। इस वंश के मूल पुरुष अतिरात्र, महाव्रतसत्र आदि यज्ञों के कर्त्ता, दीन, दरिद्र, अन्ध एवं सुहृज्जनों के भरण-पोषण करने वाले षट्-शास्त्रवेत्ता आत्रेयगोत्रिय द्राविडब्राह्मणावतंस श्रीसमरपुङ्गव दीक्षित थे। जैसा कि निम्न पद्यों से स्पष्ट होता है—

देशोऽस्ति दक्षिणदिशि द्रविडाभिधानः
काञ्चीति यत्र वसतिः स्मरशासनस्य ।
पुण्या पुरी पुरनिषूदनभागधेय—
सौभाग्यदन्तुरितकीर्त्तिरचञ्चलश्रीः ॥१५

तस्या दक्षिणदिग्गतः क्षितिसुरैः षट्शास्त्रविद्भिश्चतु
र्वेदैः सोपनिषद्भिरङ्गसहितैराद्यैः सदाऽधिष्ठितः ।
पाणम्पट्टिति विश्रुतः क्षितितले पेणानदीतीरभू—
देशो यागगृहाकुलः सकलदिक्ख्यातोऽग्रहारो महान् ॥७

आत्रेयगोत्रशतपत्रविकासमित्र—
स्तत्राऽतिरात्रसुमहाव्रतसत्रकर्त्ता ।

---

१. डि.जेन्टेशन वोल्यूम, आडियार लाइब्रेरी, मद्रास, १६४६।
२. शिव स्मारिका—१६६६, सम्पादिका—कुसुमलता गोस्वामी, चोमू हाऊस, जयपुर।
३. ईश्वरविलास महाकाव्य-द्वितीयसर्ग-टीका श्लोक-६-७; राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
४. 'संस्कृत साहित्य को जयपुर की देन' शोधग्रन्थ; राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर द्वारा पी. एच. डी. के लिये स्वीकृत।
५. राजस्थान भारती, बीकानेर, दिसम्बर ६७।

भर्त्ताऽऽर्त्तदीनकृपणान्धसुहृज्जनानां,
षट्शास्त्रवित् समरपुङ्गवदीक्षितोऽभूत् ॥८

[शिवार्चनचन्द्रिका-प्रथमप्रकाश]

श्रीसमरपुङ्गवदीक्षित के आत्मज **श्रीतिरुम्मल दीक्षित** हुए। ये व्याकरण में पतञ्जलिसदृश, मीमांसकों में जैमिनितुल्य, वेदों में स्वयम्भू के समान तथा अनेक वाजपेय-सोमयागादि के कर्त्ता थे। यथा—

तस्यात्मजः फणिपतिर्वरपाणिनीये मीमांसकेष्वपि गुरुः श्रुतिषु स्वयम्भूः ।
सद्वादशाहचयनान्वितवाजपेय-सोमाध्वरी भुवि तिरुम्मलदीक्षितोऽभूत् ॥९॥

[शि० चं० प्रथमप्रकाश]

सकलवेदवेत्ताओं में वरिष्ठ, श्रौतक्रियाओं में अतिशय दक्ष, सकल गुणों के निधान एवं सोमयाजी **श्रीश्रीनिकेतन अध्वरीन्द्र** श्रीतिरुम्मलदीक्षित के सुपुत्र हुए—

तन्नन्दनः सकलवेदविदां वरिष्ठः श्रौतक्रियासु निपुणः श्रितसोमदीक्षः ।
आसीदशेषगुणरत्ननिधिः पृथिव्यां श्रीश्रीनिकेतन **इति प्रथितोऽध्वरीन्द्रः** ॥१०॥

[शि० चं० प्रथमप्रकाश]

अध्वरीन्द्र श्रीश्रीनिकेतन के आत्मजन्मा **श्रीश्रीनिवासभट्ट** हुए जो सकलशास्त्रार्थवेत्ता, निखिलनिगमागमाभिज्ञ, आत्मज्ञानियों में अग्रगण्य एवं श्रौतस्मार्त्तक्रियाओं में सिद्धहस्त थे। उल्लेखनीय है कि इस वंश के पुरुषों में ये ही प्रथम पुरुष थे जो दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आये थे। इन्होंने यात्राप्रसङ्ग से जालन्धरपीठ-नामक प्रसिद्ध तीर्थस्थान में सकलगुणनिधान, सद्देशिकेन्द्र श्रीसुन्दराचार्य से पराम्बा श्रीश्रीविद्या (षोडशी महात्रिपुरसुन्दरी) की पूर्णाभिषेकदीक्षा ग्रहण कर श्रीगुरु से समग्र आगमशास्त्र का अध्ययन किया। श्रीगुरु के आदेश से इन्होंने काशी में आकर निवास किया तथा यहाँ पर ही इन्होंने अपने भक्त शैवशिष्यों एवं विद्वानों की प्रार्थना पर सम्पूर्ण आगमशास्त्र के सारभूत 'शिवार्चनचन्द्रिका' नामक महानिबन्ध ग्रन्थ का निर्माण किया जैसा कि निम्न पद्यों से प्रकट होता है—

तत्सूनुः श्रीनिवासः **सकलनिगमवित् सर्वशास्त्रार्थवेत्ता,**
श्रौतस्मार्त्तेषु कर्मस्वतिशयनिपुणः सत्कविः स्वीयदेशात् ।
पीठं जालन्धराख्यं प्रकटितविभवं प्राप्य यात्राप्रसङ्गा-
त्तत्र श्रीसुन्दराख्यं **सकलगुणनिधिं प्राप्य सद्देशिकेन्द्रम्** ॥११॥

तत्पादपङ्कजयुगं परिचर्य्य तस्मात् प्राप्याऽभिषेकमखिलागममप्यधीत्य ।
तस्याऽऽज्ञया समधिगम्य पुरीं स काशीं तत्राऽकरोद्वसतिमात्मविदां वरिष्ठः ॥१२॥

तत्र स्थितः सकलतन्त्ररहस्यवेत्ता शिष्यैः शिवार्चनपरैः श्रितशैवदीक्षैः ।
अभ्यर्थितो वितनुते सकलागमार्थ–सारोदयां भुवि शिवार्चनचन्द्रिकां सः ।।१३।।

[शि० चं० प्रथम प्रकाश]

'शिवार्चनचन्द्रिका' के अन्तिम अर्थात् ४६वें प्रकाश में उपसंहार के रूप में वर्णित निम्नाङ्कित पद्यों से ज्ञात होता है कि इन्होंने श्रीगुरु की आज्ञा से भैरवार्चापारिजात, सौभाग्य-रत्नाकर एवं सपर्याक्रमकल्पवल्ली इन तीन ग्रन्थों का क्रमशः सृजन किया । यथा—

चत्वारोऽत्र कृता ग्रन्था मया ह्यागमदर्शने ।
निदेशाद् देशिकेन्द्रस्य मन्त्रप्रदप्रवृत्तये ।।
तत्राऽऽद्यः पारिजाताख्यो भैरवार्चापदादिकः ।
ग्रन्थो रत्नाकराख्यः **स्यात्** सौभाग्यपदादिकः ।
तृतीयः कल्पवल्ल्याख्यः सपर्याक्रमपूर्वकः ।
चतुर्थस्याऽभिधानन्तु श्रीशिवार्चनचन्द्रिका ।।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त आफ्रेट के 'कैटलॉगस कैटलोग्रॉम' पार्ट I, पृष्ठ-६७० में इनके द्वारा विरचित निम्नलिखित ६ ग्रन्थों की सूचना मिलती है—

१. क्रमरत्नावली, २. द्वितीयार्चनकल्पलता, ३. पञ्चमीक्रमकल्पलता, ४. पञ्चमीवरिवस्यारहस्य, ५. बटुकार्चनकल्पलता एवं ६. लक्ष्मीसपर्यासार ।

इसी प्रकार महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथकविराजकृत 'काशी की सारस्वत साधना' में 'अलवर कैटलॉग' के आधार पर 'सौभाग्यसुभगोदय' नामक ग्रन्थ को भी इन्हीं की कृति बतलाई गई है ।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख करना अप्रासङ्गिक न होगा कि इन्हीं के वंशज बीकानेर-निवासी स्व० पं० श्रीफाल्गुन गोस्वामी ने 'संस्कृत साहित्य को शिवानन्द गोस्वामी के पूर्वजों की देन'[१] नामक अपने लेख में यह उल्लेख किया है कि "श्रीश्रीनिवास ने चण्डीसमयानुक्रम, चण्डिकासघन एवं श्रीश्रीनिवासचम्पू नामक ग्रन्थों का भी निर्माण किया ।" सम्भव है, ये ग्रन्थ तथा तदतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी इन्हीं महानुभाव द्वारा विरचित हों, किन्तु जब तक इनका गवेषणादृष्टि से सम्यक् परीक्षण न कर लिया जाय तब तक यह कहना सङ्गत नहीं है कि उक्त ग्रन्थ इन्हीं के द्वारा विरचित हैं ।

श्रीश्रीनिवासभट्ट के दीक्षागुरु श्री सुन्दराचार्य का साम्प्रदायिक नाम श्रीसच्चिदानन्दनाथ एवं श्रीश्रीनिवास का गुरुप्रदत्त अभिधान श्रीविद्यानन्दनाथ था ।[२] गोस्वामिश्रीचक्रपाणिभट्ट द्वारा

---

१. शिवस्मारिका–१९६६, **सम्पादिका-प्रकाशिका-कुसुमलता गोस्वामी,** चौमू हाउस, जयपुर ।

२. श्रीविद्यातत्त्ववेत्ता जयति करुणयोपात्तकायः शिवो यः,
स श्रीमान् **सुन्दराख्यः** क्षितिसुरतिलकः **सच्चिदानन्दनाथः** ।
तच्छिष्यः **श्रीनिवासो** द्रविडविषयजस्तत्प्रसादाप्ततत्त्वः,
श्रीविद्यानन्दनाथः परशिववचसां भाववेत्ता विधाय ।। २ ।। (सौभाग्यरत्नाकर-३६ वां तरङ्ग)

विरचित 'पञ्चायतनप्रकाश' की पुष्पिका[१] तथा श्रीश्रीनिकेतन द्वारा सुगुम्फित 'सभेदार्यासप्तशती' नामक मुक्तक काव्य में वर्णित वंशक्रम[२] में 'गोस्वामि' पदलाञ्छित श्रीश्रीनिवास का उल्लेख किया गया है जिस से ऐसा परिज्ञान होता है कि दीक्षित, अध्वरीन्द्र एवं भट्ट आदि उपाधियों द्वारा सुविख्यात द्राविडावटंक आत्रेयगोत्रिय इस विद्वद्वंश में 'गोस्वामि' पद का सम्मान श्रीश्रीनिवासभट्ट को ही प्राप्त हुआ था जो कि सम्भवतः उस समय में सर्वोत्कृष्ट ज्ञानगरिमा एव देवकल्पता या शिवसादृश्य का प्रतीक समझा जाता था।[३] उक्त पद की प्राप्ति इन्हें किस से हुई, गवेषणा का ही विषय है। फिर भी 'सौभाग्यरत्नाकर' के प्रथमतरङ्गगत उपक्रम में प्रकारान्तर से प्राप्त निम्नलिखित पद्य जिसमें श्रीश्रीनिवासभट्ट ने अपनी पञ्चकृत्यकृच्छिवत्वप्राप्ति को श्रीगुरुचरणों की कृपाकटाक्ष का ही सुफल बतलाया है, के आधार पर विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि उन्हें उक्तपद की उपलब्धि अपने गुरु श्रीसच्चिदानन्दनाथापरनामधेय श्रीसुन्दराचार्य से ही हुई होगी। यथा—

सच्चिदानन्दनाथाङ्घ्रिसरोरुहयुगम्भजे।
यत्कटाक्षक्षणोत्क्षेपाच्छिवोऽहम्पञ्चकृत्यकृत्[४] ॥२॥

प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माता गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट संसार के अज्ञानरूपी महावृक्ष को समूल उन्मूलन करने वाले कठोरतम कुठाररूप, सर्वार्थप्रद शिवसदृक्ष इन्हीं श्रीश्रीनिवासभट्ट के सुपौत्र तथा मन्त्रशास्त्र के पारगामी विद्वान्, सकलसिद्धिसम्पन्न, परमपरोपकारी, प्रख्यातयशाः एवं अनेक राजाओं के गुरु गोस्वामिश्रीजगन्निवास के ज्येष्ठ पुत्र थे।[५]

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट का अभिधान 'शिरोमणि' भी था। इनके श्रीजनार्दन तथा श्रीचक्रपाणि नाम से विख्यात दो अनुज थे एवं श्रीश्रीनिकेतन नामक एक पुत्र था। श्रीजनार्दन ने

---

१. इति **श्रीगोस्वामिश्रीनिवासपौत्रश्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजश्रीगोस्वामिचक्रपाणिभट्टविरचिते** **पंचायतनप्रकाशे** द्वादशोल्लासः ॥ १२ ॥

२. पेणानद्यास्तीरे **पाणिम्पट्टे**ति नाम नगरवरम्।
जगदुत्तंसो वंशो द्रविडानां जयति दाक्षिणात्यानाम् ॥ १२ ॥
भोजी लक्षद्विजानां याजी यो वाजपेयानाम्।
तस्मिन् महानुभावो भवति स्म **श्रीनिवासगोस्वामी** ॥ १३ ॥

३. स्व. के. माधवकृष्ण शर्मा ने 'शिवस्मारिका, १९६६ (सम्पादक-प्रकाशक-कुसुमलता गोस्वामी, चौंमू हाउस, जयपुर) में प्रकाशित "शिरोमणि शिवानन्द गोस्वामी एवं उनका वैदुष्य" नामक अपने लेख में लिखा है कि "शिवानन्द गोस्वामी ने 'गोस्वामी पद' प्राप्त किया।" किन्तु, उपर्युक्त प्रमाणों के आलोक में उनका यह कहना नितान्त भ्रममात्र है।

उक्त गौरवान्वित पद आज भी इन के वंशजों एवं बीकानेरस्थ सजातीयबन्धुओं के लिये एक अत्यन्त प्रतिष्ठित तथा सम्मानित जाति के रूप में व्यवहृत होकर यथावत् प्रचलित है। (सम्पादक)

४. यथाऽऽह चिन्तामणि :—
यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंसविधानानुग्रहक्षमम्।
कृत्यम्पञ्चविधं शश्वद्भासते तं नुमः शिवम् ॥ [शब्दकल्पद्रुम-खण्ड-३, पृष्ठ-६]

५. सिंहसिद्धान्तसिन्धु-प्रथमतरङ्ग, पद्य—३३-३६।

'मन्त्रचन्द्रिका'[१] तथा श्रीचक्रपाणि ने 'पञ्चायतनप्रकाश' एवं श्रीश्रीनिकेतन ने 'सभेदार्यासप्तशती' नामक ग्रन्थ का सृजन किया ।[२]

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट अपने पितामह श्रीश्रीनिवास के समान शास्त्रीयविद्याओं में पारङ्गत एवं सिद्ध पुरुष तथा भोगमोक्षैकदायिनी पराम्बा श्रीश्रीविद्या के अनन्य समुपासक थे । इन्हें श्रीश्रीविद्याम्बा का वह साक्षाद्दर्शनरूप समनुग्रह समुपलब्ध था जो 'क समुपासना से सम्प्राप्य सिद्धि का चरम सोपान समझा जाता है । इसका निर्देश स्वयं श्रीशिवान द ने 'श्रीविद्यासपर्य्याक्रमदर्पणस्तोत्र' नामक अपनी कृति के अन्त में इस प्रकार किया है—

शेषिका पातु मां नित्यमुच्छिष्टश्चाऽपि भैरवः ॥१३२॥
सर्वोपद्रवशान्तिश्च श्रीविद्याकृपयाऽस्तु मे ।
श्रुत्वेदमुत्तमं स्तोत्रं शिवानन्दविनिर्म्मितम् ॥१३३॥
प्रसन्ना श्रीमहाविद्या प्रत्यक्षमित्थमब्रवीत् ।
इदं स्तोत्रं महादिव्यं यः पठिष्यति साधकः ॥१३४॥
तस्य यद्यत्फलं सर्वं तत्तत्सङ्कथयाम्यहम् ।
वशमेष्यन्ति सर्वेऽपि दासवत्तस्य भूभुजः ॥१३५॥
तस्याऽभिलाषाः सर्वेऽपि सेत्स्यन्त्येव न संशयः ।
इत्युक्त्वा सुन्दरी देवी तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥१४५॥

इति श्रीशिवानन्दगोस्वामिविरचितं श्रीविद्यासपर्य्याक्रमदर्पणस्तोत्रं "ललितानन्देनैवाऽलेखि स्वयं गोस्वामिजी रंमीजीसकाशात्"

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट अपने समय के महान् गौरवशाली एवं सुप्रतिष्ठित व्यक्ति थे । इनकी महनीय कीर्ति का सौरभ दिग्दिगन्त में व्याप्त था । ये जहां विद्वद्वृन्द द्वारा वन्दनीय थे वहां ये भारतवर्ष के अनेकानेक भूपालों के गुरु भी थे । इनके परम भक्त शिष्यों में बुन्देलदेशान्तर्गत

---

१. श्रीजनार्दनभट्ट अपने ज्येष्टभ्राता के ही समान विद्वान् एवं श्रीश्रीविद्या के साधक थे । इनकी 'मन्त्रचन्द्रिका' के अतिरिक्त संस्कृत एवं हिन्दी में निबद्ध अनेक कृतियाँ मिलती हैं । देखें- शिवस्मारिका-१९६६, चौमूं हाउस, जयपुर ।

२. श्रीश्रीनिवासतनयस्तु जगन्निवासः ॥११॥
तन्नन्दनाः सुकृतिनः करुणार्द्रचित्ताः शैलेन्द्रजाचरणपङ्कजचञ्चरीकाः ।
ज्येष्ठः शिरोमणिरिति प्रथितः कनिष्ठस्तस्माज्जनार्द्दन इति ह्यनु चक्रपाणिः ॥१२॥
जनार्दनाभिधस्तेषु यथामति कुतूहलात् । तान्त्रिकात्मनिबोधाय कुरुते मन्त्रचन्द्रिकाम् ॥१३॥
[मन्त्रचन्द्रिका--प्रथम प्रकाश]

देवार्च्चने कनिष्ठः क्षोणितले चक्रपाणिरिति ॥१४॥
तत्कृतः पञ्चसुराणाम्पञ्चायतनप्रकाशेति । ग्रन्थो जगति विजयते सारं समस्ततन्त्राणाम् ॥२०॥
आनन्दाय कवीनां शिरोमणेरात्मजः सुकृती । सप्तशतीमार्य्याणान्तनुते श्रीश्रीनिकेतनाभिख्यः ॥२१॥
(सभेदार्यासप्तशती)

चेदी (चन्देरी) राज्य के अधीश्वर श्रीदेवीसिंह, जयपुर-पत्तनाधिपति श्रीविष्णुसिंह एवं विक्रमपुर (बीकानेर) के भूपति श्रीअनूपसिंह के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं।[१]

चन्देरी के महाराजा श्रीदेवीसिंह के तनय श्रीदुर्गसिंह ने पांच ग्राम, जयपुर के अधिपति श्रीविष्णुसिंह ने चार ग्राम एवं बीकानेर के अधीश्वर श्रीकर्णसिंह के सुपुत्र श्रीअनूपसिंह ने इनसे पूर्णाभिषेकदीक्षा ग्रहण कर इनके पादपद्मों में पादार्घ्य के रूप में भक्तिपूर्वक समर्पित कर इन्हें सम्मानित एवं सत्कृत किया था।[२]

गोस्वामी श्रीशिवानन्द विलक्षणप्रतिभासम्पन्न महान् मेधावी विद्वान् थे। इनमें चतुर्मुखी प्रतिभा प्रतिभासित थी। इस प्रतिभा का परिचय इनकी वे कृतियां देती हैं जो संस्कृतसाहित्य में महान् निधि के रूप में अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्होंने भारतीय संस्कृति के मूलभूत धार्मिक एवं तत्सम्बन्धित प्रधानतम विषयों में सिंहसिद्धान्तसिन्धु, त्रिकूटारहस्य-विषमपदवृत्ति, आचारसिन्धु, सिंहसिद्धान्तदीपिका (व्याकरण), अमरकोशबालबोधिनीटीका, मुहूर्त्तरत्न, वैद्यरत्न, श्रीविद्यासपर्य्याक्रमदर्पणस्तोत्र एवं जालपाष्टकस्तोत्र आदि जैसे सुविशाल एवं लघुतम त्रिंशाधिक ग्रन्थों[३] का सृजन कर सुरभारती के भव्य भण्डार को समृद्धिशाली बनाया। निश्चय ही, वह एक संस्कृत साहित्य को इनकी महान् देन है।

इस प्रकार धुरीण विद्वद्वंश में प्रादुर्भूत गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट विक्रम की १८वीं शताब्दी के महान् विभूति थे जो मूर्धन्य विद्वान् ही नहीं, उच्चकोटि के ग्रन्थकार, टीकाकार एवं स्वतंत्र ग्रन्थों के निर्माता होने के साथ-साथ महान् सिद्ध पुरुष थे तथा धर्मसाधना के साथ अनवरत सारस्वत साधना को ही जिन्होंने अपना जीवनसर्वस्व समझते हुए अपने 'शिरोमणि' एवं 'शिवानन्द' नाम को सार्थक किया।

वास्तव में ऐसे महान् मेधावी तपस्वी महापुरुष के पदार्पण से मध्यप्रदेश एवं राजस्थान आज भी विशेषत: गौरवान्वित है।

---

१. विद्यावन्तः सन्तस्त्रयोऽङ्गजास्तस्य वर्त्तति ॥१५
बहुविबुधवन्दनीयस्तेषां ज्येष्ठः **शिरोमणिर्जयति** ॥
पूज्यः सर्वनृपाणां चेदीजयपूरविक्रमेशानाम् ॥
यद्रचिता गुणनिचिता बहवो ग्रन्था विराजन्तो।
अतिविस्तरार्थसधनो नाम्ना ग्रन्थोऽस्ति **सिंहसिद्धान्तः** ॥१६
नानामुनिमतगहनस्तन्त्राणां यत्र राद्धान्तः।

[सभेदार्यासप्तशती]

२. पंचग्रामा दुर्गसिंहेन दत्ताश्चत्वारोऽन्ये विष्णुसिंहेन राज्ञा।
द्वौ सुश्रीकौ कर्णपुत्रेण भक्त्या एवम्प्रायः प्रापिताऽत्र स्थितिर्नः ॥

[स्फुट वंशप्रशस्ति]

३. प्रायः सभी ग्रन्थ अनूपसंस्कृतपुस्तकालय, बीकानेर में उपलब्ध हैं। इनकी सूची शिवस्मारिका-१९६९ में द्रष्टव्य है।

सम्पादन—

इस ग्रन्थ के प्रथमखण्ड तथा द्वितीय खण्ड का सम्पादन दो प्रतियों के आधार पर किया गया है। दोनों प्रतियाँ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रहालय में संगृहीत एवं परिग्रहणपञ्जिका में क्रमाङ्क ४२०५ तथा १६७८९ पर क्रमशः अङ्कित हैं जिन्हें यहां पर क्रमशः क. और ख. संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। यद्यपि ये दोनों प्रतियाँ स्फीत एवं सुवाच्य अक्षरों में लिखित हैं फिर भी पाठ की दृष्टि से इन में क. प्रति ख. प्रति से अपेक्षाकृत शुद्ध एवं प्राचीन है। अतः हमने क. प्रति को ही प्रधान मानकर इस का पाठ मूलरूप में उद्धृत किया है और ख. प्रति के पाठान्तरों को पाद-टिप्पणी के रूप में दिया है। हमारा दृष्टिकोण यह रहा है कि पाठक को शुद्ध पाठ की ही उपलब्धि हो इसे ध्यान में रख कर हमने मूलरूप में उसी पाठ को ही स्वीकार किया है जो हमारे विचार में संगत एवं शुद्ध प्रतीत हुआ है। जैसे यदि ख. प्रति का पाठ शुद्ध है तो उसे मूल रूप में देकर क. प्रति का पाठ टिप्पणी में उद्धृत किया है। इसी प्रकार यदि कहीं पर दोनों प्रतियों के पाठ अशुद्ध एवं असंगत दिखलाई दिए हैं वहाँ यथाबुद्धि संगत एवं शुद्ध पाठ मूलरूप में और प्रति-द्वय के पाठ टिप्पणी में दिए हैं। सुविज्ञ पाठकों की सुविधा के लिऐ खण्डद्वय के आदि में सम्बन्धित सुविस्तृत विषयानुक्रम निर्मित कर संयोजित किया गया है जिस से कि पाठक अपने अभीष्ट विषय को तुरन्त ढूंढ सकें। यह इसलिए किया गया है कि ग्रन्थकारद्वारा गुम्फित पद्यात्मक तालिका जो कि प्रकाशित प्रथम खण्ड के प्रथमतरंग में 'ग्रन्थानुक्रम' शीर्षक के रूप में उद्धृत है, में स्थूल विषयों का ही उल्लेख किया गया है जब कि उन विषयों के अन्तर्गत ऐसे अनेक अवान्तर विषय वर्णित हैं जो कि अपना महत्व रखते हैं और जिनकी जानकारी तब तक पाठक को नहीं हो सकती जब तक कि वह सभी विषयों का पारायण न कर ले। यह कहना उचित ही होगा कि यह कठिनाई पाठक को संयोजित विस्तृत विषयानुक्रम से नहीं होगी क्योंकि इसमें ग्रन्थगत सूक्ष्म से सूक्ष्म अवान्तर विषयों को सम्मिलित किया गया है। ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए साक्ष्यरूप में उद्धृत दोनों प्रतियों का अन्तिम पुष्पिकांश के साथ निम्न परिचय प्रस्तुत है—

प्रति-परिचय—

१. क. प्रति – ग्रन्थाङ्क–४२०५, साइज–३५ × १९ से.मी., पत्र ८११+२+१+३=८१७; पंक्ति-१५; अक्षर-४६, रचनाकाल-१७३१ (विक्रम); लिपिकाल-१८२५ (विक्रम); लिपिस्थान-जयपुर।

पुष्पिका–इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज–गोस्वामिश्रीशिवानंदभट्टविरचिते सिंहसिद्धांतसिंधौ द्विनवतितमस्तरंगः ॥९२॥

प्रोक्तं गणेशप्रमुखामराणामुपासनाया निखिलं विधानम् ॥
विलोक्य तच्चेतसि साधकानामात्मन्यमन्दो भवतात्प्रमोदः ॥१॥
चंद्रवह्नितुरगैकसंमिते वत्सरे सहसि शुक्लपक्षतौ ॥
शीतरश्मिसितवासरे शुभे ग्रन्थ एष परिपूर्णतामगात् ॥२॥१७३१॥

संवत् १८२८ वर्षे औदुंबरज्ञातीयेन राजाधिराजश्रीमज्जयसिंहतनूज श्रीमन्मा[धव]सिंहो-यद्धुरेण स्वात्मावलोकमानार्थं लिखापितं पुस्तकमिदं श्रीमज्जयसिंहनिर्मिते जयनगराख्यशुभपत्तने लेखोयं लेखकत्रयाणाम् श्रीः श्रीः।

२. **ख. प्रति**—ग्रन्थाङ्क-१६७८९, साइज-३९.३ × १८.८ से.मी., पत्र-६६४+४(अनुक्रमणिका) =६९८, लिपिकाल-१८९३, पंक्ति-१६, अक्षर-४८। पत्र-संख्या ३६१ से ३७२ तक अप्राप्त।

पुष्पिका-इति गोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज-गोस्वामिश्रीशिवानंदभट्टविरचिते सिंहसिद्धांत-सिंधौ द्विनवतितमस्तरंगः ९२

प्रोक्तं गणेशप्रमुखामराणामुपासनाया निखिलं विधानं।
विलोक्य तच्चेतसि साधकानां भूयादमंदः सततं प्रमोदः ॥ श्रीरस्तु शुभं भूयात्।

संवत् १८९३रा चैत्रमाशे शुक्लपक्षे तिथौ पूर्णमास्यां गुरुवासरे ॥ शुभं भवतु

आभार-प्रदर्शन—

अन्त में मैं सर्वप्रथम प्रतिष्ठान के भूतपूर्व निदेशक श्रीयुत डॉक्टर फतहसिंहजी का हृदय से कृतज्ञ हूं जिन्होंने इस महान् महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को पुरातन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशनार्थ स्वीकृत कर मुझे इस महान् कार्य के लिए योग्य समझते हुए इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य को सौंपने का अनुग्रह किया। तदनन्तर मैं अपने सभी सहयोगियों विशेषतः प्रकाशन एवं सम्पादन विभाग के सहयोगी श्रीगिरधरवल्लभ दाधीच को धन्यवाद प्रदान करता हूँ जिनकी सतत सत्प्रेरणा से ही समुत्साहित होकर मैं इस महान् कार्य को कर सका और यह द्वितीय खण्ड प्रकाशित होकर जिज्ञासु विद्वद्वृन्द के समक्ष उपस्थित हो सका। यहाँ यह भी निवेदनीय है कि इस ग्रन्थ की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान दिया गया है फिर भी मानवस्वभाववश एवं प्रेस-गत दोष के कारण प्रमाद होना स्वाभाविक है। अतः सुविज्ञ विद्वान् जहाँ कहीं भी त्रुटि रह गई हो उसे शुद्ध कर 'समादधति सज्जनाः' को चरितार्थ करते हुए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि सभी साधक अधिकारी विद्वान् इस ग्रन्थ से अवश्य ही लाभ उठायेंगे।

विदुषामाश्रवः—
गोस्वामी लक्ष्मीनारायणदीक्षितः

गुरुपूर्णिमा **संवत्** २०३३.

अथ सिंहसिद्धान्तसिन्धोर्द्वितीयखण्डस्य

तरङ्गान्तर्गतानां विषयाणामनुक्रमः

[पञ्चदशस्तरङ्गः-पृष्ठ-१-२०]

[सप्तदशस्तरङ्गः-पृष्ठ-५९-७९]

[एकोनविंशस्तरङ्गः-पृष्ठ-९४-१२५]

[विंशस्तरङ्गः-पृष्ठ-१२६-१८३]

[चतुर्विंशस्तरङ्गः-पृष्ठ-२४५-३००]

[पञ्चविंशस्तरङ्गः-पृष्ठ-३००-३४७]

[षड्विंशस्तरङ्गः पृष्ठ-३४८-३९१]

[सप्तविंशस्तरङ्गः-३९१-४४५]

[अष्टाविंशस्तरङ्गः-पृष्ठ-४४५-४७१]

[एकोनत्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ ४७१-५२३]

[त्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-५२४-५५२]

[एकत्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-५५२-५७६]

अथ महेशमन्त्राणां विधानम्—

[द्वात्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-५७६-५९५]

[त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-५९५-६१६]

[चतुस्त्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-६१७-६४१]

अथ बटुकभैरवस्यैकविंशाक्षरमन्त्रविधानम्–

[पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-६४२-६५४]

[षट्त्रिंशस्तरङ्गः- पृष्ठ-६५५]

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीतः

सिंहसिद्धान्तसिन्धुः

(द्वितीय : खण्डः)

[पञ्चदशस्तरङ्गः]

।। अथ पुरश्चरणविधिः ।।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि पौरश्चरणिकं विधिम् ।
विना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि ।।१।।

कृतेन येन लभते साधको वाञ्छितं फलम् ।
पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः ।।२।।

किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः ।
रहस्यानां हि मन्त्राणां यदि न स्यात्पुरस्क्रिया ।।३।।

पुरस्क्रिया हि मन्त्राणाम्प्रधानम्बीजमुच्यते ।
वीर्य्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः ।।४।।

पुरश्चरणहीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।

तत्र वायवीयसंहितायाम् पुरश्चरणशब्दस्य निरुक्तिरुक्ता यथा—

साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते ।
पुरतश्चरणीयत्वाद्विनियोगाख्यकर्मणः ।।५।।

विनियोगलक्षणं तु मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शास्त्रमार्गेण योजनम् ।
सिद्धमन्त्रस्य सम्प्रोक्तो विनियोगो विचक्षणैः ।।६।।

पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोगो विनिर्मितः । इति ।
तत्पुरश्चरणं नाम मन्त्रसिद्धयर्थमात्मनः ।।७।।

यथोक्तं नियमं कृत्वा स्वकल्पोक्तजपस्य हि ।
करणं द्विजयागाङ्गम्प्रोक्तं देशिकसत्तमैः ॥८॥ इति ।
सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यं[1] विद्यते क्वचित्[2] ।

इत्यनेकवचनैः पुरश्चरणस्यावश्यकत्वं द्योत्यते, तत्र किंलक्षणं **पुरश्चरण**मित्यपेक्षायां **कुलप्रकाशतन्त्रे** पुरश्चरणमङ्गत्रयात्मकमुक्तं यथा—

नाऽजपात्सिद्धयते मन्त्रो नाऽहुताच्च फलप्रदः ।
अनर्च्चितो हरेत्कामांस्तस्मात्त्रितयमाचरेत् ॥९॥

कुलमूलावतारे तु पञ्चाङ्गमुक्तम्—

संसारे दुःखभूयिष्ठे य इच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।
पञ्चाङ्गोपासनेनैव मन्त्रजापी सुखं व्रजेत् ॥१०॥
पञ्चाङ्गानि महादेवि जपो होमश्च तर्प्पणम् ।
स्वाभिषेकश्च विप्राणामाराधनमपीश्वरि ॥११॥

कपिलमुनिना वायवीयसंहितायां च षडङ्गमप्युक्तं यथा—

'मूलमन्त्राद्दशांशं स्यादङ्गमन्त्रजपादिकम् । इति ।
जपोऽङ्गानां दशांशेन कर्त्तव्यः सिद्धिमिच्छता । इति ॥१२॥

सारसंग्रहे तु दशाङ्गमप्युक्तम्—

जपो होमस्तर्पणं च स्वाभिषेकोऽघमर्षणम् ।
सूर्यार्घं जलपानं च प्रणामं देवपूजनम् ॥१३॥
ब्राह्मणानां भोजनं च पूर्वपूर्वदशांशतः ।
दशाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते ॥१४॥ इति ।

एषु पक्षेषु पञ्चाङ्गपक्ष एव गरीयान्, तस्यैव बहुदेवतोपासनविधावुक्तेः । एतद्विषयकानि वचनानि तु वक्ष्यमाणतत्तन्मन्त्रपुरश्चरणे व्यक्तीभविष्यन्ति ।[3]

---

१. ख. नासाद्यं । २. इतः परं ख. पुस्तके पाठविशेषो दृश्यते—
कुलार्णवे—गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यात्मपोषणम् ।
सुकर्मरचितं दत्तं पुनस्ता एव पोषयेत् ॥१॥
एवञ्च स्वशरीरस्थः सर्प्पिर्वत्परमेश्वरः ।
विना चोपासनां पुंसां न ददाति फलं नृणाम् ॥२॥

३. इतः परमयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—
निबन्धे— 'यथा दीक्षा तथा ज्ञेया पुरश्चर्य्या विचक्षणैः'
इत्युक्तेः पुरश्चरणे मासादिशुद्धिस्तु दीक्षोक्तैव बोध्या ।

।। अथ पुरश्चरणयोग्यस्थानानि ।।

तत्र शारदातिलके—

पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहा पर्व्वतमस्तकम् ।
तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम् ।।१५।।

उद्यानानि विविक्तानि विल्वमूलं तटं गिरेः ।
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम् ।।१६।।

साधनेषु प्रशस्यन्ते स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम् ।

सनत्कुमारः—

नद्याः समुद्रगामिन्यास्तीरे गोष्ठेऽथवा मुने ।
आश्वत्थविल्वमूले वा सिन्धुतीरे जलाशये ।।१७।।

पश्चिमाभिमुखे देवगृहे वा शैलमस्तके ।

अत्र देवः शिवो ज्ञेयः ।

'प्रत्यङ्मुखशिवस्थाने वृषभेण विवर्जिते' ।।१८।।

इति कुम्भसम्भवोक्तेः ।

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

विल्वच्छायां समाश्रित्य मूलेऽश्वत्थस्य वा प्रिये ।
गुरोर्वा सन्निधौ गोष्ठे वृषशून्ये शिवालये ।।१९।।

नदीतीरेऽद्रिशृङ्गे वा तुलशीकाननेऽपि वा ।
अभीष्टदेवसान्निध्ये जपेन्मन्त्री समाहितः ।।२०।।

नारदपञ्चरात्रे—

गिरिगोष्ठप्रविस्यन्दनद्यरण्याश्रमा ह्रदाः ।
देशाः पुण्या जपस्यैते यत्र वा जायते रुचिः ।।२१।।

प्रपञ्चसारे—

समुद्रतीरेऽप्यथवाऽद्रिशृङ्गे,
समुद्रगानां सरितां च तीरे ।
जपेद्विविक्ते निज एव गेहे,
विष्णोर्गृहे वा पुरुषो मनस्वी ।।२२।।

[1]कपिलपञ्चरात्रेऽपि—

क्षेत्रतीर्थवनारामदेवालयनदीह्रदाः ।
कुटीविविक्त इत्येते देशाः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ॥२३॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

प्रेतभूम्यादिकं चैव तत्तकल्पप्रकाशितम् ।

वायवीयसंहितायाम्—

सूर्यस्याऽग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य ज्वलितस्य वा ।
विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः ॥२४॥
अथवा निवसेत्तत्र यत्र चित्तम्प्रसीदति ।
गृहे जपः समः प्रोक्तो गोष्ठे दशगुणस्तु सः ॥२५॥
आरामे च तथाऽरण्ये सहस्रगुण उच्यते ।
अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षगुणस्तु सः ॥२६॥
कोटिर्देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ ।

मम शिवस्य । तथा शङ्खः— "अनन्तं विष्णुसन्निधौ" ।[2]

यामले—

म्लेच्छदुष्टमृगव्यालशङ्कातङ्कविवर्जिते ।
एकान्ते पावने निन्दारहिते भक्तिसंयुते ॥२७॥
सुदेशे धार्मिके राष्ट्रे सुभिक्षे निरुपद्रुते ।
रम्ये भक्तजनस्थाने निवसेन्नाऽपरं श्रयेत् ॥२८॥
राजानः सचिवा राजपुरुषाः प्रभवो जनाः ।
चरन्ति येन मार्गेण न वसेत्तत्र तत्त्ववित् ॥२९॥

---

१. इतः पूर्वं निम्नांशोऽयं ख. पुस्तके विशेषः—

चिदम्बरकल्पे—विल्वमूलं समाश्रित्य यो मन्त्रान् विविधान् जपेत् ।
एकेन दिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भवेत् ॥१॥
अथवा देवतारूपं गुरुं भक्त्या प्रतोषयेत् ।
पुरश्चरणहीनोऽपि मन्त्रः सिद्ध्येन्न संशयः ॥२॥

२. ख. पुस्तके निम्नांशो विशेषः—

जपस्थानानि देवेशि सिद्धतीर्थानि यानि च ।
सिद्धपीठे च सद्वृक्षे गिरौ देवालये तथा ॥१॥
वटवृक्षे विल्ववृक्षे रम्भाया विपिनेऽथवा ।

जीर्णदेवालयोद्यानगृहवृक्षतलेषु च ।
नदीकूलाद्रिकूलेषु भूछिद्रादिषु नो वसेत् ॥३०॥

कालिकोद्भवे—

स्थानसाधकयोर्नाम्नोररित्वं यत्र विद्यते ।
तदक्षशास्त्रतो ज्ञात्वा तत्तत्सम्यक्परित्यजेत् ॥३१॥

अक्षशास्त्रे—

अरित्वमद्वयस्योक्तं गकारेण परस्परम् ।
ऋद्वयस्य ठकारेण ठकारस्याऽपि तेन च ॥३२॥
लृद्वयस्य पकारेण पकारस्याऽपि लृद्वयम् ।
ओद्वयस्य षकारेण षकारस्योयुगेन च ॥३३॥
जकारस्य टकारेण झकारस्य खकारतः ।
उकारस्य तकारेण फकारस्य धकारतः ॥३४॥
भकारस्य तु रेफेण यकारस्य सकारतः ।
अरित्वमेषां वर्णानामन्येषां मित्रभावना ॥३५॥
कूर्मचक्रे रिपुस्थानं साधको यत्नतस्त्यजेत् ।
यथा गर्गस्य वैदो(री)[1] स्यादट्टहासं महत्पुरम् ॥३६॥
गयाऽमरेश्वरस्यैवमाकाराद्येषु योजयेत् ।
ऋजुभद्रस्य[2] ढक्काख्यं लृतकस्याऽरिपद्मकम् ॥३७॥
ओड्डियाणं षण्मुखस्य औढ्रं षड्गुणकस्य च ।
जयन्ती टङ्कणस्याऽरिः खन्धारं झञ्झणस्य[3] तु ॥३८॥
डाकदेवस्य ताराख्यं धर्माख्यं फञ्जिभद्रतः[4] ।
भद्रस्य[5] रग्यकं वैरी यज्ञदत्तस्य सोमकः[6] ॥३९॥
एवं क्रमेण संशोध्य वैरिस्थानं त्यजेद् बुधः ।
क्षेत्रसाधकमन्त्राणामेकमेवाद्यमक्षरम् ॥४०॥
यदि स्यात्स ध्रुवं मन्त्रः सर्वसिद्धिफलप्रदः ।

यामले—

पुण्यक्षेत्रादिकं गत्वा कुर्याद् भूमिपरिग्रहम् ।
ब्रूयादमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये ॥४१॥

---

१. ख. वैरि । २. ख. ऋजुभट्टस्य । ३. ख. भुभुणस्य । ४. ख. ०भट्टतः ५. भट्टस्य ।
६. ख. सोमकः ।

मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्ध्यतामिति ।
भूमेः परिग्रहं कृत्वा परिमाणं च सर्वतः ॥४२॥

नदीपर्वततीर्थादौ परिमाणेन खण्डितम् ।
ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नगरे तद्द्वयं स्मृतम् ॥४३॥

क्षीरवृक्षमयान्कीलानस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान् ।
निखनेद्दशदिग्भागे तेष्वस्त्रं च प्रपूजयेत् ॥४४॥

क्षेत्रे च कीलिते मन्त्री न विघ्नैः परिभूयते ।
क्षेत्रपालादिकांस्तत्र पूजयेद्विधिवत्ततः ॥४५॥

दिक्पतिभ्यो बलिं दत्वा ततः क्षेत्रं समाश्रयेत् ।
क्षेत्रमध्यं समाश्रित्य कूर्मचक्रं विचिन्तयेत् ॥४६॥

कूर्मचक्रमविज्ञाय यः कुर्याज्जपयज्ञकम् ।
तज्जपस्य फलं नाऽस्ति सर्वानर्थाय कल्पते ॥४७॥

सारसङ्ग्रहे—

कूर्मस्थितिं[1] परिज्ञाय यो जपादिविधौ स्थितः ।
स आप्नोति फलान्युक्तान्यन्यथा नाशमेति च ॥४८॥

तस्मात् कूर्मविभागं तु विज्ञायाऽखिलमाचरेत् ।
स चतुर्द्धा स्थितो लोके तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥४९॥

प्रथमस्तु परः कूर्मस्ततो देशगतस्तथा ।
ग्रामगो गृहगश्चेति चतुर्द्धा स व्यवस्थितः ॥५०॥

देशं ग्रामं गृहं वाऽथ नवधा विभजेत्ततः ।
प्रागादिपश्चिमान्तन्तु कादिमान्तानि विन्यसेत् ॥५१॥

अक्षराण्यथ यादीनि तथाऽष्टौ पदयोर्लिखेत् ।
ईशे द्वयमथो मध्ये स्वरान्प्रागादि विन्यसेत् ॥५२॥

ईशान्तासु दिशः पश्चान्नामाद्यक्षरतो भवेत् ।
तन्मुखं पार्श्वयोः पाणी कुक्षी पादौ ततस्ततः ॥५३॥

पुच्छमेकमथो मध्यं पृष्ठमेवं षडङ्गवान् ।
मुखे सर्वार्थसिद्धिः स्यात्करयोरल्पसिद्धयः ॥५४॥

---

१. ख. कूर्मस्थितं ।

कुक्षौ तु नित्यनैष्फल्यं पादयोर्नैव सिद्धयः ।
पुच्छे मृत्युस्तु नियतः पृष्ठे सर्वार्थसिद्धयः ॥५५॥
तस्मात्तत्साधु विज्ञाय कुर्यात्सर्वं जपादिकम् ।

तन्त्रराजे—

व्यञ्जनं देशकूर्मे स्याद् गृहकूर्मे स्वरास्तथा ।
ग्रामकूर्मे तद्द्वितयं परकूर्मे न तु द्वयम् ॥५६॥
नित्यं पूर्वमुखो यस्मात्तेन तत्सिद्धिरीरिता ।

इति स्वरव्यञ्जनयुक्तेऽपि देशनामनि व्यञ्जनस्य प्राधान्यं देशकूर्मे ज्ञेयम्, तथा ग्रामकूर्मेऽपि स्वरस्येति । केवलस्वरयुक्ते तु सर्वत्र स्वरस्थदिक्कोष्ठं मुखं ज्ञेयम् ।

सिद्धेश्वरीतन्त्रे—

तस्मान्मुखं समाश्रित्य सर्वकार्यं समाचरेत् ।
तदलाभे करं वाऽपि कूर्मस्थानं समाश्रयेत् ॥५७॥

नवसु कोष्ठेषु नवक्षेत्रपालाः पूज्याः । तदुक्तं **तन्त्रान्तरे—**

क्षेत्रपालान्नवैतेषु दीपेशान्नवकोष्ठके ।
अमृतो वृषभः शैलराजो वासुकिरर्थकृत् ॥५८॥
शक्तिपः पद्मयोनिश्च महाशङ्खश्च तान्नव ।
छायाछत्रगणोपेतान्मध्यात्पूर्वोदितो यजेदिति ॥५९॥

दीपशब्दार्थोऽन्यत्रोक्तः ।

दीपौघं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ।
प्रासादा ग्रामगेहाद्या ज्ञेया येन शुभाशुभाः ॥६०॥
ककारादिक्षकरान्ता वर्णाः स्युर्दीपसंज्ञकाः ।
स्वराः षोडशपीठाख्या ज्ञातव्या मन्त्रिणां वरैः ॥६१॥

तन्त्रान्तरे—

मोक्षार्थं वदने कुर्याद्दक्षिणे त्वाभिचारकम् ।
श्रीकामः पश्चिमे भूत्वा उत्तरे शान्तिदो भवेत् ॥६२॥
ईशाने शत्रुनाशः स्यादाग्नेयः शत्रुदायकः ।
नैर्ऋते शत्रुभीतिः स्याद्वायव्ये तु पलायनम् ॥६३॥

कूर्मचक्रमविज्ञाय यः करोति जपादिकम् ।
तज्जपस्य फल नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते ॥६४॥ इति ॥

देवीयामले—

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
महाकाले च काश्यां च दीपस्थानं न चिन्तयेत् ॥६५॥

गौतमीये—

पर्वते सिन्धुतीरे वा पुण्यारण्ये नदीतटे ।
यदि कुर्यात्पुरश्चर्य्यां तत्र कूर्मं न चिन्तयेत् ॥६६॥

अत्र नदीतटशब्देन पुण्यनदीतटं ग्राह्यम् । 'समुद्रगानां सरितां च तीर' इति पूर्वमुक्तत्वात् । पुण्यारण्यं पुष्करार्बुदादि ।

अथ जपमाला । तत्र शारदातिलके—

रुद्राक्षमालिका सूते जपेन सुमनोरथान् ।
पद्माक्षैर्विहिता माला शत्रूणां नाशिनी मता ॥६७॥

कुशग्रन्थिमयी माला सर्वपापप्रणाशिनी ।
पुत्रञ्जीवफलैः क्लृप्ता कुरुते पुत्रसम्पदम् ॥६८॥

निर्मिता रूप्यमणिभिर्ज्जपमालेप्सितप्रदा ।
हिरण्मयैर्विरचिता माला कामान्प्रयच्छति ॥६९॥

प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेत्पुष्कलं धनम् ।
सौभाग्यं स्फाटिकी माला मौक्तिकैर्विहिता श्रियम् ॥७०॥

निर्मिता शङ्खमणिभिः कुरुते कीर्त्तिमव्ययाम् ।
सर्वैरेतैर्विरचिता माला स्यान्मुक्तये नृणाम् ॥७१॥

मिश्रणे तु निषेधमाह । **उत्तरतन्त्रे—**

इन्द्राक्षैर्यदि जप्येत रुद्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा ।
नाऽन्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिकं तु यत् ॥७२॥

यद्यन्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि ।
तस्य कामं च मोक्षं च न ददाति प्रियङ्करी ॥७३॥

जन्मान्तरे जायतेऽसौ वेदवेदाङ्गपारगः ।
मिश्रीभावं ततो याति चण्डालैः पापकर्मभिः ॥७४॥ इति ।

तन्त्रराजे—

रुद्राक्षैरपि पद्माक्षैः पुत्रञ्जीवैः कुचन्दनैः ।
स्फाटिकैश्च प्रवालैश्च मौक्तिकैर्हेमनिर्मितैः ॥७५॥
राजतैर्वाऽक्षमाला स्यात्पूर्वं पूर्वं फले गुरु ।

सारसङ्ग्रहे—

मणयः शङ्खसम्भूताः प्रोक्ता लक्ष्मीप्रदायकाः ।
मुक्तिप्रदाः स्फटिकजाः पद्माक्षाः पुष्टिवर्द्धनाः ॥७६॥

भुक्तिमुक्तिप्रदाः प्रोक्ता रुद्राक्षाः सर्वसिद्धिदाः ।
पुत्रञ्जीवभवाः पुत्रपशुधान्यसमृद्धिदाः ॥७७॥

विद्रुमोत्थास्तु मणयो धनसौभाग्यवश्यदाः ।
मौक्तिका मुक्तिदाः प्रोक्ताः सर्वसम्पत्समृद्धिदाः ॥७८॥
पापापहाः कुशमयाः कामदाः स्वर्णरूप्यजाः ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

रुद्राक्षैर्विहिता माला सर्वकामप्रसाधिनी ।
निर्मिता शङ्खमणिभिर्धनं कीर्त्ति च यच्छति ॥७९॥

पद्माक्षैः पुष्टिलक्ष्मीदा शत्रुनाशकरी तथा ।
पुत्रञ्जीवभवा पुत्रपशुधीधान्यसिद्धिदाः ॥८०॥

मुक्ताभी रचिता माला सौभाग्यं विपुलां श्रियम् ।
मन्त्रप्रत्यक्षतासिद्धिं शान्तिकं चाऽथ पौष्टिकम् ॥८१॥

मुक्तिं च तनुते तद्वत्स्फाटिक्यप्यक्षमालिका ।
सारस्वते पद्मरागैः पुष्कले च धने तथा ॥८२॥

सौवर्णा राजती माला सर्वान् कामान्प्रयच्छति ।
सारस्वते प्रवालोत्था वश्येऽधिकधनागमे ॥८३॥
पापक्षयकरी कौशी······················।इति।

ब्रह्मयामले—

खड्गशृङ्गस्य या माला पितृणां मोक्षदायिनी ।
निशादार्वीकृता वश्ये लाक्षया ज्वरकर्मणि ॥८४॥

अक्र्कस्योच्चाटने कार्या श्रीफलैर्ज्ञानसाधने ।
गजदन्तस्य मणिभिः कुर्यात्सर्वार्थदायिनी ॥८५॥

राजती सर्ववश्येषु मोहने ताम्रजा स्मृता ।
मारणे चायसी प्रोक्ता.....................॥८६॥इति ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

उच्चाटनेऽश्वदन्तानां माला प्रोक्ताऽश्वबालकैः ।
खरदन्तैरधोभूतैर्मनुष्यस्नायुतन्तुना ॥८७॥
ग्रथितैर्निर्मिता माला शत्रूणां नाशिनी मता ।

सारसङ्ग्रहे—

सा शमीनिम्बबिम्बाख्यदुन्दुभद्रुसमुद्भवैः ।
कपिशार्दूलऋक्षाणां जन्तूनामस्थिसम्भवैः ॥८८॥

नराश्वरासभेभानां स्नायुभिर्ग्रथितैरपि ।
तत्तत्कार्यविभेदेन सा सा कार्या विपश्चिता ॥८९॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे ।
त्रिपुराया जपे शस्ता इन्द्राक्षै रक्तचन्दनैः ॥९०॥

वैष्णवमन्त्रजपे पद्माक्षमालाऽपि प्रशस्ता, **गौतमेन** तन्मात्रविधानात् । यथा—'समाहितमना भूत्वा पद्मबीजाक्षमालया' जपेदिति ।

नारदपञ्चरात्रेऽपि—

जपस्य गणनां प्राहुः पद्माक्षैर्भक्तिवर्द्धनैः ।इति ।

रुद्राक्षमालाऽपि प्रशस्ता । 'यस्तु भागवतो भूत्वे'त्युपक्रम्य 'रुद्राक्षैश्चोत्त-मामि'ति **वराहवचनात्** ।

॥ अथ तुलसीकाष्ठमालामाहात्म्यम् ॥

पुराणे श्रीनारदगौतमसंवादे—

निर्माय तुलसीकाष्ठमालामतिमनोहराम् ।
अर्पयेद्वासुदेवाय स मुक्तो नाऽत्र संशयः ॥९१॥

यो ददाति गवां कोटीर्ग्रहणे कुरुजाङ्गले ।
धत्ते च तुलसीकाष्ठमालां यः स ततोऽधिकः ॥९२॥

प्रौष्ठपद्यां विशेषेण तुलसीकाष्ठमालिकाम् ।
सुवर्णमणिसंयुक्तां यो ददाति स मुक्तिभाक् ॥९३॥

कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र पौर्णमास्यां विशेषतः ।
सुवर्णसहितां दत्वा मालां याति परां गतिम् ॥९४॥

मणौ मणौ स लभते कोटियज्ञफलं मुने ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहते नरः ॥९५॥

सदा प्रीतिमनास्तस्य कृष्णो देवकिनन्दनः ।
तुलसीकाष्ठमालाभिर्विना ये मुनिसत्तम ॥९६॥

कुर्वन्ति मधुभित्पूजां ज्ञेयास्ते वैरिणो हरेः ।
तुलसीकाष्ठमालां ये धृत्वा श्राद्धं वितन्वते ॥९७॥

गयाश्राद्धशतं तैस्तु कृतं वै मुनिसत्तम ।
तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा सन्ध्यां करोति च ॥९८॥

सन्ध्याकोटिशतं तेन कृतं तु मुनिपुङ्गव ।
तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत् ॥९९॥

पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर ।
तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा भुङ्क्ते द्विजोत्तम ॥१००॥

सिक्थे सिक्थे स लभते वाजिमेधफलं मुने ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतं शिरोबाहुविभूषणम् ॥१०१॥

भवेत्तु यस्य मर्त्यस्य तस्य देहे सदा हरिः ।
तुलसीं धारयन्विप्र यत्कर्म कुरुते नरः ॥१०२॥

फल कोटिगुणं तस्य जायते मुनिसत्तम ।
तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः ॥१०३॥

मणिभिर्धारयेन्मालां स वै भागवतोत्तमः ।
तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो म्रियते यदि ॥१०४॥

तस्य स्वर्गे चिरं वासो जायते पितृभिः सह ।
तुलसीकाष्ठमालाभिरन्वितो यत्र गच्छति ॥१०५॥

तत्र स्युः सिद्धयः सर्वा अणिमाद्याः करस्थिताः ।
न धारयेत्परधृतां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ॥१०६॥

मालां गृह्णन्नवाप्नोति फलं गोवधसम्भवम् ।
तस्मान्नान्यधृता माला धार्या विप्रेण कर्हिचित् ॥१०७॥

अधृतैव हि धर्त्तव्या ह्यर्पिता भगवद्गले ।
अर्पयित्वा तु हरये तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ॥१०८॥

मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ।
हरये नार्पयेद्यस्तु तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ॥१०९॥

मालां धत्ते स्वयं मूढः स याति नरकं ध्रुवम् ।
तुलसीकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये ॥११०॥
बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां हरिवल्लभम् ।

भैरवीविद्यामन्त्रे वाराहीतन्त्रे—

सुवर्णमणिभिर्मालां स्फाटिकीं शङ्खनिर्मिताम् ।
प्रवालैरेव वा कुर्यात्पुत्रञ्जीवं विवर्ज्जयेत् ॥१११॥
पद्माक्षं चैव रुद्राक्षं भद्राक्षं च विशेषतः ।

मुण्डमालायाम्—

महाशङ्खमयी माला नीलसारस्वते विधौ ।
नृललाटास्थिखण्डेन रचिता जपमालिका ॥११२॥
महाशङ्खमयी माला ताराविद्याजपोत्तमा ।
कर्णनेत्रान्तरालास्थिमहाशङ्खः प्रकीर्त्तितः ॥११३॥

कालिकापुराणे—

रुद्राक्षैर्वा यदि जपेदिन्द्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा ।
नाऽन्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिकं तु यत् ॥११४॥
यद्यन्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि ।
धर्मं कामं च मोक्षं च न ददाति प्रियङ्करी ॥११५॥

श्मशानधत्तुरैर्माला ज्ञेया धूमावतीविधौ ।
नराङ्गुल्यस्थिभिर्माला ग्रथिता सर्व्वकामदा ॥११६॥

नाड्या संग्रथनं कार्यं रक्तेन वाससा प्रिये ।
सदा गोप्या प्रयत्नेन..................॥१२७॥इति ।

सारसङ्ग्रहे—

अथ वक्ष्येऽक्षमालाया विधानं मन्त्रिकाम्यया ।
पञ्चविंशतिभिः प्रोक्ता मणिभिर्मुक्तिदायिनी ॥११८॥

त्रिंशद्भिर्धर्मदा सप्तविंशत्यक्षैस्तु सर्वदा ।
अभिचारकरी पञ्चदशभिः कल्पिता तु सा ॥११९॥

चतुःपञ्चाशदक्षैः सा काम्यकर्मसु सिद्धिदा ।
अष्टोत्तरशतैः क्लृप्ता सर्वाभीष्टप्रदा मता ॥१२०॥

सा पुनस्त्रिविधा प्रोक्ता सात्विकी राजसी तथा ।
तामसी चेति तास्वाद्या शतैरष्टोत्तरैः शुभैः ॥१२१॥

मणिभिः शङ्खसम्भूतैः श्वेतपद्मसमुद्भवैः ।
बीजैर्मुक्ताफलैः पुत्रजीवै रजतसम्भवैः ॥१२२॥

श्वेतचन्दनसम्भूतैरन्यैः श्वेततरूद्भवैः ।
कुशग्रन्थिभवैः क्लृप्ता राजसी चतुरुत्तरैः[1] ॥१२३॥

पञ्चाशद्भी रक्तपद्मबीजैरारक्तचन्दनैः ।
सौवर्णै रक्ततरुजैः पीतसारसमुद्भवैः ॥१२४॥

पद्मकाष्ठसमुद्भूतै रजनीकाष्ठसम्भवैः ।
देवदारुसमुद्भूतैः कृष्णकाष्ठसमुद्भवैः ॥१२५॥
मणिभिस्तामसी चाऽष्टाविंशद्भिर्मणिभिः कृता ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

अङ्गुलीजपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम् ।
पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शङ्खैः सहस्रकम् ॥१२६॥

प्रवालैर्म्मणिरत्नैश्च दशसाहस्रकं स्मृतम् ।
तदेव स्फाटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥१२७॥
पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात्सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।

कुशग्रन्थ्या कोटिशतं रुद्राक्षैः स्यादनन्तकम् ॥१२८॥
श्वेतपद्माक्षमालाभिरपि स्यादमितं फलम् ।

---

१. ख. चतुरुत्तमैः ।

कुशग्रन्थिमाला तु ब्राह्मणानामेव—

कुशग्रन्थ्या जपेद्विप्रः सुवर्णमणिभिर्नृपः ।
पुत्रञ्जीवैर्जपेद्वैश्यः पद्माक्षैः सर्व एव च ॥१२९॥

इति नारदवचनात् ।

॥ अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं तदुत्पत्तिस्तन्मुखभेदास्तत्फलानि च नानापुराणेषु ॥

तत्र स्कन्दपुराणे—

त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽऽसीदतिदुर्ज्जयः ।
जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रदेवताः ॥१३०॥

त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां त्रायणाय च ।
लोकानां भयनाशाय ऋतुधर्मप्रवृत्तये ॥१३१॥

सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलितं घोररूपकम् ।
चिन्तितं स्यान्मया पुत्र अघोरास्त्रमनुत्तमम् ॥१३२॥

निष्ठया तस्य भार्यायास्तावद्यावददृश्यत ।
दिव्यवर्षसहस्राणि चक्षुरुन्मीलितं मया ॥१३३॥

पुटाभ्यामकुलाक्षिभ्यां पतिता जलबिन्दवः ।
तत्राऽश्रुबिन्दवो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ॥१३४॥

स्थावरत्वमनुप्राप्य मर्त्यानुग्रहकारणात् ।
फलन्ति सर्वकालं हि अविच्छिन्नं फलप्रदाः ॥१३५॥

वसिष्ठलैङ्गे[1]—

'ब्रह्मेन्द्रमुख्यसकलामररक्षणार्थं,
शम्भोः पुराऽसुरविमर्द्दनकृत्यकाले ।
तत्त्रैपुरेक्षणनिरोधभवाक्षिवारि,
रुद्राक्षवृक्षनिकराणि तदा बभूवुः ॥१३६॥

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशतिर्द्वे,
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादश द्वादशैव ।

१. ख. वासिष्ठ लैङ्गे ।

बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितं चैवमेकं शिखायां,
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥१३७॥

रुद्राक्षबीजमिति ये भुवि धारयन्ति,
हस्ते च मूर्द्धनि तथोरसि भूमिभागे।
तेषां न सन्ति सदृशा यमपद्मनेत्र-
पद्मासनेन्द्रसुरकिन्नरपट्टनेषु[1] ॥१३८॥

शिरोमाला च षट्त्रिंशद् द्वात्रिंशत्कण्ठमालिका।
कूर्परे षोडश प्रोक्ता द्वात्रिंशन्मणिबन्धयोः ॥१३९॥

अष्टोत्तरशतैर्युक्तमुपवीतं विधीयते।
तदर्द्धमुरसो माला शिखायामेकमुच्यते ॥१४०॥

कर्णयोश्चाऽपि षट्संख्या धारणक्रम ईरितः।
संख्याहीनं न कर्त्तव्यमधिकं नैव दुष्यति ॥१४१॥

संख्याभेदं प्रवक्ष्यामि जपमाला तु या भवेत्।
मोक्षार्थे पञ्चविंशत्या सप्तविंशति पौष्टिके ॥१४२॥

त्रिंशच्च धनसम्प्राप्त्यै पञ्चदश्यभिचारके।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुर्विधः ॥१४३॥

श्वेतरक्तसुवर्णाभकृष्णवर्णाः क्रमादमी।
एतेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो जपमालाकृते भृशम् ॥१४४॥

अलाभे तु द्विजातीनामपि वा स्वस्वजातयः।
अतिस्थूलोऽतिसूक्ष्मश्च स्फुटितो भङ्गुरो लघुः ॥१४५॥

भिन्नः पुराधृतो जीर्णो रुद्राक्षो न वरः स्मृतः।
मणौ यदुन्नतस्थानं मुखं पृष्ठं तु निम्नकम् ॥१४६॥

घटयेदेकदिग्वत्समणीन्सद्दन्तपङ्क्तिवत्।
अन्योन्यघर्षणादेव जपहानिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१४७॥

श्रेष्ठेन रज्जुना तेन वर्त्तनत्रयरूपतः।
अन्योन्यमध्यदेशे कर्त्तव्या ग्रन्थयः शुभाः ॥१४८॥

---

१. ख. ०पत्तनेषु।

[1]चतुर्दशानि वक्त्राणि रुद्राक्षाणां क्रमाद्भवेत् ।
धारणस्य फलं तेषां वक्ष्यते विधिवत्क्रमात् ॥१४६॥

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
द्विवक्त्रं देवदेव्यौ तु गोवधं नाशयेद् ध्रुवम् ॥१५०॥

त्रिवक्त्रमनल. साक्षात्स्त्रीहत्यां हरति क्षणात् ।
चतुर्वक्त्रं स्वयं ब्रह्मा गुरुहत्यां व्यपोहति ॥१५१॥

पञ्चवक्त्र शिवः साक्षात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
षड्वक्त्रं कार्त्तिकेयस्तु धारयेद्दक्षिणे करे ॥१५२॥

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ।
सप्तवक्त्रं महानागो ह्यनन्तो नामनामतः ॥१५३॥

गोवधस्वर्णचौर्य्याभ्यां मुच्यते सर्वदा नरः ।
अष्टवक्त्र महासेन साक्षाद्देवो गणाधिपः ॥१५४॥

विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति सोऽन्ते याति परां गतिम् ।
एकवक्त्रं भैरवः स्याद् धारयेद्वामहस्तके ॥१५५॥

भुक्तिद मुक्तिदम्प्रोक्त मम तुल्यो बली भवेत् ।
दशवक्त्रं भवेद्वत्स साक्षाद्देवो जनार्दनः ॥१५६॥

पिशाचग्रहवेतालब्रह्मराक्षसपन्नगैः ।
सम्भवानि च दोषाणि क्षिप्रं नश्यन्ति धारणात् ॥१५७॥

वक्त्रैकादशरुद्राक्षं रुद्रा एकादश स्मृताः ।
शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१५८॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥१५९॥

तत्फलं समवाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात् ।
वक्त्रद्वादशरुद्राक्षं भास्करद्वादशात्मकम् ॥१६०॥

बहुस्वर्णशिवगोमेधफलं प्राप्नोति धारणात् ।
वक्त्रत्रयोदशं वत्स रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥१६१॥

१. ख. चतुर्दशान्त ।

पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यमुत्तमम् ।
चतुर्द्दशसुवक्त्रं वै रुद्राक्षं धारयेद्यदि ॥१६२॥

मूर्द्ध्नि स्थिते तु चेन्नित्यं तस्मिन्यो म्रियते नरः ।
पवित्रमयवक्त्रस्तु शशिखण्डशिराः स्वयम् ॥१६३॥

वन्द्यते सततं देवैः सत्यं च शृणु षण्मुख ।
बहुलं प्राप्यते पुण्यं भाग्यवान् जायते नरः ॥१६४॥

स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्च्चने ।
प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥१६५॥

रुद्राक्षधारी भूत्वा च यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम् ।
यो विप्रः सततं कुर्यात्तत्कर्म सफलं भवेत् ॥१६६॥

पद्मपुराणे—

कण्ठे शिरसि हस्ते च कर्णयोरुपवीतके ।
रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो भवति मानवः ॥१६७॥

शैवपुराणे—

रुद्राक्षान्धारयेद्विप्रः सन्ध्यादिषु च कर्मसु ।
तत्सर्वं सफलं प्रोक्तं लक्षकोटिगुणं ध्रुवम् ॥१६८॥

लिङ्गदर्शनवत्पुण्यं भवेद्रुद्राक्षदर्शनात् ।
तत्तु कोटिशतं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥१६९॥

शिरसा धारणात्कोटिः कर्णयोर्दशकोटयः ।
गले बद्ध्वा कोटिशतं मूर्द्धनि कोटिसहस्रकम् ॥१७०॥

अयुतं चोपवीतं च लक्षकोटिर्भुजद्वये ।
अप्रमेयफलं हस्ते सुरुद्राक्षधरो भवेत् ॥१७१॥[1]

---

१. इतः परं ख. पुस्तके विशेष :—

उमासंवादे— उच्छिष्टो वा विकर्मस्थः संलिप्तः सर्वपातकैः ।
नाऽसौ लिप्यति पापेन रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥१॥
लक्षन्तु स्पर्शने पुण्यं कोटिर्भवति चालनात् ।
दशकोटिसहस्राणि धारणाल्लभते फलम् ॥२॥
लक्षकोटिसहस्रस्य लक्षकोटिशतस्य च ।
जपे तु लभते पुण्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३॥

लैङ्गे वसिष्ठे—

खादन्मांसं पिबन्मद्यं सङ्गच्छन्नन्त्यजादिभिः ।
सद्यो भवति पूतात्मा रुद्राक्षे शिरसि स्थिते ॥१७२॥

स्कन्दपुराणे—

रुद्राक्षं कण्ठमाश्रित्य श्वाऽपि वा म्रियते यदि ।
सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किम्पुनर्मानुषादयः ॥१७३॥

उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नरो रुद्राक्षधारणात् ॥१७४॥

रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयन् भक्तिवर्जितः ।
पापकर्माऽपि यो नित्यं रुद्रलोके महीयते ॥१७५॥

शैवपुराणे—

अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम् ।
कुर्याद्विप्रस्तु यो मौढ्यान्नाऽसावाप्नोति तत्फलम् ॥१७६॥

वसिष्ठलैङ्गे—

रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने ।
सङ्कीर्णा 'सा भवे'[1] द्ब्रह्मंस्तेषां वंशपरम्परा ॥१७७॥

तन्त्रान्तरे—

अन्योन्यसमरूपाणि [2]नाऽतिस्थूलकृशानि वै ।
कीटादिभिरदुष्टानि न जीर्णानि नवानि वै ॥१७८॥

स्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे—

अभक्तो वाऽपि भक्तोऽपि नीचो नीचतरोऽपि वा ।
रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥१७९॥

रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ।
महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥१८१॥

सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥१८१॥

१. '–' चिह्नगतोंऽशः क. पुस्तके नास्ति । २. ख. तानि० ।

भक्त्या सम्पूजितो नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः ।
दरिद्रं वाऽपि कुरुते राजराजसमन्वितम्[1] ॥१८२॥

मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैदूर्यकाञ्चनैः ।
समेतां धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥१८३॥

केवलान्वाऽपि रुद्राक्षान् यथालाभं बिभर्त्ति यः ।
तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥१८४॥

रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोऽनन्तफलप्रदः ।
अरुद्राक्षो जपः पुंसां तावन्मात्रफलप्रदः ॥१८५॥

यस्याङ्गे नाऽस्ति रुक्षाक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्डरहितो यदि ॥१८६॥

रुद्राक्षं मस्तके बद्ध्वा शिरःस्नानं करोति यः ।
गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नाऽत्र संशयः ॥१८७॥

शिवरहस्ये —

विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ।
स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१८८॥

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥१८९॥

त्रैयम्बकादिमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ।
यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि षण्मुख ॥१९०॥
तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति ।

॥ अथ मातृकाक्षरमयो माला निरूप्यते ॥

सारसङ्ग्रहे—

अकारादिक्षकारान्तैर्विन्दुवन्मातृकाक्षरैः ।
अनुलोमविलोमस्थैः क्लृप्तया वर्णमालया ॥१९१॥

प्रत्येकं वर्णयुङ्मन्त्रा जप्ताः स्युः क्षिप्रसिद्धिदाः ।
वैरिमन्त्रा अपि नृणां सुसिद्धाद्यास्तु किम्पुनः ॥१९२॥इति।

---

१. ख. राजा राज० ।

तत्प्रकारमाह कुलमूलावतारे—

ब्रह्मनाडीगतानादिक्षान्तवर्णान् विभाव्य च ।
[1]अर्णबिन्दुयुतं कृत्वा स्वेष्टमन्त्रं जपेत्सुधीः १६३॥
अकारादिषु संयोज्य तथा कादिषु च क्रमात् ।
क्षार्णं मेरुमथो तत्र कल्पयेज्जगदीश्वरि ॥१६४॥
तदा लिपिर्भवेदक्षमालार्द्धशतसंख्यया ।
अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वार्थसाधकः ॥१६५॥
क्षकारं मेरुसंस्थाने लकरादिविलोमतः ।
एकैकान्तरितं मन्त्रं जपेदेवं फलप्रदम् ॥१६६॥इति ।

अत्राऽष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा यदा जपः कार्यस्तदा 'वर्गाष्टकविभेदेन भवेदष्टोत्तरं शतमि'ति अक्षमालाशब्दस्त्वत्रैव मुख्यः । उक्तञ्च—

शारदातिलके—

आदिक्षान्तार्णयोगित्वादक्षमालेति कीर्त्तिता ।इति।

ज्ञानार्णवेऽपि—

अकारः प्रथमे देवि क्षकारोऽन्त्यततः परम् ।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी ॥१६७॥इति।

अत्र वर्गाष्टकजपस्तूद्दिष्टशतादिसंख्यावसाने कार्यः । तदुक्तम्—

मातृकार्णवे—

आरभ्याऽकारमादौ मनसि परिजपेन्मातृकां सावसानां,
धृत्वा तत्राऽवसानं पुनरपि च पठेदान्तमेवाऽवरोहे ।
लान्तानष्टौ च वर्गांस्तदनु परिजपेद्भूय एवाऽवसाने,
ह्यान्तं संहारमुक्तं पशुपतिगदिता यामले मालिकेयम् ॥१६८॥

धृत्वा मेरुस्थाने, अवसानं क्षकारं, लान्तान् क च ट त प य श-लाख्यान्, तदनु उद्दिष्टसंख्यासमाप्त्यनन्तरम्, अवसाने उद्दिष्टशतादिसंख्यावसाने, एवाऽवधारणे ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ पञ्चदशस्तरङ्गः ॥१५॥

---

१. ख. अर्णं बिन्दुयुतं ।

[षोडशस्तरङ्गः

॥ अथ मालायाः सूत्राणि ॥

योगिनीतन्त्रे—

पट्टसूत्रकृता माला देव्याः प्रीतिकरी सदा ।
कार्पासैर्वैष्णवी माला पद्मसूत्रैरथाऽपि वा ॥१॥

ऊर्णाभिर्वाल्कलैर्वाऽपि शैवी माला प्रकीर्त्तिता ।
कार्पाससूत्रैरन्येषां विदध्याज्जपमालिकाम् ॥२॥

कार्पाससूत्रे तु विशेषस्तत्रैव ।

ततो द्विजेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं ग्रन्थिवर्ज्जितम् ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य सूत्रं प्रक्षाल्य यत्नतः ॥३॥

सनत्कुमारीये—

कार्पासनिर्मितं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
तच्च विप्रेन्द्रकन्याभिर्निर्मितं च सुशोभनम् ॥४॥

शुक्लं रक्तं तथा कृष्णं पट्टसूत्रमथाऽपि वा ।
शान्तिवश्याभिचारेषु मोक्षैश्वर्य्यजयेषु च ॥५॥

शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णवर्णेषु च क्रमात् ।
सर्वेषामेव वर्णानां रक्तं सर्वेप्सितप्रदम् ॥६॥

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्रथयेच्छिल्पशास्त्रतः ।
एकैकंमातृकावर्णं सतारं प्रजपन्सुधीः ॥७॥

मालामादाय सूत्रेण ग्रथयेन्मध्यमध्यतः ।
ब्रह्मग्रन्थिं विधायेत्थं मेरुं च ग्रन्थिसंयुतम् ॥८॥
ग्रथयित्वा पुरो मालां ततः संस्कारमाचरेत् ।

एकवीरकल्पे—

मातृकामन्त्रतो ग्रन्थिं विद्यया वाऽथ कारयेत् ।
सुवर्णादिगुणैर्वाऽपि ग्रथयेत्साधकोत्तमः ॥९॥

ब्रह्मग्रन्थिं ततो दद्यान्नागपाशमथाऽपि वा ।
कवचेनाऽथ बध्नीयान्मालां ध्यानपरायणः ॥१०॥

सर्वशेषं ततो मेरुं सूत्रद्वयसमन्वितम् ।
ग्रथयेत्तारयोगेन बध्नीयात्साधकोत्तमः ॥११॥
एवं निष्पाद्य देवेशि प्रतिष्ठां तु समाचरेत् ।

तन्त्रान्तरे—

उच्चाटने मार्क्कटमेव सूत्रं
लोहस्य सूत्रं खलु मारणे तु ।
पट्टस्य सूत्रं तु महद्वशीये
कार्प्पाससूत्रं खलु सर्वसिद्धये ॥१२॥

॥ **अथ मालायाः संस्कारकालः** ॥ तत्र—

योगिनीतन्त्रे—

द्वादश्यां वैष्णवी माला कर्त्तव्या साधकोत्तमैः ।
मन्त्रज्ञैर्विष्णुमन्त्रेण दिव्यभागे प्रयत्नतः ॥१३॥

दिव्यभागे पूर्वाह्णे ।

शक्तीनामपि कर्त्तव्या भुक्त्वा रात्रौ यथाविधि ।

भोजनं तु दिवस एव विधेयम् ।

अष्टम्यां च नवम्यां च चतुर्द्दश्यां तथैव च ।
त्रयोदश्यां तथा कुर्याच्छिवस्याऽपि सुरेश्वरि ॥१४॥

चतुर्थ्यां गणनाथस्य मध्याह्ने भास्करस्य तु ।
पूर्वाह्णे देवि कर्त्तव्या सप्तम्यां जगदीश्वरी ॥१५॥इति ।

कालोत्तरे स्कन्दपुराणे—

देवदेव महादेव सृष्टिस्थितिलयेश्वर ।
रुद्राक्षैर्जपमाला तु कथं कार्या महेश्वर ॥१६॥

संस्कारश्च[1] कथं तात कर्त्तव्यः कीदृशं फलम् ।

ईश्वर उवाच—

शृणु षण्मुख वक्ष्यामि रुद्राक्षैः क्रियते यथा ।
जपमाला विधानेन येन सा जपसिद्धिदा ॥१७॥

---

१ ख. संस्कारस्य ।

एकवक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च चतुर्वक्त्रैश्च पञ्चभिः ।
षड्वक्त्रैर्वाऽथ कर्त्तव्या मिथो मिश्रांस्तु वर्ज्जयेत् ॥१८॥

मुखे मुखं तु कर्त्तव्यं मुखं मूले विवर्ज्जयेत् ।
रुद्राक्षस्योन्नतं प्रोक्तं मुखं पृष्ठं तु निम्नकम् ॥१९॥

धात्रीफलप्रमाणेन श्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ।
वदराण्डप्रमाणेन चणकान्मध्यमाधमे ॥२०॥

ऊर्ध्ववक्त्रं तु मेर्वाख्यं[1] कर्त्तव्यं तन्न लङ्घयेत् ।
नवत्रितन्तुना चैतद् ग्रथनीयमसंस्पृशन् ॥२१॥

असंस्पर्शस्त्वन्योन्यस्य । उत्तरतन्त्रे—

एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः ।
आद्यं स्थूलं ततस्तस्मान्न्यूनं न्यूनतरं तथा ॥२२॥

विन्यसेत्क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा च सा यतः ।
ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात्प्रतिबीजं यथाविधि ॥२३॥

अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम् ।
त्रिरावृत्याऽथ मध्येनैवाऽर्द्धवृत्याऽन्तदेशतः ॥२४॥
ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्त्तः स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञितः ।

तथा कालोत्तरे—

एकभक्तं विधायाऽदौ साधको ग्रथयेत्स्वयम् ।
कृतनित्यक्रियः[2] शुद्ध उक्तेष्वक्षेषु मन्त्रवित् ॥२५॥
यथाकामं यथालाभमक्षाण्यानीय[3] यत्नतः ।

यत्नतः वर्णसाङ्कर्यकिरणे यत्नयुक्तः ।

अन्योन्यसमरूपाणि नाऽतिस्थूलकृशानि च ।
कीटादिभिरदुष्टानि न जीर्णानि नवानि च ॥२६॥
गव्यैस्तु पञ्चभिस्तानि प्रक्षाल्य तु पृथक्पृथक् ।

आदौ पूर्वदिने, अक्षान् रुद्राक्षान्, यथाकामं वक्त्रभेदे फलभेदश्रवणात् । शक्तिव्यतिरिक्तमेकभक्तं ज्ञेयम् । पञ्चगव्यन्तु —

१. ख. मेवाख्यं । २. ख. कृतनित्यक्रिया । ३. ख. ०मक्षाण्यौनीय ।

नृसिंहपुराणे—

दुग्धकाञ्चनवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।
गोमूत्रं तावम्रर्णाया नीलायाश्च भवेद्यदि ॥२७॥

घृतं वै कृष्णवर्णाया इत्येतत्पञ्चगव्यकम् ।
गवां वर्णास्तु सुलभाः सन्ति देशेषु यत्र च ॥२८॥

तत्र वर्णविभागेन पञ्चगव्यानि चाऽऽहरेत् ।
वर्णालाभे न दोषोऽस्ति मात्राहीनन्तु वर्ज्जयेत् ॥२९॥

गोशकृद्द्विगुणं मूत्रं सर्पिर्द्द्याच्चतुर्गुणम् ।
क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥३०॥

गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णऋचा दधि ॥३१॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥इति।[1]

प्रक्षाल्येत्युक्तं वृणोति[2] स्वयमेव ।

सद्योजातेति मन्त्रेण क्षालयेत्पञ्चगव्यकैः ॥३२॥

पञ्चगव्यैर्ज्जलैश्च ।

'क्षालयेत्पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः ।'

इति तत्वसारवचनात् ।

चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत् ॥३३॥

धूपयेदप्यघोरेण कृष्णागुरुसुगुग्गुलैः ।
तत्पुरुषाख्यमन्त्रेण लेपयेच्चन्दनादिभिः ॥३४॥

आदिपदेन कर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादीनि गृह्यन्ते ।

मन्त्रयेत्पञ्चमेनैव प्रत्येकं तु शतं शतम् ।
मेरुं च पञ्चमेनैव तथाऽघोरेण मन्त्रयेत् ॥३१॥

---

१. इतः परमयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—
शौनकः— वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः ।
दध्नि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥१॥

२. ख. विवृणोति ।

शैवागमे—

अश्वत्थपत्रनवकैः पद्माकारेण कल्पयेत् ।
सूत्रं मणींश्च गन्धाद्भिः क्षालितांस्तत्र निक्षिपेत् ॥३६॥

तारं शक्तिं मातृकां च सूत्रे रुद्राक्षकेष्वथ ।
विन्यस्य पूजयेदाज्यैर्जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥३७॥

मणिमेकैकमादाय सूत्रे तत्र तु योजयेत् ।
गोपुच्छसदृशी कार्या एकाग्रा वा समेरुका ॥३८॥

एकाग्रा समरूपा ।

मुद्राष्टकं दर्शयित्वा प्रत्येकं पूजयेत्क्रमात् ।
ग्रथितं पञ्चभिर्मन्त्रैः पूर्ववच्च यथा शिवः ॥३९॥

मन्त्रैः सद्योजातादिभिः पञ्चभिः । होमोऽप्येभिरेव मन्त्रैः पूजाहोमयोरेकमन्त्रस्याऽवश्यकत्वात् । मुद्राष्टक त्वावाहनादि अनन्तरं पूजाभिधानात् । तथा—

रुद्राक्षाणामयं प्रोक्तः संस्कारः श्रुतिदेशितः ।
इतरेषु तु तन्त्रोक्तः कर्त्तव्यो गुहसाधकैः ॥४०॥इति ।

॥ **अथाऽन्येषामक्षविशेषाणां मालायाः** ॥ **प्रतिष्ठाविधिः**—

योगिनीतन्त्रे—

उक्तेष्वक्षेषूक्तसूत्रैर्ग्रथितां साधकोत्तमः ।
मालां निधाय वै पात्रे क्वचिद् गन्धादिचर्चिताम् ॥४१॥

भूशुद्ध्यादिकां पूजां समाप्य तत्र पूजयेत् ।
गणेशसूर्यविष्ण्वीशदुर्गाश्चाऽऽवाह्य मन्त्रवित् ॥४२॥

पञ्चगव्येऽथ तां क्षिप्त्वा ह्रौं मन्त्रेण च मन्त्रवित् ।
तस्मादुत्तोल्य तां मालां स्वर्णपात्रे निधाय च ॥४३॥

पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात् ।
तोयधूपान्तरैः कृत्वा पञ्चामृतविधिं बुधः ॥४४॥

क्रमात्तत्रैव संस्थाप्य स्थापयेच्छीतले जले ।
ततश्चन्दनसौगन्धिकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥४५॥

तां समालिख्य ह्सौं मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् ।
तस्यां नवग्रहांश्चाऽपि दिक्पालांश्च प्रपूजयेत् ॥४६॥
ततः सम्पूज्य च गुरुं गृह्णीयान्मालिकां शुभाम् ।

भैरवीतन्त्रे—

आदौ गणपतिं देवं सूर्यं विष्णुमुमापतिम् ।
दुर्गां च पूजयेद्विद्वान्मालायां सुसमाहितः ॥४७॥
पञ्चगव्ये क्षिपेन्मालां प्रासादेनाऽभिमन्त्रिताम् ।

प्रासादेनात्रैऽव वक्ष्यमाणप्रसादपरामन्त्रेण ।

ततस्तूत्तोल्यतां मालां स्थापयेद् हेमपात्रके ॥४८॥

पञ्चामृतेन संस्नाप्य शीतलेन जलेन च ।
चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥४९॥

अभिषेकं ततः कृत्वा मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
प्राणं जीवसमारूढमौकारस्वरभूषितम् ॥५०॥

बिन्दुनादसमायुक्तं मन्त्रराजं प्रविन्यसेत् ।
नवग्रहान्पूजयित्वा ततो दिक्पालपूजनम् ॥५१॥

तिलेन घृतयुक्तेन शक्तितो होमयेत्ततः ।
स्वर्णं तु दक्षिणां दद्यात्ततो विप्रांस्तु तोषयेत् ॥५२॥

दक्षिणामाचार्याय, अनेन प्रसादेन, विन्यसेत् अष्टोत्तरशतं जपेदित्यर्थः । प्राणो हकारः, जीवः सकारः, स्वर्णपात्राभावेऽश्वत्थपत्रं ग्राह्यमुक्तयोगिनीतन्त्र-वचनात् प्रकारान्तरन्तु—

कुब्जिकातन्त्रे—

शिल्पिनं पूजयेदादौ वस्त्रगन्धानुलेपनैः ।
स हृष्टः कारयेन्मालां विशुद्धां स्वर्णरूपिणीम् ॥५३॥

यथायोग्यं वेधवतीं मालां कुर्याद्विलक्षणः ।
वर्णमानेन सा कार्या पञ्चगव्ये त्र्यहं क्षिपेत् ॥५४॥

वर्णमानेन मातृकावर्णमानेन तत्संख्ययेत्यर्थः । एतेन शतसंख्यैरक्ष-माला कार्येति प्राप्यते ।

सूत्रं चाऽपि चतुर्थेऽह्नि क्षालयेदस्त्रमन्त्रकैः ।
समानवर्णसूत्रेण ग्रथयेद् हृदयाणुना ।।५५।।

सुवर्णादिगुणैर्वाऽपि ग्रथयेत्साधकोत्तमः ।
ब्रह्मग्रन्थि ततो दद्यान्नागपाशमथाऽपि वा ।।५६।।

[1]कवचेनाऽवबध्नयीान् मालां ध्यानपरायणः ।
सर्वशेषे ततो मेरुं सूत्रद्वयसमन्वितम् ।।५७।।

ग्रथयेत्तारयोगेन बध्नीयात्साधकोत्तमः ।
एवं निष्पाद्य देवेशि प्रतिष्ठां च समाचरेत् ।।५८।।
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा यथाभागविधिक्रमात् ।

मण्डलं देवपूजाचक्रम् ।

पूजयित्वा यथान्यायमिष्टदेवमनुक्रमात् ।।५९।।

न्यासपूर्वं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जुहुयाच्च दशांशेन यस्य देवस्य यत्प्रियम् ।।६०।।

यत्प्रियमित्यनेन पुरश्चरणाङ्गहोमे यद्द्रव्यं यस्य देवस्योक्तं तेन होमयेदित्युक्तम् ।

योगिनीतन्त्रे—

हेमकर्मण्यशक्तश्चेद्द्विगुणं जपमाचरेत् ।

तथा—

ततो मण्डलमध्ये तु तां मालां स्थापयेद् बुधः ।
अस्त्रमन्त्रं ततो न्यस्य मूलमन्त्रं ततो न्यसेत् ।।६१।।

अङ्गानि तानि विन्यस्य देववत्परिचिन्तयेत् ।
अभेदरूपमासाद्य मालां कुर्यात्तदात्मिकाम् ।।६२।।

ततो बलिं यथान्यायं दद्यात्तैः साधकोत्तमः ।
एवं प्रतिष्ठामापाद्य मालायामिष्टदेवताम् ।।६३।।

आचार्यं पूजयेन्मन्त्री शिल्पिनं च यथाविधि ।
नाऽन्यन्मन्त्रं जपेत्तत्र यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।।६४।।

---

१. ख. कवचेनाथ० ।

अक्षादिर्जप्तव्यमन्त्रस्य[1] ग्राह्यः । बलिं मालायाः, तैः होमद्रव्यैः ।

तथोत्तरतन्त्रे—

दृढं सूत्रं नियुञ्जीत जपे त्रुट्यति नो यथा ।
जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रथयित्वा शतं जपेत् ।।६५।।

शैवागमे—

यदा सन्त्रुटचते माला ग्रथयित्वाऽथ पूर्ववत् ।
प्रतिष्ठितायां तस्यां तु मन्त्रं जप्यादनन्यधीः ।।६६।।[2]

तन्त्रान्तरे—

येन प्रतिष्ठिता माला तमेव तु मनुं जपेत् ।
अन्यमन्त्रजपो देवि न कार्यः कर्हिचिद् बुधैः ।।६७।।

तन्त्रान्तरे[3]—

अक्षमालां गुरोर्लब्ध्वा तदभावे स्वनिर्मिताम् ।
गोपयेत्सर्वकर्मान्ते यदीच्छेत्सिद्धिमुत्तमाम् ।।६८।।

जपकाले च गोप्तव्यमक्षसूत्रं तु षण्मुख ।
परदृष्टिगतं सूत्रं सर्वथा निष्फलं भवेत् ।।६९।।

उत्तरतन्त्रे—

जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ।
निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ।।७०।।

इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ।
ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।।७१।।

---

१. ख. जपनीयमन्त्रस्य । २. ख. पुस्तकेऽतःपरं विशेषः—

दैव्यागमे नित्यजपे - सूत्रे केवलविच्छिन्ने जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
दशवारं जपेन्मन्त्री जीर्णे विगलिते करात् ।।१।।
अक्षसूत्रं कराद्भ्रष्टं क्षालयेद् गन्धवारिणा ।
सप्तवारं जपेन्मन्त्रं भ्रष्टपापविशुद्धये ।।२।।
पुरश्चरणजपे तु—प्रमादात् पतिते हस्तान्मनुमष्टोत्तरं जपेत् ।
तथा षटखटाशब्दादिके छिन्ने सहस्रकम् ।।३।।

३. ख पुस्तके नास्ति ।

चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तमान्मे वरदा भव ।
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्दक्षिणे करे ॥७२॥

बीजं गाणपतं पूर्वमुच्चार्य्य तदनन्तरम् ।
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन च ॥७३॥

मण्डलस्यान्तर्निधाय सव्यहस्तगतां वाऽभ्युक्ष्य पूजयेदिति सम्बन्धः ।

तथा—

जपं समारभेत्पश्चात्पूर्ववद् ध्यानमास्थितः ।
हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयन्मनसा शिवम् ॥७४॥

चिन्तयित्वा गुरुं मूर्द्धनि यथावर्णादिकं भवेत् ।
मन्त्रं गुरुं ततो ध्यात्वा पीतवर्णं हिरण्मयम् ॥७५॥

महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ।
आज्ञाचक्रे ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चाऽत्मनः ॥७६॥

देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा सुषुम्णावर्त्मना तनुम् ।
तत्वस्वरूपमेकं तद्यच्चक्रं प्रतिलम्बयेत् ॥७७॥

षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ।
लम्बयेन्मूलमन्त्रेण वाऽऽदिषोडशचक्रकम् ॥७८॥

आदिषोडशचक्रस्थां साधकानन्ददायिनीम् ।
चिन्तयन् साधको देवीं जपकर्म समारभेत् ॥७९॥

भ्रुवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते ।
तत्प्रान्तं त्रिपथस्नानं[1] षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ॥८०॥

रक्तं च कुलयोगज्ञैराज्ञाचक्रमितीष्यते ।
कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ॥८१॥

सुषुम्णेडापिङ्गलानां षट्कोणं तत्षडङ्गुलम् ।
तत्षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ॥८२॥

त्रयाणामपि नाडीनां हृदये चैकता भवेत् ।
तत्स्थानं षोडशारं स्यात्समाङ्गुलप्रमाणतः ॥८३॥

---

१. ख. त्रिपथस्थानं ।

तत्पीतमुक्तं योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम् ।
ध्येयानामथ मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ॥८४॥
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति कथ्यते ।

पश्चात्प्रणवोच्चारणात् । तदुक्तं तत्रैव—

निःसेतु च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्प्पति ।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात्क्षरति यज्वनाम् ॥८५॥

तस्मात्सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयः ।
पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्म समाचरेत् ॥८६॥

मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः ।
चतुर्द्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसंज्ञकः ॥८७॥
स चाऽनुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते ।

अत्र शिवमित्युपलक्षणं सर्वपूजासु सङ्गतमिति स्वयमभिधानात् ।

[1]तथा—

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्दक्षिणे करे ।
मध्यमाया मध्यभागे वर्ज्जयित्वा तु तर्ज्जनीम् ॥८८॥

अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युता या नम्रभावतः ।
स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥८९॥

प्रत्येकं बीजमादाय अङ्कादूर्द्ध्वेन भैरव ।
प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठौ तु चालयेत् ॥९०॥

मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्न हि परस्परम् ।
पूर्वं जपप्रयुक्तेन चाऽङ्गुष्ठाग्रेण भैरव ॥९१॥

पूर्वबीजं जपन्यस्तु परबीजं च संस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन भवेत्तस्य निष्फलः स जपः सदा ॥९२॥

---

१. इतः पूर्वमयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—

कुलार्णवे—जातसूतकमादौ स्यादन्ते च मृतसूतकम् ।
सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्रः स न सिद्धयति ॥१॥
आद्यन्तरहितं कृत्वा मन्त्रमावर्त्तयेद् धिया ।
सूतकद्वयनिर्मुक्तो मन्त्रः स्यात् सर्वसिद्धिदः ॥२॥

मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।
देवीं विचिन्तयञ्जप्यं कुर्याद्वामेन न स्पृशेत् ॥९३॥

अङ्कादूर्द्ध्वेनाऽङ्गुष्ठाग्रेणेत्यर्थः । मालाबीजं तत्सम्बन्धी मणिः ।

तन्त्रान्तरे—

मध्यमायां न्यसेन्मालां श्रेष्ठेनाऽऽवर्त्तयेत्क्रमात् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदः सोऽयं मातृकागणनक्रमः ॥९४॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु जपेदुत्तमकर्मणि ।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां तु जपेदाकृष्टिकर्मणि ॥९५॥

तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगाद्विशेषोच्चाटने जपः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकाभ्यां तु जपेन्मारणकर्मणि ॥९६॥
जपान्यकाले तां मालां पूजयित्वा च गोपयेत् ।

शैवागमे—

तर्ज्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेन्न विधूनयेत् ।
न स्पृशेद्वामहस्तेन करभ्रष्टां न कारयेत् ॥९७॥

अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठेनाऽन्यमक्षं न संस्पृशेत् ।
जपकाले सदा विद्वान्मेरुं नैव विलङ्घयेत् ॥९८॥

परिवर्त्तनकाले च सङ्घट्टं नैव कारयेत् ।
कलिः खटखटाशब्दे दोलमाने चलन्मतिः ॥९९॥

चलितेनैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसम्भवः ।
हस्तच्युते महाविघ्नः सूत्रच्छेदेऽपि नश्यति ॥१००॥

चलिते मध्यमाया अङ्गुल्यन्तरगते, स्फुटिते मणौ, सूत्रछेदे, गुणछेदे ऽपीत्यर्थः । तथा—

काशे क्षुते च जृम्भायामेकमावर्त्तनं त्यजेत् ।
प्रमादात्तर्ज्जनीस्पर्शो भवेदावर्त्तनं त्यजेत् ॥१०१॥

आवर्तनं मन्त्रस्य ।

जपे निषिद्धसंस्पर्शे क्षालयित्वा पुनर्ज्जपेत् ।

योगिनीतन्त्रे—

सर्वास्वपि च मालासु मेरुः पार्श्वे विधीयते ।
न स्पृशेत्तं कदाचित्तु स्पृष्टे ह्यावर्त्तनं पुनः १०२॥

न स्पृशेत्तर्ज्जन्येति सर्वत्र तर्ज्जनीस्पर्शस्यैव निषेधादन्याङ्गुलीनामस्पर्शासम्भवाच्चेति । **योगिनीतन्त्रे—**

·············जपान्ते शिरसि क्षिपेत् ।

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम ।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा ॥१०३॥

पुष्करं शिखिबीजस्थं सूक्ष्मसूक्ष्मान्वितं भवेत् ।
आकाशशशिसंयुक्तं सिद्धचै हृदयसंयुतम् ॥१०४॥

एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो मालायाः[1] परिकीर्त्तितः ।
ग्रहणे स्थापने चैव पूजने विनियोजयेत् ॥१०५॥

पुष्करं हकारः, शिखी रेफः, सूक्ष्मसूक्ष्मा ईकारः, आकाशशशिभ्यां विन्दर्द्धचन्द्राभ्यां युतं, सिद्धचै स्वरूपं, हृदयं नमः ।

अथ करमाला नारदपञ्चरात्रे—

अथाङ्गुलिभिरेवाऽपि जपकर्म समारभेत् ।

प्रपञ्चसारेऽपि—

पद्मासनः प्राग्वदनोऽप्रलापी,
तन्मानसस्तर्ज्जनिवर्ज्जिताभिः ।
अक्षस्रजा वाऽङ्गुलिभिर्ज्जपेद्वा,
नाऽतिद्रुतं नाऽतिविलम्बितञ्च ॥१०६॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि

जपस्य गणनां कुर्यादथवाऽङ्गुलिपर्वभिः । इति ।

तत्प्रकारमाह श्रीभैरवीतन्त्रे—

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठानुक्रमेण तु ।
मध्यमामूलपर्यन्ता करमाला प्रकीर्त्तिता ॥१०७॥

---

१. ख. मालाद्याः ।

गौतमोऽप्याह—

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठमध्यमाभिर्जपेत् सदा । इति ।

दाऽनामामध्यमूल-कनिष्ठामूलमध्याग्रा-ऽनामाग्र-मध्यमाग्रमध्यमूलपर्यन्तमिति नवसु पर्वसु गणनायां कृतायां नववारं मन्त्रजपो भवति । एवं द्वादशवारं पुनः पुनरावर्त्तनेनाऽष्टोत्तरशतजपो भवति । द्वादशोत्तरशतावृत्याऽष्टोत्तरसहस्रजपो भवति । इत्थमयुतादिष्वप्यूहनीयम् । वस्तुतस्तु तन्त्रान्तरदर्शनात्तर्ज्जनीसहिताङ्गुलिभिरेव जपः कार्यः । यदुक्तं **कुलमूलावतारे—**

अथ वक्ष्ये महेशानि जपस्य गणनाफलम् ।
अङ्गुलीजपसंख्याजं फलमेकगुणं स्मृतम् ॥१०८॥

रेखयाऽष्टगुणं विद्यात्पुत्रञ्जीवदशाधिकम् ।
शतं स्याच्छङ्खमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम ॥१०९॥

स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ॥११०॥

कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत् ।
श्वेतपद्माक्षमालाभिर्ज्जपे स्यादमितं फलम् ॥१११॥

अङ्गुलीभिर्जपं कुर्वन् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्ज्जपेत् ।
अङ्गुष्ठेन विना जप्तं विफलं भवति प्रिये ॥११२॥

पर्वभिर्वाऽङ्गुलीनान्तु जपेदनुदिनं प्रिये ।
मध्यमानामिकामध्यपर्वद्वयमिह[1] प्रिये ॥११३॥

मेरुम्प्रकल्प्य तं कुर्वन् प्रदक्षिणमनुक्रमात् ।
अनामामूलपर्वादिकनिष्ठानुक्रमेण तु ॥११४॥

तर्ज्जन्यग्रादितो देवि मध्यामूलावसानकम् ।
गणयेच्च क्रमेणैवं किञ्चित्सङ्कोचयेत्तलम् ॥११५॥

अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत जपकाले महेश्वरि ।
अङ्गुलीनां वियोगे तु छिद्रेषु स्रवते जपः ॥११६॥

उल्लङ्घ्य गणनां देवि न मन्त्रं प्रजपेत् क्वचित् ।
यतस्तज्जपमीशानि वलाद् गृह्णन्ति राक्षसाः ॥११७॥

---

१. ख. ०द्वयमिति ।

अथवा मध्यमामध्यमूलपर्वद्वयं प्रिये ।
मेरुं कृत्वा जपेद्देवि तर्ज्जनीमूलकावधि ॥११८॥
अनामामध्यपर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमेण वै । इति ।

अत्राऽङ्गुलिजपो रेखाजपः पर्वजपश्चेति त्रिविधः करमालाजपः । तत्र कनिष्ठाद्यङ्गुष्ठपर्यन्तं पुनर्गणनाऽङ्गुलिजपः, कनिष्ठाद्यङ्गुलिगतरेखाभिर्जपो रेखाजपः, पर्वजपस्तु प्रोक्तलक्षण एवेति ।

॥ अथ जपः[1] ॥ तत्र—

कुम्भसम्भवः—

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य शश्वदावर्त्तनं हि यत् ।
अन्तरङ्गाक्षराणां च न्यासपूर्वो जपः स्मृतः ॥११९॥

अङ्गेति सुतीक्ष्णसम्बोधनम् । तद्भेदा **वायवीयसंहितायाम्—**

जपः स्यादक्षरावृत्तिः स उच्चोपांशुमानसः ।
य उच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥१२०॥

मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत् ॥१२१॥

किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।
जिह्वाजपः स विज्ञेयः केवलं जिह्वया जपः ॥१२२॥

धिया यदक्षरश्रेणिं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ।
उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तो मानसो जपः ॥१२३॥

उच्चैर्जपो विशिष्टः स्याद्यज्ञादेर्दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥१२४॥

तन्त्रान्तरेऽपि—

मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगतमानसः ।
न द्रुतं न विलम्बं च जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥१२५॥

---

१. इतः परं ख. पुस्तके विशेषः—
निबन्धे—जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ना विपुलान् भोगान् दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥१॥

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः ।
धिया यदक्षरश्रेणिं[1] वर्णस्वरपदात्मिकाम् ॥१२६॥
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ।
जिह्वोष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागतमानसः ॥१२७॥
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।

विशुद्धेश्वरतन्त्रे—

निजकर्णागोचरो यो मानसः स जपः स्मृतः ।[2]
[3][उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्त्तितः ॥१२८॥
निगदस्तु जनैर्वेद्यस्त्रिविधो जप ईरितः ।

तन्त्रान्तरे—

उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः ।
उत्तमो मानसो देवि त्रिविधः कथितो जपः] ॥१२९॥

[4]Xतन्त्रान्तरे—

अशुचिर्वा शुचिर्वाऽपि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि ।
मन्त्रैकशरणो विद्वान्मनसैव समभ्यसेत् ॥१३०॥
न दोषो मानसे जापे सर्वदेशेऽपि सर्वदा ।
जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत् ॥१३१॥

नारदपञ्चरात्रे—

वाचकः सर्वकार्येषु उपांशुः सर्वसिद्धिषु ।
मानसो मोक्षकार्येषु ध्यायेद्देवं च सर्वतः ॥१३२॥X

महाकपिलपञ्चरात्रे—

एकचित्तः प्रसन्नात्माऽप्यक्षसूत्रकरः शुचिः ।
भुग्नग्रीवोन्नतः शान्तः कण्डून्मीलनवर्ज्जितः ॥१३३॥
सविसर्गं समात्रञ्च सबिन्दुं साक्षरं स्फुटम् ।
न द्रुतं नाऽतिविश्रान्तं क्रमान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ॥१३४॥

---

१. ख. ०श्रेणि २. इतः परमयमंशो विशेषः—
उत्तमो मानसो देवि त्रिविधः कथितो जपः ।
३. [–]कोष्ठबद्धोंऽशो नास्ति ख. पुस्तके ।
४. Xचिह्नान्तर्गतोंऽशः ख. पुस्तके वक्ष्यमाणात् 'फेत्कारिणीतन्त्रे' इत्यंशात्पूर्वमुल्लिखितोऽस्ति ।

नारदपञ्चरात्रे—

अक्षरादक्षरं यावत्सर्वदोषविवर्ज्जितम्[1] ।
विलम्बितं च नाऽतीव तथा स्पष्टपदोद्भवम्[2] ॥१३५॥

चित्तविक्षेपरहितमत्युत्कृष्टधियाऽन्वितम् ।
एवं कृत्वा जपं विप्र विनिवेद्यश्च यागवत् ॥१३६॥

फेत्कारिणीतन्त्रे—

'यथाशक्ति जपं कृत्वा प्राणायामत्रयं चरेत् ।'

नारदपञ्चरात्रे—

जपंतदनुकुर्वीत यथाशक्त्याऽयुतादिकम् ।
निवेदयेद्विभोस्तद्वद्वाक्कर्ममनसाऽन्वितम् ॥१३७॥

ॐ पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन् मन्त्रमूर्त्ते जनार्द्दन ।
गृहाणेमं जपं नाथ मम दीनस्य शाश्वत ॥१३८॥

इत्युक्त्वाऽर्घोदकं पुष्पं कृत्वा दक्षिणपाणिगम् ।
अग्रतो निक्षिपेद्विष्णोर्मूलमन्त्रेण नारद ॥१३९॥
मन्त्रात्मा भगवान् विष्णुरचिरात्सिद्धिदो भवेत् ।

शिवादावाह सोमशम्भुः—

मानसोपांशुभाष्याणां कुर्यादेकतमं जपम् ।
मूलस्याऽष्टशतं जप्त्वा न द्रुतं न विलम्बितम् ॥१४०॥

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ॥१४१॥ इति ।

भोगी श्लोकं पठित्वाऽमुं दक्षहस्तेन शम्भवे ।
मूलमन्त्रार्घतोयेन वरहस्ते निवेदयेत् ॥१४२॥

शिवधर्मे—

सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः ।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥१४३॥

---

१. ख. ०विवर्जितः । २. ख. स्पृष्टपदोद्भवम् ।

प्रसन्ना विपुलान्कामान्दद्यान्मुक्ति[1] च शाश्वतीम् ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सर्पाश्च भीषणाः ॥१४४॥

जपिनं नोपसर्प्पन्ति भयभीताः समन्ततः ।
यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युः प्रदिष्टानि तपांसि च ॥१४५॥

सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ।
माहात्म्यं वाचिकस्यैतज् जपयज्ञस्य कीर्त्तितम् ॥१४६॥
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः ।[2]

महाभारते—

सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञः प्रशस्यते ।
अहिंसया हि भूतानां जायतेऽसौ महाफलः ॥१४७॥

श्रीभगवद्वचनम्—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मी' ति ।

नारदः[3]—

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ॥१४८॥

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

लोभमात्सर्यरहितः कामक्रोधविवर्जितः ।
सर्वथा लभते सिद्धिमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥१४९॥

तत्र पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात्संसर्गं साधुभिस्तथा ।
स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा ॥१५०॥
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमन्त्रैः स्नायादनन्तरम् ।

मन्त्रार्णवे—

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनं चाऽऽर्यानसूयता ।
नित्यं त्रिषवणं स्नानं क्षुद्रकर्मविवर्ज्जितम् ॥१५१॥

---

१. ख. ०दद्या मुक्ति । २. एतदग्रे निम्नांशो विशेषो दृश्यते ख. पुस्तके—
कुलार्णवे—मनसा यत्स्मरेत्स्तोत्रं वचसा च मनुं जपेत् ।
उभयं निःफलं देवि भिन्नभाण्डोदकं यथा ॥१॥

३. ख. अथ विहितानि नारदः ।

नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्त्तनम् ।
नैमित्तिकार्च्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ।।१५२।।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ।

ब्रह्मचारित्वं तु अष्टविधमैथुनत्यागः । तदुक्तं **दक्षेण**—

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।।१५३।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाऽष्टलक्षणम् ।।१५४।।

अभिलाषपूर्वकं स्मरणकीर्त्तनप्रेक्षणानि निषिद्धानि, केलिः परिहासादि-बाह्यचेष्टा, गुह्यभाषणं सम्भोगार्थं रहोमन्त्रणं, सङ्कल्पो मानसं कर्म, अध्यवसायः सम्भोगनिश्चयः, त्रिषवणस्नानं तु शक्तेन विधेयम्, अशक्तेन तु द्विः सकृद्वाविधेयम् ।

स्नानं त्रिषवणं प्रोक्तमशक्त्या द्विः सकृच्चरेत् ।

इति **वैशम्पायनोक्तेः** । क्षुद्रकर्म तु **नारायणीयोक्तम्**—

दम्भद्वेषौ तथोत्साद उच्चाटो भ्रममारणे ।
व्याधिश्चेति स्मृतं क्षुद्रम्····················।।१५५।। इति ।

वैशम्पायनः—

अस्नातस्य फलं नाऽस्ति तथाऽतर्प्यंयतः पितॄन् ।
नाऽप्यतर्प्पयतो देवान्नाऽसत्यमभिजल्पतः ।।१५६।।

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

गुरुगोविप्रबालेषु दीनान्धकृपणेषु च ।
भवेदार्यमतिर्मन्त्री न च द्रोहं समाचरेत् ।।१५७।।
पश्चाद् गोभ्यः समभ्यर्च्य ग्रासं दद्यात्सुशोभनम् ।

गौतमः—

गोषु भक्तिः सदा कार्या गोषु शुश्रूषणं तथा ।
नित्यं गोषु प्रसन्नासु गोपालोऽपि[1] प्रसीदति ।।१५८।।
ततो गुरोः पादपद्मं पुष्पाञ्जलिभिरर्चयेत् ।
तस्मादाशीः सदा ग्राह्या ततः सन्तोषमाचरेत् ।।१५९।।

१. क. गोपालेऽपि ।

सन्तुष्टे तु गुरौ देवः सन्तुष्टो नाऽन्यथा भवेत् ।

तथा **श्रीभगवद्वाक्यम्**—

सन्तुष्टो हि गुरुर्यस्य तस्य तुष्टं जगत्त्रयम् ।
नाऽस्त्यसाध्यं जगत्यत्र सुप्रसन्ने गुरौ मुने ॥१६०॥
हृदि न्यसेद् गुरोर्वाक्यं न कदाचिद्विकल्पयेत् ।

श्रीकुलार्णवे—

शान्तः शुचिर्मिताहारो भूशायी भक्तमानसः ।
निर्द्वन्द्वः स्थिरधीर्मौनी संयतात्मा जपेत्सुधीः ॥१६१॥

विश्वासास्तिक्यकरुणाश्रद्धानियमनिश्चयैः ।
सन्तोषौत्सुक्यधर्मादिगुणैर्युक्तो जपेत्प्रिये ॥१६२॥

सुगन्धपुष्पाभरणवस्त्रादिभिरलङ्कृतः ।
तस्य हस्तगता सिद्धिर्नाऽन्यस्य जपकोटिभिः ॥१६३॥

तन्निष्ठस्तद्गतप्राणस्तच्चिन्तनपरायणः ।
तत्पदार्थानुसन्धानं कुर्वन्मन्त्रं जपेत्प्रिये ॥१६४॥

जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद् ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत् ।
जपध्यानादियुक्तस्य क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिद्ध्यति ॥१६५॥

॥ **अथ निषिद्धानि** ॥ तत्र—

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

नाऽप्रियं कस्यचिद् ब्रूयान्नाऽनृतं च कदाचन ।
न छायामाक्रमेद्विद्वान् बिभीतककरञ्जयोः ॥१६६॥

प्रयोगसारेऽपि—

बिभीतकार्क्ककारञ्जस्नुहीछायां न संश्रयेत् ।
तथा न कुर्यात्कस्यचित्किञ्चिन्न गृह्णीयाज्जपान्तरे ॥१६७॥

तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत मधु मांसं विवर्ज्जयेत् ।
स्त्रीषु सम्भाषणं नैव कुर्याद्देवि विमोहितः ॥१६८॥
न नग्नो न स्रग्गन्धाढ्यो गीतवाद्ये[1] विवर्ज्जयेत् ।

---

१. ख. गीतवादे ।

नग्नमाहाऽत्रिः ।

नग्नो मलिनवस्त्रः स्यान्नग्नश्चाऽर्द्धपटः स्मृतः ।
नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो रक्तपटस्तथा ॥१६९॥
द्विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नश्चाऽवस्त्र एव च ।

भविष्यपुराणे—

द्विकच्छः कच्छशेषश्च बहिःकच्छस्तथैव च ।
एककच्छः कच्छशून्यो नग्नः पञ्चविधः स्मृतः ॥१७०॥

देवलः—

'बहुवासा भवेन्नग्नो नग्नः कौपीनवाससा ।' इति ।

शाटचायनः—

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्च्चनम् ।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं चैव तर्प्पणम् ॥१७१॥

आसनारूढपादस्तु जानुनोर्ज्जङ्घयोस्तथा ।
कृत्वाऽवसक्थिको यस्तु **प्रौढपादः** स उच्यते ॥१७२॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे उक्तनियमानभिधाय 'शक्तावेव[1] सर्वमेतदशक्तः शक्तितो जपेदि'त्युक्तम् ।

कुम्भसम्भवः—

वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं निस्पृहो वनितादिषु ।
स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ॥१७३॥

असत्यभाषणं जैह्मभाषणं परिवर्ज्जयेत् ।
सभ्यैरपि न भाषेत जपहोमार्च्चनादिषु ॥१७४॥

वर्ज्जयेद् गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम् ।
ताम्बूलं गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च ॥१७५॥

मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्ज्जयेत् ।
असद्भाषणमत्यर्थं वर्ज्जयेदन्यपूजनम् ॥१७६॥

---

१. ख. शक्तामेवं ।

कौटिल्यं क्षौरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम् ।
असङ्कल्पितकृत्यं च वर्ज्जयेन्मर्द्दनादिकम् ॥१७७॥
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम् ।

जपमध्ये सम्भाषणे प्रायश्चित्तमाह नारदः—

सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् ।
प्रोक्ते पामरशब्दे[1] तु प्राणायामं सकृच्चरेत् ॥१७८॥

बहुप्रलापे चाऽवश्यं न्यस्याऽङ्गानि ततो जपेत् ।
क्षुते चैव तथाऽस्पृश्यस्थानानां स्पर्शने तथा ॥१७९॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

उपविष्टो जपन्स्नातः क्षुतप्रस्खलितादिषु ।
पूजायां नाम कृष्णस्य सप्तवारान्प्रकीर्त्तयेत् ॥१८०॥

योगियाज्ञवल्क्यः—

यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथञ्चन ।
व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्विष्णुमव्ययम् ॥१८१॥

लिङ्गपुराणे—

क्रोधो मदः क्षुधा तन्द्रा निष्ठीवनविजृम्भणे ।
श्वनीचदर्शनं[2] निद्रा प्रलापास्ते जपद्विषः ॥१८२॥

क्रोधं क्षुतं मदं त्रीणि निष्ठीवनविजृम्भणे ।
दर्शनं श्वस्य नीचानां वर्ज्जयेज्जपकर्मणि ॥१८३॥

आचान्तः सम्भवे तेषां स्मरेद्वामां त्वया सह ।
ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम् ॥१८४॥

मां महेशं, त्वया पार्वत्या । **ज्योतींषि तु—**

सूर्योऽग्निश्चन्द्रमाश्चैव ग्रहनक्षत्रतारकाः ।
एते ज्योतींषि चोक्तानि विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा ॥१८५॥

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते ।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥१८६॥

---

१. क. यामरशब्दे । . स्वनीचदर्शनं ।

प्राप्तावाचम्य चैतेषां प्राणायामं षडङ्गकम् ।
कृत्वा सम्यग्जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् ॥१८७॥

मार्ज्जारं कुक्कुटं क्रौञ्चं श्वानं गृध्रं खरं कपिम् ।
दृष्ट्वाऽऽचम्याऽऽचरेत्कर्म स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥१८८॥

एवमादींश्च नियमात् पुरश्चरणकृच्चरेत् ।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा ॥१८९॥

योगिनीतन्त्रे—

अनास्था विभ्रमत्यन्तमश्रद्धा जपकर्मणि ।
आलस्यं भावनाशक्तिः सिद्धिनाशाय निश्चितम् ॥१९०॥

त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परिवादं च वर्जयेत् ।
त्यजेद् दुर्ज्जनसंस्पर्शं मशकादिभयं त्यजेत् ॥१९१॥

वायवीयसंहितायाम्—

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत्क्वचित् ॥१९२॥

असंवृतौ करौ कृत्वा शिरसि प्रावृतोऽपि वा ।
चिन्ताद्याकुलचित्तो वा क्रुद्धः श्रान्तः क्षुधान्वितः ॥१९३॥

अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा ।
रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमिरालये ॥१९४॥

उपानद्गूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा ।
प्रसार्य्य न जपेत्पादावुत्कटासन एव वा ॥१९५॥

श्रीकुलार्णवे—

विण्मूत्रोत्सर्गशङ्काभिर्युक्तः कर्म करोति यः ।
तपोऽर्चादिकं सर्वमपवित्रं भवेत्प्रिये ॥१९६॥

मलिनाम्बरकेशाङ्गमुखदौर्गन्ध्यसंयुतः ।
यो जपेत्तं जहात्याशु देवताऽतिजुगुप्सितम् ॥१९७॥

आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुतं निष्ठीवनं भयम् ।
नीचाङ्गस्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्ज्जयेत् ॥१९८॥

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
जनसङ्गश्च लौल्यश्च षड्भिर्मन्त्रो न सिद्धचति ॥१९९॥

जाड्यं दुःखं तृणच्छेदं विवादं च मनोरथम् ।
विकारं देहजाड्यं च जपकाले विवर्ज्जयेत् ॥२००॥

कपिलपञ्चरात्रे—

विक्षेपादथवाऽऽलस्याज्जपहोमार्चनान्तरा ।
उत्तिष्ठति तदा न्यासं षडङ्ग विन्यसेत्पुनः ॥२०१॥

कूर्मपुराणे—

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः[1] ।
राक्षसं तद्भवेत्सर्वं नेहाऽमुत्र फलप्रदम् ॥२०२॥

सूत्रं यज्ञोपवीतम् । **विष्णुरपि**—स्नातः सुप्रक्षालितपाणिपादः शुचिर्बद्ध-शिरोदर्भपाणिराचान्तः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविष्टो मौनी ध्यानी देवताः पूजयेदिति । वामे बहुकुशाः दक्षिणे पारिभाषिकं पवित्रम् । पवित्रलक्षणं तु प्रागेव सन्ध्याप्रकरणे उक्तम् ।

॥ अथ जपपूर्वदिनकृत्यम् ॥

त्रैलोक्यमोहनतन्त्रे—

शुभे मुहूर्त्ते नक्षत्रे शुद्धे काले यतव्रतः ।
गुरोराज्ञां समासाद्य ततः कर्म समारभेत् ॥२०३॥

सनत्कुमारः—

अथ वक्ष्यामि मन्त्रस्य पुरश्चरणमुत्तमम् ।
कृताभिषेको विधिवन्मन्त्रं लब्ध्वा गुरोर्मुखात् ॥२०४॥

शुभे मुहूर्त्ते नक्षत्रे तिथौ स्नात्वा यथाविधि ।
विप्रान्सन्तर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः ॥२०५॥

भूवित्तवस्त्रभूषाद्यैः सन्तोष्य गुरुमात्मनः ।
आरभेत जपं पश्चात्तदनुज्ञापुरःसरम् ॥२०६॥

प्रथमतन्त्रे—

क्षेत्रपालांश्च सम्पूज्य बलिं दद्याद्यथाविधि ।

---

१. ख. वायुनः ।

बलिमन्त्रस्तु—

पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद् विदुषि[1]स्यात्पुरुद्वयम् ।
[2]भं जयद्वितयं भूयो नर्तयद्वितयं पुनः ॥२०७॥

ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरव तत्परम् ।
क्षेत्रपाल बलिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरी ॥२०८॥

बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकर्मफलप्रदः ।
तस्मै सपरिवाराय बलिमेतेन चाऽऽहरेत् ॥२१९॥ इति ।

मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते । ततश्चोपवासः कर्त्तव्यः ।

॥ अथ जपारम्भः ॥

महाकपिलपञ्चरात्रे

एतन्नक्षत्रतिथ्यादौ करणे योगवासरे ।
मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधनं च शुभावहम् ॥२१०॥

इत्युक्तत्वात् दीक्षापुरश्चरणयोः समाननक्षत्रादिकं ज्ञेयम् ।

दक्षिणामूर्त्तिकल्पे—

साधयेत् प्रवरो विद्वान् पूर्वपक्षं समाश्रितः ।
पुण्ये मुहूर्त्ते नक्षत्रे तिथौ स्नात्वा यथाविधि ॥२११॥
नत्वा गुरुं गणेशानं नत्वा दुर्गां च मातरः ।

कुम्भसम्भवः—

ततः सङ्कल्प्य कुर्वीत पुरश्चरणमादरात् ।

नारदीये—

सङ्कल्पं तु बुधः कुर्यात् स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।

देवलः—

अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः ।
सूर्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥२१२॥

प्रातर्व्रतमाचरेदिति सम्बन्धः । व्रतं स्वकर्त्तव्यविषयो नियमसङ्कल्पः ।

---

१. मेरुतन्त्रे 'विदुषि' इत्यस्य स्थाने 'विद्रवी' इति पाठः ।

तदुक्तं कुम्भसम्भवेन—

कर्त्तव्यस्य समस्तस्य नियमग्रहणं व्रतम् ।
नियमव्यतिरेकेण सर्वं भवति निष्फलम् ॥२१३॥

अभुक्त्वा प्रातराहारमित्येकवचनादर्थात्पूर्वदिने एकभक्तं कार्यम् । अतश्चोपवासाशक्तस्यैकभक्तं ज्ञेयम् । सूर्यादिदेवताभ्य इति सूर्यः सोम इत्यादिना मत्स्यपुराणोक्तपर्यायेण निवेद्येत्यर्थः । ते श्लोकाः प्रयोगे वक्ष्यन्ते ।

महाभारते—

गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयात्तथा सङ्कल्पयेद् बुधः ॥२१४॥

उदङ्मुख इति नियमग्रहणार्थम् । सङ्कल्पयेन्मनसा नियमेदिति ।

तथा गौतमः—

अन्तर्ज्जानुकरं कृत्वा सतिलं सकुशोदकम् ।
फलं समभिसन्धाय............... ॥२१५॥ इति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः ।
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२१६॥

एवं सङ्कल्पं विधाय नित्यपूजनं कृत्वा जपं कुर्यात् । तथा च—

कुम्भसम्भवः—

पूजा त्रैकालिकी नित्यजपस्तर्प्पणमेव च—
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥२१८॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

मन्त्रं साधयमानस्तु त्रिसन्ध्यं देवमर्च्चयेत् ।
द्विसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा न मन्त्रं केवलं जपेत् ॥२१७॥

गौतमः—

ध्यानार्चनजपानां च प्राणायामास्त्रयस्त्रयः ।
आद्यन्तयोर्विधीयन्ते नासिकापुटचारिणः ॥२१९॥

वायवीयसंहितायाम्—

एवमुक्तविधानेन विलम्बत्वरितं विना ।
उक्तसंख्यं जपं कुर्यात्पुरश्चरणसिद्धये ॥२२०॥

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन्धिया ।
जपेदेकमनाः प्रातः कालान्मध्यदिनावधि ॥२२१॥

यत्संख्यया समारब्धं तत्कर्त्तव्यं दिने दिने ।
यदि न्यूनाधिकं कुर्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥२२२॥

वैशम्पायनः—

यावत्संख्यं जपेदह्नि पूर्वस्मिंस्तावदेव तु ।
दिनान्तरेऽपि प्रजपेदन्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥२२३॥

अत्र 'दिवा चैवं जपं कुर्यात्पुरश्चरणिको विधि' रिति **फेत्कारिणीतन्त्रे** दिवा पदाभिधानात् 'जपं रात्रौ च वर्ज्जये' दिति **कुम्भसम्भवेन** रजनीजपनिषेधाच्च देशकालाद्युपद्रवसम्भावनायां चतुर्थमुहूर्त्तपर्यन्तं जप्तव्यम् पञ्चममुहूर्त्तस्य 'राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मस्वि'ति **मत्स्यपुराणे** निन्दितत्वादिति । अत्र मुहूर्त्तशब्देन भाग उच्यते । दिवसस्य पञ्चमभागो निषिद्ध इत्यर्थः । तथा—

पिङ्गलामते—

नाऽध्यातो[1] नाऽर्चितो मन्त्रः सुसिद्धोऽपि प्रसीदति ।
नाऽजप्तः सिद्धिदानेच्छुर्नाऽहुतः फलदो भवेत् ॥२२४॥

पूजां ध्यानं जपं होमं तस्मात्कर्मचतुष्टयम् ।
प्रत्यहं साधकः कुर्यात्स्वयं चेत्सिद्धिमिच्छति ॥२२५॥

जपश्रान्तः शिवं ध्यायेद् ध्यानश्रान्तः पुनर्ज्जपेत् ।
जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिद्ध्यति मन्त्रवित् ॥२२६॥

नारदः—

संख्यापूर्त्तौ निजैर्द्रव्यैर्ज्जपसंख्यादशांशतः ।
यथोक्तकुण्डे जुहुयाद्यथाविधि समाहितः ॥२२७॥
अथवा प्रत्यहं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः ।

तत्रान्तरे—

जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमयेत्तद्दशांशतः ।
तर्प्पणं चाऽभिषेकं च तद्दशांशं ततो मुने ॥२२८॥

१. ख. न ध्यातो ।

प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान्न्यूनाधिकप्रशान्तये ।
अथवा सर्वपूर्त्तौ च होमादिकमथाऽऽचरेत् ॥२२९॥

नारदपञ्चरात्रे—

सम्पूज्याथ जपं कुर्याद्यावद्वै प्रहरद्वयम् ।
तदूर्ध्वं वै पूर्ववत्स्नात्वा विशेषेण विधानवित् ॥२३०॥

न्यासावसानमखिलं कर्म कुर्यात्पुरोदितम् ।
पूजाग्निहोमपर्यन्तं ततश्च जपमारभेत् ॥२३१॥

यावद्दिनावसानं तु भूयः स्नात्वा ततो द्विज ।
उपास्य पूर्ववत्सन्ध्यां देवं सम्पूजयेत्पुनः ॥२३२॥
विसृज्य भोजनं कुर्यात्सततं तारकोदये ।

सन्ध्यामुपास्य देवं पूर्ववत्पूजयेदिति सम्बन्धः ।

॥ अथ भोज्यानि ॥ तत्र—

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

भिक्षाशी वा हविष्याशी शाकमूलफलाशनः ।
पयोव्रती वा नियतो जपेदेकाग्रमानसः ॥२३३॥

गौतमीये—

पुरश्चरणकृन्मन्त्री भक्ष्याभक्ष्यं विचारयेत् ।
अन्यथा भोजनाद्दोषात्सिद्धिहानिः प्रजायते ॥२३४॥

शारदातिलके—

भैक्ष्य हविष्यं शाकानि विहितानि फलं पयः ।
मूलं सक्तुर्यवोत्पन्नो भक्ष्याण्येतानि मन्त्रिणाम् ॥२३५॥

भिक्षास्वरूपमाह कुम्भसम्भवः—

वैदिकाचारयुक्तानां शुचीनां श्रीमतां सताम् ।
सत्कुलस्थानजातानां भिक्षाशी चाऽग्रजन्मनाम् ॥२३६॥

परान्नं तु सर्वथा न भक्षणीयम् । तदुक्तम्—

कुलार्णवे—

यस्यान्नपानमश्नन्वै कुरुते धर्मसञ्चयम् ।
अन्नदातुः फलस्याऽर्द्धं कर्त्तुश्चाऽर्द्धं न संशयः ॥२३७॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत्सुधीः ।
पुरश्चरणकाले तु सर्वकर्मसु शाम्भवि ॥२३८॥

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
मनो दग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने ॥२३९॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

विहाय वह्निं न हि वस्तु किञ्चिद्,
ग्राह्यं परेभ्यः सति सम्भवे च ।
असम्भवे तीर्थबहिर्विशुद्धा-
त्पर्वातिरिक्ते प्रतिगृह्य जप्यात् ॥२४०॥

तत्राऽसमर्थोऽनुदिनं विशुद्धा-
द्याचेत यावद्दिनमात्रभक्ष्यम् ।
गृह्णाति रागादधिकं न सिद्धिः,
प्रजायते कल्पशतैरमुष्य ॥२४१॥

॥ हविष्याणि तु ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये—

हैमन्तिकं सिता स्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः ।
कलायकङ्गुनीवारवास्तूकं[1] हिलमोचिका ॥२४२॥

षष्ठिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् ।
कन्दं सैन्धवसामुद्रे गव्ये तु दधिसर्पिषी ॥२४३॥

पयोऽनुद्धृतसारं[2] च पनसाम्रौ हरीतकी ।
पिप्पली जीरकं चैव नागरङ्गकतिन्तिडी ॥२४४॥

कदली लवली धात्रीफलान्यगुडमैक्षवम् ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ॥२४५॥

मूलकं हविरपि वैष्णवानां निषिद्धम् । तदुक्तम्—

---

१. ख. वास्तुकं । २. ख. पयोनुद्धृतसारं ।

विष्णुयामले—

यत्र मांसं तथा मद्यं तथा वृन्ताकमूलके ।
निवेदयेन्नैव तत्र हरेरेकान्तिकी रतिः ॥२४६॥

नारदः—

चरुमूलफलक्षीरदधिभिक्षान्नसक्तवः ।
एतत्सप्तविधं प्रोक्तं पवित्रं व्रतभोजनम् ॥३४।७।

कपिलः—

यावी यवागूः शाकं च पयो भैक्ष्यं हविष्यकम् ।
पूर्वं पूर्वं प्रशस्तं स्यादशनं मन्त्रसाधने ॥२४८॥

हविरुक्तं **कुम्भसम्भवेन—**

सितैकविध हेमन्तंमुन्यन्नं स्वीयसंश्रृतम् ।
अशूद्रावहृतं पद्भ्यामनुत्तोल्य हृतं च यत् ॥२४९॥
दधिक्षीरघृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्ज्जितम् ।
तिलाश्चैवाऽसिता मुद्गाः कन्दकेमुकवर्ज्जितम् ॥२५०॥
नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा ।
आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ॥२५१॥
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधः ।
अवैष्णवमलभ्यं वाऽथ प्रशस्तं व्रतान्तरे ॥२५२॥
त्याज्यमेवाऽत्र तत्सर्वं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।
लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतनः ॥२५३॥

मुन्यन्नं नीवारः ।

सारसङ्ग्रहे—

स्विन्नं च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम् ।
माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि ॥२५४॥
ताम्बूलं च द्विभुक्तं च दुःसंवासं प्रमत्तताम् ।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धं च जपं रात्रौ च वर्ज्जयेत् ॥२५५॥ इति ।

ब्रह्मयामले—

पर्युषं चाऽऽरनालं च कोद्रवान्नं मसूरिका ।
कांस्यपात्रं च तैलं मन्त्रवीर्यहराणि षट् ॥२५६॥

वीर्यविज्ञानयोर्हर्त्ता ज्ञानहर्त्ता च पर्युषः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मन्त्री पर्युषितं त्यजेत् ॥२५७॥

आरनालं चाऽन्यमम्लं मन्त्री दृष्ट्वा परित्यजेत् ।
फललोपो भवेन्नूनं मन्त्रवीर्यं हरेद् ध्रुवम् ॥२५८॥

तेन कारणभावेन मन्त्री क्षारांश्च वर्ज्जयेत् ।
पित्तलं मृत्युदं न्यूनं क्षुद्रधान्यं च कोद्रवम् ॥२५९॥

कोद्रवान्नं परित्याज्यं सर्वथा जपकर्मणि ।
मसूरो मानहन्त्री च परित्याज्या च सर्वथा ॥२६०॥

कांस्यपात्रमशुद्धं च तच्छप्तं विष्णुना पुरा ।
मन्त्रवीर्यं हरत्याशु यद्यपि स्यान्महेश्वरः ॥२६१॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कांस्यं त्याज्यं तु साधकैः ।
तिलतैलं मन्त्रपूत पावनं देवदुर्ल्लभम् ॥२६२॥

मर्द्दयित्वा प्रयत्नेन स्नानं कार्यं हि सर्वदा ।
वर्ज्जयेज्जपवेलायां भोज्यं नैव सदा बुधैः ॥२६३॥

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं मन्त्रिणा तत्कथञ्चन । इति ।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

ब्रह्मपत्रे तु भुञ्जीत मध्यपत्रविवर्ज्जिते ।

॥ अथ भोजनपर्य्यायः ॥

कुम्भसम्भवः—

उपस्तीर्याऽभिधार्य्यैतत्संस्कृत्य प्रोक्षणादिभिः ।
पावयेद्वैदिकैर्मन्त्रैः पुनर्मूलेन मन्त्रवित् ॥२६४॥

सोमशम्भुः—

हृदा सम्भोजयेन्मन्त्री पूतैराचामयेज्जलैः ।

तन्त्रसारे—

जठरं पूरयेदर्द्धमन्नैर्भागं तथा जलैः ।
वायोः सञ्चारणार्थं तु तुरीयमवशेषयेत् ॥२६५॥

नारदीये—

मृदु सोष्णं सुपक्वं च कुर्याद्वै लघुभोजनम् ।
नेन्द्रियाणां यथा वृद्धिस्तथा भुञ्जीत साधकः ।।२६६।।

बहुभोजनं निषिद्धम् ।

ब्रह्मयामले यथा—

प्रयासी बहुभक्षी च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
नीचसङ्गाच्च लौल्याच्च षड्भिर्मन्त्रो न सिद्धयति ।।२६७।।

विष्णुपुराणे—

नैकवस्त्रधरोऽथाऽऽर्द्रपाणिपादो नराधिप ।
विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुखः ।।२६८।।

भुक्त्वा सम्यगथाऽऽचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
यथावत्पुनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य मूलतः ।।२६९।।

सुस्थः प्रशान्तचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः ।
अभीष्टदेवतानां च कुर्वीत स्मरणं नरः ।।२७०।।

अग्निराप्याययत्वन्नं पार्थिवं पवनेरितः ।
दत्वाऽवकाशं नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम् ।।२७१।।

अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ।
भवत्वेतत्परिणतं ममाऽस्त्वव्याहतं सुखम् ।।२७२।।

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरं वाऽस्तु ममाऽस्त्वव्याहतं सुखम् ।।२७३।।

अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च
भुक्तं ममान्नं जरयत्वशेषम् ।
सुखं हि चैतत्परिणामसम्भवं
यच्छत्वरोगं मम चाऽस्तु देहे ।।२७४।।

विष्णुः समस्तेन्द्रियदेहिदेह—
प्रधानभूतो भगवान्यथैकः ।

सत्येन तेनाऽन्नमशेषमेत—
दारोग्यदं मे परिणाममेतु ॥२७५॥

विष्णुरद्यात्तथैवान्नैः[1] परिणामश्च वै यथा ।
सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥२७६॥

इत्युच्चार्य्य स्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् ।
अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥२७७॥

॥ अथ शयनम् ॥ तत्र

विजयमालिनीतन्त्रे—

अधःशयानः शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।

योगिनीहृदये—

शयीत कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा ।
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ॥२७८॥

वैशम्पायनोऽपि—

शयनं कुशशय्यायां विन्यसेच्छुचिवस्त्रधृक् ।
तद्वासः क्षालयेन्नित्यमन्यथा विभ्रमावहेत् ॥२७९॥

नारदपञ्चरात्रे—

भुक्त्वा शयीत शयने सुशुद्धे च सुशीतले ।
अर्द्धरात्रे समुत्थाय पादशौचं भवेद् द्विजः ॥२८०॥

आचम्य देवं संस्मृत्य शीघ्रं सम्पूज्य पूर्ववत् ।
जपं कुर्याद्यथाशक्ति अर्प्पयेच्च तदीश्वरे ॥२८१॥

सम्पूज्येति मानसोपचारैरित्यर्थः ।

वायवीयसंहितायाम्—

अहतास्तरणास्तीर्णे सदर्भशयने शुचिः ।
मन्त्रिते च शिवं ध्यायन् प्राक्शिरस्को निशि स्वपेत् ॥२८२॥

'मन्त्रिते स्वेष्टमन्त्रेण शिवमि'त्युपलक्षणं तेन निजाराध्यदेवताध्यानं विधेयमिति बोध्यम् ।

---

१. ख. ०तथैवान्नं ।

कपिलपञ्चरात्रे—

गुरुपादार्च्चनं कृत्वा उपवासी जितेन्द्रियः ।
दर्भशय्यां गतो रात्रौ दृष्ट्वा स्वप्नं निवेदयेत् ॥२८३॥

अत्र शयनसमये 'यज्जाग्रतो दूरमुदेती' ति सूक्तमन्ये श्लोकाश्च पठनीयाः । तत्र सूक्तं तु प्रयोगेऽभिधेयम् । श्लोकास्तु प्रागेव दीक्षायां शयनसमये उक्ताः । सुस्वप्ना दुःस्वप्नाश्च दुःस्वप्नशान्तिः स्वप्ननिवेदनप्रकारश्च प्रागेव तत्राऽभिहितः ।

॥ अथ सिद्धिचिह्नानि ॥

वक्रतुण्डकल्पे—

चित्तप्रसादो मनसश्च तुष्टि-
रल्पाशिता स्वप्नपराङ्मुखत्वम् ।

तथा भैरवीतन्त्रे—

ज्योतिः पश्यति सर्वत्र शरीरं वा प्रकाशयुक् ।
निजं शरीरमथवा देवतामयमेव हि ॥२८४॥

नारदपञ्चरात्रेऽपि—

मन्त्राधारणशक्तस्य[1] प्रथमं वत्सरत्रयम् ।
जायन्ते बहवो विघ्ना नियमस्थस्य नारद ॥२८५॥

नोद्वेगं साधको याति कर्मणा मनसा यदि ।
तृतीयवत्सरादूर्द्ध्वं राजानश्च महीभृतः ॥२८६॥

प्रार्थयन्तेऽनुरोधेन गर्विता अपि मानिनः ।
प्रसादः क्रियतां नाथ ममोद्धरणकारणम् ॥२८७॥

प्रज्वलन्तं च पश्यन्ति तेजसा विभवेन च ।
अतस्ते मुनिशार्द्दूल निष्ठुरं वक्तुमक्षमाः ॥२८८॥

नवमाद्वत्सरादूर्द्ध्वं स्वयं सिद्ध्यति मन्त्रराट् ।
नानाश्चर्याणि हृदये मन्त्रसिद्धिमयानि वै ॥२८८॥

अस्यानन्दप्रदान्याशु प्रत्यक्षेऽपि बहिस्तथा ।
जडधीस्तु क्षणं विप्र क्षणमस्ति प्रहर्षितः ॥२९०॥

---

१. ख. मन्त्राराधनशक्तस्य ।

क्षणं दुन्दुभिनिर्घोषं शृणोत्यप्यन्तरिक्षतः ।
क्षणं च मधुरं वाद्यं नानागीतसमन्वितम् ॥२९१॥

आजिघ्रति क्षणं गन्धान् कर्पूरमृगनाभिजान् ।
उत्पतन्तं क्षणं चाऽपि पश्यत्यात्मानमात्मना ॥२९२॥

चन्द्रार्ककिरणाकीर्णं क्षणमालोकयेन्नभः ।
गजगोवृषनादांश्च शृणुयाच्च क्षणं द्विज ॥२९३॥

निर्भराम्बुदसंक्षोभं क्षणमाकर्णयत्यपि ।
तारकाणि विचित्राणि योगिनो नभसि स्थितान् ॥२९४॥

पश्यत्युद्ग्राहयन्तश्च क्षणं मन्त्रव्रती तदा ।
क्षणं किलकिलारावं हंसबर्हिरवन्तथा ॥२९५॥

क्षणं मेघोदयं पश्येत् क्षणं रात्रिं दिने सति ।
रात्रौ वा दिवसालोकं स सूर्यं क्षणमीक्षते ॥२९६॥

बलेन परिपूर्णश्च तेजसा भास्करोपमः ।
पूर्णेन्दुसदृशः कान्त्या गमने विहगोपमः ॥२९७॥

शमेन युक्तः प्रोच्चेन[1] गाम्भीर्येण सुखेन च ।
स्वल्पाशनेनाऽकृशता बहुनाऽपि न विद्यते ॥२९८॥

विण्मूत्रयोरथाऽल्पत्वं भवेन्निद्राजयस्तथा ।
जपध्यानगतो मन्त्री न खेदमधिगच्छति ॥२९९॥

विना भोजनपानाभ्यां पक्षमासादिकं मुने ।
इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्महाविस्मयकारिभिः ॥३००॥

प्रवृतैः[2] सम्प्रबोद्धव्यं प्रसन्नो मन्त्रराडिति ।

तथा बौधायन :—

सिद्धेस्तु त्रीणि चिह्नानि दाता भोक्ता अयाचकः ।

दाता भोक्ताऽप्ययाचक इत्यर्थः ।

---

१. ख. प्रोच्चेत । २. ख. प्रवृत्तैः ।

ततोऽस्य प्रत्ययास्त्वेवं जायन्ते जपतो मनुम् ।
अधिष्ठितं निश्यदीपं निस्तमिश्रं(स्रं) गृहं भवेत् ॥३०१॥

अर्काभस्तेजसाऽसौ भवति नलिनजा सन्ततं किङ्करी स्या—
द्रोगा नश्यन्ति दृष्ट्वा[1] द्रुतमथ धनधान्याकुलं तत्समीपम् ।
देवा नित्यं नमोऽस्मै विदधति फणिनो नैव दश्यन्ति पुत्राः ।
पौत्रा मित्राणि ऋद्धास्तनुविपदि परं धाम विष्णोः स भूयात् ॥३०२॥

तन्त्रराजे—

नाऽतिद्वेषो नाऽतिरागो नाऽतिभोगेषु सङ्गतिः ।
नाऽतिशोको नाऽतिहर्षो नाऽतिस्नेहो न मत्सरः ॥३०३॥

नाऽतिव्यसनवर्त्तित्वं सुखिताऽक्लिष्टकारिता ।
स्वदेहमात्रयात्रेच्छा परचिन्ताविवर्ज्जनम् ॥३०४॥

ऐक्यरूप्यं लाभहान्योः सदा सन्तुष्टचित्तता ।
भोक्तृत्वं शक्तितो दानमिति सिद्धस्य लक्षणम् ॥३०५॥

मनोरथानामक्लेशसंसिद्धिः सिद्धिरीरिता ।
राज्ञः प्रसादः सर्वेषां मान्यत्वं पुण्यसिद्धयः ॥३०६॥

ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।
आरोग्यमविसंवादः सच्छिष्यत्वं कृतज्ञता ॥३०७॥

विषाणां हरणं ज्ञानं स्वस्थस्यावेदनं[2] तथा ।
प्रतूर्णसिद्धयः प्रोक्ता मनोः सिद्धस्य सर्वतः ॥३०८॥

एताः स्युः सिद्धयः प्रोक्ताः [सिद्धमन्त्रस्य सूचकाः ।
सद्गुरोः पादसेवातः सम्प्राप्तात्मस्वरूपिणः ॥३०९॥
विशेषः को भवेदन्यदुर्लभः सत्यविग्रहः ।
आभिरूप्यमसन्देहः][3] सन्तोषः परिपूर्णता ॥३१०॥
दयार्द्रचित्तता रागद्वेषाविषयचित्तता ।
सुलभत्वमगर्वित्वं सदा नियतशीलता ॥३११॥

---

१. क. दस्था । २. ख. स्वस्थस्यावेशनं ।
३. [—] कोष्ठबद्धोंऽशो नास्ति ख. पुस्तके ।

कृतज्ञता सत्यता च परिचिन्तानिवर्त्तनम्[1] ।
आर्जवं चाऽवित्तलौल्यं विषयाऽनभिसङ्गिता ॥३१२॥

अदैर्घ्यसूत्रमक्षोभ्यं नाऽत्यगाधाशयात्मता ।
वृथालापेष्वशक्तिश्च वृथाव्यापारवर्ज्जनम् ॥३१३॥

वृथाविनोदराहित्यं जिह्मचित्तैरसङ्गतिः ।
पुरुषार्थैकथनचिन्ताकरणकौतुकम् ॥३१४॥

अस्तेयशक्तिराहित्यं परलोकानुचिन्तनम् ।
देवतापूजनं स्तोत्रवैभवालापशीलता ॥३१५॥

पापानां वर्ज्जनं पुण्यकरणे कौतुकं सदा ।
परस्तवननिन्दासु विरतिर्वीतरागता ॥३१६॥

निस्पृहत्वमलोलुत्वमनाक्षेपो[2] जडात्मनाम् ।
अगोपनं स्वभक्तानामभक्तानां च गोपनम् ॥३१७॥

गुरुविद्यागमाचारस्तवनं तत्प्रवर्त्तनम् ।
सिद्धिचिह्नानि चैतानि भक्त्यात्मवतां ध्रुवम् ॥३१८॥

न भवन्तीतरेषां तु प्रद्विषन्त्येव तांश्च ते ।
तत्कृत्यं[3] शृणु वक्ष्येऽहं यो लब्धस्वात्मवैभवः ॥३१९॥

निरस्ताशेषसंसारमौर्ख्याज्ञानो विवेकवान् ।
देशकालकुलाचारान् गुरुराजादिकल्पितान् ॥३२०॥

पालयन् सुस्मितमुखः पूज्यपूजनकौतुकी ।
देहास्थैर्यं तथा ज्ञानं व्यापारान् कालतः क्षणात् ॥३२१॥

पतितान् बन्धुवित्ताज्ञादुर्लङ्घ्यांस्स्ववयःस्थितिम् ।
स्वेन्द्रियाणां च सामर्थ्यं स्वकर्मणि कृतानि च ॥३२२॥

मुहुर्मुहुश्च विमृशेद्विरमेदशुभात्मनः ।
वृथाऽन्यकालं गमयेत् द्यूतस्त्रीस्वापवादतः ॥३२३॥

गमयेद्देवतापूजाजपहोमस्तवादिना ।
गुरोः कृपालापकथास्तोत्रागमविलोकनैः ॥३२४॥

---

१. ख. परचिन्ता० । २. ख. ०मलोलत्व० । ३. ख. तत्कृतम् ।

गमयेदनिशं कालं न वदेत् परदूषणम् ।
प्रत्यक्षेऽपि परोक्षेऽपि स्तुवीत प्रणमेद् गुरुम् ॥३२५॥

तद्गुणैस्तत्कृपाधिक्यैः पुण्यैः स्थैर्यैश्च सत्यतः ।
रागलोभमदक्रौर्य्यपापपैशुन्यवर्ज्जनैः ॥३२६॥

सन्तोषज्ञाननियमशान्तिज्ञानादिभिस्तथा ।
मिताहारो मितालापो विविक्ता सर्ववर्त्तिता ॥३२७॥
नित्या चिन्ता स्वात्मसिद्धिः कृत्यमात्मवतां सदा ।

॥ अथ होमविधिः ॥

तत्र यद्देवताकल्पे येन द्रव्येण होम उक्तस्तेन जपदशांशो होमो विधेयः । स तु कुण्डे कर्त्तव्यस्तदसम्भवे स्थण्डिलेऽपि । तयोर्लक्षणं तु प्रागेवाऽभिहितम् । होमाशक्तौ तु जप एव विधेयः । 'जपोऽशक्तस्य सर्वत्रे'ति **नारायणीयवचनात्** जप एव कार्यः । तत्र ब्राह्मणैः पुरश्चरणजपसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः, क्षत्रियैः षड्गुणः, वैश्यैरष्टगुणः ।

होमकर्मणि शक्तानां त्रयाणां जपसाम्यता ।
होमकर्मण्यशक्तानां वेदर्त्तुवसुसम्मितः ॥३२८॥ इति ।

सारसङ्ग्रहवचनात् । तदशक्तौ तु विप्राणां द्विगुणः, क्षत्रियाणां त्रिगुणः, वैश्यानां चतुर्गुणः ।

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः ।
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिर्विधीयते ॥३२९॥

इति **गौतम**वचनात् । तत्राऽप्यशक्तौ होमसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः । 'होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्' इति **वसिष्ठ**वचनात् । तत्राऽप्यशक्तौ होमसंख्याद्विगुणजपो वा कार्यः ।

यद्यदङ्गं विहीयेत[1] तत्संख्याद्विगुणो जपः ।
कर्त्तव्यः साङ्गसिद्ध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः ॥३३०॥

इति **कुम्भसम्भव**वचनात् । तदशक्तेन पुरश्चरणसंख्याचतुर्गुणादिकरणाशक्तेन । द्विजभक्तशूद्राणां तु यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रस्तद्वर्णविहितजप एवेति । तदुक्तं **सारसङ्ग्रहे**—

---
१. ख विहीतेत ।

द्विजानां होमविरहे यः प्रोक्तः सूरिभिर्जपः ।
तद्योषितां स एवोक्तः शूद्रो यं वर्णमाश्रितः ॥३३१॥ इति ।

तत्स्त्रीणां विहितं जापं कुर्याद्भक्तिपरायणः । इति

गौतमोऽप्याह—

होमाभावे द्विजानां तु जपः प्रोक्तः पुरा तु यः ।
तत्सुभ्रुवां च तद्भक्तशूद्राणां च एव हि ॥३३२॥ इति ।

अतः स्त्रीशूद्रैर्होमानधिकाराज्जप एव कार्य्यः ।

सारसङ्ग्रहे—

ततो होमदशांशेन जले सम्पूज्य देवताम् ।
तर्प्पयामीति मन्त्रान्ते प्रोक्ताद्भिर्मूर्द्ध्नि तर्प्पयेत् ॥३३३॥

वैशम्पायनः—

तर्प्पणस्य दशांशेन नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरन् ।
अभिषिञ्चत् स्वमूर्द्धानं जलैः कुम्भाख्यमुद्रया ॥३३४॥

सारसङ्ग्रहे—

तदन्ते भोजयेद्विप्रान् सदाचारान् दशांशतः ।
नानाविधैर्भक्ष्यभोक्ष्यै[1]-र्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरैः ॥३३५॥

सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये ।
विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गत्वमाप्नुयात् ॥३३६॥

एकमङ्गं विहीयेत ततो नेष्टमवाप्नुयात् ।
अङ्गहीनं भवेद्यद्यत्कर्म नेष्टार्थसाधकम् ॥३३७॥

न्यूनातिरिक्तकर्माणि[2] न फलन्ति मनोरथान् ।
त एव पूर्णतां यान्ति समस्तानि भवन्ति चेत् ॥३३८॥

अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत् सर्वकर्मसु ।
यानि यान्यपि कर्माणि हीयन्ते द्विजभोजनैः ॥३३९।

निरर्थकानि तानि स्युर्बीजान्यूषरगानिवत् ।
गुरुं सन्तोषयेत् पश्चाद् गोहिरण्याम्बरादिभिः ॥३४०॥

---

१. ख. ०भक्ष्यभोज्यै० ।　२. ख. न्यूनातितिक्तकर्माणि ।

गुरौ तुष्टे हि सन्तुष्टो मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः ।
इत्थं पुरश्चरणतः प्रसन्ना देवता भवेत् ॥३४१॥

इत्थ तत्तत्कल्पोक्ते पुरश्चरणे कृते सति यदि मन्त्रो न सिद्धयति तदा पुरश्चरणद्वयं पुरश्चरणत्रयं विधेयम् । तदुक्तम् **फेत्कारिणीतन्त्रे**—

कर्मणा प्रबलेनैव प्रतिबन्धो विरोधिना ।
यदि सिद्धिर्न लभते द्विस्त्रिर्वा पुनराचरेत् ॥३४२॥ इति ।

अत्र पुरश्चरणे जपस्य सङ्कल्पे कृते सत्याशौचसम्भवे न जपबाधः । यदुक्तं **विष्णुना**—

यज्ञव्रतविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे ।
प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारम्भे तु सूतकम् ॥३४३॥

प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः ।
नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपुरस्कृता ॥३४४॥ इति ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ षोडशस्तरङ्गः ॥१६॥

[सप्तदशस्तरङ्गः]

॥ अथ पुरश्चरणप्रयोगः ॥

तत्र प्रमाणोक्तसत्तीर्थादिस्थले ममाऽस्य मन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये 'ममेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्धयता' मिति मन्त्रेण भूमिपरिग्रहं विधाय, न्यग्रोधाऽश्वत्थप्लक्षोदुम्बरान्यतमतरुभवान्वितस्तिमात्रान्दशकीलान्विधायाऽस्त्रमनुनाऽष्टवारं पृथक्पृथगभिमन्त्र्य, प्रागाद्यष्टदिक्षु इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये चोर्द्ध्वाधोबुद्धया निखाय, तत्तदस्त्रमन्त्रान्त 'अस्त्राय नम' इति प्रतिकीलमस्त्रं सम्पूज्य पूर्वादिदशदिक्षु 'इन्द्र साङ्ग सायुध सपरिवार सवाहन एष ते माषभक्तबलिर्नम' इत्यादिदशदिक्पालेभ्यस्तत्तन्नाम्ना तत्तत्कीलसन्निधौ माषभक्तबलिं दत्वा, क्षेत्रमध्ये क्वचित् "क्षं क्षेत्रपालाय नमः, गं गणेशाय नमः, वां वास्तुपुरुषाय नम" इति

क्षेत्रपालगणेशवास्तुपुरुषानभ्यर्च्य, सुसमे महीतले प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रश्चतस्रो रेखा विलिख्य, नवकोष्ठानि कृत्वा तेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमेण सप्तसु कोष्ठेषु क च ट त प य शाख्यान्सप्तवर्गान्विलिख्येशानकोणे ल-क्षौ विलिख्य, मध्यकोष्ठं तथैव नवधा विभज्य, तेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन अ आ इ ई इत्यादिषोडशस्वरान्द्वन्द्वशः क्रमेण विलिख्य, मध्यकोष्ठे श्रींकारं लिखेत्; इति कूर्मचक्रं निर्माय, तत्र मध्यगतनवकोष्ठेष्वेषु मध्ये पूर्वाद्यष्टसु कोष्ठेषु च प्रादक्षिण्येनाऽमृतवृषभशैलराजवासुक्यर्थकृच्छक्तिपद्मयोनिमहाशङ्खछायाछत्राख्यान्नवक्षेत्रपालान् "ॐ क्षं अमृतक्षेत्रपालाय नमः, ॐ क्षं वृषभक्षेत्रपालाय नमः" इत्यादि प्रणवक्षेत्रपालबीजतत्तन्नामचतुर्थीनमोऽन्तान् गन्धादिभिः सम्पूज्य, ग्रामादिनामाद्यक्षरयुक्तकोष्ठदिशि मुखे तदलाभे तदधः पार्श्वद्वयगतकोष्ठद्वयान्यतमे कूर्महस्ते वा पृष्ठे 'सर्वार्थसिद्धय' इति **तन्त्रराज**वचनान्मध्यकोष्ठात्मककूर्मपृष्ठे क्षेत्रमध्ये वा जपार्थं गृहं शीतवातातपनिवारणक्षमं कुर्यात् ।

ततः पुरश्चरणारम्भदिवसात्पूर्वदिवसे प्रातःस्नानं विधाय, नित्यकृत्यं कृत्वा, भोजनादिभिर्ब्राह्मणांस्तोषयित्वा, निजं गुरु वस्त्राभरणादिभिः सन्तोष्य, जपस्थाने त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डले "क्षं क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपाल इहागच्छागच्छे" ति क्षेत्रपालमावाह्य, प्रोक्तमन्त्रेण क्षेत्रपाल गन्धादिभिः सम्पूज्य, तत्पुरतस्त्रिकोणमण्डले साधारं सान्नव्यञ्जनोदकपूर्णं बलिपात्रं निधाय, "एह्येहि विदुषि पुरु पुरु भञ्जय भञ्जय नर्त्तय नर्त्तय विघ्नविघ्न महाभैरव क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण २ स्वाहे" ति मन्त्रेण बलिं दत्वोपवासं कुर्यात् ।

अथ प्रातर्दीक्षोक्तमासपक्षतिथ्यादिशुद्धदिवसे प्रभाते स्नात्वा, श्रीगुरोरन्येषां विप्राणां च निदेशमादाय, विप्रैः स्वस्तिवाचनं कारयित्वा, कुशहस्तः–

ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा ।
पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः ॥१॥
ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम् ।

इति पठित्वा, ताम्रपात्रे कुशतिलाक्षतजलान्यादायोदङ्मुखः 'ॐ अद्याऽमुकस्मिन्मासि अदकोराशिगते सवितरि अमुकस्मिन्पक्षे अमुकस्मिन् तिथौ भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे विशेषक्षेत्रे चेदमुकस्मिन् क्षेत्रे अदकोगोत्र अदकः शर्मा, क्षत्रियश्चेददको वर्मा, वैश्यश्चेददको गुप्तः, शूद्रश्चेददको दासः अदको मन्त्रसिद्धिकाम

अदकोमन्त्रस्येयत्संख्याजपात्मकं पुरश्चरणं अद्याऽऽरभ्यैतावद्दिनैरहं करिष्ये" इति सङ्कल्पं विधाय, गुरुगणपतिदुर्गामातॄर्नत्वा, नित्यपूजनं विधाय, संस्कृतमालया जपं कुर्यात् ।

मालासंस्कारप्रकारस्तु—

प्रमाणोक्तमात्रया गोमूत्रगोमयदुग्धदधिघृतैः कुशजलात्मकं पञ्चगव्यं सम्पाद्य, शक्तिव्यतिरिक्तेषु पूर्वदिने कृतैकभक्तः साधकः कृतनित्यकृत्यः सूत्रं मणींश्च पृथक्पृथक् पञ्चगव्येन जलैश्च प्रक्षाल्य, नवसु पिप्पलदलेषु पद्माकाररचितेषु सूत्र मणींश्च संस्थाप्य, तेषु प्रणवं भुवनेश्वरीबीजं मातृकाक्षराणि च सूत्रे प्रतिबीजं च विन्यस्य, मणीन्सूत्रं च गन्धादिभिः सम्पूज्य, कुण्डादौ नित्यहोमविधिनाऽग्निं संस्थाप्य, यथाशक्ति सघृतैस्तिलैः केवलघृतैर्वा सद्यादिपञ्चमन्त्रैर्हुत्वा, होमाशक्तौ जपं वा विधाय, सूत्रे रुद्राक्षपुत्रञ्जीवपद्माक्षाश्चेन्मुखे मुखं संयोजयन्, यथासुखमन्यमणिमित्यारोप्यैकैकमणिमध्ये गुरूक्तविधिना ब्रह्मग्रन्थि विधाय, गोपुच्छाकारेण ग्रथयित्वा, सर्वतः स्थूलं सजातीयमेकं मणिमूर्द्धमुखं सूत्रद्वयमेकीकृत्य, मेरुं ग्रथयित्वा[1] ।

"ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवे भवे नादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥२॥"

इति मन्त्रेण पञ्चगव्येन शीतलजलेन च प्रक्षाल्य—

"ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥३॥"

इति चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमैर्विघृष्य—

"ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वतः शर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥४॥

इत्यगुरुशीरशर्करागुग्गुलुमधुचन्दनघृतैर्धूपयित्वा—

"ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥५॥

इति गन्धचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमकर्पूरैर्लेपयेत् । ततः—

---

१. क. ग्रहथयित्वा ।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ' ॥६॥

इति प्रतिबीजं शतं शतमभिमन्त्रयेत् । मेरु चानेना'ऽघोरेभ्योऽथ' इत्यनेनाऽपि शतमभिमन्त्रयेत् । ततस्तत्र पूर्वोक्तवक्त्रभेदेन यस्य रुद्राक्षस्य या देवता तामावाह्याऽऽवाहनस्थापनसन्निधापनसन्निरोधनसम्मुखीकरणसकलीकरणा-वगुण्ठनामृतीकरणपरमीकरणानि तत्तन्मुद्रया विधाय, प्रागुक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिबीजं पञ्चोपचारैस्तां देवतां स्वेष्टदेवतावत्पूजयित्वेत्थं संस्कृतमालया जपं कुर्यादिति **जपमालासंस्कारविधिः** ।

इत्थं प्रतिष्ठितमालया जपं कुर्वन्यदा तत्सूत्रं जीर्णमिति जानाति तदैव दृढं सूत्रं ग्रथयित्वा तया स्वेष्टं मन्त्रमष्टोत्तरशतं प्रायश्चित्तार्थं जपित्वा पश्चात्तया मालया यथापूर्वं जपं कुर्यात् । अयं प्रतिष्ठाप्रकारस्तु रुद्राक्षस्यैव, नाऽन्येषाम् । अन्येषां तु **पद्माक्षादीनां प्रतिष्ठाविधिः** प्रदर्श्यते—

तत्र ग्रथितां मालां कुत्रचित्पात्रे संस्थाप्य, तस्यां गणेशसूर्यविष्णुशिवदुर्गाः पृथक्पृथगावाह्य, सम्पूज्य "ह्रौं" मन्त्रेण पञ्चगव्ये निक्षिप्य, पुनस्तां तस्मादुद्-धृत्य, स्वर्णपात्रस्थे पिप्पलपत्रस्थे वा धूपवासिते पञ्चामृते निक्षिप्य, पुनस्ता-मुद्धृत्य, शीतलजले निक्षिप्य, प्रक्षाल्य, चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरकुङ्कुमसौगन्धि-कैरनुलिप्य, तस्यां 'ह्सौं' इति मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, नवग्रहान्दशदिक्पालांश्च सम्पूज्य, सघृतैस्तिलैर्यथाशक्ति स्वेष्टमन्त्रेण हुत्वा, गुरवे यथाशक्ति काञ्चनं दक्षिणां दत्वा, ब्राह्मणांश्चाऽन्नादिभिस्तोषयेदिति ।

अथवा सूत्रं मणींश्च पञ्चगव्ये दिनत्रयं संस्थाप्य, चतुर्थदिने समुद्धृत्या-ऽस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, हृन्मन्त्रेण ग्रथयित्वा, स्थण्डिले स्वेष्टदेवतापूजामण्डलं विधाय, तत्र स्वेष्टदेवतां सम्पूज्य, मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, स्वेष्टदेवताकल्पोक्तपुरश्च-रणहोमद्रव्येण घृतेन वा यथाशक्ति हुत्वा, मण्डलमध्ये संस्थाप्य, तस्यामस्त्रमन्त्रं मूलमन्त्रं षडङ्गमन्त्रांश्च विन्यस्य, स्वेष्टदेवतारूपां तां विचिन्त्य, वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं दत्वा, तस्यामिष्टदेवतां सम्पूज्याऽऽचार्यं दक्षिणादिभिः परितोष्य, प्रणम्य, ब्राह्मणांश्वाऽन्नादिभिस्तोषयेदिति ।

इत्थं प्रतिष्ठितया मालया नाऽन्यं मन्त्रं जपेत् । अथ प्रकृते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं विधाय, मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान्विन्यस्य, हृदि देवं ध्यायञ्जपमालां वामहस्ते कुत्रचित्पात्रे वा संस्थाप्याऽर्घोदकेन मूलमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्ति स्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥७॥

इति गन्धपुष्पाक्षतैर्मालां सम्पूज्य- "ॐ गं अविघ्नं कुरु माले त्वमि'ति मन्त्रेण दक्षिणकरेण मालामादाय स्वशिरसि श्रीगुरुं, कण्ठे पीतवर्णं मूलमन्त्रं, हृदये स्वेष्टदेवं, गुरुपादयोः स्वात्मानं च ध्यात्वा, भ्रूमध्यस्थाज्ञाचक्रे गुरुदैवतमन्त्रात्मनामैक्यं विभाव्य, कण्ठस्थविशुद्धिचक्रे तच्चतुष्टयमेकीभूतं सुषुम्णावर्त्मनाऽऽनीय, तत्र देवं ध्यात्वा, मूलमन्त्रेण हृदयस्थानाहतचक्रमानीय, तत्राऽपि देवं ध्यायन्हृदयसमीपे मालामानीय, दक्षिणहस्तमध्यमाङ्गुलिमध्यपर्वणि संस्थाप्यैकचित्तो भुग्नग्रीवोन्नतगात्रः कण्डून्मीलनरहितः खटखटादिशब्दमकुर्वन् मन्त्रार्थगतचित्तो मालायाः प्रतिबीजं मन्त्रमुच्चारयन् पूर्वबीजजपसमयेऽपरबीजमङ्गुष्ठेनाऽस्पृशन् प्रणवोच्चारणपूर्वकं मन्त्रमारभ्य प्रातःकालान्मध्यन्दिनावधि देशाद्युपद्रवसम्भावनायां त्वरया समापनीये वा सार्द्ध प्रहरत्रयावधि जपित्वा, सर्वशेषावृत्यन्ते पुनः प्रणवमुच्चार्य्य जपं समाप्य—

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम ।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा ॥८॥

इति मन्त्रेण मालां स्वशिरसि निधाय, पुनः प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान्विधायाऽर्घोदकेन प्रागुक्तमन्त्रेण जपं समर्प्य, प्रागुक्तमालापूजनमन्त्रेण मालां सम्पूज्य रहसि स्थापयेत् । अत्र प्रणवोच्चारणं तु त्रैवर्णिकानामेव, शूद्रादीनां तु औंकारस्त्वाद्यन्तयोः प्रणवत्वेन ग्राह्य इति ।

ततो मध्याह्नस्नानादिकं विधाय, पुनः पूजां विस्तारेण कृत्वा, वैश्वदेवादिकं विधाय, स्वेष्टदेवतामन्त्रजपध्यानकीर्त्तनश्रवणादिना दिनशेषं समाप्य, शक्तौ सायन्तनस्नानं विधाय, देवं यथोक्तविधिना सम्पूज्य, भोजनं कुर्यात् । तत्र प्रमाणोक्तं प्रशस्तभोज्यान्नं स्वेष्टदेवतायै निवेदितं मध्यपत्ररहितपलाशपत्रकल्पितपत्रावल्यां संस्थाप्य, वैदिकमन्त्रैः संस्कृत्य, मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य, प्रतिद्रव्यं मूलमन्त्रेण सप्तधाऽभिमन्त्र्य, हितं मितं हृन्मन्त्रेणाऽश्नीयात् । मूलमन्त्रेण द्वादशवारमभिमन्त्रितं जलं च पिबेदिति ।

॥ अथ शयनम् ॥

तत्र कुशनिर्मितायां शय्यायां प्रक्षालितायां क्षाराद्भिः प्रक्षालितं वस्त्रमास्तीर्य्य, शय्यां मूलमन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य "यज्जाग्रत" इति सूक्तस्य सङ्कल्प ऋषिर्मनो देवता त्रिष्टुभ्छन्दः सूक्तजपे विनियोगः—

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरं गमय ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥९॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१०॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्त्रायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥११॥

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१२॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते भीषुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१३॥

इति मन्त्रांस्त्रिः पठित्वा—

ॐ भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन ।
इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शाश्वत ॥१४॥

"ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा ।"१५

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ।
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥१६॥

स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ॥
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥१७॥

ॐ नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥१८॥

इति मन्त्रांश्च सकृत्पठित्वा प्राक्शिरा दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत् । ततः प्रातरुत्थाय श्रीगुरुचरणारविन्दयुगलं प्रणम्य, पुष्पहस्तः स्वप्नं तस्मै निवेदयेत् । गुरोरन्यत्र न प्रकाशयेत् । इत्थं नियमेन प्रत्यहं जपं विधाय, समस्तजपसमाप्त्यनन्तरं तज्जपदशांशतः प्रागुक्तविधिना तत्तत्कल्पोक्तद्रव्येण हवनं विधाय, होमाशक्तौ यथोक्तसंख्यं जपमेव विधाय, चन्दनागुरुकर्पूरादिवासितैर्ज्जलैर्होमसंख्यादशांशतः प्रागुक्तप्रकारेण देवं ध्यात्वा, सम्पूज्य, सन्तर्प्य, स्वात्मानं देवतारूपं ध्यायन् कुम्भमुद्रया मूलमन्त्रान्ते 'आत्मानमभिषिञ्चामि नम' इति तर्पणसंख्यादशांशतः स्वमूर्द्धन्यभिषिच्याऽभिषेकसंख्यादशांश-

संख्याकान् सदाचारान् ब्राह्मणान्प्रभाते निमन्त्र्याऽऽहूयाऽभ्यङ्गादिना स्नपयित्वा, वस्त्रगन्धादि दत्वा, नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैः स्वदेवताधिया भोजयित्वा, ताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोष्य विसृजेदिति प्रतिदिवसं लक्षान्ते वा समस्तसंख्यासमाप्तौ वा भक्तिपूर्वकं कुर्यात् । **इति पुरश्चरणप्रयोगः** ।

॥ **अथ मन्त्रसिद्धिरन्योपायः** ॥ तत्र—

कुलप्रकाशतन्त्रे—

अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः ॥१९॥
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रेऽम्भसि स्थितः ।
स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥२०॥
तावत्कालं जपित्वेत्थं ततो होमादिकं चरेत् ॥

अयमर्थः :— सूर्यग्रहणे पूर्वदिवसे उपवासं विधाय, चन्द्रग्रहणे तद्दिनएवोपोषितो ग्रहणं दृष्ट्वा, स्नात्वाऽमुकस्मिन्मासि अदकोराशिगते भानौ अमुकस्मिन् तिथ्यावमुकस्मिन्पक्षे भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे अमुकस्मिन् तीर्थे सूर्यग्रहणे चन्द्रग्रहणे वाऽदकोगोत्रः अदकःशर्मा अदकोमन्त्रसिद्धिकामः अदकोग्रहणे तत्समयमारभ्य विमुक्तिपर्यन्तं अदकोमन्त्रजपमहं करिष्ये इति सङ्कल्पं विधाय, विमुक्तिपर्यन्तं जपेत् । ततः ग्रहणकालजातजपदशांशतो होमं, तद्दशांशतस्तर्प्पणादि कुर्यात् । होमाशक्तौ प्राग्वज्जपमेव विदध्यात् ।

॥ **अपरो मन्त्रसिद्धेरुपायः** ॥ तत्र—

कुम्भसम्भवः —

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्द्दशी ।
देवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतानां चतुष्टयम् ॥२१॥
दशांशं होमयेत्पश्चात्तर्प्पयेदभिषेचयेत् ।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः.................. ॥२२॥

अयमर्थः — 'अद्येत्यादि अदकोमन्त्रसिद्धिकामः कृष्णाष्टमीमारभ्य तच्चतुर्द्दशीपर्यन्तमदकोमन्त्रस्याऽयुतचतुष्टयजपतद्दशांशहोमादिसहितम्पुरश्चरणमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्याऽयुतचतुष्टयजपं सप्तधा विभज्य, प्रत्यहं चतुर्द्दशोत्तरसप्तशताधिकसहस्रपञ्चकं जपित्वाऽन्त्ये दिने[1] षोडशोत्तरसप्तशताधिकसहस्रपञ्चकं जपेदित्येवमयुतचतुष्टयं जपं कृत्वा, तद्दशांशं होमादिकं कुर्यात् ।

---

१. ख. जपित्वाऽन्तिमदिने।

अन्यः प्रकारस्तु—

कुलार्णवे—

मन्त्री तु प्रजपेन्मन्त्रं मातृकाक्षरसम्पुटम् ।
अनुलोमविलोमेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥२३॥

त्रिषष्ट्यक्षरसंयुक्तमातृकाक्षरसम्पुटम् ।
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्या मासात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥२४॥

मातृकाजपमात्रेण मन्त्राणां कोटिकोटयः ।
सिद्धाः स्युर्नाऽत्र सन्देहो यस्मात्सर्वं तदुद्भवम् ॥२५॥ इति।

अयमर्थः—क्रमोत्क्रमान्मातृकापुटितं मन्त्रं प्रतिदिनं शतं शतं मासमात्रं जपेदिति । अत्राऽपि 'अद्येत्यादि क्रमोत्क्रममातृकापुटितमन्त्रस्य मासमात्रं प्रतिदिनं शतशतसंख्यजपमहं करिष्य' इति सङ्कल्पं विधाय प्रतिदिनं जपेत् ।

मातृकासम्पुटप्रकारस्तु—'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं राम क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं' इति शतवारं मूलमन्त्रं जपेत् ।

त्रिषष्टिवर्णमातृका तु ब्रह्मचप्रातिशाख्ये—

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः ।
प्रकृते संस्कृते चाऽपि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥२६॥

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः[1] स्मृताः ॥२७॥

अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵकᳶपौ चाऽपि पराश्रयौ ।
दुःस्पृशश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च ॥२८॥

तद्विवेकस्तु—अ आ आ३ इ ई ई३ उ ऊ ऊ३ ऋ ॠ ॠ३ लृ ए ए३ ऐ ऐ३ ओ३ ओ३ औ औ३ २१, क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह ञ ण न म अं अः ᳵक ᳶप ळ एवं **त्रिषष्टिवर्णमातृका ।**

---

१. ख. ञमाः ।

चतु:षष्ट्यर्णपक्षे तु–लृवर्णो न दीर्घोऽस्तीति सूत्रेण लृस्वरस्य दीर्घमात्रस्य निषेधात्, ह्रस्वग्रहणे दोषाभावात् । ह्रस्वेन सह चतु:षष्टिवर्णा ज्ञेयाः । अनया मातृकया प्रत्यक्षरं बिन्दुयुक्तया प्राग्वत्स्वेष्टमन्त्रं सम्पुटीकृत्य मासमात्रं प्रतिदिनमष्टोत्तरशतं जपेत् । संङ्कल्पोऽपि प्राग्वदेव ।

अपरश्च कुलार्णवे—

मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्या पुटीकृतम् ।
क्रमोत्क्रमात्सहस्रं तु मासात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥२९॥ इति ।

शारदायान्तु—

भूतलिप्या पुटीकृत्य यो मन्त्रं भजते नरः ।
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्या तस्य सिद्धो भवेन्मनुः ॥३०॥

इत्युक्तम् । अयमर्थः—तत्र क्रमोत्क्रमभूतलिपिपुटितमूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं मासमात्रं प्रतिदिनं जपेत् । सङ्कल्पस्तु पूर्ववदेव ।

भूतलिपयस्तु—अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ, ह य र व ल, ङ क ख घ ग, ञ च छ झ ज, ण ट ठ ढ ड, न त थ ध द, म प फ भ ब, श ष स, 'राम' स ष श, ब भ फ प म, द ध थ त न, ड ढ ठ ट ण, ज झ छ च ञ, ग घ ख क ङ, ल व र य ह, औ ओ ऐ ए लृ ऋ उ इ अ, इति मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा प्रतिदिनं मासमेकं जपेत् । अष्टोत्तरशतं गुरुजप्तमन्त्रपरम् ।

प्रकारान्तरस्तु[1] वायवीयसंहितायाम्—

त्रिकालं गन्धपुष्पाद्यैर्योऽर्चते देवतां निशि ।
पुरश्चरणकृत्येन विनैवाऽसौ प्रसीदति ॥३१॥ इति ।

अस्यार्थः—'अद्येत्याद्यमुकस्य मन्त्रस्य सिद्धिकामो रात्रौ त्रिकालपूजनं करिष्य' इति सङ्कल्प्य वत्सरमात्रं प्रतिदिनं रात्रौ त्रिकालं सर्वोपचारैर्देवं साङ्गावरणं पूजयेत् । एवं षण्मासं वा त्रिमासं वा सप्तमासं वा पूजयेत् । पुरश्चरणमन्तरेणाऽपि मन्त्रसिद्धिर्भवतीति ।

अन्यस्तु कादिमते—

यो यो मन्त्रस्तस्य तस्य वर्णौषधिविनिर्मिता ।
तत्तद्वर्णोक्तसंख्याभिर्गुटिका मन्त्रसिद्धिदा ॥३२॥

---

१. क. प्रकारान्तस्तु ।

तयाऽभिषेकस्तद्धरणं तत्(द्)वादस्तद्विलेपनम् ।
तत्पूजां च तथा सिद्धिदायिकाः स्युर्न संशयः ॥३३॥ इति ।

अयमर्थः—तत्र मन्त्रवर्णौषधिविनिर्मितमन्त्रवर्णसमसंख्यानां गुटिकानां धारणं, विलेपनं, ताभिः पूजा, तत्क्वाथजलैः स्नानं, तद्भस्मधारणं च कुर्यात् । तेन मन्त्रसिद्धिर्भवति । वर्णौषधयस्तु प्रागुक्ताः । मन्त्रवर्णौषधिग्रहणे यस्मिन्मन्त्रे यस्य वर्णस्य यावत्य आवृत्तयस्तद्वर्णौषधेस्तावन्तो भागा ग्राह्या इति सम्प्रदायः ।

अपरप्रकारश्च मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

संस्कृतं पूजितं मन्त्रं दत्वा शिष्याय देशिकः ।
कुर्यादथ तयोरैक्यं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥३४॥

मन्त्रं विदर्भयित्वा तु नामवर्णैर्यथाक्रमम् ।
आद्यन्ते सकल नाम ततः प्रणवमालिखेत् ॥३५॥

स्वराः पत्रेषु संलेख्या ध्यायेत्तानमृतात्मकान् ।
भूर्ज्जे रोचनगन्धाढ्यैः पद्ममध्ये सुशोभने ॥३६॥

मृदा पवित्रयाऽऽवेष्ट्य तत्पुनः सिक्थकेन तु ।
निक्षिपेन्मधुरे तत्तु मृण्मये लघुभाजने ॥३७॥

क्षीरपूर्णे नवे कुम्भे तत् क्षिपेल्लघुभाजनम् ।
धारयेद्देशिकः कुम्भमग्निकुण्डसमीपतः ॥३८॥

मन्त्रसाधकयोरैक्यसिद्धयर्थं जुहुयात्ततः ।
मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञः सहस्रं शतमेव वा ॥३९॥

कुम्भे सम्पातयेच्चैव मधुराणां त्रयं शुभम् ।
होमं समाप्य तं कुम्भं विनिःक्षिप्य जलाशये ॥४०॥

स्वगुरुं ब्राह्मणांश्चाऽन्नैस्तोषयेद्दक्षिणादिभिः ।
एतद्यो न विजानाति नाऽसौ साधक उच्यते ॥४१॥

रहस्यं कथितं चैतन्न वदेद्यस्य कस्यचित् ।
उत्तमाय तु शिष्याय पुत्राय वा वदेदिदम् ॥४२॥ इति ।

अयमर्थः—भूर्ज्जपत्रे गोरोचनागन्धादिभिरष्टदलं पद्मं विरच्य तत्कर्णिकायां साधकनामविदर्भितमन्त्रमाद्यन्ते सकलं नाम प्रणवं च विलिख्य, पत्रेषु द्वन्द्वशः क्रमेण स्वरान्विलिख्य गुलिकीकृत्य, पवित्रमृदा संवेष्ट्य, तदपि सिक्थकेन

संवेष्ट्य, मधुरत्रयपूरिते स्वल्पमृत्पात्रे निक्षिप्य, क्षीरपूर्णे नूतनकुम्भे सयन्त्रगुलिकं तत्पात्रं निक्षिप्य[1], प्रागुक्तविधिनाऽग्निं कुण्डादौ संस्कृत्य, तत्समीपे तत्कुम्भं संस्थाप्य 'ॐ अद्येत्यादि अमुकमन्त्रसिद्धिकामो विद्यासाधकयोरैक्यसिद्ध्यर्थमष्टोत्तरसहस्रं शतं वा मधुरत्रयहोममहं करिष्य' इति सङ्कल्प्योपास्यमन्त्रेण सङ्कल्पितसंख्यं प्रत्याहुति कुम्भे सम्पातं स्रुवलग्नं हुतशेषं निक्षिपन् हुत्वा, तं कुम्भं जलाशये निक्षिप्य, गुरुं ब्राह्मणादींश्चाऽन्नादिभिस्तोषयेदिति ।

एवं कृतेऽपि यदि न सिद्ध्यति तदा मन्त्रस्य **द्रावणादिकं** कुर्यात् । तदुक्तम् **महाहारकतन्त्रे**—

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणे ।
दहनं च बुधः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥४२॥

द्रावणं वारुणैर्बीजैर्ग्रथनं क्रमयोगतः ।
तन्मन्त्र यन्त्र आलिख्य शिलाकर्पूरकुङ्कुमैः ॥४३॥

उशीररोचनाभ्यां च मन्त्रं सङ्ग्रथितं लिखेत् ।
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तं लिखितं क्षिपेत् ॥४४॥

पूजनाज्जपनाद् होमाद् द्रावितः फलदो भवेत् ।
द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद् बोधनं तस्य कारयेत् ॥४५॥

सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य तं जपेत् ।
एवं बुद्धो भवेत्सिद्धो नो चेत्तस्य वशं कुरु ॥४६॥
कुचन्दनं तथा दारुहरिद्रा मदनं शिला ।

मदनं कस्तूरी, शिला मनःशिला ।
एतैस्तु लिखितो मन्त्रो भूर्ज्जपत्रे सुशोभने ॥४७॥

कण्ठे धृतौ भवेत्सिद्धो नो चेत् कुर्यात्तु पीडनम् ।
अधरोत्तररूपेण पदानि परिजप्य वै ॥४८॥

ध्यायीत देवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम् ।
विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाऽऽक्रम्य चाऽङ्घ्रिणा ॥४९॥

---

१. ख प्रक्षिप्य

तथा पूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने ।
पीडितो लज्जयाऽऽविष्टः सिद्धश्चेन्न हि पोषयेत् ॥५०॥

बालातृतीयबीजेन पुटितं मधुदुग्धतः ।
धारयेल्लिखितं मन्त्रमथवा शोषणं चरेत् ॥५१॥

द्वाभ्यां च वायुबीजाभ्यां लिखेन्मन्त्रं विदर्भितम् ।
भस्मना धारयेत्कण्ठे नो चेद्द्वाभ्योऽग्निबीजतः ॥५२॥

मन्त्रार्णान् वह्निबीजेन चतुर्दिशि समावृतान् ।
लिखेत्पालाशतैलेन धारयेत् कण्ठदेशतः ॥५३॥

सिद्धः स्यान्नाऽत्र सन्देहो मन्त्र इत्याह शङ्करः । इति ।

॥ अथ तेषां प्रयोगः ॥

तदादौ द्रावणम्—

वमिति वरुणबीजग्रथितमूलमन्त्रं कर्पूरकुङ्कुमगोरोचनमनःशिलोशीरैः पूजाचक्ररूपयन्त्रमध्ये विलिख्य, कस्मिंश्चित्पात्रे दुग्धघृतमधुजलमेकीकृत्य, तत्र तद्यन्त्रं निधाय, पूजाजपहोमान् कुर्यादिति ।

॥ अथ बोधनम् ॥

तत्तु वाग्भवबीजपुटितमन्त्रजपरूपम् ।

॥ अथ वशीकरणम् ॥

तत्र भूर्जपत्रे रक्तचन्दनदारुहरिद्राकस्तूरीमनःशिलाभिर्मूलमन्त्रमालिख्य कण्ठे धारयेदिति ।

॥ अथ पीडनम् ॥

तत्राऽधरोत्तरभावेन मन्त्रपदानि प्रजप्य, देवतामप्यधरोत्तरभावेन ध्यात्वाऽर्कदुग्धेनाऽर्कपत्रे मन्त्रमालिख्य, तत्पादेनाऽऽक्रम्याऽधरोत्तरक्रमपठितमन्त्रेण होमं च कुर्यात् ।

॥ अथ पोषणम् ॥

तत्र बालातृतीयबीजपुटितं मन्त्रं गोदुग्धमधुभ्यां भूर्जादौ विलिख्य धारयेदिति ।

॥ अथ शोषणम् ॥

तत्र यज्ञभस्मना वायुबीजविदर्भितं मन्त्रं विलिख्य कण्ठे धारयेदिति ।

॥ अथ दहनम् ॥

पलाशबीजतैलवह्निबीजसम्पुटितं मन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य, प्रतिवर्णमधश्चोर्ध्वं च वह्निबीजमालिख्य कण्ठे धारयेदिति ।

विदर्भलक्षणं शारदातिलके—

मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।
विदर्भ एष विज्ञेयः·····················॥५४॥इति।

एकान्तरं तु ग्रथनमिति च बालातृतीयबीजं वक्ष्यते ।

इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ सप्तदशस्तरङ्गः ॥१७॥

———

[अष्टादशस्तरङ्गः]

॥ अथ काम्यपूजाविधिः ॥ तत्र—

श्रीकुलमूलावतारे—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि काम्यकर्माणि सुन्दरि ।
यानि ज्ञात्वाऽखिलान् देवि मन्त्री कामान्समश्नुते ॥१॥

षड्विधानीह तानि स्युः शृणु देवि यथाक्रमम् ।
शान्तिर्वश्यं स्तम्भनं च विद्वेषोच्चाटमारणे ॥२॥

शान्तिर्नाम मनुष्याणां रोगकृत्यादिनाशनम् ।
वश्यं स्त्रीराजलोकानां स्वायत्तीकरणं मतम् ॥३॥

क्रोधोद्योगगतीनां[1] तु निरोधः स्तम्भनं मतम् ।
राजादीनां गजव्याघ्रसर्पादीनामपीश्वरि ॥४॥

ब्रह्मयामले—

अग्निरापस्तथा सैन्यं वीर्यं दिव्यं महौषधम् ।
विषदंष्ट्रादिसर्वेषां स्तम्भनं कर्म कारयेत् ॥५॥

---

१ ख क्रोधो योगगतीनां ।

तथा— अन्योन्यं वैरजननं स्निग्धानां द्वेषणं स्मृतम् ।
उच्चाटनं तु द्विषतां देशादिभ्यः प्रवासनम् ॥६॥
मारणं तु प्रहरणं शत्रूणामीरितं प्रिये ।

तन्त्रराजे तु—

रक्षाशान्तिर्जयो लाभो निग्रहो निधनं तथा ।
षट्कर्माणि तदङ्गत्वादन्येषां न पृथक्स्थितिः[1] ॥७॥

तत्र रक्षा नाम राजादीनां परचक्रचोरव्याघ्रव्यालादिभयेभ्यः परिपालनम् । रक्षाशब्देन स्तम्भनमप्युच्यते । रक्षाया राजादीनां क्रोधोद्योगगतिनिरोधरूपत्वात् । शान्तिस्तु लोकानां भूतप्रेतपिशाचकृत्याद्युपद्रवनिवृत्तिः । सङ्ग्रामद्वन्द्वयुद्धवादद्यूतादिषु विजयो जयः । वश्याकर्षणयोरपि जयान्तर्वर्त्तित्वं, तयोः सर्वजनचित्तजयरूपत्वात् । राजादेर्वाणिज्यतश्चाऽभीष्टवस्तुप्राप्तिर्लाभः । विद्वेषणोच्चाटनव्याधिकरणादीनि निग्रहः । निधनं मारणम् ।

ब्रह्मयामले—

मारणे वर्जयेद्विप्रानन्यांश्चापि सुधार्मिकान् ।
स्त्रीजनव्यतिरिक्तेषु राजवैरिषु योजयेत् ॥८ ।

स्वरोषतो वा लोकानां रक्षार्थं वा तदाऽऽचरेत् ।
न तु लोभाद्भयाद्वाऽपि कुर्यान्मन्त्री तु मारणम् ॥९॥

प्रायश्चित्तं च कर्त्तव्यं देवि तद्दोषशान्तये ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्तावदीश्वरि ॥१०॥

सघृतैः पायसैर्देवि तिलैर्वा वीरवन्दिते ।
आत्मरक्षा च कर्त्तव्या कर्मकाले सदा बुधैः ॥११॥

षोढा विभज्याऽहोरात्रं वसन्तादिऋतुक्रमात् ।
हेमन्ते शान्तिकं कुर्याद्वसन्ते वश्यकर्म च ॥१२॥

शिशिरे स्तम्भनं प्रोक्तं ग्रीष्मे विद्वेषणं प्रिये ।
प्रावृडुच्चाटने शस्ता शरन्मारणकर्मणि ॥१३॥

---

१. ख. पृथक्स्थितः ।

[1]पिङ्गलामते—

हेमन्तो धवलो वृद्धो वसन्तो लोहितो युवा ।
[2]अरक्तधवलो बालः शिशिरः सम्प्रकीर्त्तितः ॥१४॥

ग्रीष्मो धूम्रशरीरस्तु श्यामाङ्गो जलदागमः ।
शरत्कालः कृष्णवर्णः शान्त्यादावृतवस्त्विमे ॥१५॥

अत्राऽऽकर्षणेऽपि वसन्तकाल एव ग्राह्यस्तयोरेकफलदत्वेनाऽभेदात् ।

तथा— शान्तिकर्मणि देवेशि पूजयेद्वारिमण्डले ।
वश्याय मण्डले वह्नेः स्तम्भायाऽवनिमण्डले ॥१६॥

विद्वेषणे व्योमगेहे यजेदुच्चाटने प्रिये ।
वायुगेहे वरारोहे वह्निगेहे तु मारणे ॥१७॥

महाकपिलपञ्चरात्रे—

लं पीता पृथिवी ज्ञेया वं शुक्लं कीर्त्तितं पयः ।
रं रक्तोऽग्निर्मरुत्कृष्णो यं हं शुक्लतरं वियत् ॥१८॥ इति ।

तन्त्रराजे—

रक्षायै भूपुरे शान्त्यै पूजयेद्वारिमण्डले ।
जयाय दहनागारे लाभायाऽनिलमण्डले ॥१९॥

शेषयोर्व्योमगेहे स्यात् पीतश्वेतारुणासितैः ।
द्रव्यैः षोढा विभज्याऽहः क्रमाद्रात्रिं च पूजयेत् ॥२०॥
तानि चैत्रादिऋतवः खण्डानि समुदीरिताः ।

कुलप्रकाशतन्त्रे—

मण्डलानि महेशानि भूतानां शृणु वल्लभे ।
आकाशमण्डलं धूम्रं वर्त्तुलं परिकीर्त्तितम् ॥२१॥

---

१. इतः पूर्वं निम्नांशो विशेषः ख. पुस्तके—

रुद्रयामले—शान्त्यर्थं प्रथमः कालो मध्याह्ने द्वेषणन्तथा ।
तृतीयः स्तम्भने प्रोक्तश्चतुर्थो वश्यकर्मणि ॥१॥
उच्चाटने पञ्चमश्च षष्ठो मारणकर्मणि ।

२. ख. आरक्तधवलो ।

षट्कोणमण्डलं वायोः [1]कृष्णषड्बिन्दुलाञ्छितम् ।
सस्वस्तिकं त्रिकोणं तु रक्तं वह्नेस्तु मण्डलम् ॥२२॥

अर्द्धचन्द्रनिभं स्वच्छं पद्मद्वयविराजितम् ।
आप्यं मण्डलमाख्यातं चतुरश्रं महेश्वरि ॥२३॥

शारदातिलके—

तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः ।
वर्णैः स्वै रचितान्याहुः स्वस्वनामावृतान्यपि ॥२४॥

अत्र स्वस्वनामावृतानीत्यस्य तट्टीकाकृता राघवभट्टेनैवं व्याख्यातम्-वक्ष्यमाणभूतलिपिमन्त्रेषु तत्तद्यन्त्रकर्णिकालिखितमन्त्रावृतानीति साम्प्रदायिका वदन्तीति ।

ब्रह्मयामले—

तत्तद्भूतोदये काले तत्तन्मण्डलमालिखेत् ।

तन्त्रराजे—

मूलाधारोद्भवो वायुः प्राणाद्याख्यां समश्नुते ।
स तु पञ्चविधो भूतभेदादुद्भवदेशतः ॥२५॥

नासायाः पुटयोः पार्श्वतुङ्गमध्याधरन्ध्रगाः ।
प्राणाग्नीलाम्बुखात्मानः पवनाः स्युर्यथाक्रमम् ॥२६॥ इति ।

अस्यार्थ.—नानारन्ध्रेण निर्गच्छन्वायुर्यदा तिर्यक् चलति तदा वायुभूतोदयकालः, यदोर्द्ध्वं चलति तदाऽग्नेरुदयः, यदा दन्तलग्नस्तदा धरोदयः, यदा त्वधश्चलति तदा जलोदयः, यदा मध्यगतस्तदाकाशभूतोदयकाल इति ।

तन्त्रान्तरे—

भोजनं मैथुनं युद्धं फलपुष्पग्रहं तथा ।
कुर्यात् क्रूराणि कर्माणि वायौ दक्षिणसंश्रिते ॥२७॥

यात्राविवाहकर्माणि शुभकर्माणि यानि च ।
तानि सर्वाणि कुर्वीत वामे वायौ च संश्रिते ॥२८॥

व्यायामं शयनं क्रूरं षट्कर्मादिकसाधनम् ।
तानि सिद्धयन्ति सूर्येण नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२९॥

---

१. ख. कृष्णं० ।

सारसङ्ग्रहे—

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा कालीति षट्क्रमात् ।
षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् ॥३०॥

ज्येष्ठा धूमावती, काली भद्रकाली ।

ब्रह्मयामले—

अथ कर्म प्रवक्ष्यामि सर्वदिक्षु यथाक्रमम् ।
दिक्पूर्वाभिमुखो भूत्वा वश्यार्थं कारयेत्सुधीः ॥३१॥

दक्षिणाशामुखो भूत्वा सर्वाभिचारकर्मसु ।
धनसिद्धिमवाप्नोति पश्चिमाभिमुखस्थितः ॥३२॥

उत्तराभिमुखः कुर्यात्सर्वशान्तिकरं परम्
आग्नेयाभिमुखो भूत्वा सर्वाकर्षणकर्मसु ॥३३॥

नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य विद्वेषं कारयेत्प्रिये ।
वायवीं दिशमाश्रित्य शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥३४॥
ईशानीं समुपाश्रित्य सर्वज्ञानं प्रसाधयेत् ।

[1][तथा— पद्मपाशगदाख्याश्च मुशलाशनिखङ्गकाः ।
मुद्राः षट्कर्मसु प्रोक्तास्तत्तत्कर्मणि योजयेत् ॥३५॥

आसां लक्षणानि प्रागुक्तानि ।]

तथा— पद्मं च स्वस्तिकं चैव विकटोत्कटसञ्ज्ञके ।
वज्रं भद्रासनं चेति चाऽऽसनानि विदुर्बुधाः ॥३६॥

पद्मस्वस्तिकयोर्लक्षणं तु प्रागुक्तम् । अन्येषां लक्षणानि तु-

पदार्थादर्शे—

जानुजङ्घान्तराले तु भुजयुग्मं प्रकाशयेत् ।
विकटासनमेतत्स्यादुपविश्योत्कटासने ॥३७॥

कृत्वोत्कटासनं पूर्वं समपादद्वयं ततः ।
अन्तर्जानुकरद्वन्द्वं कुक्कुटासनमीरितम् ॥३८॥

---

१. [–] कोष्ठबद्धोंऽशः ख. पुस्तके नास्ति ।

शारदातिलके—

ऊर्वोः पदौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली ।
करौ निदध्यादाख्यातं **वज्रासनमनुत्तमम्** ॥३९॥
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् ।
वृषणाधः पार्श्वपादौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥४०॥
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः पूजितं परम् ।
पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः ॥४१॥
वज्रं भद्रकमित्याहु**रासनानि** मनीषिणः ।

ब्रह्मयामले—

गजचर्म स्तम्भने च मारणे माहिषं तथा ।
मृगचर्म तथोच्चाटे छागलं वश्यकर्मणि ॥४२॥
विद्वेषे जाम्बुकं चर्म गोचर्मणि तु मोहने ।
चित्रकं मोक्षदं चैव सुखार्थे रुरुचर्मणि ॥४३॥
अभिचाराणि सर्वाणि मेषचर्मणि कारयेत् ।
सर्वविज्ञानकार्येषु श्वेतकम्बलमासनम् ॥४४॥
नानाविधेषु कार्येषु व्याघ्रचर्म समीरितम् ।
खड्गचर्मासनं कार्यं पितृमोक्षकरं परम् ॥४५॥
शान्तौ कुशासनं भद्रे सर्वसिद्धिकरं परम् ।
मोहने राजतं[1] चैव स्तम्भने ताम्रमासनम् ॥४६॥
मारणोच्चाटने चैव विद्वेषे चाऽभिचारके ।
सर्वाकर्षणकार्येषु चाऽऽसनं चाऽऽयसं विदुः ॥४७॥

[पल्लवाः]

त्रैलोक्यडामरतन्त्रे—

नमोऽन्तः शान्तिके पुष्टौ प्रणिपाते च कीर्त्तितः ।
वश्याकर्षणहोमेषु स्वाहान्तः सिद्धिदायकः ॥४८॥
वौषट्पल्लवसंयुक्तो मन्त्रः[2] पुष्ट्यादिसाधने ।
हुङ्कारपल्लवोपेतो मारणे ब्राह्मणं विना ॥४९॥

१. ख. राजन । २. क. मन्त्र ।

मन्त्रभञ्जनकार्ये च सुघोरभयनाशने ।
वषडन्तो महाकालग्रहमालाविनाशकः ॥५०॥

खण्डनोच्चाटने वेधे मन्त्रः फट्पल्लवान्वितः ।
ॐकारमुखरौ मन्त्रौ वेदागमसमुद्भवौ ॥५१॥

पल्लवोऽस्त्यागमे[1] मन्त्रे वैदिके नाऽस्ति पल्लवः ।
पल्लवेन विना जप्यो मन्त्रो वेदसमुद्भवः ॥५२॥
न नग्नः कीर्त्यते तस्मादैश्वर्यपरिधानवान् ।

'नमोऽन्त' इत्याद्युक्तमेतत्पल्लवषट्कं काम्यजपे तत्तत्कामनाभेदे मूलमन्त्रान्ते योज्यम् ।

शारदातिलके—

ग्रथनं च विदर्भश्च सम्पुटो रोधनं तथा ।
योगः पल्लव इत्येते विन्यासाः षट्सु कर्मसु ॥५३॥

मन्त्रार्णान्तरितान्कुर्यान्नामवर्णान् यथाविधि ।
ग्रथनं तद्विजानीयात् प्रशस्तं शान्तिकर्मणि ॥५४॥

मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।
विदर्भ एव विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि ॥५५॥

आदावन्ते च मन्त्रः स्यान्नाम्नोऽसौ **सम्पुटः** स्मृतः ।
एष संस्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः ॥५६॥

नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रं स्याद्रोधनं मतम् ।
विद्वेषणविधाने तु प्रशस्तमिदमुत्तमम् ॥५७॥

मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम **योगः** प्रोच्चाटने मतः ।
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रः **पल्लवो** मारणे मतः ॥५८॥

पदार्थादर्शे—

नमःस्वाहास्वधावौषट्हुंफडन्ताश्च **जातयः**[2] ।
शान्तौ वश्ये तथा स्तम्भविद्वेषोच्चाटमारणे ॥५९॥ इति ।

---

१. ख पल्लवोऽस्यागमे । २ क. जायतः ।

अन्यत्राऽपि—

अर्च्चनं क्रोधशान्त्यादौ नमःशब्दं प्रयोजयेत् ।
अग्निकार्ये च वश्यादौ स्वाहाशब्दं प्रयोजयेत् ॥६०॥
मारणादिषु फट्कारं विद्वेषादौ च हुँपदम् ।
वौषडाप्यायनादौ स्याद् द्वेषोत्सादे वषट् स्मृतम् ॥६१॥ इति ।

तथाऽन्यत्र तु—

वश्याकर्षणसन्तापे होमे स्वाहा प्रयोजयेत् ।
क्रोधोपशमने शान्तौ पूजने च नमो वदेत् ॥६२॥
वौषट् सम्मोहनोद्दीपपुष्टिमृत्युञ्जयेषु च ।
हुंकारे प्रीतिनाशे च छेदने मारणे तथा ॥६३॥
उच्चाटने च विद्वेषे तथा धीविकृतौ तु फट् ।
विघ्नग्रहविनाशे च हुँफट्कारं प्रयोजयेत् ॥६४॥
मन्त्रोद्दीपनकार्ये च लाभाऽलाभे वषट् स्मृतम् । इति ।

पदार्थादर्शे—

रक्षास्तम्भनकर्माणि वर्णैः कुर्याद्धरामयैः ।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म वर्षणं सलिलात्मकैः ॥६५॥
दाहमोहाङ्गभस्मानि चाऽऽकृष्टिर्दहनात्मकैः ॥
सेनाभङ्गभ्रमोच्चाटद्वेषकर्माणि वायुजैः ॥६६॥
कालभस्मादिचूर्णानि विविधान्यपि मारणम् ।
क्षुद्राणां स्थापने वर्णैर्नभसैः पङ्क्तिसंख्यकैः ॥६७॥ इति ।

आचार्या अपि—

वर्णदशकैः स्युः स्तम्भनाद्या क्रिया इति ।

तोतलामते—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि काम्यकर्माधिदेवताः ।
आदौ समर्चयेद्विघ्नं सर्वविघ्ननिवृत्तये[1] ॥६८॥
ततोऽर्चयित्वा वारेशतिथीशानृक्षदेवताः ।
कर्माधिदेवतां पश्चात् पूजयेद् विधिवत् प्रिये ॥६९॥
ततोऽर्चयेदिष्टदेवं तत्तत्कर्मोक्तविग्रहम् ।
तत्तत्कर्मोक्तविधिना तत्तन्मण्डलमध्यगम् ॥७०॥

१. क. निवर्त्तये ।

तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे जुहुयाद्विधिवत्प्रिये ।
तत्तत्कर्मोदितैर्द्रव्यैस्तत्तत्कर्मोक्तमुद्रया ॥७१॥

मुद्रा तु ब्रह्मयामले—

होमे मुद्रात्रयं प्रोक्तं मृगी हंसी च सूकरी ।
सूकरी करसङ्कोची **मृगी** मुक्तकनिष्ठिका ॥७२॥

हंसी स्यात्तर्ज्जनीमुक्ता त्रिधा मुद्रा प्रकीर्त्तिता ।
शान्तिके पौष्टिके चैव मारणोच्चाटने तथा ॥७३॥

विद्वेषस्तम्भने चैव वश्ये च परमेश्वरि ।
शान्तिके च मृगी ज्ञेया हंसी पौष्टिककर्मणि ॥७४॥
अभिचारे सूकरी स्याद्विद्वेषोच्चाटनादिषु ।

पिङ्गलामते तु मुद्रान्तराण्यप्युक्तानि ।

ततो द्रव्यस्य होमे तु तर्ज्जाद्यङ्गुष्ठयोगतः[1] ।
ज्वरनाशारिसन्तापावुच्चाटो मोहनं क्रमात् ॥७५॥ इति ।

[2]**द्रव्यविशेषास्तत्तत्कर्मसु—**

---

१. ख. तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगतः ।

२. इतः प्राङ्निम्नांशो विशेषोऽवलोक्यते ख. पुस्तके—

विधानमालायाम् पञ्च मुद्रा विजानीयाद् होमद्रव्यग्रहे बुधः ।
न्युब्जेन पाणिना द्रव्यं तर्ज्जनीरहितेन यत् ॥१॥
क्रियते हवनं विप्रैर्मयूरीं तां विदुर्बुधाः ।
अङ्गुष्ठराजिताः सर्वा अङ्गुल्योत्तानलक्षिताः ॥२॥
हवनं क्रियते ताभिः कुक्कुटी सा प्रकीर्त्तिता ।
विकनिष्ठिका तु हंसी स्यान्मुकुलाभा च सूकरी ॥३॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्मृगी चैवोपलक्षिता ।
फलमूलयजौ श्रेष्ठा मुद्रा ज्ञेया शिखण्डिनी ॥४॥
जारणे मारणे तद्वत्कुक्कुटी परिकीर्त्तिता ।
वश्योच्चाटनपूर्वाणां कर्मणां सूकरी मता ॥५॥
शान्तिके पौष्टिके कार्ये मृगी हंसी तथोत्तमा ।
फलमूलयजौ श्रेष्ठा मुद्रा शूकरवल्लभा ॥६॥
कुक्कुटी पत्रपुष्पाणां शालिहोमे तु शूकरी ।
यवानां च तिलानां च हंसी प्रोक्ता मनीषिभिः ॥७॥

मोहशूरोत्तरे—

दूर्वा भव्याश्च समिधो गोघृतेन समन्विताः ।
होतव्याः शान्तिके देवि शान्तिर्येन भवेत्स्फुटम् ॥७६॥

समिधो राजवृक्षोत्था होतव्याः स्तम्भकर्मणि ।
मेषीघृतेन संयुक्ता स्तम्भसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥७७॥

खादिरा मारणे प्रोक्ताः कटुतैलेन संयुताः ।
होतव्याः साधकेन्द्रेण मारणं येन सिद्ध्यति ॥७८॥

उच्चाटने **भूतजाताः** कटुतैलेन संयुताः ।
उच्चाटयेन्महीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥७९॥

वश्ये चैव सदा होमः **कुसुमैर्दाडिमोद्भवैः** ।
अजाघृतेन देवेशि वशयेत् सचराचरम् ॥८०॥

विद्वेषे चैव होतव्या **उन्मत्तसमिधो** मताः ।
अतसीतैलसंयुक्ता विद्वेषणकरं परम् ॥८१॥ इति ।

वायवीयसंहितायां स्रुक्स्रुवयोरपि विशेष उक्तः—

आयसौ स्रुक्स्रुवौ कार्यौ मारणादिषु कर्मसु ।
तदन्यत्र तु सौवर्णौ शान्तिकाद्येषु कृत्स्नशः ॥८२॥ इति ।

[1]**पदार्थादर्शे—**

लौकिकेऽग्नौ शान्तिकं स्यात्पौष्टिकं च शुभं तथा ।
वटजे स्तम्भने होमः श्मशानस्थेऽपि मारणम् ॥८३॥
विभीतकाग्नौ विद्वेषः षट्कर्मण्यग्नयो मताः ।

अन्यत्र तु—

विल्वार्कविप्रनृपदुग्धतरुप्रदीप्ते,
सौम्यं चिकीर्षुरथ कर्म हुनेद् हुताशे ।
रौद्रे विषद्रुमकलिद्रुमशेलुनिम्ब-
धत्तूरकाष्ठपनसैर्निचितेऽथ मन्त्री ॥८४॥

---

१. इतः पूर्वं निम्नोंऽशो विशेषोऽस्ति ख. पुस्तके—
सौवर्णौ यज्ञवृक्षोत्थौ स्रुकस्रुवौ शान्तिवश्ययोः ।
स्तम्भनादिषु कार्येषु स्मृतौ लोहमयौ हितौ ॥१॥

सौवर्णान्यपि राजतान्यपि तथा पात्राणि शैल्वानि वा,
मृत्पात्राण्यपि शान्तिकादिषु परं शस्तानि कर्मस्विह ।
शैल्वक्षद्रुमशिग्रुभूरुहकृतान्येतानि विद्वेषणो-
च्चाटोत्सादनमारणादिषु भृशं शस्तानि पात्राण्यपि ॥८५॥

सोमशम्भौ तु अग्निमुखानामपि नियम उक्तः ।

कुण्डं चतुर्मुखं ध्यात्वा हृदाहुतिभिरीप्सितम् ।
पश्चिमे शिष्यसंस्कारनित्यहोमौ समाचरेत् ॥८६॥

वश्याकर्षणसौभाग्यपुष्टिभाग्याधिरोपणे ।
शान्तिके पाशशुद्धौ च वामे होमः प्रशस्यते ॥८७॥

मुद्रिकाञ्जननिस्त्रिंशवाददेशजिगीषया ।
शिष्टसञ्जननार्थं च प्राचीनवदने यजेत् ॥८८॥

मारणोच्चाटने द्वेषस्तम्भनार्थं च दक्षिणे ।
प्रायश्चित्तं तु तत्रैव पश्चिमे तु विमुक्तये ॥८९॥ इति ।[1]

पिङ्गलामते—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वारतिथ्यर्क्षदेवताः ।
रवौ सूर्यशिवौ देवि चन्द्रे सोमाम्बिके ततः ॥९०॥

भौमे तु मङ्गलगुहौ बुधविष्णू ततः परे ।
परे गुरुचतुर्वक्त्रौ भगौ शुक्रपुरन्दरौ ॥९१॥

मन्दे शनैश्चरः कालो वारेशा देवि कीर्त्तिता ।
परे बुधवारे, परे गुरुवारे ।

---

१. **अतः परमयमंशोऽभ्यधिकः ख. पुस्तके—**

पश्चमीश्वरीतन्त्रे—तर्पणानां क्रमं वक्ष्ये मन्त्राणां पञ्चमाङ्गकम् ।
हरिद्रामिलितं तोयं मोहने भवति ध्रुवम् ॥१॥
उष्णोदकं समरिचं मारणे विहितं भवेत् ।
उच्चाटने मेषरक्तमिश्रितं जलमाहरेत् ॥२॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा क्रियासु स्तम्भनस्य वै ।
मोहने तु सुखासीनो मारणे चैकपादतः ॥३॥
तिष्ठन् कुर्यान्मारणे तु भूमौ पादं निवेश्य वै ।
वामपार्श्वे निषण्णः स्याद् पञ्चधा तर्पणं मतम् ॥४॥

तथा—

ब्रह्मा विधाता विष्णुश्च यमः शीतकरो गुहः ।
इन्द्रश्च वसवो नागा धर्मः शिवदिवाकरौ ॥९२॥

मन्मथश्च कलिश्चैव विश्वेदेवा तिथीश्वराः ।
दर्शे तु पितरो देवि पूज्याः सर्वोपचारकैः ॥९३॥

अश्विनौ च यमो वह्निर्ब्रह्मेन्दुश्च शिवोऽदितिः ।
गुरुकद्रूजपितरो भगोऽर्यमदिनेश्वराः ॥९४॥

त्वष्टा वायुरथेन्द्राग्नी मित्रश्चेन्द्रस्ततः प्रिये ।
निर्ऋतिश्चैव तोयं च विश्वेदेवाः प्रजापतिः ॥९५॥

विष्णुश्च वसवो देवि वरुणश्चाज एकपात् ।
आहिर्बुध्न्यश्च पूषा च प्रोक्ता नक्षत्रदेवताः ॥९६॥

एताः सर्वोपचारैस्तु तद्दिनेषु समर्च्चयेत् ।
प्रणवाद्यैश्चतुर्थी हृदन्तैर्नामभिरीश्वरि ॥९७॥

पदार्थादर्शे—

शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा ।
बुधदेवगुरूपेता शान्तिके वाऽथ सप्तमी ॥९८॥

षष्ठी त्रयोदशी चैव चतुर्थी नवमी तथा ।
सोमदेवगुरूपेता पौष्टिके शंसिता बुधैः ॥९९॥

अष्टमी नवमी चैव दशम्येकादशी तथा ।
शुक्रभानुसुतोपेता शस्ता विद्वेषकर्मणि ॥१००॥

अथो चतुर्द्दशी कृष्णा शनिवारे तथाऽष्टमी ।
उच्चाटनेऽथ शस्तोऽत्र जपः शङ्करभाषितः ॥१०१॥

अमावस्याऽष्टमी कृष्णा तादृगेव चतुर्द्दशी ।
भानुना तत्सुतोपेता भूसुतेनाऽपि संयुता ॥१०२॥
मारणे स्तम्भने चैव मोहद्रोहे प्रशंसति ।

पिङ्गलामते—

पुष्टयाकृष्टिशुभोच्चाटशान्तिस्तम्भनबोधनम् ।
गुरौ कुजे रवौ शुक्रे सोमे मन्दे बुधे क्रमात् ॥१०३॥

पञ्चमीश्वरीतन्त्रे—

ततः काम्यानि कुर्वीत सिद्धमन्त्रो दृढव्रतः ।
गुरुभक्तः शुचिः शान्तः काम्यकर्मविधानवित् ॥१०४॥

आत्मनश्च परस्याऽपि षट्कर्माणि महेश्वरि ।
आर्द्रा मघा मारणेषु स्वाती ब्राह्मी च मोहने ॥१०५॥

स्तम्भने भरणी चित्रा द्वेषे तिष्यपुनर्वसू ।
उच्चाटने तथा स्वाती कथितं ऋक्षसंज्ञकम् ॥१०६॥

वसिष्ठकल्पे—

नक्षत्राणि प्रवक्ष्यामि प्रारम्भे सर्वकर्मणाम् ।
आर्द्रायां सर्वकर्माणि आयुष्यं वैष्णवे तथा ॥१०७॥

शान्तिं पराभिचाराणामपमृत्युजयं तथा ।
त्रिषूत्तरासु पूर्वासु जन्मर्क्षेष्वपि च त्रिषु ॥१०८॥

सम्पत्सिद्धिं च मैत्रेषु सर्वेष्वपि च कारयेत् ।
विद्वेषोच्चाटनादीनि क्रूरकर्माणि कारयेत् ॥१०९॥
नक्षत्रेषु च क्रूरेषु कृत्वा सिद्धिं गमिष्यति ।

मैत्रनक्षत्राणि तु 'चित्रानुराधामृगशिरारेवतीनक्षत्राणि' ।
क्रूरनक्षत्राणि तु 'पूर्वात्रयभरणीमघाख्यानि' ।

॥ अथ काम्यप्रयोगेषु ध्यानभेदमाह ॥

डामरे—

तुष्टिपुष्टयृद्धिकीर्त्तीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।
यथा ध्यानं तथा कुर्यात्पूजने जपकर्मणि ॥११०॥

बुद्धीनां देववाचां च प्राप्तये सर्वकर्मणाम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यानं स्यात्पूजने मतम् ॥१११॥

वश्ये रक्ततरं ध्यानं ध्यात्वा भवति सुप्रजः ।
सर्वरत्ननिभाकारं ध्यात्वा निश्चलमानसः ॥११२॥

सर्वान्कामानवाप्नोति ध्रुवमुक्तं मया तव ।
कल्पान्ताग्निसमं युद्धे ध्यानं प्रोक्तं स्वयम्भुवा ॥११३॥

महाशोषसमायुक्तं ध्यानं वारिभये भवेत् ।
पीयूषवर्षसंयुक्तं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥११४॥

ध्यानं कृत्वा लभेत्सत्यं शीघ्रं सर्वान् मनोरथान् ।

कुलप्रकाशतन्त्रे—

श्वेतद्रव्यैर्यजेच्छान्त्यामारक्तैर्वश्यकर्मणि ।
स्तम्भने पीतवर्णैश्च धूम्रैर्विद्वेषणे यजेत् ॥११५॥

उच्चाटने मारणे च कृष्णद्रव्यैः प्रपूजयेत् ।
[1]कुर्यात्काम्यानि कर्माणि तानि सिद्ध्यन्ति सुन्दरि ॥११६॥

अन्यथा क्रियमाणानि नैव सिद्ध्यन्ति मन्त्रिणाम् ।
गुरुभक्तिः सदा कार्या कर्मकाले विशेषतः ॥११७॥

ऐहिकामुष्मिकानां च गुरुरेव परायणम् ।
कर्मणां परमेशानि तस्मात्तद्भक्तिमान् भवेत् ॥११८॥

शारदातिलके—

यन्त्राणां लेखनद्रव्यं चन्दनं रोचना निशा ।
गृहधूमश्चिताङ्गारो मारणेऽष्टविषाणि च ॥११९॥

श्येनाग्निलोणपिण्डानि धत्तूरकरसं ततः ।
गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम् ॥१२०॥

श्येनः श्येनविष्ठा, अग्निश्चित्रकः, लोणपिण्डो लोणमलम् । त्रिकटुकं शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि ।

---

१. इतः पूर्वं ख. पुस्तके निम्नांशो विशेषो दृश्यते—
आत्मानं तादृशैरेव वस्त्राद्यैर्भूषयेत्तदा ।
एवं षट्कर्मणां देवि साधारणमुदाहृतम् ॥१॥
विशेषस्तु महेशानि तत्तत्कल्पोदितो भवेत् ।
इति विज्ञाय सकलं गुरुतः शास्त्रतः प्रिये ॥२॥

पदार्थादर्शे—

दूर्वामयूरपिच्छाग्निविभीतकनरास्थिजा ।
विषाङ्गारत्रिलोहोत्था हेमरूप्यार्क्कसम्भवा ॥१२१॥

लेखनी वश्य आकृष्टौ सन्तापे स्तम्भमारणे ।
सर्वोपद्रवनाशाय शान्तौ पुष्टौ च जातिजा ॥१२२॥ इति ।

अन्यत्राऽपि—

लेखन्या विलिखेद्यन्त्रं वश्ये दूर्वाङ्कुरोद्भवा ।
आकृष्टौ शिखिपुच्छोत्था सङ्कोचे मुनिसम्भवा ॥१२३॥

हेमजा रौप्यजा चाऽन्या सर्वरक्षाऽपि सा प्रिये ।
करञ्जाक्षमयी वाऽथ मारणेऽपि नरास्थिजा ॥१२४॥

स्तम्भकर्मणि विज्ञेया राजवृक्षसमुद्भवा ।
शान्तिके पौष्टिके चैव आयुःकर्मविधौ तथा ॥१२५॥

सर्वोपसर्गशमने कर्त्तव्या जातिसम्भवा ।
अपामार्गोद्भवा वाऽपि शुभकर्मसु सिद्धिदा ॥१२६॥

आसुरेषु च सर्वेषु शस्यते तीक्ष्णलोहजा ।
विष्ट्यङ्गारदिने घोरे यदि चोत्पादितासु सा ॥१२७॥
ज्वालरज्जुसमा ज्ञेया सर्वभूतनिकृन्तनी ।

[1]आधारविशेषोऽपि—

वीरजे द्वीपिकृत्तौ च लिखितं स्तम्भकृद्भवेत् ।
खरचर्मणि विद्वेषे तथैवोच्चाटने ध्वजे ॥१२८॥
वश्याकर्षणसिद्ध्यर्थं भूर्जपत्रे नियोजयेत् । इति ।

तथा पञ्चमीश्वरीतन्त्रे—

षट्कर्माणि परार्थे यः कुर्यान्मन्त्रविदुत्तमः ।
राज्ञो वा राजपुत्रस्य धनाढ्यस्येतरस्य वा ॥१२९॥

---

१. इतः प्रागयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—
मन्त्रमहोदधौ—शुभे कर्मणि शस्ताहे लेखनीं रचयेत् सुधीः ।
रिक्ते तिथौ कुजदिने विष्टौ तामशुभे पुनः ॥१॥

आस्तिकस्याऽतिभक्तस्य न्यायार्जितधनस्य च ।
कृतज्ञस्य वदान्यस्य गुरुदेवार्चकस्य च ॥१३०॥

सुशीलस्य सुभक्तस्य कुर्यान्नाऽन्यस्य सुन्दरि ।
राजा कारयिता देवि साधकं प्रणिपत्य च ॥१३१॥

वृणुयात्कर्मकर्त्तारं दीक्षोक्तविधिना ततः ।
साधकोऽपि महादेवि सम्यक्सन्तोषवान् शुचिः ॥१३२॥

जितेन्द्रियो जितक्रोधो मानक्षोभविवर्जितः ।
नित्यनैमित्तिकरतः कुर्यात्काम्यानि पार्वति ॥१३३॥

क्रूरकर्मसु देवेशि कर्म कृत्वा यथाविधि ।
तैलाभ्यक्तः पुनः स्नात्वा साङ्गां सावरणां बुधः ॥१३४॥

अभ्यर्च्य देवतामिष्टमात्मरक्षार्थमद्रिजे ।
जपेन्मन्त्रं प्रसन्नात्मा सहस्रं साष्टकं प्रिये ॥१३५॥

मां रक्ष रक्षेत्युक्त्वैव प्रणम्य विसृजेच्छिवे ।
अन्यैः सुहृद्भिः सुस्निग्धैरात्मरक्षां तु कारयेत् ॥१३६॥

मृत्युञ्जयादिभिर्देवि प्रयोगस्थेन वाऽणुना ।
जपहोमार्चनाद्यैर्वा ब्राह्मणाराधनादिभिः ॥१३७॥

प्रयोगकरणे यद्यद् ज्ञातव्यं मन्त्रिणा प्रिये ।
गुरुतः शास्त्रतश्चाऽपि सम्यग्विज्ञाय साधकः ॥१३८॥

प्रयोगानाचरेद्देवि नाऽन्यथा दुःखमाप्नुयात् ।
ततः कारयिता राजा तोषयेत्साधकं धनैः ॥१३९॥

प्रणिपत्य मुहुर्देवि यथा स्यात्तुष्टिमांस्तथा ।
अन्यथा निष्फलं भूयात्तस्मात्तं तोषयेत्प्रिये ॥१४०॥

प्रयोगकाले ज्ञातव्यपदार्थास्तु—

श्रीकुलार्णवे—

एवं न्यासजपध्यानैः सहोमार्चनतर्पणैः ।
मन्त्री सिद्धमनुर्देवि साक्षात् परशिवो भवेत् ॥१४१॥

ततः स्वमनसोऽभीष्टान् प्रयोगान् कुलनायिके ।
मन्त्रेणाऽनेन मतिमान् साधयेद्भुक्तिमुक्तये ॥१४२॥

सिद्धमन्त्रस्य सिद्ध्यन्ति षट्कर्माणि न संशयः ।
नैव सिद्ध्यन्त्यसिद्धस्य देवताशापमाप्नुयात् ॥१४३॥

काम्यप्रयोगकर्त्तॄणां परलोको न विद्यते ।
प्रयोगसिद्धिरेवैषां फलमन्यन्न विद्यते ॥१४४॥

एकस्य हि विधानस्य न कुत्राऽपि फलद्वयम् ।
देवेशि दृश्यते तस्मान्निःकामो देवतां भजेत् ॥१४५॥

होमतर्प्पणयन्त्राद्यैर्नानाध्यानविशेषकैः ।
आत्मनश्च परस्याऽपि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥१४६॥

प्रयोगान्ते चक्रपूजां तथा मन्त्री समाचरेत् ।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं ध्यानन्याससमन्वितः ॥१४७॥

प्रयोगदोषशान्त्यर्थमात्मरक्षार्थमेव च ।
न चेत्तत्फलमाप्नोति देवताशापमाप्नुयात् ॥१४८॥

तिथिवारर्क्षकरणयोगमासर्त्तुपक्षकाः ।
दीपेशकूर्मचक्राणि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥१४९॥

ऋषिच्छन्दोदेवताङ्गन्यासध्यानार्च्चनादिकम् ।
बीजं शक्तिं कीलवेधौ ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ॥१५०॥

कोष्ठबान्धवताराख्यराशिवर्णानुकूलताम् ।
भूतमैत्रीं तथाऽऽद्यन्तं ज्ञात्वा मन्त्राणि शोधयेत् ॥१५१॥

मन्त्रविद्याभेदनिद्राबोधाग्नीषोमरूपकम् ।
पुंस्त्रीनपुंसकादींश्च ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥१५२॥

ग्रन्थवासनदिग्वर्णनाडीतत्वानुसङ्गतिम् ।
देवताकालमुद्राश्च ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥१५३॥

साध्यसाधककर्माणि लेखनी द्रव्यपञ्चकम् ।
स्थानं यन्त्रप्रमाणं च ज्ञात्वा यन्त्राणि साधयेत् ॥१५४॥

उत्पत्तिरसनावर्णमूर्त्तिसंस्कारसंस्थितीः ।
कुण्डरेखाप्रमाणादीन् ज्ञात्वा होमं समाचरेत् ॥१५५॥

अग्निप्रभाधूमवर्णध्वनिगन्धशिखाकृतीः ।
दूतचेष्टादिकं ज्ञात्वा कथयीत शुभाशुभम् ॥१५६॥

मन्त्रतत्वानुसन्धानदेहावेशादिलक्षणम् ।
मन्त्रोच्चारणभेदं तु ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ॥१५७॥[1]

॥ अथ काम्यप्रयोगः ॥

तत्र काम्यानि तु षट्कर्माणि तानि तु शान्तिवश्यस्तम्भनविद्वेषणोच्चाटनमारणाख्यानि । तत्र शान्तिर्नाम प्राणिनां रोगकृत्याग्रहाद्युपद्रवनिवृत्तिः, वश्यं नाम राजाऽमात्यवनितादीनां स्वायत्तीकरणं, स्तम्भनं तु राजादीनां क्रोधोद्योगप्रवृत्तिनिरोधः, विद्वेषणं तु स्निग्धयोरन्योन्यद्वेषजननम्, उच्चाटनं तु द्विषतां दशदिग्भ्यः प्रवासनं, मारणं तु शत्रूणां प्राणहरणमिति । तत्र मारणे ब्राह्मणधार्मिकजनधर्मिष्ठराजस्त्रीजनव्यतिरिक्तदुष्टम्लेच्छादयो विषयः। तत्राऽपि स्वरोषतो लोकानुग्रहाय वा मारणं कार्यं न तु द्रव्यादिलोभेन । तत्राऽप्यन्ते स्वगुरूक्तं प्रायश्चित्तं कार्यम् । तत्कर्मकालेऽपि स्वरक्षार्थं स्वेष्टदेवताभक्तैरन्यैश्च शिवभक्तैः स्वेष्टदेवताभजनं मृत्युञ्जयजपादिकं च करणीयम् ।

अथ शान्तिकर्मणि साधकः कृतनित्यकृत्यः षोढाविभक्तस्याऽहोरात्रस्य वसन्तादिषड्ऋतुभूतस्य हेमन्ताख्ये पञ्चमखण्डे कर्पूररजसा श्वेततण्डुलचूर्णेन वा स्वदेहे जलभूतोदयकाले विपुलमर्द्धचन्द्राकारं जलमण्डलं, शृङ्गद्वयेऽपि पद्मलाञ्छितं प्रागुक्तपञ्चभूतवर्णेषु जलवर्णदशकगर्भं वक्ष्यमाणभूतलिपियन्त्रेषु जलयन्त्र-

---

१. अतः परं निम्नांशो विशेषः ख. पुस्तके—

भोज्ये संख्याविशेषोऽपि ज्ञेयः शान्त्यादिकर्मसु ।
शान्तौ वश्ये भोजयीत जपाद्विप्रान् दशांशतः ॥१॥

उत्तमं तद्भवेत् कर्म तत्त्वांशेन तु यत्कृतम् ।
होमाच्छतांशतो विप्रभोजनं त्वधमं हि तत् ॥२॥

शान्तेर्द्विगुणितं विप्रभोजनं स्तम्भने स्मृतम् ।
त्रिगुणं द्वेषणोच्चाटे मारणे होमसम्मितम् ॥३॥

अतिशुद्धकुलोत्पन्नाः साङ्गवेदविदोऽमलाः ।
सदाचाररता विप्रा भोज्या भोज्यैर्मनोहरैः ॥४॥

कर्णिकालिखितमन्त्रेण वेष्टितमेकान्ते सुसमे भूतले गोमयोपलिप्ते कृत्वा 'वं वारिमण्डलाय नम' इति सम्पूज्य, तत्र स्वासनमास्तीर्य प्राग्वत्सम्पूज्य, तत्रोत्तराभिमुख उपविश्या'ऽद्येत्याद्यमुकस्य रोगादिशान्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरपूजनमहं करिष्य' इति सङ्कल्प्य, कच्चित्पीठान्तरे प्रथमं गणेशं सम्पूज्य, प्रयोगदिवसस्य वारेशद्वयतिथीशनक्षत्रेशान् पृथक् पृथक् सर्वोपचारैः सम्पूज्य, पश्चात्तत्कर्माधिदेवतां सर्वोपचारैः साङ्गां सावरणां सम्पूज्य, तदाज्ञया वक्ष्माणतत्तन्मण्डले तत्तत्कर्मानुरूपद्रव्यादिभिः स्वेष्टदेवतां साङ्गां सावरणां सपरिवरां सम्यक्समर्चयेत् ।

तत्र वारदेवतास्तु—रवौ सूर्यशिवौ, सोमे सोमाम्बिके, भौमे मङ्गलगुहौ, बुधे बुधविष्णू, गुरौ गुरुचतुर्मुखौ, भृगौ शुक्रेन्द्रौ, मन्दे शनैश्चरकालौ ।

तिथीशास्तु—प्रतिपदि ब्रह्मा, द्वितीयायां विधाता, तृतीयायां विष्णुः, चतुर्थ्यां यमः, पञ्चम्यां चन्द्रः, षष्ठ्यां गुहः, सप्तम्यामिन्द्रः, अष्टम्यां वसवः, नवम्यां नागः, दशम्यां धर्मः, एकादश्यां शिवः, द्वादश्यां सूर्यः, त्रयोदश्यां कामः, चतुर्दश्यां कालः, पौर्णमास्यां विश्वेदेवाः, अमावस्यायां पितरः ।

नक्षत्रदेवतास्तु—अश्विन्या अश्विनौ, भरण्या यमः, कृत्तिकाया अग्निः, रोहिण्या ब्रह्मा, मृगशिरसः चन्द्रः, आर्द्रायाः शिवः, पुनर्वसोरदितिः, पुष्यस्य गुरुः, अश्लेषायाः सर्पाः, मघायाः पितरः. पूर्वाफाल्गुन्या भगः, उत्तरफाल्गुन्या अर्यमा, हस्तस्य सूर्यः, चित्रायास्त्वष्टा, स्वात्या वायुः, विशाखाया इन्द्राग्नी, अनुराधाया मित्रः, ज्येष्ठाया इन्द्रः, मूलस्य निर्ऋतिः, पूर्वाषाढायाः आपः, उत्तराषाढाया विश्वेदेवाः, श्रवणस्य विष्णुः, अभिजितः प्रजापतिः, धनिष्ठाया वसवः, शतभिषजो वरुणः, पूर्वभाद्रपदस्याज एकपात्, उत्तरभाद्रपदस्याऽहिर्बुध्न्यः, रेवत्याः पूषा एते वारतिथिनक्षत्रेशाः प्रयोगारम्भदिनमारभ्य प्रयोगसमाप्तिदिनपर्यन्तं प्रत्यहं तत्तद्दिनाधिपाः पूज्याः ।

पूजामन्त्रास्तु—प्रणवचतुर्थीयुक्ततत्तन्नामनमःपदरूपाः । तेन — 'ॐ श्रीसूर्याय नमः, ॐ श्रीशिवाय नम' इत्याद्यूहनीयाः । ततः श्वेतवस्त्राभरणाऽनुलेपनमाल्यविभूषितः बद्धपद्मासनः पद्ममुद्रामुद्रितकरो रतिं दमनपूजाप्रकरणोक्तरूपां ध्यात्वाऽऽवाह्य, सकलीकृत्य, पद्ममुद्रां प्रदर्श्य, तत्रोक्ततन्मन्त्रेण षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा सम्पूज्य, तदनुज्ञया स्वपुरतः पूजाचक्रं निर्माय, नित्यपूजोक्तविधिना गुरुनमस्कारादिसमस्तन्यासजातं विधाय, मानसपूजादिपीठपूजान्तं कृत्वा, सुश्वेत-

वर्णे तस्मिन् चक्रे देवमावाह्य, यथोक्तरूपं सुश्वेतं ध्यात्वा, श्वेतगन्धपुष्पादिभिः श्वेतवस्तुभिः सम्पूज्य, यथाविध्यङ्गावरणपूजादि सर्वं नित्यपूजावत्कुर्यादिति ।

अथ वश्यकर्मणि साधकः कृत्यनित्यकृत्यो वारेशादीनर्चयित्वा, रक्तवस्त्रादिभूषितो वसन्ताख्ये दिवसस्य प्रथमखण्डे वह्निभूतोदये सिन्दूरादिनोर्द्ध्वाग्र त्रिकोणत्रयेऽपि[1] स्वस्तिकलाञ्छितं पूर्वोक्तं पञ्चभूतवर्णेषु वह्निवर्णदशकंगर्भं वक्षमाणभूतलिपियन्त्रेषु वह्नियन्त्र मध्यलिखितमन्त्रवेष्टितं वह्निमण्डलं कृत्वा 'रं वह्निमण्डलाय नम' इति मण्डल सम्पूज्य वश्यकर्माधिदेवतां सम्पूज्य, पाशमुद्रां प्रदर्श्य, तदनुज्ञया पुरतः प्राग्वत्पूजाचक्रं सिन्दूरादिना रक्तद्रव्येणोद्धृत्य, तत्रोक्तविधिना देवमावाह्य, रक्तवर्णं ध्यात्वा नित्यपूजोक्तक्रमेण साङ्गं सावरणं देवं रक्तगन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य सम्यक् परितोषयेदिति ।

स्तम्भनकर्मणि साधकः कृत्यनित्यकृत्यो वारेशादीनभ्यर्च्य, दिवसस्य षष्ठे भागे शिशिराख्ये भूमिभूतोदयकाले प्राग्वत्पीतद्रव्यैर्हरिद्रादिभिश्चतुरस्रं भूमिमण्डलमष्टवज्रलाञ्छितं भूतलिपिपूर्वोक्तपञ्चभूतवर्णेषु धराभूतवर्णदशकगर्भं भूतलिपियन्त्रेषु भूयन्त्रमध्यगतमन्त्रवेष्टितं विपुलं विरच्य, 'भूमिमण्डलाय नम' इति सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः पीतासने द्वारपूजादिपूर्वकमुपविश्य, पीतद्रव्यैः स्वपुरः[2] पूजाचक्रं समुद्धृत्य, पीतवस्त्राद्यलङ्कृतो विकटासनस्थो गदामुद्रामुद्रितकरो लक्ष्मीं तत्कल्पोक्तविधिना सम्पूज्य, तदनुज्ञया स्वपुरतः प्रोक्तचक्रे देवतामावाह्य, पीतवर्णं पीतवस्त्रादिभूषितं ध्यात्वा, नित्यपूजोक्तविधिना देव सम्यक् साङ्गं सावरणं सम्पूज्य नैवेद्यादिभिः परितोषयेदिति ।

अथ विद्वेषणे साधकः कृतनित्यकृत्यो वारेशादीनभ्यर्च्य, निर्ऋतिकोणाभिमुखो धूम्रवस्त्रादिभूषितो धूम्रवर्णोव्योमभूतोदयकाले ग्रीष्माख्ये दिवसस्य द्वितीयभागे वृत्ताकारं व्योममण्डल पूर्वोक्तपञ्चभूतवर्णेषु आकाशवर्णगर्भं भूतलिपियन्त्रेषु वियद्यन्त्रमध्यगतमन्त्रवेष्टितं कृत्वा, 'हं व्योममण्डलाय नम' इति सम्पूज्य, तत्तद्द्वारपूजादिकं [कृत्वा] स्वासने धूम्रवर्णे पूजिते राक्षसकोणमुख उत्कटासनेनोपविश्य, मुसलमुद्रामुद्रितकरो ज्येष्ठादेवीं धूमावतीं तत्कल्पोक्तविधिना तन्मन्त्रेण सम्यक् सम्पूज्य, स्वपुरतो धूम्रवर्णद्रव्यैः पूजाचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवमावाह्य, धूम्रवस्त्रादिपरिधानं च ध्यायेत् । इत्थ तामसरूपं देवं ध्यात्वा, यथोक्तक्रमेण धूम्रवर्णपुष्पाक्षतादिभिः सम्पूज्य नैवेद्यादिभिस्तोषयेदिति ।

---

१. ख. त्रिकोण कोणत्रयेऽपि । २. ख. स्वपुरतः ।

अथोच्चाटनकर्मणि साधकः कृतनित्यकृत्यो वारेशादीनभ्यर्च्य, वायव्याभिमुखः कृष्णद्रव्यैः षड्बिन्दुलाञ्छितवृत्तवेष्टितषट्कोणरूपं पूर्वोक्तपञ्चभूतवर्णेषु वायुभूत-वर्णदशकगर्भं वायुयन्त्रमध्यगतमन्त्रवेष्टितं वायुभूतोदयकाले वायुमण्डलं समुद्धृत्य, यं वायुमण्डलाय नम' इति सम्पूज्य, तत्र द्वारपूजादिपूर्वकं कृष्णवर्णं स्वासनमास्तीर्य, सम्पूज्य, तत्रोपविश्य, वज्रासनस्थोऽशनिमुद्रामुद्रितकरो दुर्गां सर्वोपचारैः सम्पूज्य, तदनुज्ञया स्वपुरतः कृष्णवर्णैर्गन्धद्रव्यैः कज्जलादिभिः पूजाचक्रं समुद्धृत्य, तत्र देवमावाह्य, कृष्णवर्णं ध्यात्वा कृष्णद्रव्यैर्गन्धपुष्पाद्यैः साङ्गं सावरणं सम्पूज्य यथाविधि नैवेद्यादिभिस्तोषयेदिति ।

अथ मारणे कर्मणि साधकः कृतनित्यकृत्यो वारेशादीनभ्यर्च्य, शरदा-ख्येऽहोरात्रस्य चतुर्थे भागे आग्नेयकोणाभिमुखः कज्जलादिकृष्णद्रव्यैः प्रागुक्तं वह्निमण्डलं विरच्य, तथैव सम्पूज्य, तत्र कृष्णवर्णे पूजिते स्वासने द्वारपूजादि-पूर्वकमुपविश्य, कृष्णवस्त्रादिभूषितो भद्रासनस्थः खड्गमुद्रामुद्रितकरो भद्रकालीं तत्कल्पोक्तविधिना सम्पूज्य, तदनुज्ञया कृष्णद्रव्यैः पूजाचक्रं समुद्धृत्य, तत्र देवमावाह्य, तामसध्यानोक्तरूपं ध्यात्वा, साङ्गं सावरणं सम्पूज्य नैवेद्यादिभिः सम्यक् तोषयेदिति **षट्कर्मसु काम्यपूजाविधिः** ।

अत्रषट्कर्माधिदेवतानां सरस्वत्यादीनां पूजाविधिरग्रे **शाक्तप्रकरणे** द्रष्टव्यः ।

अथ काम्यपूजाया**माकर्षणे** वश्यपूजोक्तविधिनैव पूजा कार्या तयोरेक-रूपत्वात् ।

अन्यत्रापि--**धनधान्यादिसम्पदर्थं पुत्रभार्यादिलाभार्थं** वा राजसध्यानोक्तरूपं ध्यात्वा, वत्सरं षण्मासं, त्रिमासं, मासमात्रं, पक्षमात्रं, सप्तरात्रं, त्रिरात्रं वा सम्यग् भक्तिपूर्वकं सर्वोपचारैः साङ्गं सावरणं सम्पूज्य तदभीष्टं प्राप्नुयादिति । अत्र सर्वेषु काम्यकर्मसु प्रागुक्तसङ्कल्पस्तत्कर्मोल्लेखन[1]—पूर्वकं कार्यं इति **काम्यपूजा-विधिः** ।

॥ **अथ काम्यहोमार्थमग्निचक्रविचारः** ॥ तत्र

श्रीरुद्रयामले—

अथ वक्ष्ये महादेवि होमकर्मसु सिद्धिदम् ।
अग्निचक्रं वरारोहे सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥१५८॥

---

१. ख. सङ्कल्पसत्कर्मो० ।

नवग्रहमयो वह्निस्ते च वह्निमया ग्रहाः ।
वह्नौ हुतं हविर्देवि ग्रहाणां प्रविशेन्मुखम् ॥१५९॥

तृप्यन्ति देवताः सर्वास्तेषु तृप्तेषु[1] पार्वति ।
फलं चापि प्रयच्छन्ति सर्वदेवमया ग्रहाः ॥१६०॥

अतस्तेषां स्थितिं वह्नौ ज्ञात्वा होमं समाचरेत् ।
शान्तिके पौष्टिके वृद्धौ क्रूरेष्वपि च कर्मसु ॥१६१॥

तेषां स्थितिक्रमं वक्ष्ये नक्षत्रेषु यथा स्थिताः ।
सूर्यो बुधो भृगुश्चैव शनिश्चन्द्रो महीसुतः ॥१६२॥

जीवो राहुश्च केतुश्च नवैते देवि खेचराः ।
त्रीणि त्रीणि च ऋक्षाणि रविभादीनि दापयेत् ॥१६३॥

सूर्यभाच्चन्द्रभं यावद् गणयेच्च महेश्वरि ।
सूर्यादीनां फलं देवि शृणु वक्ष्ये यथाक्रमम् ॥१६४॥

आदित्ये तु भवेच्छोको बुधे चैव धनागमः ।
शुक्रे लाभं विजानीयाच्छनौ पीडा न संशयः ॥१६५॥

चन्द्रे लाभो महादेवि भौमे चैव तु बन्धनम् ।
गुरुणा च धनप्राप्ती राहौ हानिस्तथैव च ॥१६६॥

केतुना जायते मृत्युः फलमेवं महेश्वरि ।
एवं ज्ञात्वा महेशानि होमकर्म समारभेत् ॥१६७॥

सौम्यग्रहमुखे यस्मिन् दिने विंशति चाऽहुतिः ।
आरम्भः सौम्यहोमस्य दिने तस्मिन्विधीयते ॥१६८॥

क्रूरहोमस्तथा देवि क्रूरग्रहमुखे भवेत् ।
इति ज्ञात्वा महादेवि काम्यहोमं समारभेत् ॥१६९॥

अन्यथा क्रियमाणं तु नैःफल्यं चात्मनाशनम् ।

अत्र दैवात्कृतस्य पापग्रहमुखे हवनस्य शान्तिरुक्ता—

---

१. ख. तृप्ते ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

क्रूरग्रहमुखे चैत्र सञ्जाते हवने शुभे ।
शान्ति विधाय गां दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥१७०॥

आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखे ।
गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः ॥१७१॥
श्वभ्रे निधाय सम्पूज्य तत्र होमो विधीयते ।

ब्रह्मयामले—

अथ वह्नेः स्थितिं वक्ष्ये होमकर्मसु सिद्धये ।
स्वर्गलोके च पाताले भूमौ तिष्ठति हव्यराट् ॥१७२॥

तत्प्रकारमहं वक्ष्ये साधकानां हिताय च ।
धृतिश्च तिथिवारांश्च सप्तद्वीपं चतुर्युगम् ॥१७३॥
एकीकृत्य हरेद्भागं त्रिभिः शेषेण पावकः ।
एकेन वसति स्वर्गे द्वये पाताल एव च ॥१७४॥

शून्ये च मर्त्यलोके स्यादेवं वसति पावकः ।
उत्पातः स्वर्गलोकस्थे पातालस्थे धनक्षयः ॥१७५॥

मर्त्यलोकस्थिते वह्नौ होमोऽभीष्टफलप्रदः ।
इत्थं विज्ञाय मन्त्रज्ञो होमकर्म समारभेत् ॥१७६॥

धृतिः अष्टादश, तिथयः प्रतिपदादिहोमारम्भतिथिपर्यन्ताः, वाराः सूर्यवारादिहोमारम्भवारान्ताः । अन्यत्सुगमम् ।

निबन्धे—

संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नाऽपि वैष्णवैः ।
नित्ये नैमित्तिके कार्ये न चाऽब्दे मुनिभिः स्मृतः ॥१७७॥

इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ अष्टादशस्तरङ्गः ॥१८॥

———

[एकोनविंशस्तरङ्गः]

॥ अथ गणेशमन्त्राणां विधानमुपदिश्यते ॥

अथ प्रवक्ष्ये मनुवर्य्यमेनं महागणेशस्य समासतोऽत्र ।
उपास्य सम्मूढधियोऽपि सिद्धिं प्रापुः सुरैरप्यभिवाञ्छितां ताम् ॥१॥

सिद्धर्षिसङ्घैर्विविधैरुपास्यं सुरासुरैःकिन्नरयक्षनागैः ।
गन्धर्व्वसिद्धव्रजचारणाद्यैः संसेवितं चाऽपि गणैः समस्तैः ॥२॥

नारीनराणां वशकारकं तद् भूपालसङ्घातवशे प्रशस्तम् ।
तत्सुन्दरीवश्यकरं ह्यमात्यभृत्यौघवश्यप्रदमाशु लोके ॥३॥

व्याघ्रद्विपव्यालसमूहचोरवेतालभूतादिकदुष्टजन्तून् ।
वशे विधातुं प्रथितं पृथिव्यां लोकौघजन्तुव्रजमोहकञ्च ॥४॥

तथा जनाकृष्टिकरं प्रसिद्धं पुष्टिप्रदं भक्तजनस्य नित्यम् ।
उच्चाटकर्मण्यपि शस्तमाद्यं लोके तथा मारणकर्मशक्तम् ॥५॥

कृशानुसंस्तम्भनकारकं च विद्वेषवाणीगतिरोधकं च ।
कृपाणधाराशरसञ्चयानां संस्तम्भकं विद्युदयस्ततीनाम् ॥६॥

संस्तम्भकं वातसमूहकृष्टेः शुक्रादिसंस्तम्भकरं परञ्च ।
पाताललोकेषु गतिप्रदं च रसायनाद्यञ्जनसिद्धिदं च ॥७॥

सुपादुकापारदबन्धसिद्धिं खड्गादिसिद्धिप्रदमुत्तमं च ।
सुयक्षिणीसाधनशक्तमुच्चैः सम्यग्जनावेशकरं प्रसिद्धम् ॥८॥

वेदादि पद्मनिलया भुवनेश्वरी सकामा क्षमा गणपमन्त्रवराविहोक्त्वा ।
कान्तान्ततादिपतये वरनीरवह्नीनुक्त्वा दसर्व्वजनमर्क्कशिवौ वशञ्च ॥९॥

प्रोक्त्वाऽऽनयेति दहनस्य वधूं समुक्त्वा सङ्कीर्तितो मनुरयं मनुयुग्मवर्णः ।
भक्तौघचिन्तितमनोरथकल्पशाखी भूतिप्रदञ्च यततां वरसाधकानाम् ॥१०॥ इति ।

वेदादिः प्रणवः, पद्मनिलया श्रीबीजं, भुवनेश्वरी तद्बीजं, सा सकामा कामबीजसहिता, भुवनेशीबीजानन्तरं कामबीजमित्यर्थः । क्षमा भूबीजमित्यर्थः । क्षमा भूबीजं, ग्लौं इति गणपमन्त्रः, गं, कान्तान्तो ग, तादिर्णकारः, पतये स्वरूपं, वर-स्वरूपं, नीरं वकारः, वह्नी रेफः, द-स्वरूपं, सर्व्वजन-स्वरूपं, अर्को मकारः, शिव एकारः, तेन मे, वशं स्वरूपं, आनय-स्वरूपं, अत्र सन्धिर्ज्ञेयः, दहनवधूः स्वाहाकारः, मनुयुग्मवर्णः, अष्टाविंशत्यक्षरः ।

शारदातिलकेऽपि—

श्रीशक्तिस्मरभूविघ्नबीजानि प्रथमं वदेत् ।
ङेन्तं गणपतिं पश्चाद्वरान्ते वरदं पदम् ॥११॥

उक्त्वा सर्वजनं मेऽन्तं वशमानय ठद्वयम् ।
अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ताराद्यो मनुरीरितः ॥१२॥

प्रपञ्चसारेऽपि—

तारश्रीशक्तिमारावनि गणपतिबीजानि दण्डीनि चोक्त्वा,
पश्चाद्विघ्नं चतुर्थ्या वरवरदपद सर्वयुक्तं जनं च ।
आभाष्य क्ष्वेडमेऽन्तं वशमिति च तथैवाऽऽनयेति द्विठान्तः,
प्रोक्तोऽयं गाणपत्यो मनुरखिलविभूतिप्रदः कल्पशाखी ॥१३॥

अत्र विघ्नशब्दो गणपतिशब्दोपलक्षकः । अत्र **केचिदस्मिन्मन्त्रे**—

वेदादिः प्रथमं क्रमेण तदनु श्रीशक्तिमारावनी,
विघ्नोच्चारणपूर्वकं गणपतिं चाऽमन्त्र्य भूयो वरम् ।
तत्पश्चाद्वरदं निमन्त्र्य च जनं सर्व्वादिकर्म्मान्वितं,
मेपूर्वं वशमानयेति च परं चाऽन्तेऽग्निजायां स्मरेत् ॥१४॥

इति **महासम्मोहनतन्त्र**वचनात् 'गणपतये' इति पदस्य चतुर्थीं विहाय 'गणपते' इति सम्बुद्धयन्तं पदं वदन्ति तदाऽयं सप्तविंशत्यक्षरो मन्त्रो भवति ।

अन्ये तु—

आदौ ब्रह्म ततो रमाहरवधूकामक्षितीभ्यः पुरो,
विघ्नेशो गणपं वरं च वरदं चाऽमन्त्र्य शब्दत्रयम् ।
सर्व्वादिं जनशब्दमाशु कथयन् कर्मान्वितं मे वशं,
चाऽख्यायाऽनयशब्दतस्तु पुरतो भूयोऽग्निकान्तां वदेत् ॥१५॥

इति **वामदेवमहातन्त्र**वचनादष्टाविंशत्यक्षरं मन्त्रं वदन्ति । **अत्र 'गणप'** इति सम्बुद्धयन्तं अक्षर पदं 'आशु' इति वर्णद्वयमितरतन्त्रापेक्षयाऽधिकमुद्धृतम् ।

अपरे तु—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य श्रीबीजं च ततः परम् ।
महामायां समुद्धृत्य कामराजं समुद्धरेत् ॥१६॥

भूबीजं विघ्नबीजं च समुच्चार्य्य महापदम् ।
सम्बुद्धयन्तं गणपतिं वरं च वरदं तथा ॥१७॥

सर्व्वान्ते जनशब्दं च द्वितीयान्तं च मे वशम् ।
आनयाऽग्निवधूरन्ते महागणपतेर्म्मनुः ॥१८॥

इति **सम्मोहनतन्त्र**वचनादेकोनत्रिंशदक्षरात्मकं मन्त्रं वदन्ति । अत्र यथोपदेशं जपादिकं कार्य्यमिति । तथा—

ऋषिः समुक्तो गणको नृचिद्व, छन्दोऽस्य गायत्रमुदीरितं हि ।
महागणेशो गदितोऽस्य देवः, सुरासुरैः सेवितपादपद्मः ॥१९॥

गं बीजं, ह्रीं शक्तिरिति **पद्मपादाचार्य्याः** । तत्र प्रथमं सर्वमन्त्रसाधारण-त्रिविधबीजशक्तीर्ज्ञात्वा, विन्यस्य पश्चात्तत्तन्मन्त्रोक्तबीजशक्तिन्यासं कुर्यात् । यस्मिन्मन्त्रे बीजशक्तिन्यासो नोक्तस्तत्राऽप्येष साधारणबीजशक्तित्रयन्यासः कार्यः । सर्वमन्त्रसाधारणबीजशक्तयस्तु—

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

चतुर्विधे बीजशक्ती सर्वमन्त्रेषु चिन्तयेत् ।
त्रिविधं तत्र सामान्यं तदिदानीं निरूप्यते ॥२०॥

ईश्वरो जगतां बीजमाद्यं ब्रह्म तदुच्यते ।
तस्य माता समाख्याता शक्तिर्गुणमयी तु या ॥२१॥

स एव भगवान्देवो बुद्धिसाक्षी द्वितीयकम् ।
बीजमत्र समाख्यातं बुद्धिः शक्तिरुदाहृता ॥२२॥

उदानश्चित्समायुक्तस्तृतीयं बीजमुच्यते ।
शक्तिः कुण्डलिनी तत्र सामान्यं त्रितयं त्विदम् ॥२३॥
ज्ञातव्यं सर्वमन्त्रेषु बीजशक्ती ततो निजे ।

प्रयोगसारेऽपि—

ईश्वरो जगतां बीजं शक्तिर्गुणमयी त्वजा ।
परमात्मा तथा बुद्धिर्वायुः कुण्डलिनीति च ॥२४॥
चतुर्विधे बीजशक्ती सामान्यं त्रितयं त्विदम् । इति ।

तारादिषड्बीजसमन्वितेन षड्दीर्घभाजा निजबीजकेन ।
कुर्यात् षडङ्गानि मनोर्यथावत् स्वजातियुक्तान्यथ मन्त्रविज्ञः ॥२५॥

सद्वादशान्तश्रुतिनेत्रनासाद्वन्द्वास्यदोःपद्द्वयसन्धिदेशे ।
अनाहतेऽथो मणिपूरके चाऽधिष्ठान आधारपदेऽणुवर्णान् ॥२६॥

विन्यस्य शीर्षाननहृत्सगुह्यपद्धृत्सु बीजानि परिन्यसेच्च ।
ततोऽवशिष्टैः खलु मन्त्रवर्णैः संव्यापयेत् स्वे सकले शरीरे ॥२७॥

सवक्त्रहृद्गुह्यपदेषु पश्चान्न्यसेत् स्वनाम्ना मिथुनानि मन्त्री ।
तेष्वेव हृज्ज्ञानुयुतेषु भूयो न्यसेच्च षट् शक्तियुतान् गणेशान् ॥२८॥
इत्थं प्राविन्यस्य निजे शरीरे ध्यायेद् गणेशं निजहृत्सरोजे ।

ऐक्षवे जलधौ द्वीपे नवरत्नमये शुभे ।
तत्तरङ्गलसत्तायैर्द्योतशान्ततलेऽमले ॥२९॥

तत्तोयकणसम्पृक्तगन्धवाहनिषेविते ।
कल्पपादपसंशोभिभूभागसमलङ्कृते । ३०॥

नानाकुसुमसङ्कीर्णे नानापक्षिविराजिते ।
अनेकफलसङ्कीर्णे सेविते चाऽप्सरोगणैः ॥३१॥

उद्यद्बालातपोद्योतचन्द्रज्योत्स्नासमाकुले ।
विलसत्पद्मरागौघकुट्टिमारुणभूतले[1] ॥३२॥

कल्पपादपपुष्पस्थषट्पदस्वनमञ्जुले[2] ।
पारिजातं कल्पतरुं तस्य मध्ये विचिन्तयेत् ॥३३॥

युगपट्टं तु षट्कोणसेवितं पद्मशोभितम् ।
नवरत्नमयं तस्याऽधस्तात्सिंहासनं स्मरेत् ॥३४॥

तन्मध्ये लिपिपद्मं च षडारं तस्य मध्यतः ।
कर्णिकायां त्रिकोणं च तत्संस्थं च महागणम् ॥३५॥
नानारत्नविभूषाढ्यमेकदन्तं गजाननम् ।

---

१. क. ०कुट्टिमारण० । २. क. ०षड्पदस्वन० ।

चक्राब्जत्रिशिखान् गुणेक्षुजधनून्[1] रक्तोत्पलं सद्गदां,
ब्रीह्यग्रान्वितबीजपूरकरदान् कुम्भं करैर्विभ्रतम् ।
पद्मोद्यत्करया निजप्रमदयाऽऽश्लिष्टं जपासन्निभं,
सार्द्धेन्दुं प्रभजे महागणपतिं नेत्रत्रयोद्भासितम् ॥३६॥

पुष्करोद्धृतरत्नौघमयकुम्भमुखस्रुतान् ।
मणिमुक्ताप्रवालादीन् वर्षन्तं धारया मुहुः ॥३७॥

सर्वतः साधकस्याऽग्रे स्वदानजललोलुपाम् ।
षट्पदालीं कर्णतालैर्व्वारयन्तं मुहुर्मुहुः ॥३८॥

अमरासुरसंसेव्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ।
उरूदरं गजमुखं नानाभरणभूषितम् ॥३९॥
इति ध्यात्वा गणपतिं यजेत्सर्व्वोपचारकैः ।

ऊर्द्ध्ववामदक्षयोश्चक्राब्जे, तदधः शलपाशौ, तदधो धनुरुत्पले, तदधो-गदाव्रीह्यग्रौ, तदधो बीजपूररदनौ, शुण्डाग्रे रत्नकुम्भ इत्यायुधध्यानम् । अपरे तु वामोर्द्ध्वादिक्रमेण दक्षोर्द्ध्वान्तं वदन्ति । तदुक्तम्—

प्रयोगसारे—

चक्रप्रासरसालकार्म्मुकगदासद्बीजपूरद्विज-
व्रीह्यग्रोत्पलपाशपङ्कजकरं शुण्डाग्रजाग्रद्घटम् इति ।"
प्रासस्त्रिशूलः, रसालकार्म्मुक इक्षुकार्म्मुकः, द्विजो दन्तः ।

गणेश्वरपरामर्शिण्यां तु—

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधस्थकरावधि ।
गदाशूलाब्जकल्हारविषाणं दक्षिणैः करैः ॥४०॥

शाल्यग्रपाशचक्रेक्षुचापसद्बीजपूरकान् ।
वामैर्दधानं........................ ॥४१॥

इत्युक्तम् । अत्र यथागुरूपदेशं कार्य्यमिति । तथा—

धर्म्मादिक्लृप्ते पूर्वोक्ते तीव्रादिनवशक्तिके ।
पीठे विघ्नेशमभ्यर्च्य सम्यक् सर्वोपचारकैः ॥४२॥

१. ख. गुणेक्षुजधनु ।

प्रपञ्चसारे—

तीव्रा ज्वालिनीनन्दे सभोगदा कामरूपिणी चोग्रा ।
तेजोवती च सत्या सम्प्रोक्ता विघ्ननाशिनी नवमी ॥४३॥

बीजान्ते सर्वशक्ति प्रोक्त्वा कमलासनाय नम इति च ।
आसनमन्त्रः प्रोक्तो नवशक्त्यन्ते समर्च्चयेदमुना ॥४४॥ इति ।

त्रिकोणाग्रस्थविल्वाधो विष्णुं लक्ष्म्यन्वितं भजेत् ।
पद्मद्वयधरा पद्मा शङ्खचक्रधरो हरिः ॥४५॥

दक्षकोणे वटाधस्ताद्गौरीं गौरीपतिं यजेत् ।
पाशाङ्कुशधरा गौरी टङ्कशूलधरो हरः ॥४६॥

पृष्ठस्थे[1] पिप्पलाधस्ताद्रतिकामौ समर्च्चयेत् ।
उत्पलद्वन्द्वकोदण्डपुष्पेषुसमलङ्कृतौ ॥४७॥

उत्तरेऽधः प्रियङ्गोस्तु महीकोलौ यजेततः ।
शुकव्रीह्यग्रकगदाचक्रालङ्कृतसद्भुजौ ॥४८॥

देवस्याऽग्रे यजेल्लक्ष्म्या सहितं गणनायकम् ।
षट्कोणेषु जयेत्[2] पश्चादामोदादींश्च षट् क्रमात् ॥४९॥

आमोदं सिद्धिसहितमग्रकोणे समर्च्चयेत् ।
समृद्धया युतमभ्यर्च्येत्[3] प्रमोदं वह्निकोणतः ॥५०॥

सुमुखं कान्तिसंयुक्तमीशकोणे समर्चयेत् ।
दुर्मुखं मदनावत्या[4] यजेद्वरुणकोणके ॥५१॥

विघ्नं मदद्रवायुक्तं कोणे नैशाचरे यजेत् ।
वायव्ये विघ्नकर्त्तारं द्राविण्या सहितं यजेत् ॥५२॥

पाशाङ्कुशधरा विघ्नाः शक्तयश्चाऽभयेष्टदाः ।
रक्ता रक्ताम्बरालेपभूषणा मदविह्वलाः ॥५३॥

---

१. ख. पृष्ठस्थ ।
२. शब्दस्यास्य स्थाने 'यजेत्' इति संभाव्यः । (सम्पा०) ।
३. ख. मभ्यर्चेत् । ४. ख. वदनावत्या ।

तस्य सव्ये शङ्खनिधिं वसुधारान्वितं यजेत् ।
अपसव्ये पद्मनिधिं वसुमत्या सहाऽर्चयेत् ॥५४॥

तस्य[1] महागणेशस्य ।

तत्राऽद्यो मौक्तिकाभोऽन्यो माणिक्याभस्तु धारया ।
वर्षन्तौ धनसम्पत्तिं लोकानां स्वेच्छया सदा ॥५५॥

केसरेष्वङ्गपूजा स्याद् ब्राह्मयाद्याः पत्रमध्यगाः ।
चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च पूर्ववत् ॥५६॥
षडावरणसंयुक्तमित्थं देवं समर्चयेत् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—'ॐगणकाय ऋषये नमः', मुखे—'निचृद्गायत्रीछन्दसे नमः', हृदये—'ॐश्रीमहागणपतये देवतायै नमः,' गुह्ये—'ब्रह्मबीजाय नमः,' पादयोः—'मायाशक्त्यै नमः,' पुनर्गुह्ये—'परमात्मबीजाय नमः, पादयोः 'बुद्धिशक्त्यै नमः,' पुनर्गुह्ये—'उदानाय बीजाय नमः,' पादयोः—'कुण्डलिनीशक्त्यै नमः,' गुह्ये—'ॐ गं बीजाय नमः,' पादयोः- 'ह्रीं शक्तये नमः,' इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा "ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं गूं शिखायै वषट्, 'ॐ क्लीं गैं कवचाय हुं' 'ॐ ग्लौं गौं नेत्राय वौषट्,' ॐ गं गः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् ।

ततो "ब्रह्मरन्ध्रे—ॐ नमः, दक्षश्रोत्रे—श्रीं नमः, वामे—ह्रीं, दक्षनेत्रे-क्लीं०, वामे-ग्लौं०, दक्षनासायां—गं नमः, वामनासायां—गं नमः, मुखे—णं नमः, दक्षबाहुमूले—पं नमः, मध्ये—तं नमः, मणिबन्धे—यें नमः, अङ्गुलिमूले—वं नमः, वामबाहुमूले—रं नमः, तन्मध्ये—वं नमः, मणिबन्धे—रं नमः, अङ्गुलिमूले—दं नमः, दक्षोरौ—सं नमः, दक्षजानुनि—वँ नमः, दक्षगुल्फे—जं नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले—नं०, वामोरौ—मेंं०, वामजानुनि—व०, वामगुल्फे—शं०, वामपादाङ्गुलिमूले मां०, अनाहते—नं०, मणिपूरे—यं, स्वाधिष्ठाने—स्वां नमः, मूलाधारे—हां नमः" ।

१. पुस्तकद्वयेऽपि 'सस्य' इति इति पाठः स अयुक्तः । (सम्पा०) ।

शिरसि—ॐ नमः मुखे—श्रीं नमः, हृदि—ह्रीं नमः, गुदे—क्लीं नमः, पादयोः—ग्लौं नमः, हृदये—गं नमः," इति विन्यस्य,

'गणपतये' इत्यादिद्वाविंशतिवर्णैर्मूर्द्धादिपादान्तं व्यापकं कृत्वा,

मुखे—श्रीं श्रीपतिभ्यां नमः, हृदि—ह्रीं गौरीगौरीपतिभ्यां नमः, गुह्ये—ॐ क्लीं रतिकामाभ्यां नमः, पादयोः—ॐ ग्लौं महीवराहाभ्यां[1] नमः, मुखे—ॐ गं आमोदसिद्धिभ्यां नमः, हृदि—ॐ गं प्रमोदसमृद्धिभ्यां, गुह्ये—ॐ गं[2] सुमुखकान्तिभ्यां नमः, पादयोः—ॐ गं दुर्मुखमदनावतीभ्यां नमः, हृदि—गं विघ्नमदद्रवाभ्यां नमः, जानुनि—ग विघ्नकर्त्तृद्राविणीभ्यां नमः," इति विन्यस्य,

ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वपुरतः स्वर्णादिपट्टे सकेसरदलदलाग्रपरिवेषयुक्तं चतुरश्रत्रयवेष्टितमष्टदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां षट्कोणं तदन्तस्त्रिकोणं च कुर्यादिति पूजाचक्रमुद्धृत्य, तत्र मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वाऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पूजापीठे मण्डूकादिपृथिव्यन्तं सम्पूज्य, समुद्रस्थले इक्षुरससमुद्रं सम्पूज्य, रत्नद्वीपादिपरतत्वार्चान्तेऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रान्मध्यान्तं "ॐ तीव्रायै नमः, ॐ ज्वालन्यै नमः, ॐ नन्दायै नमः, ॐ भोगदायै नमः, ॐ कामरूपिण्यै नमः, ॐ उग्रायै नमः, ॐ तेजोवत्यै०, ॐ सत्यायै०, ॐ विघ्ननाशिन्यै नमः" इति सम्पूज्य, 'ग सवशक्तिकमलासनाय नम' इति समस्तं पीठमभ्यर्च्य, तत्र मूलमन्त्रमुच्चार्य्य 'श्रीमहागणपतिमूर्त्तिं कल्पयामि नम' इति चक्रमध्ये मूर्त्तिं परिकल्प्य, ध्यानोक्तां मूर्त्तिं भावयन् मूलमुच्चार्य, 'श्रीमहागणपतिमूर्त्तये नमः' इति मूर्त्तिं सम्पूज्य, तस्यां प्राग्वद्विधिना गणेशमावाह्याऽऽवाहनादिमुद्राः प्रदर्श्य, प्राणप्रतिष्ठान्ते दन्तपाशाङ्कुशविघ्नपरशुलड्डुकबीजपूराख्याः सप्त मुद्राः प्रदर्श्य—

'एकदंष्ट्राय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो विघ्नः प्रचोदयात्' इति गणेशगायत्र्या गणेशपूजाद्रव्याणि प्रोक्ष्याऽऽसनादिपुष्पान्तानुपचारानुपचर्य्य, त्रिकोणाद्बहिर्देवस्याग्रे—"ॐ श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः, देवस्य दक्षिणे—ॐ ह्रीं गौरीहराभ्यां नमः, पृष्ठे—ॐ क्लीं रतिकामाभ्यां नमः, वामे—ॐ ग्लौं महीवराहाभ्यां[3] नमः, ततस्त्रिकोणान्तर्देवस्याग्रे—ॐ गं लक्ष्मीगणनायकाभ्यां नम' इति प्रोक्तमिथुनानि तत्तद्वृक्षाधस्तत्तद्ध्यानोक्तरूपाणि सम्यग्ध्यात्वा, गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य,

१. क. महीवराभ्यां। २. ख. 'गं' इति नास्ति। १. क. महीवराभ्यां।

ततः षट्कोणेषु देवाग्रमारभ्य—"ॐ गं आमोदसिद्धिभ्यां नमः, [1]ॐ गं प्रमोदसमृद्धिभ्यां नमः,[1] ॐ गं सुमुखकान्तिभ्यां०, ॐ गं दुर्मुखमदनावतीभ्यां०, ॐ गं विघ्नमदद्रवाभ्यां नमः, ॐ गं विघ्नकर्त्तृद्राविणीभ्यां नमः" इति सम्पूज्य;

षट्कोणाद्बहिर्देवस्य दक्षिणे—शं शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः, वामे—पं पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः" इति सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु आग्नेये—"ॐ गां हृदयाय नमः, ईशाने—ॐ श्रीं गीं शिरसे नमः, नैऋत्ये—ॐ ह्रीं शिखायै नमः, वायव्ये—ॐ क्लीं गैं कवचाय नमः, देवस्याग्रे—ॐ ग्लौं गौं नेत्राय नमः, देवाग्रादिचतुर्दिक्षु—ॐ गं गः अस्त्राय नमः" इति षडङ्गानि सम्पूज्य,

दलेषु—"ॐ आं ब्राह्म्यै नमः, ॐ ईं माहेश्वर्य्यै नमः, ॐ ऊं कौमार्य्यै नमः, ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः, ॐ ॡं वाराह्यै नमः, ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः, ॐ औं चामुण्डायै नमः, ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः" इति सम्पूज्य,

बहिश्चतुरस्रप्रथमवीथ्यां देवाग्रमारभ्य—"ॐ लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्रहस्तायैरावतवाहनाय नमः, ॐ रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः, ॐ टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः, ॐ क्षं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये[2] धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः, ॐ वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः, ॐ यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाऽङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः, ॐ सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः, ॐ हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषवाहनाय नमः",

इति सम्पूज्येन्द्रेशानयोर्म्मध्ये—"ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः, निर्ऋतिवरुणयोर्म्मध्ये—ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः" इति सम्पूज्य,

द्वितीयवीथ्यां—"ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ गदायै०, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः" इति लोकपालायुधानि देवाग्रमारभ्य

१-१. अयमंशः ख. पुस्तके नास्ति । २. ख. रक्षोऽधिपते ।

प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य्य, 'साङ्गाय सपरिवाराय श्रीमहागणपतये नमः' इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य धूपादि पूर्वोक्तविधिना सर्वं कुर्य्यादिति ।

तथा— एकादशायुतं जप्त्वा सहस्रोत्तरमादरात् ।
दशांशं जुहुयादष्टद्रव्यैरेकाक्षरोदितैः ॥५७॥

तर्प्पयेत्तद्दशांशेन चाऽभिषिक्तोऽणुना ततः ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् सम्यक् षड्रसैर्भूरिदक्षिणाम् ॥५८॥

दत्त्वा प्रणम्य विसृजेदेवं सिद्धो भवेन्मनुः ।
ततः प्रणम्य विधिवद् गुरुं सन्तोष्य वित्तमः ॥५९॥
काम्यकर्म्माणि कुर्वीत सिद्धये स्युर्न चाऽन्यथा ।

अयं पुरश्चरणजपः कृतयुगपरः, कलावेतच्चतुर्गुण इति । तदुक्तम्—

तन्त्रे—

कृते जपस्तु कल्पोक्तस्त्रेतायां द्विगुणः स्मृतः ।
द्वापरे त्रिगुणः प्रोक्तश्चतुर्गुणजपः कलौ ॥६०॥ इति ।

अष्टद्रव्याणि तु सारसङ्ग्रहे—

मोदकैः पृथुकैर्लाजैः सक्तुभिः सेक्षुपर्वभिः ।
नालिकेरैस्तिलैः शुद्धैः सुपक्वैः कदलीफलैः ॥६१॥ इति ।

गणेश्वरपरामर्शिण्याम्—

'अष्टद्रव्यैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयाच्च पृथक् पृथक्' । इति ।

सारसङ्ग्रहे—

वक्ष्ये प्रयोगानधुना समासान्महागणेशाणुवरस्य सर्वान् ।
रक्तप्रसूनैर्गणपं समर्च्य, जपेन्मनुं चाऽष्टसहस्रमन्ते ॥६२॥
दशांशतो लोहितवाजिवैरि-पुष्पैर्हुनेत् स्वादुपरिप्लुतैश्च ।

अष्टसहस्रमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः । वाजिवैरी करवीरः, स्वादु त्रिमधूनि, तानि तु घृतमधुशर्कराः, घृतमधुदुग्धानि वा ।

राजा वशे तिष्ठति मन्त्रिणोऽस्य, स्वामात्यभृत्यादिकसैन्ययुक्तः ॥६३॥

ब्रह्मद्रुसूनैस्त्रिमधुप्लुतैश्च, हुत्वा द्विजातीन्वशयेदवश्यान् ।
ते चाऽत्र मन्त्रिप्रवरस्य नित्यमुक्तं हि कुर्वन्ति न संशयोऽत्र ॥६४॥

ब्रह्मद्रुः पलाशः ।

सर्पिर्हुनेन्मन्त्रिवरो हि तावज्जितेन्द्रियः संस्तदनन्यचेताः ।
चराचरोऽस्मिञ्जगति प्रसिद्धां, कीर्ति विशालामचलां लभेत ।।६५।।

मन्त्री हुनेदाज्यपरिप्लुतं यो धान्यं सधान्यं विपुलं लभेत ।
मधुप्लुतैर्लोहितपङ्कजैर्यो[1] हुनेदथाष्टोत्तरकं सहस्रम् ।।६६।।

पृथ्वीपतींस्तत्प्रमदाश्च नित्यं, वशीकरोत्येव तदात्मजांश्च ।
हयारिवृक्षोत्थसमिद्भिरष्टाधिकं सहस्रं जुहुयान्मनुज्ञः ।।६७।।

तेनाऽपि भूपान्[2] वनिताश्च तेषां, तेषां कुमारान् वशयेदवश्यम् ।
अष्टाधिकं मन्त्रिवरः सहस्रं जप्त्वा दशांशेन हुनेन्मनुज्ञः ।।६८।।
विशुद्धया राजिकया च लोणैस्तद्भस्म संशोद्ध्य करे गृहीत्वा ।

साज्ययेति **साम्प्रदायिकाः** ।

योषां निजेष्टां खलु ताडयेत् सा, कन्दर्पतीक्ष्णेषुनिपीडिताङ्गी ।।६९।।

स्वजीवितं यावदमुष्य वश्या, भवेदवश्या किल किङ्करीव ।
शिवालये लक्षमितं मनुं यो जपेद्दशांशेन हुनेच्च मन्त्री ।।७०।।
पयोऽन्धसा साधु मधुप्लुतेन[3], सोऽर्थानवश्यं विविधांल्लभेत ।

पयोऽन्धसा पायसेन ।

जातीप्रसूनैर्विधिवत्तथाऽष्टाधिकं सहस्रं जुहुयान्मनुज्ञः ।।७१।।

मेधायुतो वेदसदर्थवेत्ता, भवेदथाऽसावचिरादवश्यम् ।
दूर्वात्रिकैर्यो जुहुयान्मनुज्ञोऽयुतत्रयं तेन भवेदवश्यम् ।।७२।।

मृत्युञ्जयः सर्व्वगदान्विजित्य, लोके स धीमानिह दीर्घजीवी ।
समाहितो मन्त्रिवरोऽयुतं यो, हुनेद्विधानेन स पीतपुष्पैः ।।७३।।

संस्तम्भयेद्वैरिनृपस्य सेनां, सभृत्यनागाश्वरथामवश्यम् ।
लोहादिकैः सङ्घटितानि यानि, दिव्यानि शस्त्राणि सितानि तेषाम् ।।७४।।

धारां ध्रुवं स्तम्भयतीह शत्रोर्व्वाचां च संस्तम्भनमत्र कुर्यात् ।
बिभीतकद्रुत्थसमिद्भिरत्राऽयुतत्रयं यो जुहुयाद्विधिज्ञः ।।७५।।

---

१. क. ०लोहितपक्वजैर्यो । २. क. भूयान् । ३. ख. मधुष्णुतेन ।

उच्चाटयेदाशु च वैरिसङ्घान् स्वस्थानतो मन्दरसन्निभांश्च[1] ।
ग्रामं पुरं वा नगरं च देशं ध्यायंश्च यं यं जुहुयात्क्रमेण ॥७६॥

तं तं सदोच्चाटयतीह मन्त्री कथा च का सम्प्रति मानवानाम् ।
मन्त्री त्वपामार्गसमिद्भिरष्टाधिकं सहस्रं विधिवज्जुहोतु ॥७७॥

स्वजीवितावध्यथ पण्ययोषा वश्या भवेयुर्न विचार्य्यमत्र ।
एरण्डवृक्षोत्थसमिद्भिरष्टोत्तरं सहस्रं जुहुयाद्विधानात् ॥७८॥

रण्डाः स्वजीवावधि तस्य वश्या अर्थप्रदाः कामदुघा भवन्ति ।
आनीय निम्बद्रुदलानि तेषु स्वसाध्यनामानि विलिख्य मन्त्री ॥७९॥

रक्तैश्च सम्यङ्महिषाश्वजातैर्हुनेत् कटुस्नेहयुतै रहस्तैः ।
विंशत्सहस्रं भवतीह तेन मर्त्यो हि विद्विष्टतरः[2] सदैव ॥८०॥

अमुकं अमुकेन द्वेषयेति साध्यनामानि, रह इति पदच्छेदः ।

मर्त्यास्थिसम्भूतमथो हि कीलमष्टाङ्गुलैः शावशिरोरुहैस्तम् ।
संवेष्ट्य सम्यक् वसुयुक्सहस्रसञ्जप्तमेन कुलिकोदये च ॥८१॥
शत्रोर्गृहद्वारि खनेद्यथावत् सप्ताहतोऽसौ मृतिमेति मर्त्यः ।

वसुयुक्सहस्रमष्टोत्तरसहस्रम् । **कुलिकोदयस्तु—**

ज्योतिषरत्नमालायाम्—

मन्वर्कदिग्वस्वृतुवेदपक्षैरर्कान्मुहूर्त्तैः कुलिका भवेयुः ।
दिवा निरेकैरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्मसु शोभनेषु ॥८२॥

इति अर्कात् अर्कवारात्, मनु १४, अर्क १२, दिक् १०, वसु ८, ऋतु ६, वेद ४, पक्ष २, इति दिवारात्रौ, निरेकैरेकैकहीनैरेभिर्मुहूर्त्तैः कुलिककालो ज्ञेयः । अयमर्थः—रात्रौ तु त्रयोदशैकादशनवसप्तपञ्चतृतीयप्रथममुहूर्त्ता अर्कादिवारेषु यथाक्रमं कुलिककालो ज्ञेय इत्यर्थः ।

मन्त्री बिलद्वारसमीपवर्त्ती जपेन्मनुं लक्षमितं यथावत् ।
तस्याग्रतश्चाऽभिपतन्ति नागकन्या विलज्जाः खलु सत्वहीनाः ॥८३॥

दिव्यानि सिद्धानि रसायनानि नानाप्रकारांश्च मणीन् प्रसिद्धान् ।
इष्टान्यनर्घाणि बहूनि सर्व्वास्ताः सम्प्रयच्छन्ति न चाऽन्यथाऽत्र ॥८४॥

---

१. क. मन्दिरसन्निभांश्च । २. ख. विद्विष्टरतः ।

जपेद् गिरेर्म्मूर्द्धनि लक्षमेकं दृढव्रतश्चैकमना नितान्तम् ।
भवेद् ध्रुवं तस्य कृपाणसिद्धिः सुरासुरैरप्यभिकाङ्क्षिता या ।।८५।।

लज्जालुकासद्घनसारनन्द्यावर्त्तानि शुक्लां गिरिकर्णिकाञ्च ।
अधःप्रसूनामथ मेलयित्वा सम्पिष्य जप्तान्ययुतद्वयेन ।।८६।।
एभिः शुभैरञ्जितलोचनो यो मर्त्यो निधानानि स पश्यतीह ।

लज्जालुका प्रसिद्धा, तस्या लक्षणं तु स्पर्शसङ्कुचत्पत्रत्वम्, घनसारः कर्पूरः, शुक्ला गिरिकर्णिका श्वेताऽपराजिता, अधःप्रसूना शङ्खपुष्पी अधोमुखपुष्पवती ।

भवेद् गणेशाणुशताष्टजप्तश्रीखण्डलेपात्किल दुःखनाशः ।।८७।।

शताष्टजप्तेत्यष्टोत्तरशतजप्तमित्यर्थः । एवं सर्वत्र ।

लूतासविस्फोटकभूतकृत्याप्रेतोद्भवान् घोरतरान् ज्वरांश्च ।
मनोरथाष्टाढ्यसहस्रजापाद्विनाशयेन् मन्त्रिवरस्त्ववश्यम् ।।८८।।

विषद्वयं स्थावरजङ्गमं च ज्वरानथाऽष्टाविह शूलरोगान् ।
सुदारुणां तां ग्रहणीं च रोगान् वातप्रभूतान् कफपित्तजातान् ।।८९।।

गलग्रहादोनपि रोगसङ्घान् शताष्टजापेन विनाशयेत ।
लक्षैकजापेन मनोरथस्य सिद्धिर्भवेदस्य हि पादुकायाः ।।९०।।

मन्त्री ततो गच्छति दूरवर्त्म शतत्रयं योजनसंज्ञकानाम् ।
गुप्तप्रदेशे विजने मनोज्ञे विलेपिते गोमयतो विशुद्धे ।।९१।।

स्नातः शुचिर्मन्त्रिवरो जितात्मा कुम्भं नवं चन्दनचर्चिताङ्गम् ।
संस्थाप्य नीरेण सुगन्धिना तं प्रपूरयेत्तत्र शरावमेकम् ।।९२।।

कुम्भोपरिष्टात् कपिलाज्यपूर्णं विन्यस्य सञ्ज्वाल्य च दीपमेनम् ।
प्रपूजयेच्चन्दनपुष्पधूपैः कुमारिकां वाऽथ कुमारकं वा ।।९३।।

आनीय संस्पृश्य जपेदिमं मनुं तथाऽष्टाढ्यशतं मनुज्ञः ।
भूतं भविष्यं किल वर्त्तमानं शुभाशुभं सा कथयेदवश्यम् ।।९४।।

महागणेशं गदितस्वरूपं ध्यात्वा जपेद्रात्रिषु मन्त्रिवर्य्यः ।
स्वप्ने गणेशः कथयत्यवश्यं शुभाशुभं नाऽत्र विचारणीयम् ।।९५।।

चन्द्रग्रहे वाऽथ रविग्रहे वा मन्त्रं जपेत् साधु जलाशयस्थाः ।
आकृष्टिरस्याऽत्र भवेत् सुसिद्धा धान्यादिकानां पशुयोषितां च ॥९६॥

न्यग्रोधमूले ह्युपविश्य मन्त्री मन्त्रं जपेल्लक्षमिमं विधानात् ।
सा यक्षिणी तस्य भवेत्सुसिद्धा अर्थादिकृष्टिं च ददाति नित्यम् ॥९७॥

उपोष्य रात्रौ विधिवद्वचां समानीय यत्नात्प्रयतो नितान्तम् ।
स्नात्वाऽर्चयेदत्र महागणेशं स्पृष्ट्वाऽयुतं तां प्रजपेच्च मन्त्री ॥९८॥

कृत्वाऽतिसूक्ष्मं किल चूर्णमस्याः कर्षोन्मितं तत्कपिलाज्ययुक्तम् ।
सम्प्राशयेत्प्रातरतीवशुद्धः कविर्भवत्येव हि सप्तरात्रात् ॥९९॥

अत्राऽपि प्राग्वत् सप्तधा विभज्यैकैकं भागं प्रातः प्रातः सघृतं भक्षये-दिति ।

रसं समादाय च कामचारी[1]-रसेन संशोध्य च याममेकम् ।
कर्प्पासपत्रोत्थरसेन तावत् प्रमर्द्य सम्यक् खलु मर्द्दयेच्च ॥१००॥

कुमारिकापत्ररसेन तावत्ततो भवेद्रूप्यसमानवर्णः ।
भागा मताः षोडश पारदस्य शुल्वस्य भागद्वितयं तथैव ॥१०१॥

भागत्रयं स्याद् गगनस्य चैकं हेम्नस्तथैकं किल लोहजातेः ।
एकत्र कृत्वा बहुधा प्रमर्द्य संस्थापयेत् सम्यगथाऽऽरनाले ॥१०२॥

शिवालये शुद्धमनाश्च गत्वा मनुं जपेल्लक्षमिमं मनुज्ञः ।
महागणेशस्य ततः प्रसादात् सिद्धा हि नूनं गुटिका भवेत्सा ॥१०३॥

रसः पारदः, कामचारी आकाशवल्लीति प्रसिद्धा, शुल्वं ताम्रं, गगनं अभ्रकं, आरनालं काञ्जिकं, अत्र ताम्रादिकं चूर्णीकृत्य मेलयितव्यम् ।

तां धारयेदानन एव मन्त्री सुदुर्ज्जयः स्यात्सुरदानवाद्यैः ।
समग्रभूतैश्च भवेदवध्यः शस्त्रास्त्रवृन्दैरपि भिद्यते न ॥१०४॥

न दह्यते वह्निशतैश्च मर्त्यो विषद्वयेन म्रियते न चाऽपि ।
तस्याः प्रभावात्किल वज्रदेहो भवेद् गतिस्तस्य च खेचरी स्यात् ॥१०५॥

धरामदृश्यः सकलां च नष्टच्छायो हि भूत्वा विचरेदवश्यम् ।
सदा च सन्तिष्ठति यस्य गेहे लक्ष्मीः स्थिता तस्य गृहे भवेच्च ॥१०६॥

---
१. ख० कामचा ।

सा दृष्टिबन्धं जगतां करोति महागणेशाणुवरप्रभावात् ।
सब्रह्मदण्डीं वशिनीं गृहीत्वा पुष्यार्कवारेण ततोऽभियोज्य ॥१०७॥

वज्राभ्रकेनाऽथ पुनस्त्रिलोहैः संवेष्टच सम्यग्गुटिकां च कुर्यात् ।
महागणेशं परिपूज्य मन्त्रजप्तां गणेशस्य कराच्च लब्धाम् ॥१०८॥

इत्थं विचिन्त्य स्वकरे नयेत्तां सिद्धां गणेशस्य मनुप्रभावात् ।
वक्त्रे शिखायां च करेऽथ कण्ठे तां धारयेन्मन्त्रिवरः सदैव ॥१०९॥

तस्याः प्रभावान्न भवेत्समीपे व्याघ्रादिचोरोरगविघ्नवृन्दः ।
क्षोणीभुजः स्युर्वशगास्तथाऽस्य लोके भवेदेव हि कामचारी ॥११०॥
स्त्रीणां प्रियोऽसौ मदनातुराणां भवेदवश्यं गुटिकाप्रभावात् ।

ब्रह्मदण्डी भारङ्गी, वशिनी लज्जालुका, वज्राभ्रकोऽभ्रकविशेषः, त्रिलोहैः स्वर्णरजतताम्रैः ।

गोरोचनोन्मत्तसुशङ्खपुष्पी देवी सिता स्यादपराजिताह्वा ॥१११॥

सब्रह्मदण्डीमलयोद्भवं च कृष्णागुरुः स्युः समभागकानि ।
सम्पिष्य सम्यक्च रवौ सपुष्ये कुर्याद्विधानद् गुटिकां मनुज्ञः ॥११२॥

कृत्वा च तामर्कसहस्रजप्तां विशेषकोऽस्याञ्जनमोहकः स्यात् ।

देवी सहदेवी, विशेषकस्तिलकः ।

ग्राह्या मृता मन्त्रिवरेण दीर्घतुण्डा[1] ततस्तां किल पेषयित्वा ॥११३॥

तच्चूर्णमालिप्य करद्वयेन जपेन्मनुं ह्यष्टयुतं सहस्रम् ।
प्रदर्शयेत्तौ गजसम्मुखं च दृष्ट्वा दिशस्ते दश विद्रवन्ति ॥११४॥

मदोत्कटा दानजलार्द्रगण्डा ऐरावतस्याऽपि कुले प्रसूताः ।
सुदीर्घदन्तद्वयशोभमाना गच्छन्ति दूरं विवशा भयार्त्ताः ॥११५॥

वश्या भवेयुर्म्मनुवित्तमस्य ह्युक्तं च कुर्वन्ति न संशयोऽस्ति ।

दीर्घतुण्डी छुछुन्दरी । 'छुछुन्दरी गन्धमुखी दीर्घतुण्डी दिवान्धके' त्यमरः ।

गजान् ग्रहीतुकामो वै राजा गजवनेषु सः ।
ततश्च कारयेद् गूढां सम्यक्च गजबन्धिनीम् ॥११६॥

---

१. ख. दीर्घतुण्डी ।

चतुरस्रां विशालां च शालां तन्निकटे ततः ।
दृढावरणसंवीतां चतुर्द्वारां सुतोरणाम् ॥११७॥

कुर्य्यात्तत्र स्थलीं सम्यक् चतुरस्रां समुन्नताम् ।
तस्यामुत्तरदिग्भागे विदध्यात्कुण्डमुत्तमम् ॥११८॥

सर्वलक्षणसंयुक्तं मेखलाद्यैरलङ्कृतम् ।
पूर्वोदितस्थलीमध्ये प्रोक्तलक्षणलक्षितम् ॥११९॥
मण्डलं कारयेत्तत्र समावाह्य गणेश्वरम् ।

मण्डलं सर्वतोभद्रम् ।

सम्पूज्य च निवेद्यान्नैरुपचारैः सुशोभनैः ॥१२०॥
आदायाऽग्निं[1] ततः कुण्डे स्वमन्त्रैः[2] पूजयेच्च तम् ।
पुरा तैरेव जुहुयादाज्यैर्वारत्रयं ततः ॥१२१॥
हुनेत् समृद्धिमन्त्रेण नव मूलाणुनाऽऽहुतीः ।

पुरा तैरेवेति दीक्षाप्रकरणोक्ताऽग्निमुखमन्त्रैः । समृद्धिमन्त्रो 'भूर्भुवः स्वरग्निर्ज्जातवेद' इत्यादिको वक्ष्यमाणः ।

प्रणवश्रीशक्तिमारभूविनायकबीजकैः ॥१२२॥
अनुबद्धैः क्रमादेभिस्त्रिविभक्तेन संहुनेत् ।

प्रणवेत्यादिना प्राग्दीक्षाप्रकरणेऽग्निमुखीकरणहोमे महागणपतिमन्त्रस्य यो दशधा विभाग उक्तस्तत्र 'सर्वंजनं मे वशमानये' त्यन्तिमपदद्वयमेकीकृत्य जुहुयात् । तेन नवधा होमो भवतीत्यर्थः । उक्तं तदाऽ**चार्यचरणैः**—

तारेण लक्ष्म्यद्रिसुतास्मरक्ष्माविघ्नेशबीजैः क्रमशोऽनुबद्धैः ।
पदत्रयेणाऽपि च मन्त्रराजं विभज्य मन्त्री नवधा जुहोतु ॥१२३॥इति।

मूलाणुना समस्तेन हुनेन्मत्रार्णसंख्यया ।
आज्येनैव ततश्चाऽष्टद्रव्यैः स्वादुविलोलितैः ॥१२४॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि चतुर्भिरधिकानि च ।
चतुःशतं चतुश्चत्वारिंशद्भिः सहितं हुनेत् ॥१२५॥

प्रत्यहं भोजयेद्विप्रांस्तदाशीर्भिर्विवर्द्धितः ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात्पञ्चाशद्दन्तिनोऽथवा ॥१२६॥

---

१. ख. आधायाऽग्निं । २. ख. समन्त्रैः ।

तन्मूल्यं तद्दशांशं वा दत्वा सन्तोष्य सद्गुरुम् ।
चतुर्णां मिथुनानां षड्गणेशनिधियुग्मयोः ॥१२७॥

अङ्गमातृदिगीशानां तन्मन्त्रैः सर्पिषा हुनेत् ।
एवं होमं समाप्याऽथ नैवेद्यं च समुद्धरेत् ॥१२८॥

पुनरभ्यर्च्य विघ्नेशं साङ्गं सावरणं ततः ।
निजे हृदि समुद्वास्य विहरेत्स यथासुखम् ॥१२९॥

ततो दिनैश्चतुश्चत्वारिंशता निपतन्ति हि ।
विनायकप्रभावेण कलभाः करिणस्तथा ॥१३०॥

करिणीनां समूहाश्च पात्यन्ते ह्यवटे ततः ।

अवटे गर्त्ते ।

प्रोक्ते कुण्डे प्रोक्तरूपं गणेशं सम्यगर्च्चयेत् ॥१३१॥

तत्र वह्निं समाधाय लक्षमेकं पृथग्घुनेत् ।
पयोघृताभ्यामुन्मत्तपुष्पैः शर्करयाऽपि च ॥१३२॥

क्षौद्रेणाऽन्नेन च ततो(तः) कुण्डमध्यात् समुज्ज्वला ।
वेतालसंज्ञा गुटिका प्राप्यते मन्त्रिणा ततः ॥१३३॥

अणिमाद्यष्टसिद्धीनां जायते भाजनं सुधीः ।

अत्रैकैकद्रव्येण सप्तषष्ट्युत्तरषट्शताधिकषोडशसहस्रसंख्याको होमः कार्य्यः, अन्तिमद्रव्ये त्वाहुतिद्वयं न्यूनमिति ।

ब्राह्मे काले समुत्थाय क्षीणे चन्द्रेऽथ पर्व्वणि ।
पद्मपत्रे कापिलं खे गोमयं प्रतिगृह्य च ॥१३४॥

अयुतं मन्त्रसञ्जप्तं निखातं द्वारि वारयेत् ।
व्याघ्रक्रोडाऽहिचोरारीन्नाऽत्र कार्य्या विचारणा ॥१३५॥

क्षीणचन्द्रे पर्व्वणि अमावस्यायाम्, खे अन्तरिक्षे ।

जाती सरक्ता च महादिमोहा सदण्डिनी स्यात् करयुग्ममेव ।
तथाऽद्रिकर्णी सशिखा च कन्या गोरोचनैतानि समानि भागैः ॥१३६॥

रक्ता मञ्जिष्ठा, महामोहा धत्तूरः, अद्रिकर्णी अपराजिता, शिखा मयूर-

शिखा, कन्या कुमारी, करयुग्ममञ्जलिनी[1], पञ्चाङ्गमलानीति श्रोत्रत्वक्चक्षु-जिह्वाघ्राणोत्थानि ।

सम्पिष्य पञ्चाङ्गमलान्वितानि कुर्यादथैकत्र ततो जपेत ।
स्पृष्ट्वैतदेनं मनुवर्य्यमष्टाधिकं सहस्रं भवतीह सिद्धम् ॥१३७॥

गजे प्रदेयं वदरप्रमाणं यवप्रमाणं चतुरङ्गमेतत् ।
यवार्द्धमात्रं मनुजे प्रदेयं देयं च तद्योषिति सर्षपार्द्धम् ॥१३८॥

प्रभक्षितं पतिमथो हि वश्यकरं प्रशस्तं हि तथाऽवशानाम् ।
जितेन्द्रियः शुद्धतनुर्म्मनुज्ञो जपेन्मनुं त्वष्टयुतं सहस्रम् ॥१३९॥

हुनेद्दशांशं करवीरलाजाः कन्यां लभेदुत्तमवंशजां सः ।
पूर्वोक्तरूपं गणपं विचिन्त्य गन्धादिनाऽभ्यर्च्य जपेत मन्त्री ॥१४०॥

मन्त्रं हि लक्षप्रमितं विमुक्तो भवेदकस्मान्निगडादिबन्धात्[2] ।
विल्वस्य पुष्पं तगरं प्रियङ्गुं सदेवदारुं हरिचन्दनं च ॥१४१॥

तथाऽगुरुं नागसुकेसरं च समानि कृत्वा मधुभावितानि ।
स्पृष्ट्वा जपेत्तानि मनुं सहस्रमष्टाधिकं तैः खलु सिद्धधूपः ॥१४२॥

भवेदनेनाऽशु सुधूपिते ना[3] विजित्य रोगान्किल दीर्घजीवी ।
प्राप्नोति चार्थं बहु याचकोऽपि भवेन्नरः सर्व्वजनप्रियश्च ॥१४३॥

अनेन धूपेन च धूपिता स्त्री सुदुर्भगाऽथो सुभगा भवेत(त्तु) ।
कुमारिका धूपसुधूपिता च वरं लभेताऽशु कुलीनमग्र्यम् ॥१४४॥

जलाशये लक्षमितोऽणुजापः सप्ताहतो वृष्टिकरः प्रशस्तः ।
स्वर्णाप्त्यै मधुना च गव्यपयसा गोसिद्धये सर्पिषा,
लक्ष्म्यै शर्करया जुहोति यशसे दध्ना च सर्व्वर्द्धये ।
अन्नैरन्नसमृद्धये च सतिलैर्द्रव्याप्तये तण्डुलै-
र्लाजाभिर्यशसे कुसुम्भकुसुमैरश्वारिजैर्वाससे ॥१४५॥

पद्मैर्भूपतिमुत्पलैर्नृपवधूं तन्मन्त्रिणः कैरवै-
रश्वत्थादिसमिद्भिरग्रजमुखान् वर्णान् वधूः पिष्टजैः ।
पुत्तल्यादिभिरन्वहं स वशयेज्जुह्वन्ननावृष्टये,
लौणैर्वृष्टिसमृद्धये च जुहुयान्मन्त्री पुनर्वेतसैः ॥१४६॥ इति ।

---

१. ख. ०मञ्चलिनी । २. ख. ०बन्धनात् । ३. ख. न ।

अश्वत्थादीत्यादिशब्देनोदुम्बरप्लक्षवटा गृह्यन्ते, पुत्तल्यादीत्यादिशब्देन पिष्टरचितवृत्तादयो गृह्यन्ते । तथा **सारसङ्ग्रहे**—

'शार्ङ्गी शचीवल्लभसोत्तमाङ्गसद्यान्तयुक्तं किल भूमिबीज' मिति । पूर्वं मूलमन्त्रोद्धारप्रकरणेऽनुद्धृतं भूबीजमुद्धरति । शार्ङ्गी गकारः, शचीवल्लभो लकारः, उत्तमाङ्गो विन्दुः, सद्यान्त औकारः । तथा—

षट्कोणे कमलापुटं प्रविलिखेत्तारं ससाध्यं ततः,
कोणेष्वङ्गमनून् स्वरान् वसुदले द्विद्विक्रमात् संलिखेत् ।
कामं द्वादशपत्रके स्वरदलेष्वालिख्य भूमीमनुं,
पद्मे तत्त्वदले महागणमनोर्वर्णांश्च शिष्टान् लिखेत् ॥१४७॥

द्वात्रिंशद्दलपङ्कजे कखमुखान् वर्णाल्लिखेत् सान्तगान्,
भूबिम्बं बहिरष्टवज्रविलसत्कोणस्थशक्रं लिखेत् ।
बाह्ये वारुणमण्डलं परिवृतं तेनैव शक्त्याऽऽवृतं,
रुद्धं तत्सृणिना महागणपतेर्यन्त्रं समुक्त महत् ॥१४८॥

षट्कोणेत्यादि महदित्यन्तस्याऽयमर्थः—षट्कोणमध्ये श्रीबीजसम्पुटितं प्रणवं विलिख्य, तन्मध्ये साध्यनामाऽलिख्य, षट्कोणेषु षडङ्गमन्त्रानालिख्य, बहिरष्टदलकमलं कृत्वा, तद्दलेषु प्रागादिक्रमेण षोडशस्वरान् द्वन्द्वशो विलिख्य, तद्बहिर्द्वादशदलकमलं कृत्वा, तद्दलेषु प्राग्वत्कामबीजं विलिख्य, तद्बहिः षोडशपत्रेषु भूबीजमालिख्य, तद्बहिश्चतुर्विंशतिदलेषु प्रणवश्रीकामभूबीजातिरिक्तानि मूलमन्त्राक्षराणि एकैकशो विन्यस्य, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलेषु कादि-सान्तान् मातृकावर्णान् सबिन्दुकानालिख्य, तद्बहिरष्टवज्रोपेतं चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु लमिति विलिख्य, तद्बहिरर्द्धचन्द्राकारं वारुणमण्डलं विलिख्य, वं बीजेन संवेष्ट्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा वृत्तयोरन्तराले ह्रीं [1]बीजैरावेष्टयाऽङ्कुशबीजाभ्यां निरोधयेत् । निरोधनं त्वाद्यन्तयोर्लेखनम् । तथा—

भूर्ज्जे धरायां वसने लिखेत्तद् गोरोचनाकुङ्कुमगोमयाद्भिः ।
कस्तूरिकाभिः सुधया च हेमरूप्योद्भवा स्यादिह लेखनी च ॥१४९॥

यन्त्रं धृतं येन सुदुर्जयः स्याल्लोकैरशेषैर्गणपप्रसादात् ।
न दह्यतेऽसौ दहनेन तस्य भीतिर्न च स्यान्नृपतस्करेभ्यः ॥१५०॥

---

१. ख. बीजैरावेष्ट्यां० ।

द्यूते रणे राजकुले च वादे[1] सदा मनुज्ञो विजयी भवेच्च ।
अनामिकारक्तविमिश्रितैस्तच्छोणैर्लिखेद् द्रव्यवरैर्यथावत् ।।१५१।।

कुचन्दनाद्यैररुणैश्च पुष्पैः सम्पूज्य तन्मन्त्रिवरो निवेद्यैः ।
कृत्वा मनोज्ञाङ्गवतीं च मूर्तिं विन्यस्य तस्या उदरे च यन्त्रम् ।।१५२।।

प्रतापयेद्दीपशिखाकृशानौ सप्ताहतो योषितमानयेत्सः ।
जप्त्वा मनुं चाऽष्टशतं प्रताप्य वह्नौ धृतं तद्वशयेन्मृगाक्षीम् ।।१५३।।

स्वभावविद्वेषवतां हि रक्तैः श्मशानजाङ्गारयुतैर्लिखेत्तत् ।
शावांशुके[2] लेखनिकाऽत्र काकपक्षोत्थिता सम्यगथाऽभिपूज्य ।।१५४।।

उच्चाटयेद्बद्धमिदं ध्वजाग्रे विद्वेषयत्येव हि वैरिसङ्घम् ।
द्रव्यैः सुपीतैर्विलिखेच्छिलायां पीतप्रसूनैः रुचिरार्कपुष्पैः ।।१५५।।

प्रपूज्य संवेष्ट्य च पीतसूत्रैः साध्यानिलस्थापनमाचरेच्च ।
तद्देहलीदेश इदं निखातं करोन्मिते स्तम्भनकारि यन्त्रम् ।।१५६।।

दुष्टस्य वाक्स्तम्भमरिव्रजस्य गतेस्तु संस्तम्भनमाशु कुर्यात् ।
सेनां परेषां गजवाजियुक्तां संस्तम्भयेन्नाऽत्र विचारणीयम् ।।१५७।।

श्मशानकाङ्गारवरोत्थमध्या[3] श्मशानवस्त्रे कुपितेन मन्त्री ।
चित्तेन संलिख्य नरास्थिजाऽत्र सल्लेखनी चन्दनपुष्पधूपैः ।।१५८।।

सम्पूज्य तच्छावधरानिखातं सम्मारयेद्वैरिणमाशु नूनम् ।
उत्खातमेतत्पयसा च धौतं यन्त्र हि शान्ति तनुते नराणाम् ।।१५९।।इति।

भूर्जेत्यादि, सुधया चूर्णेन, मूर्तिं देवस्य साध्यानिलस्थापनं साध्यस्य प्राणप्रतिष्ठा, करोन्मिते हस्तमात्राधस्तात्, शावधरा श्मशानभूमिः । तथा—

आलिख्याऽग्निपुरे सतारविवरे बीजं बहिर्दिक्ष्वथ,
श्रीमायामदनान् भुवं गृहयुगे बीजानि वह्नेस्ततः ।
सन्धिष्वङ्गमनूनथाऽष्टदलके वर्णान् मनोरालिखेत्,
श्रींस्त्रीनन्त्यदले क्रमेण विधिवच्छिष्टं तथैकं कृती ।।१६०।।

---

१. ख. वाह्ये । २. ख. शवांशुके ।
३. क.० वरोत्थमध्या ।

वेष्टितं मातृकावर्णैः क्रमोत्क्रमगतैरपि ।
पाशाङ्कुशावृतं बाह्ये भूगेहद्वितयेन च ॥१६१॥

महागणपतेर्यन्त्रं कृतं हेमशलाकया ।
अलक्तकं च काश्मीरं कस्तूरीरोचनान्वितम् ॥१६२॥

मेलयित्वा विभागेन पिष्ट्वा चन्दनवारिणा ।
स्वर्णपट्टेऽथ भूर्ज्जे वा लिखितं विधिपूर्वकम् ॥१६३॥

कृतप्राणप्रतिष्ठं तं दोर्द्धृतं भुक्तिमुक्तिदम् ।
आयुरारोग्यसम्पत्तिकीर्त्तिदं प्रीतिवर्द्धनम् ॥१६४॥ इति ।

अयमर्थः—षट्कोणमध्ये त्रिकोणमालिख्य, त्रिकोणमध्ये प्रणवमध्यगतं ससाध्यं गं बीजमालिख्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले पूर्व्वादिचतुर्दिक्षु—'श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं' इति बीजचतुष्टयमेकैकशो विन्यस्य, षट्कोणेषु पूर्वादिक्रमेण—'प्रणवादि-षड्बीजा'न्यालिख्याऽष्टदलेषु 'गणपतये' इत्यादि शिष्टमन्त्रगतद्वाविंशतिवर्णेषु त्रींस्त्रीन् वर्णान् सप्तदलेषु विलिख्याऽवशिष्टमेकमक्षरमष्टमदले विलिख्य, बहिर्वृत्तपञ्चकं विधाय, तदन्तर्गतवीथीचतुष्टये सर्वाभ्यन्तरवीथ्यां—सबिन्दूनकारादिक्षकारान्तान् वर्णानालिख्य, द्वितीयवीथ्यां-क्षकाराद्यकारान्तान् वर्णान् विलिख्य, तृतीयवीथ्यां—आं' इति पाशबीजैरावेष्ट्य, सर्वबाह्यवीथ्यां—'क्रों' मित्यङ्कुशबीजैरावेष्ट्य, तद्बहिश्चतुरस्रद्वयं कुर्यादित्येतदुक्तफलदं भवति । अत्र चतुरस्रद्वयवेष्टनं बाह्याभ्यन्तरभेदेनेति **केचित्**, **अष्टकोणरूपेणेत्यन्ये** । यथागुरूपदेशं कार्य्यमिति ।

श्रीयन्त्रसारे केरलीये—

आलिख्य कर्णिकामध्ये शक्तिं कोणेषु षट्स्वपि ।
तारश्रीशक्तिकामेलाविघ्नबीजानि तद्बहिः ॥१६५॥

आलिख्य चाऽष्टपत्रस्य पद्मस्य प्रथमे दले ।
क ए इत्यादि वाग्बीजं द्वितीये च दले ततः ॥१६६॥

यदद्येत्याद्यृचो[1] वर्णानष्टौ पत्रे तृतीयके ।
कामबीजं हसेत्यादि पत्रे भूयश्चतुर्थके ॥१६७॥

---

१. ख. यदद्येत्याधृचो ।

उदगा इत्यष्टवर्णानालिख्याऽथ च पञ्चमे ।
सकलेत्यादि शाक्तं च बीजं षष्ठे दले पुनः ॥१६८॥

सर्वं तदिन्द्रतेत्यादिवर्णानष्टौ च सप्तमे ।
पत्रे गणपतेत्यादि नववर्णान् दलेऽष्टमे ॥१६९॥

सर्वेत्यादिद्वादशार्णैस्तद्बाह्ये मातृकाक्षरैः ।
सवेष्टच कुगृहाश्लिष्टैः श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौमिति क्रमात् ॥१७०॥
आलिखेद्धेमपट्टादौ हेमसूच्याऽतिरञ्जनम् ।

रञ्जनं वश्यकरम् । अस्यार्थः—

अष्टदलकमलकर्णिकायां षट्कोणमध्ये ससाध्यं शक्तिबीजं विलिख्य, षट्कोणेषु—'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं' इत्येकैकशो विलिख्याऽष्टदलेषु प्रथमदले—श्रीविद्यायाः प्रथमकूटं, द्वितीयदले—'यदद्यकच्च वृत्रहन्' इति विलिख्य, तृतीयदले—श्रीविद्यायाः कामकूटं, चतुर्थदले—'उदगा अभिसूर्य' इति विलिख्य, पञ्चमे—श्रीविद्यायास्तार्त्तीयं, षष्ठे—'सर्वं तदिन्द्र ते वशे' इति, सप्तमे—'गणपतये वरवरद' इति, अष्टमे 'सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' इति विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले मातृकाक्षरैरावेष्टच, चतुरस्रचतुःकोणेषु च महागणपतिमन्त्रस्य द्वितीयबीजादिबीजचतुष्टयं लिखेदेतदुक्तफलदम् । इदं यदद्येत्याद्यृचा[1] श्रीविद्यया च सहितं महागणपतियन्त्रम् ।

श्रीविद्या तु ज्ञानार्णवे—

सकला भुवनेशानी[2] कामेशीबीजमुत्तमम् ।
अनेन सकला विद्याः कथयामि तवाऽनघे ॥१७१॥

शक्त्यन्तस्तुर्यवर्णोऽयं कलमध्ये सुलोचने ।
वाग्भवं पञ्चवर्णं तु कामराजमथोच्यते ॥१७२॥

मादनं शिवचन्द्राद्यं शिवान्तं मीनलोचने ।
कामराजमिदं भद्रे षडर्णं सर्वमोहनम् ॥१७३॥
शक्तिबीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम् ।

१. ख. इयं यदत्योद्येघृचा । २. ख. भुवनेशानि ।

शक्तिः—ए, तस्यान्ते अधस्तुरीयवर्णः ई, सकला भुवनेशानीत्यस्य कलाभ्यां सह वर्तमाना भुवनेशानीत्यर्थत्वात्कलयोर्मध्ये 'ए ई' इति वर्णद्वये दत्ते कामराजविद्यायाः प्रथमं कूटं भवति । मादनं सकलेत्येतत्सम्बन्धात् ककारः शिवचन्द्रौ हकारसकारौ आद्यौ यस्य तत्, शिवः हकारः अन्ते यस्य तत् ।

श्रीयन्त्रसारे—

कर्णिकायां साध्यगर्भं तारं पत्रेषु चाऽष्टसु ।
अग्न्यक्ष्यग्न्यग्निजलधि त्रीणि त्रिद्व्यक्षराणि च ॥१७४॥

आलिख्य मातृकावर्णैर्भूपुरेण च वेष्टयेत् ।
यदद्यकेत्यृचो यन्त्रं वश्यसौभाग्यकान्तिदम् ॥१७५॥
सुवर्णरत्नधान्यादिसर्वसम्पत्करं परम् ।

अस्यार्थः—अष्टदलकमलकर्णिकामध्ये ससाध्यं तारं विलिख्य, तद्दलेषु—त्रिद्वित्रित्रिचतुस्त्रित्रिद्विक्रमेण 'यदद्यकच्चे' त्यृचो वर्णान् विभज्य, विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले मातृकार्णैरावेष्टय, बहिश्चतुरश्रेण वेष्टयेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति । ऋक् तु महागणपतियन्त्रे लिखिता सुकक्ष इन्द्रो गायत्री ।

श्रीयन्त्रसारे—

षट्कोणकर्णिकामध्ये तारं कोणेषु षट्स्वपि ।
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं इति गणपतये तद्बहिः ॥१७६॥

[1]शिष्टाङ्गश्चतुःपञ्चसप्तवर्णांश्चाऽपि चतुर्दले ।
बाह्ये संवादसूक्तस्याऽप्यर्द्धमर्द्धमृचां क्रमात् ॥१७७ ।

आलिख्य चाऽष्टपत्रेषु त्रिष्टुभाऽऽवेष्टय तद्बहिः ।
मातृकार्णैश्च भूबिम्बकोणेषु च यथाक्रमम् ॥१७८॥
आलिखेद्भद्रमित्यादि पादमन्त्रचतुष्टयम् ।
तत्संवादसूक्तस्य यन्त्रं लोकेषु दुर्लभम् ॥१७९॥

सङ्घातभेदे मर्त्यानां मैत्रीकरणमुत्तमम् ।
जगत्सम्मोहनं वश्यं कीर्तिसौभाग्यपुष्टिदम् ॥१८०॥

अस्यार्थः—चतुर्दलकमलकर्णिकायां षट्कोणमध्ये ससाध्यं प्रणवं

१. शिष्टांश्चतुः० ।

विलिख्य तत्कोणेषु—प्रोक्तबीजषट्कमालिख्य, चतुर्द्दलेषु—'गणपतये', द्वितीये—वरवरद', तृतीये—'सर्वजनं मे', चतुर्थे—'वशमानय स्वाहा' इति विलिख्य, तद्बहिरष्टदलेषु—वक्ष्यमाणसंवादसूक्तस्य ऋचामर्द्धमालिख्य,[1] तद्बहिर्वृत्तत्रयान्त-स्थान्तरालद्वयस्याऽभ्यन्तरान्तराले वक्ष्यमाणतृ(त्रि)ष्टुभाऽऽवेष्टच, बहिष्ठान्तराले मातृकार्णैरावेष्टच, तद्बहिश्चतुरश्रकोणेषु—

'भद्रं नो अपि वातयमनः, मरुतामोजसे स्वाहा, इन्द्रो विश्वस्य राजति', शन्नो भव द्विपदे,[2] शं चतुष्पदे' इति पादमन्त्रचतुष्टयं लिखेत् एतदुक्तफलदम् ।

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ।।१८१।।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।१८२।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषां ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।१८३।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु[4] वो मनो यथा वः सुसहासति ।।१८४।।

इति **ऋग्वेदोक्तं संवादसूक्तम्** ।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो[5] निजहाति वेदः ।
सनः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वानावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः ।।१८५।।

इति **त्रिष्टुप्मन्त्रः** ।

सं समिदित्यस्य संवनन ऋषिः, संज्ञानं देवता, तिस्रोऽनुष्टुभः, तृतीया त्रिष्टुप्, आद्या आग्नेयी ।

---

१. ख. ऋचामर्द्धमर्द्धमालिख्य । २. क. द्विपदेशे ।

३. क. ख. मुपासते इति पाठः । ४. क. समानवस्तु ।

५. क. '०तीग्रतोतियतो' इति पाठः सोऽप्रङ्गतः (सम्पादक) ।

सारसङ्ग्रहे—

ध्यानं प्रवक्ष्ये ह्यथ कामनाया भेदेन भिन्नं बहुधाऽतिरम्यम् ।
भिन्नाञ्जनाद्रिप्रभदेहकान्तिं सुमेरुसन्मन्दरतुल्यसारम् ॥१८६॥

नानामणिव्रातविभूषिताङ्गं रत्नोल्लसद्रम्यकिरीटयुक्तम्[1] ।
भीमं महोग्रं नयनत्रयाढ्यं कर्णद्वयोल्लासिसुचामरं च ॥१८७॥

लम्बोष्ठमुद्यद्वरनागयज्ञोपवीतिनं चैकरदं गजास्यम् ।
सत्काञ्चनोद्यत्कटिसूत्रयुक्तं रक्तांशुकं लोहितपुष्पभूषम् ॥१८८॥

पद्माङ्कुशौ पाशरदे च शक्तिं गदां वरं चाऽब्जमथेक्षुदण्डम् ।
शालेस्तथाऽग्रं दधतं कराग्रैः पद्मासनस्थं हृदि भावयेत्तम् ॥१८९॥

बाणं तथैवाऽक्षयभाण्डधन्वकमण्डलून् मोदकपात्रशक्ती ।
सतोमरं पाशमथेक्षुदण्डं सृणिं कराब्जैर्दधतं भजेत्तम् ॥१९०॥

सदाऽखिलोपद्रवनाशकारि ध्यानं गणेशस्य समीरितं हि ।
पीतं स्मरेत् स्तम्भनकाम एनं वश्याय मन्त्री ह्यरुणं स्मरेत्तम् ॥१९१॥

कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीशमुच्चाटने धूम्रनिभं स्मरेत्तम् ।
बन्धूकसूनाभममुञ्च कृष्टौ स्मरेद्बलार्थं किल पुष्टिकार्ये ॥१९२॥

स्मरेद्धनार्थी च हरिन्निभं तं मुक्त्यै च शुक्लं मनुवित् स्मरेत्तम् ।
एवम्प्रकारेण गणं त्रिकालं ध्यायञ्जपन् सिद्धियुतो भवेत्सः ॥१९३॥इति।

॥ **अथ काम्यतर्प्पणविधिः** ॥ तत्रैव—

पूर्वं मनुं विंशतिधा गणेशं प्रतर्प्य वर्णानिह ठद्वयान्तान् ।
प्रतर्प्पयेद्द्वारचतुष्टयञ्च प्रत्येकशो मूलमनुं च तद्वत् ॥१९४॥

युग्मानि विघ्नान्निधिसंयुतान् षट् प्रतर्प्पयेत् शक्तियुतान् पृथक्च ।
पुरोक्तवन्मूलमनुं चतुर्द्धा प्रतर्प्पयन् मन्त्रिवरो यथावत् ॥१९५॥

यथावदित्यनेन मिथुनचतुष्टयषड्गणेशनिधिद्वयानां स्वस्वबीजादि संसूचितम्[2] । तदुक्तम्—

---

१. क. करीटयुक्तम् । २. ख .त्वं सूचितम् ।

गणेशपरामर्शिण्याम्—

मिथुनानि च षड्विघ्नान् शङ्खपद्मनिधी अपि ।
स्वस्वबीजादिकैर्मन्त्री स्वाहान्तैश्च चतुश्चतुः ॥१९६॥ इति ।

तथा—

सचतुश्चत्वारिंशच्चतुःशतानि तर्प्पणानि चैवं स्युः ।
अथवा प्रकारभेदात्तर्प्पणमेतत् प्रवक्ष्येऽहम् ॥१९७॥

मूलाणुना च दशधा विभक्तेनाऽथ तर्प्पयेत् ।
प्रत्येकं मूलमन्त्रेण चतुरावृत्ति तर्प्पयेत् ॥१९८॥

तत्र ताररमामायामारभूविघ्नबीजकैः[1] ।
शरेषुदशयुग्मैश्च मन्त्रार्णैस्तर्प्पयेत् क्रमात् ॥१९९॥

शराः पञ्च, पञ्च इषवः, युग्मं द्वयम् ।

अशीतिप्रमितान्येवं तर्प्पणानि भवन्ति च ।
एकादशभिरप्यत्र बीजपूरादिभिः क्रमात् ॥२००॥

कलशान्तैश्चतुर्द्धा च मूलेनाऽपि तथा सुधीः ।
विघ्नभूमारमायाश्रीबीजानि व्युत्क्रमाणि च ॥२०१॥

समस्तान्येतदन्तैश्च बीजपूरैः प्रतर्प्पयेत् ।
अष्टाशीतिमितान्येवं जायन्ते तर्प्पणान्यथ ॥२०२॥

अत्र बीजपूरादिमन्त्रेषु विशेषमाह—

गणेश्वरपरामर्शिण्याम्—

बीजपूरं गदा चेक्षुकार्मुकं च त्रिशूलयुक् ।
चक्राब्जपाशोत्पलानि कलमाग्रविषाणयुक् ॥२०३॥

ङेन्ताश्च रत्नकलशो हृदन्ताः प्रणवादिकाः ।
गं बीजाद्यादिकाः पश्चा[2][त्] श्रीबीजाद्यादिकाः पुनः ॥२०४॥

षड्बीजाद्योऽन्तिमश्चैते वक्ष्यमाणपदादिकाः ।
यथाक्रमं महाविघ्नायुधानां मनवः स्मृताः ॥२०५॥

---

१. क. ०मायारभू० । २. ख. पञ्च ।

मन्त्रफलं स्याच्छक्तिः सप्राणत्रिगुणाकालचक्रमिति च ।
व्याप्तिरक्ते भूस्वरूपं विद्या त्रैलोक्यमात्मने युक्तम् ॥२०६॥

'गं ॐ मन्त्रफलात्मने बीजपूराय नमः' इत्याद्याः प्रयोगे प्रदर्शयितव्याः ।

षड्बीजाद्यैर्गणपतेत्यादिमन्त्रादिकैः क्रमात् ।
दशविघ्नैश्चतुर्वारं मूलेनाऽपि च तर्प्पयेत् ॥२०७॥

विघ्नो विनायको वीरः शूरो वरद एव च ।
इभवक्त्रश्चैकदन्तो लम्बोदरगणस्तथा ॥२०८॥

क्षिप्रप्रसादनश्चैव महागणपतिस्तथा ।
तर्प्पणानि तथाऽशीतिमितानीह भवन्ति वै ॥२०९॥

चत्वारि मिथुनान्यत्र तानि शक्त्यादिकानि च ।
स्वविनायकबीजादिकानि सन्तर्प्य मन्त्रवित् ॥२१०॥

मूलाणुना चतुर्वारं मध्ये सन्तर्प्पयेत् क्रमात् ।
चतुःषष्टिमितान्येवं जायन्ते तर्प्पणान्यथ ॥२११॥

आमोदादीन् स्वशक्त्यन्तान् शक्त्याद्यांश्च प्रतर्प्पयेत् ।
[1]विघ्नेशबीजप्रथमांश्चतुर्मूलाणुना चतुः ॥२१२॥

तर्प्पयेत् षण्णवत्येवं तर्प्पणानि भवन्त्यथ ।
शक्त्यादिकान् स्वशक्त्यन्तनिधिद्वयमथो चतुः ॥२१३॥

तर्प्पयेच्च चतुर्म्मूलं द्वात्रिंशत्प्रमितानि च ।
तर्प्पणानि भवन्त्येवं ततो मूलाणुना चतुः ॥२१४॥

तर्प्पयेत्स्वचतुश्चत्वारिंशच्चाऽथ चतुःशतम् ।
तर्प्पणानि भवन्त्येभिः सर्वान् कामान् प्रसाधयेत्[2] ॥२१५॥

॥ अथ तर्प्पणप्रयोगः ॥

तत्र प्रथमं श्रीगणेश्वरपरामर्शिन्युक्तपरिपाट्या तर्प्पणस्थानं सञ्चित्य, तत्र देवं ध्यात्वा तर्प्पणारम्भं कुर्यात् । तद्यथा—

---

१. ख. विघ्नेशबीजप्रथमं० । २. ख. प्रसादयेत् ।

सर्वाभीष्टप्रदं वक्ष्ये चतुरावृत्ति तर्प्पणम् ।
एकान्ते विजने रम्ये सर्वोपद्रववर्ज्जिते ॥२१६॥

कृतस्नानादिको मन्त्री पूर्ववन्न्याससंयुतः ।
तडागमध्ये सञ्चिन्त्य पुष्पितं नलिनीवनम् ॥२१७॥

तस्य मध्ये महापद्मं तरुणादित्यसन्निभम् ।
समुन्नतं सुगन्धाढ्यं रमणीयं मनोहरम् ॥२१८॥

सद्यो विकसितं ध्यायेन् मन्त्री पूर्वोक्तमन्त्रवित् ।
शुद्धं रजतसोपानपङ्क्त्या तं रविमण्डलात् ॥२१९॥

विनिर्गत्याऽवरुह्याऽथ कर्णिकामध्यसंस्थितम् ।
इति ध्यात्वा सावरणं महागणपतिं सुधीः ॥२२०॥

प्रवरैर्गन्धकुसुमैः समभ्यर्च्याऽथ पूर्ववत् ।
निधाय पुष्करमुखं साधकेन्द्रस्य मूर्द्धनि ॥२२१॥

वर्षन्तं रत्नधाराभिर्ध्यात्वा देवस्य मूर्द्धनि ।
चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीलोलितैर्जलैः ॥२२२॥
तर्प्पयेत्परया भक्त्या देवदेवं प्रसन्नधीः ।

इत्येवं देवं ध्यायन् मूलमन्त्रमुच्चार्य्य 'श्रीमहागणपतिं तर्प्पयामी' ति देवस्य मूर्द्धनि विंशतिवारं सन्तर्प्य "ॐ तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, श्रीं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, एवं ह्रीं ४, मू ४, क्लीं ४, मू ४, ग्लौं ४, मू ४, गं ४, मू ४, णं ४, मू ४, पं ४, मू ४, तं ४, मू ४, ये ४, मू ४, वं ४, मू ४, रं ४, मू ४, वं ४, मू ४, रं ४, मू ४, दं ४, मू ४, सं ४, मू ४, वँ ४, मू ४, जं ४, मू ४, नं ४, मू ४, में ४, मू ४, वं ४, मू ४, शं ४, मू ४, मां ४, मू ४, नं ४, मू ४, यं ४, मू ४, स्वां ४, मू ४, हां ४ मू ४; पुनर्मूलेन ४;

श्रीं नारायणसहितां लक्ष्मीं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, श्रीं लक्ष्मीसहितं नारायणं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, ह्रीं हरसहितां गौरीं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, ह्रीं गौरीसहितं हरं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, क्लीं कामसहितां रतिं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, क्लीं रतिसहितं कामं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, ग्लौं वराहसहितां महीं त० ४, मू ४, ग्लौं महीसहितं वराहं त० ४, [गं महागणपति-सहितां महालक्ष्मीं त० ४, ४, गं महालक्ष्मीसहितं महागणपतिं त० ४,] मू ४,

[-] कोष्ठान्तःस्थोंऽशो नास्ति ख. पुस्तके ।

गं आमोदसहितां सिद्धिं त० ४, मू ४, गं सिद्धिसहितमामोदं त० ४, मू ४, गं प्रमोदसहितां समृद्धिं त० ४, मू ४, गं समृद्धिसहितं प्रमोदं त० ४, मू ४, गं सुमुखसहितां कान्तिं त० ४, मू ४, गं कान्तिसहितं सुमुखं त० ४, मू ४, गं दुर्मुख-सहितां मदनावतीं त० ४, मू ४, गं मदनावतीसहितं दुर्मुखं त० ४, मू ४, गं विघ्नसहितां मदद्रवां त० ४, मू४, गं मदद्रवासहितं विघ्नं त०४, मूलं४, गं विघ्नकर्तृ-सहितां द्राविणीं त० ४, मू ४, गं द्राविणीसहितं विघ्नकर्त्तारं त० ४, मू ४, शं शङ्खनिधिसहितां वसुधारां त० ४, मू ४, शं वसुधारासहितं शङ्खनिधिं त० ४, मू ४, पं पद्मनिधिसहितां वसुमतीं त० ४, मू ४, पं वसुमतीसहितं पद्मनिधिं त० ४, मू ४, पुनर्मूलेन । एवं ४४४ इत्येकप्रकारः ।

प्रकारान्तरं तु—४[१] मू ४, ॐ ४, मू ४, श्रीं ४, मू ४, ह्रीं ४, मू ४, क्लीं ४: मू ४, ग्लौं ४, मू ४, ग ४, मू ४[२], गणपतये ४, मू ४, वरवरद ४, मू ४, सर्वजनं मे वशमानय ४, मू ४, स्वाहा ४, 'मू ४'[३], एवं ८० ।

४ मू ४, 'गं मन्त्रफलात्मने बीजपूराय नमः' बीजपूरं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, 'ग्लौं ॐ शक्त्यात्मने गदायै नमो' गदां त० ४, मू ४, 'क्लीं ॐ प्राणात्मने इक्षुकार्मुकाय नम' इक्षुकार्मुकं त० ४, मू ४, 'ह्रीं ॐ त्रिगुणात्मने त्रिशूलाय नमः' त्रिशूलं त० ४, मू ४, 'श्रीं ॐ कालात्मने चक्राय नमः' चक्रं त० ४, मू ४, 'श्रीं ॐ चक्रात्मने अब्जाय नमः' अब्जं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, 'ह्रीं ॐ व्याप्त्यात्मने पाशाय नमः' पाशं त० ४, मू ४, 'क्लीं ॐ रक्तात्मने उत्पलाय नमः' उत्पल तर्प्प० ४, मू ४, 'ग्लौं ॐ भुवात्मने कलमाग्राय नमः, कलमाग्रं तर्प्पयामि ० ४, मू ४, 'गं ॐ विद्यात्मने विषाणाय नमो' विषाणं त० ४, मू ४, 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं त्रैलोक्यात्मने रत्नकलशाय नमो' रत्नकलशं त० ४, मू ४, एवं ८८;

मू ४, 'ॐ[४] ४, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं विघ्नगणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' विघ्नगणपतिं त० ४, मू ४, इत्येव युक्त्या तत्तन्नाम्ना[५] द्वितीयान्तेन सर्वगणपतींस्तर्प्पयेत् ।

४ मू ४, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं विनायकगणपतये वरवरद इत्यादि ४,

---

१. ख नास्ति । अनपेक्ष्यश्चाऽयमंशः सूत्रवैरुध्यात् । २. ख. 'मू ४' इत्यंशो नास्ति ।
३. 'मू ४' एतदंतः सूत्रविरुद्धत्वान्नाऽपेक्ष्योऽत्र । (सम्पा०) ४. ख. नास्ति । ५. ख. तत्तन्नामा ।

मू ४, ६[1] वीरगणपतय इत्यादि ४, मू ४, ६ शूरगणपतये इत्यादि ४, मू ४, ६ वरदगणपतये इत्यादि ४, मू ४, ६ इभवक्त्रगणपतये इत्यादि ४, मू ४, ६ एकदन्तगणपतये इत्यादि ४, मू ४, ६ लम्बोदरगणपतय इत्यादि ४, मू ४, ६ क्षिप्रप्रसादनगणपतय इत्यादि ४, मू ४, ६ महागणपतय इत्यादि ४, मू ४, एवं ८०;

ततः श्रीं गं लक्ष्मीसहितं नारायणं त० ४, मू० ४, गं श्रीं नारायणसहितां लक्ष्मीं त०४, मू०४, ह्रीं गं गौरीसहितं हरं त०४, मू० ४, गं ह्रीं हरसहितां गौरीं त०४, मू ४, क्लीं गं रतिसहितं कामं त०४, मू ४, गं क्लीं कामसहितां रतिं त०४, ४, ग्लौं गं महीसहितं वराहं त०४, मू ४, गं ग्लौं वराहसहितां महीं त०४, मू ४, एवं ६४ ।

ततः श्रीं गं सिद्धिसहितमामोदं त० '४, मू० ४,'[2] गं श्रीं आमोदसहितां सिद्धिं ४, मू४, श्रीं गं समृद्धिसहितं प्रमोदं त०४, मू४, गं श्रीं प्रमोदसहितां समृद्धिं त० ४, 'मू०४,'[3] श्रीं गं कान्तिसहितं सुमुखं त०४, मू४, गं श्रीं सुमुखसहितां कान्तिं त०४, मू४, क्लीं गं मदनावतीसहितं दुर्मुखं त० ४, मू४, गं क्लीं दुर्मुखसहितां मदनावतीं त० ४, मू ४, क्लीं गं मदद्रवासहितं विघ्नं त० मू ४, गं क्लीं विघ्नसहितां मदद्रवां त०४, मू ४, क्लीं गं द्राविणीसहितं विघ्नकर्त्तारं त० ४, मू ४, गं क्लीं विघ्नकर्तृसहितां द्राविणीं त० ४[4], मू ४, एव ९६;

ह्रीं गं वसुधारासहितं शङ्खनिधिं त० ४, मू ४, गं ह्रीं शङ्खनिधिसहितां वसुधारां त०४, मू ४, ग्लौं गं वसुमतीसहितं पद्मनिधिं त०४, मू ४, ग ग्लौं पद्मनिधिसहितां वसुमतीं त० ४, मू ४, एव ३२, ततः मू ४, एवं सम्भूय ४४४।

प्रकारान्तरन्तु **गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—**

प्रथमं मूलमन्त्रेण चतुर्वारं प्रतर्प्य च ।
मिथुनानि च षड् विघ्नान् शङ्खपद्मनिधी अपि ॥२२३॥

स्वस्वबीजादिकैर्मन्त्री स्वाहान्तैश्च चतुश्चतुः ।
मूलमन्त्रचतुर्वारपूर्वकं तर्प्पयेत्पृथक् ॥२२४॥

---

१. सङ्ख्ययाऽनया 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं' इति षड्बीजानि बोद्धव्यानि (सम्पादक)

२.३. '-' चिह्नान्तःस्थांशस्याऽभावः पुस्तकद्वयेषु, किन्तु सूत्रसापेक्ष्यादयमंश उपर्युपन्यस्तः (सम्पादक) ।

४. ख. नास्तीयं सङ्ख्या, किन्तु साऽत्राऽऽक्षपेक्ष्या ।

सम्भूयाऽष्टोत्तरशतं कनिष्ठः स्यादयं क्रमः ।
अथवा मूलमन्त्राद्यैर्व्यस्तैरेतैश्च पूर्ववत् ॥२२५॥
मन्त्रैर्वा तर्प्पयेद्विद्वानर्च्चनोक्तं विधानतः ।
मध्यक्रमोऽयं सम्भूय द्विशतं षोडशोत्तरम् ॥२२६॥
अथवा मूलमन्त्रेण चतुर्वारं प्रतर्प्य च ।
पूर्वं मन्त्राक्षरैर्मन्त्रैः स्वाहान्तैश्च चतुश्चतुः ॥२२७॥
मूलमन्त्रचतुर्वारपूर्वकं सम्प्रतर्प्य च ।
मिथुनादींस्ततः पश्चात् [पूर्ववत्सम्प्रतर्प्पयेत् ॥२२८॥
भवेत् सम्भूय सचतुश्चत्वारिंशच्चतुःशतम् ।
एवं ज्येष्ठक्रमः प्रोक्तो बुधैरागमपारगैः ॥२२९॥
एवं सन्तोष्य तत्पश्चात्] पूर्ववत् सोपचारकैः ।
सर्व्वाभीष्टं च सम्प्रार्थ्य प्रणम्योद्वासयेत्सुधीः ॥२३०॥
य एवं तर्प्पयन्नित्यं[1] मण्डलात् सत्फलं लभेत् ।
अनावृष्ट्यां भये घोरे राजचोराद्युपद्रवे ॥२३१॥
महाज्वरे विवादे च महादारिद्र्यसङ्कटे ।
विवाहादिषु कार्य्येषु सर्व्वेषु च विशेषतः ॥२३२॥
एवं वै तर्प्पणं कुर्यान्मानवेन्द्रः प्रसन्नधीः ।
महागणेश्वरः प्रीतो महासम्पत्करो भवेत् ॥२३३॥ इति ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

मू ४, महागणपतिं ४,[2] पुष्टि ४, मू ४, श्रीं लक्ष्मीनारायणौ त० ४, मू ४, ह्रीं गौरीहरौ त० ४, मू, ४, क्लीं रतिकन्दर्प्पौ त० ४, मू ४, ग्लौं महीवराहौ त० ४, मू ४, गं लक्ष्मीगणनायकौ त० ४, मू ४, आमोदसिद्धी ४, मू ४, गं प्रमोदसमृद्धी त०४, मू ४, ग सुमुखकान्ती त०४, मू ४, गं दुर्मुखमदनावत्यौ त०४, मू ४, गं विघ्नमदद्रवे[3] त० ४, मू ४, गं विघ्नकर्तृद्राविण्यौ[4] त० ४, मू ४, शं शङ्खनिधिवसुधारे ४, मू ४, पं पद्मनिधिवसुमत्यौ त० ४, एवं सम्भूय १२४ अयं कनिष्ठः क्रमः ।

[-] कोष्ठकगतोंऽशः ख. पुस्तके नास्ति । १. ख. तर्प्पयेन्नित्यं । २. ख. '४' नास्ति ।
३. क. मदद्रवे । ४. क. विघ्नकर्तृमदनावत्यौ । पाठोऽयमसमीचीनः (सम्पा०) ।

मू ४, श्रीं नारायणसहितां लक्ष्मीं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, श्रीं लक्ष्मीसहितं नारायणं त० ४, मू ४, एवं मिथुनानि पञ्च, आमोदादीन् षट्, निधिद्वयं तेषां त्रयोदशमिथुनानां जाततर्प्पणसंख्याऽष्टोत्तरशतद्वयं, आद्यन्तयोर्मूलेन चतुश्चतुः एवं सम्भूय षोडशाधिकद्विशतमिति मध्यमः प्रकारः।

आदौ मूलेन ४, ओं तर्प्पयामि स्वाहा ४, मू ४, श्रीं ४, मू ४, ह्रीं ४, मू४, क्लीं ४, मू ४, ग्लौं ४, मू ४, गं ४, मू ४, णं ४, मू ४, पं ४, मू ४, तं ४, मू ४, यें ४, मू ४, वं ४, मू ४, रं ४, मू ४, वं ४, मू ४, रं ४, मू ४, दं ४, मू ४, सं ४, मू ४, वँ ४, मू ४, जं ४, मू ४, नं ४, मू ४, में ४, मू ४, वं ४, मू ४, शं ४, मू ४, मां ४, मू ४, नं ४, मू ४, यं ४, मू ४, स्वां ४, मू ४, हां ४, मू ४[1], एवं सम्भूयाऽष्टाविंशत्यधिकशतद्वयसंख्यं तर्प्पयित्वा पुनर्म्मध्यमप्रकारोक्तषोडशोत्तरशतद्वयं तर्प्पयेत्। तेन सम्भूय चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतं तर्प्पणानि भवन्तीत्युत्तमः प्रकारः। **इति काम्यतर्प्पणविधिः।**

अथ श्रीमहागणपतेरङ्गविशेषेषु द्रव्यविशेषैस्तर्प्पणात्फलविशेषानाह।

सारसङ्ग्रहे—

शुण्डाकराग्रे गणपं जलेन प्रतर्प्पयेन्मुक्तिफलाय मन्त्री।
तथेन्दिराकामनया गणेशं प्रतर्प्पयेन्मूर्द्धनि पयोभिरत्र ॥२३४॥
गुह्यप्रदेशे मधुना गणेशं प्रतर्प्पयेत्कामफलाय विद्वान्।
आकृष्टिवश्यादिनिमित्तमत्र प्रतर्प्पयेत्तं मधुभिश्च नेत्रे ॥२३५॥
भूपालवश्याय महागणेशं प्रतर्प्पयेच्चारु घृतेन पृष्ठे।
ऊरुस्थले तैलसुतर्प्पणं च महागणेशप्रियमेतदुक्तम् ॥२३६॥
एरण्डतैलेन तथाऽस्य रण्डावश्याय नाभौ किल तर्प्पणं स्यात्।
स्कन्धप्रदेशेऽस्य पयःपयोभिः प्रतर्प्पणं प्रीतिविवर्द्धनाय ॥२३७॥
क्षीरेण दध्ना मधुनाऽस्य तुन्दे प्रतर्प्पणं पुत्रविवृद्धिकृत्स्यात्।
एवं परिज्ञाय समस्तमेतत् कुर्यात्प्रयोगान्विधिना मनुज्ञः ॥२३८॥
एवं मन्त्री य एनं गणपमनुवरं ह्यर्चनात्तर्प्पणाद्यै-
र्होमैर्जप्यैश्च सम्यक् प्रभजति विधिना प्राप्नुयात्सोऽत्र लोके।
नानार्थानस्य भूयो भवति च वशगो मोहयेत् सर्व्वलोकान्,
[2]भुक्त्वा भोगान्यथेष्टं व्रजति स विमलां मुक्तिमन्ते दुरापम् ॥२३९॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ एकोनविंशस्तरङ्गः ॥१९॥

---

१. ख. 'मू४' नास्ति। २. प्रतिद्वयेषु 'भुक्ता' इति पाठः।

[विंशस्तरङ्गः]

शारदातिलके—

पञ्चान्तकं शशिधरं बीजं गणपतेर्विदुः ।

पञ्चान्तको गकारः, शशी बिन्दुः, शशी विसर्गोऽपि 'सर्गः शक्तिनिशाकर' इत्युक्तेः । केचन औकारयुक्तमपि वदन्ति । तदुक्तम्—

प्रयोगसारे—

बीजमिन्दुमदौयुक्तं कतृतीयं तथैव च । इति ।

अस्य मन्त्रस्य **नारायणीये** पञ्च भेदा उक्ताः ।

खान्तं सान्तविषं सबिन्दु सकलं बिन्द्वौयुतं केवलं,
पञ्चैतानि पृथक् फलं विदधते बीजानि विघ्नेशितुः ।

इति । खान्तो गकारः, अन्तो विसर्गः, विषं मकारः, ताभ्यां सहितः, तेन 'गंः' इति बीजं सिद्धम् । बिन्दुरनुस्वारः तेन सहितः सः, एतेन 'गं' इति बीजं सिद्धम् । कलाविसर्गस्तद्युक्तः स एष तेन 'गः' इति बीज सिद्धम् । बिन्दुश्च औकारश्च ताभ्यां युतः स एव तेन 'गौं' इति बीजं सिद्धम् ।

शारदातिलके—

गणकः स्यादृषिश्छन्दो निचृद्विघ्नोऽस्य देवता ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गक्रियां मनोः ॥१॥

अत्र गकारो बीजं, बिन्दुः शक्तिः, नादः कीलकमिति **साम्प्रदायिका** वदन्ति ।

प्रयोगसारे तु—

आदौ गणं जयायोक्त्वा स्वाहा हृदयमुच्यते ।
एकद्रंष्ट्राय चाऽऽभाष्य हुं फट् विद्या शिरस्तथा ॥२॥
शिखाऽप्यचलशब्दादिकर्णिने ह्यन्ततो नमः ।
कवचं गजवक्त्राय नमो नम इतीरितम् ॥३॥
महोदराय चण्डाय हुँ फडित्यस्त्रमिष्यते ।
एतान्यङ्गानि विन्यस्येत् पञ्चोक्तानि मनीषिभिः ॥४॥

इति पञ्चाङ्गान्युक्तानि ।

सप्रांशुना वा बीजेन षडङ्गानि नियोजयेत् ।

सप्रांशुनां सदीर्घेण, षड्दीर्घयुक्तेनेति यावत् । अनयोर्विकल्पो बोध्यः । यथागुरूपदेशं पञ्चाङ्गन्यासः षडङ्गन्यासो वा कार्यः ।

सारसङ्ग्रहे—

रक्ताभः शशिमौलिरङ्कुशगुणौ दन्तं वरं धारयन्,
हस्ताब्जैर्द्विरदाननस्त्रिनयनो रक्ताङ्गरागावृतः ।
बीजापूरबृहत्करोरुजठरो दानार्द्रगण्डस्थलः,
पद्मस्थः फणिभूषणो गणपतिर्भूयाद्भवद्भूतये ॥५॥

अत्र दक्षोर्ध्वादि–तदधोऽन्तमायुधध्यानम् । सविसर्गस्य द्वितीयभेदस्य ध्यानं पदार्थादर्शे—

ध्यायेत्स्वैक्येन देवं वृहदुदरतनुं तं चतुर्बाहुमेक-
दन्तं पाशाङ्कुशाढ्य गजमुखमरुणं[1] दन्तभक्ष्ये दधानम् । इति ।

पुष्करं च दक्षहस्तस्थभक्ष्योपरि । औकारयुक्तमन्त्रभेदे तु ध्यानमन्यथोक्तं तत्रैव—

रक्ताक्षमालां परशुं[2] च दन्तं भक्ष्यं[3] च दोर्भिः परितो दधानम् ।
हेमप्रभं च त्रिदशं गजास्यं लम्बोदरं चैकरदं नमामि ॥६॥

इदमेव बीजं मायाबीजाद्यं यदा तदा ध्यानम्—

अमृताम्भोधिमध्ये तु वारिजे कुङ्कुमप्रभे ।
ऋतुसंख्यदलोपेते चिन्तयेद् गणनायकम् ॥७॥

पाशाङ्कुशधरं देवं जपाकुसुमसन्निभम् ।
वामपार्श्वगतां देवीमालिङ्गन्तं सुलोचनम् ॥८॥

सुवर्णचषकं सुभ्रूं मधुना पूरितं सदा ।
पिबन्तीं वामहस्तेन योगिनीं मदमोहिताम् ॥९॥

रक्तवर्णां महादेवीमालिङ्गन्तीं सुमध्यमाम् ।
बाहुनैकेन विघ्नेशं मत्तं रक्तविलोचनम् ॥१०॥
तद्रूपांश्चिन्तयेद्धीमान् गणान् पूर्वादितः क्रमात् ।

१: क. ०मरणं । २. क. पुरुषं । ३. क. भक्षं ।

सारसङ्ग्रहे—

इति ध्यात्वा गणेशानं मानसैरुपचारकैः ।

पूजयित्वेति शेषः ।

तीव्रादिशक्तिसंयुक्ते पीठे त्वावाह्य पूजयेत् ॥११॥

शारदातिलके—

तीव्राख्या ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ।
उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी ॥१२॥

सर्व्वादिशक्तिकमलासनाय हृदयावधिः ।
पीठमन्त्रोऽयमेतेन प्रदद्यादासनं विभोः ॥१३॥

तीव्रादीनां ध्यानं यथा—

पाशाङ्कुशाञ्जलिकरा नवकुङ्कुमसन्निभाः ।
तीव्राद्याः[1] पूजनीयाः स्युः शक्तयो मणिभूषणाः ॥१४॥

सारसङ्ग्रहे—

अष्टपत्रं सरोजं तु चतुरश्रत्रयावृतम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तमर्चापीठं विधाय च ॥१५॥

तत्राऽऽवाह्य गणेशानमर्चयेदुपचारकैः ।
कर्णिकायां तु पूर्वादिचतुर्दिक्षु गणाधिपम् ॥१६॥

पीतं गौरं गणेशानं रक्तं च गणनायकम् ।
गणक्रीडं नीलवर्णं केसरेषु ततो यजेत् ॥१७॥

अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु यथाक्रमम् ।
षडङ्गानि मनोरस्य ध्यातव्याश्चाऽङ्गदेवताः ॥१८॥

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ।
वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ॥१९॥

वक्रतुण्डादिकानष्टौ वक्ष्यमाणान्दले यजेत् ।
वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च महोदरगजाननौ ॥२०॥

लम्बोदराख्यविकटौ विघ्नराड्धूम्रवर्णकौ ।
दलाग्रेषु ततः पूज्या ब्राह्म्याद्या ह्यष्टमातरः ॥२१॥

---

१. तीव्राद्याः ।

ब्राह्मी स्वर्णसमा ध्येया मृगचर्म्मविभूषिता ।
अक्षमालाभये दण्डकुण्डिके दधती करैः ॥२२॥

त्रिशिखं परशुं हस्तैर्डमरुं नृकपालकम् ।
बिभ्राणां चन्द्रगौराङ्गीं माहेशीं भावयेच्छुभाम् ॥२३॥

गुणखट्वाङ्गदण्डाङ्कुशान्वहन्तीं कराम्बुजैः ।
इन्द्रगोपारुणां ध्यायेत् कौमारीं करुणालयाम् ॥२४॥

अरिशङ्खकपालानि घण्टाञ्च करपङ्कजैः ।
बिभ्राणां वैष्णवीं ध्यायेन्नीलमेघसमप्रभाम् ॥२५॥

हलं च मुसलं दोर्भिर्दधानां खड्गखेटकौ ।
वाराहीं भावयेच्छक्तिमञ्जनाद्रिसमप्रभाम् ॥२६॥

तोमराङ्कुशवज्राङ्कविद्युद्युक्तकराम्बुजाम् ।
इन्द्राणीं भावयेन्मन्त्री नीलवर्णां सुभूषणाम् ॥२७॥

धारयन्तीं शूलखड्गौ कपालं नृशिरः करैः ।
चामुण्डां शोणवर्णां च मुण्डमालायुतां स्मरेत् ॥२८॥

स्वर्णाभामक्षमालां च बीजपूरकपालके ।
पद्मं च दधतीं हस्तैर्महालक्ष्मीं स्मरेत्सुधीः ॥२९॥

दक्षाधःकरमारभ्य तदूर्द्ध्वकरपर्य्यन्तमायुधध्यानं ब्राह्म्याः । दक्षाद्यध-स्थयोराद्ये तदाद्यूर्द्ध्वयोरन्ये माहेश्याः । कौमर्यास्तु वामोर्द्ध्वकरमारभ्य दक्षोर्द्ध्वकरपर्य्यन्तम् । वैष्णव्यास्तु दक्षोर्द्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तम् अरिश्चक्रं । वाराह्या दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये । इन्द्राण्यास्तु वामोर्द्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तम् । चामुण्डायास्तु दक्षोर्द्ध्वाधःकरयोराद्ये वामोर्द्ध्वाधःकरयोरन्ये । महालक्ष्म्यास्तु दक्षाधःकरमारभ्य दक्षोर्द्ध्वकरपर्य्यन्त-मायुधध्यानम् । तथा—

चतुरस्रत्रयान्तस्थवीथीद्वन्द्वे समर्च्चयेत् ।
दिक्पालांश्च तदस्त्राणि गणेशार्च्चनमीरितम् ॥३०॥

इन्द्रं सुराधिपं पीतं वज्रहस्तं सवाहनम् ।
अग्निं तेजोधिपं रक्तं शक्तिहस्तं सुभूषितम् ॥३१॥

यमं प्रेताधिपं[1] कृत्स्नं दण्डहस्तं समर्च्चयेत् ।
रक्षोधिपं च निर्ऋतिं खड्गहस्तं सुधूम्रकम् ॥३२॥

पाशहस्तं सुशुभ्राङ्गं वरुणं यादसाम्पतिम् ।
वायुं प्राणाधिपं कृष्णमङ्कुशाढ्यकरं यजेत् ॥३३॥

यक्षाधिपं कुबेरं च मुक्तावर्णं गदाकरम् ।
विद्याधिप तथेशानं स्वच्छं शूलकरं यजेत् ॥३४॥

नागाधिपं तथाऽनन्तं गौरं चक्रकरं यजेत् ।
लोकाधिपं विधातारं रक्त पद्मकरं यजेत् ॥३५॥

ऐरावतं तथा मेषं महिषं मृतपूरुषम् ।
मकरं मृगमर्त्यौ च वृषं च विपहंसकौ ॥३६॥

इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि विदुर्बुधाः ।
ततो बहिस्तदस्त्राणि तत्तत्पार्श्वे समर्च्चयेत् ॥३७॥

वज्रं पीतं सितां शक्तिं दण्डं कृष्णं समर्च्चयेत् ।
खड्गमाकाशसङ्काशं पाशं विद्युन्निभं यजेत् ॥३८॥

अङ्कुशं रक्तवर्णं च शुल्कवर्णां गदां यजेत् ।
त्रिशूलं नीलवर्णं च यजेत् साधकसत्तमः ॥३९॥

रथाङ्गं करवन्दाभं पद्मं रक्तं समर्च्चयेत् ।
लोकपालायुधान्येवं कथितानि मनीषिभिः ॥४०॥

य एवं पूजयेद्देवं गणेशं भक्तिसंयुतः ।
इह मुक्त्वाऽखिलान् भोगानन्ते शिवपदं व्रजेत् ॥४१॥ इति ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते गणेशमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि—ॐ गणकाय ऋषये नमः, मुखे—निचृच्छन्दसे नमः, हृदये—विघ्नेश्वराय देवतायै नम' इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धयर्थे[2] विनियोगः । इति

१. ख. प्रेताधिकं । २. ख. सर्वाभीष्टसिद्धये जपे ।

कृताञ्जलिरुक्त्वा, मूलमन्त्रेण करशुद्धिं कृत्वा, अङ्गुष्ठयोः—'ॐ गणञ्जयाय स्वाहा' हृदयाय नमः; तर्ज्जन्योः—'एकदंष्ट्राय हुँ फट्' शिरसे स्वाहा; मध्यमयोः—'अचलकर्णिने नमः' शिखायै वषट्; अनामिकयोः—'गजवक्त्राय नमो नमः' कवचाय हुं; कनिष्ठिकयोः—'महोदराय चण्डाय हुँ' अस्त्राय[1] फट्। इति मन्त्रानङ्गुष्ठादि-कनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य, नेत्रवर्ज्जं हृदयादिपञ्चाङ्गेष्वपि न्यसेत्।

अथवा गां गीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यात्मपूजान्तं प्रोक्तविधिना कृत्वा, 'एकदंष्ट्राय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो विघ्नः प्रचोदयात्' इति गणेशगायत्र्या गणेशपूजाद्रव्याणि पूजास्थानं च प्रोक्ष्य, देवाग्रं पूर्वं परिकल्प्य, तदनुसारेण प्राप्तनिर्ऋतिकोणे श्रीपर्ण्यादिपीठे[2] कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवेष्टितमष्टदलकमलं पूजापीठं निर्म्माय, तत्र प्रागुक्तविधिना मण्डूकादिपृथिव्यन्तं सम्पूज्य, रत्नद्वीपादिपरतत्वार्चान्तेऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रान्-मध्यान्त 'ॐ तीव्रायै नमः, ॐ ज्वालिन्यै नमः, ॐ नन्दायै नमः, ॐ भोगदायै नमः, ॐ कामरूपिण्यै नमः, ॐ उग्रायै नमः, ॐ तेजोवत्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ विघ्ननाशिन्यै नम इति सम्पूज्य, 'गं सर्वशक्तिकमलासनाय नम' इति समस्त पीठमभ्यर्च्य, तत्र मूलमन्त्रमुच्चार्य्य, 'श्रीगणेशमूर्त्तिं कल्पयामि नम' इति चक्रमध्ये मूर्तिं परिकल्प्य[3], मूर्त्यभावे पुष्पादिकं निःक्षिप्य, ध्यानोक्तां मूर्तिं भावयन् मूलमुच्चार्य, 'श्रीगणपतिमूर्त्तये नम' इति मूर्त्तिं सम्पूज्य, तस्यां प्रागुक्त-विधिना गणेशमावाह्याऽऽवाहनादिमुद्राः प्रदर्श्य, प्राणप्रतिष्ठान्ते दन्तपाशाङ्कुश-विघ्नपरशुलड्डुकबीजपूराख्याः सप्तमुद्राः प्रदर्श्याऽऽसनादिपुष्पान्तानुपचारानुपचर्य्य, कर्णिकायां देवाग्रादिचतुर्दिक्षु 'ॐ गणाधिपाय नमः, ॐ गणेशाय नमः, ॐ गणनायकाय नमः, ॐ गणक्रीडाय नमः,' इति सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु आग्नेये—'ॐ गणञ्जयाय[4] स्वाहा' हृदयाय नमः, ईशाने—'ॐ एकदंष्ट्राय हुं फट्' शिरसे नमः, नैर्ऋत्ये—'ॐ अचलकर्णिने नमः' शिखायै नमः, वायव्ये—'ॐ गज-वक्त्राय नमो नमः' कवचाय नमः, ततो देवाग्रादिचतुर्दिक्षु—'ॐ महोदराय चण्डाय हुं फट्' अस्त्राय नमः।

---

१. क. नास्ति। २. ख. श्रीपर्णादिपीठे। ३. ख. प्रकल्प्य। ४. ख. गणञ्जपाय।

यद्वा पूर्वोक्तस्थानेष्वेव 'गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे नम' इत्यादि षडङ्गानि पूजयेत्। अत्र षडङ्गपक्षे तु देवस्याग्रे 'गौं नेत्राय नम' इति नेत्रं सम्पूज्य पश्चादस्त्रं पूजयेत् इति विशेषः।

ततोऽष्टदलेषु देवाग्रदलमारभ्य—'ॐ वक्रतुण्डाय नमः, एवं एकदंष्ट्रायनमः, महोदराय, गजाननाय, लम्बोदराय, विकटाय, विघ्नराजाय, धूम्रवर्णाय नम' इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, दलाग्रेषु—'ॐ आं ब्राह्म्यै नमः, ॐ ईं माहेश्वर्य्यै, ॐ ऊं कौमार्यै, ॐ ॠं वैष्णव्यै, ॐ ॡं वाराह्यै, ॐ ऐं इन्द्राण्यै, ॐ औं चामुण्डायै, ॐ अः महालक्ष्म्यै नम' इति सम्पूज्य, बहिश्चतुरश्रप्रथमवीथ्यां देवाग्रमारभ्य—'ॐ लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्रहस्तायैरावतवाहनाय नमः, ॐ रं अग्नये तेजोधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः, ॐ टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः, ॐ क्षं निर्ऋतये रक्षोधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः, ॐ वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः, ॐ यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाऽङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः, ॐ सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः, ॐ हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषवाहनाय नम' इति सम्पूज्य, इन्द्रेशानयोर्म्मध्ये—'ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—'ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नम' इति सम्पूज्य, द्वितीयवीथ्यां—'ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये, ॐ दण्डाय, ॐ खड्गाय, ॐ पाशाय, ॐ अङ्कुशाय, 'ॐ गदायै, ॐ त्रिशूलाय, ॐ पद्माय, ॐ चक्राय नम' इति लोकपालायुधानि देवाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य्य, 'साङ्गाय सपरिवाराय श्रीगणपतये नम' इति त्रिपुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य धूपादि पूर्वोक्तविधिना सर्व्वं कुर्यादिति।

तथा सारसङ्ग्रहे—

एकलक्षं मनुं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः।
अष्टद्रव्यैर्महेशानि तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥४२॥

मोदकैः पृथुकैर्लाजैः सक्तुभिः सेक्षुपर्वभिः।
नारिकेलैस्तिलैः शुद्धैः सुपक्वैः कदलीफलैः ॥४३॥ इति।

अत्रैकैकद्रव्येण सार्द्धद्वादशशतं जुहुयात्। उक्तं च **गणेशपरामर्शिण्याम्—**

अष्टद्रव्यैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयाच्च पृथक् पृथगिति ।

अयं जपः कृतयुगपरः, कलावेतच्चतुर्गुणं जपहोमादिकं कार्य्यमिति । तथा—

सारसङ्ग्रहे—

दौग्धान्नेन घृतान्नेन होमोऽभीष्टफलप्रदः ।
लक्ष्मीकामो नारिकेलैश्चतुर्थ्यां जुहुयाच्छिवे ॥४४॥

तिललाजान्वितैः सक्तुनारिकेलैश्चतुःशतम् ।
सितपक्षादिमारभ्य प्रत्यहं च हुनेत्क्रमात् ॥४५॥

चतुर्थ्यन्तं ततः सर्वे प्राणिनो वशगा नृणाम् ।
तिलैस्तण्डुलसंयुक्तैर्होमः श्रीवश्यकीर्त्तिदः ॥४६॥

स्वादुत्रययुतैर्लाजैर्हुनेत्सप्तदिनावधि ।
कन्यार्थी लभते कन्यां वरं कान्तं वरार्थिनी ॥४७॥

दधिसंसिक्तलवणैर्जुहुयाच्च चतुर्दिनम् ।
निशीथिन्यां च संवादो भवेद्वश्यं तथेप्सितम् ॥४८॥

अत्र सर्वकाम्यहोमेषु संख्यानुक्तौ कार्यस्य गुरुलाघवं ज्ञात्वा सहस्रादि-नियुतपर्यन्तं कार्यानुसारेण जुहुयात् । उक्तं च—

श्रीकुलार्णवे—

एकेन वाऽथ सर्वैर्वा तत्कार्यगुरुलाघवम् ।
ज्ञात्वा देवि सहस्रं वा त्रिसहस्रं तु पञ्च वा ॥४९॥

अयुतं नियुतं वाऽपि प्रयुक्तं वा कुलेश्वरि ।
तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे संस्कृते हव्यवाहने ॥५०॥ इति ।

तथा— सितार्कद्रुममूलेन कुचन्दनसुदारुभिः ।
गजत्रोटितनिम्बेन विषाणेनैव दन्तिनाम् ॥५१॥

विधाय विघ्नं सम्पूज्य तं स्पृष्ट्वा प्रजपेन्मनुम् ।
उपोषितः शुचिश्चन्द्रग्रहे तं च समुद्वहेत्[1] ।।५२।।

शिखायां व्यवहारादौ समरे विजयी भवेत् ।
रोचना समदाऽनेन सञ्जप्ता मनुना ततः ।।५३।।
तिलकात्सर्व्वराजानो लोकाः स्युर्वशगाः शिवे ।

समदा गजमदसहिता ।

नवनीतेन वै साध्यनामाऽऽलिख्यानुलोमगम् ।।५४।।

विलोमे विघ्नबीजे च तद्घृतं स्थापितानिलम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तूष्णीं तद्भक्षयेत्ततः ।।५५।।

सप्ताहाद्वशगः साध्यः साधकस्य भवेद् ध्रुवम् ।
गणेशं तर्प्पयेत्तोयैः संख्यया वक्ष्यमाणया ।।५६।।

एकोनपञ्चाशता च दिनैरिष्टमवाप्नुयात् ।
प्रणवादिमिमं मन्त्रं केचिदिच्छन्ति सूरयः ।।५७।।
पूजायां च हृदन्तोऽयं होमे स्वाहान्त ईरितः ।

तथा सारसङ्ग्रहे—

स्मृतिर्भूमनुयुग्बिन्दुनादालङ्कृतमस्तका ।
एकाक्षरो गणेशस्य मन्त्र एष उदाहृतः ।।५८।।

स्मृतिर्गकारः, भूर्लकारः, मनुरौकारः, बिन्दुनादेन च युतः ।

तथा शार्ङ्गी चतुर्दशाद्यस्वरयुग्बिन्दुभूषितः ।
अयमेको गणपतेरेकार्णो मन्त्र उत्तमः ।।५९।।

शार्ङ्गी गकारः, चतुर्दशाद्य ओकारः, बिन्दुरनुस्वारः ताभ्यां युक्तः ।

गणको मुनिरुक्तः स्यान्निचृच्छन्दश्च देवता ।
बालो गणपतिः सर्वसुरासुरनमस्कृतः ।।६०।।
स्वेन षड्दीर्घयुक्तेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।

अत्राद्ये ग्लां ग्लीमित्यादि, द्वितीये गां गीमित्यादि करषडङ्गन्यासो ज्ञेयः । तथा—

---

१. ख. समुद्धरेत् ।

ध्यानपूजाजपाद्यं स्यादस्य पूर्ववदेव तु ॥६१॥
ततः सिद्धे मनौ सम्यक् पूर्वमन्त्रोदितान्प्रिये ।
प्रयोगान्विधिवत्कुर्यात् साधकोऽभीष्टसिद्धये ॥६२॥

शुक्लप्रतिपदाऽऽरभ्य तच्चतुर्थ्यन्तेषु चतुर्षु दिनेषु प्रत्यहं प्रथमतस्तिलैरेकशतम्, तदनु लाजैस्तदनु सक्तुभिस्तदनु नारिकेलैरिति त्रिमध्वक्तैः क्रमाच्चतुःशतं जुहुयादिति । नवनीत इत्यादि—नवे नवनीते परस्परविमुखगणेशबीजद्वयस्य मध्ये तद्बीजबिन्दुस्थाने मम, बीजाधः—अमुकं, तयोर्म्मध्ये वशं कुरु कुर्विति साध्यसाधककर्माणि विलिख्य, तत्सर्वं गणेशबीजैरावेष्ट्य, तत्र साध्यप्राणस्थापनं विधायाऽष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं नवनीत स्पृशन् जपित्वा पश्चाद्भक्षयेत् । इत्थं सप्ताहप्रयोगेन साध्यो वश्यो भवतीति ।

सारसङ्ग्रहे—

अथो वच्मि महामन्त्रं हरिद्रागणपस्य तु ।
जगत्त्रयहितं भोगमोक्षद कविताकरम् ॥६३॥

नानामन्त्रगणाग्र्याऽऽशु सिद्धिदं भुवि दुर्लभम् ।
गरिष्ठं सफलश्चाऽथ कार्यमात्रप्रसाधने ॥६४॥

गोपनीयं प्रयत्नेन वाञ्छितार्थसुरद्रुमम् ।
सौभाग्यपुष्टिलक्ष्मीदं दीर्घजीवित्वदं नृणाम् ॥६५॥

नरनारीनरेन्द्राणां परं वश्यफलप्रदम् ।
विघ्नविध्वंसने दक्षं कृत्याद्रोहनिवारणम् ॥६६॥

दैत्यगीर्वाणसङ्घानां नागगन्धर्वरक्षसाम् ।
दन्तिनामश्वमुख्यानां श्वापदानां च पक्षिणाम् ॥६७॥

स्वान्तसम्मोहनं सम्यक् प्राणाकृष्टिकरं क्षणात् ।
रोधकं राजसैन्यस्य वायुवर्षणविद्युताम् ॥६८॥

कृशानुजलशस्त्राणां स्तम्भकं परमं मतम् ।
वादिनां जन्तुजातानां वाचां संस्तम्भनं द्विषाम् ॥६९॥

सप्तीभमृगनागानां गमनस्तम्भकारकम् ।
भूपस्य मन्त्रिणः शत्रोः क्रोधस्तम्भकरं हठात् ॥७०॥

तरुणीनां कुमारीणां हृदयस्तम्भनं महत् ।
स्निग्धानामपि शत्रूणां विद्वेषकरणक्षमम् ॥७१॥

उन्मादोच्चाटने शत्रोर्मारणे छेदने क्षमम् ।
बहुप्रयोगसंयुक्तं यन्त्रभेदसमन्वितम् ॥७२॥

तारं क्रोधसमन्वितं च खपरं चन्द्रार्द्धचूडं धरा,
सद्बीज हरिदाग्निविष्णुशयनान्याभाष्य पश्चाद् गणम् ।
सम्ब्रूयात् पतये वरं च वरदं सर्वाज्जनान्ते हृदं,
यं च स्तम्भययुग्ममग्निगृहिणी द्वात्रिंशदर्णो मनुः ॥७३॥

सेवितो मुनिसङ्घातैरुदितः[1] सर्वकामदः ।

तारः प्रणवः, क्रोधः हुं, खपरं ग, चन्द्रार्द्धचूडं बिन्दुयुक्त, धरा तद्बीजं ग्लौं, हरि-स्वरूपं, दाग्निविष्णुशयनानि तेन द्रा इति, गण-स्वरूपं, पतये स्वरूपं, वरवरद-स्वरूपं, सर्वजन-स्वरूपं, हृद-स्वरूपं, यं-स्वरूप, स्तम्भय-युग्मं स्तम्भय स्तम्भयेति, अग्निगृहिणी स्वाहा । तथा—

मुनिर्मदन आख्यातः छन्दोऽनुष्टुप्समीरितम् ॥७४॥

हरिद्रागणपो देवो देवता मुनिभिः स्मृतः ।
षड्दीर्घयुक्स्वबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥७५॥

विनायकसहिता-सम्मोहन-पञ्चरात्रयोस्तु 'षड्दीर्घयुक्तस्तु बीजेन भूमियुक्तेन बुद्धिमान् ।' लकारयुक्तेन षडङ्गमाचरेदित्युक्तम् । यथागुरूपदेशं कार्यमिति । स्वबीजेन गणपबीजेन । तथा—

विधिना येन मन्त्रोऽयं गृह्यते तदहम्ब्रुवे ।
चतुर्थीदिवसे प्राप्ते शुक्लपक्षस्य मन्त्रवित् ॥७६॥

शुद्धां हरिद्रामानीय कन्यया पेषितां शुभाम् ।
सर्वाङ्गे तां समालिप्य स्नायाच्छुद्धजलैस्ततः ॥७७॥

भक्त्या परमयोपेतः प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
प्रणम्य गुरुपादाब्जमर्चयित्वा विधानतः ॥७८॥

---

१. ख. ०रुद्धृतः ।

स्वर्णाङ्गुलीयहाराद्यैर्भूषणैश्च शुभाम्बरैः ।
पूर्वोक्तविधिना तस्मादधीयीत मनुं त्विमम् ॥७९॥
सुगन्धैः सुमनोभिस्तं यजेद् देवधिया पुनः ।

स्थाने पूर्वसमीरिते मणिमये सिंहासने संस्थितं,
पीतं पीतविभूषणाम्बरलसन्माल्यादिसंशोभितम् ।
विघ्नं दन्तिमुखं त्रिनेत्रलसितं हस्तैर्व्वहन्तं भजे,
पाशं सत्परशुं वरं श्रृणियुतं क्रोधाख्यमुद्राभये ॥८०॥

वामोर्द्ध्वादिकरत्रये आद्यत्रये, दक्षोर्द्ध्वादित्रयेऽन्यत्त्रयमित्यायुधध्यानम् । क्रोधमुद्रा मुष्टिः ।

एवं सञ्चिन्त्य देवेशं गजाननमनन्यधीः ।
एकाक्षरोदितेनाऽथ वर्त्मना देवमर्च्चयेत् ॥८१॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि—मदनाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदये—हरिद्रागणपतये देवतायै नमः' इति विन्यस्य, मम सर्व्वाभीष्टसिद्धये विनियोग' इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, 'गां गीं'मि त्यादिना 'ग्लां ग्लीं'मि त्यादिना वा करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यात्वा, मानसपूजादि सर्वं प्रोक्तैकाक्षरविधिना कृत्वा समापयेदिति । तथा—

साग्रं सहस्रं सञ्जप्य दशांशं हव्यवाहने ।
सर्प्पिर्गुडयुतैः सम्यगपूपैर्जुहुयाद्बहिः ॥८२॥

हरिद्रागणपं तावत्तर्प्पयेद्भक्तितत्परः ।
कुमारीर्भोजयेत्तावद् ब्रह्मचारिण एव च ॥८३॥

साग्रं सहस्रमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः । तावत् होमसंख्यासमसंख्यमित्यर्थः । एतेन तर्प्पणसंख्ययैव कुमार्य्यो ब्रह्मचारिणश्च भोजयितव्याः । ब्रह्मचारिणस्तु नैष्ठिकाः स्वाश्रमस्थाश्चापेक्ष्यन्त इति साम्प्रदायिकाः । तथा—

काम्यकर्म ततः कुर्याद्यदिष्टं विष्टपत्रये ।

पद्मे नागदले सुधाकरगृहे साध्याख्यकर्म्मावृतं,
वेदादौ वसुधाविनायकगतं वर्म्माऽऽलिखेन्मध्यतः ।
दिक्पत्रेषु वसुन्धरामनुगतं क्रोधं विदिक्पत्रगं,
भूबीजं बहिरष्टकोणवसुधाबीजास्थितं वारुणम् ।।८४।।

वसुकोणाग्रगानि स्युर्हस्तिनो मस्तकानि च ।
मस्तकेषु लिखेत्पश्चाद् गणान्तं बीजमुत्तमम् ।।८५।।

चतुरस्रेण संवेष्टय दिक्षु वर्म्मान्तिमालिखेत् ।
विदिग्गतं च भूबीजमेतद्यन्त्रमनुत्तमम् ।।८६।।

अस्यार्थः—तत्र यथोक्ताधिकरणे यथोक्तद्रव्यैरष्टदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकामध्ये वृत्तं कृत्वा, तन्मध्ये साध्यनामवेष्टितं प्रणवमालिख्य, तस्योदरे भूबीजमालिख्य, भूबीजस्योदरे गणेशबीजमालिख्य, [1]तस्यान्तहुंकारमालिख्याऽष्टदलकमलस्य पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदलेषु भूबीजोदरगतं हुंकारं विलिख्याऽग्नेयादिकोणदलेषु भूबीजं विलिख्य, कमलाद्बहिश्चतुरस्रद्वयसम्पुटरूपमष्टकोणं कृत्वा, ततः कोणेषु भूबीजोदरे वकारं सबिन्दुं विलिख्याऽष्टकोणाग्रेषु गजमस्तकानि कृत्वा, तेषु सबिन्दुं ह(हुं)कारं विलिख्य तद्बहिश्चतुरस्रं कृत्वा, तत्कोणेषु भूबीजं, तद्दिक्षु गकारं सबिन्दुं विलिखेदिति । तथा—

आदित्यबुधशुक्राणामेवाऽस्य दिवसे वशी ।
निशीथे विजने देशे सुलिप्ते गोमयाम्भसा ।।८७।।

प्रदीपैर्दीपिते तत्र दृषदं विन्यसेच्छुभाम् ।
उपलं च समानीय हरिद्रां क्षालितां जलैः ।।८८।।

तस्यां दृषदि संस्थाप्य कन्यया पेषयेत्ततः ।
हरिद्रायास्तुरीयांशं वसुविघ्नगृहान्मृदम् ।।८९।।

समाहृत्य च सम्पिष्य मिश्रयित्वाऽथ शोधयेत् ।
मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रज्ञः पञ्चविंशतिसंख्यया ।।९०।।

तत्पश्चाल्लेखयेन्मन्त्री शुभे सूक्ष्मे सिताम्बरे ।
अस्मिन्पटे लिखेद्यन्त्रमेतत्संस्तम्भनाह्वयम् ।।९१।।

---

१. क. तस्यां हुँ० ।

अत्र प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजितं गुलिकीकृतम् ।
गणेशप्रतिमां पश्चादङ्गप्रत्यङ्गशोभिताम् ॥९२॥

विनिर्माय त्रिभिर्भागैर्निशायास्तद्धृदि क्षिपेत् ।
प्राणसंस्थापनं भूयः कुर्यान्मूर्तेर्विचक्षणः ॥९३॥

गन्धपुष्पादिनैवेद्यैरभ्यर्च्य गणनायकम् ।
शरावे क्षालिते न्यस्य सहस्रं साष्टकं मनुम् ॥९४॥

सञ्जप्य पूजयेद्भक्त्या काञ्चनैः कुसुमैर्नवैः ।

काञ्चनैः पीतैः ।

सिद्धोदनेन नैवेद्यं निवेद्याऽत्र बलिं हरेत् ॥९५॥

तण्डुलाञ् शालिसम्भूतान् प्रस्थमानमिताञ् शुभान् ।
द्विदलीकृतमुद्गान्नं तदर्द्धेन च मेलयेत् ॥९६॥

गुडं वेदपलं भूयो नारिकेलं च तत्समम् ।
मरीचं मुष्टिमानं च सैन्धवं च तदर्द्धकम् ॥९७॥

तदर्द्धं जीरकं चाऽऽज्यं कुडवार्द्धसमं भवेत् ।
एतत्सर्वं चतुःप्रस्थगोदुग्धे मन्दवह्निना ॥९८॥

पचेत्सिद्धोदनं ह्येतद् गणेशस्य महाप्रियम् ।
अमुना पायसेनाऽथ लड्डुकापूपकादिभिः ॥९९॥

कर्पूरवासितैः पूगताम्बूलैश्चन्दनादिभिः ।
तोषयित्वा विधानेन हरिद्रागणपं विभुम् ॥१००॥

बलिं दत्त्वा शरावेण छादयेदपरेण तम् ।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥१०१॥

एवं यः कुरुते नित्यं पञ्चभिः सप्तभिर्दिनैः ।
विघ्नेश्वरप्रभावेण त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१०२॥

स्तम्भयेत्साधकेन्द्रः स सत्यमेतन्न चाऽन्यथा ।
युद्धभूमौ तमिश्रा(स्रा)यां यद्येनं स्थापयेद्बुधः ॥१०३॥

वैरिणा वाहिनीं वीरैर्व्याकुलां स्तम्भयेत्तदा ।
देशे ग्रामे पुरे गेहे सभायां स्थापितं यदि ॥१०४॥

तत्तत्स्थानगतान् सर्वान् विविधां स्तम्भयेज्जनान् ।
शाखिशाखाग्रगं सम्यक् स्तम्भयेद्वर्षणं महत् ॥१०५॥

चत्वरे नगरान्तस्थात्र् जलान्तःस्थापितं जलम् ।
निवासे पथि वा दस्यून् मर्यादायां समीरणम् ॥१०६॥

हस्तिघोटकशालासु क्षणात् सर्वानुपद्रवान् ।
आखून् शाल्यालये सर्प्पान् वल्मीके श्वापदान् वने ॥१०७॥

क्षेत्रेषु शलभान् हेतीन् पाषाणे स्तम्भयेत् स्थितम् ।
स्मृतिं वाणीं च गानं च विद्यां शत्रोर्विभावसौ ॥१०८॥

रेतसः स्तम्भनं कुर्याच्छय्यास्थाननिवेशितम् ।
सम्यङ् निवेश्य चैतेषु स्थानेषु बलिमाहरेत् ॥१०९॥

स्तम्भयेदखिलं विश्वं किं पुनर्वाञ्छितं जनम् ।
सफलं सर्वथा ह्येतद्विधानं गोपयेत्सदा ॥११०॥

अथाऽऽकृष्टिकरं यन्त्रं विघ्नेशस्य वदाम्यहम् ।
हरिद्रां शोधयेद्वेश्म मृदा प्रोक्तेन वर्त्मना ॥१११॥

उदितं यन्त्रमालिख्य मायां गं मध्यतो लिखेत् ।
अवशिष्टैर्मन्त्रवर्णैर्म्मायया च प्रवेष्टयेत् ॥११२॥

लिखेत्पाशाङ्कुशावष्टपत्रेषु तदनन्तरम् ।
वरुणं दिग्दलाग्रेषु टपरं कोणपत्रगम् ॥११३॥

धरामण्डलयुग्मस्थकोणेष्वाशाविदिक्क्रमात् ।
बाणबीजानि विलिखेद्वक्ष्यमाणानि मन्त्रवित् ॥११४॥

तदग्रवसुशूलेषु कवचं साधु संलिखेत् ।
जले गेहे द्वयेनाऽपि मायाकोणेन वेष्टितम् ॥११५॥

यन्त्रमाकर्षणं ह्येतल्लिखितं पूर्ववर्त्मना ।
कृतप्राणप्रतिष्ठां च निशाविघ्नेशकुक्षिगम् ॥११६॥

मुहुः सम्पूज्य यत्नेन समोरं स्थाययेद् बुधः ।
चक्रिहस्तमृदाऽऽयोज्य गणेशागारमृत्तिकाम् ॥११७॥

शरावयुगलं रम्यं निर्मायाऽन्यत्र चोभयोः ।
विन्यस्य तं गणेशानं कुसुमैररुणैर्यजेत् ॥११८॥

सिद्धोदनादिनैवेद्यैर्बलिभिश्चोक्तवर्त्मना ।
मनोः सर्वजनस्थाने दत्वा साध्याभिधां बुधः ॥११९॥

स्तम्भयद्वितयं यत्र तत्राऽऽकर्षययुग्मकम् ।
साध्याशाभिमुखो भूत्वा सहस्रं साष्टकं जपेत् ॥१२०॥

बलिं दत्त्वाऽथ सम्पूज्य विघ्नेशं चन्दनादिकैः ।
द्वितीयेन शरावेण विदधीत सुसाधकः ॥१२१॥

प्रत्यहं कुर्व्वतस्त्वेवं सप्तभिर्दिवसैर्भुवि ।
साधकस्य समायाति सन्निधौ वाञ्छितो जनः ॥१२२॥

भूपालस्तत्सुतो वाऽपि महिषी वा वराङ्गना ।
अमात्यः पण्ययोषा वा सुरकन्याऽपि वा द्रुतम् ॥१२३॥

आगच्छति न सन्देहो मन्त्रिसक्तेन चेतसा ।
यन्त्रमेतल्लिखित्वा तु तालीपत्रे गुडाम्भसा ॥१२४॥

पूजितं स्थापितप्राणमजादुग्धे निवेश्य तत् ।
साध्याशाभिमुखो भूत्वा क्वाथयेत् प्रजपन्मनुम् ॥१२५॥

तदानीमानयेत्कामविह्वलां वारसुन्दरीम् ।
सामुद्रं रामठं न्यस्य तस्याऽऽगारे हरिद्रया ॥१२६॥

सिक्थेन मर्द्दयित्वा तु कृत्वा साध्याकृतिं शुभाम् ।
श्वेतार्क्कच्छदयुग्मान्तः सप्राणां सन्निवेश्य ताम् ॥१२७॥

दीप्ताग्नौ तापयन् मन्त्रं जपेदष्टसहस्रकम् ।
क्षणादायाति कामार्त्ता वाञ्छिता वरवर्णिनी ॥१२८॥

नागवल्लीदले क्षौद्रलिप्ते मन्त्रमिदं लिखेत् ।
साध्यं संस्मृत्य सम्पूज्य सेरं जप्तं प्रभक्षयेत् ॥१२९॥

सीमन्तिनी समायाति शीघ्रं यौवनगर्व्विता ।
पत्रपुष्पसुवस्त्रादौ भक्ष्ये चाऽऽलिख्य सेरणम् ॥१३०॥

यन्त्रमेतत्प्रदातव्यं क्षणादाकृष्टिकारकम् ।
प्रवाहाभिमुखो वाऽपि सरित्सङ्गमनीरगः ॥१३१॥

तर्प्पयेत्तज्जलैः शुद्धै रष्टोत्तरसहस्रकम् ।
शतयोजनदूरस्थं साध्यमाकर्षयेद् ध्रुवम् ॥१३२॥

बहूदितेन किं वाऽत्र स्मृत्वा यं प्राणिनं जपेत् ।
मन्त्रमेनं विधानेन हठादाकर्षयेद्धि तम् ॥१३३॥

'अथाऽकृष्टिकरं यन्त्र'मित्यादि'पूर्ववर्त्मने'त्यन्तस्याऽयमर्थः :—तत्र पूर्वोक्तं यन्त्रमालिख्य, तन्मध्यस्थं भूबीजं हित्वा, तत्स्थाने मायाबीजं विलिख्य, तन्मध्ये प्राग्वद् गणपतिबीजं चाऽऽलिख्य, हुङ्कारादिगंबीजरहितैरव शष्टवर्णैः प्रागुक्तसाध्यनामवेष्टनस्थाने संवेष्टच मायाबीजैश्च संवेष्ट्य; अत्र मायाबीजवेष्टनं वृत्तान्तरस्थान्तराले ज्ञेयम्, तेन कर्णिकाभ्यन्तरे वृत्तद्वयं ज्ञेयम् । ततोऽष्टदलेषु प्रतिदलं 'आं क्रो' मिति पाशाङ्कुशबीजे विलिख्य, दिग्दलाग्रे वं बीजं, कोणदलाग्रेषु ठमिति च विलिख्य, प्राग्वदष्टकोणं कृत्वा, तस्य पूर्वादिदिग्गत-कोणचतुष्टये पूर्वकोणे 'द्राँ', दक्षिणे 'द्रीं', पश्चिमे 'क्लीं', उत्तरे 'ब्लूं' इति विलिख्य, विदिग्गतकोणेषु चतुर्ष्वपि 'सः' इति विलिख्याऽष्टकोणाग्रेषु त्रिशूलानि कृत्वा, तेषु शूलेषु हुँकारमालिख्य,, तद्वहिरर्द्धचन्द्रद्वयेन सम्पुटितेन सवेष्टच, तत्कोणेषु मायाबीजं लिखेत् । अत्र कोणशब्देनाऽर्द्धचन्द्रद्वयस्याऽग्रचतुष्टयं गृह्यते तस्याऽऽग्नेयादिकोणचतुष्टयस्थितत्वात् । निशाविघ्नेशकुक्षिगं प्राग्वद्धरिद्रा-रचितगणेशकुक्षिगतं समीरं स्थापयेत् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यान्मूर्त्तेरिति शेषः । चक्रि-हस्तमृदा कुलालहस्तमृत्तिकया, अन्यत्र अन्यतमे, सामुद्रं लवणं, रामठं हिङ्गुः, तस्याऽऽगारे गणेशागारे, सिक्थेन मधूच्छिष्टेन, सेरं सप्राणं कृतप्राणप्रतिष्ठमित्यर्थः, जप्तमभिमन्त्रितम् । यथा—

अथो वदामि वश्यार्थं यन्त्रसाधनमुत्तमम् ।
यन्त्रं संलिख्य पूर्वोक्त स्मरमध्ये गणाधिपम् ॥१३४॥

बहिःशिष्टैर्मन्त्रवर्णैः कामेनाऽपि प्रवेष्टयेत् ।
शेषमाकर्षयन्त्रेण समानं परिकल्पयेत् ॥१३५॥

निशाशोधनमप्यत्र कुर्यादीरितवर्त्मना ।
हरिद्रायाश्चतुर्थांशमितेनेक्षुरसेन हि ॥१३६॥

सामुद्रं रोचनां क्षौद्रं पिष्ट्वा संलिप्य सत्पटे ।
लिखेद्वश्याभिधं यन्त्रं सेरं कृत्वा निवेशयेत् ॥१३७॥ इति ।

अस्यार्थः—पूर्वोक्तं यन्त्रं विलिख्य, तन्मध्यस्थं मायाबीजमपास्य, तत्स्थाने कामबीजं, तदुदरे गणपतिबीजं च विलिख्य, तत्प्राग्वदवशिष्टैर्मन्त्रवर्णैः कामबीजेनाऽऽवेष्टय शेषमाकर्षयन्त्रवत्कुर्यात् । इति । तथा—

पूर्ववत्कृतविघ्नेशकुक्षिमध्ये निवेश्य तत् ।
विधिना स्थापितप्राणं शरावे न्यस्य तं यजेत् ॥१३८॥

रक्तमाल्यानुलेपाद्यैर्नैवेद्यैः पूर्ववत्कृतैः ।
मनौ साध्याभिधां दत्वा स्थाने पूर्वसमीरिते ॥१३९॥
वशमानययुग्मं च जपेदष्टसहस्रकम् ।

अष्टसहस्रकमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः ।

साध्यदिक्सम्मुखो भूत्वा मन्त्रं मन्त्री समाहितः ॥१४०॥

विघ्नेशाय बलिं दत्वा छादयेत्तं च पूर्ववत् ।
एवं प्रतिदिनं कुर्वन् सप्तभिर्दिवसैर्बुधः ॥१४१॥

रक्षोभूतपिशाचाद्यान् देवदानवपन्नगान् ।
राजानं मन्त्रिणं राज्ञां स्त्रीगणं चेष्टमानुषम् ॥१४२॥

वशयेत् साधकः शीघ्रं यावज्जीवन्न संशयः ।
निशांशेनाऽवशिष्टेन निजदेहं विलिम्पयेत् ॥१४३॥

ऽचलां कमलां लब्ध्वा वशयेद्विश्वमञ्जसा ।
हरिद्रांशसमं चूर्णं शालितण्डुलसम्भवम् ॥१४४॥

तत्समेन गुडेनाऽपि मधुना सैन्धवेन च ।
सम्मिश्र्य मर्दयित्वा च पिण्डाकारं पचेद्घृते ॥१४५॥

निर्माय गणपं तेन यन्त्रं तद्धृदि निःक्षिपेत् ।
समीरं च प्रतिष्ठाप्य गन्धाद्यैः पूर्ववद्यजेत् ॥१४६॥

त्रिदिनं पूजयित्वेत्थं यन्त्रं मध्यात् पृथङ् नयेत् ।
प्रतिमां भक्षयेत् पश्चात् साध्यो वश्यो भवेद् ध्रुवम् ॥१४७॥

शालिपिष्टादिपिण्डेन कृत्वा साध्याकृतिं शुभाम् ।
अष्टाधिकशतं जप्तां पूजितां स्थापितानिलाम् ॥१४८॥

निवेद्य विघ्नराजाय साध्यं संस्मृत्य भक्षयेत् ।
वशयेद्वाञ्छितं साध्यं सदा सर्व्वस्वदायिनम् ॥१४९॥

वश्ययन्त्रं लिखेन् मन्त्री खानपानादिवस्तुषु ।
सेरं कृत्वा जपेन्मन्त्री सहस्रं साष्टकं बुधः ॥१५०॥

भक्षणाद्वशयेत् साध्यं वस्तुमात्रस्य साधकः ।
चन्दनागुरुकर्पूरनिशाकुङ्कुमरोचनाः ॥१५१॥

मृगेभमदसंयुक्ता अष्टाङ्गं विघ्ननाशनम् ।
सम्पिष्यैतद्वशीकारयन्त्रमालिख्य पूर्ववत् ॥१५२॥

प्रतिमां पूर्ववत् कृत्वा जप्त्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
लिम्पेदनेन [1]गात्रे [2]सङ्कुर्वीताऽस्य विशेषकम् ॥१५३॥

ईक्षणात् स्पर्शनाच्चैव त्रिलोकीं वशमानयेत् ।
एवं कृते नरं नारीं वशयेद्योषितं पुमान् ॥१५४॥

चन्दनेनैव वा कुर्याद्विधिमेनं फलाप्तये ।
द्विरेफश्च सदा भद्रा मुसली चेन्द्रवारुणी ॥१५५॥

भूपद्मं श्रीफलं विष्णुक्रान्ता हस्ती च वन्दिनी ।
वाराही शतवीर्य्या च मायूरी चन्द्ररोचने ॥१५६॥

सर्वमिक्षुरसेनैतान्निशाभागार्द्धसम्मितम् ।
पिष्ट्वा वश्याभिधं[3] यन्त्रं निर्माय प्रतिमामपि ॥१५७॥

प्राणसंस्थापनं कृत्वा जपेदष्टसहस्रकम् ।
शिष्टद्रव्येण तिलकं कुर्यात् प्रातस्तु यो नरः ॥१५८॥

त्रैलोक्यसम्मतो लक्ष्म्या तिरस्कुर्याद्धनाधिपम्[4] ।
कपिलागोमयं व्योम्नि पद्मिनीदलसम्पुटे ॥१५९॥

---

१. ख. गात्रं । २. ख. स्वं० । ३. क. वश्याविधं ।
४. क ०धनाधिनम् ।

आदाय ब्रह्मचर्येण भेषजैरुदितैः समम् ।
पञ्चगव्येन सम्मर्द्य पिण्डाकारं प्रकल्पयेत् ।।१६०।।

शुष्कं दहेद्धृतं हुत्वा विल्वकाष्ठेधितेऽनले ।
समुद्धृत्य च तद्भस्म तन्मध्ये यन्त्रमालिखेत् ।।१६१।।

समीरणं प्रतिष्ठाप्य गणपं तत्र पूजयेत् ।
अष्टाधिकं शतं मन्त्रं जपित्वा श्रीफलान्तरे ।।१६२।।

काञ्चने रूप्यरचिते पात्रे कांस्यमयेऽथवा ।
निधाय धारयेद्भस्म ललाटादिषु साधकः ।।१६३।।

कान्तिपुष्टिधनारोग्यपुत्रपौत्रयशःपशून् ।
लब्ध्वा लोकप्रियो भूत्वा दीर्घजीवी भवेद्ध्रुवम् ।।१६४।।

पुरोधा नृपते रक्षां भस्मना प्रातरन्वहम् ।
कुर्यादायुष्यवृद्ध्यर्थं यशोविजयसम्पदे ।।१६५।।

तस्मान्निष्कत्रयं नित्यं नृपो दद्यात् पुरोधसे ।
रक्ताम्बरसुवर्त्यन्तः[1] प्रोक्तभेषजचूर्णकम् ।।१६६।।

निधाय कपिलाज्येन तद्वर्त्त्या नृकपालके ।
दीपं प्रज्वाल्य तेनैव जपेन्मन्त्रं सुसंयतः ।।१६७।।

गृहीत्वा कज्जलं जप्तमष्टोत्तरशतं शुभम् ।
नेत्रयोरन्वहं दद्याद्युवा युवती वराङ्गना ।।१६८।।

दृष्टमात्रेण वशयेन्निखिलं विश्वमञ्जसा ।
उक्तौषधीनां गुलिकां पिष्ट्वा चन्दनवारिणा ।।१६९।।

अभिमन्त्र्य तु या योषा तिलकं प्रकरोति सा ।
सर्व्वलोकप्रिया भूयादङ्गस्पर्शान्निजं पतिम् ।।१७०।।

आज्ञानुवर्त्तिनं कुर्याद्यावज्जीवं न संशयः ।
शुद्धया निशया कृत्वा विघ्नेशं प्रोक्तलक्षणम् ।।१७१।।

---

१. क. रक्तांवरसुवर्त्यक्तः ।

चन्द्रोपरागसमये सेरं जप्त्वा सहस्रकम् ।
अष्टाधिकं समभ्यर्च्य चन्दनादिभिरादरात् ॥१७२॥

शिखायां प्रोद्वहेन्नित्यं सर्वतो जयमाप्नुयात् ।
सङ्ग्रामे विपिने दुष्टश्वापदोत्थभये परे ॥१७३॥

आपणे व्यवहारेषु द्यूते वादे महार्णवे ।
पाटच्चरसमूहेषु सभायां शत्रुसङ्कटे ॥१७४॥

विजयी जायते धीरः कृतकृत्यो निवर्त्तते ।
वराङ्गनावृन्दमध्ये शोभते मन्मथो[1] यथा ॥१७५॥

नागवल्लीदले यन्त्रं लिखित्वा रात्रिवारिणा ।
सप्राणमर्चितं जप्तमष्टोत्तरसहस्रतः । १७६॥

अशितं वाञ्छितं साध्यं वशं नयति तत्क्षणात् ।
गोदुग्धे ससिते मन्त्री क्वथिते[2] सुदृढीकृते ॥१७७॥

यन्त्रं विलिख्य तैनेव निर्माय गणनायकम् ।
अभिमन्त्र्य शतं सायं भक्षयेद्वशयेज्जगत् ॥१७८॥

नालिकेरं गुडोपेतं चूर्णितं त्रिपलं हुनेत् ।
अन्वहं कृतसम्पातमष्टाधिकशतं बुधः ॥१७९॥

सम्पातं भक्षयेद्यस्तु वशमायाति सोऽचिरात् ।
किं बहूक्तेन मन्त्रज्ञः साध्यं सञ्चिन्त्य यं मनुम् ॥१८०॥
जपेत् सदा स तां याति यावदायुर्न संशयः । इति ।

अथाऽत्र विषमपदव्याख्या—पूर्वं समीरिते स्थाने सर्वजनमिति स्थाने अयमर्थः । मनौ सर्वजन-पदस्थाने साध्याभिधां, स्तम्भयेति पदस्थाने वशमानय-युग्मं च दत्वा जपेदित्यर्थः । तद्धृदि गणेशहृदि, स्थापितानिलं कृतसाध्यप्राण-प्रतिष्ठम् । साध्यप्राणप्रतिष्ठाप्रकारस्त्वग्रे वक्ष्यते । अस्य द्रव्याष्टकस्य, विशेषकं तिलकं, द्विरेफो भृङ्गराजः, सदाभद्रा मुस्ताः, मुसली तालमूलिका, वन्दिनी लज्जालुका, शतवीर्या दूर्वा, मायूरी अपामार्गः, चन्द्रः कर्पूरः, उदितैर्भेषजैर्द्विरेफा-दिभिः, रात्रिवारिणा हरिद्रोदकेनेति ।

१. ख. तन्मथो । २. ख. कथितं ।

उच्चाटनं ततो यन्त्रं कथयामि समासतः ।
उक्तरीत्या लिखेद्यन्त्रंससाध्यं वर्म्ममध्यगम् ॥१८१॥

तदन्तर्मारुतं बीजं गाणपत्यं तदन्तरे ।
प्राणबीजं च पत्रेषु वामकर्णं तदग्रतः ॥१८२॥

तद्बहिर्वसुकोणाग्रशूलेषु कवचं लिखेत् ।
वायुना वेष्टितं पश्चात् षड्बिन्दुगतवायुना ॥१८३॥

प्रेतवस्त्रे तदाऽलिख्य निशालेपनपूर्वकम् ।
श्मशानाङ्गारसारेण ध्वाङ्क्षपक्षशलाकया ॥१८४॥

यन्त्रमेतत्समालिख्य स्थापयेदीरणं ततः ।
पिचुमन्दस्थितं ध्वाङ्क्षं गृहकाष्ठत्रयं ततः ॥१८५॥

श्मशानवह्नौ सन्दह्य भस्माऽऽदाय तदुद्भवम् ।
विघ्नाधीशगृहद्वाःस्थशर्करारजसा युतम् ॥१८६॥

यन्त्रमध्ये प्रविन्यस्य सैरं तद्गुलिकीकृतम् ।
[1]शवलिप्तनिशाभागं चिताभस्मास्थिनी तथा ॥१८७॥

सर्षपं च चिताङ्गारं कपिकच्छुञ्च वानरीम् ।
सम्पिष्योन्मत्तसारेण निर्माय गणपाकृतिम् ॥१८८॥

वानरी लताविशेषः ।

तं तुन्दमध्यगं कृत्वा पुनः प्राणान् प्रतिष्ठयेत् ।
चक्रिहस्तमृदा चैव साध्यपादोत्थपांसुना[2] ॥१८९॥

शरावयुगलं मन्त्री निर्मायाऽन्यत्र चोभयोः ।
आम्बिकेयं प्रविन्यस्य कृष्णपुष्पैः समर्चयेत् ॥१९०॥

मनावुच्चाटयद्वन्द्वं संयोज्य प्रजपेन्मनुम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं हि छादयित्वा परेण तम् ॥१९१॥

निखन्य वैरिणो द्वारि मासेनोच्चाटयेद्धि तम् ।
हस्तिसप्त्यालये वैरिसदनेऽपि रणाङ्गणे ॥१९२॥

---

१. ख. शवलिप्त० । २. क. ०पांशुना ।

स्थापिते गणपे मासादुच्चाटो जायते ध्रुवम् ।
म्रियन्ते वा ज्वरार्त्तास्ते प्राणिनो भयविह्वलाः ॥१९३॥

चतुःपथेऽथ वल्मीके चत्वरे द्रुमकोटरे ।
स्थापनाद्विघ्नराजस्य शत्रुरुच्चाटितो भवेत् ॥१९४॥

विघ्नेशतुन्दगं भस्म विन्यसेद्यस्य मस्तके ।
भ्रमते काकवत् सोऽपि नानादेशेष्वनिश्चलः ॥१९५॥

आसने शयने याने पथि शत्रोर्गजालये ।
भस्मक्षेपान्मृतस्तत्र भवत्येव न चाऽन्यथा ॥१९६॥ इति ।

अयमर्थः—पूर्वोक्तयन्त्रमालिख्य, तन्मध्ये 'हुं' बीजं विलिख्य, तदन्त'र्य्यं'मिति वायुबीजमालिख्य, तदन्त'र्गमि'ति गणपतिबीजमालिख्य, तन्मध्ये साध्यनाम लिखित्वा, पत्रेषु 'यमि'त्यालिख्य, दलाग्रेषु 'ऊमि'ति[1] विलिख्य, तद्बहिरष्टकोणाग्रगतशूलेषु 'हुमि'त्यालिख्य, बहिःषड्बिन्दुलाञ्छितवृत्ताकारेण वायुमण्डलेन संवेष्ट्य, तस्य षड्बिन्दुस्थानेषु 'यमि'ति वायुबीज लिखेत् । एतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति । प्रेतवस्त्रे प्रतत्यक्तवस्त्रे, अङ्गारसारः कोइलाइति प्रसिद्धः, ध्वाङ्क्षः काकः, ईरणं प्राणम्, पिचुमन्दो निम्बवृक्षः, शर्करा कर्करः, शवालिप्तनिशाभागं शवस्पर्शितं हरिद्रांशं, सर्षप श्वेतं श्वेतसर्षपमेव चेति तन्त्रान्तरात् । उन्मत्तसारो धत्तूररसः, तुन्दः कुक्षिः, आम्बिकेयं गणेशम्, उच्चाटयद्वन्द्वं स्तम्भय-पदमपास्येति शेषः, सप्तिरश्वः ॥४॥

तथा—

अथ वक्ष्ये समासेन यन्त्रं विद्वेषणाह्वयम् ।
यन्त्रे पूर्वोदिते वह्निवायुबीजं प्रविन्यसेत् ॥११९७॥

वसुपत्रगवर्णेषु टकारं विलिखेत्ततः ।
अष्टशूलेषु हुंकारं व्योम्ना बाह्ये प्रवेष्टयेत् ॥१९८॥

निशां तुर्य्यीं श्मशानेन मरिचं निम्बमेव च ।
तिन्तिडीं द्विगुणां पिष्ट्वा हेमपत्राम्बुना ततः ॥१९९॥

---

१. क. डुमिति ।

मृतकर्प्पटके लिप्त्वा द्वेषयन्त्रमिदं लिखेत् ।
पञ्चाङ्गं पारिभद्रस्य काकनीडं च तद्गतम् ॥२००॥

चिताग्नौ सन्दहेद्भस्म यन्त्रमध्ये निवेशयेत् ।
संवृत्य विघ्नराजस्य सेरं कुक्षौ विनिःक्षिपेत् ॥२०१॥

शरावान्तरग विघ्नं पूजयेत् पूर्ववर्त्मना ।
पिचुमन्दभवैः पत्रैः कृष्णपुष्पैर्न्निवेद्यकैः ॥२०२॥

विद्वेषयद्वयं मन्त्रे जपेत् संयोज्य साष्टकम् ।
सहस्रं च शरावेण निखनेच्छादितं ततः ॥२०३॥

प्रीतयोर्विधिनाऽनेन विद्वेषो भवति ध्रुवम् ।
आदाय गणपं मन्त्री प्रीतयोरन्तराक्षिपेत् ॥२०४॥

वैरं विजायते क्षिप्रं देहनाशावधि द्वयोः ।
एतद्यन्त्रगतं भस्म गृहीत्वा पथि विन्यसेत् ॥२०५॥

गच्छतां पादसंस्पर्शाद्विवादः सुमहान् भवेत् ।
देशे ग्रामे पुरे यत्र स्थापितो गणपो भवेत् ॥२०६॥

तिष्ठतां प्राणिनां तत्र वैरं भवति सर्व्वदा ।
पारिभद्रस्य पञ्चाङ्गमेकभागमितं भवेत् ॥२०७॥

भागैकं मरिचं रात्रिस्तावती त्रितयं त्विदम् ।
सन्दह्य भसितं पूर्ववर्त्मना संस्कृतं पुनः ॥२०८॥
विकीर्णं वैरिणो मूर्द्ध्नि कुर्यादुन्मादमूकते ।

अस्यार्थः—तत्र पूर्वोक्तं यन्त्रमालिख्य, तन्मध्ये 'रं' 'यमि' ति विलिख्याऽष्टसु दलेषु 'टंकारं' 'यंकारं' च विलिख्य, दलाग्रेषु 'ऊंकारं' विलिख्याऽष्टकोणगतशूलाष्टके 'हुंकार'मालिख्य, बहिराकाशमण्डलेन वृत्ताकारेण संवेष्टयेदिति । पारिभद्रो निम्बः, हेमपत्ररसः धुत्तूररसः, संवृत्य गुलिकीकृत्य, विद्वेषयद्वयं उच्चाटयस्थाने, रात्रिर्हरिद्रा, पूर्ववर्त्मना चिताग्निना । तथा—

साम्प्रतं मारणं यन्त्रं प्रवदामि यथागमम् ।
यन्त्रं विरच्य पूर्वोक्तं वर्ममध्ये निवेशयेत् ॥२०९॥

मायाविघ्नेशबीजे द्वे तन्मध्येऽपि समालिखेत् ।
तद्वाह्येऽप्युक्तरीत्यैव वर्णानग्निगताँल्लिखेत् ॥२१०॥

आशुशुक्षणिबीजं च धरासम्पुटकोणकम् ।
मस्तकेष्वस्त्रबीजानि वह्निं शूलेषु वर्मगम् ॥२११॥

तद्वहिर्वह्निकोणेषु वह्निबीजं समालिखेत् ।
निशां शुद्धां समालिप्य मृतकर्प्पटके शुभे ॥२१२॥

चिताङ्गारास्थिनिर्यासैः काकपक्षशलाकया ।
यथोक्तं विलिखेद्यन्त्रमेतन्मारणनामकम् ॥२१३॥

कणारामठशुण्ठ्याख्यनिशामरिचसद्वचाः ।
स्नुहीक्षीरेण सम्पिष्य लिप्त्वा शावपटेऽथवा ॥२१४॥

कारस्करस्य पञ्चाङ्गैः रजनीं जम्बुकासृजा ।
पिष्ट्वाऽथ कर्प्पटे शावे लिप्त्वा शेष पुरोक्तवत् ॥२१५॥

समीरं च प्रतिष्ठाप्य कृत्वा गणपतिं ततः ।
यन्त्रं तद्धृदये न्यस्य पुनः प्राणान् प्रतिष्ठयेत् ॥२१६॥

मातृसद्मसमुद्भूतां गणेशागारमृत्तिकाम् ।
निम्बमूलमृदं चाऽपि कर्कन्धूमूलसम्भवाम् ॥२१७॥

श्मशानमृत्तिकां तद्वत् करवीरद्रुमूलजाम् ।
कुम्भकारकरस्पृष्टामूषरस्थानजां मृदम् ॥२१८॥

पिष्ट्वा शरावयुगलं कृत्वा चाऽन्यत्र चोभयोः ।
यन्त्राढ्यं गणपं न्यस्य कृष्णपुष्पैः समर्चयेत् ॥२१९॥

कारस्करभवैः पत्रैर्नैवद्यैश्च यथा पुरा ।
उक्तमन्त्रपदस्थाने साध्यनाम निवेश्य हि ॥२२०॥

मारयद्वयशब्दं च सहस्रं साष्टकं जपेत् ।
दक्षिणाशामुखो भूत्वा रजन्यां भूजवासरे ॥२२१॥

चत्वरे पितृभूमौ वा मातृविघ्नगृहेऽथवा ।
वल्मीके कोटरे वाऽपि कारस्करतरूद्भवे ॥२२२॥

पिधायाऽन्यशरावेण निखन्य बलिमाहरेत् ।
साध्यो यमपुरं याति सप्ताहाज्ज्वरपीडितः ॥२२३॥

अमोघवीर्यमेतद्धि विधानं भुवि दुर्लभम् ।
भूदेवव्यतिरिक्तेषु राजवैरिषु योजयेत् ॥२२४॥

नृपोऽपि कारयेद्यः स कर्त्तारं तोषयेद्धनैः ।
कर्त्ताऽपि तद्दशांशेन प्रायश्चित्तं करिष्यति ॥२२५॥

हरिद्राविद्यमन्यस्य साङ्गोपाङ्गविधानकम् ।
निरूपितं यथाशास्त्रं गोपनीयं सदा बुधैः ॥२२६॥

दातव्यं पुत्रकल्पाय शिष्याय स्थिरचेतसे ।
चित्तवाक्कायवसुभिर्गुरुशुश्रूषुकाय च ॥२२७॥

श्रद्धाहीनाय दुष्टाय नैव देयं कदाचन ।इति।

अयमर्थः—तत्र पूर्वोक्तप्रकारेण यन्त्रं विरच्य, मध्ये हुँकारं विलिख्य, तस्योदरे शक्तिबीजं गणपतिबीजं च विलिख्य, दलेषु रमित्यालिख्य, बहिरष्टकोणं कृत्वा, तत्कोणेषु रमित्यालिख्य, कोणाग्रेषु फट्कारमालिख्य, तदग्रगतशूलेषु हुंकारं, तन्मध्ये रमिति चाऽऽलिख्य, तद्बहिस्त्रिकोणं विरच्य तत्कोणे रमित्यालिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

चिताङ्गारास्थिनिर्यासश्चितास्थकोइलाद्रवः । कणा पिप्पली, रामठं हिंगुः, स्नुही सेंहुड इति कान्यकुब्जभाषानाम, स्तम्भय-पदस्थाने मारय मारयेति च, भूजवासरे भौमवासरे, कोटरे कारस्करस्य, कारस्करो विषवृक्षः यस्य बीजं कुचिला इति प्रसिद्धम् ।

शारदातिलके—

मायाविरिपदद्वन्द्वं ततो गणपतिं वदेत् ।
खड्गीशपावकौ पश्चाद् वरदान्ते वदेत् पुनः ॥२२८॥

सर्वलोकं मे पदान्ते वशमानय-ठद्वयम् ।
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रो भजतां सुरपादपः[1] ॥२२९॥

---

१. ख. सुरपादपः ।

माया ह्रीमिति, विरिपदद्वन्द्व विरि विरि इति, गणपतिमिति लेखन-कर्मणि द्वितीया तेन गणपति इति, खड्गीशो वकारः, पावको रेफः, तेन वर-इति, वरदेति स्वरूपम्, तदन्ते सर्वलोकमिति स्वरूपं, मे इति स्वरूपं, वशमानयेति स्वरूपं, ठद्वयं स्वाहाकारः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

विरिशब्दद्वयं प्रोक्त्वा वदेद् गणपतिं ततः ।
वरेति च समुच्चार्य्य वरदेति वदेत्पुनः ॥२३०॥
सर्वलोकं द्वितीयान्तं मेऽन्ते वशमथोच्चरेत् ।
आनयाऽग्निवधूरन्ते मायाद्यं च समुद्धरेत् ॥२३१॥
विरिविघ्नेशमन्त्रोऽयं षड्विंशत्यक्षरो भवेत् ।

अग्निवधूः स्वाहाकारः, अत्र गणपतिपदं सम्बुद्ध्यन्तं वदेति सम्प्रदाय इति **माधवकृतशारदातिलकटीकायाम्** । केचन लोकपदे जनपदं पठन्तीति **पदार्थादर्शे** । केचिदेनं मन्त्रमेकोनविंशत्यक्षरात्मकं वदन्ति । तन्मते वरवरदेति पञ्चवर्णाः, लोकमिति वर्णद्वयमिति सप्तवर्णा न सन्ति । उक्तञ्च—

गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

वकाररेफावपि लोचनाढ्यौ पुनस्तथोद्धृत्य गणात्पतीति ।
सर्वं समुच्चार्य च मे वश स्यात् माकारतश्चाऽपि तथाऽऽनयेति ॥२३२॥
शब्दाच्छिरः स्याद्..............................।इति।

वकाररेफौ लोचनाढ्यौ प्रत्येकमिकारयुक्तौ तेन विरि इति, पुनस्तथोद्धृत्य पुर्नविरीति द्वौ वर्णावुद्धृत्य, शिरः स्वाहाकारः । अयमपि मायाद्यो विधेयः । **केचित्तु** पूर्वोक्तषड्विंशाक्षरमन्त्रस्याऽऽदौ महागणपतिबीजषट्कं वैपरीत्येन योजयन्ति । **अन्ये** महागणपतिबीजषट्कं क्रमेणैव योजयन्ति । तेनाऽस्य मन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षरत्व भवति ।

शारदातिलके—

गणकः स्यादृषिश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः ।
विरिविघ्नेश्वरः प्रोक्तो भजतां सुरपादपः ॥२३३॥

हृल्लेखा बीजं, स्वाहा शक्तिरिति, **पदार्थादर्शे** एकोनविंशत्यक्षरस्य मन्त्रस्य तु निचृच्छन्दः, अन्यत्पूर्ववत् ।

शारदातिलके—

अन्तःकरणवेदेषु भूतपञ्चविलोचनैः ।
एवं विभक्तैर्मन्त्रार्णैर्मायाद्यैरङ्गकल्पना ॥२३४॥

अन्तःकरणानि चत्वारि ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

वेदवेदेषुपञ्चार्णैः शरलोचनसंख्यकैः ।
विभक्तैर्मूलमन्त्रार्णैः षडङ्गानि मनोरथ ॥२३५॥
मायाद्यानि विधेयानि जातियुक्तानि मन्त्रिणा ।

द्वितीयमन्त्रस्य तु षड्भिः पदैः षडङ्गानि । तृतीयस्य महागणपतिमन्त्रवत् ।

शारदातिलके—

महागणपतेः प्रोक्ते स्थाने मन्त्री विचिन्तयेत् ।

सिन्दूराभमिभाननं त्रिनयनं हस्तेषु पाशाङ्कुशौ,
विभ्राणं मधुमत्कपालमनिशं सार्द्धेन्दुमौलिं भजे ।
पुष्ट्याऽऽश्लिष्टतनुं ध्वजाग्रकरया पद्मोल्लसद्धस्तया,
तद्योन्याहितपाणिमात्तवसुमत्पात्रोल्लसत्पुष्करम् ॥२३६॥

वामोर्द्ध्वकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तं पाशादित्रयं, वामाधःकरं देव्या वराङ्गे, वामाङ्कनिविष्टाया देव्या दक्षिणकरेण प्रियाश्लेषः । वामाधःकरेण ध्वजाग्रं स्पृशन्त्या वामदक्षिणयोः पद्ममित्यायुधध्यानम् । पुष्करं शुण्डादण्डः । द्वितीयेऽपि मन्त्रे इदमेव ध्यानम् । तृतीयमन्त्रे तु—

बीजापूरगदे शरासनमरिं मालां च वामैः[1] करै-
र्दक्षैरुत्पलपाशमार्गणरदान् रत्नाढ्यकुम्भं महत् ।
सिन्दूरारुणविग्रहस्त्रिनयनो यो न्यस्तशुण्डो गण-
स्तल्लिङ्गाहितपाणिमम्बुजकरां पुष्टिं वहन् वोऽवतात् ॥२३७॥

अत्र वामाधःकरादि चाऽऽयुधध्यानम् । कुम्भस्य सर्वोर्द्ध्वकरे युक्तत्वात् ।

---

१. क. वाम ।

शारदातिलके—

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे तीव्रादिनवशक्तिके ।
मूलेन मूर्त्ति सङ्कल्प्य तत्राऽऽवाह्याऽर्चयेद्विभुम् ।।२३८।।

मिथुनावृत्तिराद्या स्यादामोदाद्यैर्दिगम्बरैः ।
द्वितीयाङ्गैस्तृतीया स्याच्चतुर्थी मातृभिः स्मृता ।।२३९।।

पञ्चमी लोकपालैः स्यात् षष्ठी वज्रादिभिः स्मृता ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद् योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि-गणकाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्राय छन्दसे नमः, हृदि—विरिविघ्नेश्वराय देवतायै नम' इति विन्यस्य इष्टसिद्धये विनियोगः । इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, पञ्चभिर्हृदयं, पञ्चभिः शिरः, पञ्चभिः शिखा, पञ्चभिः कवचं, पञ्चभिर्नेत्रं, द्वाभ्यामस्त्रमिति विभक्तैर्मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते अन्तस्त्रिकोणे पूर्वोक्त-महागणपतिपूजोक्तमिथुनत्रयं, षट्कोणेष्वामोदादिषट्कमष्टदलकेसरेष्वङ्गषट्कं, दलेषु मातृर्लोकेशान्, तदस्त्राणि चतुरस्रवीथीद्वये सम्पूज्य प्राग्वच्छेषं समापयेदिति ।

शारदातिलके—

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुतक्रिया ।
प्राक्प्रोक्तैरष्टभिर्द्रव्यैस्त्रिमध्वक्तैः समीरिता ।।२४०।।

इति सिद्धमनुर्मन्त्री प्रफुल्लैः सरसीरुहैः ।
जुहुयाद्दशगाः सर्व्वे तण्डुलैस्तिलमिश्रितैः ।।२४१।।

हुत्वा श्रियमवाप्नोति मोदकैराज्यलोलितैः ।
हुत्वा विजयमाप्नोति पार्थिवो युद्धभूमिषु ।।२४२।।

मधुरत्रयेण हवनं वशं नयति पार्थिवान् ।
भक्ष्यभोज्यादिकं सर्वं हुत्वाऽभीष्टानि साधयेत् ।।२४३।।

शारदातिलके—

शक्तिरुद्धं निजं बीजं महागणपतिं वदेत् ।
ङेऽन्तमग्निवधूः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।।२४४।।

निजं बीजं गमिति, शक्तिरुद्धं भुवनेश्वरीबीजसम्पुटितं, महागणपतिं ङेऽन्तं तेन महागणपतये इति, अग्निवधूः स्वाहाकारः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

शक्तिरुद्धा स्मृतिः प्रोक्ता चन्द्रखण्डेन संयुता ।
महागणान्ते पतये स्वाहान्तो द्वादशाक्षरः ॥२४५॥

स्मृतिर्गकारः, चन्द्रखण्डो बिन्दुः ।

शारदातिलके—

गणकः स्यादृषिश्छन्दो गायत्री निचृदादिका ।
उदिता देवता तन्त्रे नाम्ना शक्तिगणाधिपः ॥२४६॥

गं बीजं, स्वाहा शक्तिः ।

सारसङ्ग्रहे—

एकेनैकेन चैकेन सप्तभिर्द्वितयेन च ।
समस्तेन च मन्त्रार्णैरङ्गक्लृप्तिरिहोदिता ॥२४७॥

शारदातिलके—

मुक्तागौरं मदगजमुखं चन्द्रचूडं[1] त्रिनेत्रं,
हस्तैः स्वीयैर्दधतमरविन्दाङ्कुशौ रत्नकुम्भम् ।
अङ्कस्थायाः सरसिजरुचेः स्वध्वजालब्धिपाणे-
र्देव्या योनौ विनिहितकरं रत्नमौलिं भजामः ॥२४८॥

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तं सरसिजादिध्यानम् ।

सारसङ्ग्रहे—

एवं सञ्चिन्त्य विधिवत् साधकः सर्वसिद्धये ।
यजेत् पूर्वोदिते पीठे विरिविघ्नेशवर्त्मना ॥२४९॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि—गणकाय ऋषये नमः, मुखे—निचृद्गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीशक्तिगणेशाय देवतायै नम' इति

१. क. चण्डचूड ।

विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धयर्थे विनियोगः । इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, आद्यवर्णेन हृदयं, द्वितीयेन शिरः, तृतीयेन शिखा, ततः सप्तभिः कवचं, ततो द्वाभ्यां नेत्रं, ततः समस्तमन्त्रेणाऽस्त्रमिति मूलमन्त्रार्णैः करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यानादि सर्वं विरिविघ्नेशवत् कुर्यादिति । तथा—

दशायुतं जपेन् मन्त्रमयुतं जुहुयात्ततः ।
अपूपैर्घृतसंयुक्तैर्विधिवत् पूजितेऽनले ॥२५०॥

तर्प्पणं मार्ज्जनं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्विधिवच्चरेत् ॥२५१॥

इक्षुखण्डैः कृतो होमो राज्यलक्ष्मीं प्रयच्छति ।
कदलैर्नारिकेलैश्च होमो लोकवशङ्करः ॥२५२॥
सर्पिषा जुहुयात् सम्यग्धनधान्यादिसम्पदः । इति ।

शारदातिलके—

शक्त्या रुद्धं निजं बीजं वशमानय ठद्वयम् ।
ताराद्यो मनुराख्यातो रुद्रसंख्याक्षरान्वितः ॥२५३॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

प्रणवो मायया रुद्धं बीजं च वशमानय ।
ठद्वयान्तो मनुः प्रोक्तः सम्यगेकादशाक्षरः ॥२५४॥

तथा—

पूर्वोदितास्तु मुन्याद्या मन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम् ।
हृदयं प्रणवेनाऽथ शिरो मायापुटेन च ॥२५५॥

स्वबीजेन शिखा प्रोक्ता वशं शब्देन चाऽऽनय ।
अनेन कवचं नेत्रं स्वाहाशब्देन मन्त्रिभिः ॥२५६॥

समग्रेणाऽस्त्रमाख्यातं सर्वागमविशारदैः ।
बन्धूकाभ त्रिनेत्रं शशधरमुकुटं भोगलोलं गणेशं,
नागास्यं धारयन्तं गुणसृणिवरदानिक्षुदण्डं कराग्रैः ।

शुण्डासंस्पृष्टयोषामदनगृहममुं श्यामलाङ्ग्या तयाऽपि,
श्लिष्टं लिङ्गस्पृशा तं[1] विधृतकमलया भावयेद् देववन्द्यम् ।।२५८।।

वामोर्द्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

पूर्वोक्तपीठे पूर्वोक्ता पूजा कार्या मनीषिणा । इति ।

अत्र प्रयोगः सुगमः । मुन्यादयस्तु द्वादशाक्षरोक्ताः । तथा—

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रमपूपैस्तद्दशांशतः ।।२५९।।

घृताप्लुतैस्तु जुहुयात्तर्पणादि ततश्चरेत् ।
ततो निजगुरुं नत्वा धनधान्यैश्च तोषयेत् ।।२६०।।

ततः काम्यप्रयोगांश्च तत्कल्पोक्तान् प्रसाधयेत् ।
स्वादुत्रयाप्लुतापूपैर्होमो राजवशङ्करः ।।२६१।।

नारिकेलफलैर्होमो राज्यश्रीवृद्धिदः परः ।
त्रिस्वादुसंयुतैर्ल्लोणैर्होमः कान्तावशङ्करः ।।२६२।। इति ।

सारसङ्ग्रहे—

बिन्दुवामाक्ष्यग्नियुता स्मृतिर्मायासुमध्यगा ।
अक्षरः सिद्धिगणपः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।।२६३।।इति ।

स्मृतिर्गकारः, अग्नी रेफः, वामाक्षि ईकारः, बिन्दुरनुस्वारः, एतैः पिण्डितं बीज मायासुमध्यगा मायाबीजद्वयस्य मध्ये कुर्यात् । तथा—

भार्गवोऽस्य मुनिः छन्दो विराड् देवः समीरितः ।
शक्त्यादिर्गणपस्तत्र देवदानववन्दितः ।।२६४।।

षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
गजेन्द्रवदनं साक्षाच्चलत्कर्णं सुचामरम् ।।२६५।।

हेमवर्णं चतुर्बाहुं पाशाङ्कुशधरं विभुम् ।
स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते बीजपूरं च वामके ।।२६६।।

पुष्करे मोदकं चैव धारयन्तममुं स्मरेत् ।

वामोर्द्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे तीव्रादिनवशक्तिके ।
अष्टपत्राम्बुजे देवं चतुरस्रत्रयावृते ।।२६६।।

---

१. ख. लिगङ्स्पृशान्तं ।

प्रथमाङ्गावृतिः प्रोक्ता द्वितीया मातृभिः स्मृता ।
तृतीया लोकपालैः स्याद् वज्राद्यैश्च चतुर्थ्यपि ॥२६८॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि—ॐ भार्गवाय ऋषये नमः, मुखे—ॐ विराट्छन्दसे नमः, हृदये—ॐ श्रीशक्तिगणपतये देवतायै नम' इति विन्यस्य, ग्रां ग्रीमित्यादि करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रोक्तं पूजाचक्रमुद्धृत्याऽर्घादिपुष्पोपचारान्ते केसरेषु षडङ्गानि, दलेषु मातृश्चतुरश्रे लोकपालांस्तदायुधानि च प्राग्वत् सम्पूज्य धूपादि पूर्ववत् समापयेदिति । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
तद्दशांशं प्रजुहुयादपूपैर्घृतसम्प्लुतैः ॥२६९॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ।

अत्राऽपि कलावेतच्चतुर्गुणं जपादिकं कार्य्यमिति ।

शुक्ले पक्षे चतुर्थ्यां तु पूजयित्वा विनायकम् ।
अपूपैर्गुडसम्मिश्रैः पक्वान्नैश्च घृतप्लुतैः ॥२७०॥

मरिचैर्जीरकैश्चैव सैन्धवेन विमिश्रितैः ।
देवस्य सन्निधौ मन्त्री जुहुयात्त्रिसहस्रकम् ॥२७१॥

गद्यपद्यमयी वाणी सप्ताहाद्भवति ध्रुवम् ।
वश्यार्थी मधुहोमेन राजानं वशमानयेत् ॥२७२॥

कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैस्तन्नामपुटमन्त्रतः ।
एकां कन्यामथो सप्त भोजयेल्लभते वधूम् ॥२७३॥

चन्द्रसूर्यग्रहे प्राप्ते पलं तु कपिलाघृतम् ।
कर्षमात्रं वचाचूर्णं मिश्रीकृत्याऽभिमन्त्रयेत् ॥२७४॥

पिबेत्तन्नियतो भूत्वा देवताध्यानतत्परः ।
यावज्जीर्णं भवेत्तावन्नाऽश्नीयात्किमपीह सः ॥२७५॥

सप्ताहाज्जायते शीघ्रमपरो वाक्पतिर्यथा ।
वन्ध्यर्त्तुस्नानदिवसे पूजयित्वा विनायकम् ॥२७६॥

निष्कार्द्धपादमानेन हरिद्रां सैन्धवं वचाम् ।
गोमूत्रकुडवे पिष्टं सहस्रमभिमन्त्रितम् ।।२७७।।

वध्वः कन्या भक्ष्यभोज्यैर्भोजयित्वा च तत्क्रमात् ।
गुरवे दक्षिणां दत्वा पिबेन्नारी तदौषधम् ।।२७८।।

ततः सा लभते पुत्रं सर्व्वलक्षणसंयुतम् ।
आयुष्मन्तं सुरूपं च बुद्धिमन्तं श्रिया युतम् ।।२७९।।इति।

चन्द्रसूर्यग्रहेत्यादिनैतदुक्तम्भवति—चन्द्रग्रहे सूर्य्यग्रहे वा कर्षमात्रमतिश्लक्ष्णं वचाचूर्णं पलमात्रेण कपिलागोघृतेन मिश्रीकृत्य, मूलमन्त्रेणाऽष्टोत्तरसहस्रवारमभिमन्त्र्य, तत्सप्तधा विभज्यैकं भागं देवताध्यानपूर्वकं तदानीं पिबेत् । उर्व्वरितं भागषट्कं प्रत्यहमेकैकं भागं [1]प्रतिप्रातर्देवताध्यानपूर्वकं दिनषट्कं पिबेदेवं कृते प्रोक्तसिद्धिर्भवति ।

वन्ध्येत्यादिनैतदुक्तम्भवति—निष्कमात्रं हरिद्रा, निष्कार्द्धं सैन्धवं, निष्कचतुर्थांशं वचाचूर्णं, एतत्त्रयं श्लक्ष्णं पेषितं कुडवमात्रेण गोमूत्रेण मिश्रीकृत्य, प्रोक्तसंख्ययाऽभिमन्त्र्य प्रोक्तविधिना पीतमुक्तफलदं भवति । तथा—

सारसङ्ग्रहे—

ताराद्यः पूर्वमन्त्रोऽसौ चतुर्वर्णः प्रकीर्त्तितः ।इति।

असौ पूर्वोक्तः शक्तिगणपतिमन्त्रश्चेत्प्रणवाद्यः स्यात्तदा चतुरक्षरमन्त्रो भवति । तथा—

ऋषिः शुक्रो निगदितश्छन्दो गायत्रमुच्यते ।।२८०।।

देवता शक्तिगणपः सर्वसिद्धिङ्करः परः ।
पूर्ववच्च षडङ्गानि कुर्याद्देशिकसत्तमः ।।२८१।।

हेमाभं हेमवस्त्रं बृहदुदरतनुं चारुबाहुं त्रिनेत्रं,
दोर्भिः पाशाक्षसूत्रं निजरदनसृणी मोदकं पुष्करेण ।
बिभ्राणं हेमभूषं तरुणतरणिरुक्चारुशक्त्या समेतं,
विघ्नेशं विश्ववन्द्यं त्रिभुवनशरणं चिन्तये श्रीगणेशम् ।।२८२।।

---

१. ख. प्रातः प्रात० ।

दक्षोर्द्ध्वकरमारभ्य वामोर्द्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । तथा—

ततः पूर्वोदिते पीठे देवमावाह्य पूजयेत् ।
प्रथमावृतिरङ्गैः स्याद्वक्रतुण्डादिभिस्ततः ॥२८३॥

तृतीया मातृभिः प्रोक्ता लोकपालैस्ततो बहिः ।
तदायुधैः पञ्चमी स्यादेवं सम्पूजयेत् क्रमात् ॥२८४॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते 'शिरसि—ॐ शुक्राय ऋषये नमः, मुखे ॐ गायत्राय छन्दसे नमः, हृदये—शक्तिगणपतये देवतायै नम' इति विन्यस्य, ग्रां ग्रीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रोक्तत्र्यक्षरमन्त्रवत् पूजाचक्रमुद्धृत्याऽर्घादिपुष्पोपचारान्ते केसरेषु—षडङ्गानि, दलेषु—वक्रतुण्डादीन्, दलाग्रेषु—मातृः, चतुरस्रे लोकपालांस्तदायुधानि सम्पूज्य प्राग्वच्छेषं समापयेदिति। तथा—

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं समाहितः ।
जुहुयाद् घृतसंयुक्तैस्तिलैर्मन्त्रविदुत्तमः ॥२८५॥
तर्प्पणादि ततः कुर्यादेवं सिद्धो भवेन्मनुः ।

कलावेष एव जपो ज्ञेयः ।

काम्यकर्म ततः कुर्याद्देशिको यतमानसः ॥२८६॥

आज्याक्तैर्जुहुयान्नित्यमन्नवान् वत्सराद्भवेत् ।
पायसान्नेन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः ॥२८७॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

वदेत्सौम्यं चतुर्थ्यन्तं महागणपतिं तथा ।
वरान्ते वरदं प्रोक्त्वा वदेत् सर्वजनं ततः ॥२८८॥

मे वशं च समाभाष्य वदेदानय ठद्वयम् ।
लक्ष्मीगणेशबीजाद्य एकोनत्रिंशदक्षरः ॥२८९॥
लक्ष्मीगणेशमन्त्रोऽयं सर्व्वसम्पत्प्रदायकः ।

तथा चतुर्थ्यन्तं सौम्याय महागणपतये इति, ठद्वयं स्वाहा । **लक्ष्मीबीजं श्रीं, गणेशबीजं गं** एतदाद्यः । तथा—

अन्तर्य्यामी मुनिः प्रोक्तो गायत्री निचृदन्विता ।
छन्दो लक्ष्मीगणेशोऽत्र देवता समुदाहृता ।।२६०।।

षड्दीर्घयुक्तेनाऽऽद्येन द्वितीयेन च तद्वता ।
षडङ्गानि विधेयानि जातियुक्तानि मन्त्रिणा ।।२६१।।

हेमाभः पीतवस्त्रः करतलकमलैस्सन्दधच्चक्रशङ्खौ-
दन्ताभीती च नासाधृतकनकघटः पद्मसंस्थस्त्रिनेत्रः ।
वामाङ्काश्लिष्टलक्ष्म्या विधृतकमलया प्रोल्लसद्दक्षदोष्णाऽऽ-
श्लिष्टः सौवर्णकान्त्या गणप इह महाश्रीकरो वः श्रियेऽस्तु ।।२६२।।

दक्षिणोर्ध्वकरमारभ्य दक्षिणाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । नासा शुण्डादण्डः ।

प्राक्प्रोक्ते पूजयेत् पीठे तीव्रादिनवशक्तिके ।
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वे कर्णिकाकेसरोज्वले ।।२६३।।

चतुर्द्वारसमायुक्तचतुरस्रत्रयावृते ।
मूलेन मूर्ति सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत् ।।२६४।।

प्रथमावृतिरङ्गैः स्याद्वक्रतुण्डादिभिः परा ।
अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।।२६५।।

ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं प्राप्तिरेव च ।
एताः समर्च्चयेत् सम्यक् तृतीयावरणे क्रमात् ।।२६६।।

ततस्तु मातरः पूज्या लोकेशास्तदनन्तरम् ।
तदायुधानि तद्वच्च भक्तियुक्तः समर्च्चयेद् ।।२६७।। इति ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि-अन्तर्यामिने ऋषये नमः, मुखे—निचृद्गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीलक्ष्मीगणेशाय देवतायै नम' इति विन्यस्य, 'ॐ श्राँ गाँ हृदयाय नमः, ॐ श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रूं गूं शिखायै वषट्, ॐ श्रैं गैं कवचाय हुं, ॐ श्रौं गौं नेत्राय वौषट्, ॐ श्रः गः अस्त्राय फट्' इति करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिमानस-पूजान्ते प्रोक्तमर्चायन्त्रमुद्धृत्याऽर्घ्यस्थापनादिपुष्पोपचारान्ते प्रथमाष्टदलकेसरेषु

प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, दलाष्टके एकाक्षरपूजोक्तान् वक्रतुण्डादिकान् सम्पूज्य, द्वितीयाष्टदलेषु देवाग्रदलमारभ्य—'ॐ अणिमासिद्ध्यै नमः, ॐ महिमासिद्ध्यै नमः, ॐ लघिमासिद्ध्यै नमः, ॐ गरिमासिद्ध्यै नमः, ॐ ईशित्वसिद्ध्यै नमः, ॐ वशित्वसिद्ध्यै नमः, ॐ प्राकाम्यसिद्ध्यै नमः, ॐ प्राप्तिसिद्ध्यै नम' इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, दलाग्रेषु ब्राह्म्यादिकाः प्राग्वत्सम्पूज्य, चतुरस्रवीथिद्वये लोकपालांश्च तदायुधानि च सम्पूज्य धूपदीपादिकं सर्व्वं पूर्ववत् समापयेदिति ।

तथा— लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः ।
दशांशं जुहुयाद्बिल्वसमिधो मधुराप्लुताः ।।२९८।।

तर्प्पणादि ततः कुर्यात् पूर्वोक्तविधिना प्रिये ।
एवं सिद्धमनुर्म्मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः ।।२९९।।

हुनेच्चतुःसहस्राणि श्रीफलैर्म्मधुराप्लुतैः ।
महालक्ष्मीकरो होमः पुत्रमित्रकलत्रदः ।।३००।।

शुद्धतोयेन सन्तर्प्य चत्वारिंशच्चतुःशतम् ।
चत्वारिंशद्दिनान्मन्त्री वाञ्छितां लभते श्रियम् ।।३०१।।

शारदातिलके—

संवर्त्तको नेत्रयुतः पार्श्वो वह्न्यासनस्थितः ।
प्रसादनाय हृन्मन्त्रः स्वबीजाद्यो दशाक्षरः ।।३०२।।

संवर्त्तकः क्षकारः, नेत्रमिकारः, तद्युक्तं तेन क्षि इति, पार्श्वः पकारः, वह्न्यासनस्थितः रेफस्थितः, तेन प्र इति, प्रसादनायेति स्वरूपम्, हृन्मन्त्रः, स्वबीजाद्यः गमिति, बीजाद्यः श्रीबीजाद्य इति केचिदिति **पदार्थादर्शे** ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

खान्तो बिन्दुसमायुक्तः क्षकारोऽक्षिसमन्वितः ।
लोहितो रेफसंयुक्तः पार्श्वो[1] वह्निसमन्वितः ।।३०३।।
सादनाय हृदन्तोऽयं मन्त्रः पङ्क्त्यक्षरो मतः ।

---

१. ख. पार्श्वं ।

शारदातिलके—

गणको मुनिरस्य स्याद्विराट् छन्द उदाहृतम् ।
क्षिप्रप्रसादनो विघ्नो देवताऽस्य समीरिता ॥३०४॥

गं बीजं ग्रायेति शक्तिरिति **पदार्थादर्शे** । तथा—

दीर्घयुक्तेन बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
पाशाङ्कुशौ कल्पलतां विषाणं दधत् स्वशुण्डाहितबीजपूरः ।
रक्तस्त्रिनेत्रस्तरुणेन्दुमौलिर्हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद्वः ॥३०५॥

वामोर्द्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

एकाक्षरोदिते पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्धूपैर्दीपैर्गजाननम् ॥३०६॥

ग्रङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य विघ्नानष्टौ यजेत्ततः ।
विघ्नविनायकं शूरं वीरं वरदसंज्ञकम् ॥३०७॥

इभवक्त्रं चैकरदं लम्बोदरमनन्तरम् ।
पत्राग्रेष्वर्च्चयेत् पश्चाद् ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ॥३०८॥
लोकपालांस्तदस्त्राणि विघ्नपूजा समीरिता ।

॥ **अथ प्रयोगः** ॥

प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि—गणकाय ऋषये नमः, मुखे—विराट्छन्दसे नमः, हृदये—श्रीक्षिप्रप्रसादनाये देवतायै नमः' इति विन्यस्य, 'गां गीमि'त्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवीतमष्टदलकमलमर्च्चापीठं निर्म्माया-ऽर्घादिपुष्पोपचारान्ते केसरेषु षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'ॐ विघ्नाय नमः, ॐ विनायकाय नमः, ॐ शूराय नमः, ॐ वीराय नमः, ॐ वरदाय नमः, ॐ इभवक्त्राय नमः, ॐ एकदन्ताय नमः, ॐ लम्बोदराय नमः' इति सम्पूज्य, दलाग्रेषु मातॄश्चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य प्राग्वच्छेषं समापयेत् ।

शारदातिलके—

लक्षं जपेज्जपस्यान्ते जुहुयादयुतं तिलैः ।
मधुरत्रितयैर्द्रव्यैरथवाऽष्टभिरीरितैः ॥३०९॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तदन्ते तद्दशांशतः ।
त्रिस्वाद्वक्तैस्तिलैर्होमं कुर्यात् पूर्वोदिताष्टभिः ॥३१०॥

द्रव्यैर्वा तर्प्पणादीनि ततः पूर्ववदाचरेत् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री कुर्यात् कामानशेषतः ॥३११॥

शर्कराघृतयुक्तेन हविषा जुहुयात् सुधीः ।
लक्ष्मीवान् केवलाज्येन होमो लोकवशीकरः ॥३१२॥

शारदातिलकेऽपि—

आज्यान्नैर्जुहुयान्नित्यमन्नवान् वत्सराद्भवेत् ।
पायसान्नेन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः ॥३१३॥

आज्यहोमेन वशयेत् प्राणिनः सकलान् सुधीः ।
नारिकेरफलं पक्वं लोष्ठवंचर्मसमन्वितम् ॥३१४॥

जुहुयात् प्रत्यहं मन्त्री मण्डलात् सिद्धिमाप्नुयात् ।
जुहुयादष्टभिर्द्रव्यैर्म्मधुरत्रयसंयुतैः ॥३१५॥
वशयेत् पार्थिवान् सर्वांस्तत्पत्नीर्विधिनाऽमुना ।

सारसङ्ग्रहे—

सलाजकैः सक्तुभिश्च पृथुकैर्वाञ्छिताप्तये ।
होमो भवेदष्टभिश्च द्रव्यैस्त्रिमधुरान्वितैः ॥३१६॥

हुनेत्ततश्च वशयेद्राज्ञस्तत्प्रमदा अपि ।
चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतमतन्द्रितः ॥३१७॥

प्रातः प्रातस्तु सतिलैर्विघ्नेशस्य च मस्तके ।
तर्प्पयेच्छ्रीसमृद्धिश्च भवेत्तस्य न संशयः ॥३१८॥

पूर्वोदितं गणेशानमायान्तं रविबिम्बतः ।
सोपानेनाऽब्जसंस्थं तं चिन्तयित्वा तु तर्प्पयेत् ॥३१९॥
पूर्वमन्त्रप्रयोगांश्च कुर्य्यादत्राऽपि साधकः । इति ।

पूर्वमन्त्रोक्तान् अक्षरमन्त्रोक्तान् ।

शारदातिलके—

पञ्चान्तको बिन्दुयुतो वामकर्णविभूषितः ।
तारादिहृदयान्तोऽयं हेरम्बमनुरीरितः ॥३२०॥
चतुर्वर्णात्मको नृणां चतुर्व्वर्गफलप्रदः ।

पञ्चान्तको गकारः, वामकर्णं ऊकारः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

बिन्द्वर्घीशयुतः शार्ङ्गी ताराद्यो नमसा युतः ।
चतुर्वर्णो मनुः प्रोक्तो हेरम्बस्य महात्मनः ॥३२१॥

शार्ङ्गी गकारः, अर्घीशः षष्ठस्वरः ।

मुनिर्गणक आख्यातो गायत्री छन्द ईरितम् ।
पञ्चवक्त्रोऽस्य हेरम्बो देवता सिंहवाहनः ॥३२२॥

गकारो बीजं, बिन्दुः शक्तिरिति **पदार्थादर्शे** ।

सारसङ्ग्रहे—

मुक्ताविद्युत्पयोदामृतघुसृणनिभैः पञ्चभिर्न्नागवक्त्रै-
र्हेरम्बो भावनीयः शशधरमुकुटो दृप्तसिंहाधिरूढः ।
हस्तैर्ब्बिभ्रत्त्रिशूलाङ्कुशकजपवटीमुद्गरान् पुंस्कपालं,
टङ्काङ्कं मोदकं स्याद्वरदलसदभये दानमर्क्कौघदीप्तिः ॥३२३॥

अधःस्थदक्षवामयोर्वराभये, तदुपरि मोदकरदौ, तदुपरि परशुकपाले, तदुपरि अक्षमालामुद्गरौ, तदुपरि अङ्कुशत्रिशूले ।

शारदातिलकेऽपि—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
नगास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हैरम्बमर्कप्रभम् ।
दृप्तं[1] दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां,
मालां मुद्गरमङ्कुशत्रिशिखिकं दोर्भिर्दधानं भजे ॥३२४॥

तीव्रादिपूजिते पीठे देवं हेरम्बमर्च्चयेत् ।
प्रणवः कवचद्वन्द्वं महासिंहाय गां ततः ॥३२५॥

हेरम्बेति ततः पश्चादासनाय हृदाऽन्वितः ।
अयमासनमन्त्रः स्यात्प्रदद्यादमुनाऽऽसनम् ॥३२७॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

ध्रुवान्ते हुंद्वयं प्रोक्त्वा महासिंहं च ङेयुतम् ।
गां च हेरम्बशब्दः स्यादासनाय नमोऽन्ततः ॥३२७॥

आसनाख्यो मनुः प्रोक्तो दत्वाऽनेनाऽऽसनं विभोः ।
ध्रुवयुक्तेन बीजेन कुर्यान्मूर्त्तिप्रकल्पनम् ॥३२८॥

तस्यामावाह्य विघ्नेशं यजेदावरणान्वितम् ।
आदावङ्गानि सम्पूज्य लोकपालान् यजेद् बुधः ॥३२९॥
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये हेरम्बार्चा समीरिता ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते 'शिरसि—ॐ गणकाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—ॐ श्रीहेरम्बाय देवतायै नम' इति विन्यस्य, गां गीमि'त्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रोक्तमष्टदल-कमलं कृत्वाऽर्घादियोगपीठनवशक्तिपूजान्ते 'ॐ हुं हुं सिंहाय हेरम्बासनाय नम' इत्यासनं सम्पूज्य, 'ॐ गं गणपतिमूर्त्ति कल्पयामी'ति तत्र मूर्त्ति परिकल्प्या-ऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते केसरेषु षडङ्गानि सम्पूज्य लोकेशादि प्राग्वत् समापयेदिति ।

---

१. ख. दत्तं ।

शारदातिलके—

लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

लक्षत्रयं जपित्वाऽन्ते तिलैर्हुत्वा दशांशतः ।
मधुरत्रयसंयुक्तैस्तर्प्पणादि समाचरेत् ॥३३०॥
एवं सिद्धमनुर्म्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ।

अत्राऽयमेव कलियुगजपः ।

मोदकैर्जुहुयात् षष्ठ्यामष्टम्यां कृशरैस्तथा ॥३३१॥

चतुर्दशीदिनेऽपूपैर्जुहुयाद्वाञ्छिताप्तये ।
एभिर्द्रव्यैः प्रजुहुयान्मन्त्री पर्व्वदिनेष्वपि ॥३३२॥
साधयेत् सकलान् कामानयत्नेनैव साधकः ।

सारसङ्ग्रहे—

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि हेरम्बस्य गणेशितुः ॥३३३॥

भूर्जे पद्मं लिखेत्तद् गजमदघुसृणैर्म्मध्यबीजाढ्यसाध्यं,
किञ्जल्केष्वङ्गमन्त्रान्वसुदलविवरे सप्तधारां विभज्य ।
मालाणुं शिष्टपत्रे विलिखतु षडपि प्रान्तगानेव वर्णान्,
शक्त्यावीतं सकारावृतमपि तदनु श्वेतसूत्रावृतं स्यात् ॥३३४॥
लोहैः सवेष्टच यन्त्रं त्रिभिरपि विधृतं बाहुनाऽभीष्टदं स्यात् । इति ।

मालामन्त्रस्तु शारदातिलके—

शक्त्यङ्कुशध्रुवान्ते स्यात् स्वबीजं हृदयं ततः ।
सर्वविघ्नाधिपायाऽन्ते ङेऽन्तं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥३३५॥

प्रवदेत् सर्वदुःखप्रशमनायपदं ततः ।
एह्येहि भगवन् सर्वं खादय-स्तम्भयद्वयम् ॥३३६॥

भुवनेशीं स्वबीजं गां नतिः[1] पावकवल्लभा ।
पुनरङ्कुशमायान्तः पञ्चपञ्चाशदक्षरः ॥३३७॥
मायामन्त्रोऽयममुना प्रयोगान्साधयेत् सुधीः ।

---

१. ख. द्रुतिः ।

यन्त्रनिर्म्माणप्रकारस्तु — भूर्जपत्रे गजमदसहितकुङ्कुमेनाऽष्टदलपद्मं विरच्य, तन्मध्ये हेरम्बबीजं विलिख्य, तस्य बिन्दुस्थाने अमुकस्य, ऊकारस्थाने अमुकं, मध्ये वशं कुरु कुरु इत्यादि स्वेष्टं कर्मपदं लिखेदित्येवं साधकसाध्यकर्माण्यालिख्य, तत्केसरेषु षडङ्गमन्त्रान् यथास्थानमालिख्याऽष्टसु पत्रेषु पूर्व्वादिप्रादक्षिण्येन "ह्रीं क्रों ऊं गं नमः स, द्वितीयदले ['र्व्वं' विघ्नाधिपाय स,' तृतीयदले वर्थसिद्धिदाय स, चतुर्थदले 'र्वं[1] दुखःप्रशमना' पञ्चमे दले य एह्येहि भगवन्, षष्ठदले[2]] सर्वान् खादय स्तम्भ, सप्तमे दले य स्तम्भय ह्रीं गं गां, अष्टमदले नमः स्वाहा क्रों ह्रीं" इति विलिख्य, पश्चाद्बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा, वीथीद्वयं निष्पाद्य, तत्र प्रथमवीथ्यां स्वाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन निरन्तरं शक्तिबीजैरावेष्ट्य, द्वितीयवीथ्यां तथैव सबिन्दुकसकारेणाऽऽवेष्ट्य, गुडिकीकृत्य[3], श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य, पुनः स्वर्णरजतताम्रैरग्निसम्बन्धमकुर्वन्नाऽऽवेष्ट्य, यथाविधि धृतमुक्तफलदं भवतीति। अत्र यन्त्रलिखितमालामन्त्रस्य पूजाजपादिकं सर्वं हेरम्बमन्त्रवत् कार्य्यम्। अमितं छन्द इति विशेषः।

तारं खड्गीश्वरः कूर्मो निःस्वरो णान्त ईरितः।
भुवे नतिः सप्तवर्णः सुब्रह्मण्यात्मको मनुः ॥३३८॥

तारं प्रणवः, खड्गीश्वरो वकार अन्तस्थः, कूर्मः चकारः, णान्तः तकारः, निःस्वरः स्वरहीनो व्यञ्जनमिति यावत्; भुवे[4] स्वरूपम्, अत्र सन्धौ तकारे दकार इति ज्ञेयः। तदुक्तम्—

प्रयोगसारे—

वचद्भुवे नमो मन्त्रः सुब्रह्मण्यादिदैवतः[5]। इति।

सारसङ्ग्रहे तु—'प्रणवः पतृतीयश्चे'ति वकार उक्तः।

प्रयोगसारे—

प्रशस्तः प्रणवाद्यन्तः शक्तिपूर्वं परे जगुः ॥३३९॥

एवं त्रिविधोऽयं मन्त्रो ज्ञेयः।

सारसङ्ग्रहे—

ऋषिरग्निः समाख्यातो गायत्री छन्द उच्यते।
सुब्रह्मण्योऽस्य मन्त्रस्य देवता परिकीर्तितः ॥३४०॥

---

१. क. र्घं। २. कोष्ठकान्तर्गतोंशो नास्ति ख. पुस्तके। ३. ख. गुलिकीकृत्य।
४. ख. भुवने। ५. क. ०दैवत व।

शारदातिलके—

वह्निबीजेन षड्दीर्घयुक्तेनाऽङ्गक्रिया मता ।

सिन्दूरारुणकान्तिमिन्दुवदनं केयूरहारादिभि-
दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं स्वर्गस्य सौख्यप्रदम् ।
अम्भोजाभयशक्तिकुक्कुटधरं रक्ताङ्गरागांशुकं,
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां भीतिप्रणाशोद्यतम् ।।३४१।।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

पायाद्वोऽरुणविग्रहः शशिमुखः सम्यग्दधानो भुजैः,
पद्मं भीतिहरं रिपुक्षयकरीं शक्तिं शुभं कुक्कुटम् ।
रक्तालेपनवस्त्रदामरुचिरो नानाविभूषान्वितः,
सुब्रह्मण्यगणाधिपः शुभकरो भक्ताघविध्वंसकः ।।३४२।।

दक्षाधःकरयोराद्ये तदाऽद्यूर्द्ध्वयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

वह्न्यन्ते पूजिते पीठे पूर्वोक्ते पूजयेद्विभुम् ।
उक्तोपचारसहितं विधिना भक्तवत्सलम् ।।४४३।।

वह्नयन्ते इत्यनेन सत्वादिपूजानिषेधः प्रतीयते अन्यथोक्तिवैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।

अङ्गान्यादौ समभ्यर्च्य केसरेषु यथा पुरा ।
पूर्वादिदलमध्ये तु यजेदष्टाविमान्क्रमात् ।।३४४।।

स्यातां जयन्ताग्निवेशौ कृत्तिकापुत्रकस्तथा ।
स्तो भूतपतिसेनान्यौ[1] गुहाख्यो हेमशूलकः ।।३४५।।

विशालाक्षश्च सम्प्रोक्ताः शूलशक्तिकरा इमे ।
दलाग्रेषु च पूर्वादि यजेदेताननन्तरम् ।।३४६।।

देवसेनापतिं शक्तिं विघ्नं कुक्कुटमेव च ।
मेधां मयूरं वज्रं च द्विपं लोकेश्वरानतः ।।३४७।।
वज्रादीनि ततो बाह्ये देवमित्थं प्रपूजयेदिति ।

---

१. क. ०सोनान्यौ ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते 'शिरसि—ॐ अग्नये ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि—सुब्रह्मण्याय देवतायै नम' इति विन्यस्य, 'गां गीमि'त्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रागुक्तमर्चापीठ-मुद्धृत्याऽर्घादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत्केसरेषु षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य 'ॐ जयन्ताय नमः, ॐ अग्निवेशाय नमः, ॐ कृत्तिकापुत्राय नमः, ॐ भूतपतये नमः, ॐ सेनान्यै नमः, ॐ गुहाय नमः, ॐ हेमशूलाय नमः, ॐ विशालाक्षाय नमः,' ततोऽष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य 'ॐ सेनापतये नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ विघ्नाय नमः, ॐ कुक्कुटाय नमः, ॐ मेधायै नमः, ॐ मयूराय नमः, ॐ वज्राय नमः, ॐ द्विपाय नम' इति सम्पूज्य लोकेशाद्यर्चादि सर्वं प्राग्वत्समापयेत् । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं सर्पिषा वा पयोऽन्धसा ।
अयुतं जुहुयान्मन्त्री तर्प्पयेद् द्विजपुङ्गवान् ॥३४८॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री कुर्यात् कामान्यथेप्सितान् ।

अयं जपः कृतयुगपरः, कलावेच्चतुर्गुणमिति ।
षष्ठीदिने सुमधुरैर्भक्ष्यभोज्यैः प्रतोषयेत् ॥३४९॥

देवं देवधिया सम्यगर्च्चयेद् ब्रह्मचारिणः ।
सुब्रह्मण्यमनोः सम्यगुपास्तिं ये प्रकुर्व्वते ॥३५०॥

लक्ष्मीमायुश्च तेजश्च पुत्रपौत्रान्यशः पशून् ।
ऐहिकामुष्मिकान् भोगांल्लभते नाऽत्र संशयः ॥३५१॥

सारसङ्ग्रहे—

वक्रतुण्डगणेशस्य मनुं वक्ष्ये यथाविधि ।
सर्वपापक्षयकरं सर्व्वसौभाग्यदायकम् ॥३५२॥

राजवश्यकरं पुंसां वन्ध्यानां पुत्रदायकम् ।
अमृतं चतुरास्याग्निकामिकाश्रोत्रबिन्दुयुक् ॥३५३॥

टतृतीयोऽन्तयुक्तः पवनः कवचं तथा ।
षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतां कामदो मणिः ॥३५४॥

अमृतं वकारः, चतुरास्यः ककारः, अग्नी रेफः तयोर्योगे क्र, कामिका

तकारः, श्रोत्रं उकारः, बिन्दुरनुस्वारः, तेषामैक्येन तुं, टतृतीयो डकारः, अनन्त आकारस्तेन युक्तः डा इति, पवनः यकारः, कवचं हुँ। अत्र केचिद् दीर्घं कवचं वदन्ति। तथोक्तम्—

वक्रतुण्डकल्पे—

प्रादुर्बभूव मनसि मन्त्रराजः षडक्षरः।
तप्तचामीकरप्रख्यो वक्रतुण्डाय हूमिति ॥३५५॥

गणेश्वरपरामर्शिन्यामपि—

वक्रतुण्डाय कवचं दीर्घमेष षडक्षरः। इति।

अत्र यथागुरूपदेशं जपो विधेयः। तथा—

भार्गवो मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥३५६॥

देवता वक्रतुण्डोऽस्य सुरासुरनमस्कृतः।
विधाय मूलमन्त्रेण करशुद्धिं जितेन्द्रियः ॥३५७॥

षड्भिर्मन्त्रगतैर्वर्णैः षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।
भ्रूमध्यकण्ठहृदयनाभ्यन्ध्वाधारके क्रमात् ॥३५८॥

षडक्षराण्यणोर्न्यस्येत् सर्वेण व्यापकन्ततः।
विधाय देवं हृदये ध्यायेदेकाग्रचेतसा ॥३५९॥

रम्योद्भिन्नारुणतरमणिव्रातसंशोभिकान्ति,
सम्बिभ्राणं करकिशलयैः पाशमप्यङ्कुशाह्वम्।
साभीतीष्टं त्रिनयनयुतं रक्तमाल्यांशुकाढ्य-
मम्भोजोद्यत्पुटगतममुं संस्मरे वक्रतुण्डम् ॥३६०॥

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदाऽद्यधःस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम्। तथा—

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे वक्रतुण्डं गणेश्वरम्।
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं चतुर्द्वारयुतेन च ॥३६१॥

चतुरस्रत्रयेणाऽथ वेष्टितं चक्रमालिखेत्।
मध्ये देवं समभ्यर्च्य पुष्पान्तैरुपचारकैः ॥३६२॥

आदावङ्गानि सम्पूज्य यथास्थानं विशालधीः।
पूर्वादिदलमूलेषु शक्तीरष्टौ क्रमाद्यजेत् ॥३६३॥

विद्याख्या विश्वधात्री च भोगदा विघ्नघातिनी ।
निधिप्रदा च पापघ्नी तथा पुण्या शशिप्रभा ॥३६४॥
दलेषु च यजेत्तद्वदग्रिमाद्याः पुरोदिताः ।
द्वितीयेऽष्टदले तद्वद्वक्रतुण्डादिकान्यजेत् ॥३६५॥
चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।
प्राग्वीथीद्वये सम्यग्वक्रतुण्डार्च्चनेरिता ॥३६६॥ इति ।

गायत्री तु **सारसङ्ग्रहे**—

ङेऽन्तं तत्पुरुषं प्रोक्त्वा विद्महेपदमुच्चरेत् ।
वक्रतुण्डं चतुर्थ्यन्तं धीमहीति ततो वदेत् ॥३६७॥
तन्नो दन्ती समाभाष्य वदेदन्ते प्रचोदयात् ।
गायत्रीयं समाख्याता वक्रतुण्डगणेशितुः ॥३६८॥
स्नानकाले सदा जप्या मन्त्रिभिः कर्म्मसिद्धये ।

ङेऽन्तं तत्पुरुषायेति, सुगममन्यत् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्प्रातरुत्थानादिषडङ्गपूजान्ते प्रथमाष्टदलमूलेषु 'ॐ विद्यायै नमः, ॐ विश्वधात्र्यै नमः, ॐ भोगदायै नमः' एवं 'विघ्नघातिन्यै, निधिप्रदायै, पापघ्न्यै, पुण्यायै, शशिप्रभायै,' ततोऽष्टदलमध्येषु प्राग्वल्लक्ष्मीगणेशप्रकरणोक्त-सिद्धयष्टकं सम्पूज्य, द्वितीयेऽष्टदले प्राग्वदेकाक्षरप्रकरणोक्तान् वक्रतुण्डादिकान् सम्पूज्य लोकपालादि[1]-पूजादि प्राग्वत् सर्व्वं कुर्य्यादिति । तथा —

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
अष्टद्रव्यैः पुरा प्रोक्तैर्म्मधुराक्तैर्यथाविधि ॥३६९॥
तर्प्पणादि ततः कुर्याद् ब्राह्मणाराधनावधि ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ॥३७०॥
तर्प्पयेत्पूर्वमार्गेण वक्रतुण्डगणेश्वरम् ।

पूर्वमार्गेण महागणपतिप्रकरणोक्तप्रकारेण ।

चतुरश्रं हस्तमात्रं कुण्डं कुर्यात्तदग्रतः ॥३७१॥
आदधीत मथित्वाऽग्निमनूचानगृहाद्धरेत् ।

---

१. ख. लोकपालपूजादि ।

मथित्वा काष्ठतः, अनूचानः श्रोत्रियः ।

प्राणायामत्रयं कृत्वा मन्त्री कर्म्म समारभेत् ।।३७२।।

ततः पुरोक्तवत् कृत्वा मन्त्रन्यासं षडङ्गकम् ।

षडङ्गन्यास कृत्वा मन्त्रन्यासं कुर्य्यात् ।

गन्ध पुष्पादिकैरग्निं सम्पूज्य स्थापयेत्ततः ।।३७३।।

स्थापयेद्दीक्षोक्तविधिना नित्यहोमविधिना वा ।

कृशानुमध्ये तत्राऽथ नागयज्ञोपवीतिनम् ।
लम्बोदरं भास्करं तमेकदन्तं त्रिलोचनम् ।।३७४।।

पद्मासनसमारूढं चतुर्बाहुं सुवर्णभम् ।
किरीटहारकेयूराङ्गदालङ्कारभूषितम् ।।३७५।।

एवं सञ्चिन्त्य मनसा समावाह्य गणेश्वरम् ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य जलेनाऽग्निं प्रसिच्य च ।।३७६।।

षडर्णेन द्विठान्तेन जुहुयाच्च घृताहुतीः ।
अष्टाधिकं सहस्रं च ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।।३७७।।

सहस्राष्ट चतुर्थीषु पक्षयोरुभयोर्जपेत् ।

साष्टसहस्रमित्यर्थः ।

शतं हुनेदपूपैश्च वत्सराल्लभते धनम् ।।३७८।।

मध्याह्नकाले नित्यं हि तदग्रे प्रजपेन्मनुम् ।
सहस्रं त्रिशतं वाऽथ शतमष्टोत्तरं सुधीः ३७९।।

अष्टोत्तरमिति स्थानत्रयेऽप्यन्वेति ।

अचिरेणैव महतीं लक्ष्मीं प्राप्नोत्ययत्नतः ।
प्रसन्नताऽत्र मनसस्तुष्टिरल्पाऽशिता तथा ।।३८०।।

स्वापवैमुख्यता चाऽपि स्वप्ने द्विरददर्शनम् ।
एतानि मन्त्रसिद्धेर्हि चिह्नान्युक्तानि मन्त्रिभिः ।।३८१।।

पूर्वोक्तसिद्धोदनेन त्रिमासं त्रिशतं हुनेत् ।
महानिधीनां भवनं भवेद्वैश्रवणोऽपरः ॥३८२॥

गुडाक्तैः पृथुकैर्नारिकेलैर्म्मरिचसंयुतैः ।
अग्नौ सहस्रं जुहुयात् स मन्त्री धनवान् भवेत् ॥३८३॥
शुभशालिमयैश्चूर्णैः समरीचैः ससैन्धवैः ।

शालिमयैः शालितण्डुलचूर्णमयैः ।

सजीरकैर्बहुगुडैः शुभैरतिघृतप्लुतैः ॥३८४॥

अपूपैर्जुहुयान्मन्त्री गणेशस्य हि सन्निधौ ।
सहस्रमात्रं स लभेत् महतीमचिराद्रमाम् ॥३८५॥

साध्यनामार्णपुटितमनुना जुहुयात् सुधीः ।
अपामार्गसमिद्भिर्वा पक्वैः पानसजैः फलैः ॥३८६॥

सहस्रं कदलैर्व्वाऽथ नरं नारीं वशं नयेत् ।
लाजाभिर्जुहुयादग्नौ सहस्रं कन्यकाप्तये ॥३८७॥

सहस्रमाज्याहुतीनां हुनेत् क्षीरहुतीरपि ।
सहस्रं रोगशान्त्यर्थं मन्त्रशास्त्रविशारदः ॥३८८॥

दूर्वाहुतीनां जुहुयाल्लक्षं मृत्युञ्जयो भवेत् ।
ब्रह्मवृक्षोत्थसमिधो मधुरत्रयलोलिताः ॥३८९॥

सहस्रं जुहुयान्मन्त्री मासाच्छत्रून् जयेद् ध्रुवम् ।
बिभीतकोत्थसमिधां सहस्रं साष्टकं निशि ॥३९०॥

लोहिताक्तं श्मशानाग्नौ जुहुयान् मारयेद्रिपुम् ।
भूमौ शत्रुस्वरूपं च विलिख्याऽस्योदरेऽनलम् ॥३९१॥

प्रज्वाल्य सिद्धार्थवरैः सहस्रं जुहुयात् सुधीः ।
तं मारयेत् सप्तदिनान्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३९२॥

कालमेघसमानाभं गणेशं निजशुण्डया ।
रिपुं गृहीत्वा वडवामुखे वह्नौ महोत्कटे ॥३९३॥

प्रक्षिपन्तं गणपतिं ध्यात्वाऽमुं प्रजपेन्मनुम् ।
सहस्रं त्रिदिनेनाऽसौ शत्रुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥३६४॥

समुद्रगां नदीं प्राप्य गृहीत्वाऽञ्जलिना जलम् ।
सहस्रकृत्वोऽभिमन्त्र्य परिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धनि ॥३६५॥

अनेन विधिना मन्त्री पापौघं नाशयेद् ध्रुवम् ।
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थमालम्ब्य त्रिसहस्रकम् ॥३६६॥

जपेन्मनुं गणं ध्यायन् दोषान् ग्रहभवान् हरेत् ।
वेतसोत्थसमिद्धोमात्[1] सहस्राद्वृष्टिमाप्नुयात् ॥३६७॥

धान्यार्थी जुहुयाद्धान्यैरन्नार्थोऽन्नं हुनेद् ध्रुवम् ।
कमलैरुत्पलैर्वाऽपि होमो वस्त्रप्रदो मतः ॥३६८॥

क्षेत्रादिकांक्षी पललैर्गुडाभ्यक्तैर्हुनेत् सुधीः ।
समर्च्चयित्वा गणपं हरिद्रां सैन्धवं वचाम् ॥३६६॥

निष्कार्द्धार्द्धप्रमाणानि सम्पिष्यैतानि निःक्षिपेत् ।
प्रसूत्युन्मितगोमूत्रे सहस्रेणाऽभिमन्त्रयेत् ॥४००॥

स्नातामृतुस्नानदिने विशुद्धां शुक्लवाससम् ।
पाययैताश्च सा वन्ध्या सूते प्राग्वत्सरात् सुतम् ॥४०१॥

उपोष्य सोमग्रहणे भास्करग्रहणेऽथ वा ।
कपिलाज्यं पलं चूर्णं वचायाश्च पलार्द्धकम् ॥४०२॥

एतत्सहस्रं सञ्जप्तं समस्तं प्रपिबेत्सुधीः ।
अवाप्य मेधां महतीं कवितां लभते ध्रुवम् ॥४०३॥

गोचर्ममात्रं भूदेशमुपलिप्यांऽशुकावृतम् ।
कृत्वाऽत्र स्थापयेत्कुम्भमर्चितं चन्दनादिभिः ॥४०४॥

तस्योपरिष्टात् कपिलाघृतपूर्णं शरावकम्[2] ।
घृतं तत्र प्रतिष्ठाप्य ज्वालयेद्दीपमुत्तमम् ॥४०५॥

---

१. क. चेतसोत्थ० । २. क. शवावकम् ।

तत्र विघ्नेशमावाह्य पूजयेत्कुसुमादिभिः ।
कुमारीं वा कुमारं वा दीपस्याऽग्रे निधाय च ॥४०६॥

जपेत मन्त्रप्रवरमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
ततः पृष्टा कुमारी वा कुमारो वा ब्रवीति तत् ॥४०७॥

मनोगतं हि सकलं भविष्यं भूतमेव च ।
वर्त्तमानं मनोरस्य प्रसादान्नाऽत्र संशयः ॥४०८॥इति।

सारसङ्ग्रहे—

मन्त्रान्तरमथो वक्ष्ये वक्रतुण्डगणेशितुः ।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ॥४०९॥

झिण्टीशेन समायुक्तो यपूर्वः कतुरीयकः ।
सद्याक्रान्तो धरा ब्रह्माऽनन्तो वाली भृगुस्तथा ॥४१०॥

खड्गीशो दीर्घसंयुक्तो वियन्नारायणान्वितम् ।
षडक्षरोऽयमाख्यातः सर्व्ववश्यफलप्रदः ॥४११॥

झिण्टीश एकारः, तेन युक्तो यपूर्वो मकारस्तेन मे इति, कतुरीयो घकारः, सद्य ओकारस्तेन घो इति, धरा लकारः, ब्रह्मा ककारः, अनन्त आकारस्तेन ल्का इति, वाली- यः, भृगुः सकारः, खड्गीशो वकारः, दीर्घ आकारस्तेन स्वा, वियत् हकारः, नारायण आकारस्तेन हा इति । तथा—

भार्गवो मुनिरस्य स्यादनुष्टुप्छन्द ईरितम् ।
वक्रतुण्डगणेशोऽस्य देवता देववन्दितः ॥४१२॥

मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि षड्भिः कुर्याद्यथा पुरा ।
ध्यानपूजादिकं सर्व्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत् ॥४१३॥

प्रयोगः सुगमः । तथा—

रायस्योषपदं प्रोक्त्वा वदेत् स्य-दयिता-नि च ।
धिदो-रत्नपदं चोक्त्वा दो-मत-श्च ततो वदेत् ॥४१४॥

[1]रक्षोहणोपदान्ते वो वलगेति पदं वदेत् ।
हनोपदान्ते सम्प्रोक्तो मन्त्रराजः षडक्षरः ॥४१५॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्र आथर्व्वणिक ईरितः ।

---

१. क. रक्षोहणे० ।

रायस्पोष इति स्वरूपं, स्य-दयिता-नि-स्वरूपं, धिदो-रत्न-स्वरूपं, दो-मत-स्वरूपं, रक्षोहणो-स्वरूपं, बलग-स्वरूपं, हनो-स्वरूपं, षडक्षरः प्रथमोक्तः । तथा—

ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं ध्यानपूजादि पूर्ववत् ॥४१६॥

प्रथमोक्तं षडक्षरवत् । तथा—

जपेदर्क्कसहस्राणि जुहुयात्तद्दशांशतः ।
हविषा घृतसिक्तेन तदन्ते तोषयेद् गुरुम् ॥४१७॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः ।

इष्टं काम्यं, तदपि षडक्षरोक्तमिति ।

सारसङ्ग्रहे—

उच्छिष्टस्य गणेशस्य विधानमभिधीयते ।
हस्तिशब्दं समुच्चार्य्य पिशाचीति ततो वदेत् ॥४१८॥

लिखेपदं समुच्चार्य वह्निजायान्तमुद्धरेत् ।
नवाक्षरोऽयमाख्यात उच्छिष्टस्य गणेशितुः ॥४१९॥

वह्निजाया स्वाहा । अन्यत्स्वरूपम् । तथा—

ऋषिः कक्कोलनामाऽस्य विराट्छन्द उदाहृतम् ।
उच्छिष्टगणपो देवः सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥४२०॥

द्वाभ्यां हृदयमाख्यातं त्रिभिः शिर उदाहृतम् ।
द्वाभ्यां शिखा समाख्याता वर्माऽक्षिभ्यां समीरितम् ॥४२१॥

समस्तेनाऽस्त्रमाख्यातं पञ्चाङ्गविधिरीरितः ।
ध्यानार्च्चनविधानं च मन्त्री पूर्ववदाचरेत् ॥४२२॥

अत्र चकारात् पुरश्चरणमपि पूर्वमन्त्रोक्तमेव प्राप्यते; तेन वक्रतुण्डषडक्षरप्रकरणे 'वर्णलक्ष जपेन्मन्त्रमि'त्युक्तम्, तदत्राऽपि लभ्यते । तेनाऽस्य मन्त्रस्य नवलक्षजपः पुरश्चरणमित्यवगम्यत इति । प्रयोगादिकं सर्वं सुगमम् । तथा—

काम्यकर्माणि वक्ष्यामि स्तम्भे द्वेषे च मोहने ।
मारणे च वशीकारे सर्व्वाकर्षणकर्मणि ॥४२३॥

एतत्सर्वं करोत्येव सुप्रीतो गणनायकः ।
प्रतिमां कारयेद्धीमान्निम्बकाष्ठमयीं शुभाम् ॥४२४॥

साध्याङ्गुष्ठप्रमाणां च गणेशस्य महात्मनः ।
स्पृष्ट्वा तं प्रजपेन् मन्त्रं काम्यसिद्धिस्ततो भवेत् ॥४२५॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां कृष्णपक्षस्य मन्त्रवित् ।
उच्छिष्टो रात्रिमध्ये तु जपेन्मन्त्रमिमं शुभम् ॥४२६॥

वाञ्छितो वशमायाति साधकस्य न संशयः ।
भूर्जपत्रे समालिख्य साध्यनाम यथाविधि ॥४२७॥

मन्त्रेण वेष्टितं कृत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
पादेनाऽऽक्रम्य तत्पत्रं हठाकृष्टिरियं मता ॥४२८॥
लिखित्वा पूर्ववत् पत्रं पूजयित्वा विधानतः ।

पूजयित्वा गणपतिमिति शेषः ।

साध्यं स्मृत्वा जपेन्मन्त्रं सर्वलोकं वशं नयेत् ॥४२९॥

धारयेन् मस्तके यन्त्रं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
राजानं राजपत्नीं चाऽऽकर्षयेत्तत्क्षणात् सुधीः ॥४३०॥

यन्त्रं मूलमन्त्रवेष्टितसाध्यनामगर्भं भूर्जपत्रम् ।

ताम्बूलपत्रपुष्पाणि वस्त्राण्याभरणानि[1] च ।
फलमूलादिवस्तूनि समादाय जपेन्मनुम् ॥४३१॥

एकविंशतिवाराणि दद्यादिष्टाय नाऽन्यथा ।
सर्वलोकवशङ्करः[2] प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥४३२॥

श्रीखण्डधूपदानेन राजानं वशमानयेत् ।
समिधो निम्बकाष्ठस्य कटुतैलसमन्विताः ॥४३३॥
काकपक्षसमायुक्ता हुत्वा मन्त्री यथाविधि ।

यथाविधि चिताग्नौ ।

रिपुं च परसेनां च समुच्चाटयति क्षणात् ॥४३४॥

---

१. क. वस्त्राभरणानि । २. ख. सर्वलोकवशीकारः ।

उलूककाकयोः पक्षांस्तद्वसारक्तसंयुतान् ।
श्मशानाग्नौ तु जुहुयाद्विद्वेषः स्निग्धयोः क्षणात् ॥४३५॥

शत्रुपादरजोयुक्ता चक्रिहस्तमृदं बुधः ।
श्मशानभस्मसंयुक्तामुद्वर्त्तनमलान्विताम् ॥४३६॥

उद्वर्त्तनमलं शत्रुशरीरस्य ।

गृहीत्वा पुत्तलीं कुर्यात् सर्वावयवशोभिताम् ।
तस्या हृदि लिखेन्नाम मूलमन्त्रेण वेष्टितम् ॥४३७॥

कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां तु विषरक्ताढ्यपात्रके ।
स्थापयित्वा जपेन्मन्त्र सम्यगेकाग्रमानसः ॥४३८॥

म्रियतेऽरिर्न सन्देहो देवेनाऽपि सुरक्षितः ।
चितायां दग्धदम्पत्योर्भस्माऽदाय यथाविधि ॥४३९॥

रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च भूर्ज्जे नाम समालिखेत् ।
वेष्टितं मूसमन्त्रेण प्राणस्थापनमाचरेत् ॥४४०॥

साध्यं स्मृत्वा जपेन्मन्त्रं सम्यगष्टोत्तरं शतम् ।
द्विष्टयोर्जनयोः सम्यक् स्नेहो भवति तत्क्षणात् ॥४४१॥

सारसङ्ग्रहे—

क्रां क्रीं पदं समुच्चार्य्यं ह्रां ह्रीं च पदमुच्चरेत् ।
हुंकारं सम्यगुच्चार्य्य घे घे शब्दमथोच्चरेत् ॥४४२॥

फट्कारं स्वाहया युक्तं प्रणवाद्योऽयमीरितः ।
एकादशाक्षरः सम्यङ् मूलमन्त्रो गणेशितुः ॥४४३॥
ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं ध्यानपूजादिकं तथा । इति ।

तथा— एकदंष्ट्रं चतुर्थ्यन्तं वदेद्धस्तिमुखं ततः ॥४४४॥
लम्बोदरपदं ङेऽन्तमुच्छिष्टेति पदं ततः ।
आत्मनेऽङ्कुशबीजं च ब्लूंकारं भुवनेश्वरीम् ॥४४५॥

ह्रीं घे घे पदमुच्चार्य्य स्वाहाकारं समुच्चरेत् ।
सप्तविंशतिभिर्व्वर्णैर्मन्त्रः प्रोक्तो गणेशितुः ॥४४६॥

तृतीयचतुर्थपदयोर्विसन्धिः । अन्यत्सुगमम् । तथा—

ऋष्यादिध्यानपूजादि यथापूर्वं समाचरेत् ।

यथापूर्वं वक्रतुण्डगणेशषडक्षरवत् । तथा—

ॐकारं विलिखेदादौ नमो भगवते पदम् ।
एकदंष्ट्राय[1] चाऽऽभाष्य हस्त्यन्ते मुखशब्दतः ॥४४७॥

लम्बोदरपदं ङेऽन्तमुच्छिष्टेति पदं ततः ।
महात्मनेपदं प्रोक्त्वा वदेदङ्कुशबीजकम् ॥४४८॥

ब्लूंकारं मायया युक्तं घे घे च समुद्धरेत् ।
स्वाहान्तो मनुराख्यातः सम्यक् षट्त्रिंशदर्णकः ॥४४९॥

उच्छिष्टेत्यत्र विसन्धिः ।

ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं षड्बीजैरङ्गमीरितम् ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्वोक्तमाचरेत् ॥४५०॥

इति मन्त्रोद्धारः सुगमः । षड्बीजैरिति—क्रों हृदयं, ब्लूं शिरः, ह्रीं शिखा, हुं कवचं, घे नेत्रं, घे अस्त्रम्, अन्यत्सुगमम् । तथा—

पूजान्ते ह्यनया स्तुत्या स्तुवीत गणनायकम् ।
नमामि देवं सकलार्थदं तं सुवर्णवर्णं भुजगोपवीतम् ।
गजाननं भास्करमेकदन्तं लम्बोदरं वारिभवासनञ्च ॥४५१॥

केयूरिणं हारकिरीटजुष्टं चतुर्भुजं पाशवराभयानि ।
सृणिं वहन्तं गणपं त्रिनेत्रं सचामरं स्त्रीयुगलेन युक्तम् ॥४५२॥

षडक्षरात्मानमनल्पभूषं मुनीश्वरैर्भार्गवपूर्वकैश्च ।
संसेवितं देवमनाथकल्पद्रुमं मनोज्ञं शरणं प्रपद्ये ॥४५३॥

वेदान्तवेद्यं जगतामधीशं देवादिवन्द्यं सुकृतैकगम्यम् ।
स्तम्बेरमास्यं नवचन्द्रचूडं विनायकं तं शरणं प्रपद्ये ॥४५४॥

भवाख्यदावानलदह्यमानं भक्तं स्वकीयं परिषिञ्चते यः ।
गण्डस्रुताम्भोभिरनन्यतुल्यं वन्दे गणेशं च तमालनीलम् ॥४५५॥

शिवस्य मौलाववलोक्य चन्द्रं स्वशुण्डया मुग्धतया स्वकीयम् ।
भग्नं विषाणं परिभाव्य चित्ते आक्रष्टुमिच्छन् गणपोऽवतान्नः ॥४५६॥

---

१. ख. एकदंष्ट्राय ।

पितुर्जटाजूटतटे विलोक्य भागीरथीं तत्र कुतूहलेन ।
विहर्त्तुकामः स महीध्रपुत्र्या निवारितः पातु सदा गजास्यः ॥४५७॥

लम्बोदरो देवकुमारसङ्घैः क्रीडन् कुमारं जितवान्निजेन ।
करेण चोत्तोल्य ननर्त्त रम्यं दन्तावलास्यो भवतः स पायात् ॥४५८॥

आगत्य योऽब्धौ हरिनाभिपद्मं ददर्श तत्र स्वकरेण तच्च ।
उद्धर्त्तुमिच्छन्विधिचाटुवाक्यं श्रुत्वा मुमोचाऽवतु नो गणेशः ॥४५९॥

निरन्तरं संस्रुतदानपङ्के लग्नां[1] सुगुञ्जद्भ्रमरावलीञ्च ।
स्वश्रोत्रतालैरपसारयन्तं स्मरेद्[2] गजास्यं निजहृत्सरोजे ॥४६०॥

विश्वेशमौलिस्थितजह्नुकन्याजलं गृहीत्वा निजपुष्करेण ।
हरं सलीलं पितरं स्वकीयं प्रपूजयन्हस्तिमुखः स पायात् ॥४६१॥

स्तम्बेरमास्यं घुसृणाङ्गरागं सिन्दूरपूरारुणकान्तकुम्भम् ।
कुचन्दनालिप्तकरं गणेशं ध्यायेत्स्वचित्ते सकलेष्टद तम् ॥४६२॥

स भीष्ममातुर्निजपुष्करेण जलं समादाय कुचौ स्वमातुः ।
प्रक्षालयामास षडास्यपीतौ स्वार्थं मुदेऽसौ कलभाननोऽस्तु ॥४६३॥

तं वामनाङ्गं शिशुभावमाप्तं केनाऽपि सत्कारणतो धरित्र्याम् ।
वक्तारमाद्यं निगमादिकानां लोकैकवन्द्यं प्रणमामि विघ्नम् ॥४६४॥

आलिङ्गितं चारुरुचा मृगाक्ष्या सम्भोगलोलं मदविह्वलाङ्गम् ।
विघ्नौघविध्वसनसक्तमेकं नमामि कान्तं द्विरदाननं तम् ॥४६५॥

हेरम्ब उद्यद्रविकोटिकान्तः पञ्चाननेरप्यविलम्बितांसः ।
मुनीन् सुरान् भक्तजनांश्च सर्वान् सम्पालयन् पातु सदा गजास्यः ॥४६६॥

द्वैपायनव्यासमुनेश्च येन स्वदन्तकोटया निखिलं लिखित्वा ।
दत्तं पुराणं शिशुमिन्दुमौलेस्तपोभिरुग्रं मनसा स्मरामि ॥४६७॥

क्रीडाप्रवृत्ते जलधाविभास्ये वेलां जले लङ्घयति प्रभीताः ।
विचिन्त्य कल्पस्य सुरास्तदा तं विश्वेश्वरं वाग्भिरभिष्टुवन्ति ॥४६८॥

वाचां निमित्तं ह्यनिमित्तमाद्यं[3] पदं त्रिलोक्या ह्यपदं स्तुतीनाम् ।
सर्वेशवन्द्यं न च तस्य वन्द्यं स्थाणोः परं रूपमसौ स पायात् ॥४६९॥

---

१. ख. लग्लां । २. क. स्मरे । ३. क. ह्यनिर्मित्ति० ।

इमां स्तुतिं यः पठतीह भक्त्या समाहितः प्रातरतीवशुद्धः ।
संसेव्यते चेन्दिरया नितान्तं दारिद्र्यसम्मोहविहीन एषः ॥४७०॥इति[1]

॥ अथ हरिद्रागणेशकवचम् ॥

शृणु वक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिकरं प्रिये ।
पठित्वा पाठयित्वा च मुच्यते सर्वसङ्कटात् ॥४७१॥

अज्ञात्वा कवच देवि गणेशस्य मनुं जपेत् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥४७२॥

ॐ आमोदश्च शिरः पातु प्रमोदश्च शिखोपरि ।
सम्मोदो भ्रूयुगे पातु भ्रूमध्ये च गणाधिपः ॥४७३॥

गणक्रीडश्चक्षुर्युग्मं नासायां गणनायकः ।
गणक्रीडान्वितः पातु वदने सर्वसिद्धये ॥४७४॥

जिह्वायां सुमुखः पातु ग्रीवायां दुर्मुखः सदा ।
विघ्नेशो हृदये पातु विघ्ननाशश्च वक्षसि ॥४७५॥

गणानां नायकः पातु बाहुयुग्मे सदा मम ।
विघ्नकर्त्ता च उदरे विघ्नहर्ता च लिङ्गके ॥४७६॥

गजवक्त्रः कटीदेशे एकदन्तो नितम्बके ।
लम्बोदरः सदा पातु गुह्यदेशे ममाऽरुणः ॥४७७॥

व्यालयज्ञोपवीती मां पातु पादयुगे सदा ।
जापकः सर्वदा पातु जानुजङ्घे गणाधिपः ॥४७८॥

हारिद्रः सर्वदा पातु सर्वाङ्गे गणनायकः ।
य इदं प्रपठन्नित्यं गणेशस्य महेश्वरि ॥४७९॥

कवच सर्वसिद्धाख्यं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
सर्वसिद्धिकरं साक्षात् सर्वपापविमोचनम् ॥४८०॥

सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात् सर्वपापविमोचनम् ।
सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात् सर्वशत्रुक्षयङ्करम् ॥४८१॥

---

१. ख. इति गणपतिस्तोत्रम् ।

ग्रहपीडा ज्वरा रोगा ये चाऽन्ये गुह्यकादयः ।
पठनाद्धारणादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात् ।।४८२।।

धनधान्यकरं देवि कवचं सुरपूजितम् ।
समो नाऽस्ति महेशानि त्रैलोक्ये कवचस्य च ।।४८३।।

हारिद्रचस्य महेशानि कवचस्य च भूतले ।
किमन्यैरसदालापैर्यत्राऽऽयुर्व्ययतामियात् ।।४८४।।

इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ विंशस्तरङ्गः ।।२०।।

———

[एकविंशस्तरङ्गः]

।। अथ सौरमन्त्राणां विधानमुपदिश्यते ।। तत्र

सारसङ्ग्रहे—

अथोच्यन्ते सौरमन्त्राः सर्वागमसुगोपिताः ।
आयुरारोग्यधनदाः कीर्त्तिदाः पुत्रपौत्रदाः ।।१।।

सर्वसौभाग्यजनकाः सर्वापन्नाशकाः सदा ।
अष्टादश त्वचो रोगास्तेषां नाशकराश्च ये ।।२।।

त्रिलोक्यां विश्रुता नित्यं नारदाद्यैश्च सेविताः ।
तथा गन्धर्वसिद्धौघविद्याधरनिषेविताः ।।३।।

सर्वरोगहराः सर्वे सर्वोपद्रवनाशकाः ।
धमार्थकाममोक्षाप्तितीर्थरूपाः शुभोदयाः ।।४।।

वश्याकर्षणसंस्तम्भविद्वेषोच्चाटमारणे ।
शक्ताः स्मरणमात्रेण साधकेन सुसाधिताः ।।५।।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानदृष्टिप्रदायकाः ।
वाक्सिद्धिखेचरीसिद्धिपादुकासिद्धिदायकाः ।।६।।

किम्बहूक्तेन विधिना साधिताः सर्वकामदाः ।
प्रोच्यतेऽभीष्टफलदस्तेष्वाद्योऽष्टाक्षरो मनुः ॥७॥

प्रणवो घृणिसर्गान्ते चन्द्रोऽर्घीशसमन्वितः ।
ईरोऽग्निशिखरोऽनन्तो दः ससूक्ष्मस्त्य-संयुतः ॥८॥
अष्टवर्णो मनुर्भानोरिष्टदः परिकीर्त्तितः ।

प्रणवः ॐकारः, घृणि-स्वरूपं, सर्गो विसर्गस्तेन घृणिः, चन्द्रः सकारः, अर्घीश ऊकारस्तेन सू, ईरः यकारः, अग्निः रेफस्तेन र्यं इति, अनन्तः आकारः, द-स्वरूपं, सूक्ष्म इ तेन दि, त्य-स्वरूपं, अत्र यकाराकारयोर्न सन्धिः ।

शारदातिलकेऽपि—

तारो घृणिर्भृगुः पश्चाद्वामकर्णविभूषितः ।
वह्न्यासनो मरुच्छेषः सनेत्रोऽत्रिस्त्य-पश्चिमः ॥९॥
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो भानोरभिमतप्रदः ।

तारः प्रणवः, घृणिरिति स्वरूपम्, भृगुः सकारः, वामकर्ण ऊकारः, मरुत् यकारः, वन्ह्यासनः रेफासनः, शेष आकारः, अत्रिर्दकारः, सनेत्रः इकारसहितः, त्यपश्चिमः त्य इत्यन्तिमं अक्षरमित्यर्थः[1] । अस्मिन्मन्त्रे शूद्रादेर्नाऽधिकारो वैदिकत्वात् । तथा च **तैत्तिरीयशाखायां नारयणोपनिषदि** 'घृणिरिति द्वेऽक्षरे सूर्य इति त्रीणि आदित्य इति त्रीणि एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं परमं पदं श्रियाभिषिक्तं य एवं वेद श्रिया हैवाभिषिच्यत' इति । **शारदातिलकटीकायामस्य** मन्त्रस्याऽन्येऽपि भेदा उक्ताः, यथा **केचन** श्रीबीजान्तमाहुस्तन्मते प्रणवो बीजम्, **अन्ये** श्रीकामहृल्लेखापुटितं 'प्रयच्छ मे लक्ष्मीमि'त्यनेन पल्लवितमाहुः । रं बीजं शक्तिः[2] । **केचन** शक्तिबीजाद्यं श्रीबीजान्तमाहुः । तन्मते प्रणवो बीजं, माया शक्तिः । तदुक्तम्—

श्रीबीजान्तः सम्प्रदाये मूलमन्त्रस्तु मानुषः ।
अयं श्रीकामहृल्लेखासम्पुटोऽन्ते प्रयच्छ मे ॥१०॥

लक्ष्मीमित्थं पल्लवितः शङ्कराचार्यसम्मतः ।
हृल्लेखापूर्वकोऽन्तः श्रीविश्वरूपमते स्थितः ॥११॥

---

१. क. अरमित्यर्थः । २. ख. यं शक्तिः ।

सारसङ्ग्रहे—

ऋषिस्तु देवभागाख्यश्छन्दो गायत्रमिष्यते ।
श्रीसूर्यो देवता प्रोक्त ऐहिकामुष्मिकप्रदः ॥१२॥

तेजो वदेत्ततो ज्वालामणि हुं फट् द्विठान्तकः ।
हृन्मन्त्रः सत्यपूर्वोऽयं ब्रह्मपूर्वः शिरोमनुः ॥१३॥

विष्णुपूर्वः शिखामन्त्रो वर्म्माणु रुद्रपूर्वकः ।
अग्निपूर्वो नेत्रमनुः सर्व्वपूर्वोऽस्त्रमन्त्रकः ॥१४॥

'सत्यतेजोज्वालामणि हुं फट् स्वाहे' त्यादिप्रयोगः ।

प्रपञ्चसारेऽप्येवमेव—

सत्यब्रह्मविष्णुरुद्रैः साग्निभिः सर्वसंयुतैः ।
तेजोज्वालामणि हुं फट् स्वाहान्तैरङ्गमाचरेत् ॥१५॥

इत्युक्तः । **शारदातिलके** तु सत्यादीनि चतुर्थ्यन्तान्युक्तानि । **यथा—**

सत्याय हृदयं प्रोक्तं ब्रह्मणे शिर ईरितम् ।
विष्णवे स्याच्छिखा वर्म रुद्राय परिकीर्त्तितम् ॥१६॥

अग्नये नेत्रमाख्यातं सर्वायाऽस्त्रमुदाहृतम् ।
तेजोज्वालामणि हुं फट् द्विठान्ताः पृथगीरिताः ॥१७॥

एतन्मते 'सत्याय तेजोज्वालामणि हुँ फट् स्वाहा हृदयाय नम' इत्यादिप्रयोगः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

सत्याद्यांश्च चतुर्थ्यन्तान् केचिदिच्छन्ति सूरयः ।
सत्यतेजःपदं केचिच्चतुर्थ्यन्तं प्रचक्षते ॥१८॥

तेन 'सत्यतेजसे ज्वालामणि हुं फट् स्वाहे' त्यादिप्रयोगोऽपि । **अत्र यथा**-गुरूपदेशं न्यासो विधेयः ।

सारसङ्ग्रहे—

विधायैवं षडङ्गानि मूर्त्तीर्न्यस्येद्यथाक्रमम् ।
मस्तकाननहृद्गुह्यपाददेशेषु देशिकः ॥१९॥

पञ्चह्रस्वैः सहाऽदित्यो रविभानू च भास्करः ।
सूर्यस्ततश्च मन्त्रार्णान् प्रणवाद्यान्न्यसेद् बुधः ॥२०॥
शीर्षाक्षिकण्ठहृत्कुक्षिनाभिलिङ्गाङ्घ्रिषु क्रमात् ।

ह्रस्वैरक्लीबैरोकाराद्यकारान्तैः पञ्चभिः । शारदातिलके 'ह्रस्वैः सद्यादि-पञ्चभिरि'त्युक्तेः ।

सारसङ्ग्रहे—

ङेऽन्तं सप्ततुरङ्गं तु विद्महे पदमुच्चरेत् ।
सहस्रकिरणायेति धीमहीति पदं ततः ॥२१॥

तन्नो रविरिति प्रान्ते चोदयादिति सञ्चरेत् ।

तेन सप्ततुरङ्गाय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नो रविः प्रचोदयात् ।

जप्या सर्वार्कमन्वादौ गायत्र्येषा दिनेशितुः ॥२२॥

भास्करमङ्गदकुण्डलभूषं चारुतरारुणपङ्कजसंस्थम् ।
अब्जयुगाभयदानकरं तं रक्ततनुं प्रभजेऽयुगनेत्रम् ॥२३॥

दानं वरम् ।

शारदातिलकेऽपि—

रक्ताब्जयुग्माभयदानहस्तं केयूरहाराङ्गदकुण्डलाढ्यम् ।
माणिक्यमौलिं दिननाथमीडे बन्धूककान्तिं विलसत्त्रिनेत्रम् ॥२४॥

ऊर्द्ध्वकरयोः पद्मे, वामाद्यधस्थयोरभयदाने इत्यायुधध्यानम् ।

सारसङ्ग्रहे—

अग्निकोणे प्रभूतं च विमलं नैर्ऋते यजेत् ।
सारं वायव्यकोणे च समाराध्यं तथैशके ॥२५॥
सुखं परमपूर्वं च यजेन्मध्ये तु मन्त्रवित् ।

अत्र **केचित्** पूर्वं मण्डूकादिसिंहासनान्तमुक्तप्रकारेण सम्पूज्य प्रभूतादीन् धर्माधर्मादिस्थानेषु पूजयेत् इति वदन्ति । 'पीठाङ्घ्रीन् कल्पयेदेतान् हृदा मध्ये विदिक्षु चे'ति **नारायणीयवचनात्**, 'ईशानान्ते च मध्येऽपि विदिक्ष्वेतान् प्रपूजयेदि'ति **प्रयोगसारवचनाच्च** । एतन्न सर्वसम्मतम् । यतः—

प्रयजेदथ प्रभूतां विमलां साराह्वयां समाराध्याम् ।
परमसुखामप्यग्न्यादिष्वङ्घ्रिषु पीठक्लृप्तेः प्राक् ॥२६॥

इति **श्रीशङ्कराचार्योक्तेः** ।

पीठस्य क्लृप्तेः प्रथमं दिक्षु मध्ये च संयजेत् ।
प्रभूतं विमलं सारं समाराध्यमनन्तरम् ॥२७॥
परमादिसुखं पीठं स्वबिम्बान्तं प्रकल्पयेत् ।

इति **शारदातिलकोक्तेश्च** पीठकल्पनात् प्रागेव प्रभूतादिपूजनम्, तदनु धर्माधर्मादिपूजनं च । पीठकल्पनं तु सर्वत्र धर्मादिभिरेव । 'धर्मादिकल्पिते पीठे' इति श्रवणाद्धर्मादियुक्तस्यैव योगपीठत्वात् । पूर्वोक्त**श्रीशङ्कराचार्य**वचने स्त्रीलिङ्ग-निर्देशस्तु भुवनेश्यर्क्कप्रकरणात् ।

सारसङ्ग्रहे—

स्वबिम्बपश्चिमे पीठे पूजिते नव पूजयेत् ।
दलमूलेषु पूर्वादि मध्ये च विधिपूर्वकम् ॥२८॥

दीप्तासूक्ष्मे जयाभद्रे विभूतिर्विमलान्विता ।
अमोघा विद्युता चाऽन्या नवमी सर्वतोमुखी ॥२९॥
पीठशक्तीः क्रमादेता ह्यग्निवर्णाः सुभूषिताः । इति ।

स्वबिम्बपश्चिमे इति—सोमाग्निमण्डले सम्पूज्य, सत्वादिपरतत्वान्त-मभ्यर्च्य पीठशक्तीरर्चयेदित्यर्थः ।

शारदातिलके तु—पीठशक्तीनां 'दीप्तदीपशिखाकारा' इति ध्यानमुक्तम् ।

प्रयोगसारेऽपि—

दीप्तदीपशिखाकारा ध्येयाः स्युर्नवशक्तयः । इति ।

सारसङ्ग्रहे—

ह्रस्वत्रयक्लीबवर्ज्या अचो वह्नीन्दुभूषणाः ।
बीजान्यासां क्रमादाहुर्मन्त्रशास्त्रविशारदाः ॥३०॥

ह्रस्वत्रयं—अ इ अं, क्लीबाः—ऋ ॠ, ऌ ॡ, अचः—स्वराः, वह्नी

रेफः, इन्दुः बिन्दुः, तेन 'रां रीं रुं रूं रें रैं रों रौं रः' इति नवबीजानि भवन्ति । उक्तञ्च महाकपिलपञ्चरात्रे—

आद्योपान्त्यं तृतीयं च त्यक्त्वा चैव नपुंसकम् ।
भेदयेन्नवधा यान्तं स्वरैरेभिर्यथाक्रमम् ।।३१।।
बिन्दुयुक्तानि बीजानि शक्तीनामुद्धृतानि वै ।

यान्तः रेफः । प्रयोगसारनारयणीययोस्तु—'आद्यमन्त्यं[1] तृतीयं च त्यक्त्वा चैव नपुंसकम्' इत्युक्तम् । तेन 'रां रीं रुं रूं रें रैं रों रौं रं' इति नव बीजानि । अत्रैतानि यथागुरूपदेशमुच्चारणीयानि ।

शारदातिलके—

वदेत्पदं चतुर्थ्यन्तं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
सौराय योगपीठाय नम.पदमनन्तरम् ।।३२।।

पीठमन्त्रोऽयमाख्यातो दिनेशस्य जगत्पतेः ।
तारादिकं खखोल्कायमनुना मूर्त्तिकल्पना ।।३३।।

साक्षिणं सर्वलोकानां तस्यामावाह्य पूजयेत् ।
अङ्गानि पूजयेदादौ दिक्पत्रेष्वर्कमूर्त्तयः ।।३४।।

आदित्याद्याश्चतस्रोऽर्च्याः शक्तयः कोणपत्रगाः ।
स्वस्वनामादिवर्णाः स्युस्तासां बीजान्यनुक्रमात् ।।३५।।

उषा-प्रज्ञा-प्रभा-सन्ध्याशक्तयः परिकीर्त्तिताः ।
पत्राग्रसंस्था ब्राह्म्याद्याः पुरतोऽरुणमर्चयेत् ।।३६।।

चन्द्रादि पूजयेत् पश्चाद् ग्रहानष्टौ ततो बहिः ।
इन्द्रादयस्तदस्त्राणि यथापूर्वं समर्चयेत् ।।३७।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—देवभागाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीसूर्याय

१. ख. आद्यमन्तं ।

देवतायै नमः" इति विन्यस्य, विनियोगमुक्त्वा, "सत्यतेजोज्वालामणि हुं फट्-स्वाहा हृदयाय नमः, ब्रह्मतेजोज्वालामणि हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा, विष्णु-तेजोज्वालामणि हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्, रुद्रतेजोज्वालामणि हुं फट् स्वाहा कवचाय हुं, अग्नितेजोज्वालामणि हुं फट् स्वाहा नेत्राय वौषट, सर्वतेजोज्वाला-मणि हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, "शिरसि—ॐ आदित्याय नमः, मुखे—ए[१] रवये नमः, हृदि—उं भानवे नमः, गुह्ये—इं भास्कराय नमः, पादयोः—श्रं सूर्याय नमः, शिरसि—ॐ ॐ नमः, नेत्रयोः—ॐ घृं, कण्ठे—ॐ णिं, हृदि—ॐ सूं, कुक्षौ—ॐ र्यं, नाभौ—आं, लिङ्गे—दिं, पादयोः—सं नम." इति विन्यस्य, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपृथिव्यन्तं योगपीठमभ्यर्च्य, क्षीरसमुद्रं सम्पूज्य, नवरत्नद्वीपादिसिंहासनान्त सम्पूज्य, सिंहासनस्य पादेषु—"प्रभूताय, विमलाय, साराय, समाराध्याय, मध्ये—परमसुखाय" इति सम्पूज्याऽनन्तरं धर्मादिपरतत्वान्तं प्राग्वत् सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु—"रां दीप्तायै नमः, रीं सूक्ष्मायै०, रुं जयायै०, रूं भद्रायै०, रें विभूत्यै०, रैं विमलायै०, रों अमोघायै०, रौं विद्युतायै०, रः सर्वतोमुख्यै नमः" इति मध्यान्तं सम्पूज्य 'ॐ ब्रह्मविष्णु-शिवात्मकाय सौराय योगपीठाय नमः' इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, 'खखोल्काय स्वाहा' इति मन्त्रेण 'श्रीसूर्यमूर्त्ति कल्पयामी'ति मूर्त्ति परिकल्प्याऽऽवाहनादि-पुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, दिग्दलेषु—"आं आदित्याय नमः, एं रवये, उं भानवे, इं भास्कराय," विदिग्दलेषु—उं उषायै०, प्रं प्रज्ञायै, प्रं प्रभायै, सं सन्ध्यायै" इति सम्पूज्याऽष्टदलाग्रेषु प्राग्वद् ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, देवस्याग्रे—'अरुणाय नमः', ततश्चतुरस्रस्य प्रथमरेखायां — प्रादक्षिण्येन—"सोमाय०, भौमाय०, बुधाय०, बृहस्पतये०, शुक्राय०, शनैश्चराय०, राहवे०, केतुभ्यः" इति सम्पूज्य लोकपालार्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति । तथा —

अष्टलक्षं जपित्वाऽन्ते दुग्धवृक्षसमिद्वरैः ।
जुहुयात्तत्सहस्राणि दुग्धाक्तैः साधकोत्तमः ॥३८॥

तर्प्पयेच्छुद्धसलिलैश्चन्द्रचन्दनवासितैः ।
स्वाभिषेकं ततः कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३९॥

---

१. ख. ऐं ।

प्रयोगसारे—

रक्ताम्बरधरो रक्तगन्धमाल्यार्चितः सदा ।
घृतक्षीरसमायुक्तगुडभक्ताशनो निशि ।।४०।।

भिक्षाहारोऽथवा वीतसङ्गः सन्तोषवान् सदा ।
मन्त्रमावर्त्तयेन्नित्यमाराधनपरायणः ।।४१।।

इत्थमभ्यर्च्य भास्वन्तमर्घ्यं तस्मै निवेदयेत् ।
प्रत्यहं रविवारे वा तद्विधानमुदीर्यते ।।४२।।

प्रगे मण्डलमालिख्य यजेत् पीठं यथाविधि ।
तत्र संस्थाप्य पात्रं हि शुद्धं ताम्रसमुद्भवम् ।।४३।।

रम्यं प्रस्थजलग्राहि मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
शुद्धोदकेन सम्पूर्य प्रक्षिपेत्तत्र कुङ्कुमम् ।।४४।।

रोचना राजिका रक्तचन्दनं वंशतण्डुलान् ।
श्यामाकतण्डुलान् शालीन् करवीरजपाकुशान्[1] ।४५।।

सञ्चिन्त्य देवतात्मैक्यं भास्करं साङ्गमर्चयेत् ।
उपचारैर्निवेद्यान्तैस्तत् पिधाय जपेन् मनुम् ।।४६।।

सम्यगष्टोत्तरशतं भूयः पुष्पादिभिर्यजेत् ।
उद्धृत्याऽमस्तकं[2] पात्रं जानुस्पृष्टमहीतलः ।।४७।।

दृष्टिं निधाय व्योम्न्यर्के स्वैक्यं सावरणं स्मरेत् ।
तेजो जपन् मूलमनुं धिया दद्याच्च भानवे ।।४८।।

अर्घं प्रसन्नचित्तः सन् दत्वा च सुमनोञ्जलिम् ।
पुनर्नियतधीस्तावद्यावज्ञानुर्निजैः करैः ।।४६।।

अर्घोदकं समादत्ते जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
ततः प्रसन्नो भगवान् प्रयच्छेदिष्टमात्मनः ।।५०।।

---

१. ख. •जपाङ्कुशान् । २. क. उद्धृत्य मस्तकं ।

नृणामनेन भवतीह नितान्तमायुरारोग्यपुत्रधनमित्रकलत्रवृद्धिः ।
तेजश्च वीर्यमतुलं पशुकान्तिसम्पद्विद्यायशोविभवभोगसमृद्धयः स्युः ॥५१॥

तन्मन्त्रसहिताम्भोभिः सप्तधाऽञ्जलिसेवनम् ।
दारिद्र्याघपापान्धकारनाशनं श्रीकरं परम् ॥५२॥

स्थण्डिले सुतले कुम्भं तीर्थोदकसुपूरितम् ।
हिरण्यरत्नगन्धादि तत्र निक्षिप्य पूजयेत् ॥५३॥

देवं सपरिवारं तु प्रागुक्तविधिना ततः ।
स्थण्डिलेऽग्निं समाधाय कपिलापयसा चरुम् ॥५४॥

पक्त्वा च तेन जुहुयात्तदाज्यसहितेन च ।
सहस्रं कृतसम्पातं शुद्धपात्रे तु कारयेत् ॥५५॥

ऋतुस्नातां सुनियतां पूर्वेऽह्नि समुपोषिताम् ।
अष्टमे दिवसे तां तु सहस्रमभिमन्त्रितैः ॥५६॥

अभिषिञ्चेत् कुम्भजलैर्दद्यात्तस्यै च मन्त्रवित् ।
सहस्रमन्त्रितं होमसम्पातान्नन्ततो निशि ॥५७॥

भर्त्ताऽपि सूर्य एवाऽहमिति ध्यात्वा तया सह ।
सम्भोगमाचरेत्तेन सुपुत्रो गुणवान् भवेत् ॥५८॥

यन्त्रसारे—

प्रणवं साध्यसमेतं विलिख्य षट्कोणकर्णिकामध्ये ।
तारं प्रयोजनानां तिलकं हंसं च षट्सु कोणेषु ॥५९॥

केसरविलसत्सौरचतुरर्णं दलचतुष्टये चाऽपि ।
उद्यन्नद्याद्यायाः पादचतुष्कं ऋचोऽष्टपत्रे च ॥६०॥

केसरराजत्सौरवसुवर्णके दलेऽष्टचृचोः पादान् ।
आलिख्य बहिर्लिप्याच्चाऽऽवेष्ट्य कुगृहकोणेषु ॥६१॥

चतुरक्षरस्य च मनोः सौरस्यैकैकमक्षरं सौरम् ।
विलिखेदेतद्यन्त्रं विनाशयेद् ग्रहान् विधृतम् ॥६२॥

---

१. ख. दारिद्र्यपाशान्धकार० ।

प्रथयति तेजो लक्ष्मीर्भोगान् धृतिं प्रतापाद्यान् ।
अङ्गनभूमावेतद्विलिख्य सम्पूज्य तत्र दिननाथम् ॥६३॥
दद्यादर्घ्यं कान्त्यै लक्ष्म्यै कुष्ठज्वरादिशान्त्यै च ।

रोगघ्नयन्त्रमिदमेव विलिख्य ताम्रे संस्थापितं निजगृहे विधिवत् प्रपूज्य ।
हन्याच्च कुष्ठमुखरोगपरम्परां वा विस्मृत्यपस्मृतिभवानथवा विकारान् ॥६४॥

आलिख्य चैतत्कलधौतपत्रे तैले विनिक्षिप्य सहस्रसंख्यम् ।
जप्त्वा तदभ्यक्ततनोर्नरस्य कुष्ठादिरोगा विलयं प्रयान्ति ॥६५॥

इदमेव नवे विलिख्य यन्त्रं नवनीते त्रितयं प्रजप्य त्वर्चाम् ।
परिभक्षयतां तदैव शूलं विषमं चाऽऽमयमाशु नाशमेति ॥६६॥

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तत्कोणेषु—'ॐ ह्रीं सः हंसः' इत्यक्षरषट्कमेकमेकं विलिख्य, तद्बहिश्चतुर्दलकेसरेषु—'ॐ ह्रीं हंसः' इति मन्त्रस्यैकैकक्षरं विलिख्य, चतुर्दलेषु—'उद्यन्नद्यमित्रमि'त्यृचः पादमेकैकमालिख्य, तद्बहिरष्टदलकेसरेषु—मूलमन्त्रस्याऽष्टवर्णानालिख्याऽष्टदलेषु—एतत्सूक्तस्य द्वितीयतृतीयऋचोः पादाष्टकं प्रतिदलमेकमेकं पादमालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तरे मातृकार्णैः संवेष्टच, चतुरस्रकोणेषु—'ॐ ह्रीं हंसः' इति मन्त्रस्यैकैकमक्षरं लिखेत्। एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।

उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नुत्तरां[१] दिवं ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥६७॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणा का सुदध्मसि[२] ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥६८॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं[३]रंधयन्मो[४] अहं द्विषतेरधं ॥६९॥

तथा— कर्णिकायां साध्यगर्भं तारं पत्रचतुष्टये ।
सौरस्य चतुरर्णस्य क्रमादेकैकमक्षरम् ॥७०॥

---

१. क. न्नुत्तरी । २. क. सुदध्यसि । ख. सुदध्यसि । ३. क. ख. मह्य ।
४. क ख. रन्धयन्नो ।

अष्टाक्षरमनोर्वर्णान् मन्त्रेष्वष्टसु तद्विधः ।
आवेष्ट्य मातृकावर्णैर्भूपुराश्रचतुष्टये ॥७१॥

प्रयोजनानां तिलकं ताराद्यं च समालिखेत् ।
सौरयन्त्रमिदं नृणां सर्वामयविनाशनम् ॥७२॥

तेजःप्रतापसौभाग्यपुत्रायुःकीर्तिवर्द्धनम् ।
धनधान्यप्रदं वश्यं सर्वरक्षाकरं परम् ॥७३॥

इदमेव[1] यन्त्रमभिलिख्य जले प्रविमज्जतां शितधियां दिनशः ज्वरकुष्ठमूलमुखरोगसङ्कटा विलयं प्रयान्ति न चिरादिव ध्रुवम् ।

अस्यार्थः—चतुःपत्रकमलकर्णिकायां ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, पत्रेषु—'ॐ ह्रीं हंसः' इति चतुरक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य, तद्बहिरष्टपत्रेषु—मूलमन्त्रस्यैकैकमक्षरमालिख्य, तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले—सबिन्दुभिर्मातृकार्णैरावेष्ट्य, बहिश्चतुरश्रकोणेषु—'ॐ ह्रां ह्रीं सः' इति वर्णचतुष्टयं प्रतिकोणमेकैकं लिखेदेतदुक्तफलदम् ।

शारदातिलके—

आकाशमग्निदीर्घेन्दुसंयुतं भुवनेश्वरी ।
सर्गान्वितो भृगुर्भानोस्त्र्यक्षरो मनुरीरितः ॥७४॥

आकाश हकारः, अग्निः रेफः, दीर्घ आकारः, इन्दुर्बिन्दुस्तेन ह्रां इति; भुवनेश्वरी ह्रीं, भृगुः सकारः, सर्गान्वितः विसर्गान्वितः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

वह्निदीर्घेन्दुमद्व्योममायासर्गान्वितो भृगुः ।
प्रयोजनानां तिलकस्त्र्यक्षरः कथितो मनुः ॥७५॥

अजोऽस्य मुनिरुद्दिष्टो गायत्रं छन्द उच्यते ।
देवताऽस्य मनोः ख्यातः सविता सेवितः सुरैः ॥७६॥

पदार्थादर्शे तु—

मनोरस्य भवेद् ब्रह्मा मुनिरुक्तोऽथवा भृगुः ।
छन्दोऽपि खलु गायत्री देवता तीक्ष्णदीधितिः ॥७७॥

आद्यं बीजं, द्वितीयं शक्तिः । प्रणवादिरिति केचित् ।

---

१. क. इयमेव ।

शारदातिलके—

आधारादिपदाग्रान्तं कण्ठादाधारकावधि ।
मूर्द्धादिकण्ठपर्यन्तं क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत् ॥७८॥
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन मध्येनाऽङ्गक्रिया मता ।

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं,
भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि ।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जै-
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ॥७६॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

अरुणकमलसंस्थं त्रीक्षणं भूरिभूषं,
ह्यरुणकमलयुग्माभीष्टदाभीतिहस्तम् ।
अरुणतरशरीरं भावयामो दिनेशं,
ह्यरुणकरसुसेव्यं सर्वदेवौघवन्द्यम् ॥८०॥

शारदातिलके—

पूर्वोक्ते पूजयेत् पीठे विधानेनाऽमुना रविम् ।
प्रथमावृतिरङ्गैः स्यात् परा चन्द्रादिभिर्ग्रहैः ॥८१॥

तृतीया लोकपालैः स्याच्चतुर्थी स्यात्तदायुधैः ।
इति सम्पूज्य निर्माल्यं तेजश्चण्डाय दीयताम् ॥८२॥

अन्यद्ध्यानं तु **पदार्थादर्शे—**

भास्वत्सरोजहस्तानि शतानि वरदान्यपि ।
अङ्गानि दिव्यरूपाणि ध्येयानि बलवन्ति च ॥८३॥
दंष्ट्राकरालमस्त्रं तु विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् । इति ।

प्रयोगसारे नारायणीयेऽपि—

रक्ता हृदादयः सौम्या वरदाः पद्मधारिणः ।
विद्युत्पुञ्जनिभं त्वस्त्रमुग्रदंष्ट्रं भयावहम् ॥८४॥ इति ।

अत्राऽऽवरणपूजायां बिन्दुयुक्तस्वस्वनामादिवर्णादित्वं सोमादीनां ग्रहाणामनुसन्धेयम् । तदुक्तम्—

प्रयोगसारे—

स्वनामाद्यक्षरैर्बिन्दुभूषितैरन्विता यजेत् ।

इति सोमबुधगुरुशुक्राः प्रागादिदिगवस्थिता ज्ञेयाः । तदुक्तमाचार्यैः—

प्रागादिदिशासंस्था शशिबुधगुरुभृगवः क्रमेण स्युः ।
आग्नेयादिष्वष्टसु[1] धरणिजमन्दा हि केतवः पूज्याः ॥८५॥

प्रयोगसारेऽपि—

सोममैन्द्रे बुधं याम्ये पश्चिमे तु बृहस्पतिम् ।
सौम्ये शुक्रं तथाऽऽग्नेय्यामङ्गारकमथाऽऽसुरे ॥८६॥
शनैश्चरं ततो राहुं वायव्यां केतुमीश्वरे । इति ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि—'अजाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्राय छन्दसे नमः, हृदये—'श्रीसूर्याय देवतायै नमः' इति विन्यस्य, विनियोगमुक्त्वा, मूलाधारादिपादाग्रान्तं 'ह्रां नमः,' कण्ठान्मूलाधारपर्यन्तं 'ह्रीं नमः,' मूर्द्धादिकण्ठान्तं 'सः नमः' इति विन्यस्य, "ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्राय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यङ्ग-पूजान्तेऽष्टसु दलेषु "सों सोमाय नमः, बुं बुधाय नमः, बृं बृहस्पतये नमः, शुं शुक्राय नमः, मं मङ्गलाय नमः, शं शनैश्चराय नमः, रां राहवे नमः, कें केतवे नमः" इति ग्रहान् सम्पूज्य, लोकेशपूजादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति ।

शारदातिलके—

भानुलक्षं जपेन्मन्त्रमन्नाज्येन दशांशतः ।
तिलैर्वा मधुरासिक्तैर्जुहुयाद्विजितेन्द्रियः ॥८७॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

जपेद् द्वादशलक्षं च तत्सहस्रं हुनेत्तिलैः ।
घृताक्तैर्मधुराक्तैश्च पयोन्नैश्चाऽपि तादृशैः ॥८८॥

---

१. क. ष्वसृषु ।

तर्प्पणादि ततः कृत्वा प्रयोगान् साधयेदथ ।
दद्यात् पूर्वोदितं चार्ऽघं दिनेशाय स साधकः ॥८९॥

सोऽथाऽस्य धनधान्यादिपुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ।
करोति रत्नवस्त्रादिभूषणादिविवर्द्धनम् ॥९०॥

अष्टपत्राम्बुजं कुर्यात्तत्र कुम्भान्नव न्यसेत् ।
पत्रमध्ये कर्णिकायां तांश्च तोयेन पूरयेत् ॥९१॥

नवग्रहान् समावाह्य तेषु कुम्भेषु मन्त्रवित् ।
कर्णिकाकलशं मूलमन्त्रेण च सहस्रकम् ॥९२॥

प्रजप्याऽन्येषु तन्मन्त्रान् शतकृत्वो जपेत् सुधीः ।
तज्जलैरभिषिञ्चेत साधको ग्रहदोषगम् ॥९३॥

रोगा नश्यन्ति सततं लक्ष्मीश्चाऽपि स्थिरा भवेत् ।
ग्रहहोमः प्रकर्त्तव्यो ग्रहाणां वैकृते तथा । ९४॥

चन्द्रभान्वोश्चोपरागे निजर्क्षे वाऽथ मन्त्रवित् ।
रिपुजे च भये वाऽथ घोररूपे गदेऽथवा ॥९५॥

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा ग्रहान् सम्पूज्य तत्र च ।
स्वदिक्षु चाऽग्नीन् संस्थाप्य जुहुयाच्च समिद्वरैः । ९६॥

अर्कद्विजद्रुमायूराश्वत्थोदुम्बरखादिरैः ।
शमीदूर्वाङ्कुशोद्भूतैः क्रमाद्धोमः समीरितः ॥९७॥

द्विजद्रुः पलाशः, मायूर अपामार्गः ।

अष्टाधिकं सहस्रं च हुनेत्सूर्यस्य चाऽऽहुतीः ।
अष्टाधिकं शतं मन्त्री सोमादीनां तथाऽऽहुतीः ॥९८॥

अन्ते चाऽऽज्यैर्व्याहृतिभिर्हुत्वा होमं समापयेत् ।
गुरुं सन्तोष्य ऋत्विग्भ्यो यथाशक्ति च दक्षिणाम् ॥९९॥

दद्याच्च भोजयेद्विप्रान् सङ्ग्रामे विजयी भवेत् ।
रोगाः शान्ति व्रजन्त्याशु दीर्घमायुश्च विन्दति ॥१००॥

कृत्याद्रोहादिकानां च शान्तिरेवाऽऽशु जायते ।
सर्वेषां च ग्रहाणां च होम एकत्र वा भवेत् ॥१०१॥

एवं प्रतिदिनं मन्त्री दिननाथं समर्चयेत् ।
धनधान्यैश्वर्यपूर्णमायुर्दीर्घं च विन्दति ॥१०२॥

भविष्योत्तरे भृगुनारदसंवादे नारदवाक्यम्—

पुत्रीयं यज्ञमाचक्ष्व सतां वंशविवर्द्धनम् ।
शक्रेणेति गुरुः प्रोक्तो यथाऽह कथयामि ते ॥१०३।

बहुस्त्रीकोऽसुतो वन्ध्यः पुत्रीयं यज्ञमाचरेत् ।
पुरुषर्क्षमासतिथिषु ते कथ्यन्ते यथाक्रमम् ॥१०४॥

पूर्वोत्तरेषु सर्वेषु हस्तश्रवणमूलके ।
मृगपुष्यमहार्ज्येषु पूर्णातिथिगणेषु च ॥१०५॥

गुरुशुक्रेन्दुसौम्येषु स्थिरलग्नेषु सङ्गवे ।
शुक्रे केन्द्रगते वाऽर्कग्रहणे समुपस्थिते ॥१०६॥

भृगुशुद्धौ विशुद्धार्के गुरुचन्द्रशुभेऽहनि ।
मार्गफाल्गुनवैशाखे श्रावणे कार्त्तिके तथा ॥१०७॥

शुक्लपक्षे विधातव्यं पुत्रीयं यज्ञमादरात् ।
आचार्यो बहुसुतः श्रीमान् सर्वागमविशारदः ॥१०८॥

अलोभः सत्यवादी च कर्मवान् सम्मतः सताम् ।
व्रतकष्टसहिष्णुश्च[1] जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१०९॥

कृतोपवासो यजमानस्तद्वत् स्त्रीभिः समन्वितः ।
तद्वदार्यनिकटं यायादर्घकरः स्वयम् ॥११०॥

पत्नीग्राहितवल्प(बल्य?)न्नः सायं तस्य निमन्त्रणे ।
उत्तराभिमुखो विप्रो यजमानोऽप्युदङ्मुखः ॥१११॥

पूर्वमुख्यः स्त्रियः सर्वास्ता विशेयुर्यथाक्रमम् ।
उपस्पृश्य जलं दर्भप्रोतासनवरोपरि ॥११२॥

गन्धपुष्पादिसौवर्णयज्ञसूत्राङ्गदादिभिः ।
वासोभिः शोभितं कृत्वा श्रावयेदिदमन्ततः ॥११३॥

---

१. क० सहिष्टुश्च ।

[1]श्वस्तनेऽहनि पुत्रेष्टिकर्म कर्त्तुमहं द्विज ।
उक्त्वा गोत्राह्वयं पश्चाद् ब्राह्मणं तदनन्तरम् ॥११४॥

वरिष्ये त्वामिति प्रोच्य प्रणमेद्विप्रमेकदा ।
स्वस्ति स्वस्ति तवाऽहं स्यामाचार्यः पुत्रियक्रतौ ॥११५॥

श्वस्तनेऽहनीति सम्प्रोच्य सर्वानुत्थापयेन्नतान् ।
आचार्येण समं सायमेकस्मिन्नालये शुभे ॥११६॥

सविशेयुः कुशास्तीर्णे कम्बले मृदुवाससि ।
ततः प्रभृति कुर्वीत दीपं रात्र्यन्तगोचरम् ॥११७॥

प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यां वासः क्षाराम्बुना पृथक् ।
गृहं च शोधयेन्नित्यं मृद्गोमयजलैः शुभैः ॥११८॥

विकिरं[2] विकिरेत् सायं नूतनं दीपमुज्ज्वलेत् ।
रक्षोघ्नं स्थापयेत्तत्र कपिलापञ्चगव्यकम् ॥११९॥

तिलाज्यमधुसम्पूर्णं हेमपात्रं सरत्नकम् ।
धूपसिन्दूरकर्पूरगुग्गुल्वगुरुकुङ्कुमैः ॥१२०॥

सचन्दनैः प्रदातव्यः सर्वविघ्नोपशान्तये ।
भित्तौ च सर्वतस्तस्य सेचयेत् स चरुं समैः ॥१२१॥

स्नानद्वयं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
आचार्यो घृतपलं प्राशेदथ दुग्धपलद्वयम् ॥१२२॥

पलद्वयं च दधि वा तोयं पलचतुष्टयम् ।
जलाशी वा फलाशी वा निराहारोऽथवा भवेत् ॥१२३॥

यजमानस्तु कलमसम्भवांस्तण्डुलांस्तथा ।
अक्षतान् फलसंशुद्धान् क्षालितांश्च पुनः पुनः ॥१२४॥

प्रस्थमात्रान् कपिलाज्यदुग्धपक्वान् मृदून् लघून् ।
सायङ्कृत्यान्तरे काले भुञ्जीतैक्षवसंयुतम् ॥१२५॥

स्त्रियोऽपि श्यामकलमसम्भवांस्तण्डुलांस्तथा ।
अर्धाहारं प्रकुर्वीत संस्कृतांस्तीर्थवारिणा ॥१२६॥

---

१. क. ख. स्वस्तने० । २. ख. विकिरान् ।

सैन्धवेन घृतेनाऽत्र समभ्यर्च्य प्रजापतिम् ।
ब्राह्मे मूहूर्ते चोत्थानं मूत्रोत्सारे विधाय च ॥१२७॥

कृताशौचक्रियः शुद्धः आचान्तः प्रोक्तवर्त्मना ।
दन्तकाष्ठं विधायाऽथ स्नायात् सूर्योदयात् पुरा ॥१२८॥

आचार्यो यजमानश्च महानद्यां स्त्रियश्च ताः ।
प्रातःकृत्यं यथाप्रोक्तं कृत्वा सूर्यमनुं जपेत् ॥१२९॥

सहस्रकृत्वः प्रत्येकं यजमानः स्त्रियोऽपि च ।
सहस्राणि पञ्चसंख्यान्याचार्यस्तं मनुंजपेत् ॥१३०॥

सार्द्धयामद्वयं यावत् प्रातरारभ्य सञ्जपेत् ।
जपादौ च जपान्ते च देवं सम्पूजयेद्रविम् ॥१३१॥

होमं कृत्वा दशांशेन ततो माध्याह्निकीं क्रियाम् ।
कृत्वा सन्तर्प्पयेद्देवं दशांशैः शुद्धवारिणा ॥१३२॥

मार्जयेच्च तदर्द्धेन यावद्रक्तार्क्कमण्डलम् ।
सायङ्कृत्यं विधायाऽथ भुञ्जीरन्नुक्तवर्त्मना ॥१३३॥

प्रणम्याऽऽचार्यचरणौ शयीरंस्तस्य देशनः ।
एवं प्रोक्तानि कर्माणि प्रातःकृत्यादनन्तरम् ॥१३४॥

सोपवासः प्रकुर्वीत प्रतिज्ञां पुत्रियक्रतौ ।
एतस्य यजमानस्य पत्न्यामस्यामथाऽऽसु वा ॥१३५॥

पितृभ्योऽधिकगुणवत्पुत्रकामोऽद्य कालतः ।
मासद्वयं यावदहं त्रिलक्षकृतसंख्यया ॥१३६॥

त्र्यक्षरं मन्त्रं महाश्वेताशक्तिभास्करदैवतम् ।
देवभागमुनिं तावद् गायत्रीछन्दसाऽन्वितम् ॥१३७॥

जप्त्वैतस्य दशांशेन कपिलाज्यतिलेन च ।
हुत्वाऽर्कोपचिते वह्नौ योनिकुण्डे तदर्द्धतः ॥१३८॥

सन्तर्प्य शुद्धतोयेन सम्मार्ज्याऽपि तदर्द्धतः ।
कल्पोक्तविधिना देवं सम्पूज्य भास्करं प्रभुम् ॥१३९॥

रक्तभूमध्यकुम्भान्तःसलिलेऽभ्यर्च्य पूर्ववत् ।
तज्जलेन सपत्नीकं यजमानं स्नाप्य तन्मुने ॥१४०॥

तत्पत्नीकर्तृकचरुप्राशनरूपमुच्चरेत् ।
पुत्रीयं यज्ञं करिष्ये प्रतिज्ञामाचरेदिति ॥१४१॥

ततो ह्यनन्तरे काले जपान्ते होममाचरेत् ।
सार्द्धं त्रिशत्सहस्राणि जप्त्वा प्रोक्तेन वर्त्मना ॥१४२॥

पूर्णाहुतिं सपत्नीकयजमानसमन्वितः ।
कुर्याच्च त्र्यायुषं तेषु वह्निं सरक्षयेत्ततः ॥१४३॥

प्रत्यहं पूजयेत्तं च देवताकारमाहितम् ।
प्रतिज्ञानिर्विघ्नकामान् कृतस्वस्त्ययनान् द्विजान् ॥१४४॥

सन्तर्प्पयेद्भोजनेन त्रिमध्वक्तेन साधकः ।
तेभ्यश्च दक्षिणां दद्याद्द्यात्तु प्रेप्सितं वरम् ॥१४५॥

चक्रं विदध्यादाचार्यस्ततो वर्णैश्च पञ्चभिः ।
नवनाभ यथाशोभं वह्नेरुत्तरतो दिशि ॥१४६॥

हैमान्वा रूप्यताम्रोत्थान् कलशान्नव शोभनान् ।
क्षालितानस्त्रमनुना धूपितान् कलशांस्तु तान् ॥१४७॥

मध्यादिप्रदक्षिणतः पदेषु नवसु स्मरन्[1] ।
ग्रहान्नव ततो दीक्षाविधिवत् स्थापयेत्तु तान् ॥१४८॥

सूर्यादिकान् ग्रहांस्तांस्तु पूजयेच्च पृथक् पृथक् ।
दीक्षोक्तेन विधानेन प्रत्यह दिवसत्रयम् ॥१४९॥

दिक्पालान्यो यजेत्[2] सूर्यं ततश्चाऽष्टग्रहानपि ।
सूर्यं तु कुम्भतोयान्तर्जलान्यप्यत्र चाऽन्यतः ॥१५०॥

कुम्भेभ्यो निःक्षिपेन् मन्त्रैर्मन्त्रास्त्वाद्यर्णबीजकाः ।
चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्ताश्च मध्यकुम्भाम्भसा पृथक् ॥१५१॥

आचामयेत् स तान् सर्वानासीनानुत्तरामुखान् ।
स्नापयेन्मूलमन्त्रेण साधकः सूर्यं संस्मरन् ॥१५२॥

---

१. स्मान् । २. ख. जयेत् ।

यथाज्येष्ठं च तत्पत्नीः श्वेतपत्रं पिधापयेत् ।
अन्यकुम्भाम्भसा पात्र एकत्र कृतसम्पदा ॥१५३॥

आचामेन् मूलमन्त्रेण सर्वानितान् पृथक् पृथक् ।
चरुं पचेद्धोमवह्नौ कथ्यतेऽस्य विधिः शुभः ॥१५४॥

क्षालयेदक्षतोयेन होमं चरुमनेकधा ।
होमाग्नावादधीताऽमुं प्रजापतिमनुं स्मरन् ॥१५५॥

मूलेन कपिलादुग्धं क्षिपेत् प्रस्थचतुष्टयम् ।
तथा हैमन्तिकश्वेतधान्यतो हस्तनिद्रुतान् ॥१५६॥

अक्षतान् प्रस्थसंख्यातान् क्षालितांस्तीर्थवारिणा ।
कपिलायास्तु गोमूत्रैर्गोमयैः पयसा तथा ॥१५७॥

दध्ना घृतेन प्रत्येकं त्रिस्त्रिः प्रक्षालयेद् ध्रुवम् ।
मूलमन्त्रं जपेत् स्पृष्ट्वा सहस्रं हेमपात्रके ॥१५८॥

तत्र सम्पूजयेद्देवं कल्पोक्तविधिना रविम् ।
तांस्तु देवमयान् ध्यात्वा चरोर्मध्ये तु निक्षिपेत् ॥१५९॥

हेमपात्र्या च मूलेन हस्ताभ्यां तन्मुखं स्पृशन् ।
शतं सहस्रं प्रजपेन् मन्त्रं तत्र फलोपरि ॥१६०॥

पूजयेत् पूर्ववत्तत्र भास्करं लोकभास्करम् ।
निर्माल्यादि चरोस्तस्माद्दूरीकृत्याऽथ मन्त्रवित् ॥१६१॥

कल्पोक्तन्यासजालानि चरोरेव प्रविन्यसेत् ।
अभिधानं[1] घृतेनाऽत्र मूलेनोत्सृज्य च त्रिधा ॥१६२॥

अवतार्याऽस्य मुखं स्पृष्ट्वा सहस्रं च मनुं जपेत् ।
व्याहृतिभिः पञ्च वरुणानग्नये च ततः परम् ॥१६३॥

प्रजापतये स्वाहेति अथेन्द्रादिभ्य एव च ।
तदस्त्रेभ्यश्च प्रत्येकं भास्करेभ्यश्च तं तथा ॥१६४॥

जुहुयात् पञ्चमांशेन सघृतेन चरोस्ततः ।
नवनाभान्तरे मध्ये पूजिते पूर्ववच्चरुम् ॥१६५॥

---

१. ख. अविधारं ।

संस्थाप्य पूजयेत्तत्र देवं पूर्वोक्तवर्त्मना ।
निर्माल्यं दूरतः कृत्वा ग्रहानष्टौ ततो यजेत् ॥१६६॥

दिक्पालान् पूजयेत्तेषु पायसान्नं बलिं हरेत् ।
ततोऽपसर्प्य निर्माल्यं चरुमुत्थाप्य मन्त्रवित् ॥१६७॥

विप्राशीर्भिः प्रगीताभिः पञ्चघोषपुरःसरम ।
आचार्यः पुत्रतेजोदो ब्रह्मप्रत्यधिदैवतम् ॥१६८॥

रुद्राधिदैवतं तस्मादिदं भास्करदैवतम् ॥
गृहाण भुङ्क्ष्व पत्नीभ्यो विभज्याऽम्यो निवेदयेत्[1] ॥१६९॥

ततो[2] भुञ्जीत पुत्राप्त्यै पञ्चग्रासान् यथाकृतान् ।
भुक्त्वा चाऽऽचामयेयुरेते दन्तकाष्ठं विधाय च ॥१७०॥

पुनराचम्य ते सर्वे गुरुपादाम्बुजद्वये ।
निपतेयुस्ता उत्थापयेदिदं ब्रुवन् स मन्त्रवित् ॥१७१॥

पित्रादिगुणवत्पुत्रं लभध्वमतितेजसम् ।
दीर्घायुषं महासत्वं सदा लक्ष्मीनिषेवितम् ॥१७२॥

जितशत्रुं कुलदीपं कुलदीप्तिकरं बुधम् ।
विद्यानां पारगं दान्तं दातारं गजवाजिनाम् ॥१७३॥

भोक्तारं वसुधायास्तं यशसाऽऽक्रान्तभूतलम् ।
इत्यादायाऽऽशिषं मूर्द्ध्ना प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥१७४॥

एतत्पुत्रीययज्ञस्य प्रतिष्ठार्थं निवेदयेत् ।
गुरवे दक्षिणां दत्वा सुवर्णानां शतं तथा ॥१७५॥

गावो महिष्यो वृषभाः शूद्राः शूद्र्यो अजा वयः ।
सम्पन्नापणचक्रार्था उद्यानवनशोभिताः ॥१७६॥

ग्रामा ग्रामगुणोपेता ये स्युर्नद्यम्बुमातृकाः ।
भूषणासनशय्यादि धनधान्यालयानि च ॥१७७॥

नाऽन्यत्र याचते येन तावदस्मै निवेदयेत् ।
आचार्य्यप्रीणनं कुर्याद् ब्राह्मणैः सहितः स्वयम् ॥१७८॥

---

१. ग. निवेदय । २. ख. वत्तान् ।

ब्राह्मणे भोजनं दत्वा दीनान्धान् परिपोषयेत् ।
यजमानं सपत्नीकं शान्तिकुम्भोदकेन च ॥१७९॥

अभिषिच्य ऋत्विक् स्वस्ति प्रोक्त्वा गच्छेत् स्वमालयम् ।
यजमानस्त्रियश्चैता यावत्कुसुमसंस्थिताः ॥१८०॥

पुष्पवत्यामथैकस्यां मध्यरात्रे स्त्रियं भजेत् ।
विशुद्धमृदुशय्याकः शुद्धवस्त्रसुगन्धवान् ॥१८१॥

चारुस्रग्गन्धभूषाढ्यः सुगन्धिकृतलेपनः
कुण्डलादिविभूषावान् पृष्ठतो यज्ञसूत्रभृत् ॥१८२॥

स्त्रियामासक्तिमापन्नायां सिञ्चेद् गर्भे दृढध्वजः ।
[1]सिक्ते रेतस्यथाऽऽश्लिष्टौ तिष्ठेतां दम्पती क्षणम् ॥१८३॥

सुयन्त्रिता तथा नारी कर्त्तव्या यत्नतस्तनोः ।
सम्भोगेऽपि निपीड्या च यतोऽशक्तिमुपैति सा ॥१८४॥

उत्थायाऽऽचामतस्तौ हि शूद्रवच्छौचमाश्रितौ ।
स्नायेतां चेत्कृताभ्यङ्गौ तूर्णं चाऽऽचामयेत् पृथक् ॥१८५॥

पयः पीत्वा यथावाञ्छं पुमांस्ताम्बूलमाचरेत् ।
नारी हरीतकीं भक्षेत् प्रायः कुङ्कुमसंयुताम् ॥१८६॥

पूर्ववत्तौ शयीयेतां[2] यावच्छोडशवासरान् ।
देवः पुत्रो भवेत्तत्र नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१८७॥

आषोडशदिनान्यान्यृतुकालं विदुर्बुधाः ।
दिवा वा निशि वा जाते पुष्पभागे भगाम्बुजे ॥१८८॥

ताश्चतस्रो निशास्त्याज्याः स्नानं तु चतुराह्निके ।
दिने तु पुष्करे जाते स्नानं स्यात् पञ्चमेऽह्नि ॥१८९॥

आद्याश्चतस्रो निन्द्यास्ताः सङ्गमस्तासु गर्हितः ।
समरात्रौ प्रसिञ्चेत पुत्रार्थी प्रोक्तवर्त्मना ॥१९०॥

आदौ दिवा निषेके तु यदि गर्भो भवेदपि ।
अल्पायुरल्पवचनो दाहमोहरुजाकुलः ॥१९१॥

---

१. ख. सक्ति । २. ख. शयीयेथां ।

द्वितीये दुःखभोगः स्यात्तृतीये रोगवांस्तथा ।
चतुर्थे पञ्चपञ्चाशद्दिनानीह स जीवति ॥१९२॥
षष्ठे षष्टिं च वाराढ्यां वर्षाणीह स जीवति ।
अष्टमे सप्ततीन् वर्षान् दशमेऽशीतिवत्सरान् ॥१९३॥
द्वादशे नवतिं साष्टान् षोडशे साष्टकं शतम ।
रात्रिकालेऽपि कथ्यन्ते संयोगास्ताः सुगोपिताः ॥१९४॥
प्रथमे घटिकाकाले योगाद् गर्भो यदा भवेत् ।
अल्पायुरल्पशक्तिश्च त्रिंशद्वर्षाणि जीवति ॥१९५॥
चत्वारिंशद्द्वितीयेऽपि एवमग्रेऽपि वर्द्धते ।
एकैकपङ्क्तिभागेन यावत्साग्रं शतं पृथक् ॥१९६॥
नन्दायां मन्दभाग्यः स्याद्भद्रायां भास्करोपमः ।
जयायां विष्णुवत्तेंशो (त्तेजा?) रिक्तायां निर्बलोऽधमः ॥१९७॥
पूर्णायां पूर्णलक्ष्मीवान् विद्वान् भवति धार्मिकः ।
कुजे कुब्जादिकं देहे सहिष्णुर्बहुवित्तवान् ॥१९८॥
बुधे विद्वान् बुधैर्हीनो धर्मकर्मरतः स्मृतः ।
गुरौ गुरुमतिः श्रीमान् बहुभोक्ता[1] जनप्रियः ॥१९९॥
शुक्रे मतिशिताशेषः सानुरक्तो गुणप्रियः ।
शनौ स्थिरमतिः पापी रोषणः परमर्षणः ॥२००॥
रवौ क्रोधवशो लोलो बहुपित्तो रुजाकुलः ।
चन्द्रे सुन्दरदेहः स्याद्धनवान् धार्मिकः सुधीः ॥२०१॥
पञ्चपर्वसु यो जातः स भवेत्तस्करोऽधमः ।
सार्वभौमो भवेद् गर्भः पञ्चम्यामुत्तरे भृगौ ॥२०२॥
शुभसिद्धचमृतानन्दे गर्भाद्राजेश्वरो भवेत् ।
विष्टिदुष्टेषु कालेषु यावज्जीव रुजाकुलः ॥२०३॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज —
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ एकविंशस्तरङ्गः ॥२१॥

---

१. ख. बहुभोगी ।

[द्वाविंशस्तरङ्गः]

सारसङ्ग्रहे—

वदेत्पदं चतुर्थ्यन्तं खखोल्काख्यं द्विठान्तकम् ।
षडर्णो मनुराख्यातो दिनेशस्य जगत्पतेः ।।१।।

चतुर्थ्यन्तं खखोल्काख्यं खखोल्कायेति, द्विठः स्वाहा । **अस्मिन् मन्त्रे भेद उक्तो नारायणीये ।**

खकान्तौ दण्डिनौ चण्डो मज्जा दशनसंयुता ।
मांसं दीर्घाजवद्वायुरेतं तस्योपकृद्विदुः ।।२।।

खं हकारः, कान्तः खकारः, एतौ दण्डी अनुस्वारस्तद्युक्तौ, तेन हं खं; चण्डः खकारः, मज्जा षकारः, दशनेन ओकारेण संयुता, तेन षो; मांसं लकारः, दीर्घः आकारः, अजः ककारः, तेन ल्का; वायुर्यकारः ।

कपिलपञ्चरात्रेऽपि—

याष्टमं बिन्दुना युक्तं कद्वितीयं तथैव च ।
तदेव केवलं भूय ओभिन्नं सविलोमकम् ।।३।।

घविलोमाच्चतुर्थं तु मांसाक्रान्तं समीरणः ।
समासादुद्धृतो वत्स मूर्तिमन्त्रः षडक्षरः ।।४।।

याष्टमं हकारः, बिन्दुरनुस्वारः, तद्युक्तं तेन हं; कद्वितीयं खकारः, तथैव बिन्दुयुक्तमित्यर्थः, तेन खं, तदेव ख एव केवलं बिन्दुरहितं, तेन खः सविलोमकं षकारः, ओभिन्नं ओकारयुक्तं, तेन षो; घविलोमाच्चतुर्थं, घकाराद्विलोमेन चतुर्थं ककारः, मांसेन लकारेण, आकारेण चाऽऽक्रान्तं तेन ल्का, समीरणः यकारः, अत्र यथागुरूपदेशं जपो विधेयः ।

सारसङ्ग्रहे—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द ईरितम् ।
देवता सविता चाऽस्य सर्वसौख्यफलप्रदः ।।५।।

सूक्ष्मरूपायाऽग्निवधूः स्वाहान्तं सूक्ष्मतेजसे ।
सूक्ष्माकारायाऽग्निवधूः सूक्ष्मबालाय ठद्वयम् ।।६।।

सूक्ष्मकाय सहुंफट् च जातियुक्ताः समीरिताः ।
पञ्चाङ्गमन्त्रा मन्त्रार्णैः षडङ्गं वा समाचरेत् ॥७॥

रक्तपद्मद्वयं हस्ते बिभ्राण वरदाभये ।
बन्धूकाभ त्रिनेत्र च रविं ध्यायेत् सुपूजितम् ॥८॥

पूर्वोक्ते पूजयेत् पीठे देवमावाह्य पूर्ववत् ।

अत्र पूर्वोक्ते पीठे वैदिकाष्टाक्षरमन्त्रोक्ते पीठे, तेनाऽऽवरणदेवतापूजनादिकं सर्वमस्याऽपि मन्त्रस्य तस्यैव ज्ञेयम् । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्री नियतात्मा जितेन्द्रियः ॥९॥

जुहुयात्तद्दशांशेन विल्वाश्वत्थपलाशकैः ।
उदुम्बरसमुद्भूतैस्त्रिमध्वक्तैः समिद्वरैः ॥१०॥

तर्प्पणादि ततः कुर्यात् प्राक्प्रोक्तविधिना सुधीः ।
अर्घादिकं च कुर्वीत पूर्ववद्वाञ्छिताप्तये ॥११॥

एतत्संसेवनात्तस्य खेचरीसिद्धिरीरिता ।

तथा—सदण्डिकान्तबीजाद्यः सप्तार्णोऽयं मनुर्मतः ॥१२॥

कान्तः खकारः, दण्डी अनुस्वारस्तेन खमिति, बीजाद्यः पूर्वमन्त्रः सप्तार्ण इत्यर्थः । तथा—

ऋष्याद्यङ्गविधिध्यानजपपूजादि पूर्ववत् ॥१३॥

शारदातिलके—

आकाशमग्निपवनसद्यान्तोऽर्घीशबिन्दुमान् ।
मार्त्तण्डभैरवं नाम बीजमेतदुदाहृतम् ॥१४॥

पुटितं बिम्बबीजेन सर्वकामफलप्रदम् ।
टान्तं दहननेत्रेन्दुसहितं तदुदीरितम् ॥१५॥

आकाशं हकारः, अग्नी रेफः, पवनो यकारः, सद्यान्त ओकारः, अर्घीश ऊकारः, बिन्दुरनुस्वारः, एतद्युक्तं बीजं ह्र्यूँ इति सिद्धम् । टान्तः ठकारः, दहनो रेफः, नेत्रं इकारः, इन्दुः बिन्दुस्तेन ठ्रिमिति[1] बिम्बबीजं सिद्धम् । **सारसङ्ग्रहे तु—** बिम्बबीजमन्यथोक्त्वाऽयं मन्त्र उद्धृतः । यथा—

१ क. डिमिति, ख. ढ्रिमिति, एतद्द्वयमप्यसङ्गतम् । (सम्पा०)

वियत् कृशानुमान्ताभ्यां मनुषष्ठेन्दुभिर्युतम् ।
मार्त्तण्डभैरवो मन्त्रो भजतां सर्वसिद्धिदः ॥१६॥

मध्यगो बिम्बमन्वोश्च सर्वेष्टफलदायकः ।
दान्ताग्न्यक्ष्युत्तमाङ्गैस्तु बिम्बबीजमुदाहृतम् ॥१७॥

वियत् हकारः, कृशानू रेफः, मान्तः यकारः, मनुरौकारः, षष्ठ ऊकारः, इन्दुः, बिन्दुः[1] एभिः पिण्डितं बीजं ह्र्यूँ इत्येव । दान्तः धकारः, अग्नी रेफः, अक्षि ईकारः, उत्तमाङ्गं बिन्दुः तेन, ध्रीमिति बिम्बबीजम् । यथागुरूपदेशं जपो विधेयः । अस्य मन्त्रस्य फलमुक्तं **नारायणीये**—

आरोग्यमायुः श्रीर्विद्या कान्तिः पुष्टिर्धनं यशः ।
सौभाग्यं शक्तिरैश्वर्यं रक्षा मेधा वचो द्युतिः ॥१८॥
सिद्ध्यन्त्येवंविधाः कामा मन्त्रस्याऽस्य प्रभावत इति ।

पदार्थादर्शे—'ब्रह्मा ऋषिर्निचृच्छन्दः, हं बीजं, बिन्दुः शक्तिः' ।

शारदातिलके—

पञ्चह्रस्वाद्यबीजेन पञ्चमूर्त्तीः प्रविन्यसेत् ।
मध्यमादिकनिष्ठान्तमङ्गुलीषु क्रमादिमाः ॥१९॥

सूर्याख्यो भास्करो भानुस्ततो रविदिवाकरौ ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपाददेशेषु ताः पुनः ॥२०॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

मूर्त्तीः पञ्च समुद्दिष्टाः सूर्यभास्करभानवः ।
रविर्दिवाकरश्चाऽपि न्यस्तव्या ह्यङ्गुलीषु ताः ॥२१॥

मध्यमाङ्गुलिमारभ्य कनिष्ठान्तं न्यसेत् सुधीः ।
मूलाणुना पञ्चह्रस्वैर्युक्तेनाऽनेन संयुताः ॥२२॥
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेताः क्रमान्न्यसेत् ।

मध्यमाङ्गुलीमिति—मध्यमातर्जन्यङ्गुष्ठानामाकनिष्ठासु । **पञ्चह्रस्वैः** अकाराद्योकारान्तैः षण्ढविधुरैः । मूर्त्तीः सद्यावसानिका इति **नारायणीयोक्तेः**—

---

१. क. नास्ति ।

ततः षडङ्गं नेत्रान्तं कुर्याद्दीर्घयुजाऽणुना ।
ततस्तेनैव कुर्वीत व्यापकं मन्त्रवित्तमः ॥२३॥

अत्र हृदयशिरःशिखाकवचानि विन्यस्याऽस्त्रमपि विन्यस्य पश्चान्नेत्रं विन्यसनीयम् ।

शारदातिलकेऽपि—

दीर्घयुक्तेन बीजेन नेत्रान्ताङ्गानि विन्यसेत् ।

अस्य व्याख्या **पदार्थादर्शे** पूर्वोक्तप्रकारेणैवोक्ता । केचित्तु नेत्रान्ताङ्गानीति पञ्चाङ्गान्येव नेत्रान्तानि न्यसनीयानीति वदन्ति । तदसाम्प्रदायिकम्, 'प्रांशवोऽङ्गानि षडि'ति **नारायणीयोक्तेः** ।

सारसङ्ग्रहे—

स्वर्णं पीतजपानिभं त्रिनयनं मुक्तालसद्धारिणं,
खट्वाङ्गादिगुणांस्तथा जपवटीं पद्मं च शक्त्यङ्कुशौ ।
हस्ताब्जैर्दधतं कपालममलं सद्वल्लभालिङ्गितं,
मार्त्तण्डं मणिबद्धरम्यमुकुटं ध्यायेच्च वेदाननम् ॥२४॥

दक्षोर्ध्वादि खट्वाङ्गादि चत्वारि, वामोर्ध्वादि पद्मादीनि चत्वारि ध्येयानि । वेदाननं चतुर्मुखं त्रिनयन प्रतिवक्त्रमिति शेषः । 'अष्टबाहुं द्विषट्काक्षमि'ति **नारायणीयोक्तेः** । स्वर्णपीतं रविमिति **नारायणीयवचनात्** । तथा—

नवशक्तिसमायुक्ते पीठे चोषाढ्यकर्णिके ।
कुर्वीत पूर्ववच्चाङ्गपूजन नेत्रमीशगम् ॥२५॥

नारायणीये—

न्यसेदुषां प्रभां सन्ध्यां प्रज्ञां दिक्ष्वथ कर्णिके ।
दण्डिदीर्घस्वनामादिवर्णैरावाहयेत्ततः ॥२६॥
पूजयेच्च ग्रहानष्टौ लोकेशांश्च तदायुधैः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—निचृच्छन्दसे नमः, हृदये—श्रीमार्त्तण्डभैरवाय देवतायै नमः, गुह्ये—हं बीजाय नमः, पादयोः—बिन्दवे शक्त्यै नमः,

नाभौ—रं कीलकाय नमः" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, "मध्यमयोः—श्रं सूर्याय नमः, तर्जन्योः—इं भास्कराय नमः, अङ्गुष्ठयोः—उं भानवे नमः, अनामयोः—एं रवये नमः, कनिष्ठयोः—ओं दिवाकराय नमः, शिरसि—श्रं सूर्याय नमः, मुखे—इं भास्कराय नमः, हृदि—उं भानवे नमः, गुह्ये—एं रवये नमः, पादयोः—ओं दिवाकराय नमः । "ह्र्चां हृदयाय नमः, ह्र्चीं शिरसे स्वाहा, ह्र्चूं शिखायै वषट्, ह्र्चैं कवचाय हुं, ह्र्चः अस्त्राय फट्, ह्र्चौं नेत्राय बौषट्" इति करयोः कनिष्ठान्तं, हृदादिषु नेत्रान्तं च विन्यस्य, मूलमन्त्रेण व्यापकं विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि यथास्थानं सम्पूज्याऽग्नमीशानकोणे सम्पूज्य, प्राग्वदष्टौ ग्रहान् सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत् कुर्यादिति । तथा—

लक्षाणां त्रितयं मन्त्री जपेद्बीजं च बिम्बयोः ।
मध्यगं जुहुयात्तस्य दशांशेनोत्पलैः शुभैः ।।२७।।

त्रिमध्वक्तैस्तर्प्पणादि कुर्यात् सिद्ध्यति मन्त्रराट् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ।।२८।।

पूर्ववच्चार्घ्यदानं च कुर्यान्मन्त्री समाहितः ।
चतुरङ्गुलसम्भूतैः सुमनोभिः श्रियं लभेत् ।।२९।।

लक्षं हुनेच्च शाल्याज्यतिलविल्वैर्विधानभाक् ।
राजानं वशयेच्छीघ्रं जपाकुसुमहोमतः ।।३०।।

जुहुयान्मातुलुङ्गैस्तु लभेताऽर्थं स वाञ्छितम् ।
एवं यः साधयेन्मन्त्रं तस्य विद्या यशः[1] फलम् ।।३१।।

पुत्रांल्लक्ष्मीश्च सौभाग्यं सर्वदा विजयो भवेत् ।
वृत्तं त्र्यश्रं पुनर्वृत्तं षडश्रं वृत्तयुग्मकम् ।।३२।।

अष्टाश्रकं कलाश्रं च विधानेन लिखेत् क्रमात् ।
वृत्तस्य मध्ये प्रणवं त्रिकोणेऽङ्गारकं न्यसेत् ।।३३।।

गारुडं च पुनर्वृत्ते लिखेत् पञ्चाक्षरं न्यसेत् ।
षट्कोणे चक्रराजं च वर्गषट्कं लिखेत्क्रमात् ।।३४।।

१. क. ख. यशो ।

वृत्तद्वये महासौरं गायत्रीं शिरसा सह ।
अष्टस्वष्टाक्षरं न्यसेदिन्द्रादीन्देवता अपि ॥३५॥

कलाश्रेषु स्वराः प्रोक्ताः श्रीं ह्रीं च विलिखेत्क्रमात् ।
सौरचक्रमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥३६॥

वन्ध्यानां पुत्रजनकं स्त्रीणां सौभाग्यदायकम् ।
राज्ञां विजयदं सम्यग्रोगिणां रोगनाशकृत् ॥३७॥

किं बहूक्तेन विधिना धृतं हस्तेऽखिलप्रदम् ।
उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ॥३८॥

हृद्रोगं मम-शब्दान्ते सूर्यान्ते हरिमापदम् ।
तां च नाशय-शब्दान्तो महासौरमनुर्मतः ॥३९॥

वृत्तमित्यादीनां श्लोकानामयमर्थः—वृत्तं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तद्बहिस्त्र्यश्रे 'ऽङ्गारकमि'ति विलिख्य, पुनर्वृत्ते 'क्षिप ॐ स्वाहा' इति गारुडपञ्चाक्षरमालिख्य, षट्कोणे पूर्वोक्तसुदर्शनचक्रमन्त्रं षडक्षरमालिख्य, तदग्रेषु कवर्गादिवर्गषट्कं विलिख्य, बहिर्वृत्तद्वये 'महासौरं शिरसा सह गायत्रीं' च विलिख्याऽष्टसु कोणेषु 'सौराष्टकमा'लिख्य तदग्रेषु शक्रादिबीजमालिख्य, षोडशदलेषु स्वरांस्तदग्रेषु 'श्रीं ह्रीं' इति बीजद्वयं प्रत्यग्रं लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलं भवति । महासौरमन्त्रस्तु 'उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नि'ति प्रोक्तवैदिकमन्त्रः ।

अथ वक्ष्ये समासेन चतुर्वर्गमनुं रवेः ।
तारो माया दण्डिवियत् सविसर्गोऽस्य पूर्वगः ॥४०॥

तारः प्रणवः, माया भुवनेशीबीजं, वियत् हकारः, दण्डी अनुस्वारः, तेन हं, अस्य पूर्वगः हकारस्य पूर्वार्णः सकारः, सः सविसर्गः विसर्गसहितस्तेन सः । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः सूर्यात्मिका तथा ।
देवता भुवनाधीशा षडङ्गानि ततो न्यसेत् ॥४१॥

तानि प्रणवशक्तिभ्यां त्रिभिरावर्त्तनैरथ ।
तारादिभिश्च षड्दीर्घमायाबीजैर्भवन्ति हि ॥४२॥

भास्वद्रत्नसहस्रमौलिविलसच्चन्द्रार्द्धमुद्योतय-
द्धस्ताब्जैर्दधदङ्कुशं गुणवराभीतीः सुतुङ्गस्तनम् ।
पायाद् गालितकाञ्चनाम्बुजजपाविद्युज्ज्वलत्कान्तिभि-
र्विश्वं द्योतयदार्कमाश्वशिशिरं विश्वेशिकाया वपुः ॥४३॥

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम् ।

नवशक्तिसमायुक्ते पीठे पूर्वोदिते यजेत् ।
मूलेन मूर्त्ति सङ्कल्प्य तत्राऽऽवाह्य दिनेश्वरम् ॥४४॥

सम्पूज्य तस्यावरणान्यर्चयेत्क्रमतः सुधीः ।
हृल्लेखाद्या च गगना परा रक्ता तृतीयका ॥४५॥

करालिका चतुर्थी स्यान्महोच्छुष्मा च पञ्चमी ।
प्रथमावृतिराभिः स्याद् द्वितीयाङ्गैः समीरिता ॥४६॥

तृतीया मातृभिः प्रोक्ता चतुर्थी च ग्रहैर्मता ।
दिक्स्थैः सोमज्ञगुरुभिः सशुक्रैरमरैस्तथा ॥४७॥
विदिग्गतैर्भौमसौरिराहुकेतुभिरादरात् ।

प्रयोगसारे—

स्वनामाद्यक्षरैर्बिन्दुभूषितैरन्वितान् यजेत् ।
भूयस्ततो लोकपालैः पञ्चमी च तदायुधैः ॥४८॥
षष्ठी प्रोक्तैवमभ्यर्च्येद्दिनशो दिननायकम् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीसूर्यरूपिणीभुवनेश्वर्य्यै देवतायै नमः" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुच्चार्य्य, 'ॐ हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुं, ॐ नेत्राय वौषट्, ह्रीं अस्त्राय फट्" इति कर-षडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायामेव देवस्य मूर्त्तौ देवाग्रद-क्षोत्तरपश्चिमेषु—"हृं हृल्लेखायै नमः, गं गगनायै नमः, रं रक्तायै०, कं करालिकायै०, मं महोच्छुष्मायै०" इति सम्पूज्य, प्राग्वत्केसरेषु षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु प्राग्वद् ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्याऽष्टदलाग्रेषु दिग्विदिक्क्रमेण—

"सों सोमाय०, बुं बुधाय०, बृं बृहस्पतये०, शुं शुक्राय०, शं शनैश्चराय०, रां राहवे०, कें केतवे०" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति । तथा—

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥४६॥

ब्रह्मवृक्षसमुद्भूतैः पुष्पैस्त्रिमधुराप्लुतैः ।
सरोजैर्वा ततो देवं तर्पयेदभिषेचयेत् ॥५०॥

ब्राह्मणाराधनं कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
एवं साधितमन्त्रस्तु काम्यकर्माणि साधयेत् ॥५१॥

यजेदेवं प्रतिदिनं रविवारेऽथवा सुधीः ।
दद्यादर्घद्वयमपि भवेत्तस्येप्सितं फलम् ॥५२॥

शारदातिलके—

वियदर्द्धेन्दुललितं तदादिः सर्गसंयुतः ।
अजपाख्यो मनुः प्रोक्तो द्वयक्षरः सुरपादपः ॥५३॥

वियत् हकारः, अर्द्धेन्दुः बिन्दुः, तेन हमिति, तदादिः सकारः, सर्गो विसर्गः, तद्युक्तः तेन सः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

शिरोयुक्तं विष्णुपदं चन्द्रो जिह्वान्वितो मनुः ।
आत्मनो युगवर्णोऽयमजपाख्यो विषापहः ॥५४॥

विष्णुपदं हकारः, शिरो बिन्दुः, चन्द्रः सकारः, जिह्वा विसर्गः ।

ब्रह्मा मुनिः समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द उच्यते ।
देवीपूर्वं देवताऽस्य परमात्मा समीरितः ॥५५॥
षड्दीर्घभाजा च ह-सा विदध्यादङ्गमस्य वै ।

शारदातिलके तु—

ऋषिर्ब्रह्मा स्मृतो देवी गायत्री छन्द ईरितम् ।
देवता जगतामादिः सम्प्रोक्तो गिरिजापतिः ॥५६॥
हसा षड्दीर्घयुक्तेन कुर्यादङ्गक्रिया मनोः ।

पदार्थादर्शे—हं बीजं, सः शक्तिः, सूर्यात्मने हृत्, सोमात्मने शिरः, निरञ्जनात्मने शिखा, निराभासात्मने कवचम्, अव्यक्तात्मने नेत्रं, अतनुः सूक्ष्मप्रचोदयात्मने अस्त्रम् । अत्र यथागुरूपदेशं षडङ्गन्यासो विधेयः ।

सारसङ्ग्रहे—

रक्ताब्जकाञ्चननिभं गुणटङ्कयुक्तै-
हस्तैरभीतिवरदे दधदम्बुजस्थम् ।
गौरीहराङ्ककलितं वपुराश्रयामः,
सौम्याग्निरूपमनिशं गिरिजार्द्धभागम् ॥५७॥

शारदातिलके—

उद्यद्भानुस्फुरिततडिदाकारमर्द्धाम्बिकेशं,
पाशाभीती वरदपरशुं सन्दधानं कराब्जैः ।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः शोभितं विश्वमूलम्,
सौम्याग्नेयं वपुरवतु वः चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम् ॥५८॥

पूर्वोदिते यजेत्पीठे दीप्तादिपरिकल्पिते ।
तत्र देवं यजेन् मूर्ति मूलेनाऽऽकल्प्य मन्त्रवित् ॥५६॥

पूर्वमङ्गैर्यजेन्मन्त्री दिग्दलेषु प्रपूजयेत् ।
क्रमादृतं वसुं तद्वन्नरं पश्चाद्वरं तथा ॥६०॥

विदिग्दलेषु चाऽभ्यर्च्य ऋतजाख्या ततः परम् ।
गोजा अब्जाऽद्रिजा चाऽपि ततो लोकेश्वरा बहिः ॥६१॥

वज्रादीनि ततः पश्चाद्यजेदनुदिनं सुधीः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे–देवीगायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीपरमात्मने देवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम मोक्षार्थे विनियोगः । इति कृताञ्जलिरुक्त्वा "ह्सां हृदयाय नमः, ह्सीं शिरसे स्वाहा, ह्सूं शिखायै वषट्, ह्सैं कवचाय हुं, ह्सौं नेत्राय वौषट्, ह्सः अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यङ्गार्चान्ते दिग्दलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'ऋताय नमः, वसवे०, नराय०, वराय०" विदिग्दलेषु "अब्जायै०, गोजायै०, ऋतजायै०, अद्रिजायै०" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि प्राग्वत्कुर्यादिति ।

जपेद् द्वादशलक्षं तु तद्दशांशं हुनेत्तथा ॥६२॥

सर्प्पिरक्तेन हविषा तर्प्पणादि ततश्चरेत् ।
पूर्वोदितेन विधिना सूर्यायाऽर्घं निवेदयेत् ॥६३॥

कृत्वा सल्लिपिपद्ममत्र च भवेन्मध्ये मनुर्मूलगो,
न्यस्याऽस्योपरि तोयपूर्णकलशं सम्यग्विधायाऽस्य च ।
वक्त्रं वामकरेण मूलमनुना जप्तेन चाऽष्टोत्तरं,
सञ्जप्याऽथ शतं सुधामयमिति स्मृत्वाऽभिषिञ्चेच्च तम् ॥६३॥

साध्यं तेन भवेन्नरो विगतभीः सर्वत्र वीतामयो
दीर्घायुश्च विषद्वयेन रहितो योषिच्च सौभाग्ययुक् ।
तेनैव प्रजपेत् करेण करकं सम्यग्विधायाऽमृती-
भूतस्तैर्विषिणं निषिञ्चति विषं वा कालकूटं हरेत् ॥६४॥

अथवा मनुमत्र जपेत्स्वकरं विषिमूर्द्धनि [वै] सुनिधाय ततः ।
स तु तक्षकदष्टमपीह नरं प्रतिमोचयते ह्यचिरान्मनुना ॥६५॥

सञ्चिन्त्याऽऽशु सुधीः करद्वयगलत्पीयूषधाराप्लुतं,
सञ्जप्तान्तगतं ततः स्रुतसुधासम्भावितं चाऽऽदिमम् ।
मन्त्रस्याऽस्य कृती जपेन्मनुमिमं क्षुद्रामयघ्नं पर-
म्भूतापस्मृतिसर्पजातविकृतीर्हित्वा सुखं जीवति ॥६६॥

शीर्षे चन्द्रविनिःसृतं स्रुतसुधं हंसाण्डरूपं मनुं,
तत्सौषुम्णपथं स वै विमलधीर्नीत्वा ततः स्वां तनुम् ।
व्याप्तां तेन विचिन्त्यतां मनुमिमं सञ्जप्य धीमान् कृती,
रोगापस्मृतिकालकूटदुरितोन्मादान् ज्वरान् संहरेत् ॥६७॥

[1]आकाशानुरचन्द्रखण्डविसरत्पीयूषधारार्चितं,
मन्त्रात्यंसगतार्द्धचन्द्रयुगलप्रोद्भूतभासा मुहुः ।
एवं साधकसत्तमस्य सततं दाहार्तिभूतामयाः,
कृत्याः शत्रुकृताः प्रयान्ति विलयं योगः परोऽयं मतः ॥६८॥

पदार्थादर्शे— अस्य बीजमन्त्रस्य संहितोक्तो विशेष उच्यते ।

१. ख. आकाशादुरचन्द्र० ।

ईश्वर उवाच—

अजपाराधनं देवि कथयामि तवाऽनघे ।
अस्य विज्ञानमात्रेण परं ब्रह्माऽधिगच्छति ।।६९।।

हंसःपदं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः ।
मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते ।।७०।।

श्रीगुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते ततः ।
तस्योच्छ्वासैस्तु निःश्वासैस्तदा बन्धक्षयो भवेत् ।।७१।।

उच्छ्वासे चैव निःश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम् ।
तस्मात्प्राणस्तु हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः ।।७२।।

षष्टिश्वासैर्भवेत्प्राणः षट्प्राणा घटिका मता ।
षष्टिनाड्या अहोरात्रं जपसंख्याऽजपामनोः ।।७३।।

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि ।
प्रत्यहं जपते प्राणी सदानन्दमयीं पराम् ।।७४।।

उत्पत्तिर्जप आरम्भो मृतिरस्य निवेदनम् ।
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः ।।७५।।

अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी ।
एवं जपं महेशानि प्रत्यहं विनिवेदयेत् ।।७६।।

गणेशब्रह्मविष्णुभ्यो हराय परमेश्वरि ।
जीवात्मने क्रमेणैव तथा च परमात्मने ।।७७।।

षट्शतानि सहस्राणि षडेव च तथा पुनः ।
षट्सहस्राणि च पुनः सहस्रं च सहस्रकम् ।।७८।।

पुनः सहस्रं गुरवे क्रमेण तु निवेदयेत् ।
आधारे स्वर्णवर्णेऽस्मिन् वादि-सान्तानि संस्मरेत् ।।७९।।

द्रुतसौवर्णवर्णानि दलानि परमेश्वरि ।
स्वाधिष्ठाने विद्रुमाभे वादि-लान्तानि च स्मरेत् ।।८०।।

विद्युत्पुञ्जप्रभाभानि सुनीले मणिपूरके ।
डफान्तानि महानीलप्रभाभानि च चिन्तयेत् ।।८१।।

पिङ्गवर्णे महावह्निकर्णिकाभानि चिन्तयेत् ।
कादि-ठान्तानि पत्राणि चतुर्थेऽनाहते प्रिये ॥८२॥

विशुद्धौ धूम्रवर्णे तु रक्तवर्णान् स्वरान् स्मरेत् ।
आज्ञायां विद्युदाभायां शुभ्रौ हक्षौ विचिन्तयेत् ॥८३॥

कर्पूरद्युतिसम्राजत्सहस्रदलनीरजे ।
नादात्मकं ब्रह्मरन्ध्रं जानीहि परमेश्वरि ॥८४॥

एतेषु सप्तचक्रेषु स्थितेभ्यः परमेश्वरि ।
जपं निवेदयेदेनमहोरात्रभवं प्रिये ॥८५॥

अजपा नाम गायत्री त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
अजपासदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥

तथा—मनुर्वह्निसमारूढो मस्तकेन च संयुतः ।
वर्माद्यो मनुराख्यातः सङ्ग्रामविजयाभिधः ॥८७॥

मनुः औकारः, वह्नी रेफः, मस्तकः अनुस्वारः, एतेन रौं इति; वर्म हुङ्कारः । तथा—

ऋष्याद्या मन्त्रिभिः प्रोक्ता अजगायत्रभानवः ।
हामाद्यैरङ्गमुद्दिष्टं मनोरस्य दिनेशितुः ॥८८॥

पद्मयुग्मं वराभीती दधानं करपङ्कजैः ।
रक्तपद्मस्थितं भानुं रक्तं ध्यायेत्त्रिलोचनम् ॥८९॥

न्यासपूजादिकं सर्वं त्र्यक्षरोक्तविधानवत् ।
अर्घं पूर्वोदितं कृत्वा सङ्ग्रामे विजयी भवेत् ॥९०॥

॥ अथ सूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् ॥

सुमन्तुरुवाच—

माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां कुरुनन्दन ।
निराहारो रविं भक्त्या पूजयेद्विधिना नृप ॥९१॥१

पूर्वोक्तेन जपेज्जाप्यं देवस्य पुरतः स्थितः ।
शुद्धैकाग्रमना राजन् जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥९२॥२

शतानीक उवाच—

केन मन्त्रेण जप्तेन भगवान्दर्शनं व्रजेत् ।
स्तोत्रेण वाऽपि सविता तन्मे कथय सुव्रत ॥९३॥३

सुमन्तुरुवाच—

स्तुतो नामसहस्रेण यदा भक्तिमता मया ।
तदा मे दर्शनं यातः साक्षाद्देवो दिवाकरः ॥९४॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥९५॥

न तदस्ति भयं किञ्चिद्यदनेन न शाम्यति ।
ज्वराद्विमुच्य राजंस्तोत्रेऽस्मिन्पठिते नरः ॥९६॥

अन्ये च रोगाः शाम्यन्ति पठतः शृण्वतस्तथा ।
सम्पद्यन्ते तथा कामाः सर्व एव यथेप्सिताः ॥९७॥

य एतदाहितः श्रुत्वा सङ्ग्रामं प्रविशेन्नरः ।
स जित्वा समरे शत्रून् गृहमभ्येति सत्तमः ॥९८॥

वन्ध्यानां पुत्रजननं भीतानां भयनाशनम् ।
भूतिकारि दरिद्राणां कुष्ठिनां परमौषधम् ॥९९॥

बालानां चैव सर्वेषां ग्रहरक्षोनिवारणम् ।
पठेदेतद्धि यो राजन् स श्रेयः परमाप्नुयात् ॥१००॥

संसिद्धः सर्वसङ्कल्पः सुखमत्यन्तमश्नुते ।
धर्मार्थिभिर्धर्मलब्ध्यै सुखाय च सुखार्थिभिः ॥१०१॥

राज्याय राज्यकामैश्च पठितव्यमिदं नरैः ।
विद्यावहं तु विप्राणां क्षत्रियाणां जयावहम् ॥१०२॥

पश्वावहं तु वैश्यानां शूद्राणां धर्मवर्द्धनम् ।
पठतां शृण्वतमेतद्भवतीति न संशयः ॥१०३॥

तच्छृणुष्व नृपश्रेष्ठ प्रयतात्मा ब्रवीमि ते ।
नाम्नां सहस्रं विख्यातं देवदेवस्य भास्वतः ॥१०४॥१४

ॐ विश्वविद्विश्वजित् कर्त्ता विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
विश्वेश्वरो विश्वयोनिर्नियतात्मा जितेन्द्रियः: ॥१०५॥१५

कालाश्रयः कालकर्त्ता कालहा कालनाशनः ।
महायोगी महाबुद्धिर्महात्मा सुमहाबलः ॥१०६॥

प्रभुर्विभुर्भूतनाथो भूतात्मा भुवनेश्वरः ।
भूतभव्यो भावितात्मा भूतान्तकरणः[1] कविः ॥१०७॥

शरण्यः कमलानन्दो नन्दनो नन्दवर्द्धनः ।
वरेण्यो वरदो योगी सुसंयुक्तः प्रकाशवान् ॥१०८॥

पद्मायनः परः प्राणः प्रीतात्मा प्रयतां वरः ।
नयः सहस्रपात्साधुर्दिव्यकुण्डलमण्डितः ॥१०९॥

अव्यङ्गधारी धीरात्मा सविता वायुवाहनः ।
समाहितमतिर्द्धाता विधाता कृतमङ्गलः ॥११०॥

कपर्द्दी कालकृद्रुद्रः सुमना धर्मवत्सलः ।
समायुक्तो वियुक्तात्मा कृतात्मा यतिनां वरः ॥१११॥

अविचिन्त्यवपुः श्रेष्ठो महायोगी महेश्वरः ।
कान्तः कामारिरादित्यो नियतात्मा निराकुलः ॥११२॥

कामः कारुणिकः कर्त्ता कमलाकरबोधकः ।
सप्तसप्तिरचिन्त्यात्मा महाकारुणिकोत्तमः ॥११३॥

सञ्जीवनो जीवनीयो जयो जीवो जगत्पतिः ।
अजेयो विश्वनिलयः संविभागी वृषध्वजः ॥११४॥

वृषाकपिः कल्पकर्त्ता कल्पान्तकरणो रविः ।
एकचक्ररथो मौनी सुरथो रथिनां वरः ॥११५॥

अक्रोधनो रश्मिमाली तेजोराशिर्विभावसुः ।
सर्वकृद्दिनकृद्देवो देवदेवो दिवःपतिः ॥११६॥२६

---

१. भूतान्तेकरणः ।

दिननाथो हरो होता दिव्यबाहुर्दिवाकरः ।
यज्ञो यज्ञपतिः पूषा स्वर्णरेताः परावरः ॥११७॥२७

परावरज्ञस्तरणिरंशुमाली मनोहरः ।
प्राज्ञः प्रजापतिः सूर्यः सविता विष्टरोऽशुमान् ॥११८॥

सदागतिर्गन्धवहो विहितो विधिराशुगः ।
पतङ्गः पतगः स्थाणुर्विहङ्गो विहगो वरः ॥११६॥

हर्यश्वो हरिताश्वश्च हरिदश्वो जगत्प्रियः ।
त्र्यम्बकः सर्वदमनो भावितात्मा भिषग्वरः ॥१२०॥

आलोककृल्लोकनाथो लोकालोकनमस्कृतः ।
कालः कल्पान्तको वह्निस्तपनः सम्प्रतापनः ॥१२१॥

विरोचनो विरूपाक्षः सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
सहस्ररश्मिर्मिहिरो विविधाम्बरभूषणः ॥१२२॥

खगः प्रतर्दनो धन्यो हयगो वाग्विशारदः ।
श्रीमानशिशिरो वाग्मी श्रीपतिः श्रीनिकेतनः ॥१२३॥

श्रीकण्ठः श्रीधरः श्रीमान् श्रीनिवासो वसुप्रदः ।
कामचारी महामायो महेशो विदिताशयः ॥१२४॥

तीर्थक्रियावान् सुनयो विभवो भक्तवत्सलः ।
कीर्त्तिः कीर्त्तिकरो नित्यः कुण्डली कवची रथी ॥१२५॥

हिरण्यरेताः सप्ताश्वः प्रयतात्मा परन्तपः ।
बुद्धिमानमरश्रेष्ठो[1] रोचिष्णुः पाकशासनः ॥१२६॥

समुद्रो धनदो धाता मान्धाता कश्मलापहः ।
तमोघ्नो ध्वान्तहा वह्निर्होताऽन्तकरणो गुहः ॥१२७॥

पशुमान् प्रयतानन्दो भूतेशः श्रीमतां वरः ।
नित्योदितो नित्यरथः सुरेशः सुरपूजितः ॥१२८॥

अजितो विजयो[2] जेता जङ्गमस्थावरात्मकः[3] ।
जीवानन्दो नित्यगामी विजेता विजयप्रदः ॥१२६॥३६

१. क. बुद्धिमानपरश्रेष्ठो । २. ख. विजितो। ३. ख. जङ्गमः स्थावरात्मकः ।

पर्जन्योऽग्निः स्थितिः स्थेयः स्थविरोऽणुर्निरञ्जनः ।
प्रद्योतनो रथारूढः सर्वलोकप्रकाशकः ॥१३०॥४०

ध्रुवो मेधी महावीर्यो हंसः संसारतारकः ।
सृष्टिकर्त्ता क्रियाहेतुर्मार्त्तण्डो मरुतां पतिः ॥१३१॥

मरुत्वान् दहनस्त्वष्टा भगो भाग्योऽर्यमा कविः ।
वरुणोंऽशो जगन्नाथः कृतकृत्यः सुलोचनः ॥१३२॥

विवस्वान् भानुमान् कार्यं कारण तेजसां निधिः ।
असङ्गगामी तिग्मांशुर्धर्मांशुर्धर्मदीधितिः ॥१३३॥

सहस्रदीधितिर्ब्रध्नः सहस्रांशुर्दिवाकरः ।
गभस्तिमान् दीधितिमान् स्रग्विवानमलद्युतिः ॥१३४॥

भास्करः सुरकार्यज्ञः सर्वज्ञस्तीक्ष्णदीधितिः ।
सुरज्येष्ठः सुरपतिर्बहुज्ञो वचसां पतिः ॥१३५॥

तेजोनिधिर्बृहत्तेजा बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः ।
अहिमानूर्ज्जितो धीमानामुक्तिः[1] कीर्त्तिवर्द्धनः ॥१३६॥

महावैद्यो गणपतिर्गणेशो गणनायकः ।
तीव्रः प्रतापनस्तापी तपनो विश्वतापनः ॥१३७॥

कार्त्तस्वरो हृषीकेशः पद्मानन्दोऽभिनन्दितः ।
पद्मनाभोऽमृताहारः स्थितिमान् केतुमान्नभः ॥१३८॥

अनांद्यन्तोऽच्युतो विश्वो विश्वामित्रो घृणिर्विराट् ।
आमुक्तकवचो वाग्मी कञ्चुकी विश्वभावनः ॥१३९॥

अनिमित्तमतिश्रेष्ठः शरण्यः सर्वतोमुखः ।
विगाही रेणुरहसः समायुक्तः समाक्रतुः ॥१४०॥

धर्मकेतुर्धर्मगतिस्संहर्त्ता संयमो यमः ।
प्रणतार्त्तिहरो मायः सिद्धकार्यो जयेश्वरः ॥१४१॥

नभो विगाहनस्सत्यो मितात्मा सुमनोहरः ।
हारी हरिर्हृदो वायुर्ऋतुः कालानलद्युतिः ॥१४२॥५२

---

१. ख. धीमानायुक्तः ।

सुखसेव्यो महातेजा जगतामन्तकारणम् ।
महेन्द्रो निष्ठुरः[1] स्तोत्रं स्तुतिहेतुः प्रभाकरः ॥१४३॥५३

सहस्रकर आयुष्मानरोगः सुखदः सुखी ।
व्याधिहा सुमुखः सौख्यं कल्याणं कल्पतां वरः ॥१४४॥

अरोगकरणं सिद्धिर्वृद्धिऋद्धिरहःपतिः ।
हिरण्यरेता आरोग्यं विद्वान् बुद्धो बुधो महान् ॥१४५॥

प्राणवान् धृतिमान् धर्मो धर्मकर्त्ता रुचिप्रदः ।
सर्वप्रियः सर्वसहः सर्वशत्रुनिवारणः ॥१४६॥

अंशुविद्योतनो द्योतो सहस्रकिरणः कृतीः ।
केयूरो भूषणोद्भासी भासितो भासितानलः ॥१४७॥

शरण्यार्त्तिहरो होता खद्योतः खगसत्तमः ।
सर्वद्योतो भवद्योतः सर्वद्युतिहरो मतः ॥१४८॥

कल्याणदः कल्पनकृत् कल्पः कल्पकरः कविः ।
कल्पान्तकृत् कल्पवपुः सर्वकल्याणभाजनम् ॥१४९॥

वर्च्चस्वी वर्च्चसामीशस्त्रैलोक्येशो वशानुगः ।
तेजस्वी वयसा वर्णी वर्णाध्यक्षो बलिप्रियः ॥१५०॥

यशस्वी वेदनिलयस्तेजस्वी प्रकृतिस्थिरः ।
आकाशगः शीघ्रगतिराशुगो गतिमान् खगः ॥१५१॥

गोपतिर्ग्रहदः श्रेष्ठो गोप्ताऽनेकप्रभञ्जनः ।
जनिता प्रजनंजीवी दीपः सर्वप्रकाशकः ॥१५२॥

कर्मसाक्षी योगनित्यो नभस्वानसुरान्तकः ।
रक्षोघ्नो विघ्नशमनः किरीटी प्रशमप्रियः ॥१५३॥

मरीचिमाली सुमतिः कृतातिथ्यो विशेषकः ।
शिष्टाचारः शुभाचारः स्वाचाराचारतत्परः ॥१५४॥
मन्दारो माठरो रेहः सुधापः पाक्षिको गुरुः ।
अविशिष्टो विशिष्टात्मा विधेयो ज्ञानशोभनः ॥१५५॥६५

१. निष्ठुतः ।

महाश्वेतप्रियो ज्ञेयः सामगो मोक्षदायकः ।
सर्ववेदप्रगीतात्मा सर्ववेदालयो लयः ॥१५६॥६६

वेदमूर्त्तिश्चतुर्वेदो वेदभृद्वेदपारगः ।
क्रियावानसितो जिष्णुर्वरीयांश्च वरप्रदः ॥१५७॥

ब्रह्मचारी व्रतधरो लोकबन्धुरलङ्कृतः ।
अलङ्कारोऽक्षरो विद्या विद्यावान् विदिताशयः ॥१५८॥

आकाशो भूषणो भूष्यो जिष्णुर्भुवनपूजितः ।
चक्रपाणिर्वज्रधरः सुरेशो लोकवत्सलः ॥१५९॥

राज्ञाम्पतिर्महाबाहुः प्रकृतिर्विकृतिर्गुणः ।
अन्धकारापहश्श्रेष्ठो[1] युगावर्त्तो युगादिकृत् ॥१६०॥

अप्रमेयः सदाऽयोनिर्निरहङ्कार ईश्वरः ।
शुभप्रदः शुभः शोभी शुभकर्म शुभप्रदः ॥१६१॥

सत्यवान् स्तुतिमानुच्चैर्नकारो वृद्धिदोऽनलः ।
बलभृद्बलदो बन्धुर्महिमा ज्वलतां वरः ॥१६२॥

अनङ्गो नागराडिन्द्रः पद्मयोनिर्गणेश्वरः ।
संवत्सरऋतुर्नेता कालचक्रप्रवर्त्तकः ॥१६३॥

पद्मेक्षणः पद्मयोनिः प्रभावानमरप्रभः ।
सुमूर्त्तिः सुमतिः सोमो गोविन्दो जगदादिजः ॥१६४॥

पीतवासाः कृष्णवासा दिग्वासाऽतीन्द्रियो हरिः ।
अतीन्द्रो नैकरूपात्मा स्कन्दः परपुरञ्जयः ॥१६५॥

शक्तिमाञ् शूलधृग्धीमान् मोक्षहेतुरयोनिजः ।
सर्वदर्शी जितादर्शो दुःस्वप्नाशुभनाशनः ॥१६६॥

माङ्गल्यकर्त्ता तरणिर्वेगवान् कश्मलापहः ।
स्पष्टाक्षरो महामन्त्रो विशाखो जननप्रियः ॥१६७॥७७

---

१. ख. अन्धकारापहः श्रेष्ठो ।

विश्वकर्मा महाशक्तिर्ज्योतिरीशो विहङ्गमः ।
विचक्षणो दक्ष इन्द्रः प्रत्यूषः प्रियदर्शनः ॥१६८॥७८

अश्विनो वेदनिलयो वेदविद्विदिताशयः ।
प्रभाकरो जितरिपुः सुजनोऽरुणसारथिः ॥१६९॥

कुबेरः सुरथः स्कन्दो महितोऽभिमतो गुरुः ।
ग्रहराजो ग्रहपतिर्ग्रहनक्षत्रमण्डलः ॥१७०॥

भास्करः सततानन्दो नन्दनो नरवाहनः ।
सुमङ्गलो मङ्गलवान् मङ्गल्यो मङ्गलालयः ॥१७१॥

माङ्गल्यचारुचरितः शीर्णसर्वव्रतो व्रती ।
चतुर्मुखः पद्ममाली पूतात्मा प्रणतार्तिहा ॥१७२॥

अकिञ्चनः सत्यसन्धो निर्गुणो गुणवाञ् शुचिः ।
सम्पूर्णः पुण्डरीकाक्षो विधेयो गतितत्परः ॥१७३॥

सहस्रांशुर्ऋतुपतिः सर्वस्वः सुमतिः सुवाक् ।
सुवाहनो माल्यदामा कृताहारो हरिप्रियः ॥१७४॥

ब्रह्मा प्रचेताः प्रथितः प्रगीतात्मा स्थिरात्मकः ।
शतबिन्दुः शतमखो गरीयाननलप्रभः ॥१७५॥

धीरो महत्तरो वित्तः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
विद्याराजाधिराजो हि विद्यावान् भूतिदः स्थिरः ॥१७६॥

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् विपाप्मा बहुमङ्गलः ।
सुस्थिरः सुरथः स्वर्णो मोक्षाधारो निकेतनः ॥१७७॥

निर्द्वन्द्वो द्वन्द्वहा सर्गः सर्वगः सम्प्रकाशकः ।
दयालुः सूक्ष्मधीः क्षान्तिः क्षमाक्षेमस्थितिप्रियः ॥१७८॥

भूधरो भूपतिर्वक्ता पवित्रात्मा त्रिलोचनः ।
महावराहप्रियकृद्दाता भोक्ताऽभयप्रदः ॥१७९॥

चतुर्वेदधरोऽचिन्त्यो विनिद्रो विविधासनः ।
चक्रवर्ती धृतिकरः सम्पूर्णायो महेश्वरः ॥१८०॥९०

विचित्ररथ एकाकी सप्तसप्तिः परावरः ।
सर्वोदधिस्थितिकरः स्थितिः स्थेयः स्थितिप्रदः ॥१८१॥६१

निष्कलः पुष्कलनभो वसुमान् वासवप्रियः ।
वसुमान् वासवस्वामी वसुधाता वसुप्रदः ॥१८२॥

बलवान् ज्ञानवाँस्तत्वमोङ्कारस्त्रिषु संस्थितः ।
सङ्कल्पयोनिर्दिनकृद् रङ्गमान्(वान्?) करुणावहः ॥१८३॥

नीलकण्ठो धनाध्यक्षश्चतुर्वेदः प्रियंवदः ।
वषट्कारो हुतं होतुः स्वाहाकारो हुताकृतिः ॥१८४॥

जनार्दनो जनानन्दो नरो नारायणोऽम्बुदः ।
सन्देहक्षेपणो वायुरायुः शूरनमस्कृतः ॥१८५॥

विग्रही विमलो बिन्दुर्विशोको विमलद्युतिः ।
द्योतितो द्योतनो विद्युर्विद्युत्वान् वारिदो बली ॥१८६॥

धर्मदो हि मदो मोहः कृष्णवर्त्मा सभाजितः ।
सावित्रीभावतो राजा विस्तृतोऽब्धिघृ णिर्ब्विराट् ॥१८७॥

सप्तार्चिः सप्ततुरगः सप्तलोकनमस्कृतः ।
सम्पन्नोऽथ जगन्नाथः सुमनाः शोभनप्रियः ॥१८८॥

सर्वात्मा सर्वकृत् सृष्टिः सप्तिमान् सप्तमीप्रियः ।
प्रमेधा मेधिको मेध्यो मेधावी मधुसूदनः ॥१८९॥

अङ्गिरा गतिकालज्ञो धूमकेतुः सुकेतनः ।
सुखी सुखप्रदः सौख्यं कान्तिः कान्तिप्रियो मुनिः ॥१९०॥

सन्तापनः सन्तपन आतपस्तपसां निधिः ।
उस्रापतिः सहस्रोस्रो (स्रः?) प्रियकारी प्रियङ्करः ॥१९१॥

प्रीतिर्विमन्युरम्भो द्यौः खं जगज्जगताम्पतिः ।
जगत्पिता प्रीतमनाः सर्वोऽखर्वो गुहोऽचलः ॥१९२॥

सर्वदो जगदानन्दो जगन्नेता सुरारिहा ।
श्रेयः श्रेयस्करो ज्यायानुत्तमोत्तम उत्तमः ॥१९३॥

उत्तमो मेरुमेयो योधा रणो धरणीधरः ।
धाराधरो धर्मराजो धर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥१९४॥१०४

रथाध्यक्षो रथपतिस्त्वरगो नमितोऽनिलः ।
उत्तरोऽनुत्तरस्तापी तारापतिरपाम्पतिः ॥१९५॥१०५

पुण्यसङ्कीर्त्तितः पुण्यो हेतुर्लोकत्रयाश्रयः ।
स्वर्भानुर्विगतारिष्टो विशिष्टोऽशिष्टकर्मकृत् ॥१९६॥

व्याधिप्रणाशनः क्षेमः शूरः सर्वजितां वरः ।
एकनाथो रथाधीशः शनैश्चरपिता सितः ॥१९७॥

वैवस्वतगुरुर्मन्युर्द्धर्मनित्यो महाव्रतः ।
प्रलम्बहारसन्धारी प्रद्योतो द्योतितानलः ॥१९८॥

सन्तानकृत्परो मन्त्रो मन्त्रमूर्त्तिर्महाबलः ।
श्रेष्ठात्मा सुप्रियः शम्भुर्मरुतामीश्वरेश्वरः ॥१९९॥

संसारगतिविच्छेत्ता संसारार्णवतारकः ।
सप्तजिह्वः सहस्रार्ची रत्नगर्भोऽपराजितः ॥२००॥

धर्मकेतुरमेयात्मा धर्माधर्मवरप्रियः ।
लोकसाक्षी लोकगुरुर्लोकेशश्छन्दवाहनः ॥२०१॥

धर्मयूपो द्युवृक्षश्च धनुःपाणिर्द्धनुर्द्धरः ।
पिनाकधृङ् महोत्साहो नैकमायो महासनः ॥२०२॥

वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
ज्ञानगम्यो दुराराध्यो लोहिताङ्गो ऽरिमर्द्दनः ॥२०३॥

खखोत्थो[1] धर्मदो नित्यो धर्मकृच्च त्रिविक्रमः ।
भगवान् स्वामिरेवन्तस्त्र्यक्षरो नीललोहितः ॥२०४॥

एकोऽनेकस्त्रयी व्याप्तः सविता समितिञ्जयः ।
शार्ङ्गधन्वा नलो भीमः सर्वप्रहरणायुधः ॥२०५॥

अर्हणः परमेष्ठी च नाकपालो दिविस्थितः ।
वदान्यो वासुकिर्वैद्य आत्रेयोऽन्यपराक्रमः ॥२०६॥११६

१. क. खद्योत्थो ।

द्वापरः परमोदारः परमब्रह्मचर्यवान् ।
उदीच्यवेशो मुकुटी पद्महस्तो हिमांशुभृत् ॥२०७॥११७

स्मितप्रसन्नवदनः पद्मोदरनिभाननः ।
सायं दिवाऽदित्यवपुरनिर्द्देशो महारथः ॥२०८॥

महारथो महानीशः सेव्यसत्वरजस्तमः ।
धृतातपत्रप्रतिमो विमर्शी निर्णयप्रियः ॥२०९॥

अहिंसकः शुद्धमतिरद्वितीयोऽरिमर्द्दनः ।
सर्वदो धनदो मोक्षो विहारी वसुदायकः ॥२१०॥

धातुरार्त्तिहरो नाथो भगवान्सर्वगोऽव्ययः ।
मनोहरवपुः शुभ्रः शोभनः सुप्रभावनः ॥२११॥

सुप्रभः सुप्रभकरः सुनेत्रो निःक्षमापतिः ।
राजप्रियः शुद्धकरो महेशस्तिमिरापहः ॥२१२॥

सैंहिकेयरिपुर्देवो वरदो वरनायकः ।
चतुर्भुजो महायोगी योगीश्वरपतिस्तथा ॥२१३॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
नाम्नां सहस्रं सवितुः पाराशर्यो यदाह मे ॥२१४॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं दुष्टदुःस्वप्ननाशनम् ।
बन्धमोक्षकरं चैव भानोर्नामानुकीर्त्तनम् ॥२१५॥

यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा प्रयतो नरः ।
अक्षयं स्वल्पमन्नाद्यं भवेत्तस्योपसाधितम् ॥२१६॥

नृपाग्नितस्करभयं व्याधिभ्यो न भयं भवेत् ।
विजयी च भवेन्नित्यं श्रेयश्च समवाप्नुयात् ॥२१७॥

कीर्त्तिमान् सुभगो विद्वान् सुमुखी प्रियदर्शनः ।
भवेद्वर्षशतायुष्यं सर्वबाधाविवर्जितः ॥२१८॥१२८

नाम्ना सहस्रमिदमंशुमतः पठेद्यः ।
प्रातः शुचिर्नियमवान् सुसमाधियुक्तः ।

दूरेण तं परिहरन्ति सदैव रोगा
भीताः सुपर्णमिव सर्वमहोरगेन्द्राः ॥२१६॥१२६

॥ इति श्रीभविष्यपुराणे सूर्यसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ द्वाविंशस्तरङ्गः ॥२२॥

———

[त्रयोविंशस्तरङ्गः]

॥ अथाऽत्र सूर्यमन्त्रप्रसङ्गतश्चन्द्रादिग्रहमन्त्रा अपि उद्ध्रियन्ते ॥ तत्र श्रीसारसङ्ग्रहे—

चन्द्रमन्त्रं प्रवक्ष्यामि मन्त्रिणां हितकाम्यया ।
सम्पत्प्रदं चतुर्वर्गफलदं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥

व्योमादिर्म्मनुपूर्वस्थो विन्दुयुग् भृगुसद्यतः ।
रविराननवृत्ताढ्यो मरुद्दीर्घाविषस्तथा ॥२॥
कलान्त्ययुक् षडर्णोऽयं सोममन्त्र उदाहृतः ।

व्योमादिः सकारः, मनुपूर्वः ओकारः, बिन्दुरनुस्वारस्तेन सों इति । भृगुः सकारः, सद्य ओकारस्तेन सो इति; रविर्भकारः, आननवृत्त आकारस्तेन मा; मरुत् यकारः, दीर्घानकारः, विषं मकारः अन्त्यकला विसर्गः तेन मः इति । सोमिति स्थाने स्वौं इत्यपि बीजमुद्धृतं तत्रैव ।

भृग्वम्बुमन्विदुखण्डमपरे बीजमूचिरे ॥३॥

भृगुः सकारः, अम्बु वकारः, मनुरौकारः, इन्दुखण्ड अनुस्वारस्तेन स्वौं इति ।

शारदातिलकेऽप्येवमेव बीजमुद्धृतम् । यथा—

अथोच्यते चन्द्रमसो मनुः सर्वसमृद्धिदः ।
खड्गीशस्थो भृगुर्बिन्दुमनुस्वरसमन्वितः ॥४॥
सोमाय हृदयान्तोऽयं प्रोक्तो मन्त्रः षडक्षरः ।

खड्गीशो वकारः, भृगुः सकारः, बिन्दुरनुस्वारः, मनुस्वर औकारः ।

पदार्थादर्शे तु 'प्रणवप्रासादसम्पुट' इति केचन, 'श्रीकामैः श्रीपुटः कार्यं' इत्यपरे ।

शारदातिलके—

ऋषिरुक्तो भृगुश्छन्दः पङ्क्तिः सोमोऽस्य देवता ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

ऋषिर्भृगुः पङ्क्तिश्छन्दो देवता चन्द्रमाः स्मृतः ।

पदार्थादर्शे—स्वौं बीजं आयेति शक्तिः । **पद्मपादाचार्यैः** ओमिति शक्तिरुद्धृता । **अन्यत्र** तु—"ऋषिरत्रविराट् छन्दो बीजमाद्यमुदाहृतम् । नमः शक्तिरिति" ।

शारदातिलके—

दीर्घभाजा स्वबीजेन मनोरङ्गक्रिया मता ।

स्वबीजेन मन्त्राद्यबीजेन, मन्त्राद्यबीजे स्व इति बीजेन वेति **पदार्थादर्शे** ।

सारसङ्ग्रहे—

सदीर्घनिजबीजेन षडङ्गानि मनोः क्रमात् ।
एवं विन्यस्य मन्त्रज्ञो द्विजराजं विचिन्तयेत् ॥५॥

श्वेताब्जस्थः स्फटिकरजतप्रोल्लसत्कान्तिरुच्चै-
　　र्मुक्ताहारप्रलसिततनुर्नीलकेशौघरम्यः ।
हस्ताब्जाभ्यां कुमुदवरदे धारयन्नः शशाङ्को
　　भूत्यै भूयादभिमतरमामुञ्चकोद्यत्कलङ्कः ॥६॥

वामदक्षाभ्यां कुमुदवरदे ।

पीठे धर्मादिभिर्युक्ते गदिते परिपूज्य च ।
चन्द्रमण्डलपर्यन्तं ततः सम्पूजयेद्विभुम् ॥७॥

पीठशक्तयस्तु स्वायम्भुव उक्ताः ।

अमृता तारका ज्योत्स्ना विमला व्यापिनी तथा ।
चित्रा च कृत्तिका कान्तिः श्रवणा नव शक्तयः ॥८॥
अमृतान्ते कलात्मने संवित्पीठाय वै नमः ।

पद्मपादाचार्यैस्तु राकाद्या उक्ताः—

राका कुमुद्वती[1] नन्दा सुधा सञ्जीवनी क्षमा ॥९॥

आप्यायनी चन्द्रिका च ह्लादिनी नव शक्तयः ।
पूर्वादिक्रमतो मन्त्री नत्यन्ताः पूजयेदिमाः ॥१०॥

शारदातिलके—

अङ्गानि केसरेषु स्युस्तद्भ्यः पत्रमध्यगाः ।
रोहिणी कृत्तिका भूयो रेवती भरणी पुनः ॥११॥

रात्रिरार्द्रा ततो ज्योत्स्ना कला हारसमप्रभाः ।
सितमाल्याम्बरधरा मुक्ताहारविभूषणाः ॥१२॥

पयोधरभराक्रान्ता रचिताञ्जलयः शुभाः ।
वल्लभासक्तमनसो मदविभ्रममन्थराः ॥१३॥

समभ्यर्च्याः सरोजाक्ष्यश्चन्द्रबिम्बनिभाननाः ।
आदित्यमङ्गलबुधमन्दवाक्पतिराहवः ॥१४॥

शुक्रकेतुयुताः पूज्या दलाग्रेषु ग्रहा इमे ।
स्वस्ववर्णाः स्वरोपेताः स्वनामाद्यर्णबीजकाः ॥१५॥

रक्तारुणश्वेतनीलपीतधूम्रसितासिताः ।
[2]वामोरुन्यस्ततद्धस्ता दक्षिणेन धृताभयाः ॥१६॥

अम्बुजाढ्यकरो भानुर्दंष्ट्राभीममुखः शनिः ।
राहुर्विकृतवक्त्रः स्यात् कराभ्यां विधृताञ्जलिः ॥१७॥
लोकपालास्ततः पूज्या वज्राद्यैस्तैः सह क्रमात् ।

ग्रहार्चाक्रमस्तु पदार्थादर्शे—

पूर्वदक्षिणपाश्चात्यसौम्यपत्राग्रकेषु च ।
रविश्चान्द्रिर्गुरुः शुक्रः सम्पूज्याः साधकैरमी ॥१८॥
आग्नेयादिषु कोणेषु भौममन्दाहिकेतवः ।

अहिः राहुः ।

---

१. क कुमुद्विती । २. ख. वामोतु० ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायमत्रयं कृत्वा, "शिरसि-भृगुऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदये—श्रीचन्द्रमसे देवतायै नमः, गुह्ये—सों बीजाय नमः, पादयोः—नमः शक्तये नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोग-मुक्त्वा, 'सां सीं' मित्यादि करषडङ्गन्यास कृत्वा, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिक-र्णिकान्तं योगपीठं सम्पूज्याऽर्कमण्डलं वन्हिमण्डलं च सम्पूज्य, पश्चात् सोम-मण्डलमभ्यर्च्य, सत्वादिपरतत्वार्चान्तेऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिमध्यान्तं "राकायै नमः, कुमुद्वत्यै नमः, नन्दायै नमः, सुधायै०, सञ्जीवन्यै०, क्षमायै०, आप्यायिन्यै०, चन्द्रिकायै, ह्लादिन्यै०" इति सम्पूज्य, अथवाऽमृताद्याः कलाः सम्पूज्य, 'अमृत-कलात्मने संवित् पीठाय नम' इति पीठं सम्पूज्याऽऽवाहनादिषडङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु 'रोहिण्यै नमः, कृत्तिकायै०, रेवत्यै०, भरण्यै०, रात्र्यै०[1], आर्द्रायै०, ज्योत्स्नायै०, कलायै०," इति सम्पूज्य दिग्दलाग्रेषु "रं रवये०, बुंबुधाय०, गुं गुरवे०, शुं शुक्राय०, कोणदलाग्रेषु—भौं भौमाय०, मं मन्दाय०, रां राहवे०, कें केतवे नम" इति सम्पूज्य लोकपालार्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति ।

शारदातिलके—

रसलक्षं जपेन्मन्त्रं साधको विजितेन्द्रियः ।
षट्सहस्रं प्रजुहुयात् पायसेन ससर्पिषा ॥१९॥

सारसङ्ग्रहे—

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तत्सहस्रकम् ।
हविषा घृतसिक्तेन तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥२०॥
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकस्य न संशयः ।

शारदातिलके—

एव सिद्धमनुर्मन्त्री सम्पदां वसतिर्भवेत् ।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं तारहारविभूषितम् ॥२१॥

तारापतिं स्मरन्मन्त्री त्रिसहस्रं मनुं जपेत् ।
राज्यैश्वर्यं दरिद्रोऽपि प्राप्नुयात् वत्सरान्तरे ॥२२॥

---

१. ख. नास्ति ।

सारसङ्ग्रहे तु चन्द्रस्य शिरसि ध्यानमुक्तम् । यथा[1]—

चन्द्रं शिरसि सञ्चिन्त्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
त्रिसहस्रं तेन लभेद्राज्यैश्वर्यमकिञ्चनः ॥२३॥

शारदातिलके—

पूर्वोक्तसंख्यं प्रजपेच्छशिनं मूर्द्धिन चिन्तयन् ।
रोगापमृत्युदुःखानि जित्वा वर्षशतं वसेत् ॥२४॥

ब्रह्मचर्यरतः शुद्धश्चतुर्ल्लक्षमिमं जपेत् ।
निधानं भूगतं सद्यः प्राप्नुयाद्यत्नवर्जितम् ॥२५॥

सारसङ्ग्रहे तु—

लघुमिष्टहविष्याशी जलस्थो विजितेन्द्रियः ।
वेदलक्षमनुं मन्त्रं प्रजपेद्यतमानसः ॥२६॥
धरागतं निधानं स ध्रुवं प्राप्नोति तत्क्षणात् ।

शारदातिलके—

जितेन्द्रियो जपेन्मन्त्रं पौर्णमास्यां विशेषतः ।
भवेत्सौभाग्यनिलयः सम्पदामपरो निधिः ॥२७॥

घोरान् ज्वरान् शिरोरोगानभिचारानुपद्रवान् ।
विषाणामपि सङ्घातं नाशयेन् मनुनाऽमुना ॥२८॥

सारसङ्ग्रहे—

घोरज्वरे महावलेशे शिरोरोगे च दारुणे ।
शत्रूत्पादितकृत्यासु कामलाद्यामयेषु च ॥२९॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं तच्छान्तिरचिराद्भवेत् ।

शारदातिलके—

पौर्णमास्यां निराहारो दद्यादर्घ्यं विधूदये ।
प्राक्प्रत्यगायतं कुर्याद्भूतले मण्डलत्रयम् ॥३०॥

---

१. ख. तथा । २. ख. प्राप्नुयाद्यत्नवर्जितम् ।

निषण्णः पश्चिमे मन्त्री मण्डले विहितासने ।
मध्यस्थे स्थापयेत् पश्चात् पूजाद्रव्याण्यशेषतः ॥३१॥

अन्यस्मिन्मण्डले सोममर्चयित्वाऽम्बुजान्विते ।
राजतं चषकं तत्र स्थापयेत् पुरतः सुधीः ॥३२॥

गोदुग्धेन समापूर्य स्पृष्ट्वा तं प्रजपेन्मनुम् ।
अष्टोत्तरशतं पश्चाद्विद्यामन्त्रेण देशिकः ॥३३॥

दद्यादर्घ्यं शशाङ्काय सर्वकामार्थसिद्धये ।
अनेन विधिना कुर्वन् प्रतिमासमतन्द्रितः ॥३४॥

षण्मासाभ्यन्तरे सिद्धिं साधकेन्द्रः समश्नुते ।
श्रियमत्यूर्जितां पुत्रान् सौभाग्य पुष्कलं यशः ॥३५॥

कन्यामिष्टामवाप्नोति कन्याऽपि वरमाप्नुयात् ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वं दद्यान्निशापतिः ॥३६॥

पदार्थादर्शे—सुधीरित्यनेनैतदुक्तं भवति—विलोमं मन्त्रं जपन् पूरणं, कर्पूरादीनां कुमुदादीनां च पुष्पाणां तत्र निक्षेप इति । यदाहुः—

संस्थाप्य राजतं तत्र चषकं परिपूरयेत् ।
विलोमं प्रजपन् मन्त्रं गव्येन पयसा सुधीः ॥३७॥

क्षिपेच्च तत्र कर्पूरशीतकाश्मीरकाक्षतान् ।
कुशग्रन्थि यवांश्चैव पुष्पाण्येतानि चाऽऽदरात् ॥३८॥

कुमुदेन्दीवरस्वर्णकेतकी नवमल्लिका ।
चम्पकानि यथालाभं शतपत्राणि च क्षिपेत् ॥३९॥

आवाहयेच्चन्द्रबिम्बान्निजाद्वा हृदयाद्विभुम् ।
एवं समावाह्य गन्धपुष्पाद्यैरर्चयेद्विधुम् ॥४०॥ इति ।

'निराहारोऽर्घं दद्यादि'त्युक्तत्वादर्घ्यदानानन्तरं रात्रौ भोजनं न निषिद्धम्। 'कन्यापी'त्यनेनैवमादिषु स्त्रिया अप्यधिकार इत्युक्तं भवति । **विद्यामन्त्रस्तु—**

सारसङ्ग्रहे—

विद्ये विद्यामालिनियुक्चन्द्रिण्यन्ते च चन्द्रयुक् ।
मूर्ध्नि शिरोन्त्यस्तारादो विद्यामनुरयं मतः ॥४१॥

विद्ये विद्यामालिनि-स्वरूपं, चन्द्र-स्वरूपं, मुखि-स्वरूपं, शिरोन्त्यः स्वाहान्त्यः ।

यन्त्रसारे—

षट्कोणे कर्णिकायां टपरपरिलसत्तारमश्रेषु मन्त्रं,
षड्वर्णं चाऽष्टपत्रे स्वरयुगललसत्केसरे युग्मशोऽर्णान् ।
विद्यामन्त्रस्य काद्यैर्वृतमवनिपुराश्रिस्थवं बीजमुक्तं,
यन्त्रं सोमस्य कान्तिद्रविणसुतयशःश्रीप्रदं क्ष्वेडहारि ॥४२॥

अस्यार्थः—अष्टदलकमलकर्णिकायां षट्कोणमध्ये प्रणवोदरे ससाध्यं ठं बीजं विलिख्य, षट्सु कोणेषु सोमस्य षडक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्याऽष्टदल-केसरेषु स्वरान् द्विशो द्विशो विलिख्याऽष्टदलेषु विद्यामन्त्रस्य प्रणवरहितान् षोडशवर्णान् द्वन्द्वशो विलिख्य, बहिर्वृत्तयोरन्तराले कादिक्षान्तवर्णैरावेष्ट्य, बहिश्चतुरश्रकोणेषु वं बीजं विलिखेदेतदुक्तफलदं भवति ।

अथ **भौममनुं** वक्ष्ये सर्वरोगनिवारणम् ।
सबिन्द्वाद्यद्वयं प्रोक्त्वा गारकाय हृदन्तिकः ॥४३॥

अष्टवर्णो मनुः प्रोक्तोऽङ्गारकस्य मनीषिभिः ।

सबिन्द्वाद्यद्वयं अं अं इति, गारकाय-स्वरूपं, हृन्नमः ।

ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्री भूमिपुत्राः समीरिताः ॥४४॥

अङ्गषट्कं चाऽस्य मनोर्निजबीजेन सम्मतम् ।
नमाम्यङ्गराकं रक्तं रक्ताम्बरविभूषणम् ॥४५॥

जानुस्थवामहस्ताढ्यं सभयेतरपाणिकम् ।

आं इमित्यादि षडङ्गम् ।

बुं ङेऽन्तं बुधशब्दं च हृदयान्तः षडर्णकः ॥४६॥

ङेऽन्तं बुधशब्दं बुधाय, हृदयं नमः ।

बुधमन्त्रोऽस्य मुन्याद्या ब्रह्मपङ्क्तिबुधा मताः ।
षडङ्गानि स्वबीजेन विन्यस्यैवं विचिन्तयेत् ॥४७॥

वन्दे बुधं सदा देवं पीताम्बरसुभूषणम् ।
जानुस्थवामहस्ताढ्यं साभयेतरपाणिकम् ॥४८॥

प्रजपेद्वर्णसाहस्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः ।
अर्चनं पूर्वमुदितं ज्ञातव्यं मनुवित्तमैः ॥४६॥

बृं बृहस्पतये हृच्च वसुवर्णो गुरोर्मनुः ।
ऋष्याद्या ब्रह्मसानुष्टुब्गुरवोऽस्य प्रकीर्त्तिताः ॥५०॥

अङ्गषट्कं दीर्घयुक्तस्वीयबीजेन कल्पयेत् ।
रत्नस्वर्णांशुकादीनि दक्षपाण्यम्बुजात्किरन् ॥५१॥

अन्यादन्नं वस्तुराशौ[1] निध्येयोऽमरसद्गुरुः ।
जपेदष्टसहस्रं तु तच्छतं हविषा हुनेत् ॥५२॥

घृताक्तेन षडङ्गैश्च ग्रहाशापायुधैर्यजेत् ।
ध्यात्वा पूर्वोक्तमार्गेण समासीनं नवापणे ॥५३॥

जपेत्सप्तदिनं वह्नौ पीतपुष्पैर्घृतप्लुतैः ।
एवं दिनानां त्रितयं वा हुनेन्मन्त्रवित्तमः ॥५४॥

स्वर्णवस्त्रादिसंसिद्धिर्भवत्यस्य न संशयः ।
वस्त्रं मे देहि शुक्राय शुमाद्यो हृदयान्तकः ॥५५॥

शुमाद्यः शुं, वस्त्रं मे इत्यादि, हृदयं नमः ।

मुन्याद्या ब्रह्मसविराट्शुक्रा मन्त्रिभिरीरिताः ।
पदैः षड्भिः षडङ्गानि ततो देवं विचिन्तयेत् ॥५६॥

शुक्रं नमाम्यापाणिस्थं[2] शुक्लाभङ्करभूषणम्[3] ।
स्वर्णवासो रत्नधारा चिन्मुद्रात्तकरद्वयम् ॥५७॥

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं जुहुयाद् घृतैः ।
[अङ्गग्रहाशेशहेतिश्चतुरावरणं मनोः ॥५८॥

शनैश्चराय हृदयं शमाद्यश्चाऽष्टवर्णकः ।
मुन्याद्या ब्रह्मगायत्रशनैश्चरसमाह्वयाः ॥५९॥][4]
बीजेनैव षडङ्गानि विदधीत विचक्षणः ।

---

१. ख. अन्यादन्यद्वस्तु रात्रौ । २. ख. नमाम्यापणस्थं । ३. ख. शुक्लाभास्वरभूषणम् ।
४. कोष्ठगतांशः क. पुस्तके नास्ति ।

विचक्षण इत्युक्तिः षड्दीर्घयुक्तत्वं बीजस्य सूचयति ।

वन्दे शनैश्चरं वक्रद्रंष्ट्रं नीलविभूषणम् ॥६०॥
वामजानुस्थतद्धस्तं साभयान्यकराम्बुजम् ।
जपेदक्षरसाहस्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ॥६१॥
षडङ्गग्रहदिक्पालसायुधैः परिपूजयेत् ।
रां राहवे नमोऽन्तोऽयं **राहुमन्त्रः** समीरितः ॥६२॥
षडर्णः स्वीयबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
मुन्याद्या ब्रह्मगायत्रराहवः समुदाहृताः ॥६३॥
वन्दे राहुं धूम्रवर्णं सर्प्पकायं[1] कृताञ्जलिम् ।
विकृतास्यं रक्तनेत्रं धूम्रालङ्कारमन्वहम् ॥६४॥
जपहोमार्च्चनाद्यं च पूर्ववत् परिकीर्त्तितम् ।

पूर्ववद्वर्णसाहस्रं जपस्तद्दशांशघृतहोमोऽङ्गग्रहाशाधिपतदायुधैः पूजनं चेति ।

कें केतवे हृदित्येवं **केतुमन्त्रः** षडर्णकः ॥६५॥
ब्रह्मा मुनिर्मतः छन्दः पङ्क्तिः केतुश्च देवता ।
पूर्ववत् स्यादङ्गषट्कं ततः केतुं विचिन्तयेत् ॥६६॥

पूर्ववत् षड्दीर्घाढ्यबीजेन ।

वन्दे केतुं कृष्णवर्णं कृष्णवस्त्रादिभूषितम् ।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं साभयान्यकराम्बुजम् ॥६७॥
जपहोमार्चनादीनि पूर्ववत् परिकल्पयेत् ।

अत्र भौमादीनां पूजायां मध्ये तं तं ग्रहं सम्पूज्य तत्तदुत्तरग्रहादितत्तत्पूर्णग्रहावसानिकानष्टौ ग्रहानग्रादिप्रादक्षिण्येन पूजयेत् ।

॥ **अथाऽग्निमन्त्राणां विधानमुपदिश्यते** ॥ तत्र—

शारदातिलके—

व्याहृतित्रयमग्निः स्यात् जातवेद इहाऽऽवह ।
सर्वकर्माणि सम्भाष्य साधयाऽग्निप्रिया ततः ॥६८॥
ताराद्यो मनुराख्यातः पञ्चविंशतिवर्णकः ।

---

१. ख. पुस्तके पार्श्वटिप्पण्यां ''अर्द्धकायं' इत्यपि पाठो दृश्यते ।

व्याहृतित्रयं भूर्भुवःस्वरिति, अग्निः-स्वरूपम्, जातवेद इहाऽऽवह इति स्वरूपम्, सर्वकर्माणि-स्वरूपम्, साधय-स्वरूपम्, आग्निप्रिया स्वाहा, ताराद्यः प्रणवाद्यः । अत्र व्याहृत्यग्निपदयोः सन्धिस्तेन 'स्वरग्निरि' ति मन्त्रे पठनीयम् ।

प्रपञ्चसारेऽपि—

तारं व्याहृतयश्चाऽग्निर्जातवेद इहाऽऽवह ।
सर्वकर्माणि चेत्युक्त्वा साधयाऽग्निवधूर्म्मनुः ॥५६॥

पदार्थादर्शे—प्रणवशक्तिपुटित इति । **केचित्** श्रीकामैः श्रीबीजादिर्जप्तव्यः ।

शारदातिलके—

ऋषिर्भृगुर्भवेच्छन्दो गायत्रं देवताऽनलः ।
विभक्तैः पञ्चभिः षड्भिः चतुर्भिः पञ्चभिस्त्रिभिः ॥७०॥
द्वाभ्यामङ्गक्रिया प्रोक्ता वर्णैर्मूलमनोः क्रमात् ।

पदार्थादर्शे—प्रणवो बीजं, स्वाहा शक्तिः ।

[1]अंसासक्तसुवर्णमाल्यमरुणस्रक्चन्दनालङ्कृतं,
ज्वालापुञ्जजटाकलापविलसन्मौलिं सुशुक्लांशुकम् ।
शक्तिस्वस्तिकदर्भमुष्टिकजपस्रक्स्रुवाभीवरान्,
दोर्भिर्बिभ्रतमञ्चितत्रिनयनं रक्ताभमग्निं भजे ॥७१॥

इति ध्यानानन्तरं **सप्तजिह्वामुद्राप्रदर्शनं** विधेयम् । तल्लक्षणं यथा—

मणिबन्धस्थितौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ करौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगले मिलित्वाऽन्तः प्रसारयेत् ॥७२॥
सप्तजिह्वाख्यमुद्रेयं वैश्वानरवशङ्करी ।

इयं सर्वाग्निमन्त्रसाधारणीति बोध्यम् ।

स्वमण्डलान्तं प्रयजेत् पीठं स्वनवशक्तिकम् ।
पीता श्वेताऽरुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिङ्गिनी ॥७३॥
रुचिरा ज्वालिनी प्रोक्ताः कृशानोर्नवशक्तयः ।
स्वबीजेनाऽऽसनं दत्वा मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥७४॥

---

१. क. अंसाशक्त० ।

तत्र सम्पूजयेद्वह्निं विधिना प्रोक्तलक्षणम् ।
अङ्गपूजां पुरा कृत्वा मूर्त्तीरष्टौ दलेष्विमाः ।।७५।।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः ।
अश्वोदरजसंज्ञो यः पुनर्वैश्वानराह्वयः । ७६।।
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखोऽपरः ।
अर्च्याः स्वस्तिकशक्तिभ्यां विराजितकराम्बुजाः ।।७७।।

प्रयोगसारनारायणीययोस्तु—

अग्निर्वैश्वानरः पश्चात्परः प्रोक्तो हुताशनः ।
हुतवर्त्मा जातवेदास्ततश्चाऽपि हुतावह ।।७८।।
भूयो देवमुखः सप्तजिह्वश्चेत्यग्निमूर्त्तयः ।
इति अन्या एवाऽष्टमूर्त्तय उक्ताः ।
लोकेशानर्चयेद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् ।।७९।।
इति सम्पूजयेन्नित्यं जपेत् साग्रं सहस्रकम् ।
जायते वत्सरादर्वाग्धनधान्यसमृद्धिमान् ।।८०।।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—भृगवे ऋषये नमः, मुखे—गायत्राय छन्दसे नमः, हृदये—अग्नये देवतायै नमः, गुह्ये—ॐ बीजाय नमः, पादयोः—स्वाहाशक्तये नम" इति विन्यस्य, भूर्भुवः स्वः हृदयाय नमः, अग्निर्जातवेद शिरसे स्वाहा, इहाऽऽवह शिखायै वषट्, सर्वकर्माणि कवचाय हुँ, साधय नेत्राय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् । ततः अंसासक्तसुवर्णेत्यादि पूर्वोक्तरूपेण ध्यात्वा, चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवेष्टितमष्टदलमिति पूजाचक्रं निर्माय, पात्रस्थापनान्ते पीठे मण्डूकादिपरतत्वान्तं सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यान्तं "ॐ पीतायै नमः, ॐ श्वेतायै नम, एवं अरुणायै०, कृष्णायै०, धूम्रायै०, तीव्रायै०, विस्फुलिङ्गिन्यै०, रुचिरायै०, ज्वालिन्यै नम" इति नवशक्तीः सम्पूज्य, 'रं सर्वशक्तिकमलासनाय नम' इति समस्तं पीठं सम्पूज्याऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्तेऽष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेवाग्रतदादिचतुर्दिक्षु षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रदलमारभ्य

"ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देबमुखाय नमः" इति प्रादक्षिण्येनाऽष्टौ मूर्त्तीः सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरस्रे इन्द्रादीन् सायुधान् सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रेण वह्निं सम्पूज्य धूपदीपादि प्राग्वत् शेषं[1] समापयेत् ।

शारदातिलके—

गुरोर्लब्धं मनुं मन्त्री चतुर्द्दश्यामुपोषितः ।
जपेद्भानुसहस्राणि शुद्धाचारो जितेन्द्रियः ॥८१॥

अमावास्यादिने विप्रान् भोजयेन्मधुरोत्तरैः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैर्यथाशक्ति दद्यात्तेभ्योऽथ दक्षिणाम् ॥८२॥

भुक्त्वा स्वयं समानीय होमद्रव्याणि शोधयेत् ।
प्रतिपद्दिनमारभ्य होमं कुर्यादतन्द्रितः ॥८३॥

क्रमाद्वटसमिद्व्रीहितिलराजीहविर्घृतैः ।
प्रत्येकमष्टोत्तरशतं जुहुयाद्दिनशः सुधीः ॥८४॥

दशाहमेवं निर्वर्त्य विधानेन विधानवित् ।
दत्त्वा पूर्णाहुतिं सम्यगेकादश्यां द्विजोत्तमान् ॥८५॥

सम्पूज्य तर्प्पयेद्वित्तैर्यथाविभवमादरात् ।
गुरवे दक्षिणां दद्यादरुणां गां पयस्विनीम् ॥८६॥

वासांसि धनधान्यानि दत्वा सम्प्रीणयेत्पुनः ।

अत्र चतुर्द्दश्यामुपोषित इति चतुर्दशीशब्देन चैत्रकृष्णचतुर्दशी ग्राह्या ।

वत्सरादेश्चतुर्दश्यां दिनादावेव दीक्षितः ।
मन्त्रं द्वादशसाहस्रं जपेत् सम्यगुपोषितः ॥४७॥

इति **प्रपञ्चसारोक्तेः** । वत्सरादिश्चैत्रशुक्लप्रतिपत् । तत्पूर्वचतुर्दश्यां दीक्षा जपश्च । अमावास्यायां समिदादिशोधनम् । प्रतिपदमारभ्य दशदिनावधि प्रोक्तप्रकारेण होमः ।

---

१. क. सेषं ।

शारदातिलके—

साज्यमन्नं प्रजुहुयाद्वत्सराल्लभते श्रियम् ।
कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षस्य दधिक्षौद्रघृतप्लुतैः ॥८८॥

करवीरप्रसूनैर्वा मण्डलात् स्यात् समृद्धिमान् ।
षण्मासं कपिलाज्येन जुहुयाद्वत्सरान्तरे ॥८९॥

तस्य सञ्जायते लक्ष्मीः कीर्तिस्त्रैलोक्यवन्दिता ।
शालिभिर्जुहुयान्नित्यं विधिनाऽष्टोत्तरं शतम् ॥९०॥

व्रीहिगोमहिषार्थाद्यैर्भवनं तस्य पूर्यते ।
तिलहोमेन महतीं लक्ष्मीं प्राप्नोति मानवः ॥९१॥

पलाशविल्वखदिरशमीदुग्धमहीरुहाम् ।
विकङ्कतारग्वधयोः समिद्भिः करवीरजैः ॥९२।

प्रसूनैः कुमुदैः पद्मैः कह्लारैररुणोत्पलैः ।
जातीप्रसूनैर्दूर्वाभिर्नित्यमष्टोत्तरं शतम् ॥९३॥

एकेन जुहुयान्मन्त्री प्रतिपत्स्वथवा सुधीः ।
साधयेदखिलान् कामान् षण्मासान्नात्र संशयः ॥९४॥

अस्यैव मन्त्रस्य भेद उक्तः **प्रयोगसारे—**

मन्त्रोऽप्यग्निर्जातवेद इहाऽऽवहसमन्वितः ।
सर्वकर्माण्यतः साधय स्वाहेति क्रमोदितः ॥९५॥इति।

अपेक्षितार्थद्योतनिकायामप्येतादृश उक्तः 'द्विवेदवेदेषुवह्निद्विवर्णैरङ्गकल्पने' ति । ऋष्यादिध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्वोक्तमेव ।

उत्तिष्ठ पुरुषं ब्रूयाद्धरिपिङ्गल तत्परम् ।
लोहिताक्षपदं देहि मे ददापय ठद्वयम् ॥९६॥
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा समृद्धिमनुरीरितः ।

उत्तिष्ठ पुरुष-स्वरूपं । लोहिताक्ष-स्वरूपं, देहि मे ददापय-स्वरूपं, ठद्वयं स्वाहाकारः ।

पदार्थादर्शे प्रणवाद्य इति केचित्, नृसिंहबीजाद्य इत्यन्ये, लक्ष्मीबीजाद्य इत्यपरे, मृत्युञ्जयाद्य इत्यपि केचन। नृसिंहबीजं 'क्ष्रौँ' इति, मृत्युञ्जयमन्त्रस्तु 'ॐ जूं सः' इति। प्रयोगे 'देहि मे' तत्पूर्वं साध्ययोगोऽपि कार्यः। **प्रयोगसारनारायणीययोर्लो**हिताक्ष मे पदद्वयातिरिक्तः प्रणवादिर्विंशत्यक्षर एवोद्धृतः। यथा—

उत्तिष्ठ पुरुषेत्युक्त्वा हरिपिङ्गल देह्यथ।
ददापयेति तारादिः स्वाहान्तो मन्त्र ईरितः ॥९७॥ इति।

समृद्धमनुरित्यनेन विनियोगोक्तिः।

शारदातिलके—

ऋष्यादयः पुरा प्रोक्ताः षड्भूतकरणैस्त्रिभिः।
चतुर्भिर्युगलेनार्णैर्मूलमन्त्रसमुद्भवैः ॥९८॥
विदधीत षडङ्गानि जातियुक्तानि तन्त्रवित्।

पदार्थादर्शे—हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः। प्रणवो बीजं, स्वाहाशक्तिरिति **पद्मपादाचार्याः**।

शारदातिलके—

स्वर्णाश्वत्थविनिर्गतं हुतवहं सिन्दूरपुञ्जप्रभं,
ज्वालाभिर्निचिताङ्गरोमणिचयं[1] कान्त्या जगन्मोहनम्।
अश्वाकारमनर्घ्यरत्नविलसद्भूषानमत्कन्धरं,
रत्नैरिन्द्रियनिर्गतैर्व्वसुमतीमाच्छादयन्तं स्मरेत् ॥९९॥

लक्षं मनुं जपेदेनं पयोऽन्नेन ससर्पिषा।
दशांशं जुहुयादग्नौ तुरङ्गाग्निमनुं स्मरन् ॥१००॥

पीठे प्रागीरितेऽभ्यर्च्चयेदङ्गैस्तन्मूर्तिभिः सह।
आशापालैस्तदीयास्त्रैरर्च्चयेद्धव्यवाहनम् ॥१०१॥

प्रातःस्नानरतो मन्त्री सहस्रं यो जपेन्मनुम्।
जित्वा रोगान् सुखी जीवेच्छ्रिया वर्षशतं नरः ॥१०२॥

हृत्प्रमाणे जले स्थित्वा भानुमालोक्य संयतः।
चतुःसहस्रं प्रजपेन्नित्यं संवत्सरावधि ॥१०३॥

---

१. ख. ०रोमनिचयं।

अपमृत्युभयं रोगकृत्यादारिद्र्यसम्भवान् ।
क्लेशान्निर्जित्य तेजस्वी जीवेद्वर्षशतं सुधीः ॥१०४॥

कृत्तिकायां प्रतिपदि शालिहोमो धनप्रदः ।
दध्ना शमीसमिद्भिर्वा प्रतिपत्सु भवेद् धनम् ॥१०५॥

[1]इष्टावाप्तिर्भवेदाज्यैः पद्मैर्ग्रामिमवाप्नुयात् ।
तिलैर्ज्योतिष्मतीभूतै रिपुराष्ट्रं जयेन्नृपः ॥१०६॥

अश्वत्थसमिधो मेषीघृताक्ता जुहुयान्नरः ।
कन्यामिष्टामवाप्नोति साऽपि तं प्राप्नुयाद्वरम् ॥१०७॥

शुद्धाज्येन कृतो होमो ज्वरनाशकरः स्मृतः ।
[सप्ताहं जुहुयान्मन्त्री बन्धूककुसुमैः शुभैः ॥१०८॥

साग्रं सहस्रमचिरान्महतीं श्रियमश्नुते ।
मासं क्षीरेण गव्येन क्षीराहारो जितेन्द्रियः][2] ॥१०९॥

सहस्रं[3] जुहुयान्मन्त्री सम्पदामधिपो भवेत् ।
आज्याक्तदूर्वाहोमेन जीवेद्वर्षशतं नरः ॥११०॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं हविषो मृगमुद्रया ।
जुह्वतो जायते लक्ष्मीर्धनधान्यसमृद्धिदा ॥१११॥

प्रतिमासं प्रतिपदि जुहुयादयुतं घृतैः ।
श्रीर्भवेन्महती तस्य षण्मासादनपायिनी ॥११२॥

अरुणैरुत्पलैः फुल्लैर्मधुरत्रमसंयुतैः ।
जुहुयाद्वत्सरार्द्धं वा स भवेदिन्दिरापतिः ॥११३॥

अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तैर्ज्जुहुयादन्वहं सुधीः ।
सहस्रं वत्सरार्द्धेण भवेद्भूमिपुरन्दरः ॥११४॥

वत्सरं जुह्वतस्तैः स्याल्लक्ष्मीरिन्द्रेण वाञ्छिता ।
जुहुयादमृताखण्डैः पयोक्तैः सप्तवासरम् ॥११५॥

त्रिसहस्रं प्रतिदिनं मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।
कृत्याद्रोहज्वरोन्मादरोगात् जित्वा निरामयः ॥११६॥

---

१. ख. इष्टावाप्ति० । २. ख. पुस्तके कोष्ठगांशो नास्ति । ३. ख. सप्ताहं ।

जीवेद्वर्षशतं भूत्वा तेजसा भास्करोपमः ।
करवीरजपाविल्वपालाशनृपभूरुहाम् ॥११७॥

प्रसूनैः कुमुदैः फुल्लैः कुरण्टैर्जातिसम्भवैः ।
पुष्पैर्हुत्वा त्रिमध्वक्तैर्मन्त्री प्रतिपदम्प्रति ॥११८॥

आप्नुयान्महतीं लक्ष्मीं वत्सराद्वाञ्छिताधिकाम् ।
आदाय तण्डुलप्रस्थं निर्मलं साधु शोधितम् ॥११९॥

गोदुग्धेन हविः कृत्वा कवलं तेन कल्पयेत् ।
आज्याक्तं तत्समादाय पूजिते हव्यवाहने ॥११०॥

गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्जपित्वाऽष्टोत्तरं शतम् ।
जुहुयात् प्रतिपद्यग्निं ध्यात्वा तुरगविग्रहम् ॥१२१॥

जायते वत्सरादेव लक्ष्मीस्त्रैलोक्यमोहिनी ।
मन्त्रेणाऽनेन सञ्जप्तां वचां खादेद्दिनागमे ॥१२२॥

भारती निवसेत्तस्या मुखाम्भोजे सुनिश्चला ।
अष्टोत्तरशतं जप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः ॥१२३॥

जठराग्निर्ज्वलेत्तस्य घृतेनेव हुताशन ।
कृत्वा नवपदात्मानं मण्डलं प्रागुदीरितम् ॥१२४॥

कलशान्नव कल्याणान् स्थापयेत् प्रोक्तवर्त्मना ।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतैः क्वाथैस्तान् पूरयेत् क्रमात् ॥१२५॥

वस्त्रादिभिरलङ्कृत्य नवरत्नं विनिक्षिपेत् ।
मध्ये सम्पूजयेदग्निं मूर्तीरष्टौ दिशः क्रमात् ॥१२६॥

कुम्भेषु धूपदीपाद्यैः पुष्पैर्गन्धैर्मनोहरैः ।
स्पृष्ट्वा जपेत्ततः कुम्भं मन्त्रमष्टोत्तरं शतम् ॥१२७॥

अभिषिञ्चेत्पुरः साध्यंविनीतं दत्तदक्षिणम् ।
ज्वरग्रहमहारोगदारिद्र्याद्यादीन्विजित्य सः ॥१२८॥
जीवेद्वर्षशतं सम्यगभिषिक्तः श्रिया सह ।

अत्र पूर्वोक्तमृगमुद्रालक्षणं पदार्थादर्शे—

मिलित्वाऽनामिकाङ्गुष्ठमध्यमाग्राणि योजयेत् ।
शिष्टाङ्गुल्युच्छ्रिते कृत्वा मृगमुद्रेयमीरिता ॥१२९॥इति।

प्रपञ्चसारे—

वियतो [1]दशमोऽर्घिसर्गयुक्तो भुवसर्गौ भृगुलान्तषोडशाचः ।
हुतभुग्दयिता ध्रुवादिकोऽयं मनुरुक्तः सुसमृद्धिदः कृशानोः ॥१३०॥

वियतो हकारात् दशमः विलोमेन भकारः, अर्घी ऊकारः, सर्गो विसर्गस्ताभ्यां युक्तस्तेन भूः इति, भुव-सर्गौ भुव इति अक्षरद्वयं स्वरूपं सर्गो विसर्गस्तेन भुवः इति पदं, भृगुः सकारः, लान्तो वकारः, अचः षोडशो विसर्गस्तैः स्वः इति, हुतभुग्दयिता स्वाहाकारः, ध्रुवादिकः प्रणवादिः, तेन सप्ताक्षरोऽयं मन्त्रः । तथा—

भृगुरपि तदृषिः[2] छन्दो गायत्री देवताऽग्निरुद्दिष्टः ।
प्राक्प्रोक्तान्यङ्गानि द्विशः समुक्तैश्च मन्त्रवर्णैर्वा ॥१३१॥

'सहस्रार्चिषे हृदयाय नम' इत्यादि प्रागुक्तानि । **पदार्थादर्शे अस्य मन्त्रस्य** प्रणवो बीजं, स्वाहा शक्तिः, द्विरुक्ताभिर्व्याहृतिभिः षडङ्गम् ।

शक्तिस्वस्तिकपाशान् साङ्कुशवरदाभयान् दधत्त्रिमुखः ।
मुकुटादिविविधभूषोऽवताच्चिरं पावकः प्रसन्नमुखः ॥१३२॥

प्रपञ्चसारे—

पीठे तनूनपातः प्रागङ्गैरष्टमूर्त्तिभिस्तदनु ।
भूयश्च शतमखाद्यैर्विधिनाऽथ हिरण्यरेतसं प्रयजेत् ॥१३३॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि–भृगवे ऋषये नमः, मुखे—गायत्री'छन्दसे नमः;'[3] हृदये—अग्निदेवतायै[4]नमः, गुह्ये—रं बीजाय०, पादयोः—स्वाहाशक्तये नमः" इति विन्यस्य, "ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुं, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्राय वौषट्, धनुर्द्धरायाऽस्त्राय फट्" इति षडङ्गेष्वपि न्यसेत् । तत उक्तरूपेण ध्यात्वा, सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य,

१. क. दशमो किसर्ग० । २. क. तदृष्टिः । ३. क.'-' चिह्नान्तरगोंऽशो नास्ति। ४. क. देवतायै ।

प्रागुक्तपञ्चविंशतिवर्णाग्निमन्त्रोक्तप्रकारेण यन्त्रोद्धारपीठपूजावरणपूजनादिकं सर्वं कुर्यात् ।

प्रपञ्चसारे—

जपेदिमं मनुमृतुलक्षमादराद्दशांशतः प्रतिजुहुयात्पयोऽन्धसा ।
सर्पिषा[1] सुसिततरैश्च षाष्ठिकैः............॥१३४॥इति।

आज्यैरष्टोर्द्ध्वशतं (नमस्कृत्य)[2] प्रतिपदमारभ्य मन्त्रविद्दिनशः ।
चतुरो मासाञ्जुहुयाल्लक्ष्मीरत्यायता भवेत्तस्य ॥१३५॥

शालीभिः शुद्धाभिर्दिनमनुजुहुयादथाऽष्टमात्रेण ।
शाली शालिगृहं स्याद् गोमहिष्याद्यैश्च सङ्कुलं तस्य ॥१३६॥

शुद्धान्नैर्घृतसिक्तैः प्रतिदिनमग्नौ समेधिते जुहुयात् ।
अन्नसमृद्धिर्म्महती स्यादस्य निकेतनेऽष्टमात्रेण ॥१३७॥

जुहुयात्तिलैः सुशुद्धैः षण्मासाज्जायते महालक्ष्मीः ।
कुमुदैः कह्लारैरपि जातीकुसुमैश्च जायते महासिद्धिः ॥१३८॥

पालाशैः पुनरिध्मकैः सरसिजैर्वैल्वैश्च रक्तोत्पलै-
र्दुग्धोर्वीरुहसम्भवैः खदिरजैर्व्याघातवृक्षोद्भवैः ।
दूर्वाख्यैश्च शमीविकङ्कतभवैरष्टोर्द्ध्वयुक्तं शतं,
नित्यं वा जुहुयात् प्रतिप्रतिपदं मन्त्री महासिद्धये ॥१३९॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहद्धिान्तसिन्धौ त्रयोविंशस्तरङ्गः ॥२३॥

———

१. ख. सर्षपिवा । २. ख. नास्ति ।

[चतुर्विंशस्तरङ्गः]

॥ अथ वैष्णवप्रकरणम् ॥ तत्र

शारदातिलके—

अथ वक्ष्ये महामन्त्रान्विष्णोः सर्वार्थसाधकान् ।
येषां संस्मरणात् सन्तो भवाब्धेः पारमाश्रिताः ॥१॥

तारं नमः पदं ब्रूयान्नरौ दीर्घसमन्वितौ ।
पवनो णाय-मन्त्रोऽयं प्रोक्तो वस्वक्षरान्वितः ॥२॥

तारं प्रणवः, नमः स्वरूपं, नरौ नकाररेफौ, दीर्घं आकारस्तेन सहितौ तेन नारा इति, अत्र नमःशब्दस्य रोरुत्वे गुणे च ओकार इति ज्ञेयम्, पवनो यकारः, णाय-स्वरूपम् ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

ध्रुवा दीर्घा विषः सद्यो दीर्घा चाऽऽननवृत्तयुक् ।
अग्न्यनन्तौ समीरश्च सदीर्घस्तादिरीरयुक् ॥३॥
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो नारायणसमाह्वयः ।

ध्रुवः प्रणवः, दीर्घा नकारः, विषः मकारः, सद्य ओकारस्ताभ्यां तेन मो इति । दीर्घा नकारः, आननवृत्तं आकारस्ताभ्यां ना इति, अग्नी रेफः, अनन्त आकारः ताभ्यां रा इति, समीरः यकारः, सदीर्घस्तादिः आकारयुक्तो णकारस्तेन णा इति, ईरो यकारः ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

'श्रीबीजेन युतं मन्त्रं तत्कामस्तन्मना जपेदिति ।' कामनायामपि-विशेषः ।

नारसिंहमिवात्मानं देवं ध्यात्वाऽतिभैरवम् ।
मन्त्रेण स्पर्शयेच्छस्त्रं ना विजित्य निवर्त्तते ॥४॥

नारसिंहेन बीजेन मन्त्रं योज्य तदा जपेत् ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा वामहस्ताभिमन्त्रिताः ॥५॥

पुनः पुनरपः सिञ्चेत् सर्पदष्टोऽपि जीवति ।
गारुडेन तदा जप्तं पञ्चार्णेन तदा जपेत् ॥६॥

विविषीकरणे ध्यायेद्विष्णुं गरुडवाहनम् ।
अशोकफलके पक्षीमालिख्याऽशोकसंहृतौ ॥७॥

अशोकपुष्पैराराध्य भगवन्तं तदग्रतः ।
जुहुयात्तानि पुष्पाणि त्रिसन्ध्यं सप्तरात्रकम् ॥८॥

प्रत्यक्षो जायते पक्षी वरमिष्टं प्रयच्छति ।
गाणपत्यसमायुक्तं जपेल्लक्षं पयोव्रतः ॥९॥

महागणपतिं देवं प्रत्यक्षमिह पश्यति ।
भारतीबीजसंयुक्तं षण्मासिकजपाच्च तम् ॥१०॥इति।

तथा— यो जपेत् प्रणवं पूर्वं मन्त्रे त्रैवर्णिकं[1] पुमान् ।
योषितश्च तथा शूद्रा जपेयुः प्रणवं विना ॥११॥

आदावष्टाक्षरस्य स्यात्प्रणवः सर्वकामिकः ।
आदावन्ते तथा ह्येष ज्ञानवृद्धिस्तदा भवेत् ॥१२॥

मन्त्रनिरुक्तिमाह सारसङ्ग्रहे—

प्रणवः परमात्माऽणुवाचको वक्ष्यते ततः ।
नकारश्च निषेधार्थो[2]ऽयमर्थं मो-पदं मतम् ॥१३॥

ना जलं रा वह्निरुक्तो यो वायुर्णो धरा मता ।
अन्त्यश्चतुर्थ्यर्थकः स्यादेवं व्याख्यानमीरितम् ॥१४॥

महाकपिलपञ्चरात्रे—

ॐकारं तु सदा ध्येयं ज्योतिर्मालासमाकुलम् ।
नकारं मेघवर्णाभं मोकारं चिन्तयेत्ततः ॥१५॥

भिन्नाञ्जनसमाकारं तृतीय बीजमुत्तमम् ।
नाकारं श्यामवर्णाभं सौम्यरूपं सुशोभनम् ॥१६॥

राकारं जलवर्णाभं सम्यक् सन्दीप्ततेजसम् ।
धूम्रवर्णं सदा ध्येयं यकारं परमुत्तमम् ॥१७॥

अनौपम्यगुणाकारं णकारं च विचिन्तयेत् ।
पकारं तु ततो ध्येयं पद्मरागसमप्रभम् ॥१८॥इति।

---

१. ख. त्रैवर्णिकः । २. ख. निषेद्यार्थो ।

शारदातिलके—

साध्यनारायणः प्रोक्तो मुनिश्छन्द उदाहृतम् ।
मन्त्रस्य देवी गायत्री देवता विष्णुरव्ययः ॥१९॥

मन्त्रप्रकाशे तु—'अन्तर्यामी ऋषिश्छन्दो गायत्रीति' । तथा—

क्रुद्धोल्काय हृदाख्यातं महोल्काय शिरः स्मृतम् ।
वीरोल्काय शिखा प्रोक्ताद्युल्काय कवचं पुनः ॥२०॥
सहस्रोल्कायाऽस्त्रमुक्तमङ्गक्लृप्तिरियं मता ।

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

क्रुद्धोल्कादिपदैर्वह्निजायान्तैर्जातिसम्भवैः ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि—

एषां विभक्तियुक्तानां भवेदन्तेऽग्निवल्लभा । इति ।

नारायणीये—

कनिष्ठादितदन्तानामङ्गुलीनां त्रिपर्वसु ।
ज्येष्ठाग्रेण क्रमात्तारुद्धानष्टाक्षरान्न्यसेत् ॥२१॥

प्रपञ्चसारे—

अष्टाक्षरेण व्यस्तेन कुर्यादष्टाङ्गकं सुधीः ।
सहृच्छिरःशिखावर्मनेत्रास्त्रोदरपृष्ठके ॥२२॥

सारसङ्ग्रहे—

मन्त्रार्णानङ्गषट्केषु जठरे पृष्ठके ततः ।
दिग्बन्धमस्त्रमन्त्रेण विदध्यान्मन्त्रवित्तमः ॥२३॥

अष्टाक्षरेण बिन्दुयुक्तेन । तथा **चेशानशिवः** 'वर्णा बिन्दुसमायुक्ता' इति ।

प्रपञ्चसारे—

अस्त्रमन्त्रेण बद्धाशो मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेत् ।

अस्त्रं चक्रम् ।

शारदातिलकेऽपि—

बद्धदिक्चक्रमन्त्रेण मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेत् । इति ।

दिग्बन्धनानन्तरं हयशीर्षपञ्चरात्रे—

मूर्द्धाक्षिमुखहृन्नाभिगुह्यजानुपदेषु च ।
सृष्टिन्यासोऽयमुद्दिष्टः संहारश्चरणादिकः ॥२४॥
मूर्द्धान्तः स्थितिरप्युक्तो नाभ्यादिहृदयान्तिकः ।

सारसङ्ग्रहे—

तत्राङ्गुलीभिर्न्यासः स्याच्छिरस्येकैव मध्यमा ।
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु चक्षुषोर्न्यास इष्यते ॥२५॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु मुखे न्यासः प्रकीर्त्तितः
हृदये ज्ञानमुद्रा स्यादङ्गुष्ठश्च कनिष्ठिका ॥२६॥

नाभौ प्रकीर्त्तिता गुह्ये अनङ्गुष्ठाः प्रकीर्त्तिताः ।
सर्वा जानौ च पादे च पञ्चाऽपि परिकीर्त्तिताः ॥२७॥

आधारे[1] हृदये वक्त्रे दोःपन्मूलेषु नाभिके ।
कण्ठे नाभौ हृदि कुचे पार्श्वपृष्ठेषु तत्परे ॥२८॥

मूर्द्धास्यनेत्रश्रवणघ्राणेषु तदनन्तरम् ।
दोःपादसन्ध्यङ्गुलिषु धातुप्राणेषु हृत्स्थले ॥२९॥

मूर्द्धेक्षणास्यहृत्कुक्षिसोरुजङ्घापदद्वये ।
एकैकशो न्यसेद्वर्णान् गण्डांसोरुपदेषु च ॥३०॥
चक्रशङ्खगदाम्भोजपदेष्ववहितो न्यसेत् ।

क्षितिसलिलानलपवनव्योमाहुङ्कृतिमहत्प्रकृत्याख्यैः ।
व्युत्क्रमगदितैरेतैः क्रमगतमन्त्रार्णसंयुतैर्मन्त्री ॥३१॥

चरणान्धुहृदयवक्त्रकहृदयव्यापकेषु च विन्यसेत् ।
संहरोऽयं[2] गदितो विपरीता सृष्टिरस्य निर्द्दिष्टा ॥३२॥

बिन्दुनादशक्तिशान्तरूपमात्मचतुष्टयम् ।
न्यसेत्सर्वतनौ मन्त्री देवताभावसिद्धये ॥३३॥

नारदीये—

द्वादशाक्षरमन्त्राद्या अक्लीबस्वरबीजकाः ।
केशवाद्या धातृपूर्वसूर्या न्यस्या नमोऽन्तकाः ॥३४॥

---

१. ख. आधार । २. ख. संहारो ।

तथा —
मूर्तिपञ्जरनामानं कुर्यान्न्यासान्तरं शुभम् ।
ग्रहक्ष्वेडहरं श्रीदं यशःपुष्टिसुखावहम् ॥३५॥

अष्टत्रर्णस्याऽस्य मनोः पूरणायाऽर्कवर्णकः ।
स्मरणीयो मनुः सम्यक् मन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥३६॥

अष्टप्रकृतिरूपोऽयमष्टवर्णो मनुर्मतः ।
तासामात्मचतुष्कस्य मेलनाद्विधिवद् बुधैः ॥३७॥

उदितो मनुवर्योऽयमर्कसंख्याक्षरः क्रमात् ।
अतस्तेनैव तद्वर्णान् विषण्ढस्वरपूर्वकान् ॥३८॥
द्वादशार्कयुतान्न्यस्येत् प्रोक्तान् द्वादश केशवान् ।

प्रोक्तान् केशवादिमातृकान्यासे अकारादिद्वादशस्वरेशत्वेन ।

भाले कुक्षौ हृदि गले पार्श्वांसकगलेषु च ॥३९॥
दक्षिणेषु च वामेषु पृष्ठे ककुदि च क्रमात् ।

कुक्षिपदेन सान्निध्यान्नाभिभागो लक्ष्यते ।

ललाटनाभिहृदयकण्ठपार्श्वांसकन्धरे ॥४०॥
पार्श्वान्तरांसे ग्रीवायां पृष्ठे ककुदि च क्रमात् ।

स्वायम्भुवे नारसिंहे च—

केशवं विन्यसेत् तार्क्ष्यमूर्द्ध्वदेशेऽथ विष्णुना ।
नाभौ नारायणं देवं विष्णवन्तेन समन्वितम् ॥४१॥

माधवं हृदि विन्यस्येन् मन्मथेन समन्वितम् ।
मन्मथान्तेन संयुक्तं गले गोविन्दकं न्यसेत् ॥४२॥

विष्णुं भूतस्वरेणाऽथ दक्षपार्श्वे प्रविन्यसेत् ।
तदंसे मातृतीयेन सूदनं मधुपूर्वकम् ॥४३॥

बिन्दुना शिवयुक्तेन दक्षकर्णे त्रिविक्रमम् ।
वामनं श्रीधरं चैव हृषीकेशमतः परम् ॥४४॥

वामेष्वैकार'मोकार'[1]मौकारं बिन्दुना सह ।
बिन्दुना पद्मनाभं च पृष्ठदेशे तदन्तयुक् ॥४५॥

---

१. '-' क. नास्ति ।

अन्त्यं ककुदि वामेन द्वादशाङ्गमिति स्मृतम् ।
द्वादशेमानि बीजानि नादबिन्दुयुतानि च ॥४६॥
आदित्या द्वादश तथा द्वादशाक्षररसंयुताः ।

विष्णुः अ, विष्ण्वतः आ, मन्मथः इ, मन्मथान्तः ई, भूतस्वरः ङ(उ?), मा लक्ष्मीः तेन ईकारस्तत्तृतीयः ऊ, शिवः ऐ, तदन्त औकारान्त अं, अन्त्यः अः इति ।

आदित्यास्तु—

धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशुर्भगस्तथा ॥४७॥

विवस्वदिन्द्रौ पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ।
त्वष्टा च विष्णुरित्येते··· ··· ··· ··· ···॥४८॥

इति **कुम्भसम्भवोक्ताः** । अंशुः अंशुमत्वात् । 'अंशुस्त्वमंशुधारित्वादिति' । **विष्णुधर्मोत्तरवचनात्** ।

प्रपञ्चसारे—

द्वादशाक्षरमन्त्रं तु मन्त्रविन्मूर्द्ध्नि विन्यसेत् ।
मूर्द्ध्निस्थो वासुदेवस्तु व्याप्नोति सकलां तनुम् ॥४९॥

मन्त्रविन् मूर्द्ध्नी [त्यष्टाक्षरेण सार्द्धमित्यर्थ इति **पद्मपादाचार्याः** ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे च—

अष्टाक्षरेण सहितं विन्यसेद् द्वादशाक्षरम् । इति ।

न्यासप्रकारमाहाऽगस्त्यः—

प्रणवश्च][1] स्वरस्तद्वद्वासुदेवाक्षरस्ततः ।
श्रीराममन्त्रवर्णाश्च ततः स्युः केशवादयः ॥५०॥
धात्रादयो नमोऽन्ताश्च न्यस्तव्या न्यासयोगतः । इति ।

'राममन्त्रवर्ण' इति तत्प्रकरणे ।

शारदातिलके—

पुनः किरीटमन्त्रेण व्यापकं विन्यसेत्ततः ।
ब्रूयात्किरीटकेयूरहारं मकरकुण्डलम् ॥५१॥

---

१. कोष्ठकगतोंऽशो नास्ति ख. पुस्तके ।

शङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तं पीताम्बरं धरम् ।
श्रीवत्साङ्कितवक्षोऽन्ते स्थलशब्दमुदीरयेत् ॥५२॥

श्रीभूमिसहितं स्वात्मज्योतिर्द्वयमुदाहृतम् ।
पश्चाद्दीप्तिकरायेति सहस्रादित्यतेजसे ॥५३॥
नमोऽन्तः प्रणवाद्योऽयं किरीटमनुरीरितः ।

मन्त्रे सर्वाणि पदानि सम्बुद्धचन्तानि ज्ञेयानि । कुण्डलमित्यस्याऽग्रेऽलङ्कृत-पदाध्याहारो बोध्यः । तदुक्तम् —

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

तारः किरीटकेयूरहारान्ते मकरं पदम् ।
कुण्डलालङ्कृतेत्यन्ते शङ्खचक्रगदापदम् ॥५४॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

इतः परं प्रवक्ष्यामि तत्वन्यासमनुत्तमम् ।
यत्तत्वन्यासमात्रेण तत्वात्मा सम्प्रजायते ॥५५॥

ध्रुवान्ते मादिकान् वर्णान् कान्तानुक्त्वा हृदन्तिकान् ।
परायेति पदं तत्तन्नामान्ते तत्वशब्दतः ॥५६॥

आत्मने नमसा युक्तांस्तत्रमन्त्रान् समुद्धरेत् ।
क्लीबं प्राणं सर्वतनौ न्यस्य बुद्धिं ततः परम् ॥५७॥

अहङ्कारं मनश्चैव हृद्येतानि प्रविन्यसेत् ।
मस्तकाननहृद्गुह्यपाददेशेष्वतः परम् ॥५८॥

शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धांस्तु क्रमतो न्यसेत् ।
श्रोत्रत्वगक्षिजिह्वाख्यघ्राणेषु श्रोत्रपूर्वकान् ॥५९॥

स्वस्वस्थानेषु वागादिकर्मेन्द्रियगणं न्यसेत् ।
मूर्द्धिन वक्त्रे हृदि शिवे पादयोर्वियदादिकान् ॥६०॥

हृत्पुण्डरीकसंज्ञं हि हृदये मण्डलानि च ।
अर्कषोडशदिक्संख्यकलायुक्तानि च कमात् ॥६१॥

सूर्यसोमकृशानूनां श्वेताकाशेन्दुवह्निभिः ।
अथाऽऽकाशादिभूतानां न्यासस्थानेषु विन्यसेत् ॥६२॥

परार्द्यं मेष्ठिनं चैव युग्मांसं विश्वसंज्ञकम् ।
निवृत्तिं सर्वनामानं षपराम्बुलवर्णकैः ॥६३॥

नारायणान्तकान् वासुदेवाद्यान्विनियोजयेत् ।
परमेष्ठ्यादिभिः पश्चान्नृसिंहं बीजपूर्वकम् ॥६४॥

कोपतत्त्वं च मूर्द्धादिपादान्तं व्यापयेत्ततः ।
एवं विन्यस्य विधिवत् साक्षान्नारायणो भवेत् ॥६५॥

ज्वररोगाभिचाराद्याः प्रलयं यान्ति नाऽन्यथा ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च तथैव ब्रह्मराक्षसाः ॥६६॥
कूष्माण्डाश्चैव डाकिन्यो नैव द्रष्टुमपि क्षमाः ।

कपिलपञ्चरात्रे—

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः पुनस्तद्वदन्ते चैव प्रचोदयात् ॥६७॥
गायत्री वैष्णवी प्रोक्ता सर्वपापहरा त्वियम् ।

शारदातिलके—

एवं न्यासं तनौ कृत्वा ध्यायेन्नारायणं परम् ।

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं,
चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम् ।
कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभो-
द्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे ॥६८॥

आयुधध्यानं तु दक्षोर्द्ध्व तदधवं:, वामोर्द्ध्वं तदधः क्रमेण ।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

पङ्कजं दक्षिणे यस्य पाञ्चजन्यं तथोपरि ।
वामाधस्तु गदा यस्य चक्रं चोर्द्ध्वे व्यवस्थितम् ॥६९॥

इति केशवलक्षणमुक्त्वा,

अधरोत्तरभावेन कृतमेतत्तु यत्र वै ।
नारायणाख्या सा ज्ञेया स्थापिता भुक्तिमुक्तिदा ॥७०॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

सव्यान्यपाणौ प्रथमे तु पद्मं बिभ्राणमब्जं तदनन्तरेण ।
आद्ये गदा वामकरेऽथ चक्रं विराजयन्तं भुवनानि भासा ॥७१॥

सव्यान्यपाणौ दक्षिणे, अब्जं शङ्खम् । तथा—

कृत्वा स्थण्डिलमस्मिन्निःक्षिप्य निजासनं समुपविश्य ।
पीठादिकं निजाङ्गे प्रपूज्य गन्धादिभिः सुशुद्धमनाः ॥७२॥

सद्वादशाक्षरान्तं प्रपूज्य विधिवत्किरीटमन्त्रेण ।
कुर्यात् पुष्पाञ्जलिमपि निजदेहे पञ्चशोऽथवाऽपि त्रिशः ॥७३॥

शारदातिलके—

पीठे सम्पूजयेद्देवं विमलादिसमन्विते ।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगेति शक्तयः ॥७४॥

प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा नवमी मता ।
नमो भगवते ब्रूयाद्विष्णवेऽथ पदं वदेत् ॥७५॥

सर्वभूतात्मने वासुदेवायेति वदेत्ततः ।
सर्वात्मसंयोगपदाद्योगपद्मपदं पुनः ॥७६॥

पीठात्मने हृदन्तोऽयं मन्त्रस्तारादिरीरितः ।
दत्वाऽनेनाऽऽसनं मन्त्री मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥७७॥

आवाह्य पूजयेद्देवं सुगन्धकुसुमादिभिः ।
अङ्गान्यभ्यर्च्य मन्त्रार्णान् केसरेषु समर्च्चयेत् ॥७८॥

दलेषु वासुदेवाद्या मूर्त्तीः शक्तिसमन्विताः ।
वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ॥७९॥

हिमपीततमालेन्द्रनीलाभाः पीतवाससः ।
चक्रशङ्खगदाम्भोजधरा एताश्चतुर्भुजाः ॥८०॥

शान्तिं श्रियं सरस्वत्या रतिं कोणदलेषु ताः ।
श्वेतकाञ्चनगोदुग्धदूर्वावर्णाः सुभूषिताः ॥८१॥

हेतीनर्चेद्दलाग्रेषु चक्रं शङ्खं गदाम्बुजम् ।
कौस्तुभं मुसलं खड्गं वनमालां यथाक्रमात् ॥८२॥

रक्ताच्छपीतकनकश्यामकृष्णासिपाण्डरान् ।
बहिरग्रे समभ्यर्च्येद् गरुडं कुङ्कुमप्रभम् ॥८३॥

मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ दक्षिणोत्तरयोर्निधी ।
ध्वजं वरुणदिग्भागे श्यामलं पूजयेत्ततः ॥८४॥

अरुणं विघ्नमाग्नेये श्याममार्यं निशाचरे ।
श्यामां दुर्गां वायुकोणे सेनान्यां पीतमीश्वरे ॥८५॥

इन्द्रादीन् पूजयेत् पश्चाद्वज्राद्यायुधसंयुतान् ।
इति सम्पूजयन्विष्णुं प्रोक्तैरावरणैः सह ॥८६॥
धर्मार्थकामांल्लब्ध्वाऽन्ते विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।

अथ विष्णवाराधने विशेषमन्त्रा गौतमीये—

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये ।
कृपया देवदेवेश मदग्रे सन्निधीभव ॥८७॥

यस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो ।
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवनं मम ॥८८॥

यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाऽव्यय ।
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्प्यात् साधकस्य च ॥८९॥

यदपूर्णं भवेत्कृत्यं तस्याऽप्यभिमुखो भव ।
यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः ॥९०॥

तस्मै ते परमेशान पाद्यं शुद्धाय कल्पये ।
देवानामपि देवाय देवानां दैवताय च ॥९१॥

आचमं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे ।
तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् ॥९२॥

तापत्रयविमोक्षाय तवाऽर्घ्यं कल्पयाम्यहम् ।
सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम् ॥९३॥

मधुपर्कमिमं देवं कल्पयामि प्रसीद मे ।
उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वाऽपि यस्य स्मरणमात्रतः ॥९४॥

शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनं त्विदम् ।
[1]परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ॥९५॥

साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ।
मायां विना न ते जन्म निजगूढोरुतेजसे ॥९६॥

नवावरणविज्ञानवासस्ते कल्पयाम्यहम् ।
यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी तु सा ॥९७॥

तस्मै परमेशान कल्पयाम्युत्तरीयकम् ।
यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ॥९८॥

यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ।
स्वभावसुन्दराङ्गाय सत्यसत्याश्रयाय ते ॥९९॥

भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ।
समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ॥१००॥

अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ।[2]
वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ॥१०१॥

आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ॥१०२॥

सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
सत्पात्रसिद्धं सहविर्विविधानेकभक्षणम् ॥१०३॥

निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ।
ताम्बूलं च वरं दिव्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥१०४॥

---

१. क. परमादनं० । २. इतः परं विशेषोऽयं ख. पुस्तके—

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥१॥
तुरीयगुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम् ।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥२॥

मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।
परिभाषामथो वक्ष्ये ह्युपचारविधौ हरेः ॥१०५॥

आसने पञ्च पुष्पाणि स्वागते षट्चतुःपलम् ।
जलं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तानि पञ्चशः ॥१०६॥

पाद्ये चाऽर्घ्यजलं तावद् गन्धपुष्पाक्षता यवाः ।
दूर्वातिलाश्च चत्वारः कुशाग्रश्वेतसर्षपाः ॥१०७॥

जातीफललवङ्गं कक्कोलतोयं च षट्पलम् ।
प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्कं घृतं मधु ॥१०८॥

दध्ना सह पलैकं तु शुद्धं वारि तथाऽऽचमे ।
परिमाणं तु पञ्चाशत्पलं स्नानार्थमम्भसः ॥१०९॥

निर्मलेनोदकेनाऽथ सर्वत्र परिपूर्णता ।
मलिनं गर्भितं सर्वं त्यजेत्पूजाविधौ हरेः ॥११०॥

वितस्तिमात्रादधिकं वासोयुग्मं तनूत्तमम् ।
स्वर्णाद्याभरणान्येवं रत्नेन सहितानि च ॥१११॥

चन्दनागुरुकर्पूरपङ्कगन्धं पलावधि ।
नानाविधानि पुष्पाणि पञ्चाशदधिकानि च ॥११२॥

कांस्यादिनिर्मिते पात्रे भूयो गुग्गुलु कर्षभाक् ।
सप्तवर्त्या च संयुक्तो दीपः स्याच्चतुरङ्गुलः ॥११३॥

यावद्भक्ष्यं भवेत्पुंसस्तावद्द्याज्जनार्दने ।
नैवेद्यं विविधं वस्तु भक्षादिकसमन्वितम् ॥११४॥

कर्पूरादियुता वर्त्तीर्नवकार्पासनिर्मिताः ।
शालिपिष्टा वन्दनायां शतधाऽऽवर्त्तयेन्नरः ॥११५॥

कार्या ताम्रादिपात्रे तत्प्रीतये हरिमेधसः ।
दूर्वाक्षतप्रमाणं च विज्ञेयं तु शताधिकम् ॥११६॥

उत्तमोऽयं विधिः प्रोक्तो विभवे सति सर्वदा ।
एषामभावे सर्वेषां यथाशक्त्या तु पूजनम् ॥११७॥

शारदातिलकेऽपि—

अनुकल्पं विवर्ज्जेत द्रव्याणां विभवे सति ।
अनेन विधिना यस्तु पूजयेदुपचारतः ॥११८॥

सर्वभोगान्वितो भूत्वा व्रजेदन्ते हरेः पुरम् ।
अथ द्वादशशुद्धिस्तु वैष्णवानामिहोच्यते ॥११९॥

गृहोपसर्पणं चैव तथाऽनुगमनं हरेः ।
भक्त्या प्रदक्षिणं चैव पादयोः शोधनम्पुनः ॥१२०॥

पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यै वोत्तोलनं हरेः ।
करयोः सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विलिख्यते ॥१२१॥

तन्नामकीर्त्तनं चैव गुणानामथ कीर्त्तनम् ।
भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते ॥१२२॥

तत्कथाश्रवणं चैव तस्योत्सवनिरूपणम् ।
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते ॥१२३॥

पाद्योदकं च निर्माल्यं मालानामपि धारणम् ।
उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः ॥१२४॥

आघ्राणं गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधनः ।
विशुद्धिः स्यादनन्तस्य घ्राणस्याऽपि विधीयते ॥१२५॥

यत्र पुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितम् ।
तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत् ॥१२६॥

ललाटे च गदा कार्या मूर्द्ध्नि चापं शरांस्तथा ।
नन्दकं चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये ॥१२७॥

शङ्खचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि ।
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम ॥१२८॥

तन्त्रान्तरे—

यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं[1] भगवतो[2] गृहे ।
देवोत्सवेष्वसेवा चाऽप्यप्रणामस्तदग्रतः ॥१२९॥

---

१. ख. यान । २. ख. भगतो ।

उच्छिष्टे च तथाऽऽशौचे भगवद्वन्दनादिकम् ।
एकहस्तप्रणाम[1] च पुरस्तात्तत्प्रदक्षिणम् ।।१३०।।

पादप्रसारणं चाऽग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् ।
शयनं भक्षणं चाऽपि मिथ्याभाषणमेव च ।।१३१।।

निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम् ।
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामतर्प्पणम् ।।१३२।।

विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदान व्यजनस्य च ।
पट्टीकृत्याऽऽसनं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।।१३३।।

गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवानां निन्दनं तथा ।
अपराधा इमे विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तिताः ।।१३४।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि— साध्यनारायणाय ऋषये नमः, मुखे— गायत्र्यै छन्दसे, हृदि— श्रीपरमात्मने देवतायै नम" इति विन्यस्य, ममेष्टार्थे विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा मूलमन्त्रं करयोर्व्यापय्य "कृद्धोल्काय स्वाहा हृदयाय नमः, महोल्काय स्वाहा शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय स्वाहा शिखायै वषट्, द्यूल्काय स्वाहा कवचाय हुँ सहस्रोल्काय स्वाहाऽस्त्राय फडि" ति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिषु पञ्चाङ्गुलिषु विन्यस्य, दक्षकनिष्ठामूलपर्वादितर्जन्यग्रपर्वान्तेषु द्वादशस्थानेषु— "ॐ ॐ ॐ नमः, ॐ नं ॐ नमः, एव मों०, नां०, यं०, णां०, यं०, पुनः ॐ नं, मों०, नां" इति प्रणवपुटितान् वर्णान् विन्यस्य, वामतर्जनीमूलपर्वाऽऽरभ्य तत्कनिष्ठान्तपर्वान्तेषु द्वादशस्थानेषु ॐ रां ॐ नमः, ॐ यं ॐ, एवं णां०, यं०, ॐ नं०, मों०, नां०, रां०, यं०, णां०, यं० इति त्रिरावृत्या मूलमन्त्राक्षराणि विन्यस्य, हृत्शिरःशिखाकवचास्त्रेषु प्रोक्तपञ्चाङ्गानि विन्यस्य, "हृदये—ॐ नमः, शिरसि—नं, शिखायां मों०, कवचे नां०, नेत्रयोः रां०, अस्त्रस्थाने—यं०, कुक्षौ—णां०, पृष्ठे यं नम" इति विन्यस्य, "ऐन्द्रीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्रायस्वाहा, आग्नेयीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहे"त्यादि तत्तद्दिगूहेन[2] दशदिग्बन्धनं कृत्वा, "मूर्द्ध्नि—ॐ ॐ ॐ नमः, एवं मुखे—मों०, हृदि नां०, नाभौ—रां०,

१. ख. एकहस्तप्रमाणं । २. ०द्दिगूहनेन ।

गुह्ये—यं०, जानुनोः—णां०, पादयोः—यं" इति सृष्ट्या विन्यस्य, "पादयोः—ॐ ॐॐ नमः, एवं जानुनोः—नां०, गुह्ये—मों०, नाभौ—नां०, हृदि—रां०, मुखे—यं०, नेत्रयोः—णां०, मूर्ध्नि—य नम" इति सहारेण विन्यस्य, "नाभौ ॐ ॐ ॐ नमः, गुह्ये—नं०, जानुनोः—मों०, पादयोः—नां०, मूर्ध्नि- रां०, नेत्रयोः—यं, मुखे णां०, हृदि—यं० इति स्थित्या विन्यस्य, 'मूलाधारे ॐ ॐ ॐ नमः, हृदि—नं०, मुखे—मों०, दक्षबाहुमूले नां०, वामे—रां०, दक्षोरुमूले—यं०, वामे—णां०, नाभौ—यं नमः।" ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा, "कण्ठे—ॐ ॐ ॐ नमः, नाभौ—नं०, हृदि—मों, दक्षस्तने—नां०, वामे—रां०, दक्षपार्श्वे- यं, वामे—णां०, पृष्ठे-यं०" पुनर्व्यापकं, एवं प्रत्यावृत्तिव्यापकं कुर्यात्—"मूर्द्धिन—ॐ ॐॐ नमः, मुखे-नं०,दक्षनेत्रे—मों०, वामे—नां०, दक्षकर्णे—रां०, वामे—यं०, दक्षनासि—णां०, वामे—यं०,दक्षबाहुमूले—ॐ, तन्मध्ये—नं०, तन्मणिबन्धे—मों०, तदङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिषु शिष्टान् पञ्चार्णान् न्यसेत्। एव वामबाहौ, एवमेव दक्षोरुमूलजानुगुल्फाद्यङ्गुष्ठाङ्गुलिषु न्यसेत्। एवं वामेऽपि, ततो हृद्येव, त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्रेषु सप्तधातुषु सप्तवर्णान्विन्यस्याऽष्टमं पायौ न्यसेत्। "मूर्द्धिन—ॐ ॐ ॐ, नेत्रयोः—नं०, मुखे—मों०, हृदि—नं०, उदरे—रां०, ऊर्वोः—यं०, जङ्घयोः—णां०, पादयोः—यं, गण्डयोः—ॐ, अंसयोः—नं०, ऊर्वाः—मों०, पादयोः—नां० वामाधःकरे—रां, दक्षाधःकरे—यं०, वामोर्ध्वकरे—णां, दक्षोर्द्ध्वे यं०, **इति विभूतिपञ्जरन्यासः।**

पादयोः—ॐ नमः पराय पृथिवीतत्वात्मने नमः, लिङ्गे—नं नमः पराय जलतत्वात्मने०, हृदि—मों नमः पराय तेजस्त०, मुखे—नां नमः पराय वायुत०, मूर्द्धिन—रां नमः परायाकाशत०, हृदि—यं नमोऽहङ्कारत०, सर्वाङ्गे—णां नमः महत्तत्वा०, यं नमः पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः" इति संहृत्या विन्यस्य, "सर्वाङ्गे—यं नमः पराय प्रकृतितत्त्वा०, णां नमो महत्तत्वा०, हृदि—यं नमः अहङ्कृतित०, मूर्द्धिन—रां नमः आकाशत०, मुखे—नां नमः वायुत०, हृदि—मों तेजस्त०, लिङ्गे—नं नमः जलत०, पादयोः—ॐ नमः पराय पृथिवीत०" इति सृष्ट्या विन्यस्य, ततः "सर्वाङ्गे—ॐ आं बिन्दुरूपायात्मने०,[1] ॐ पं शक्तिरूपाय परमात्मने, ॐ ह्रीं शान्तिरूपाय ज्ञानात्मने०" ततो ललाटे—ॐ अं केशवाय धात्र०, उदरे—नं आं नारायणायार्यम्णे, हृदि—मों इं माधवाय मित्राय०, कण्ठे—भं ईं गोविन्दाय वरुणाय०, दक्षपार्श्वे—गं उं विष्णवे अंशवे०, अंसे—वं ऊं मधुसूदनाय भगाय०, गलदक्षभागे—तें एं त्रिविक्रमाय विवस्वते०, वामपार्श्वे—वां

१. ख. बिन्दुरूपात्मने ।

ऐं वामनायेन्द्राय०, वामांसे—सुं ओं श्रीधराय पूष्णे०, गलवामभागे—दें औं हृषीकेशाय पर्ज्जन्याय०, पृष्ठे—वां अं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे०, ककुदि—यं अः दामोदराय विष्णवे०, शिरसि—ॐ नमो नारायणाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः।" इति मूर्तिपञ्जरन्यासः।

ततः "ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलालङ्कृतशङ्खचक्रगदाब्जहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्सालङ्कृतवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितआत्मज्योतिर्द्वयदीप्तिकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः" इति सर्वाङ्गे व्यापकं न्यसेत्। ततः सर्वाङ्गे—ॐ मं नमः पराय जीवतत्त्वात्मने नमः, ॐ भं नमः प० प्राणत०, हृदि—बं नमः प० बुद्धित०, ॐ फं नमः प० अहङ्कारत०, तत ॐ प नमः प० मनस्त०, मूर्ध्नि—ॐ नं० शब्दत०, मुखे—धं न० स्पर्शत०, हृदि—दं न० रूप०, गुह्ये— ॐ थं 'रसत०'[1], पादयोः—ॐ तं गन्ध०, श्रोत्रयोः—ॐ णं श्रोत्र०, सर्वाङ्गे—ढं त्वक्०, अक्ष्णोः—ॐ डं नेत्रत०, जिह्वायां—ॐ ठं जिह्वात०, घ्राणयोः—ॐ टं घ्राण०, मुखे—ञं वाक्त० पाण्योः—ॐ झं[2] पाणि०, पादयोः—ॐ जं पादत०, पायौ—ॐ छ पायुत०, गुह्ये—चं उपस्थ०, मूर्द्धिन ङ—आकाशत०, मुखे—घं वायु०, हृदि—ग तेजस्त०, लिङ्गे—खं जल०, पादयोः—ॐ कं पृथिवीत०, हृदि—ष हृत्पुण्डरीकत०, तत्रैव—ॐ ह सूर्यमण्डलत०, ॐ सं सोममण्डलत०, ॐ रं वह्निमण्डलत०, मूर्ध्नि—ॐ षं परमेष्ठिने वासुतेवत०, मुखे—ॐ यं पुरुषाय सङ्कर्षणत०, हृदि—रं[3] विश्वाय प्रद्युम्नत०, गुह्ये—वं निवृत्तये अनिरुद्धत०, पादयोः—ॐ लं सर्वाय नारायणतत्वा०, ततः "ॐ क्ष्रौं नमः पराय नृसिंहाय कोपतत्वात्मने नम" इति मूर्द्धादिपादपर्यन्तं व्यापकत्वेन विन्यस्य, श्रीनारारायणात्मकं स्वात्मानं ध्यायेत्। ततः प्रोक्तवैष्णवमुद्रां बद्ध्वा ध्यानाद्यात्मपूजान्तं कुर्यात्।

आत्मपूजायां विशेषस्तु—विभूतिपञ्जरन्यासक्रमेण न्यासस्थानेषु न्यासमन्त्रेण गन्धादिभिः सम्पूज्य, किरीटमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिपञ्चकं त्रयं वा स्वदेहे दत्वा, योगपीठदेवतापूजादि तन्त्रोक्तविधिना सर्वं कुर्यादिति। ततो मण्डूकादिपृथिव्यन्ते क्षीरसमुद्रं श्वेतदीपञ्च सम्पूज्य, नन्दनोद्यानादिपरतत्वपूजान्तेऽष्ट दलकेसरेषु स्वाग्रादिमध्यान्तं प्रादक्षिण्येन "विमलायै०, उत्कर्षिण्यै०, ज्ञानायै०, क्रियायै०, योगायै०, प्रभ्व्यै०, सत्यायै०, ईशानायै०, अनुग्रहायै नम" इति सम्पूज्य, 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोग

१. '–' क. पुस्तके नास्ति। २. ख. कं। ३. ख. ॐ ॐ।

पद्मपीठात्मने नमः' इति मन्त्रेण समस्तं पीठं सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य, 'श्रीविष्णुमूर्त्ति कल्पयामी'ति मध्ये मूर्त्ति परिकल्प्य, पुनर्मूलमुच्चार्य्य 'श्रीविष्णुमूर्त्तये नमः' इति चतुरायतनदेवता गणेशादिकाः समभ्यर्च्य प्रमाणोक्तावाहनमन्त्रेणाऽऽवाह्य, स्थापनादिप्राणस्थापनान्त[1]-वैष्णवमुद्राः प्रदर्श्याऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायां प्राग्वत्पञ्चाङ्गानि[2] सम्पूज्य, [3]अष्टदलकेसरेष्वेव स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन "ॐ नमः, नं नमः, मों० नां०, रां०, यं०, णां०, यं नमः", ततोऽष्टदलेषु स्वाग्रादिदिक्पत्रचतुष्टये—"ॐ वासुदेवाय०, सङ्कर्षणाय०, प्रद्युम्नाय०, अनिरुद्धाय, विदिग्दलेषु—शान्त्यै० श्रियै०, सरस्वत्यै०, रत्यै०", ततो दलाग्रेषु—"ॐ चक्राय०, शङ्खाय०, गदायै०, पद्माय०, कौस्तुभाय०, मुसलाय०, खड्गाय०, वनमालायै०", ततश्चतुरस्रप्रथमरेखायां देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन चतुर्दिक्षु-ध्वजाय०, गरुडाय०, शङ्खनिधये०, पद्मनिधये०," विदिक्षु — "विघ्नाय०, आर्याय०, दुर्गायै० विष्वक्सेनाय०", ततो द्वितीयरेखायामिन्द्रादींस्तृतीयायां वज्रादींश्च सम्पूज्य, धूपादि सर्वं पूर्ववत्कृत्वा सपाययेदिति ।

सारसङ्ग्रहे—

द्वात्रिंशल्लक्षमानेन पादोनेनाऽर्द्धतोऽपि वा ।
तदर्द्धेनाऽथ वा मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥१३५॥

जुहुयात्तद्दशांशेन त्रिमध्वक्तैः सरोरुहैः ।
तर्प्पयेच्चन्द्रकाश्मीरमृगनाभिसुवासितैः ॥१३६॥

सलिलैः स्वाभिषेकान्ते तर्प्पयेद् ब्राह्मणानपि ।
सुकुलीनान् सदाचारान् विष्णुभक्तानतद्रिन्तः ॥१३७॥

अत्रेयं जपसंख्या कलियुगादिकृतयुगपरा ज्ञेया ।

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान् साधयेत् सुधीः ।
सायुधाष्टभुजं सौम्यं सर्वाङ्गधवलद्युतिम् ॥१३८॥

निर्विषीकरणे ध्यायेद्विष्णुं गरुडवाहनम् ।
एवमेव हरिं ध्यायेद्रोगसंहारकर्मणि ॥१३९॥

दधिमध्वाज्यसंयुक्ताश्चतुरङ्गुलसम्मिताः ।
गुडूचीरयुतं कृत्वा मृत्युमेवाऽतिवर्त्तते १४०॥

---

१. ख. ०स्थापनान्ते । २. ख. ०पूजाङ्गानि । ३. ख. कर्णिकायां अष्टदल० ।

शनैश्चरदिनेऽश्वत्थ सम्यगालभ्य पाणिना ।
जपेदष्टशतं शुद्धो म्रियते नाऽपमृत्युना ॥१४१॥

पञ्चविंशतिसङ्ख्याप्ता मन्त्री शुद्धाः पिबेदपः ।
निरस्तपातको भूत्वा ह्यरोगी ज्ञानवान् भवेत् ॥१४२॥

जप्त्वाऽयुतेन कुम्भाद्भिः सेचनं सर्वरोगनुत् ।
भुञ्जानः सप्तजप्तान्नं धीवृद्ध्यारोग्यवान् भवेत् ॥१४३॥

चन्द्रसूर्योपरागे तु त्रिदिनं दिनमेव वा ।
उपोष्याऽष्टसहस्रं तु स्पृष्ट्वा ब्राह्मीघृतं जपेत् ॥१४४॥

यः पिबेल्लभते मेधां कवित्वं वादितां च सः ।
विल्वैरयुतहोमेन सद्यो धनपतिर्भवेत् ॥१४५॥

विल्वैः तत्फलैः पत्रैर्वा ।

पञ्चतन्तुमयं सूत्रमयुतेनाऽभिमन्त्रितम् ।
धारयेद्दक्षिणे हस्ते सर्वत्र स्यात्सुरक्षितः ॥१४६॥

षट्कोणे प्रणवान्तरे प्रणवगं साध्यं लिखेन्मध्यतः,
षट्कोणेषु लिखेत्सुदर्शनमनुं पद्मेऽष्टपत्रे ततः ।
अष्टार्णञ्च तदग्रतः प्रविलिखेत्त श्रीकराष्टाक्षरं,
बाह्ये द्वादशवर्णमन्त्रसहितं स्याद्द्वादशारं ततः ॥१४७॥

द्वात्रिंशद्दल आलिखेन्नरहरेरानुष्टुभार्णांस्तत-
स्तद्बीजेन च वेष्टयेद्बहिरिदं यन्त्रं हि विष्णोः परम् ।
पूजाहोमसुसाधितं करधृतं भूतादिरक्षाकरं,
लक्ष्मीकीर्त्तिविवर्द्धनं परमिदं मोक्षार्थिनां मुक्तिदम् ॥१४८॥

अस्यार्थः—षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये प्रणवोदरे प्रणवं विलिख्य, तन्मध्ये साध्यनामाऽऽलिख्य, षट्सु कोणेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वक्ष्यमाणसुदर्शनषडक्षर-मन्त्रस्यैकैकमक्षरं प्रतिकोणं विलिख्य, तद्बहिरष्टदलपद्मं कृत्वा, तद्दलेषु नारायणाष्टाक्षरवर्णानालिख्य, तद्दलाग्रेषु वक्ष्यमाणश्रीकराष्टाक्षराण्यालिख्य, तद्बहिर्द्वादशदल-कमलं कृत्वा, तद्दलेषु वक्ष्यमाणवासुदेवद्वादशाक्षराण्यालिख्य, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दल-पद्मं विरच्य, तद्दलेषु वक्ष्यमाणनृसिंहमन्त्रस्य द्वात्रिंशदर्णानेकैकशः समालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तदन्तराले स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यस्थाक्षरसम्मुखं यथा भवति तथा निरन्तरं नृसिंहबीजेन वेष्टयेदित्येतद्यन्त्रं उक्तफलदं भवति ।

श्रीयन्त्रसारे—

षट्कोणकर्णिकामध्ये तारं साध्यसमन्वितम् ।
सुदर्शनषडर्णांश्च षट्सु कोणेषु सन्धिषु ॥१४९॥

षडङ्गानि चतुःपत्रे केसरेषु क्रमेण च ।
गोपालकचतुर्वर्णमन्त्रस्यैकैकमक्षरम् ॥१५०॥

दलेषु द्वादशार्णस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि च ।
अष्टपत्रे केसरोद्यदष्टार्णैकैकवर्णके ॥१५१॥

नृसिंहानुष्टुभो वर्णांश्चतुरश्चतुरस्ततः ।
सुदर्शनद्व्यष्टपत्रकेसरे षोडशच्छदे ॥१५२॥

ऋचां पुरुषसूक्तस्य क्रमात् षोडशकं बहिः ।
मातृकार्णैर्लसद्वृत्तं भूपुराश्रिस्थतारकम् ॥१५३॥

पत्रं पुरुषसूक्तस्य पुत्रायुःकीर्त्तिकान्तिदम् ।
सर्वपापहरं श्रीदं धमार्थसुखमोक्षदम् ॥१५४॥

हैयङ्गवीने प्रविलिख्य यन्त्रं,
त्रिवारमेतत्प्रतिजप्य सूक्तम् ।
प्रातः समद्याद्वनिता विशुद्धा,
पुत्रं प्रसूते सकलागमज्ञम् ॥१५५॥

घोरे विषे घोरतरेऽभिचारे,
घोरज्वरे घोरतरे च शूले ।
हैयङ्गवीने प्रविलिख्य यन्त्रं,
प्रभक्षयेत्तत्प्रशमाय जप्त्वा ॥१५६॥

अस्यार्थः—षट्कोणं कृत्वा, तत्कर्णिकामध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तत्कोणेषु सुदर्शनमन्त्रस्यैकैकमक्षरं स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येनाऽऽलिख्य, तत्सन्धिषु सुदर्शनषडक्षरस्य षडङ्गमन्त्रान् समालिख्य, तद्बहिश्चतुर्दलकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु गोपालचतुरक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरं, तत्पत्रेषु वासुदेवद्वादशाक्षरमन्त्रस्य प्रतिदलं वर्णत्रयं संलिख्य, तद्बहिरष्टदलकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु नारायणाष्टाक्षरस्यैकैकमक्षरं, तद्दलेषु द्वात्रिंशदक्षरनृसिंहमन्त्रस्य चतुरश्चतुरो वर्णान् प्रतिदलं विलिख्य, तद्बहिः षोडषदलपद्मकेसरेषु वक्ष्माणषोडशाक्षरसुदर्शनमन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य, तद्दलेषु

पुरुषसूक्तस्यैकैकामृचं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकां सबिन्दुकां विलिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा तत्कोणेषु प्रणवं लिखेदेतदुक्तफलदम् । अत्र पुरुषसूक्त तु सर्वैरपि ऋग्वेदोक्तमेव ग्राह्यम् । सर्वेषां सूक्तानां तन्मूलकत्वादन्यवेदेषु पाठभेद-दर्शनात् । सहस्रशीर्षेति षाडशर्चस्य नारायण ऋषिः, पुरुषो देवता, पञ्चदशाऽ-नुष्टुभस्त्रिष्टुबेका ।

सारसङ्ग्रहे—

अष्टवर्णस्य मन्त्रस्य वर्णाष्टक ऋषिः पृथक् ।
मूर्त्तिभेदविभिन्नोऽसौ प्रोच्यते साधकेष्टदः ॥१५७॥

गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्राह्वयस्तथा ।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च कश्यपश्चाऽत्रिरेव च ॥२५८॥

अगस्त्य इति विज्ञेया ऋषयोऽष्टौ यथाक्रमम् ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥१५९॥

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च विज्ञेया देवताः क्रमात् ।
अग्निर्भूवायुराकाश आदित्याद्या विधुश्च भम ॥१६०॥

तत्वानि सप्तलोकास्तु क्षेत्राणि सपरात्मकाः ।
शुक्लं हिरण्मयं कृष्णं रक्तं कुङ्कुमसन्निभम् ॥१६१॥

पद्मकिञ्जल्कनीलाभं रक्तं वर्णाष्टकं मतम् ।
षष्ठाद्ययोरुदात्तः स्यात्स्वरितोऽन्त्यद्वितीययोः ॥१६२॥

प्रचयौ त्रिचतुर्वर्णौ निहतं पञ्चमाक्षरम् ।
उदात्तं सप्तमं बीजमिति संस्मृत्य सञ्जपेत् ॥१६३॥

दरचक्रगदापद्मकरे मूर्त्तीर्नमोर्णयोः ।
इतराः स्युश्चक्रशङ्खगदापद्मकराः क्रमात् ॥१६४॥

या मूर्त्तिः पूज्यते पूर्वं तस्या अन्याः प्रयान्त्यथ ।
अङ्गतामवशिष्टेंऽशे स्वयं यात्यङ्गतां पुनः ॥१६५॥

वक्ष्यमाणाच्च तारस्य विधानादधिकावृतिः ।
इयमेवेतरत्सर्वं वक्ष्यमाणप्रकारवत् ॥१६६॥

सर्वार्चायां पूर्वमङ्गमूर्त्यष्टकमतो विदुः ।
लोकपालादिकं चाऽन्यत्समानं सर्वपूजने ॥१६७॥

नार्णजे वासुदेवादिशक्तयोऽर्च्या ध्वजादिकाः ।
तृतीयजे रतिधृतिकान्तिस्तुष्टिः सपुष्टिका ॥१६८॥

स्मृतिर्दीप्तिश्च कीर्तिश्च पूज्याः पश्चाद् ध्वजादिकाः ।
तुरीयजे च रत्यादिपूजा शेषं च पूर्ववत् ॥१६९॥

पञ्चमाक्षरजे श्रीर्भूर्माया स्याच्च मनोन्मनी ।
ह्रीः श्री रतिः पुष्टिमोहिन्यौ माया च महादिका ॥१७०॥

योगाम्बिका तथा पूज्या षष्ठाक्षरभवे[1] त्वरिः ।
शङ्खो गदा हल शार्ङ्गो मुसलोऽसिः सशूलकः ॥१७१॥

सप्तमार्णभवेऽनन्तो वासुकिस्तक्षकस्तथा ।
मत्स्यादिभिः पञ्चमी स्यात्षष्ठ्यनन्तादिभिर्मता ॥१७२॥

अन्यत्पूर्ववदेव स्यात्सर्वं मत्स्यश्च कूर्मकः ।
वराहश्च नृसिंहश्च कुब्जो रामत्रयं तथा ॥१६३॥

कृष्णः कल्की त्वनन्तात्मा पूज्याश्चैव च नामतः ।
पूजाविधौ च पूर्वोक्ते यन्नोक्तं चोह्यमेव तत् ॥१७४॥

अष्टाक्षरार्णमन्त्राणां विधानं सम्यगीरितम् ।
एतेन यो यजेन्मन्त्री भक्त्या परमया हरिम् ॥१७५॥
स वाञ्छितार्थान् लभते ह्ययत्नादेव साधकः ।

अथाऽष्टाक्षरस्याऽष्टवर्णसंज्ञानामष्टमूर्त्तीनां विधानमाह—

अष्टवर्णस्येति । दरः शङ्खः, नमोर्णयोर्मूर्त्त्योः पूर्ववदायुधध्यानम् । अन्यासां तु दक्षाधःकरमारभ्य प्रादक्षिण्येन दक्षोर्ध्वकरपर्यन्तं चक्रशङ्खगदापद्मानि ध्येयानि सा मूर्तिरिति—या मूर्तिः प्राधान्येनाऽर्चयितुरिष्टा, सा मध्ये पूज्या । इतराः सप्तमूर्त्तयः पूर्वादिसौम्यान्तासु दिशासु पूज्याः । ईशानकोणे तु पुनः प्रधानमूर्तिरेव पूज्या-'ऽवशिष्टेंशे स्वयं यात्यङ्गतां पुनरि'त्युक्तेः । अत्र द्वितीययन्त्रपूजायां तृतीयादिमूर्त्तिः सम्पूज्याऽनन्तरमाद्यां द्वितीयां पूजयेत् । एवं तृतीयादिष्वप्यूहनीयम् तत्र प्रणव-मूर्त्तिपूजायां प्रथमाङ्गावृत्तिः, द्वितीयाऽष्टमूर्त्तिभिः, तृतीया सशक्तिकैर्वासुदेवादिभिः आत्मादिभिः, शान्त्यादिभिश्चतुर्थी, शक्रादिभिः पञ्चमी, तदस्त्रैः षष्ठी, नार्णमूर्त्त्य-

---
१. क. षष्ठाक्षरभवं ।

र्चायां तृतीया वासुदेवादिभिः सशान्त्यादिभिः, ध्वजादिभिश्चतुर्थी, पञ्चमी षष्ठी च शक्रादिभिस्तदस्त्रैश्च । मोर्णमूर्त्तिपूजायां तृतीया रत्यादिभिः, ध्वजादिभिश्चतुर्थी । नाकारजे विधाने रत्यादिभिस्तृतीया । रार्णविधौ श्र्यादिभिस्तृतीया । तत्र माया, महामाया, योगमायेति शक्तित्रयनाम ज्ञेयम् । यार्णविधौ तृतीया शङ्खादिभिः । णाकारविधौ तृतीयाऽनन्तादिभिः । यकारमूर्त्तिपूजायां प्रथमाऽङ्गावृत्तिर्द्वितीया वासुदेवादिभिः शान्त्यादिभिश्च, तृतीया केशवाद्यैस्तुरीया ध्वजादिभिः, पञ्चमी मत्स्यादिभिः, लोकेशैः षष्ठी, तदस्त्रैः सप्तमी ।

सारसङ्ग्रहे—

वेदादिमायया युक्तं हौं बीजं शङ्करं वदेत् ।
ङेऽन्तं नारायणं प्रोक्त्वा हृदन्ते हौं वदेत्ततः ॥१७६॥

हृल्लेखाप्रणवान्तश्च मन्त्रो हरिहरात्मकः ।
सर्वसम्पत्प्रदो नित्यं षोडशाक्षर ईरितः ॥१७७॥

वेदादिः प्रणवः, माया भुवनेश्वरीबीजं, हौं-स्वरूपं, शङ्कर-स्वरूपं ङेऽन्तं नारायणं नारायणाय, हृत् नमः, हृल्लेखा भुवनेशीबीजम् । तथा—

ऋषिर्नारायणश्छन्दो ह्यनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवता स्याद्धरिहरः सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥१७८॥

षड्दीर्घयुङ्मायया च षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
शूलं चक्रं पाञ्चजन्यमभीतिं दधतं करैः ॥१७९॥

स्वस्वरूपाढ्यनीलार्द्धदेहं हरिहरं भजे ।

दक्षोर्द्ध्वादि तदधोऽन्तमायुधध्यानम् ।

देवं प्रपूजयेत्पीठे पूर्वोक्ते नवशक्तिके ॥१८०॥

पूर्वमङ्गानि सम्पूज्य शक्ती रक्ताः प्रपूजयेत् ।
लक्ष्मीर्नारायणी भूश्च धरा स्यादम्बिका तथा ॥१८१॥

त्रैयम्बिका तथा गौरी गङ्गाधर्यष्टमी मता ।
लोकेशास्तद्बहिः पूज्या वज्रादीन्यायुधान्यपि ॥१८२॥

एवं सम्यक् प्रकारेण पूजितेऽभीष्टमाप्नुयात् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि नारायणाय ऋषये०, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे, हृदये—श्रीहरिहराय देवतायै नमः" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, 'हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहे'त्यादि करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यङ्ग-पूजान्तेऽष्टदलेषु "लक्ष्म्यै नमः, नारायण्यै०, भूम्यै०, धरायै०, अम्बिकायै०, त्रैयम्बिकायै०, गौर्यै०, गङ्गाधर्य्यै नम" इति देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्येन्द्रा-द्यर्चादि सर्वं समापयेदिति ।

सारसङ्ग्रहे—

अथ प्रवक्ष्यामि मनुं श्रीकरं सार्थनामकम् ।
येन प्रजप्तमात्रेण शक्रो लेभे श्रियं पराम् ॥१८३॥

शारदातिलके—

उत्तिष्ठ-पदमाभाष्य श्रीक्रोधीशहुताशनैः ।
वन्हिजायावधिर्मन्त्रो बस्वक्षरसमन्वितः ॥१८४॥

उत्तिष्ठेति स्वरूपं, श्रीः श्रीकारः, क्रोधीशः ककारः, हुताशनो रेफः, वह्निजाया स्वाहा ।

सारसङ्ग्रहे—

प्रणवाद्यं रमाद्यञ्च केचनेच्छन्ति सूरयः ।
तथा— ऋषिरस्य भवेद्वामः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम ॥१८५॥
श्रीकराख्यो हरिः प्रोक्तो देवताऽस्य मनीषिभिः ।

पदार्थादर्शे—ॐ बीजं, स्वाहा शक्तिः । तदुक्तम्—
'विष्णुः सबिन्दुरुदितो बीजं शक्तिः शिरोऽस्य विज्ञेयम्' । इति

हृदयं भीषयद्वन्द्वं त्रासयद्वितयं शिरः ।
शिखा प्रमर्दययुगं वर्म प्रध्वंसयद्वयम् ॥१८६॥

अस्त्रं रक्षयुगं सर्वे हुमन्ता समुदीरिताः ।
अष्टाङ्गानि न्यसेन्मन्त्री मन्त्रवर्णैर्यथाविधि ॥१८७॥

पञ्चाङ्गनेत्रजठरपृष्ठेषु क्रमतो न्यसेत् ।
विदध्यात्करयोर्न्यासं मन्त्रार्णैरष्टभिः सुधीः ॥१८८॥

दक्षतर्जन्यादिका च यावत्स्याद्वामतर्जनी ।
सृष्टिरेतद्वैपरीत्यं संहारो गदितः स्थितिः ॥१८९॥

दक्षान्यतर्जनीपूर्वा कनिष्ठायुग्मकान्तिका ।
कामबाणानङ्गुलीषु ह्यङ्गुष्ठादिस्वनङ्गकान् ॥१९०॥

न्यसेद्बाणार्णपुटितमातृकां विन्यसेत्सुधीः ।
अष्टौ तत्वानि विन्यसेच्छरीरे देशिकोत्तमः ॥१९१॥

प्रकृतिमहदहङ्कृत्याकाशानिलवह्निनीरभूम्याख्यैः ।
मन्त्रार्णयुतैः पदान्धुहृदास्यकहृदयसकलतनुषु[1] ॥१९२॥

न्यसेत्संहार उक्तोऽयं सर्गस्तद्विपरीतकः ।
तारसम्पुटितमूलेन त्रिशो न्यसेत्तनौ बुधः ॥१९३॥

[2]कट्यास्यहृन्नाभिगुह्यजानुपादेषु विन्यसेत् ।
एषा सृष्टिश्च नाभ्याद्या हृदन्ता स्थितिरीरिता ॥१९४॥

सर्गाद् व्युत्क्रमतश्चाऽपि संहारो मन्त्रिभिर्मतः ।
मूर्द्धिन मध्या तर्जनी स्यान्नेत्रेऽङ्गुष्ठस्त्वनामया ॥१९५॥

वक्त्रेऽङ्गुष्ठस्तर्जनी च हृद्यङ्गुष्ठकनिष्ठिके ।
नाभावङ्गुष्ठवर्ज्याश्चाऽङ्गुलयो गुह्यजानुषु ॥१९६॥

साङ्गुष्ठा पादयुग्मे च न्यसेन्मन्त्रार्णकांस्तनौ ।

न्यासेष्वयमङ्गुलिनियमो वैष्णवमन्त्रेषु यत्र यत्र सृष्टिस्थितिसंहारन्यास उक्तस्तत्र सर्वत्र ज्ञेयः ।

द्व्यष्टवारं समावृत्या देशिको यतमानसः ॥१९७॥

मूलाधारसहृद्वक्त्रकरपन्मूलनाभिषु ।
गलतुन्दे हृदि कुचपार्श्वद्वन्द्वसपृष्ठके ॥१९८॥

आस्यनेत्रश्रोत्रघ्राणहस्ताग्रे मणिबन्धके ।
कूर्परांसे[3] तृतीया स्याच्चतुर्थी च तथा भवेत् ॥१९९॥

१. क. ०हृदास्यकहृद्बृदय० । २. ख. कक्षास्य० । ३. कर्पूरांसे ।

पादाग्रके गुल्फजानुनितम्बद्वयकेषु च ।
दोःपादसन्धिशाखासु चतुरावृत्तयो मताः ॥२००॥

करपादाङ्गुलीयुग्ममध्ये न्यासद्वयं भवेत् ।
मूर्द्धाक्षिकण्ठहृदयजठरोरुपदद्वये ॥२०१॥

हृदि न्यसेत्सानिलेषु धातुषु क्रमतः सुधीः ।
गण्डांसस्तनपार्श्वस्फिगूरुजङ्घाङ्घ्रिषु द्वयम् ॥२०२॥

प्रथमार्णं पादतले परं पादाग्रजानुषु ।
गुदाण्डगुह्यकन्देऽन्यत्पार्श्वनाभौ चतुर्थकम् ॥२०३॥

वक्षः पृष्ठं हृदंसेऽन्यं कण्ठवक्त्रनसीतरम् ।
श्रोत्रनेत्रद्वये चान्त्यं ललाटेऽष्टममीरितम् ॥२०४॥

शिरोनेत्रादि गदितं स्थानेष्वप्रपदं न्यसेत् ।
ततस्तनौ मूलमनुं व्यापयेन्मूर्त्तिपञ्जरम् ॥२०५॥
विप्रादिकांश्चतुर्वर्णानास्यहस्तोरुपत्सु च ।

शारदातिलके तु—

मुखे न्यसेद् ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदिदं मनुम् ।
बाहू राजन्यः कृतोऽयं न्यस्तव्यो बाहुयुग्मके ॥२०६॥

ऊरू तदस्य यद्वैश्य इममूरुद्वये न्यसेत् ।
पादद्वये न्यसेन्मन्त्रं पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥२०७॥

न्यसेदाभरणानीह त्वायुधानि च देशिकः ।
ततः सञ्चिन्तयेद्विष्णुं श्रीकरं हृदयाम्बुजे ॥२०८॥

लोलकल्लोलजालेन फेनिले सोर्मिमालके ।
दुग्धाम्बुधावत्र मध्ये द्वीपं शुक्लमयं शुभम् ॥२०९॥
शुक्लमयं श्वेतदी(द्वी?)पम् ।

हेमस्थलीकमाकीर्णंनानामणिगणैः शुभम् ।
वनं सञ्चिन्तयेत्तत्र सकलर्त्तुनिषेवितम् ॥२१०॥

---

१. ख. स्थानेष्वाप्रपदं ।

कल्पद्रुमसमूहैश्च वारितातपमुत्तमम् ।
षट्पदालीकलारावसङ्कुलं लोलपल्लवम् ॥२११॥

पुष्पव्रजपरागोद्यत्तुषारपरिपूरितम् ।
हिरण्मयानां वृक्षाणां मणिपुष्पेषु चञ्चलाम् ॥२१२॥

इन्दिरालीभ्रङ्क्रमणशीलशक्रमणीरुचम् ।
अङ्गीकरोति यत्राऽपि रमन्तेऽप्सरसः सुरैः ॥२१३॥

औदार्य्यशोभनैश्वर्यसौभाग्यादिगुणैर्युतैः ।
रूपाभिराममधुराकृतिभिः सुकुमारके ॥२१४॥

मन्दस्मितलसद्दन्तमरीचिद्योतिताननाः ।
मनोज्ञा जितचन्द्राभा मदस्फुरितलोचनाः ॥२१५॥

जल्पाकपुंस्कोकिलोद्यद्देववृन्दैर्निरन्तरम् ।
उन्निद्रितोद्यन्मदनाः पीनोन्नतघनस्तनाः ॥२१६॥

सुश्रोणिभारादत्यर्थं मन्दगामिन्य उत्तमाः ।
एवम्भूताश्चाऽप्सरसः क्रीडन्ते यत्र चामरैः ॥२१७॥

मारसेनापतिमिव वनलक्ष्म्या गृहं यथा ।
जन्मस्थानमृतूनाञ्च कल्पवृक्षं स्मरेद् बुधः ॥२१८॥

इन्दिरायाः सोदरस्य नवरत्नमयस्य च ।
शिखावलिसमुद्योतिशीतलस्वतले शुभे ॥२१९॥

स्वर्णकुट्टिमसंशोभिमहारत्नमनोरमे ।
उद्यदर्कप्रभाभास्वत्पीठसन्निहितस्य च ॥२२०॥

प्रसिद्धविक्रमौघस्य पक्षिराजस्य चोपरि ।
उपरिष्टं गालिताच्छशुचिहाटकसन्निभम् ॥२२१॥

रत्नोद्यन्मकराकारचारुकुण्डलमण्डितम् ।
किरीटमणिसन्दीप्तदिक्चक्रं चारुभूषणम् ॥२२२॥

शशिखण्डलसच्छुभ्रक्लृप्तामलविशेषकम् ।
अतिचञ्चलसच्चिल्लि मुकुरोज्ज्वलगण्डकम् ॥२२३॥

स्मितसंशोभिवक्त्रेन्दुं कपोलफलकोज्ज्वलम् ।
दशनावलिरम्योद्यद्विराजितशुभाधरम् ॥२२४॥

पक्वबिम्बाधरं रम्यं रक्तपद्मपलाशवत् ।
आयतारुणनेत्रं च सम्यक्पक्ष्मविराजितम् ॥२२५॥

उरुहारमणिव्रातदीधितिप्रलसद्गलम् ।
दिव्यरत्नाङ्गदद्योतिबाहुमालधरं हरिम् ॥२२६॥

गदाकमलशङ्खारिधारणं[1] बाहुदण्डकैः ।
कपाटविपुलेनाऽथ कमलानिलयेन च ॥२२७॥

लसत्कौस्तुभदीप्तौघविद्योतिततलेन च ।
वक्षसा सुविराजन्तं रम्यं कटितटेन च ॥२२८॥

पीतपट्टांशुकयुजा विलसन्मणिमेखलम् ।
शरतूणसदृक्पीनरम्योरुपरिभूषितम् ॥२२९॥

केकिकण्ठलसत्कान्ति जङ्घायुग्ममनोहरम् ।
रक्तोत्पलाभचरणं पादाग्रजितकच्छपम् ॥२३०॥

शशरक्तसदृक्कान्तिध्वजाब्जाङ्कितपत्तलम् ।
करसद्रक्तकमलरमयाऽऽलिङ्गितं सदा ॥२३१॥

क्षमया चोपचूडन्तं[2] नवमाणिक्यशोभितम् ।
नवयौवनकान्त्यौघसंशोभिसकलाङ्गकम् ॥२३२॥

सुरासुरर्षिप्रमुखैः सेवितं चाऽप्सरोगणैः ।
पूर्णेन्दुबिम्बसदृशवितानसमलङ्कृतम् ॥२३३॥

सुरयोषाकराब्जालिलसच्चामरराजितम् ।
विद्युल्लतासंविलोलवैजयन्तीसुशोभितम् ॥२३४॥

यक्षविद्याधरव्यूहचारणादिनिषेवितम् ।
वामाद्यधस्थयोर्गदाकमले, तदाद्यूर्द्ध्वयोः शङ्खचक्र इत्यायुधध्यानम् ।
एवं ध्यात्वा मुकुन्दं तं पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥२३५॥

---

१. ख. ०धारिणं । २. ख. चोपगूढन्तं ।

मूर्त्ति मूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य मन्त्रवित् ।
अङ्गानि कर्णिकायाञ्च पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ॥२३६॥

दिग्दलेषु श्रीरतिधृतिकान्तीः पीतरक्तसितनीलाः ।

मूर्त्तीर्यजेद्विदिक्पत्रेष्विन्द्रादींस्तद्बहिः क्रमात् ।
वज्रादींश्च यजेत्पश्चाच्छ्रीकरार्चा समीरिता ॥२३७॥

शारदातिलके—'विष्वक्सेनं यजेदीश' इत्युक्तेर्**विष्वक्सेनमुद्राऽत्र**[1] प्रदर्शनीया तल्लक्षणम्—

पदार्थादर्शे—

नासिकाग्रसमीपस्थां कृत्वा वामस्य तर्जनीम् ।
दण्डवद्दक्षिणे कुर्याद्दक्षिणस्य प्रदेशिनीम् ॥२३८॥
विष्वक्सेनस्य मुद्रेयं तत्पूजायां प्रदर्शयेत् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रात.कृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे०, हृदि—श्रीकराय देवतायै०, गुह्ये—ॐ बीजाय०, पादयोः—स्वाहाशक्तये नमः" इति विन्यस्य, "भीषय भीषय हुं हृदयाय नमः, त्रासय २ हुं शिरसे स्वाहा०, प्रमर्द्दय २ हुं शिखायै वषट्०, प्रध्वंसय २ हुं कवचाय हुं, रक्षय २ हुं अस्त्राय फडि"ति पञ्चाङ्गमन्त्रान् प्राग्वद्विन्यस्य, "हृदये—उं नमः, शिरसि—त्ति०, शिखायां—ष्ठं०, कवचस्थाने—पुं०, अस्त्रस्थाने—रु०, नेत्रयोः—षं०, उदरे—स्वां०, पृष्ठे—हां नमः" इत्यष्टाङ्गं विन्यस्य, दक्षकरतर्जन्यां—उं०, मध्यमायां—त्ति०, अनामायां—ष्ठं०, कनिष्ठायां—श्रीं०, वामकनिष्ठायां—कं०, अनामायां—रं मध्यमायां—स्वां०, तर्जन्यां—हां नमः" **इति सृष्टिः ।**

वामतर्जन्यां—उं नमः, एवं दक्षतर्जन्यन्तः **संहारः ।**

ततो दक्षतर्जन्यां—उं०, मध्यमायां—त्ति०, अनामायां—ष्ठं०, कनिष्ठायां—श्रीं, वामतर्जन्यां—कं०, मध्यमायां—रं०, अनामायां—स्वां०, कनिष्ठायां हां नमः" **इति स्थितिः ।**

---

१. ख. विष्वक्सेनस्य मुद्रेयं तत्पूजायां ।

अत्र प्रथमतः संहारन्यासं कृत्वा सृष्टिस्थितिन्यासौ कार्यौ । "अङ्गुष्ठयोः—द्रां द्राविण्यै०, तर्जन्योः—द्रीं क्षोभिण्यै०, मध्यमयोः—क्लीं वशीकरण्यै०, अनामिकयोः—ब्लूं आकर्षण्यै०, कनिष्ठिकयोः—सः सम्मोहन्यै नमः, अङ्गुष्ठयोः—ह्रीं कामाय०, तर्जन्योः—क्लीं मन्मथाय०, मध्यमयोः—ऐं कन्दर्पाय०, अनामयोः—ब्लूं मकरध्वजाय०, कनिष्ठयोः—स्त्रीं मीनकेतवे"। ततो "द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः 'अ' सः[1] ब्लूं क्लीं द्रीं द्रां नमः" एवं युक्त्या मातृकां यथास्थानं विन्यस्य, "पादयोः—हां पृथिवीतत्वात्मने नमः, लिङ्गे—स्वां० जलतत्वात्मने०, हृदि—रं अग्नित०, मुखे—कं वायुत०, शिरसि—श्रीं आकाशत०: हृदि—ष्ठं अहङ्कारत०, हृदि—त्तिं महत्त०, सर्वाङ्गे—उं प्रकृतित०, ।" इति संहारन्यासः ।

ततः "सर्वाङ्गे—उं प्रकृतितत्वा०, हृदि—त्तिं महत्त०, हृद्येव—ष्ठं अहङ्कारत०, शिरसि—श्रीं आकाश०, मुखे—क वायुत०, हृदि—रं अग्नित०, लिङ्गे—स्वां जलत०, पादयोः—हां पृथिवीत० ।" इति सृष्टिः ।

अत्राऽपि 'उं नमः परायै'त्यादिन्यासे प्राग्वद्योजनीयम् । ततः प्रणवपुटितमूलेन त्रिर्व्यापकं कृत्वा, "पादयोः—उं नमः, जानुनोः—त्तिं०, गुह्ये—ष्ठं०, नाभौ—श्रीं, हृदि—कं०, मुखे—रं०, नेत्रयोः— स्वां०, शिरसि—हां नमः" "शिरसि उं०,नेत्रयोः—त्तिं०, मुखे—ष्ठं०, हृदि—श्रीं०, नाभौ—कं०, गुह्ये—रं०, जानुनोः-स्वां०, पादयोः—हां नमः"। नाभौ—उं०, गुह्ये—त्तिं०, जानुनोः—ष्ठं०, पादयोः—श्रीं०, शिरसि—कं०, नेत्रयोः—रं०, मुखे—स्वां०, हृदि—हां नमः ।" अत्र न्यासे प्रमाणोक्ताङ्गुलयो बोध्याः ।

"मूलाधारे—उं०, हृदि त्तिं०, मुखे—ष्ठं०, दक्षबाहुमूले—श्रीं०, वामे—कं०, दक्षोरुमूले - रं०, वामे—स्वां०, नाभौ—हां०, गले—उं०, उदरे—त्तिं०, हृदि—ष्ठं०, दक्षस्तने—श्रीं०, वामे—कं०, दक्षपार्श्वे—रं०, वामे—स्वां०, पृष्ठे—हां० २. मुखे—उं, नेत्रयोः—त्तिं०, श्रोत्रयोः—ष्ठं०, नासयोः—श्रीं०, हस्ताग्रयोः—कं०, मणिबन्धयोः—रं०, कूर्परयोः—स्वां०, अंसयोः—हां०, दक्षपादाग्रे—उं०, वामे—त्तिं०, दक्षगुल्फे—ष्ठं०, वामे—श्रीं०, दक्षजानुनि—कं०, वामे—रं०, दक्षनितम्बे—स्वां०, वामे—हां नमः । दक्षदोर्मूले—उं०, मध्ये—त्तिं०, मणिबन्धे—ष्ठं०, अङ्गुष्ठादिपञ्चाङ्गुलीषु पञ्चवर्णान्न्यसेत् । एवं वामदोर्मूलादिषु,

---

१. क. सं ।

एवं दक्षोरुमूलजानुगुल्फपश्चाङ्गुलीष्वन्यः ॥२७॥ एवं वामोरुमूलाद्यः दक्षकराङ्गुष्ठतर्ज्जन्योर्मध्यमारभ्य वामाङ्गुष्ठतर्जन्योर्मध्यावधिष्वष्टसु स्थानेषु न्यसेत्। एवं पादयोः—रं गुल्फान्तरालेषु ॥१०॥ मूर्द्धिन—उं०, नेत्रयोः—त्तिं०, कण्ठे—ष्ठं०, हृदि—श्रीं०, उदरे—कं०, ऊरुद्वये—रं, जानुनोः—स्वां०, पादयोः—हां०,' ॥११॥ हृद्येव। त्वचि—उं०, रक्ते—त्तिं०, मांसे—ष्ठं०, मेदसि—श्रीं०, अस्थिन—कं०, मज्जासु—रं०, शुक्रे—स्वां०, पायौ—हां नमः २। दक्षगण्डे—उं०, दक्षांसे—त्तिं०, दक्षस्तने—ष्ठं०, दक्षपार्श्वे—श्रीं०, दक्षस्फिचि—कं०, दक्षोरौ—रं०, दक्षजङ्घायां—स्वां०, दक्षपादे—हां०, एवं वामगण्डादिषु ॥१४॥ पादतलयोः—उं०, पादाग्रजानुषु—त्तिं०, गुदवृषणगुह्यमूलेषु—ष्ठं०, पार्श्वद्वयनाभिषु—श्रीं०, वक्षःपृष्ठहृदंसेषु—कं०, कण्ठववत्रनासासु—रं०, श्रोत्रनेत्रेषु—स्वां०, ललाटे—हां नमः॥१५॥ शिरसि—उं० नेत्रयोः—त्तिं०, मुखे—ष्ठं०, हृदये—श्रीं०, नाभौ—कं०, गुह्ये—रं०, जानुनोः—स्वां०, पादयोः—हां नमः" इति षोडशधा मूलमन्त्राक्षराणि विन्यस्य, मूलेन व्यापक कृत्वा, प्रागुक्तमूर्तिपञ्जरन्यासं विधाय, "मुखे—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीन्नमः, हस्तयोः—बाहू राजन्यः कृतः नमः, ऊर्वोः—ऊरू तदस्य यद्वैश्यः नमः, पादयोः—पद्भ्यां शूद्रो अजायत नमः, इति विन्यस्य, "शिरसि—किरीटाय नमः, कर्णयोः—मकरकुण्डलाय नमः, गले—कौस्तुभाय ग्रैवेयाय, वक्षसि—श्रीवत्साय हाराय०, बाहुषु—अङ्गदेभ्यः, केयूरेभ्यः, कङ्कणेभ्यः, कट्यां—मणिमेखलायै, पीताम्बराय" ततो "वामदक्षोर्द्ध्वहस्तयोः—शङ्खाय०, चक्राय०, वामदक्षाधः, —गदायै०, पद्माय नम" इति विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायामेवाङ्गानि सम्पूज्य, "दिग्दलेषु—श्रियै०, रत्यै०, धृत्यै०, कान्त्यै०," विदिग्दलेषु—पूर्वोक्तवासुदेवादिचतुर्मूर्त्तीः सम्पूज्य, लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति। तथा—

अष्टलक्षं जपेमन्त्रं नियमस्थो जितेन्द्रियः।
जुहुयात्तद्दशांशेन विल्वदुग्धद्रुतर्पणैः ॥२३९॥

तर्पणैः समिद्भिः।

अब्जैर्दौग्धान्नसुघृतैस्तर्प्पणादि ततश्चरेत्।
गुरुं सन्तोष्य वित्ताद्यैः सिद्धमन्त्रो भवेद् ध्रुवम् ॥२४०॥
ततः कुर्वीत मन्त्रज्ञः प्रयोगानिष्टसिद्धये।
दुग्धाप्लुतैः सरसिजैरयुते[1]जुहुयाच्छ्रिये ॥२४१॥

---

१. ख. ०रयुतैः।

अयुते अयुतद्वयम् ।

मधुरत्रयसंयुक्तैः पलाशकुसुमैर्हुनेत् ।
मेधावी जायते शीघ्रं यशसे च तिलैर्हुनेत् ॥२४२॥

कान्त्यै प्रजुहुयाद्धीमान् केवलाज्येन मन्त्रवित् ।
पयःप्लुतगुडूच्याश्च खण्डैः प्रजुहुयाद् बुधः ॥२४३॥

दीर्घमायुरवाप्नोति ह्यरोगी मन्त्रवित्तमः ।
त्रिस्वादुयुक्तं लवणं हुनेन्निशि सहस्रकम् ॥२४४॥

अष्टाधिकञ्च मासेन सोऽमरस्त्रीर्वशं नयेत् ।
का कथा मर्त्ययोषासु वाङ्मात्रवशगासु च ॥२४५॥

दशपुष्पदाहभस्म सञ्जप्तं मनुनाऽमुना ।
त्रिसहस्रं धृतं मूर्द्ध्ना पापरोगहरं परम् ॥२४६॥

जनतावशकृद् ध्येतत्प्रथितं सर्वकामदम् ।
घृताक्तदूर्वाचरुभ्यां हुनेदयुतसंख्यया ॥२४७॥

भुञ्जीयाद्धुतशिष्टं च चरुं दद्याच्च दक्षिणाम् ।
गुरवे तर्प्पयेद्विप्रान् वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ॥२४८॥

शापापमृत्युरोगादि यास्यत्यायुश्च विन्दति ।
उत्क्षिप्तबाहुः पुरुषः प्रत्यहं रविबिम्बके ॥२४९॥

न्यस्तदृष्टिश्चाऽष्टशतं जपेत्प्राप्नोत्यतन्द्रितः ।
[1]महाधनाद्यमचिरादन्नाद्यं पशुकादिकम् ॥२५०॥

दुग्धमध्ये प्रातरमुं रमेशं तर्प्पयेद् बुधः ।
अष्टाधिकं सहस्रं तु स लभेदचिराद्रमाम् ॥२५१॥

सुमिष्टमन्नं च वने लभते भृत्यवर्गयुक् ।
वश्याकर्षणसम्मोहसंस्तम्भोच्चाटमारणम् ॥२५२॥

कुर्यादनेन मनुना यथाद्रव्यैः सुशोभनैः ।
किं बहूक्तेन मनुना निखिलं साधयेत्सुधीः ॥२५३॥

---

१. ख. महाधनौघ० ।

य एवं श्रीकरं विष्णुं भजेद्भक्तियुतो नरः ।
भुङ्क्ते ह भोगानखिलान्याति विष्णोः परम्पदम् ।।२५४।।

तथा—

श्रीमन्नारायण स्यात्तदनु च चरणौ स्याच्छरण्यं प्रपद्ये,
ङेऽन्तं श्रीमच्च नारायणमपि च नमस्तत्ववर्णोऽयमुक्तः ।

तत्ववर्णश्चतुर्विंशतिवर्णः ।

ऋष्याद्याः पूर्वमुक्तासमशरमनुना पञ्च चाऽङ्गानि कुर्यात्,
पूजाहोमादि सर्वं समुदितविधिना मुक्तिदो मन्त्र एषः ।।२५५।।

असमशरमनुना—क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लः इत्याद्यैः ।

शारदातिलके—

प्रणवो हृद्भगवते वासुदेवाय कीर्त्तितः ।
प्रधानं वैष्णवे तन्त्रे मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।।२५६।।

पदार्थादर्शे—

स्त्रीशूद्रयोर्वितारोऽयं सतारोऽयं द्विजन्मनाम् । इति ।
ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री परिकीर्त्तिता ।।२५७।।

देवताऽस्य मनोः प्रोक्तो वासुदेवो मनीषिभिः ।

पदार्थादर्शे—ॐ बीजं, नमः शक्तिः ।

तारेण हृदयं प्रोक्तं नमसा शिर ईरितम् ।।२५८।।

चतुर्वर्णैः शिखा प्रोक्ता पञ्चार्णैः कवचं मतम् ।
समस्तेन भवेदस्त्रमङ्गकल्पनमीरितम् ।।२५९।।

सारसङ्ग्रहे—

हृदादिनेत्रजठरपृष्ठबाहूरुजानुषु ।
सपादेषु मनोरर्णैर्नमोऽन्तैः साधकोत्तमः ।।२६०।।

अत्राऽस्त्रानन्तरं मन्त्रन्यासान्न्यसेदिति । तथा—

मन्त्रसम्पुटलिप्यर्णैर्यथास्थानं न्यसेत्ततः ।
[1]त्रिशस्तारप्रपुटितमूलेन व्यापकं न्यसेत् ।।२६१।।

---

१. ख. त्रिशश्च तारपुटित० ।

मन्त्रार्णैस्त्रिविधन्यासं न्यसेन्मन्त्री समाहितः ।
कभालदृग्वक्त्रकण्ठदोर्हृज्जठरनाभिषु ॥२६२॥

लिङ्गजान्वङ्घ्रिषु प्रोक्तः सृष्टिन्यासश्च मन्त्रिभिः ।
हृदादिकान्तावधीमं स्थितिन्यासं प्रचक्षते ॥२६३॥

पादादारभ्य शीर्षान्तं न्यासं संहारमूचिरे ।
एवं क्रमो यतीनां स्याद्विलोमेनोच्यते ह्यसौ ॥२६४॥

पूर्वाश्रमयुतानां च स्थित्यन्तो गृहमेधिनाम् ।
संहाराद्यो निगदितो मन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥२६५॥

संहृतेर्दोषसंहारः सृष्टेश्च शुभसृष्टयः ।
स्थितेश्च शान्तिविन्यासस्तस्मात्कार्यस्त्रिधा बुधैः ॥२६६॥

व्यापकत्वेन मन्त्रार्णान् पुनर्न्यसेत्तनौ सुधीः ।
कभालदृग्वक्त्रकण्ठदोर्युग्महृदयेषु च ॥२६७॥

कुक्षौ लिङ्गे पादयुग्मे मूलेन व्यापकं न्यसेत् ।
तत्वन्यासं प्रविन्यस्य विन्यसेन्मूर्त्तिपञ्जरम् ॥२६८॥

तत्वानि द्वादश, तानि तु—

जीवप्राणधियश्चित्तं हृत्पद्मं सूर्यमण्डलम् ।
चन्द्रमण्डलमग्नेश्च मण्डलं स्वकलान्वितम् ॥२६९॥
वासुदेवादयश्चेति तत्वानि द्वादशाऽवदन् ।

इति **हयशीर्षपञ्चरात्रोक्तानि** । **पद्मपादाचार्यास्तु** पुरुषसत्याच्युतवासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धनारायणब्रह्मविष्णुनृसिंहवराहाणां द्वादशाङ्गयोगमाहुः । उक्तञ्च **विष्णुयामले**—

आदौ तु पुरुषः सत्यानृतौ पश्चान्महेश्वरि ।
वासुदेवादयो नारायणो ब्रह्म ततः परम् ॥२७०॥
विष्णुर्नृसिंहवाराहौ द्वादशाङ्गेष्विमन्न्यसेत् ।

तत्वानां न्यासस्थानानि तु प्रागुक्ततत्वन्यासप्रकरणे यस्य तत्वस्य यत्स्थानमुक्तं तत्र तत्तत्वं न्यसेत् । एतेषां द्वादशतत्वानां तदन्तर्गतत्वादेवाऽत्र पृथक्तया न्यासस्थानानि नोक्तानीति ।

ततः समाहितो भूत्वा वासुदेवं हृदि स्मरेत् ॥२७१॥

मध्ये दुग्धाम्बुधेर्द्वीपे दिव्ययोषानिषेविते ।
तत्र सञ्चिन्त्य विपिनमखिलर्त्तुनिषेवितम् ।।२७२।।

तन्मध्ये कल्पवृक्षं च दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।
तस्याधस्ताद्रत्नमञ्चे कमल विमलप्रभम् ।।२७३।।

शरत्पूर्णेन्दुविलसत्प्रभापटलमण्डितम् ।
तत्र सञ्चिन्तयेद्देवं वासुदेव स्मिताननम् ।।२७४।।

कुन्देन्द्वाभं गदाचक्रपद्मशङ्खलसत्करम् ।
चन्द्रायुतलसत्कान्त्या मोहयन्तं जगत्त्रयम् ।।२७५।।

केयूराङ्गदसम्राजद्दोर्द्दण्डं रत्नभूषणम् ।
श्रीवत्साङ्कं लसद्रत्नमुकुटं कौस्तुभाङ्कितम् ।।२७६।।

अरविन्ददलाताम्रसुरम्यायतलोचनम् ।
कुण्डलप्रोल्लसद्गण्डमण्डलं पीतवाससम् ।।२७७।।

ग्रैवेयहारसंशोभिकम्बुकण्ठं सुकङ्कणम् ।
विशालवक्षःसम्राजत्प्रफुल्लवनमालकम् ।।२७८।।

सनकादिमुनीन्द्रैश्च तत्वनिर्णयकाङ्क्षया ।
निषेवितं दित्यदितिजातगन्धर्वसञ्चयैः ।।२७९।।

सिद्धविद्याधराद्यैश्च सेवितञ्च महोरगैः ।

वामोर्द्ध्वादि तदधःकरान्तमायुधध्यानम्—

वासुदेवं तु कुर्वीत चतुर्बाहुं सुरेश्वरम् ।।२८०।।

दक्षिणोपरि चक्रं तु पद्मं चाऽधः प्रकल्पयेत् ।
वामोपरि गदा कार्या शङ्खं चाऽधः सुशोभनम् ।।२८१।।

इति **हयशीर्षपञ्चरात्रवचनात्** । तथा—

एवं ध्यात्वा वासुदेवं स्वभावेन जगत्प्रभुम् ।
पूर्वोदिते यजेत्पीठे देवमावाह्य मन्त्रवित् ।।२८२।।

मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य गन्धाद्यैस्तत्र पूजयेत् ।
पूर्वमङ्गानि सम्पूज्य वासुदेवादिशक्तयः ।।२८३।।

दिग्विदिक्षु च सम्पूज्यास्ततो द्वादशमूर्त्तयः ।
केशवाद्याः समभ्यर्च्या लोकेशाद्यायुधैः सह ।।२८४।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्रणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—प्रजापतये ऋषये नमः, मुखे—गायत्राय छन्दसे०, हृदये—श्रीवासुदेवाय देवतायै,० गुह्ये—ॐ बीजाय०, पादयोः—नम.शक्तये०" इति विन्यस्य, प्राग्वदुक्त्वा मूलेन करयोर्व्यापकं कृत्वा "ॐ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्, वासुदेवाय कवचाय हुं, समस्तं अस्त्राय फडि'ति पञ्चाङ्ग-मन्त्रानङ्गुष्ठादिनकनिष्ठान्ते करयोर्विन्यस्य नेत्रवर्जं हृदयादिषु न्यसेत् । ततो "हृदये—ॐ पुरुषाय नमः, शिरसि—नं सत्याय०, शिखायां—मों अच्युताय०, कवचस्थाने—भं वासुदेवाय०, अस्त्रस्थाने—गं संकर्षणाय०, नेत्रयोः—वं प्रद्यु-म्नाय०, उदरे—तें अनिरुद्धाय०, पृष्ठे—वां नारायणाय०, बाह्वोः—सुं ब्रह्मणे०, ऊरौ—दें विष्णवे०, जानुनोः—वां नृसिंहाय०, पादाग्रे—यं वराहाय नमः" । ततः "शिरसि — ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं पुनर्विलोमेन मन्त्रं नम.," एवं मूलमन्त्रपुटितान्मातृकावर्णान्मातृकास्थानेषु विन्यस्य, प्रणव-पुटितमूलमन्त्रेण त्रिर्व्यापकं कृत्वा, पादयोः — "ॐ नमः, जानुनोः — नं०, लिङ्गे—मों०, नाभौ—भं०, उदरे—गं०, हृदये—वं०, बाह्वोः—तें०, कण्ठे—वां०, मुखे—सुं० दृशोः—दें०, भाले—वां०, शिरसि—यं नमः" इति संहारेण विन्यस्य, "शिरसि—ॐ, भाले—नं०, दृशोः—मों०, मुखे—भं०, कण्ठे—गं०, बाह्वोः—वं०, हृदये—तें०, उदरे—वां०, नाभौ—सुं०, लिङ्गे—दें०, जानुनोः—वां०, पादयोः—यं०" इति सृष्टिः । "हृदि—ॐ०, उदरे नं०, नाभौ—मों०, लिङ्गे—भं०, जानुनोः—गं०, पादयोः—वं०, बाह्वोः—तें०, कण्ठे—वां०, मुखे—सुं०, दृशोः दें०, भाले—वां०, शिरसि — यं नम" इति स्थितिन्यासः । एवं गृहस्थैः कर्त्तव्यः । यतिभिस्तु सृष्टिस्थितिसंहारक्रमेण कार्यः । वर्णिभिस्तु स्थितिसंहारक्रमेण कर्त्तव्य इति । एते वर्णाः प्रणवपुटिता न्यस्तव्या इति केचित् । ततः पुनर्मन्त्रवर्णान्मूर्द्धभालनेत्रवक्त्रकण्ठबाहुहृदयजठरलिङ्गपादद्वयेषु द्वादशस्थानेषु प्राग्वद्विन्यस्य, पुनर्मूलेन व्यापकं कृत्वा, "सर्वाङ्गे - ॐ नमः पराय जीवतत्वात्मने नमः, तत्रैव नं प्राणत०. हृदये—मों० बुद्धित०, भं मनस्त०, गं नमः हृत्पद्मत०, वं नमः द्वादशकलाढ्यसूर्यमण्डलत०, तें नमः षोडषकलान्वितचन्द्रमण्डलत०, । वां नमः दशकलान्वितवह्निमण्डल०, शिरसि—सुं नमो वासुदेवत०, मुखे—दें

सङ्कर्षण०, हृदि—वां० प्रद्युम्नत०, गुह्ये—यं नमः परायाऽनिरुद्धतत्वात्मने नमः" इति द्वादशतत्वानि विन्यस्य, प्राग्वन्मूर्त्तिपञ्जरन्यासं विधाय, ध्यानादिपुष्पोपचारान्तेऽङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदले प्राग्वद्वासुदेवादिमूर्त्तिशक्तीः सम्पूज्य, तद्बहिर्द्वादशदलेषु— "ॐ केशवाय नमः, एवं नारायणाय०, माधवाय०, गोविन्दाय०, विष्णवे०, मधुसूदनाय०, त्रिविक्रमाय०, वामनाय०, श्रीधराय०, हृषीकेशाय०, पद्मनाभाय०, दामोदराय नम" इति देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्येन्द्राद्यर्चादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति । अस्य पूजायामञ्जलिमुद्रा प्रदर्शनीया । यथा—'अञ्जल्याऽञ्जलिमुद्रा स्याद्वासुदेवाभिधाय सा' इत्युक्तेः । तथा—

एवं सम्पूज्य विधिवद्वर्णलक्षं मनुं जपेत् ।

वर्णलक्षं द्वादशलक्षम् ।

तत्सहस्रं च कमलैर्जुहुयान्मधुराप्लुतैः ॥२८५॥

तिलैः शुद्धैरथेच्छन्ति केचिदाज्यपरिप्लुतैः ।
तर्प्पणादि ततः कुर्याद्यथोक्तविधिना सुधीः ॥२८६॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री वाञ्छितार्थान् प्रसाधयेत् ।
स्तनजद्रुमसम्भूतसमिद्भिः पापमुक्तये ॥२८७॥

पयोक्ताभिः प्रजुहुयात्साधकोऽर्कसहस्रकम् ।

स्तनजद्रुमः क्षीरवृक्षः ।

साज्येन हविषा चैव जुहुयाच्चित्तशुद्धये ॥२८८॥

पायसेन तिलैः शुद्धैः समिदाज्यैर्हुनेत्तु यः ।
शालीभिश्चाऽन्वहं मन्त्री सोऽभीष्टफलभाग् भवेत् ॥२८९॥

अमुत्र लभते मुक्तिं नियतात्मा न संशयः ।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य विधानं परिकीर्त्तितम् ॥२९०॥

अशेषतः साधकानां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।

शारदातिलके—

हृल्लेखाबीजयुगलं लक्ष्मीबीजयुगं पुनः ।
लक्ष्म्यन्ते वासुदेवाय हृदन्तः समुदीरितः ॥२९१॥
चतुर्दशाक्षरः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।

सारसङ्ग्रहे—

ऋषि: प्रजापतिश्छन्दो गायत्री देवता मनो : ।
मतो लक्ष्मीवासुदेवो देवदानववन्दितः ॥२९२॥

तथा—

हृदयं शक्तिबीजाभ्यां रमाभ्यां शिर ईरितम् ।
लक्ष्मी प्रोक्ता शिखा वर्म वासुदेवाय कीर्त्तितम् ॥२९३॥

नमसाऽस्त्रं समुद्दिष्टं सर्वं तारादि कल्पयेत् ।

विद्युच्चन्द्रनिभं वपुः कमलजावैकुण्ठयोरेकता-
म्प्राप्त[1] स्नेहवशेन रत्नविलसद्भूषाभिरालङ्कृतम् ।
विद्यां पङ्कजदर्प्पणं मणिमयं कुम्भं सरोजं गदां,
शङ्खं चक्रममूनि बिभ्रदमितां दिश्याच्छ्रियं वः सदा ॥२९४॥

वामेष्वाद्यचतुष्टयमूर्द्ध्वादिदक्षेष्वन्त्यचतुष्टयमित्यायुधध्यानम् ।

पूजा स्याद्वैष्णवे पीठे द्वादशाक्षरवर्त्मना ।
वर्णलक्षं जपेदेनं तत्सहस्रं सरोरुहैः ॥२९५॥

होमं कुर्याद्विकसितैर्मधुरत्रयसंयुतैः ।
पायसेन कृतो होमो लक्ष्मीवश्यप्रदायकः ॥२९६॥
मधुराक्तैस्तिलैर्हुत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।

श्रीसम्मोहनतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महेशानि मन्त्रं श्रीपौरुषोत्तमम् ।
धर्मार्थसुखमोक्षाप्तिफलदं योषितां नृणाम् ॥२९७॥

प्रवरं मन्त्ररत्नं ते सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
अतिगुह्यतमं देवी दौर्भाग्यव्याधिनाशनम् ॥२९८॥

दारिद्र्यधनाशकं देवी जरामरणनाशकम् ।
शोकभीतिहरं देवि मन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२९९॥

वश्याकर्षणविद्वेषमारणोच्चाटकारकम् ।
स्तम्भकारकमन्तर्धिविलसत्सिद्धिकरं परम् ॥३००॥

१. ख. व्याप्त ।

शत्रुभिः परिभूतैश्च सर्वविघ्नैरुपद्रुतैः ।
हृतार्थैः क्लिष्टसंसारवासिभिर्दुःखितैर्जनैः ॥३०१॥

भर्त्तृराजाभिभूतैश्च विघ्नार्त्तैः पुत्रकाङ्क्षिभिः ।
भृत्यार्थिभिश्च सङ्ग्रामे विजयाकाङ्क्षिभिर्जनैः ॥३०२॥

योषाभिश्चैव संसेव्यं मन्त्रं श्रीसुखमोक्षदम् ।
शृणु सम्यक्समासेन सर्वलोकहितप्रदम् ॥३०३॥

गौतमीमन्त्रे—

अथो शृणु प्रवक्ष्यामि मन्त्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ।
यज्ज्ञानात्साधकवरो भुक्तिमुक्त्योश्च भाजनम् ॥३०४॥

समस्तसिद्धिसंयुक्तो जीवन्मुक्तो महीं चरेत् ।
देहान्ते परमं धाम याति तत्परमम्पदम् ॥३०५॥

सर्वेषु कृष्णमन्त्रेषु श्रेष्ठ श्रीपुरुषोत्तमः ।
भुक्तिमुक्तिकरः साक्षात्स्मरणादेव वै नृणाम् ॥३०६॥

तारमाररमाबीजनत्यन्ते पुरुषोत्तमम् ।
पुनरप्रतिरूपान्ते ततो लक्ष्मीनिवास च ॥३०७॥

सकलान्ते जगत्पूर्वं क्षोभणेति पदं पुनः ।
सर्वस्त्रीहृदयोपेतं विदारणपदं पुनः ॥३०८॥

ततः परं त्रिभुवनं मदोन्मादकरं पुनः ।
सुरासुरान्ते मनुजसुन्दरीजनवर्णतः ॥३०९॥

मनांसि तापयद्वन्द्वं दीपयद्वितयं पुनः ।
शोषयद्वितयं भूयो मारयद्वितयं परम् ॥३१०॥

स्तम्भयद्वितयं पश्चान्मोहयद्वितयं पुनः ।
द्रावयद्वितयं पश्चादाकर्षययुगं ततः ॥३११॥

समस्तपरमोपेतं सुभगेतव(न च?)संयुतम् ।
सर्वसौभाग्यशब्दान्ते करेतिपदसंयुतम् ॥३१२॥

सर्वकामप्रदपदममुकं हनयुग्मकम् ।
चक्रेण गदया पश्चात्खड्गेन तदनन्तरम् ॥३१३॥

सर्वबाणैर्भिन्दयुगं पाशेनेति पदं ततः ।
बन्धद्वयान्तेऽङ्कुशेन तारयद्वितयं पुनः ॥३१४॥

तुरुशब्दद्वयमथो किं तिष्ठसि-पदं पुनः ।
तावद्यावत्पदस्यान्ते समीहितमनन्तरम् ॥३१५॥

ततो मे सिद्धमाभाष्य भवत्यन्ते सवर्म फट् ।
नमोऽन्तोऽयं मनुः प्रोक्तो द्विशताक्षरसंयुतः ॥३१६॥

सारसङ्ग्रहे—

मायारमातारमारबीजानि हृदयं वदेत् ।
लोहितं कर्णयुक्तं च वदेद्वह्निमुना सह ॥३१७॥

षोत्तमाप्रतिरूपं च लक्ष्मीपदमतः परम् ।
निवाससकल प्रोक्त्वा जगत्क्षोभणमुच्चरेत् ॥३१८॥

सर्वस्त्रीहृदयान्ते विदारणत्रिभुतो वनम् ।
मनोन्मादकरान्ते च स्वग्न्यनन्तौ सुरं वदेत् ॥३१९॥

मनुजं सुन्दरीं चैव जनमुक्त्वा मनांसि च ।
तापयेति द्विरुच्चार्य्य वदेद्दीपय शोषय ॥३२०॥

मारय स्तम्भय द्रावयाऽऽकर्षयपदं द्विशः ।
आवेशय च परमं सुभगं सर्वमुच्चरेत् ॥३२१॥

सौभाग्यान्ते करपदं सर्वकामप्रदेति च ।
अलक्ष्मीर्हनयुग्मञ्च चक्रेण गदया पुनः ॥३२२॥

खड्गेन सर्वबाणैश्च भिन्दयुग्मं ततो वदेत् ।
पाशेन बन्धद्वितयमङ्कुशेन द्विताडय ॥३२३॥

तुरुयुग्मं च किं तिष्ठसि तावद्यावदीरयेत् ।
समीहितं च मे सिद्धि भवति क्लीं सवर्म च ॥३२४॥

अस्त्रं हृच्छक्तिमामारप्रणवांश्च समुच्चरेत् ।
पुरुषोत्तममन्त्रोऽयं प्रोक्तः सर्वसमृद्धिदः ॥३२५॥

पूर्वबीजेषु मायां न नान्त्यबीजानि चोचिरे ।
आचार्याः केचन त्यक्त्वा ह्यावेशयपदद्वयम् ॥३२६॥

मोहयद्वितयं ब्रूयुः स्तम्भयद्वयतः परम् ।
हुमादौ क्लीं च नेच्छन्ति तथा परमपूर्वतः ॥३२७॥
समस्तशब्दं प्रोचुश्चाऽलक्ष्मीस्थानेऽमुकं पदम् ।

माया ह्रीं, रमा श्रीं०, तारः प्रणवः, मारः क्लीं०, हृदयं नमः, लोहितः पः, कर्णः उस्तेन पु, वन्ही रेफः, उना उकारेण तेन रुः, षोत्तमाप्रतिरूप-स्वरूपं, लक्ष्मी-स्वरूपं०, निवाससकल-स्वरूपं, जगत्क्षोभण-स्वरूप, सर्वस्त्रीहृदय-स्व०, विदारण त्रिभुवनोन्मादकर-स्व०, सु-स्व०, अग्नी रेफः, अनन्त आ तेन रा, सुर-स्व०, मनुजसुन्दरी-स्व०, जन-स्व०, मनांसि-स्वरूपं०, तापयेति द्विः तापय-तापय, दीपय-शोषय-मारय-स्तम्भय-द्रावयाऽऽकर्षय द्विशः एतत्पदषट्कं द्विरुच्चरेदित्यर्थः । आवेशय-स्व०, चकाराद् द्विः, परमसुभगं सर्व-स्वरूपं, [सौभाग्यान्ते करपदं सौभाग्यकर,][1] सर्वकामप्रद-स्व०, अलक्ष्मीः-स्व०, हनयुग्मं हन-हन, चक्रेण गदया-स्व०, खड्गेन सर्वबाणैश्च-स्वरूपं, भिन्दयुग्मं भिन्द-भिन्द, पाशेन-स्व०, बन्धद्वितयं बन्ध-बन्ध, अङ्कुशेन-स्वरूपं, द्वि ताडय ताडय०, तुरुयुग्मं तुरु तुरु, किं तिष्ठसि तावद्यावदिति-स्व०, समीहितं-स्व०, मे सिद्धं भवति-स्व०, क्लीं-स्व०, वर्म हुं, अस्त्रं फट्, हृन्नमः, शक्तिः ह्रीं०, मा श्रीं, मारः क्लीं, प्रणवः ॐ । तथा—

जैमिनिर्मुनिरस्योक्तः छन्दोऽमितमितीरितम् ।
त्रैलोक्यमोहनतनुर्देवता पुरुषोत्तमः ॥३२८॥
षडङ्गानि मनोर्देवि नेत्रान्तानि प्रकल्पयेत् ।
हुं फडन्तानि च शिवे तारमारादिकानि च ॥३२९॥
वदेत्पूर्वं च पुरुषोत्तम त्रिभुवनं वदेत् ।
मनोन्मादकरं हृच्च सकलान्ते जगत्पदम् ॥३३०॥
क्षोभणं प्रवदेल्लक्ष्मीदयितेति शिरो मतम् ।
मन्मथोऽत्त वदेन्माङ्गाय(ङ्गज)कामान्ते च दीपिनि ॥३३१॥
शिखामन्त्रश्च परमं वदेत्सुभगशब्दतः ।
सर्वसौभाग्यकरतो वदेदप्रतिरूपकम् ॥३३२॥
केशवस्मरयुग्वर्म सुरासुरपदं वदेत् ।
कामिकं हनयुग्मं च हृदयान्ते च बन्धना ॥३३३॥

१. [-] कोष्ठगतांशो नाऽस्ति पुस्तकद्वये । सूत्रे प्रोक्तत्वादंशोऽयमत्रोपन्यस्तः (सम्पा०) ।

न्याकर्षयाऽऽकर्षयाऽथ वदेच्चाऽथ महाबलम् ।
अस्त्रमन्त्रस्त्रिभुवनेश्वरसर्वजनं वदेत् ॥३३४॥

मनांसि हनयुग्मञ्च दारय-द्वन्द्वतश्च मे ।
वशमानययुग्मञ्च नेत्रमन्त्र उदाहृतः ॥३३५॥

विन्यस्यैवं षडङ्गानि द्वादशाऽङ्गानि विन्यसेत् ।
हृदाद्युदारपृष्ठेषु करयुग्मोरुजानुषु ॥३३६॥

पादे च कुर्यान्मन्त्रस्य पदानि द्वादशैव तु ।
शक्तिश्रीमारबीजानि सम्बुद्धयन्तान्यणोर्नव ॥३३७॥

तारादीनि हृदाद्यानि परायेत्यस्य चोर्द्ध्वगम् ।
मूर्त्तयो द्वादश तथा पुरुषाद्याः परेश्वरि ॥३३८॥

आत्मनेन्ता नमोन्ताश्च पुरुषः सत्यकाच्युतौ ।
चत्वारो वासुदेवाद्यास्तद्वन्नारायणः शिवे ॥३३९॥

ब्रह्मविष्णुनृसिंहाश्च वराहो द्वादशः शिवे ।
ततो व्यापकमन्त्रेण व्यापकं विन्यसेत्तनौ ॥३४०॥

त्रैलोक्यमोहनपदं हृषीकेशाप्रतीति च ।
रूपमन्मथसर्वस्त्रीहृदयाकर्षणं वदेत् ॥३४१॥

आगच्छ हृदयञ्चैव व्यापकाणुः समीरितः ।
आयुधानां च मनवो वक्ष्यन्ते क्रमतः शिवे ॥३४२॥

वेदादिमारबीजाद्याः प्रोक्ताः सर्वे महेश्वरि ।
सुदर्शनमहाचक्रराजान्ते दहयुग्मकम् ॥३४३॥

सर्वदुष्टपदं ब्रूयात्कुरु छिन्दद्विभिन्दयुक् ।
भूयो विदारयद्वन्दं परमन्त्रान् ग्रसद्वयम् ॥३४४॥

भक्षयद्वयं भूतानि त्रासय द्विहुं मस्त्रकम् ।
स्वाहा चक्राय हृदयं चक्रमन्त्र उदाहृतः ॥३४५॥

अस्त्रं फट् हृदयं नमः, सुगममन्यत् ।

वदेज्जलचरायेति द्विठः शङ्खमनुः प्रिये ।
हुं फडन्तः खड्गतीक्ष्ण भिन्दयुग्मं वदेत्ततः ॥३४६॥

खड्गमन्त्रो महेशानि धनुर्मन्त्रं शृणु प्रिये ।
शार्ङ्गाय सशरायाऽथ हुं फडन्तो गदामनुः ॥३४७॥

कौमोदकिमहाशब्दं बले सर्वासुरान्तकि ।
प्रसीद हुं फट् स्वाहान्तः संवर्त्तकपदं वदेत् ॥३४८॥

मुसलं पोथयद्वन्द्वं हुँ फट् स्वाहान्तिको मनुः ।
मुसलस्याऽङ्कुशस्याऽणुरङ्कुशङ्कुचु-युग्मकम् ॥३४९॥

हुं फट् स्वाहान्तिकः प्रोक्तः पाशं बन्धयुगं वदेत् ।
आकर्षययुगं हुं फट् स्वाहान्तः पाशमन्त्रकः ॥३५०॥

एवमायुधमन्त्रास्ते मया प्रोक्ता महेश्वरि ।
पक्षिराजायाऽग्निवधूः पक्षिराजमनुर्मतः ॥३५१॥

त्रैलोक्यमोहनायाऽथ विद्महेऽन्ते स्मराय च ।
धीमहीति वदेत्तन्नो वदेद्विष्णुः प्रचोदयात् ॥३५२॥

पुरुषोत्तमगायत्री जपार्चासु विशिष्यते ।
ततः कराङ्गुलिष्वेतान्बाणान् कामांश्च विन्यसेत् ॥३५३॥

द्रामाद्यां द्राविणीं देवि द्रीमाद्यां क्षोभिणीमपि ।
क्लीं वशीकरणीं भद्रे ब्लूं बीजाद्यां महेश्वरि ॥३५४॥

आकर्षिणीं महेशानि सर्गान्तभृगुपूर्विकाम् ।
सम्मोहनीं क्रमादेव बाणन्यासोऽयमीरितः ॥३५५॥

काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः ।
मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमः परिकीर्त्तितः ॥३५६॥

पराबीजं मध्यबाणं वाग्भवं परमेश्वरि ।
तुर्यबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजं च क्रमात्प्रिये ॥३५७॥

कामबीजप्रपुटितां मातृकां विन्यसेत्प्रिये ।
विन्यसेन्मारमालाणुवर्णानानाभि मन्त्रवित् ॥३५८॥

चत्वारिंशन्मातृकां च ततः पञ्च न्यसेत्सुधीः ।
जठरे हृदये कण्ठे वक्त्रे नसि ततः प्रिये ॥३५९॥

त्रीन्वर्णान्व्यापयेद्देहे समस्तेन सकृत्तथा ।
व्यापकं विन्यसेद्देहे कामांश्चैव सशक्तिकान् ।।३६०।।

कन्दर्पमातृकापूर्वान्मातृकावत्प्रविन्यसेत् ।
दाडिमीकुसुमाभांश्च वामाङ्के शक्तिसंयुतान् ।।३६१।।

सौम्यान् रक्ताम्बरान् सर्वान् पुष्पबाणेक्षुकामुके ।
बिभ्राणान्सर्वभूषाढ्यान् मन्त्री कामान् स्मरेत्प्रिये ।।३६२।।

शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः ।
नीलोत्पलकरा ध्येयास्त्रैलोक्याकर्षणक्षमाः ।।३६३।।

न्यसेत्कामरती पश्चात्कामचारो विलासिनी ।
कामिकल्पलते तद्वत् कामुकश्यामले तथा ।।३६४।।

कामवर्द्धनसंयुक्ता विज्ञेया च शुचिस्मिता ।
रामश्च विस्मिताक्षी च विशालाक्षीयुतो रमः ।।३६५।।

रमणो लेलिहाना च रतिनाथदिगम्बरे ।
रतिप्रियश्च रामा च रात्रिनाथश्च कुब्जिका ।।३६६।।

रमाकान्तयुता कान्ता रममाणश्च नित्यया ।
निशाचरश्च कल्याणी नन्दको भोगिनीयुतः ।।३६७।।

नन्दनः कामदायुक्तो नन्दी चाऽपि सुलोचना ।
सुलापिन्या युतो देवि तथा नन्दयिता[1] पुनः ।।३६८।।

पञ्चबाणश्च मर्द्दिन्या कलहप्रियया युतः ।
विज्ञेयश्च महादेवि रतिपूर्वः सखः प्रिये ।।३६९।।

पुष्पधन्वा वराक्षी च सुमुख्या च महाधनुः ।
भ्रामणो नलिनीयुक्तो भ्रमणो जयिनीयुतः ।।३७०।।

भ्रममाणश्च पालिन्या भ्रमश्च शिवया युतः ।
भ्रान्तमुग्धे ततो देवि भ्रामको रमया युतः ।।३७१।।

भृङ्गो भ्रमा ततः पश्चाद् भ्रान्त चारश्चलोलया ।
भ्रमावहश्चञ्चला च मोहनो दीर्घजिह्वया ।।३७२।।

---

१. ख. नन्दपिता ।

रतिप्रियामोहकौ च लोलाक्ष्या मोह एव च ।
मोहवर्द्धनभृङ्गिन्यौ मदनः पाटलायुतः ॥३७३॥

मन्मथो मदनायुक्तो मातङ्गो मालया युतः ।
भृङ्गनायकहंसिन्यो गायको विश्वतोमुखी ॥३७४॥

जगदानन्दिनीयुक्तो[1] गीतिज्ञस्तदनन्तरम् ।
नर्त्तको रमणीयुक्तः खेलकः कान्तिसंयुतः ॥३७५॥

उन्मत्तः कलकण्ठी च मत्तकश्च वृकोदरी ।
विलासिमेघश्यामे च सोत्तमो लोभवर्द्धनः ॥३७६॥

तत्वन्यासं ततः कुर्यात्पार्श्वद्वययुतेषु च ।
नाभिगुह्यगुदेषु स्यात्पादसन्ध्यङ्गुलीषु च ॥३७७॥

अर्काभस्मारबीजस्य न्यासः सर्वसमृद्धिदः ।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य न्यासत्रयमथो बुधः ॥३७८॥

कुर्यात्संहारसृष्टी च स्थितिश्चैव प्रकीर्तिता ।
मूर्त्तिपञ्जरविन्यासं कुर्यान्मन्त्री समाहितः ॥३७९॥

पूर्वोदिताया गायत्र्या वर्णान्न्यसेत्तनौ बुधः ।
कभालदृग्द्वन्द्वदोःपत्सन्ध्यग्रेषु तनौ च सः ॥३८०॥

षडङ्गं द्वादशाङ्गं च बाणानङ्गान् प्रविन्यसेत् ।
श्रीं स्वं श्रिये नमस्त्वेषः श्रियो मन्त्रे उदाहृतः ॥३८१॥

सव्योरौ विन्यसेदेनं मन्त्रं देवेशि मन्त्रवित् ।
लक्ष्म्याद्याः पुष्टिपर्यन्ता ङेयुताश्च हृदन्तिकाः ॥३८२॥

ह्रस्वत्रयक्लीबबिन्दुवर्ज्जस्वरयुतो भृगुः ।
लान्तयुक्तेन्दुखण्डबीजान्यासां महेश्वरि ॥३८३॥

न्यस्तव्या बीजपूर्वास्ताः कास्यकण्ठेषु गुह्यके ।
ककुद्धृन्नाभिसर्वाङ्गे व्यापकाणु न्यसेत्प्रिये ॥३८४॥

ऋष्यादिकं च विन्यस्य भूषणानि न्यसेत्प्रिये ।
आयुधाणून् यथास्थानं तत्तन्मुद्राभिरद्रिजे ॥३८५॥

---

१. क. गजदानन्दिनीमुक्तो । ख. अवर्काभमार० ।

विन्यसेन्मन्त्रिवर्योऽसौ श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा ।
वनमालां मारबीजैर्यथास्थानं न्यसेत्प्रिये ॥३८६॥

ऊर्द्ध्वाङ्गुष्ठौ मिथःश्लिष्टौ मुष्टि मूर्द्ध्नि नियोजयेत् ।
त्रैलोक्यमोहनाख्येयं मुद्रैनां मूर्द्ध्नि विन्यसेत् ॥३८७॥

एवं न्यस्तशरीरोऽसौ ध्यायेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ॥
उद्यानं संस्मरेदादौ सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥३८८॥

अनल्पकल्पविटपिमञ्जरीराजिराजितम् ।
मञ्जरीसुरजःपूरपूरिताशामुखी प्रिये ॥३८९॥

निरन्तरपरिभ्रान्तमधुव्रतकदम्बकम् ।
आमोदपण्यस्थानाभमिन्द्रियाणां सुखप्रदम् ॥३९०॥

आत्मयोनेरिव प्रायो मनोज्ञं जननस्थलम् ।
शृङ्गारलक्ष्म्या इव सत्केलिसद्म मनोरमम् ॥३९१॥

रते रतिसुखप्रायमृतूनां जन्मभूरिव ।
उपमानं मनोज्ञानां नेत्रसाफल्यकारकम् ॥३९२॥

आश्चर्यभूतवस्तूनां दृष्टान्तं केवलं प्रिये ।
अस्मिन्कल्पद्रुमं देवि स्मरेन्मन्त्री समाहितः ॥३९३॥

लसन्महानीलमणिमयमूलमनोरमम् ।
प्रत्यग्रवज्राश्ममयप्रकाण्डविलसत्तनुम् ॥३९४॥

प्रौल्लासिजाम्बूनदवद्दीर्घशाखमकृत्रिमम् ।
हरिन्मणिप्रोढदलं लसद्विद्रुमपल्लवम् ॥३९५॥

अनर्घ्यमणिपुष्पञ्च मुक्तारुचिरकेसरम् ।
निपीय पीयूषनिभं मधुपुष्पोदरोद्गतम् ॥३९६॥

रागाञ्जरामतीतैस्तैः षट्पदानां समूहकैः ।
निजयोषित्सहायैश्च गीयमानं विलासिभिः ॥३९७॥

शाखाभुजैरर्थिजनव्रजायाऽशु धनव्रजम्[1] ।
प्रयच्छन्तं स्रवन्त्योमीधाराः पुष्परसोद्भवाः ॥३९८॥

---

१. ख. धनं व्रजं । २. क. स्रवन्त्यौमी ।

दानाम्बुधाराश्रियमुद्वहन्तीव च यस्य तम् ।
विवर्त्तमानरुचिरभ्रमराल्यक्षमालकम् ॥३९९॥

मूर्द्ध्ना घोरातपोद्योतसेविनं सुमनोजलैः ।
स्नातं तथा तपस्यन्तं नेतुं प्रत्यक्षतामिव ॥४००॥

श्रीमन्तमम्बुजाक्षं तं तस्य मूले मनोहरे ।
माणिक्यकुट्टिमोद्भूतभूतले पीठमुत्तमम् ॥४०१॥

अरुणाम्बुजमध्यस्थमस्मिन्प्रद्योतनप्रभम् ।
गरुडं पक्षिराजन्तं स्कन्धारूढमथाऽस्यतम् ॥४०२॥

स्मरेद्रथाङ्गपाणिं तु सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
लावण्यपरिपूर्णोद्यन्नवयौवनकोमलम् ॥४०३॥

अङ्गसौन्दर्य्यशोभौघधिक्कृताङ्गजदर्पकम् ।
मन्दान्दोलितरक्ताक्षं कामबाणौघविह्वलम् ॥४०४॥

मणिभूषणदीप्ताङ्गं दिव्यगन्धाम्बरावृतम् ।
प्रभयाऽरुणया विश्वं रञ्जयन्तं महेश्वरि ॥४०५॥

यक्षगन्धर्वदेवौघकामिनीशतसेवितम् ।
नीलकुञ्चितकेशौघविलसत्सुप्रसूनकम् ॥४०६॥

माध्वीकलोलुपालीनां हृद्यनादमनोरमम् ।
कन्दर्पचापविलसच्चटुलालिसदृग्भ्रुवम् ॥४०७॥

पद्मपत्रविशालाक्षं लोकनैः कामिनीजनम् ।
मोहयन्तं महारत्नमौलिद्युतिविराजितम् ॥४०८॥

उल्लसद्विद्रुमशिलाशकलारुणिताधरम् ।
पक्वबिम्बाधरं देवि नासावंशमनोरमम् ॥४०९॥

आलोलकुण्डलरुचा समुद्योति कपोलकम् ।
विलसत्कल्पपुष्पोद्यद्दामभूषितसद्गलम् ॥४१०॥

बाह्वष्टकं तथा ध्यायेत्क्वणत्कङ्कणमण्डितम् ।
अशोकपल्लवाकारविलसद्विद्रुमोपमाः ॥४११॥

करावङ्गुलयो ध्येया नानारत्नाङ्गुलीयकाः ।
दक्षिणाधःकरे चक्रं चिन्तयेदर्कभास्वरम् ॥४१२॥

खड्गं तथोपरितने मुसलं च तदुत्तरे ।
तथोर्द्ध्वदक्षिणे हस्ते चिन्तयेद्रुचिराङ्कुशम् ॥४१३॥

वमोर्द्ध्वे चिन्तयेत्पाशं तदधः शङ्खमेव च ।
सशरं च धनुर्वामे गदां ध्यायेदधःकरे ॥४१४॥

वक्षःस्थलं हरेर्ध्यायेल्लक्ष्मीकुचविमर्द्दितम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिविशालकमनीयकम् ॥४१५॥

मनोरमसमुद्योतिघनमालास्वलङ्कृतम् ।
गभीरदक्षिणावर्त्तनाभिमण्डलमण्डितम् ॥४१६॥

हेमाभपीतवस्त्रेण संशोभि जघनं स्मरेत् ।
आरक्तनखरत्नैश्च स्वङ्गुलीयैर्विराजितौ ॥४१७॥

रक्तोत्पलनिभौ पादौ चिह्नितौ ध्वजवारिजैः ।
सुनूपुरौ हरेर्ध्यायेद् ज्ञानैश्वर्यप्रदायकौ ॥४१८॥

वामोरौ संस्थितां ध्यायेल्लक्ष्मीं स्वर्णसमप्रभाम् ।
क्वणन्नूपुरपादाब्जां बृहद्रत्ननितम्बिनीम् ॥४१९॥

तनुमध्यां घनोत्तुङ्गचारुपीनपयोधराम् ।
रणत्कङ्कणबाह्वग्रां नानारत्नाङ्गुलीयकाम् ॥४२०॥

विद्रुमारुणबिम्बोष्ठीं नीलोत्पलविलोचनाम् ।
दीर्घातिकान्तिमत्स्निग्धनीलकुञ्चितमूर्द्धजाम् ॥४२१॥

मुक्तामालां शिरोभागाद्दधानां लोलकुण्डलाम् ।
कण्ठात्स्तनयुगं यावन्मुक्तादामविराजिताम् ॥४२२॥

क्षीराब्धिफेनरुचिरे वसानां श्वेतवाससी ।
दक्षेण बाहुना देवं गाढमालिङ्ग्य संस्थिताम् ॥४२३॥

प्रियां सङ्गमान्मंक्षुजातरोमाञ्चकञ्चुकाम् ।
देवस्याऽस्यं समावीक्ष्य स्मरबाणविमोहिताम् ॥४२४॥

दक्षिणे देवदेवस्य गद्यपद्यमयीं गिरम् ।
वदन्तीं भारतीं ध्यायेद्वीणापुस्तकधारिणीम् ॥४२५॥

सितचन्दनलिप्ताङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
विशाललोचनां देवीं मुक्ताहारविभूषिताम् ॥४२६॥

सृजन्तीं लोचनैर्भावान् विष्णौ देवि शुचिस्मिताम् ।
विद्यासौभाग्यलाभाय ध्यायेदेवं परां गिरम् ॥४२७॥

परितो वासुदेवाद्या ध्यातव्या मूर्त्तयो हरेः ।
श्यामशुक्लारुणापीताः क्रमशः सर्वभूषणाः ॥४२८॥

तथाऽष्टौ देवदेवस्य परितः सर्वभूषणाः ।
लक्ष्म्याद्याः शक्तयो ध्येया रणत्कङ्कणबाहुकाः ॥४२९॥
सितचामरधारिण्यो मुक्ताहाराः सुमध्यमाः ।

क्वणन्नूपुरपादाब्जाः पीनोत्तुङ्गपयोधराः ॥४३०॥
त्रैलोक्यमोहनं देवं वीक्ष्यमाणाः स्मरार्दिताः ।

गौरे लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिप्रीती तथाऽरुणे ॥४३१॥
शशाङ्कधवले ज्ञेये कान्तिकीर्ती हरिप्रिये ।

तुष्टिपुष्टी तथा श्यामे ध्यातव्ये हरिवल्लभे ॥४३२॥
नरेन्द्रदेवदैत्यानां प्रमदाः स्मरविह्वलाः ।

गृहीत्वा चन्दनादीनि हेमरत्नस्रजः शिवे ॥४३३॥
आयान्त्यः परितो ध्येया देवदर्शनलालसाः ।

हेमप्रसूनमालाभिश्चन्दनैर्विविधैः शिवे ॥४३४॥
त्रैलोक्यमोहनं देवं पूजयन्त्यो निरन्तरम् ।

ऋषयः सिद्धगन्धर्वमनुजा मनुजाधिपाः ॥४३५॥
स्तुवन्तः परितो ध्येया हरिं सर्वप्रियं प्रिये ।
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्च समन्तात्परिवारितम् ॥४३६॥

आब्रह्मभुवनान्तस्थसर्वलोकैः प्रपूजितम् ।
कोटियोजनविस्तीर्णे हेमरत्नविनिर्मिते ॥४३७॥

मनःप्रीतिकरे देवि साधकाभीष्टदायके ।
धर्माद्यैर्निर्मिते देवि मण्डलत्रितयान्विते ॥४३८॥

विमलादिसुशक्तिस्थयोगपीठे महाप्रभे ।
आसीनं चिन्तयेद्देवं सर्वसत्वविमोहनम् ॥४३९॥

भुवनानि महादेवि भासयन्तं निजत्विषा ।
किन्नरोरगगन्धर्वचारणैः खेचरव्रजैः ॥४४०॥

गीयमानगुणव्रातं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम् ।
सुपर्णाय पदं प्रोक्त्वा विद्महे पदमीरयेत् ॥४४१॥

पक्षिराजाय धीशब्दं महि तन्नो-पदं वदेत् ।
गरुडः शब्दमुच्चार्य प्रवदेच्च प्रचोदयात् ॥४४२॥

गायत्र्येषा समाख्याता सिद्धिदा मूलमन्त्रतः ।
मूर्त्ति प्रकल्प्य देवेशं पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥४४३॥

अर्घादिकञ्च भूषान्तमर्चयित्वा रमा ततः ।
ऊरौ दक्षेतरे चेष्ट्वा ह्यङ्गानि प्रयजेत्ततः ॥४४४॥

वर्मान्तिकानि चाऽऽशासु विदिक्ष्वस्त्रं पुरोदृशम् ।
दलेषु लक्ष्म्यादिकाश्च पूर्वाद्याशासु संयजेत् ॥४४५॥

दरचक्रगदाचारुमुसलानि विदिक्ष्वथ ।
शार्ङ्गखड्गाङ्कुशोद्योतिपाशानाशाधिपांस्ततः ॥४४६॥

वज्रादीनि ततो बाह्ये कुमुदाद्यान्बहिर्यजेत् ।
ततो दत्वा धूपदीपौ पूजयेच्च मनोः पदैः ॥४४७॥

देवि द्वादशभिः पुष्पैर्मारबीजस्य चोर्द्ध्वगम् ।
त्रैलोक्यमोहनायेति युतैर्ङेहृदयान्तिकैः ॥४४८॥

पञ्चभिश्चाऽथ पुरुषोत्तमाद्यैः पूजयेत्क्रमात् ।
शक्तिश्रीमारबीजाद्यैर्ङेयुतैश्च नमोऽन्तकैः ॥४४९॥

पुरुषोत्तमसंज्ञश्च हृषीकेशाह्वयः प्रिये ।
विष्णुश्रीधररामाश्च ज्ञेयाः पञ्चापि ते क्रमात् ॥४५०॥

षडावरणसंयुक्तं पुरुषोत्तम पूजनम् ।
यः करोतिभवेत्सोऽथ भाजनं सर्वसम्पदाम् ॥४५१॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्ते "शिरसि—जैमिनये नमः, मुखे—अमिताय छन्दसे; हृदये — श्रीपुरुषोत्तमाय देवतायै" इति विन्यस्य, प्राग्वदुक्त्वा "ॐ क्लीं पुरुषोत्तम त्रिभुवनोन्मादकर हुं फट् नमः हृदयाय नमः, ॐ क्लीं-सकलजगत्क्षोभण लक्ष्मीदयित हुँ फट् नमः शिरसे स्वाहा, ॐ क्लीं मन्मथोत्तमाङ्गजकामदीपिनि हुँ फट् नमः शिखायै वषट्, ॐ क्लीं परमसुभग सर्वसौभाग्यकराप्रतिरूप केशव स्मर हुं फट् नमः कवचाय हुं, ॐ क्लीं सुरासुरमनुजसुन्दरीहृदयविदारण सर्वप्रहरणधर सर्वकामिक हन हन सर्वहृदयबन्धनान्याकर्षयाऽकर्षय महाबल अस्त्राय फट्, ॐ क्लीं त्रिभुवनेश्वर दारय दारय मे सर्वजनमनांसि हन हन वशमानय नेत्राय वौषट्" इति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, नेत्रमन्त्रं कनिष्ठयोर्विन्यस्य, हृदयाद्यस्त्रान्तं विन्यस्य, नेत्रमन्त्रं पश्चाद्विन्यसेदित्येवं नेत्रान्तं षडङ्गानि विन्यस्य, "हृदये—ॐ नमः ह्रीं पराय पुरुषात्मने नमः, शिरसि—ॐ नमः श्रीं पराय सत्यात्मने नमः, शिखायां—ॐ नमः क्लीं परायाऽच्युतात्मने०, कवचस्थाने—ॐ नमः प्रतिरूप पराय सङ्कर्षणात्मने, नेत्रयोः—ॐ नमो लक्ष्मीनिवास पराय प्रद्युम्नात्मने०, उदरे—ॐ नमः सकलजगत्क्षोभण परायाऽनिरुद्धात्मने०, पृष्ठे—ॐ नमः सर्वस्त्रीहृदयविदारण पराय नारायणात्मने०, बाह्वोः—ॐ नमस्त्रिभुवनमनोन्मादकर पराय ब्रह्मणे०, ऊर्वोः—ॐ नमः परमसुभग प० विश्वात्मने०, जानुनोः—ॐ सौभाग्यकर प० नृसिंहात्मने०, पादयोः—ॐ नमः सर्वकामप्रद प० वराहात्मने नमः, त्रैलोक्यमोहन हृषीकेशाऽप्रतिरूपमन्मथ सर्वस्त्रीहृदयविदारणाऽगच्छ नम" इति व्यापकं विन्यस्य, श्रीकरप्रकरणोक्तवत्पञ्चबाणान् पञ्चकामांश्च विन्यस्य, 'क्लीं अं क्लीं नम' इत्यादिमातृकां विन्यस्याऽग्रे वक्ष्यमाणकाममालामन्त्रस्य वर्णेषु चत्वारिंशद्वर्णनादितः शिरोवदनवृत्तत्यादिमातृकावर्णन्यासस्थानेषु नाभिपर्यन्तेषु विन्यस्याऽवशिष्टाक्षरेषु पञ्चवर्णानुदरहृदयकण्ठमुखनासिकासु विन्यस्याऽक्षरत्रयं पृथक् पृथक् सर्वाङ्गे व्यापकत्वेन विन्यस्य, सम्पूर्णमालामन्त्रेण सकृद् व्यापकं विन्यस्य, "क्लीं अं कामाय रत्यै नमः, क्लीं आं कामदाय प्रीत्यै०, एवं इं कान्ताय कामिन्यै०, ईं कान्तिमते मोहिन्यै०, ॐ कामगाय कमलायै० ॐ कामचाराय विलासिन्यै, ऋं कामिने कल्पलतायै०, ॠं कामुकाय श्यामलायै०, लृं कामवर्द्धनाय शुचिस्मितायै०, ॡं रामाय विस्मिताक्ष्यै०, एं रमाय विशालाक्ष्यै०, ऐं रमणाय लेलिहानायै०, ओं रतिनाथाय दिगम्बरायै०, औं रतिप्रियाय रामायै०, अं रात्रिनाथाय कुब्जिकायै०, अः रमाकान्ताय कान्तायै०, कं रमणाय नित्यायै०, खं निशाचराय कल्याण्यै०,

गं नन्दकाय भोगिन्यै०, घं नन्दनाय कामदायै०,ङं नन्दिने सुलोचनायै०, चं० नन्दयित्रे सुलापिन्यै०, छं पञ्चबाणाय मर्द्दिन्यै०, जं रतिसखाय कलहप्रियायै०, झं पुष्पधन्वने वराक्ष्यै०, यं महाधनुषे सुमुख्यै०, टं भ्रामणाय नलिन्यै०, ठं भ्रमणाय जयिन्यै०, डं भ्रममाणाय पालिन्यै०, ढं भ्रमाय शिवायै०, णं भ्रान्ताय मुग्धायै०, तं भीमकाय रमायै०, थं भृङ्गाय भ्रमायै०, दं भ्रान्तचराय लोलायै०, धं भ्रमावहाय चञ्चलायै०, नं महानादाय दीर्घजिह्वायै०, पं मोहकाय रतिप्रियायै० फं मोहाय लोलाक्ष्यै०, बं मोहवर्द्धनाय भृङ्गिण्यै०, भं मदनाय पाटलायै०, मं मन्मथाय मदनायै०, यं मातङ्गाय मालायै०, रं भृङ्गनायकाय हंसिन्यै०, लं गायकाय विश्वतोमुख्यै०, वं गीतिज्ञाय जगदानन्दिन्यै०, शं नर्त्तकाय रमण्यै०[1], षं खेलकाय कान्त्यै०, सं उन्मत्तकाय कलकण्ठ्यै०, हं मत्तकाय वृकोदर्य्यै०, ळं विलासिने मेघश्यामायै०, क्षं लोभवर्द्धनायोत्तमायै नम" इति मातृकास्थानेषु विन्यस्य, ततः श्रीकरप्रकरणोक्तानि द्वादश तत्वानि संहारसृष्टिक्रमेण विन्यस्य, पार्श्वद्वयनाभिगुह्यगुदोरुमूलद्वयजानुद्वयगुल्फद्वयाङ्गुलीषु 'क्लीं नमः' इति काम बीजं प्रतिस्थानं विन्यस्य;

पूर्वं वासुदेवमन्त्रप्रकरणोक्तप्रकारांस्तन्मन्त्राक्षरन्यासान् संहारसृष्टिस्थिति-क्रमेण विन्यस्याऽष्टाक्षरप्रकरणोक्तमूर्तिपञ्जरन्यासं कृत्वा, 'शिरसि—त्रैं नमः, ललाटे—लों०, दक्षनेत्रे—वयं०, वामे—मों०, दक्षदोर्मूले—हं०, मध्ये—नां०, मणिबन्धे—यं०, अङ्गुलिमूले—विं०, अग्रे—द्मं०, वामदोर्मूले—हें०, मध्ये—स्मं०, मणिबन्धे—रां०, अ्यङ्गुलिमूले—यं०, अग्रे—धीं०, दक्षोरुमूले मं०, जानुनि—हिं०, गुल्फे—तं०, अङ्गुलिमूले—न्नों०, अग्रे—विं०, वामोरुमूले—ष्णुंः० जानुनि—प्रं०, गुल्फे—चों०, अङ्गुलिमूले—दं०, अग्रे—यात् नमः" ।

ततः पुनः प्रागुक्तषडङ्गद्वादशाङ्गबाणकामन्यासान्विधाय, वामोरौ—'श्रीं श्रियै नमः' इति विन्यस्य, "शिरसि—स्वां लक्ष्म्यै०, मुखे०—स्वीं सरस्वत्यै०, कण्ठे—स्वूं रत्यै०, गुह्ये—स्वें प्रीत्यै०, ककुदि—स्वैं० कीर्त्यै०, हृदि—स्वों कान्त्यै०, नाभौ—स्वौं तुष्ट्यै०, सर्वाङ्गे—स्वः पुष्ट्यै० ।

ततः प्राग्वद्व्यापकं विन्यस्य, पुनरपि ऋष्यादिन्यासं विधाय, "वक्षसि—क्लीं श्रीवत्साय०, कण्ठे—क्लीं कौस्तुभाय०, स्कन्धादिपादान्तं—क्लीं वन-मालायै०, दक्षिणाधःकरे—ॐ क्लीं सुदर्शन महाचक्रराज दह दह सर्वदुष्टभयं कुरु कुरु छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द विदारय विदारय परमन्त्रान् ग्रस ग्रस

१. क. पुस्तके 'परमरायै' तथा ख. पुस्तके 'रमायै' इति पाठः । पाठद्वयमिदं सूत्रविरुद्धम् । सूत्रे-'नर्त्तको रमणीयुक्तो' इति वचनादत्र 'रमण्यै' इत्येतदुद्धृतम् ।(सम्पा०)

भक्षय भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हुं फट् स्वाहा चक्राय नम" इति विन्यस्य, "तदूर्द्ध्वे हस्ते—ॐ क्लीं खड्गतीक्ष्ण भिन्द भिन्द हुं फट् खड्गाय०", तदूर्द्ध्वे —ॐ क्लीं संवर्त्तक मुसल पोथय पोथय हुं फट् स्वाहा मुसलाय०, तदूर्द्ध्वे— ॐ० क्लीं अङ्कुश कचु कचु हुं फट् स्वाहांऽकुशाय०, वामोर्द्ध्वे—क्लीं पाश बन्ध बन्ध आकर्षय आकर्षय हुं फट् स्वाहा पाशाय०, तदधः—क्लीं जलचराय स्वाहा, शङ्खाय०, तदधः—शार्ङ्गाय सशराय हुं फट् धनुषे०, तदधः—कौमोदकि महाबले सर्वासुरान्तकि प्रसीद प्रसीद हुं फट् गदायै नमः" ततस्त्रैलोक्यमोहनीं—मुद्रां कामबीजमुच्चरन् मूर्द्ध्नि विन्यस्योक्तविधिना ध्यात्वा, मानसपूजादियोग-पीठार्चान्ते पीठमध्ये—पक्षिराजाय स्वाहा पक्षिराजाय नमः' इति गरुडं सम्पूज्या-ऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते देवस्य वामोरौ—'श्रीं श्रियै नमः' इति लक्ष्मीं सम्पूज्या-ऽष्टदलकेसरेषु देवाग्रादिचतुर्दिक्षु हृदाद्यङ्गचतुष्टयं कोणेष्वस्त्रे, पुरतो नेत्रमिति षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु लक्ष्म्याद्यष्टशक्तीः प्रागुक्ताः सम्पूज्य, विदिग्दलाग्रे "शङ्खाय०, चक्राय०, गदायै०, मुसलाय०," कोणदलाग्रेषु—शार्ङ्गाय०, खड्गाय०, अङ्कुशाय०, पाशाय०" इति सं०, चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, बहिः पूर्वोक्तान्कुमुदादीनभ्यर्च्य धूपदीपौ समर्प्य, "त्रैलोक्यमोहनाय श्रीं पराय सत्यात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय क्लीं परायाऽच्युतात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय पुरुषोत्तम पराय वासुदेवात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनायाप्रतिरूप पराय सङ्कर्षणात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय लक्ष्मीनिवास पराय प्रद्युम्नात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय सकलजगत्क्षोभण परायाऽनिरुद्धात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्य-मोहनाय सर्वस्त्रीहृदयविदारण पराय नारायणात्मने[1] नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय[2] त्रिभुवन्मनोन्मादकराय ब्रह्मात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय परमसुभग पराय विष्ण्वात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय सर्वसौभाग्यकर पराय नृसिंहात्मने नमः, क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय सर्वकामप्रद पराय वराहात्मने नमः," ततः "ह्रीं श्रीं क्लीं पुरुषोत्तमाय नमः, एवं हृषीकेशाय०, विष्णवे०, श्रीधराय० रामाय०" इति देवं सम्पूज्य नैवेद्यादि सर्वं समापयेदिति ।

तथा— एवं सम्पूज्य विधिवल्लक्षसंख्यं मनुं जपेत् ।
तद्दशांशं हुनेत्कुण्डे त्वर्द्धराकेशसन्निभे ॥४५२॥
पलाशपुष्पैर्मनुना तद्गायत्र्याऽथ वा प्रिये ।
तर्प्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥४५३॥

---

१. ख णात्मने । २. ख. त्रैलोक्यमोह ।

एवं सिद्धमनुर्देवि काम्यकर्माणि साधयेत् ।

लक्षजपः कृतयुगपरः ।

एवं ध्यात्वा चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्री समाहितः ॥४५४॥

इति सारसङ्ग्रहात् ।

सारसङ्ग्रहे—

श्रीफलैः कमलैर्वाऽपि हुनेदर्कसहस्रकम् ।
अकिञ्चनोऽपि मनुजो धनाधिपसमो भवेत् ॥४५५॥

यो जपेदयुतं प्रातस्तस्याऽऽधिर्नाशमेति च ।
ज्योतिष्मतीं तैलवरं जहुयाद् व्याधिमुक्तये ॥४५६॥

अष्टाधिकसहस्रं च भवेद् बुद्धिबलं ततः ।
सौभाग्यमतुल चैव लभते स मनोज्ञताम् ॥४५७॥

अष्टाधिकशतं जप्तां सम्यगञ्जलिनीं शुभाम् ।
समूलकाण्डां शिरसा धारयेन्मन्त्रवित्तमः ॥४५८॥

सर्वलोकप्रियतमो भवेन्नियतमाशु सः ।
अश्वमारप्रसूनैश्च सम्पूज्य पुरुषोत्तमम् ॥४५९॥

अष्टाधिकसहस्रं च कुमुदैर्जुहुयात्ततः ।
राजानो वशगाः सर्वे भवन्त्येव सुनिश्चितम् ॥४६०॥

दिवसैश्च त्रिदशभिः किङ्करा एव नाऽन्यथा ।
मालतीपुष्पहोमेन वैश्यान्वशयतेऽचिरात् ॥४६१॥

पालाशकुसुमैर्हुत्वा विप्रान् शीघ्रं वशं नयेत् ।
अभिकाङ्क्षति यां योषां तस्या नामयुतं मनुम् ॥४६२॥

जपेल्लक्षं प्रतिदिनं चाऽष्टाधिकसहस्रकम् ।
दिनादौ वशगा भूत्वा तत्राऽऽयात्येव नाऽन्यथा ॥४६३॥

चौरोपहृतवित्तस्तु ह्यष्टाधिकसहस्रकम् ।
अश्वत्थोत्थसमिद्भिश्च निशि नित्यं त्रिपक्षकम् ॥४६४॥

अथवा कटुतैलेन त्रिपक्षान्तं हुनेत्क्रमात् ।
अथवाऽणुं दशशतं प्रजपेन्मनुजोऽन्वहम् ॥४६५॥

चोर एत्य[1] धनं दत्वा प्रणम्य प्रतिगच्छति ।
सहस्रजप्तममुना मनुना मनुजास्थि च ॥४६६॥

निखातं शत्रुसदने शत्रुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ।
राजिकाऽष्टशतं जप्ता निखाता शत्रुमन्दिरे ॥४६७॥

हयारिकुसुमं वाऽपि पक्षयोरुभयोरपि ।
शुक्ल रक्त केशयुक्तं रिपुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥४६८॥

षण्मास जुहुयाद्रात्रौ [2]कलिद्रुमसमिद्वरैः ।
रिपुर्निधनमायाति ह्यष्टाधिकसहस्रतः ॥४६९॥

मासषट्कं हुनेद्वे त्रसमिद्भिश्च सहस्रकम् ।
तेजेवत्यास्तथा तैलैर्हुनेदष्टसहस्रकम् ॥४७०॥

शत्रुर्मरणमाप्नोति ह्यर्वाङ्मासचतुष्टयात् ।

तेजोवती ज्योतिष्मती ।

मन्त्री विविक्ते भूदेशे जपहोमार्चनारतः ॥४७१॥

अङ्कोलाज्यं सहस्रं च हुनेन्मासत्रयावधि ।
ततः कुर्वंश्च मध्याह्ने पावकाच्चन्द्रसन्निभा ॥४७२॥

प्रादुर्भवेच्च गुटिका तां जप्त्वाऽभ्यर्च्य धारयेत् ।
आनने वाऽथ शिरसि स भवेत् खेचरस्तदा ॥४७३॥

अदृश्यः सिद्धसङ्घैश्च भवेत्साधकसत्तमः ।
आज्याक्ताभिश्च दूर्वाभिर्होमो भयविनाशनः ॥४७४॥

यस्य नामयुतं मन्त्रं जपेदयुतसंख्यया ।
शमयेदापदस्तस्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४७५॥
इमं मन्त्रं जपेद्भूयः समस्तैश्वर्यवान् भवेत् ।

महासम्मोहनतन्त्रे—

दारिद्र्यकोशादिमनोभयरोगापमृत्युहृत् ।
दौर्भाग्यशापपरिभूतिहरः परिकीर्तितः ॥४७६॥

---

१. पत्य । २. कलिमद्रुम० ।

श्रीकीर्त्तिकान्तिधनदो धर्मकामार्थमोक्षदः ।
किम्बहूक्तेन मन्त्रोऽयं कामधेनुरिवोत्तमः ॥४७७॥

इत्थं सुरासुरव्रातनरोरगसुचारणैः ।
सिद्धगन्धर्वयक्षैश्च सकलैश्च महर्षिभिः ॥४७८॥

सेवितं मन्त्रवर्यस्य संक्षेपाच्च विधानकम् ।
पुरुषोत्तमदेवस्य गदितं च मया प्रिये ॥४७९॥

गोपनीयं प्रयत्नेन भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

सारसङ्ग्रहे—

तारमाररमानान्तः कर्णयुग्वह्निरुस्थितः ।
ङेयुक्षोत्तमशब्दश्च वर्मास्त्राग्निवधूयुतः ॥४८०॥

त्रयोदशाक्षरो मन्त्रः कीर्त्तितः पौरुषोत्तमः ।

तारः प्रणवः, मारः क्लींः, रमा श्रीं, नान्तः पः, कर्णः उ तेन पु, वह्निः रेफः, उस्थितस्तेन रु, ङेयुक्षोत्तमः षोत्तमाय, वर्म हुं, अस्त्रं फट्, अग्निवधूः स्वाहा । तथा —

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः प्रोक्तं च देवता ॥४८१॥

पुरुषोत्तमसंज्ञश्च विष्णुस्त्रैलोक्यमोहनः ।
अङ्गत्रयं पूर्वबीजैः षट् द्विद्व्यर्णैस्तथा त्रयम् ॥४८२॥

ॐ हृत्, क्लीं शिरः, श्रीं शिखा, पुरुषोत्तमाय कवचं, हुं फट् नेत्र०, स्वाहाऽस्त्रमिति ।

संस्मरेत्सरमं विष्णुं रक्तवर्णं चतुर्भुजम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पुरुषोत्तमम् ॥४८३॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये ।

पूर्वोदिते ततः पीठे देवमावाह्य मन्त्रवित् ।
अङ्गानि संयजेद्दिक्षु वासुदेवादिकान्यजेत् ॥४८४॥

शक्तयः कोणगाः पूज्याः शङ्खादीनि ततो यजेत् ।
कुमुदाद्यान्लोकपालान् वज्रादीनि ततो यजेत् ॥४८५॥

प्रयोगः सुगमः ।

जपेन्मनुं वर्णलक्षं तत्सहस्रं हुनेत्तथा ।
प्रफुल्लैः कमलैः पश्चात्तर्पणादि समाचरेत् ॥४८६॥

एवं सिद्धमनुः कुर्यात्प्रयोगान्पूर्वमन्त्रवत् ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ चतुर्विंशस्तरङ्गः ॥२४॥

[पञ्चविंशस्तरङ्गः]

सारसङ्ग्रहे—

अथोच्यते हृषीकेशमनुः सर्वार्थसाधकः ।
कामं ततो हृषीकेशावायुर्नत्यन्त ईरितः ॥१॥

अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो हृषीकेशस्य शोभनः ।

कामं क्लीं, हृषीकेशा-स्वरूपं, वायुर्यकारः, नत्यन्तो नमोऽन्तः । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टोऽनुष्टुप् छन्द उदाहृतम् ॥२॥

देवता च हृषीकेशः सुरासुरनमस्कृतः ।
षड्दीर्घयुक्तमारेण षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥३॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं संस्मरेद्विभुम् ।
गरुडोपरिसंविष्टं शुभ्रवर्णं सुभूषणम् ॥४॥

पूर्ववदायुधध्यानम् ।

ततः पूर्वोदिते पीठे मन्त्री देवं समर्चयेत् ।
कर्णिकायां समावाह्य हृषीकेशं समाहितः ॥५॥

अङ्गानि च ततः पश्चात्पूजयेदुक्तमार्गतः ।
वक्षःस्थले दक्षभागे श्रीवत्सायेति पूजयेत् ॥६॥

वामे च कौस्तुभायेति ग्रीवायां पूजयेत्ततः ।
नमोऽन्तं वनमालायै मुकुन्दायेति संयजे ॥७॥

मूर्त्तौ च कर्णिकायां तु पक्षिराजाय वै नमः ।
नमः पङ्कजनाभाय गरुडोपरि पूजयेत् ॥८॥

ततोऽष्टदलपद्मे तु वक्ष्यमाणान्प्रपूजयेत् ।
पुरुषोत्तमको लक्ष्मीनिवासस्तदनन्तरम् ॥९॥

सकलाद्यो जगन्नाथो जगत्क्षोभणकस्तथा ।
सर्वस्त्रीहृदयं पश्चान्मनोन्मादक एव च ॥१०॥

सम्यक् त्रिभुवनाद्यश्च सर्वसौभाग्यदस्तथा ।
सर्वकामप्रदः पश्चाच्चतुर्थ्यन्तान्नमोऽन्तकान् ॥११॥

तत उत्सङ्गगां देवीं पूजयेच्छ्रीं श्रियै नमः ।
ततश्च परितो देवान् पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ॥१२॥

लोकेशांश्च ततो बाह्ये वज्रादीनि ततो बहिः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

ततः प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—हृषीकेशाय देवतायै०" इति विन्यस्य, प्राग्वदुक्त्वा "क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहे"त्यादिकरषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानाद्यङ्गपूजान्ते देवस्य वक्षसि—"श्रीवत्साय नमः, वामभागे—कौस्तुभाय०, ग्रीवायां—वनमालायै०, देवमूर्त्तौ—मुकुन्दाय०, कर्णिकायां—पक्षिराजाय०, तदुपरि—पङ्कजनाभाय०, अष्टदलेषु—पुरुषोत्तमाय०, लक्ष्मीनिवासाय०, सकलजगन्नाथाय०, जगत्क्षोभणाय०, सर्वस्त्रीहृदयोन्मादनाय०, त्रिभुवनमनोन्मादनाय०, सर्वसौभाग्यदाय०, सर्वकामप्रदाय नम" इति देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, देवस्य वामोत्सङ्गे —"श्रीं श्रियै०, देवं परितः—सर्वदेवेभ्यो नम" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं कुर्य्यादिति । तथा—

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः ॥१३॥

आज्याक्तैः कमलैः फुल्लैः शोभनैर्मन्त्रवित्तमः ।
तर्प्पणं स्वाभिषेकं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥१४॥

एवं सिद्धमनुः सम्यक् साधयेदिष्टमात्मनः ।
सम्मोहिनीप्रसूनैश्च तर्प्पणं सर्वकामदम् ॥१५॥

सम्मोहनी विजया । तथा—

तथा पूर्वमनुः सोऽपि हृषीकेशस्य सिद्धिदः ।
स्थाने हृषीकेश इति ऋषिरर्जुन ईरितः ॥१६॥

छन्दोऽनुष्टुब् देवता च हृषीकेशः समीरितः ।
अङ्गानि मारबीजेन ध्यानपूजादि पूर्ववत् ॥१७॥

तथा— रमारुद्धं मारबीजं श्रीधराय ततो वदेत् ।
त्रैलोक्यमोहनायेति नत्यन्तः षोडशाक्षरः ॥१८॥

मारबीजं कामबीजं, तद्रमाबीजेन रुद्धम् आद्यन्तयोर्व्याप्तं तेन श्रीं क्लीं श्रीं इति । नत्यन्तो नमोऽन्तः । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम् ।
देवता श्रीधरः प्रोक्तः सर्वदेवौघवन्दितः ॥१९॥
श्रीबीजेन षडङ्गानि कुर्याद्दीर्घयुजा[1] सुधीः ।

दुग्धाब्धौ सकलर्त्तुसेवितवने द्वीपे च कल्पद्रुमं,
तस्याधः कमलोरुपीठविलसत्पक्षीन्द्ररम्यासने ।
बिभ्राणं करपङ्कजैररिदरौ सम्यग्गदामम्बुजौ,
स्वर्णाभं मुकुटोल्लसन्मणिरुचा दीप्तं भजे श्रीधरम् ॥२०॥

जपपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ।

पूर्ववत् हृषीकेशवत् ।

तथा— लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ॥२१॥

तर्प्पणादि ततः कुर्यात् पूर्ववत्साधकोत्तमः ।
ततः सिद्धे मनौ मन्त्री काम्यकर्म समाचरेत् ॥२२॥

सुगन्धैः श्वेतपुष्पैश्च होमो लक्ष्मीकरः शुभः ।
श्रीकराद्युदितान्योगान् विदध्यादत्र साधकः ॥२३॥

ध्यानपूजाजपाद्यैर्यो भजति श्रीधरं नरः ।
पुत्रपौत्रैश्वर्य्यकीर्त्तीः प्राप्नोत्यखिलसम्पदः ॥२४॥
अमुत्र परमं विष्णोर्धाम संविशते पुनः ।

---
१. ख. ०दीर्घयुता ।

यथा—

'अच्युतानन्त गोविन्दपदं ङेऽन्तं समुच्चरेत् ।
हृदन्तोऽयं मनुः प्रोक्तो रुद्रसंख्याक्षरः शुभः ॥२५॥

अथवैते त्रयो मन्त्राः प्रोच्यन्ते सर्वकामदाः ।
अच्युताय नमो ह्येकोऽनन्ताय नम इत्यपि ॥२६॥

गोविन्दाय नमस्प्रोक्तस्तृतीयो देशिकोत्तमैः ।
समुदायैकमन्त्रः स्यादृषिः शौनक ईरितः[२] ॥२७॥

विराट् छन्दो देवता च परमात्मा हरिः स्मृतः ।
षडङ्गविधिरुक्तो हि द्विरुक्तैर्मन्त्रनामभिः ॥२८॥

मन्त्रत्रितयपक्षे तु देवता छन्द इत्युभे ।
पूर्वोक्ते च मुनिः प्रोक्तः सम्यक् पाराशरस्तथा ॥२९॥

व्यासश्च नारदश्चैव मन्त्रवर्णैः षडङ्गकम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥३०॥

सर्वायुधैरुपेतं तं गरुडोपरि संस्थितम् ।
सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम् ॥३१॥

श्रीभूमिसहितं देवमुद्यदादित्यसन्निभम् ।
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्[३] ॥३२॥

सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि ।
अभयं वरदं देवं धारयन्तं मुदान्वितम् ॥३३॥

पूर्वोदिते यजेत्पीठे वैष्णवे तूक्तवर्त्मना ।
देवमावाह्य मन्त्राङ्गैः प्रथमावृत्तिरिष्यते ॥३४॥

चक्राद्यैश्च द्वितीया स्यात्तृतीया सनकादिभिः ।
सनकः स्यात्ततस्तद्वत्सनन्दनसनातनौ ॥३५॥

सनत्कुमारश्च पराशरो व्यासश्च नारदः ।
शौनकोऽष्टम एवं स्याच्चतुर्थी लोकपालकैः ॥३६॥
तदायुधैः पञ्चमी स्यादेवं पूजा समीरिता ।

---

१. ख. अच्युतानन्द० । २. ख. एरितः । क. ०कुण्डली ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—शौनकाय ऋषये नमः, मुखे—विराट्छन्दसे०, हृदि—परमात्मने देवतायै०" इति विन्यस्य, "अच्युताय हृत्०, अनन्ताय शिरः०, गोविन्दाय शिखा०, अच्युताय कवचम्०, अनन्ताय नेत्रं०, गोविन्दायाऽस्त्रं०" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यङ्गपूजान्तेऽष्टदले प्रागुक्तायुधाष्टकं सम्पूज्य, द्वितीयाष्टदले "सनकाय नमः, सनन्दनाय०, सनातनाय०, सनत्कुमाराय०, पराशराय०, व्यासाय०, नारदाय०, शौनकाय नमः" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि शेषं समापयेदिति । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ॥३७॥

तर्प्पणं स्वाभिषेकं च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
एवं कृतवतस्तस्य रोगनाशो भविष्यति ॥३८॥

कन्यार्थी[1] लाजहोमेन लक्ष्म्यर्थी बिल्वहोमतः ।
वस्त्रार्थी पुष्पहोमेन ह्यरोगार्थी तिलैर्हुतैः ॥३९॥

तत्तत्फलमवाप्नोति मन्त्रविन्नाऽत्र संशयः ।
रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेद् बुधः ॥४०॥

अष्टोत्तरसहस्रं तु ज्वरनाशो भविष्यति ।
विवाहाय जपेन्मासं शशिमण्डलमण्डनम् ॥४१॥

ध्यायेत्तु स लभेत् कन्यां शोभनां च कुटुम्बिनीम् ।
जपहोमार्चनाभिर्यो भजेन्मन्त्रं[2] समाहितः ॥४२॥
भुक्त्वेह भोगान्सकलान्विष्णोर्याति परं पदम् ।

शारदातिलके—

उद्गिरत्पदमाभाष्य प्रणवोद्गीथशब्दतः ।
सर्ववागीश्वरेत्यन्ते[3] प्रवदेदीश्वरेत्यथ ॥४३॥

सर्ववेदमयाचिन्त्यपदान्ते सर्वमुच्चरेत् ।
बोधयद्वितयान्तोऽयं मन्त्रस्तारादिरीरितः ॥४४॥

प्रणवोद्गीथ इति स्वरूपम् ।

---

१. ख. अन्यार्थी । २. ख. जपेन्मन्त्रं । ३. ख. ०त्यन्त ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

पूर्वं वदेदुद्गिरत्प्रणवोद्गीथपदं ततः ।
सर्ववागीश्वशब्दं तु ततो रेश्वरशब्दतः[1] ॥४५॥

सर्ववेदमयं प्रोक्त्वा मयाचिन्त्यपदं वदेत् ।
सर्वं स्याद्बोधयद्वन्द्वं स्वाहां केचनोचिरे ॥४६॥

स्वबीजप्रणवाभ्यां च सम्पुटः परिकीर्त्तितः ।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रो हयग्रीवहरेः शुभः ॥४७॥

स्वबीजं हयग्रीवबीजं वक्ष्यमाणं, अन्यत्सुगमम् । षट्त्रिंशदक्षरः स्वाहा-रहितपक्षे, तद्योगे त्वष्टत्रिंशदक्षरः ।

तथा—

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य निर्दिष्टश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवताऽस्य हयग्रीवो वागैश्वर्यप्रदो विभुः ॥४८॥

मन्त्रस्य हलो बीजानि, स्वराः शक्तय इति पदार्थादर्शे—

तारेण पादैर्मन्त्रस्य पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।

शरच्छशाङ्कप्रभमश्ववक्त्रं मुक्तामयैराभरणैरुपेतम् ।
रथाङ्कशङ्खाञ्चितबाहुयुग्मं जानुद्वयन्यस्तकरम्भजामः ॥४९॥

अष्टाक्षरोदिते पीठे हयग्रीवं प्रपूजयेत् ।
मूर्तिं मूलेन सङ्कल्प्य बीजमुद्ध्रियते यथा ॥५०॥

वियद्भृगुस्थमर्घीशविन्दुमद्बीजमीरितम् ।
केसरेषु चतुर्वेदांश्चतुर्दिक्षु समर्च्चयेत् ॥५१॥

विदिक्ष्वङ्गस्मृतिन्यायसर्वशास्त्राणि पूजयेत् ।
अर्च्चयेत्पत्रमध्येषु विधानेनाऽङ्गदेवताः ॥५२॥

बाह्ये लोकेश्वरांस्तेषां वज्राद्यस्त्राणि संयजेत् ।
एवं यो भजते देवं साक्षाद्वागीश्वरो भवेत् ॥५३॥

---

१. रेश्वरशब्दः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

पूर्वोदिते यजेत्पीठे देवमावाह्य मन्त्रवित् ।
एकाक्षरेण मूर्ति तु कल्पयित्वा विधानतः ।।५४।।

दिग्गतांश्चतुरो वेदान्यजेत्केसरगांस्ततः ।
ऋग्वेदः श्वेतवर्णस्तु द्विभुजो रासभाननः ।।५५।।

अक्षमालाभयः सौम्यः प्रीतः[1] स्वाध्यायनोद्यतः[2] ।
अजास्यः पीतवर्णस्तु यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृक् ।।५६।।

वामः कुलिशपाणिः स्याद्भूतिदो मङ्गलप्रदः ।
नीलोत्पलदलश्यामः सामवेदो हयाननः ।।५७।।

अक्षमालान्वितो दक्षे वामे कुम्भधरः स्मृतः ।
अथर्वणाभिधो वेदो धवलो मर्कटाननः ।।५८।।

अक्षमालान्वितो दक्षे वामे कुम्भधरः स्मृतः ।
कोणकेसरगानङ्गस्मृतिन्यायांस्तथाऽर्चयेत् ।।५९।।

सर्वशास्त्रं च पत्रेषु षडङ्गानि समर्चयेत् ।
लोकपालान्यजेद्बाह्ये तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।।६०।।

विधानेनाऽमुना देवं भजन् वाचस्पतिर्भवेत् ।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीहयग्रीवाय देवतायै०" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा "ॐ हृदयाय नमः, उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ शिरसे स्वाहा, सर्ववागीश्वर शिखायै वषट्, सर्ववेदमयाचिन्त्य कवचाय हुं, सर्वं बोधय बोधयाऽस्त्राय फडिति पञ्चाङ्गमन्त्रान् मूलमन्त्राभिमृष्टकराङ्गुलिषु विन्यस्य, नेत्रवर्ज्जं हृदादिषु च विन्यस्य, ध्यानादियोगपीठपूजान्ते एकाक्षरेण मूर्ति कल्पयित्वाऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्तेऽष्टदलकेसरेषु देवाग्रादिचतुर्दिक्षु "ॐ ऋग्वेदाय नमः, एवं यजुर्वेदाय०, सामवेदाय० अथर्ववेदाय०,[3] अग्न्यादिकोणकेसरेषु—षडङ्गेभ्यः, न्यायेभ्यः, सर्वशास्त्रेभ्यः, ततोऽष्टदलेषु प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति ।

---

१. क. प्रीतिः । २. क. स्वाध्यायनो यतः । ३. क पुस्तके नाऽस्त्ययमंशः ।

सारसङ्ग्रहे—

षट्त्रिंशल्लक्षकं जप्त्वा तदन्ते जुहुयात्सुधीः ॥६१॥

कुन्दैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ।
लक्ष्मीकामः प्रजुहुयाद्बिल्वपत्रैः सुशोभनैः ॥६२॥

वाक्कामो जुहुयान्नित्यं कुन्दैस्त्रिमधुराप्लुतैः ।
आज्यं ब्राह्मीरसे पक्वं मन्त्रेणाऽनेन साधितम् ॥६३॥

सेवितं विधिना प्रातरनर्गलकवित्वदम् ।
साधितां मन्त्रवर्येण वचामनुदिनं सुधीः ॥६४॥

भक्षयेत्सर्वशास्त्राणां व्याख्याता भवति ध्रुवम् ।
ऋग्यजुःसामरूपञ्च वेदाभरणकर्म च ॥६५॥

प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे पदम् ।
ङेऽन्तं पदद्वयं पूर्वं नमोऽन्तः सोऽहमन्तकः ॥६६॥

हंसादिरश्ववक्त्रस्य प्रोक्तः षट्त्रिंशदक्षरः ।

ङेऽन्तं पूर्वपदद्वयमिदम् — ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाभरणकर्मणे इति । अन्यत्सुगमम् ।

हंसोत्तीर्णपदं प्रोक्त्वा स्यात्स्वरूपाय चिन्मया ॥६७॥

नन्दान्ते रूपिणे तुभ्यं पदं प्रोक्त्वा नमो वदेत् ।
हयग्रीवपदं पश्चाद्विद्याराजाय विष्णवे ॥६८॥

स्वाहा सोहं च हंसादिरष्टत्रिंशाक्षरो मनुः ।
ऋष्याद्यङ्गविधिध्यानपूजाकाम्यानि मन्त्रवित् ॥६९॥

कुर्यादनुष्टुभोक्तेन विधानेन विधानवित् ।

पञ्चाङ्गानि प्रणवमन्त्रपादैः, पुरश्चरणं च षट्त्रिंल्लक्षजपः । तथा—

चन्द्रस्थं गगनं वामकर्णबिन्दुसमन्वितम् ॥७०॥

एकाक्षरो मनुः प्रोक्तो हयग्रीवस्य मन्त्रिभिः ।

चन्द्रः सकारः, गगनं हकारः, वामकर्ण ऊकारः, बिन्दुरनुस्वारस्तेन 'ह्सूं' इति बीजम् ।

शाङ्करकल्पे—

शून्यं शून्यसमायुक्तं जीवस्योपरि संस्थितम् ॥७१॥
अनुग्रहयुतं कृत्वा वागीशं सर्वकामदम् ।

इति । शून्यं हकारः, शून्ययुक्तं बिन्दुयुक्तं, जीवस्य सकारस्योपरि स्थितं, अनुग्रहेणौकारेण युक्तं तेन 'ह्सौं' इति । केचिदस्मिन्नेव श्लोके अनुग्रहेणेत्यत्र रुद्रेणेति पठन्ति । तन्मते रुद्रः एकारस्तेन 'ह्सैं' इति, एवं त्रिविधं बीजम् । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम् ॥७२॥

देवता च हयग्रीवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।
षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडङ्गविधिरीरितः ॥७३॥

धवलनलिननिष्ठं क्षीरगौरं कराग्रै-
र्जपवलयसरोजे पुस्तिकाभीतिदाने ।
दधतममलवस्त्राकल्पजालाभिरामं,
तुरगवदनविष्णुं नौमि देवारिजिष्णुम् ॥७४॥

दक्षोर्ध्वादि तदधोऽन्तमायुधध्यानम् ।

पुरोक्ते प्रयजेत्पीठे गायत्र्याऽऽवाह्य मन्त्रवित् ।
ङेऽन्तं वागीश्वरपदं विद्महे पदमुच्चरेत् ॥७५॥

हयग्रीवश्च ङेऽन्तः स्याद्धीमहीति ततो वदेत् ।
ततो वदेच्च मन्त्रज्ञस्तन्नो हंसः प्रचोदयात् ॥७६॥

प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद् द्वितीया चाऽष्टभिर्हयैः ।
प्रज्ञाहयस्तथा मेधाहयः स्मृतिहयस्तथा ॥७७॥

विद्याहयः श्रीहयश्च वागीशीहय एव च ।
विद्याविलाससुहयो हयान्तो नादमर्द्दनः ॥७८॥

लक्ष्म्यादिभिस्तृतीया स्यात्ताश्च लक्ष्मीः सरस्वती ।
रतिः प्रीतिः कीर्तिकान्ती तुष्टिः पुष्टिस्तथाऽष्टमी ॥७९॥

चतुर्थी कुमुदाद्यैः स्याल्लोकपालैस्तु पञ्चमी ।
तदायुधैस्तु षष्ठी स्यादेवं पूजा समीरिता ॥८०॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये०, मुखे—त्रिष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीहयग्रीवाय देवतायै०" इति विन्यस्य, "ह्सां हृदयाय नमः, ह्सीं शिरसे स्वाहे" त्यादिकरषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानादिपीठपूजान्ते "ॐ वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयादि" त्यनया गायत्र्याऽऽवाह्य, मूलेन स्थापनाद्यङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य "ॐ प्रज्ञाहयाय नमः, एवं मेधाहयाय०, स्मृतिह०, विद्याह०, श्रीह०, वागीशीह०, विद्याविलासह०, नादमर्द्दनहयाय नम" इति सम्पूज्य, दलाग्रेषु "लक्ष्म्यै०, सरस्वत्यै०, रत्यै०, प्रीत्यै०, कीर्त्यै०, तुष्ट्यै० पुष्ट्यै०" ततो द्वितीयाष्टदले कुमुदाद्यमूर्त्तीः[१] सम्पूज्येन्द्रादिपूजादिकं सर्वं समापयेदिति । तथा—

वेदलक्षं जपित्वाऽन्ते तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ।
तर्प्पयित्वाऽथ सलिलैः सुशुद्धैश्च सुगन्धिभिः ॥८१॥

आत्माभिषेचनं कृत्वा तर्प्पयेद्भूसुरानपि ।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्विदधीत वै ॥८२॥

शशिमण्डलमध्यस्थं हिमकुन्दनिभं मनुम् ।
करे ध्यात्वा न्यसेद्वक्त्रे सभापूज्यः स जायते ॥८३॥

अथवा तं करं कुम्भे न्यस्य तज्जलसेचनात् ।
प्रातराहन्ति लूतादि दौर्भाग्यं पञ्चधा विषम् ॥८४॥

योऽम्भस्त्रिसप्तजप्तं तु प्रभाते प्रत्यहं पिबेत् ।
सम्पूज्य जायते तस्य दिव्या वाणी मनोरमा ॥८५॥

इन्दुमण्डलमध्यस्थं लकारे न्यस्तमन्त्रकम् ।
पीतं वादिमुखे ध्यात्वा स्तम्भयेत्तस्य भारतीम् ॥८६॥

प्रणवद्वयमध्यस्थहकारद्वयमध्यगम् ।
वादिनाम लिखेद्गर्भे भूर्जपत्रे हरिद्रया ॥८७॥

---

१. ख. कुमुदाद्यष्टमूर्त्तीः ।

यन्त्रं प्रतिष्ठितप्राणं शरावद्वयसम्पुटे ।
वेष्टितं पीतसूत्रेण मूकत्वं कुरुतेऽचिरात् ॥८८॥
[१]शृङ्गाटपुरमध्यस्थरेफाक्रान्तं सबीजकम् ।
ज्वालामालाकुलं ध्यायेत्स्तम्भनं परमं मतम् ॥८९॥

शृङ्गाटं त्रिकोणम् ।

वायुमण्डलमध्यस्थं वायुबीजसमन्वितम् ।
संहारकमिदं ध्यातं विषादीनां न संशयः ॥९०॥

जलमण्डलमध्यस्थं ध्यात्वा चन्द्रांशुनिर्मलम् ।
आप्यायनकरं ह्येतत्सर्वरोगविनाशनम् ॥९१॥

शून्यगर्भगतं यन्त्रं हिमगोक्षीरसन्निभम् ।
ध्यायेद्धृत्पद्मस्थं निर्विषीकरणं परम् ॥९२॥

लिखेद्रोचनया भूर्जे मन्त्रं बाहौ विधारयेत् ।
महारक्षा भवेदेषा सर्वदोषविनाशिनी ॥९३॥

बीजं रेफसमारूढं हुङ्कारद्वयमध्यगम् ।
यस्य नाम्ना जपेन्मत्रं मारयेत्तं न संशयः ॥९४॥

बीजं रेफसमायुक्तं सकारहकारयोरधः ।
हकारद्वयमध्यस्थं बीजराजमनुत्तमम् ॥९५॥

विद्वेषयेज्जगत्सर्वं मासजप्तं न संशयः ।

तथा—

स्वबीजं पूर्वमुद्धृत्य ङेऽन्तं हयशिरो वदेत् ॥९६॥
हृदन्तोऽष्टाक्षरो मन्त्रो हयग्रीवस्य चेरितः ।

ङेऽन्तं हयशिरः-हयशिरसे०, हृन्नमः ।

ऋष्याद्यङ्गविधिन्यासजपपूजा यथाविधि ॥९७॥
एकाक्षरोक्तमार्गेण छन्दोनुष्टुबुदाहृतम् ।
पद्माक्षमालालिखितेष्टदानि दधानमम्भोरुहसम्पुटस्थम् ।
कर्पूरभङ्गाधिकशुभ्रकान्तिमश्वाननं सौम्यमिह स्मरामि ॥९८॥

---

१. क. भृङ्गार० ।

दक्षिणाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

कविताश्रीप्रदो नित्यमस्मादन्यो न कुत्रचित् ।

तथा—

ध्रुवं नमःपदं ब्रूयाद्भगवत्यै वदेत्ततः ।
धरण्यै च समुच्चार्य धरणि स्याद्धराधरे ॥९९॥

एकोनविंशत्यर्णात्मा स्वाहान्तो मनुरीरितः ।
धराहृदयसंज्ञोऽयं भूपतित्वप्रदायकः ॥१००॥

ध्रुवः प्रणवः, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि । अत्र सन्धिस्तेन 'ॐ नमो भगवत्यै' इति ।

ऋषिर्वराह आख्यातो निचृच्छन्दश्च देवता ।
पृथिवी सर्वजननी दृष्टादृष्टफलप्रदा ॥१०१॥

त्रिभिर्वेदैस्त्रिभिर्भूतै[१]र्द्वाभ्यां द्वाभ्यां तथा भवेत् ।
मूलमन्त्रभवैर्वर्णैः षडङ्गानि सजातिभिः ॥१०२॥

इन्दीवरयुगं शालिमञ्जरीं दधतीं शुकम् ।
धरा पद्मासना ध्येया श्यामा तन्वी सुभूषिता ॥१०३॥

वामोर्ध्वादि तदधोऽन्तमायुधध्यानम् ।

पूजा तु वैष्णवे पीठे[२] तद्विधानमुदीर्य्यते ।
आदावङ्गानि सम्पूज्य दिग्दलेषु ततो यजेत् ॥१०४॥

भुवं वह्निं जलं वायुं तत्कलाः कोणपत्रगाः ।
इन्द्रादीन् पूजयेद्बाह्ये वज्रादीनि ततः परम् ॥१०५॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—वराहाय ऋषये नमः, मुखे—निचृच्छन्दसे०, हृदि—श्रीधरण्यै देवतायै०" इति विन्यस्य, प्राग्वदुक्त्वा "ॐ नमः हृत्०, भगवत्यै शिरः०, धरण्यै शिखा०, धरणिधरे कवचम्०, धराधरे[३] नेत्रं०, स्वाहाऽस्त्रम्" इति करषडङ्गन्यासं

१. क.० त्रिर्मूर्तै । २. क. पुस्तके नास्तीद पदम् । ३. क. धरे ।

विधाय, ध्यानादिपीठनवशक्तिपूजान्ते वैष्णवपीठमन्त्रस्थाने 'सौं वसुन्धरायोगपीठाय नम' इति पीठं सम्पूज्याऽऽवाहनाद्यङ्गार्चान्ते दिग्दलेषु — "भुवे नमः, वह्नये०, जला०, वायवे०, विदिग्दलेषु निवृत्त्यै०, विद्यायै०, प्रतिष्ठायै०,¹ शान्त्यै" इति सम्पूज्येन्द्राद्यार्चनं प्राग्वत्कुर्यादिति।

तथा— दशायुतं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।
हविषा घृतसिक्तेन तर्प्पयेदभिषेचयेत् ॥१०६॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चान्मन्त्री मन्त्रस्य सिद्धये।
विधिनाऽनेन संसिद्धे मनौ काम्यानि साधयेत् ॥१०७॥
रक्तोत्पलानि जुहुयात् स्याद्रक्तानि सहस्रकम्।
भुवमिष्टामवाप्नोति नीलोत्पलहुतं तथा ॥१०८॥
प्रियङ्गुपुष्पहोमेन मधुराक्तेन मन्त्रवित्।
वसुधान्यधराश्रीणां सत्यं भवति भाजनम् ॥१०९॥
मधुरार्द्रतरां हुत्वा नूतनां शालिमञ्जरीम्।
धरापतिर्भवेन्मन्त्री मण्डलेन न संशयः ॥११०॥
प्रगे भृगुदिने मन्त्री साध्यक्षेत्रान्मृदं हरेत्।
शुद्धतोये समालोड्य तां च तत्र पचेच्चरुम् ॥१११॥
अग्नौ दुग्धघृताभ्यक्तं जुहुयात्तं यथाविधि।
मासषट्कं भृगोर्वारेष्वेवं कृत्वा लभेद्धराम् ॥११२॥

यन्त्रसारे—

मध्ये तारं वसुपुरयुगाश्रिष्वथो कोलबीजं,
　　पत्रेष्वष्टस्वपि गुणमितान्मन्त्रवर्णान् क्रमेण।
आवेष्ट्यार्णैः किरिमनुभवैर्मातृकार्णैश्च यन्त्रं,
　　भूगेहस्थं वितरति धरा स्वर्णधान्यादिवृद्धिम् ॥११३॥

अस्यार्थः—अष्टकोणगर्भमष्टदलपद्मं कृत्वाऽष्टकोणमध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्याऽष्टकोणेषु वराहबीजं वक्ष्यमाणं विलिख्याऽष्टदलेषु धरामन्त्रस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि विलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वाऽऽभ्यन्तरवीथ्यां वक्ष्यमाणवराहमन्त्रेणाऽऽवेष्ट्याऽऽवाह्य, वीथ्यां मातृकार्णैः संवेष्ट्य बहिश्चतुरश्रं कुर्यादितदुक्तफलदं भवति।

---

१. अयमंशो नास्ति क. पुस्तके।

यन्त्रसारे धरामन्त्रे विशेष उक्तो यथा—

हृदयं भगवत्यै च धरण्यै च धरण्यथ ।

धरेद्वयं वन्हिवधूर्मन्त्रः प्रोक्तोऽखिलार्थदः ॥११४॥
तारामायाधराबीजैः पुटितस्तत्ववर्णकः ।

माया ह्रीं, धरा ग्लौं, प्रणवानन्तरं बीजद्वयं, पश्चादुक्तमन्त्रः, पुनर्वैपरीत्ये बीजद्वयमन्ते प्रणवः, तत्ववर्णश्चतुर्विंशतिवर्णः ।

सारसङ्ग्रहे—

अथोच्यतेऽर्चाविधानं वराहस्य मनोः क्रमात् ।
साङ्गहोमाभिषेके[1] च सप्रयोगं सजापकम् ॥११५॥

भगवत्पदमाभाष्य ङेऽन्तं स्याच्च वरापदम् ।
ङेऽन्तं हरूपमाभाष्य व्याहृतीश्च ततो वदेत् ॥११६॥

ङेऽन्तं पतिं भूपतित्वं मे देहि दपदं वदेत् ।
दापय स्वा-पदं प्रोक्त्वा हान्तस्तारहृदादिकः ॥११७॥

त्रयस्त्रिंशद्वर्णसंख्यो वराहमनुरीरितः ।

भगवत्पदं ङेऽन्तं भगवते, वरा-स्वरूपं, ङेन्तं हरूपं हरूपाय, व्याहृतीः भूर्भुवःस्वः, ङेऽन्तं पतिः पतये, भूपतित्वं मे देहि द-स्वरूपम्, दापय स्वा-रूपं० हान्तः, तारहृदादिकः—तारः प्रणवः, हृन्नमः, अत्र सन्धिः । तथा—

ऋष्यादयो भार्गवाऽनुष्टुब्बराहाः समीरिताः ॥११८॥

ङेऽन्तो हृदेकशृङ्गः स्याद् व्योमोल्कस्तादृशः शिरः ।
शिखा तेजोधिपतये विश्वरूपाय वर्म च ॥११९॥

महादंष्ट्राय चाऽस्त्रं स्यात्षडङ्गविधिरीरितः ।

प्रपञ्चसारे तु—

सप्तभिश्च पुनः षड्भिः सप्तभिश्चाऽथ पञ्चभिः ।
अष्टभिर्मूलमन्त्रार्णैर्विदध्यादङ्गकल्पनम् ॥१२०॥

---

१. ख. ०होमाभिषेकं ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

अथवा मन्त्रवर्णैस्तु सप्तषण्मुनिसायकैः ।
वसुभिश्चाऽपि पञ्चाङ्गं विदध्यान्मनुवित्तमः ॥१२१॥

मुनयः सप्त, सायकाः पञ्च, वसवोऽष्टौ ।

जान्वोः पदावधि सुवर्णनिभं च नाभेराजानुचन्द्रधवलं च गलाद्धृदन्तम् ।
वन्हिप्रभं शशिनिभं शिरसो गलान्तं मौलिस्थलाद्विपदमन्दनिभं च कान्तम् ॥१२२॥

सम्बिभ्रतं करतलैररिशङ्खखड्गाम्खेटङ्गदान्तदनु शक्तिवराभयानि ।
सर्वंसहाधरणिशोभिकदंष्ट्रमाद्यं देवं वराहमनिशं प्रभजे स्वचित्ते ॥१२३॥

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे, तदाद्यधस्थयोरितरे । तथा—

धराधरशरीरं वा नीलजीमूतसन्निभम् ।
उद्यद्दोःपरिघं ध्यायेत्सितदंष्ट्राधृताचलम् ॥१२४॥

हेमाभं पार्थिवे ध्यायेन्मण्डले हिमसन्निभम् ।
वारुणे मण्डले वन्हेः कृशानुभमथाऽनिले ॥१२५॥

कृष्णं वियद्युप्रभं स्याद्देवं ध्यायेच्च सूकरम् ।
दंष्ट्रायां वसुधां ध्यायेत्सशैलवनकाननाम् ॥१२६॥

वागीशां हुङ्कृतौ ध्यायेत्पवनं श्वसितं तथा ।
बाह्वोर्वामान्ययोश्चन्द्रसूर्य्यावुदरगान्वसून् ॥१२७॥

ब्रह्माणं[1] पादयोर्ध्यायेद् हृदये च हरिं तथा ।
शङ्करं च मुखे ध्यायेत् ....॥१२८॥ इति ।

तथा— पद्ममष्टदलोपेतमुल्लसत्कर्णिकं शुभम् ।
मण्डलं विरचय्यैव सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१२९॥

तत्र सम्पूजयेत्कोलं वक्ष्यमाणविधानतः ।
मूलेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य कोलमावाहयेत्ततः ॥१३०॥

तत्र गन्धादिभिः सम्यग्देवं सम्पूज्य सूकरम् ।
कोलदंष्ट्राङ्गगतान्वसुधादीन्प्रपूजयेत् ॥१३१॥

---

१. क. ब्राह्मणं ।

विदिक्षूर्द्ध्वमधश्चाऽपि पूजयेदस्त्रमन्त्रकम् ।
चक्रादीनि ततो बाह्ये ....।।१३२।।

गदां शक्तिं वराभीती लोकपालांस्ततो यजेत् ।
तदस्त्राणि च तद्बाह्ये कोलपूजा समीरिता ।।१३३।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठान्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि भार्गवाय ऋषये नमः, मुखे— अनुष्टुप् छन्दसे०, हृदि—श्री वराहाय देवतायै०'' इति विन्यस्य, ''एकशृङ्गाय हृदयाय नमः, व्योमोल्काय शिरसे स्वाहा, तेजोधिपतये शिखायै वषट, विश्वरूपाय कवचाय हुँ, महादंष्ट्रायाऽस्त्राय फट्'' इति पञ्चाङ्गमन्त्रान्मन्त्राभिमृष्टयोः पाण्यो पूर्ववद्विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते देवस्य दष्ट्रायां—''वसुधायै नमः, हुङ्कृतौ—वागीशायै०, श्वसिते— पवनाय०, दक्षबाहौ—सूर्याय०, वामबाहौ—चन्द्राय०,उदरे— वसुभ्यो०, पादयोः—ब्रह्मणे०, हृदये—हरये०, मुखे—शङ्कराय नमः'' इति सम्पूज्याऽग्न्यादिकोणेषु इन्द्रेशानयो निऋतिवरुणयोश्च मध्ये चाऽस्त्रं सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन ''चक्राय०, शङ्खाय०, खड्गाय०, खेटाय०, गदायै०, शक्तये०, वराय०, अभयाय०'' इति सम्पूज्येन्द्राद्यर्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति । तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
तद्दशांशं प्रजुहुयात्पद्मैः स्वादुपरिप्लुतैः ।।१३४।।

तर्प्पणादि ततः कुर्याद् ब्राह्मणाराधनावधि ।
विल्ववृक्षं स्पृशन्नित्यं जपेन्मासं सहस्रकम् ।।१३५।।

दशांशं जुहुयादग्नौ पुरश्चरणवान् भवेत् ।
अर्थो ध्यानाज्जपाद्भूमिर्जपपूजाहुतैः क्रमात् ।।१३६।।

धनधान्यं धरालक्ष्म्यो भवन्त्येव न संशयः ।
भूमण्डले सदा ध्यातः प्रयच्छति भुवं शुभाम् ।।१३७।।

वारुणे तूच्चकैः शान्तिमाग्नेये च प्रयच्छति ।
वश्यं ज्वरादिकं सम्यगुच्चाटं वायुमण्डले ।।१३८।।

द्युमण्डले शत्रुभूतग्रहक्ष्वेडादिरक्षणम् ।
सिंहस्थशुक्लपक्षे हि रवौ श्वेतशिलां शुभाम् ।।१३९।।

पञ्चगव्यविनिक्षिप्तां सञ्जप्तामयुतेन च ।
उदङ्मुखो जपेन्मन्त्रं क्षेत्रे तां निखनेत्ततः ॥१४०॥

शत्रूणां सन्निरोधो हि क्षेत्रस्याऽस्य विनश्यति ।
अर्कदिनेऽङ्गारवारे जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥१४१॥

वैरिरुद्धादपि क्षेत्रान्मृदमानीय यत्नतः ।
तां च त्रिधा विभज्याऽथ चुह्ल्यामेकं विलिप्य च ॥१४२॥

पात्रपात्रे[1] परांशं च पयस्यन्यं सतोयके ।
संस्कृते हव्यवाहे च तण्डुलैश्च पचेच्चरुम् ॥१४३॥

तत्र देवं यथावच्च धूपदीपादिभिर्यजेत् ।
साज्येन तेन हविषा हुनेदष्टाधिकं शतम् ॥१४४॥

एवं भौमाष्टवारेषु कुर्वन्नियतधीः क्रमात् ।
ततः शत्रुगृहीतं तत्क्षेत्रं तत्प्राप्यतेऽचिरात् ॥१४५॥

अह्नो मुखे भौमवारे मृदं सङ्गृह्य पूर्ववत् ।
पूर्ववच्च चरुं कृत्वा जुहुयात्प्रोक्तवर्त्मना ॥१४६॥

बलिं च दद्यात्क्षेत्रस्य[2] विरोधो नश्यति ध्रुवम् ।
बलिं देवस्य हुतशेषेण देवस्य नैवेद्यं दद्यादित्यर्थः ।
सप्तभिर्दिवसैश्चाऽथ डाकिनी विकृतिं हरेत् ॥१४७॥

तामेव मृत्तिकां दुग्धे विलोड्याऽऽज्येन संहुनेत् ।
अष्टाधिकं सहस्रं च मण्डलद्वितयात्ततः ॥१४८॥

निःसपत्ना समृद्धाऽस्य महार्घा च मही भवेत् ।
आरग्वधसमिद्भिश्च जुहुयादयुतं सुधीः ॥१४९॥

तस्य सर्वसमृद्धिः स्याल्लभेत्क्षेत्रादिकं बहु ।
अष्टाधिकं शतं मन्त्री शालिभिर्दिनशो हुनेत् ॥१५०॥

स तु संवत्सरात्सम्यग्व्रीहिपूर्णगृहो भवेत् ।
अनेन जुहुयादाज्यं सहस्रं प्रत्यहं बुधः ॥१५१॥

---

१. ख. पाकपात्रे । २. ख. क्षेत्रंत्रस्य

तेन स्वर्णसमृद्धिः स्यादञ्जलिन्याः प्रसूनकैः ।
सहस्रं स्वादुसम्पृक्तैर्वाससां वृद्धिरिष्यते ॥१५२॥

लाजाहोमाच्च कन्याप्तिरुत्पलैः श्रीर्भवत्यलम् ।
विवादक्षेत्रमासाद्य तस्य जन्मदिने शुभे ॥१५३॥

तत्राऽऽसीनो जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
एवं कृतवतस्तस्य भूमिवादो विनश्यति ॥१५४॥

तस्य वादिनः, जन्मदिने जन्मनक्षत्रदिने ।

आत्मानं मेरुसदृशं वाराहं चिन्तयेद्बुधः ।
अङ्गारवारे यः क्षेत्रं जपन्सप्तप्रदक्षिणम् ॥१५५॥

कृत्वा मृदं तु गृह्णीयात्तस्य क्षेत्रं भविष्यति ।
नित्यं भूमिं स्पृशन्मन्त्री जपेदष्टसहस्रकम् ॥१५६॥

विन्दते महतीं भूमिं शमयेत्सर्वकण्टकम् ।
भृगुवारे तथा प्रोक्ते भौमवारे विशेषतः ॥१५७॥

जपेत्प्रतिष्ठाकामस्तु महतीं भूमिमाप्नुयात् ।
नित्यमष्टसहस्रं तु जपेद्धरिमर्चयेत् ॥१५८॥

महतीं श्रियमाप्नोति महाराजो भवत्यलम् ।
लक्षहोमो जपान्ते स्याद् गव्यैश्चैव सपायसैः ॥१५९॥

सप्तद्वीपानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ।
दधिमध्वाज्यसिक्ताश्च चतुरङ्गुलसम्मिताः ॥१६०॥

[1]गुडूचीरष्टसाहस्रं हुनेद् व्याधिर्विनश्यति ।
आम्रपर्णैर्हुनेन्नित्यं ज्वरशान्तिर्भविष्यति ॥१६१॥

गृहीत्वा हस्तयोर्नीरं जपेदक्षरसंख्यया ।
मुखे सुप्तः क्षिपेन्नित्यं मुखश्रीस्तस्य वर्द्धते ॥१६२॥

अक्षरसंख्यया—मूलमन्त्राक्षरसंख्यया ।

---

१. क. गुडुचा० ।

ससाध्यं षट्कोणे प्रणवगतबीजं ह्यरिमनुं,
षडश्रिष्वङ्गानि प्रविलिखतु सन्धिष्वथ सुधीः ।
द्विशो ह्यष्टार्णाणं निगमदलमूले दलगतान्,
मनोरर्णानष्टौ समधिकमथाऽन्त्ये[1] बहिरथो ॥१६३॥

वसुमितदले किञ्जल्केषु स्वरान् द्विश आलिखेद्-
दलमनु मनोर्वर्णान् वेदैर्मितानधिकोऽन्तिमे ।
विकृतिविनरे किञ्जल्केऽथो लिपिं द्विश आलिखे-
द्दलमनु मनोर्वर्णानन्तेऽन्तिमं बहिरावृतम् ॥१६४॥

वेदादिक्षितिकोलबीजमनुभिः साध्याख्यया सम्पुटै-
स्तद्बाह्ये मनुवर्णदर्भितलसत्साध्याख्यया चाऽऽवृतम् ।
भूबिम्बावृतमश्रिगर्भविलसत्साध्याख्यभूबीजकं,
शूलेषु क्षितिकोलबीजलसितं यन्त्रं वराहस्य तत् ॥ १६५॥

लाक्षाकर्पूरकृष्णागुरुमलयजसद्रोचनाकुङ्कुमैस्त-
त्सम्पिष्टैर्गोमयाद्भिः शुभतरदिवसे संलिखेच्चारुहैम्या ।
लेखन्या स्वर्णपट्टे रजतजफलके राज्यमाग्रामलाभ-
स्ताम्रे स्वर्णे निजेष्टं पिचुतरुजदले भूफलं क्षौमपट्टे ॥१६६॥

भूर्ये संसारयात्रा भवति च नितरां साधु जप्तं [च] यन्त्रं,
सम्पाताज्याभिषिक्तं निजहितफलदं राशिवर्येष्टदं तत् ।
स्व ध्यात्वा कोलरूपं तदपि च निखनेत् साध्यदेशे वराहं,
त्वावाह्याऽङ्गानि दिक्षु प्रयजतु स भवेत् क्षुद्ररोगैर्विमुक्तः ॥१६७॥

अस्यायमर्थः—आदौ षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये प्रणवं विलिख्य, तस्योदरे 'हूं' इति वराहबीजं, तत्र साध्यनाम चाऽलिख्य, तस्य षट्सु कोणेषु स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन वक्ष्यमाणसुदर्शनषडक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरमालिख्य, षट्कोणसन्धिषु सुदर्शनस्य षडङ्गमन्त्रानालिख्य, तद्बहिश्चतुर्दलकमल कृत्वा, तत्केसरेषु द्विद्विशो नारायणाष्टाक्षरमन्त्रस्य वर्णानालिख्य, वराहानुष्टुभमन्त्रार्णांश्चतुश्चतुःपत्रेषु प्रति-पत्रमष्टावष्टावालिख्याऽन्तिमदलेऽन्त्यवर्णं विलिख्य, तद्बहिरष्टदलकमलं कृत्वा, तत्केस-रस्थाने स्वरान् द्वन्द्वशो विलिख्याऽष्टदलेषु वराहमन्त्रस्य वर्णांश्चतुरश्चतुरो विलिख्यऽन्तिमदलेऽन्त्यवर्णं विलिख्य, तद्बहिः षोडषदलपद्मं विलिख्य, तत्केसरेषु

---

१. ख. मथान्ते ।

द्विशः कादिसान्तान्वर्णानालिख्य, दलमध्येषु मूलमन्त्रार्णान् द्वन्द्वशः संलिख्या-न्त्यमार्णमन्त्यदले विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तचतुष्टयं कृत्वा, वीथीत्रयं विरच्य, सर्वा-भ्यन्तरवीथ्यां साध्याक्षरेण सम्पुटितप्रणवेन संवेष्ट्य, द्वितीयवीथ्यां 'ग्लौमि'ति धराबीजेन, तृतीयवीथ्यां 'हूमि'ति वराहबीजेन साध्यसम्पुटितेन संवेष्ट्य, तद्बहिः पुनर्वृत्तं कृत्वा, तद्वीथ्यां मूलमन्त्रार्णविदर्भितसाध्याख्ययाऽऽवेष्ट्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु 'ग्लौमि'ति भूबीजं साध्याख्यागर्भितं विलिख्य, चतुरश्रस्य रेखाचतुष्काद्यष्टकेषु त्रिशूलाष्टकं कृत्वा, तेषु शूलेषु वराहबीजं वसुधाबीजं च लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलद भवति ।

श्रीयन्त्रसारे केरलीये—

कर्णिकायां कोलगर्भं तारं साध्यसमन्वितम् ।
चक्रमन्त्रं कोणषट्के तदङ्गानि च सन्धिषु ॥१६८॥

अष्टपत्रे केसरोद्यदष्टार्णं ह्यवर्णके ।
चतुरश्चतुरो वर्णान्कोलमन्त्रस्य चाऽष्टमे ॥१६९॥

पञ्च चाऽलिख्य बाह्ये च पत्रे षोडशसंज्ञके ।
क्षेत्रस्येत्यादिसूक्तस्याप्यर्द्धमर्धमृचां लिखेत् ॥१७०॥

धरामन्त्रेण संवेष्ट्य बाह्ये मातृकयाऽपि च ।
भूपुराश्रिषु भूबीजं दिक्षु हूं बीजमालिखेत् ॥१७१॥

क्षेत्रस्येत्यादिसूक्तस्य मन्त्रमेतच्छुभे दिने ।
ताम्रपट्टे समालिख्य स्वर्णसूच्या यथाविधि ॥१७२॥

स्थापितं भवने यद्वा क्षेत्रे वा नगरेऽपि वा ।
देशे वा तत्र वर्द्धन्ते दिनशः सर्वसम्पदः ॥१७३॥

गजाश्वधेनुमहिषीवृषमेषखरादिभिः ।
धनधान्यधराध्यक्षवासोरत्नविभूषणैः ॥१७४॥

आह्लादयन्ती विभवैरन्यैश्च स्यात्सदागमः ।

अस्यार्थः — अष्टदलकर्णिकायां षट्कोणमध्ये प्रणवोदरे ससाध्यं वराहबीजं विलिख्य, षट्कोणेषु सुदर्शनषडर्णं, तत्सन्धिषु सुदर्शनषडङ्गमन्त्रानष्ट-दलकेसरेषु नारायणाष्टाक्षरस्य वक्ष्यमाणवाराहाष्टाक्षरस्य चैकैकमक्षर, दलेषु वराहमन्त्रस्य चत्वारि चत्वार्यक्षराणि, सर्वान्त्यदले पञ्चाक्षराणि, तद्बहिस्थ-

षोडशदलेषु 'क्षेत्रस्य पतिने'त्यादिसूक्तस्य ऋचामर्द्धमर्द्धं: बहिर्वृत्तत्रयान्तरालयोरभ्यन्तरान्तराले वेष्टनत्वेन धरामन्त्रं, बाह्यान्तराले मातृकां, चतुरश्रकोणेषु भूबीजं, दिक्षु वराहबीजं च लिखेदेतदुक्तफलदम् ।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हि तेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळाती दृशे ॥१७५॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥१७६॥

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवन्त्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥१७७॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृशतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रा मुदिंगय ॥१७८॥

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुपसिञ्चन्तम् ॥१७९॥

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥१८०॥

इन्द्रः सीतां निगृह्णतु तां पूषानुयच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुतरों समाम् ॥१८१॥

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥१८२॥

यदद्यकच्च वृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥१८३॥

क्षेत्रस्य 'पतिने'[1] सूक्तस्य वामदेव ऋषिः, पुर उष्णिगनुष्टुप्तृष्टुप्छन्दांसि, क्षेत्रस्य पतिर्देवता ।

वैहायसपञ्चरात्रे—

तिथिस्वरयुतं व्योम वामकर्णविभूषितम् ।
वराहबीजमुदितं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥१८४॥

---

१. ख. पतिनेति ।

तिथिस्वरो बिन्दुः, व्योम हकारः, वामकर्ण ऊकारः ।

सारसङ्ग्रहे—

हयग्रीवो (व) ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुब् देवता ।
वराहो दीर्घयुक्तेन बीजेनैवाऽङ्गकल्पनम् ॥१८५॥
ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ।

महासम्मोहनतन्त्रे—

नाभिर्वामश्रवाः सर्गी तस्य बीजमिहोच्यते ।

नाभिर्भकारः, वामश्रवाः ऊ, सर्गी विसर्गस्तेन भूः । अस्याऽपि प्राग्वदेव ऋष्यादिकरषडङ्गध्यानपूजादिकं ज्ञेयम् । तथा—

अष्टाक्षरे महामन्त्रे वेदादिः प्रथमाक्षरः ॥१८६॥

द्वितीयं व्याहृतिस्तस्माद्वराहाय हृदन्ततः ।

वेदादिः प्रणवः, व्याहृतिः भूः, हृन्नमः ।

ऋषिर्ब्रह्मा च जगतीछन्दो वाराह एव च ॥१८७॥
देवताङ्गानि च पदैः समस्तेन च कल्पयेत् ।

कृष्णाङ्गं त्वतिनीलवक्त्रनलिनं पद्मस्थितं स्वाङ्कग-[1]
क्षोणीशक्तिमुदारबाहुभिरथो शङ्खं गदामम्बुजम् ।
चक्रं बिभ्रतमुग्रकान्तिमनिशं देवं वराहं भजे,
भूलक्ष्मीरतिकान्तिभिः परिवृतं चर्मासिसंदीप्तिभिः ॥१८८॥

वामोर्द्ध्वादि दक्षिणोर्द्ध्वान्तमायुधध्यानम् ।

जपपूजादिकं सर्वमस्य वाराहवद्भवेत् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र मूलेन प्राणायामत्रयानन्तरं "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—जगतीछन्दसे०, हृदि—श्रीवाराहाय देवतायै०" इति विन्यस्य, 'ॐ हृत्, भूः शिरः, वाराहाय शिखा, नमः कवचं, ॐ भूः वराहाय नमः अस्त्रं" इति पञ्चाङ्गं प्राग्वद्विन्यस्य, ध्यानादि सर्वं प्रागुक्तवराहानुष्टुभविधिना कुर्यादिति ।

---

१. स्वीकरा ।

एनं मनुं यः प्रजपेत् स भवेच्च धरापतिः ।
अन्ते विष्णोः परं नित्यं पदमाप्नोत्यसंशयः ॥१८९॥

शारदातिलके—

अथाऽभिधास्ये विधिवन्नारसिंहं महामनुम् ।
उग्रं वीरं वदेत्पूर्वं महाविष्णुमनन्तरम् ॥१९०॥

ज्वलन्तं पदमाभाष्य सर्वतोमुखमीरयेत् ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं वदेत्ततः ॥१९१॥

नमाम्यहमयं प्रोक्तो मन्त्रराजः सुरद्रुमः ।

मन्त्रे सर्वाणि पदानि द्वितीयान्तानि । श्लोकरूपो द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रः ।

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवता नरसिंहोऽस्य सुरासुरनमस्कृतः ॥१९२॥

अस्य हं बीजं, ईं शक्तिः । तथा च—

तापनीये—

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्नानुष्टुभस्य मन्त्रस्य नारसिंहस्य शक्तिबीजं मनोर्ब्रूहि भगवन् । स होवाच प्रजापतिर्माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं सृजते, सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदं संहरति, तस्मान्मायामेतां शक्तिं विद्यात् । य एतां मायां शक्तिं वेद स पाप्मानं तरति, स मृत्युं जयति, सोऽमृतत्वं च गच्छति, महतीं श्रियमश्नुते, मीमांसति ब्रह्मवादिनः । ह्रस्वा दीर्घा वा प्लुता वेति । यदि ह्रस्वा भवति सर्वं पाप्मानं तरति, अमृतत्वं गच्छति, यदि दीर्घा भवति महतीं श्रियमाप्नोति अमृतत्वं च गच्छति, सर्वेषां एतद्भूतानामाकाशसर्वनामानि भूतानि[1] आकाशादेव जायन्ते, आकाशादेव जातानि जीवन्ति, आकाशं [2]प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तस्मादाकाशं बीजं विद्यादिति ।

सारसङ्ग्रहे—

वेदैश्चतुर्भिर्वसुभिः षड्भिः षड्भिश्च वेदकैः ।
षडङ्गमुक्तं मन्त्रार्णैः केचित्षड्दीर्घमायया ॥१९३॥

१. भूमाबि । २. प्रयान्त्य॰ ।

सहितं रङ्गमिच्छन्ति परे पञ्चाङ्गमूचिरे ।
पादैः सर्वेण मन्त्रेण वर्णन्यासमथाऽऽचरेत् ॥१९४॥

पञ्चाङ्गन्तु श्रुतिसम्मतम् । तथा चाऽऽथर्वणिके नृसिंहतापनीये—तस्य हि पञ्चाङ्गानि भवन्ति, चत्वारः पादाश्चत्वार्यङ्गानि भवन्ति, सप्रणवं सर्वमयं भवतीति । तथा—

शीर्षेऽलिके नेत्रयुग्मे आस्यदोःपदसन्धिषु ।
अग्रयुक्तेषु कण्ठे च हृदि नाभौ च पार्श्वयोः ॥१९५॥

पृष्ठे ककुदि विन्यस्येत् क्रमान्मन्त्रार्णकान्सुधीः ।
नृसिंहसान्निध्यकरो न्यासो दशविधस्त्विह ॥१९६॥

समुच्यते तत्र पूर्वमङ्गुलीन्यास उच्यते ।
दशाङ्गुलीनां प्रत्येकं पर्वणां त्रितयेषु च ॥१९७॥

त्रिंशद्वर्णान्क्रमान्न्यस्य शिष्टौ द्वौ तलयोर्न्यसेत् ।
द्वितीयमक्षरन्यासं देहे कुर्याद्विचक्षणः ॥१९८॥

ब्रह्मरन्ध्रे च शिरसि भाले भ्रूमध्यके ततः ।
नयने नयनाधश्च कपोले कर्णमस्तके ॥१९९॥

दन्तपङ्क्त्याश्च चिबुके उत्तरोष्ठेऽधरोष्ठे (ष्ठके) ।
कण्ठे नाभौ भुजे दक्षे वामे च हृदये तनौ ॥२००॥

अन्यं दक्षे करतले वामे वाऽपि कटौ ततः ।
मेढ्रे चोरौ तथा जानौ जङ्घागुल्फेषु मन्त्रवित् ॥२०१॥

पादाङ्गुलीषु च ततो बाह्वोरङ्गुलिषु क्रमात् ।
पर्वसन्धिषु सद्रोमकूपेषु क्रमतो न्यसेद् ॥२०२॥

रक्तास्थिमज्जासु तथा न्यसेद्वर्णान्क्रमान्सुधीः ।
तृतीयो वर्णविन्यासः प्रोच्यते सर्वकामदः ॥२०३॥

पादे गुल्फे च जङ्घायां जानौ चोरौ तथा कटौ ।
नाभौ हृदि न्यसेद्बाह्वोः कण्ठे च चिबुके ततः ॥२०४॥

दन्ते चोष्ठे कपोले च कर्णास्ये च तथा नसि ।
नेत्रे च मूर्द्धनि तथा मन्त्री वर्णान्समाहितः ॥२०५॥

चतुर्थोऽयं पदन्यास उच्यते भुक्तिमुक्तिदः ।
शिखायां मूर्द्धिन नासायां नेत्रे श्रोत्रे तथा मुखे ॥२०६॥

हृदि नाभौ कटौ जानौ पादयोः क्रमतो न्यसेत् ।
चतुरक्षरसंज्ञोऽयं न्यासः पञ्चम उच्यते ॥२०७॥

नासाग्रे नयने श्रोत्रे नाभौ हृदि च मूर्द्धनि ।
[1]बाह्वोश्चरणयोर्न्यसेच्चतुरर्णं क्रमाद् बुधः ॥२०८॥

षष्ठः पादैश्च विन्यासो मन्त्रविद्भिः प्रकीर्त्तितः ।
मूर्द्धिन वक्षसि नाभौ च सर्वाङ्गे क्रमतो न्यसेत् ॥२०९॥

सप्तमः स्याद् गलन्यासो मूर्द्धादिहृदयावधि ।
पादादिहृदयान्तं च न्यसेदर्द्धद्वयं मनोः ॥२१०॥

उग्रादिरष्टमो न्यासो विद्वद्भिर्गदितः शुभः ।
उग्राद्युग्रादि च पुनः पादानीह नमाम्यहम् ॥२११॥

इत्यन्तकानि नवसु स्थानेषु क्रमतो न्यसेत् ।
मुखे शिरसि नासायां चक्षुषोः श्रोत्रयोस्तथा ॥२१२॥

केसरस्थानके तद्वद्धृदि नाभौ ततो न्यसेत् ।
कट्यादिपादपर्यन्तं क्रमान्न्यसेद्यथाविधि ॥२१३॥

वीराख्यो नवमो न्यासः प्रोच्यते सर्वकामदः ।
वीरादिकानि पूर्वोक्तपदानि नव विन्यसेत् ॥२१४॥

नमाम्यहं पदान्तानि पूर्वोक्तस्थान एव च ।
नृसिंहाख्यश्च दशमः प्रोच्यते न्यास उत्तमः ॥२१५॥

नृसिंहपदपूर्वाणि पदान्युग्रादिकानि च ।
स्थानेष्वेतेषु विन्यसेन्नवसु क्रमतः सुधीः ॥२१६॥

मूलाधारे षडङ्गानि विन्यसेन्मन्त्रवित्तमः ।
मूलाधारात्तथाऽऽनाभि न्यसेद्वर्णत्रयं बुधः ॥२१७॥

---

१. ०न्यस्ये० ।

नाभेर्हृदयपर्यन्तं न्यसेद्वर्णचतुष्टयम् ।
हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तं न्यसेद्वर्णत्रयं बुधः ॥२१८॥

भ्रूमध्यान्मूर्द्धपर्यन्तं न्यसेद्वर्णचतुष्टयम् ।
मूर्द्ध्नो भ्रूमध्यपर्यन्तं पुनर्वर्णत्रयं न्यसेत् ॥२१९॥

भ्रूमध्याद् हृदयान्तं च न्यसेद्वर्णचतुष्टयम् ।
हृदयान्नाभिपर्यन्तं न्यसेद्वर्णत्रयं बुधः ॥२२०॥

नाभेश्च मूलाधारान्तं न्यसेद्वर्णचतुष्टयम् ।
वर्णद्वयं पादयुगे शिष्टं वर्णद्वयं न्यसेत् ॥२२१॥

मूर्द्धादिपादपर्यन्तं चिन्तयेत्तं हरिं विभुम् ।

नृसिंहं भजे जानुविन्यस्तबाहुं त्रिनेत्रं भुजप्रोल्लसच्चक्रशङ्खम् ।
कृशानूपमं ज्योतिषा ग्रस्तदैत्यं शिरःशोभिदंष्ट्रासुदीप्तं द्विजिह्वम् ॥२२२॥

दक्षवामयोश्चक्रशङ्खौ ।

ततः पूर्वोदिते पीठे वैष्णवे प्रोक्तवर्त्मना ।
मूलेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य देवमावाह्य मन्त्रवित् ॥२२३॥

तस्यां मूर्त्तौ विधानेन नृसिंहं पूजयेत्ततः ।
वामाङ्के नृहरेः पूज्या लक्ष्मीर्भूषणभूषिता ॥२२४॥

वामे पद्मधरा दक्षबाहुना नृहरिं विभुम् ।
आश्लिषन्ती शान्तिमूर्त्तिस्ततोऽङ्गानि प्रपूजयेत् ॥२२५॥

पूजयेद्दिक्षु पक्षीन्द्रं तथा [1]सर्पमनन्तकम् ।
भवं कमलपूर्वञ्च विदिक्षु च यजेच्छ्रियम् ॥२२६॥

ह्रियं तुष्टिं च पुष्टिं च द्वितीयावृत्तिरीरिता ।
ततोऽष्टभिर्नृसिंहैश्च तृतीयावृत्तिरिष्यते ॥२२७॥

शङ्खिनं चक्रिणं स्वर्णवर्णश्यामलवाससम् ।
नृसिंहं स्तम्भनायेति दले प्राचि प्रपूजयेत् ॥२२८॥

---

१. सर्वम० ।

घृताम्बुजगदाशङ्खचक्रं वश्यक्रियाक्षमम् ।
सिन्दूरारुणमाग्नेये पूजयेद्दक्षिणे ततः ॥२२९॥

अन्त्रमालां शङ्खचक्रे गदां खड्गं च बिभ्रतम् ।
भिन्नदैत्यहृदं कृष्णं त्रिनेत्रं मारणाक्षमम् ॥२३०॥

विद्वेषोच्चाटनकरं नीलोत्पलसमप्रभम् ।
शङ्खचक्रगदालोहदण्डं निर्ऋतिजे दले ॥२३१॥

प्रतीच्यां शङ्खचक्रासिपाशान्वितकराम्बुजम् ।
शक्तियुक्तं जपापुष्पनिभमाकर्षणाक्षमम् ॥२३२॥

वायवीये तु शबलं शङ्खचक्रगदाभये ।
बिभ्राणं पुष्टिदं नेत्रत्रितयालङ्कृताननम् ॥२३३॥

उदग्दले नृसिंहं तं पाञ्चजन्यं सुदर्शनम् ।
गदानिधी च बिभ्राणं लक्ष्म्या युक्तं निधिप्रदम् ॥२३४॥

विद्यामूर्तिमुदक्पूर्वे क्षीराभं पीतवाससम् ।
पाशाङ्कुशधरोद्बाहुं शङ्खचक्रधरं प्रभुम् ॥२३५॥

हृत्सरोरुहमध्यस्थं चन्द्रपुञ्जसुनिर्मलम् ।
लक्ष्म्या युक्तं नारसिंहं पूजयेत्साधकोत्तमः ॥२३६॥

चक्रं खड्गं महापद्मं मुसलं देवदक्षिणे ।
शङ्खं खेटं गदां शार्ङ्गं पूजयेद्देववामतः ॥२३७॥

एभिश्चतुर्थ्यावृत्तिः स्याल्लक्ष्म्यादिभिरनन्तरम् ।
लक्ष्मीं दक्षिणतस्तुष्टिं वामे तत्रैव कौस्तुभम् ॥२३८॥

श्रीवत्सं दक्षिणे मध्ये वनमालां च पूजयेत् ।
पीताम्बरं ब्रह्मसूत्रं नाभिपद्मं किरीटकम् ॥२३९॥

भूषणानि च सर्वाणि पुरोभागे प्रपूजयेत् ।
षष्ठी श्रद्धादिभिः प्रोक्ता श्रद्धा मेधा च कामिका ॥२४०॥

भीमा मा चैव सभया वकाद्री दीप्तिरष्टमी ।
लोकेशैः सप्तमी प्रोक्ता वज्राद्यैरष्टमी मता ॥२४१॥

एवं सम्पूज्य विधिवत्साधकोऽभीष्टमाप्नुयात् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीनृसिंहाय दैवतायै०, गुह्ये—हं बीजाय०, पादयोः—ईं शक्तये नम" इति विन्यस्य, प्रागवद्विनियोगमुक्त्वा "उग्रं वीरं हृदयाय नमः, महाविष्णुं शिरसे स्वाहा, ज्वलन्तं सर्वतोमुखं शिखायै वषट्, नृसिंहं भीषणं कवचाय हुं, भद्रं मृत्युं मृत्युं नेत्राय वौषट्, नमाम्यहं अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, "शिरसि—उं नमः, ललाटे—ग्रं०, दक्षनेत्रे वीं०, वामे—रं०, मुखे—मं०, दक्षदोर्मूले—हां०, तन्मध्ये—विं०, मणिबन्धे—ष्णुं०, अङ्गुलिमूले—ज्वं० अग्रे—लं०, वामदोर्मूले—तं०, मध्ये—सं०, मणिबन्धे—वँ०, अङ्गुलिमूले—तो, अग्रे—मुं०, दक्षोरुमूले—खं०, जानुनि—नृं०, गुल्फे—सिं०, अङ्गुलिमूले—हं, अग्रे—भीं०, वामोरुमूले—षं०, जानुनि णं०, गुल्फे—भं०, अङ्गुलिमूले—द्रं०, अग्रे—मृं०, कण्ठे—त्युं०, हृदि—मृं०, नाभौ—त्युं०, दक्षपार्श्वे—नं०, वामे—मां, पृष्ठे—म्यं०, ककुदि—हं०, दक्षाङ्गुष्ठमूलादिपर्वत्रये [उं, ग्र, वीं, तर्ज्जनी-पर्वत्रये—रं०, मं०, हां०, मध्यमापर्वत्रये—विं०, ष्णुं० ज्वं०, अनामिका-पर्वत्रये—][1] लं०, तं, सं०, कनिष्ठापर्वत्रये—वँ०, तों० मुं०, वामकनिष्ठापर्वत्रये—खं०, नृं०, सिं०, तदनामात्रये हं०, भीं० षं०, मध्यमात्रये—णं० भं०, द्रं०, तर्जनीपर्वत्रये—मृं० त्युं०, मृं०, तदङ्गुष्ठपर्वत्रये—त्युं०, नं०, मां०, दक्षकरतले—म्यं०, वामे—हं०, ब्रह्मरन्ध्रे—उं०, शिरसि—ग्रं०, भाले—वीं०, भ्रूमध्ये रं०, नेत्रयोः—मं०, नेत्रयोरधः—हां०, कपोलयोः—विं, कर्णमूलयोः—ष्णुं दन्तप-ङ्क्त्योः—ज्वं०, चिबुके—लं०, उत्तरोष्ठे—तं०, अधरे—सं०, कण्ठे—वँ०, नाभौ तों०, दक्षभुजे—मुं०, वामे खं०, हृदये—नृं०, सर्वाङ्गे—सिं०, दक्षकरतले—हं०, वामे—भीं०, कटौ—षं०, लिङ्गे—णं०, ऊर्वोः—भं०, जानुनोः—द्रं०, जङ्घयोः—मृं०, गुल्फयोः—त्युं०, पादाङ्गुलीषु—मृं०, कराङ्गुलीषु—त्युं०, सर्वाङ्ग-रोमकूपेषु नं०, हृदि रक्ते—मां, अस्थिषु—म्यं०, मज्जासु—हं नमः ॥२॥ दक्षपादे—उं०, वामे—ग्रं०, दक्षगुल्फे—वीं०, वामे—रं०, दक्षजङ्घायां—मं०, वामायां—हां०, दक्षजानुनि—विं०, वामे—ष्णुं०, दक्षोरौ—ज्वं०, वामे—लं०, दक्षकटौ—तं०, वामे—सं०, नाभौ—वँ०, हृदि—तों०, दक्षबाहौ—मुं०, वामे—खं०, कण्ठे—नृं०, चिबुके—सिं०, उत्तरदन्तेषु हं०, अधः—भीं०,

---

१. कोष्ठबद्धोंऽशो नाऽस्ति ख० पुस्तके ।

उत्तरोष्ठे—षं०, अधरे—णं०, दक्षकपोले—भं०, वामे—द्रं०, दक्षकर्णे—मृं०, वामे—त्युं०, मुखे—मृं०, दक्षनसि—त्युं०, वामे—नं०, दक्षनेत्रे—मां०, वामे—म्यं०, मूर्द्धिन—हं० नमः, शिखायां—उग्रं नमः, मूर्द्ध्नि—वीरं०, नासायां—महाविष्णुं, नेत्रयोः—ज्वलन्तम्, श्रोत्रयोः—सर्वतोमुखं०, मुखे—नृसिंहं०, हृदि—भीषणं०, नाभौ — भद्रं०, कटौ — मृत्युं मृत्युं०, जानुनोः—नमामि०, पादयोः —अहं नमः ॥४॥ नासाग्रे—उग्रं वीरं नमः, नेत्रयोः—महाविष्णुं०, श्रोत्रयोः—ज्वलन्तं सं०, नाभौ—र्वतोमुखं०, हृदि—नृसिंहं भी०, मूर्द्धिन—षणं भद्रं०, बाह्वोः—मृत्यु मृत्युं०,[1] पादयोः—नमाम्यहं नमः ॥५॥ मूर्द्धिन—उग्रं वीरं महाविष्णुं नमः, वक्षसि—ज्वलन्त सर्वतोमुखम्, नाभौ—नृसिंहं भीषणं भद्रं०, सर्वाङ्गे—मृत्यु मृत्युं नमाम्यहम् ॥६॥ मूर्द्धादिहृदयान्तं—उग्रं वीरमित्यादि पूर्वार्द्धं न्यसेत् । पादादिनाभ्यन्तं नृसिंहं भीषणमित्यादि उत्तरार्द्धम् ॥७॥ मुखे—उग्रमुग्रं नमाम्यहं नमः, शिरसि—उग्रं वीरं नमाम्यहं०, नासायां—उग्रं महाविष्णुं नमा०, चक्षुषोः—उग्रं ज्वलन्तं नमा०, श्रोत्रयोः—उग्रं सर्वतोमुखं नमा०, ब्रह्मरन्ध्रे—उग्रं नृसिंहं नमा०, हृदि—उग्रं भीषणं नमा०, नाभौ—उग्रं भद्रं नमा०, कटयादिपादद्वयाग्रान्तं—उग्रं मृत्युं मृत्युं[2] नमा० ॥८॥ मुखे—वीरमुग्रं नमाम्यहं शिरसि—वीरं नमा०, नासायां वीरं महाविष्णुं नमा०, चक्षुषोः—वीरं ज्वलन्तं नमा०, श्रोत्रयोः—वीरं सर्वतोमुखं न०, ब्रह्मरन्ध्रे—वीरं नृसिंहं नमा०, हृदि—वीरं[3] भीषणं नमा०, नाभौ—वीरं भद्रं नमा०, कट्यादिपादान्तं वीरं मृत्युमृत्युं नमा० ॥९॥ मुखे — नृसिंहमुग्रं नमा०, शिरसि—नृसिंहं वीरं नमा०, नासायां—नृसिंहं महाविष्णुं नमा०, चक्षुषोः नृसिंहं नमाम्यहं०, श्रोत्रयोः — नृसिंहं सर्वतोमुखं नमा०, ब्रह्मरन्ध्रे—नृसिंहं (नमा०, हृदि—नृसिंहं)[4] नमा०, नाभौ—नृसिंहं भद्रं नमा०, कट्यादिपादपर्यन्तं नृसिंहं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥१०॥

ततो मूलाधारे षडङ्गानि विन्यस्य, ततो मूलाधारान्नाभिपर्यन्तं—"उग्रं वीं नमः, नाभेर्हृदयपर्यन्द रं महा विं नमः, हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तं—ष्णुं ज्वलं नमः, भ्रूमध्यान्मूर्द्धपर्यन्तं—त सर्वतों नमः, मूर्द्ध्नो भ्रूमध्यपर्यन्तं—मुखं नृं नमः, भ्रूमध्याद्हृदयान्तं—सिंहं भीषं नमः, हृदयान्नाभिपर्यन्तं णं भद्रं नमः, नाभेर्मूलाधारान्तं — मृत्युमृत्युं नमः, पादयुगे—नमां नमः, मूर्द्धादिपादपर्यन्तं—म्यहं नमः" ।

१ ख. मृत्यु । २. ख. मृत्यु । ३. क. पुस्तके नास्ति । ४. कोष्ठगोऽयमंशः क. पुस्तके नास्ति ।

ततो ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते देवस्य वामाङ्के—'श्रीलक्ष्म्यै नम' इति लक्ष्मीं सम्पूज्य, ततः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, दिग्दलेषु देवाग्रादि—"पक्षीन्द्राय०, सर्वाय०, अनन्ताय०, कमलभवाय०", विदिग्दलेषु—"श्रियै०, ह्रियै०, तुष्ट्यै०, पुष्ट्यै०"। ततो द्वितीयेऽष्टदले देवाग्रादि—"स्तम्भनाय०, नृसिंहाय०, वश्यनृसिंहाय०, मारणनृ०, विद्वेषणनृ०, आकर्षणनृ०, तुष्टिदनृ०, निधिप्रदनृ०, विद्यामूर्त्तिनृसिंहाय नमः", ततो दलाग्रेषु देवस्य दक्षिणस्थेषु—"चक्राय०, खड्गाय०, पद्माय०, मुसलाय०, वामस्थेषु—शङ्खाय०, खेटाय०, गदायै०, शाङ्गार्य०, दक्षिणे—श्रीवत्साय०, मध्ये—वनमालायै० देवाग्रे—ब्रह्मसूत्राय०, पीताम्बराय०,. नाभिपद्माय०, किरीटाय०, सर्वभूषणेभ्यः"। तृतीयेऽष्टदले—"श्रद्धायै०, मेधायै०, कामिकायै० भीमायै०, मायै०, भयायै०, वकायै०, दीप्त्यै नम" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्समापयेदिति ।

वैहायसपञ्चरात्रे—

अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः ।
तद्दशांशेन जुहुयाद् घृताक्तहविषाऽनले ॥२४२॥

एष कृतयुगजपः ।

द्वात्रिंशल्लक्षमानेन जपेन्मन्त्रं जितेन्द्रियः ।
तत्सहस्रं प्रजुहुयाद् घृताक्त हविषा ततः॥२४३॥

इति **सारसङ्ग्रहात्** । अत्र शतांशोऽपि होम उक्तः । एष विकल्पो बाहुल्यादशक्तपरो वा ।

सारसङ्ग्रहे—

तर्प्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ।
कुर्यात्संसिद्धमन्त्रस्तु प्रयोगान्सकलांस्ततः ॥२४४॥
काम्यप्रयोगसिद्ध्यर्थं स्थानभेदः प्रपञ्च्यते ।

उद्यत्सहस्रार्कसमं त्रिनेत्रं प्रभीषणं वज्रतुल्यं क्षरन्तम् ।
कृशानुं ह्यनेकैर्भुजैर्भीषणाङ्गं स्वहस्ताग्रजोद्भिन्नदैत्यं भजन्तम् ॥२४५॥

क्रूरकर्मादिविषये स्मरेदेवं भयानकम् ।
विश्वरूपमयं ध्यानं नृहरेः प्रोच्यतेऽधुना ॥२४६॥

---

१. ख. शर्वाय० ।

नृसिंहं तं महाभीमं कालानलसमप्रभम् ।
अन्त्रमालाधरं रौद्रं कण्ठे हारेण शोभितम् ॥२४७॥

नागयज्ञोपवीतञ्च पञ्चाननसमन्वितम् ।
चन्द्रमौलिं नीलकण्ठं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥२४८॥

भुजैः परिघसङ्काशैर्दशभिश्चोपशोभितम् ।
अक्षसूत्रं गदां पद्मं शङ्खं गोक्षीरसन्निभम् ॥२४९॥

धनुश्च मुसलं चैव बिभ्राणं चक्रमुत्तमम् ।
खड्गं शूलं च बाणं च नृहरिं रुद्ररूपिणम् ॥२५०॥

इन्द्रगोपकनीलाभं चन्द्राभं स्वर्णसन्निभम् ।
पूर्वोदयोत्तरं यावदूर्द्ध्वास्यं सर्ववर्णकम् ॥२५१॥

एवमुग्रं हरिं ध्यायेत्सर्वव्याधिनिवृत्तये ।
सर्वमृत्युहरं दिव्यं स्मरणात्सर्वसिद्धिदम् ॥२५२॥

ध्येयो यदा महत्कर्म सदा षोडशहस्तवान् ।
नृसिंहः सर्वलोकेशः सर्वाभरणभूषितः ॥२५३॥

द्वौ विदारणकर्माढ्यौ द्वौ चन्द्रोद्धरणोत्थितौ ।
चक्रशङ्खधरावन्यावन्यौ बाणधनुर्द्धरौ ॥२५४॥

खड्गखेटधरावन्यौ द्वौ गदापद्मधारिणौ ।
पाशाङ्कुशधरावन्यौ द्वौ रिपोर्मुकुटार्पितौ ॥२५५॥

इति षोडशदोर्दण्डमण्डितं नृहरिं विभुम् ।
ध्यायेदम्बुदनीलाभमुग्रकर्म्मण्यनन्यधीः ॥२५६॥

ध्येयो महत्तमे कार्ये दशषड्विंशहस्तवान् ।
नृहरिः सर्वभूषाढ्यः सर्वसिद्धिकरः प्रभुः ॥२५७॥

दक्षिणे चक्रखड्गौ च परशुं पाशमेव च ।
हलं च मुसलाभीती ह्यङ्कुशं बाहुपङ्कजैः ॥२५८॥

पट्टिशं भिण्डिपालं च खेटतोमरमुद्गरान् ।
वामभागैः करैः शङ्खं खड्गं पाशं त्रिशूलकम् ॥२५९॥

अग्निं च वरदं शक्तिं कुण्डिकां दधतं परम् ।
कार्मुकं तर्जनीमुद्रां गदां डमरुसर्पकान् ॥२६०॥

करद्वन्द्वैः क्रमाच्छत्रोर्जानुमस्तकपत्तलम् ।
ऊर्द्ध्वीकृताभ्यां हस्ताभ्यां मन्त्रमालाधरं हरिम् ॥२६१॥

अधःस्थिताभ्यां हस्ताभ्यां हिरण्यकविदारणम् ।
प्रियङ्करञ्च भक्तानां दैत्यानां च भयङ्करम् ॥२६२॥

नृसिंहं संस्मरेद्दिव्यं महामृत्युभयापहम् ।
अथोच्यते ध्यानमन्यन्मुखरोगहरं परम् ॥२६३॥
विषरोगहरं मृत्युहरं शत्रुभयापहम् ।

स्वर्णौघाभे सुपर्णे स्थितमतिसुमुखं कोटिपूर्णेन्दुबिम्बं,
विद्युन्मालासदृग्भिस्त्रिभिरपि नयनैः पीतवस्त्रं सुभूषम् ।
हस्तोद्यच्चक्रशङ्खाभयवरमखिलक्ष्वेडरोगापमृत्युं,
स्वैध्यर्निध्र्वंसयन्तं सुरनुतमनिशं यः स्मरेच्छ्रीनृसिंहम् ॥२६४॥

तथा— लक्ष्मीकामस्त्रिमध्वक्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्हुनेत् ।
अयुतं मधुनाऽऽज्यैश्च दरिद्रो न भवेत्क्वचित् ॥२६५॥

उदुम्बरसमिद्धोमाद्धान्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
अपूपलक्षहोमेन धनदेन समो भवेत् ॥२६६॥

क्रुद्धस्य सन्निधौ राज्ञो जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
सद्यो नैर्मल्यमाप्नोति प्रसादं चाऽधिगच्छति ॥२६७॥

कुन्दप्रसूनहोमेन शर्माऽऽनन्दमवाप्स्यति ।
सक्तुहोमेन शालीनां वशीकरणमुत्तमम् ॥२६८॥

हरिद्राखण्डहोमेन स्तम्भनं भवति ध्रुवम् ।
कदलीफलहोमेन सद्यो विघ्नः प्रणश्यति ॥२६९॥

दधिमध्वाज्यसिक्ताश्च गुडूचीं चतुरङ्गुलाम् ।
जुहुयादयुतं योऽसौ शतं जीवति वत्सरान् ॥२७०॥

शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं स्पृष्ट्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
जपेज्जित्वा सोऽपमृत्युं शतं वर्षाणि जीवति ॥२७१॥

श्रीप्रसूनैः प्रजुहुयात्तत्काष्ठैर्ज्वलितेऽनले ।
सहस्रमात्रेण ततो लक्ष्मीं प्राप्नोति निश्चितम् ॥२७२॥

दूर्वाहोमादरोगी स्याल्लक्ष्मीवात्र श्रीफलैस्तथा ।
अनेन मनुना जप्ता ह्यन्वहं च सिता वचा ॥२७३॥

अशिता प्रातरुत्थाय वाक्सिद्धि सा प्रयच्छति ।
जले नृसिंहं सम्पूज्य चन्दनेन घृतेन च ॥२७४॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयात्सुधीः ।
क्षुद्रभूतज्वरास्तस्य नश्यन्त्येवापसर्गजाः ॥२७६॥

रात्रौ दृष्टे तु दुःस्वप्ने मन्त्री स्नात्वा मनुं जपेत् ।
सुस्वप्नो जायते तस्य यदि निद्रां न गच्छति ॥२७६॥

कान्तारे व्याघ्रचौरादिसङ्कुले च मनुं जपेत् ।
रक्षां करोति दुष्टेभ्य इतरेभ्योऽपि मन्त्रिणः ॥२७७॥

मनुनाऽनेन सञ्जप्तं तस्य नाशयति क्षणात् ।
क्ष्वेडग्रहमहारोगान् घोरानप्यभिचारकान् ॥१७८॥

गदोन्मादमहोत्पातभये पुंसां स्मरेन्मनुम् ।
तदुद्भवं महादुःखं नाशमेति सुमन्त्रिणः ॥२७६॥

क्रूरं नृसिंहं संस्मृत्य शत्रुं च मृगशावकम् ।
कन्धरायां गृहीत्वा तं निक्षिप्तं दिक्षु चिन्तयेत् ॥२८०॥

सबान्धवस्य झटिति चोच्चाटो भवति ध्रुवम् ।
कृत्वा शत्रुं करयुगप्राप्तं नृहरिणा स्वयम् ॥२८१॥

नखरैर्दायमाणं तं संस्मरेन्निशितैः खरैः ।
अष्टाधिकशतं चाऽमुं जपेन्मनुमनन्यधीः ॥२८२॥

मण्डलस्यैष मध्ये स्याद्रिपुर्वैवस्वतातिथिः ।
कलिद्रुमभवैः काष्ठैः सम्यक् सन्दीपितेऽनले ॥२१३॥

अरिसङ्घक्षयकरं नृसिंहं चन्दनादिभिः ।
समभ्यर्च्य प्रजुहुयाच्छरान् साग्रान् समूलकान् ।२।८४॥

सहस्रमेकं च मनुं भक्षयन् शक्रमुत्कटम् ।
जपन्नाजौ विनिक्षिप्य शत्रुसेनां निवारयेत् ॥२८५॥

जुहुयात्सप्तदिवसं ततो राजचमूं सुधीः ।
सुदिने च शुभे लग्ने शत्रुसैन्यजिगीषया ॥२८६॥

प्रस्थापयेत्तां सुदृढां रक्षितां बलिभिर्नरैः ।
तदग्रे चिन्तयेद्देवं नृसिंहं शत्रुसङ्क्षयम् ॥२८७॥

भक्षयन्तं जपं मन्त्री कुर्यादायाति सा चमू ।
यावत्तावद्रिपूञ्जित्वा सर्वान्राजश्रिया सह ॥२८८॥

आगच्छेद् भूपतिः पुरं पश्चान्मन्त्रिणमादरात् ।
तोषयेत्क्षेत्रवसुभिर्वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ॥२८९॥

मन्त्रिणो यदि सन्तोषो न भवेद् भूपतेस्तदा ।
अनर्थः सुमहानेव आपतेद् दुःसहो भृशम् ॥२९०॥

तस्माद् गुरुं समभ्यर्च्य तोषयेन्न तु दूषयेत् ।

कृशानुगेहयुग्मके विलिख्य तारमध्यगम्,
नृसिंहबीजमस्य कोणके सुदर्शनं मनुम् ।
सुशक्तिवेष्टितं बहिस्तथाऽष्टपत्रके लिखेद्,
वसून्मितार्णवर्णकांश्च मायया बहिर्युतम् ॥२९१॥

ततः पतङ्गपत्रके च वासुदेवसन्मनुं,
लिखेत् सुवेष्ट्य मायया च षोडशारके स्वरान् ।
बहिश्च शक्तिवेष्टितं ततो ह्यनुष्टुभाऽपि त-
द्दले तदर्णसंयुते च शक्तिवेष्टितं ततः ॥२९२॥

वृत्तमध्ये ततः पूर्वभागे लिखेत्कादिवर्णाष्टकं दक्षिणे भादिकान्[1] ।
रुद्रसंख्यांल्लिखेत्पश्चिमे नादिकान् द्वादशार्णान्द्वयं चोत्तरेण द्वयम् ॥२९३॥

पार्श्वयोः संलिखेद्यन्त्रमेतद्वरं,
साधितं होमपूजाजपाद्यैः शुभम् ।
सच्चतुर्वर्गवाञ्छाफलौघप्रदं,
नारसिंहं महाचक्रमुक्तं परम् ॥२९४॥

---

१. क. ख. पुस्तकद्वये 'वादिकान्' इति पाठः किन्त्वसावनुपयुक्तः (सम्पा०)

अस्यार्थः—आदौ षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये प्रणवोदरे ससाध्यं नृसिंह-बीजमालिख्य, षट्सु कोणेषु सुदर्शनषडक्षरस्यैकैकमक्षरं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तयोरन्तराले निरन्तरं मायाबीजेन संवेष्टच[1] तद्बहिरष्टपत्रेषु नारायणाष्टाक्षराणि संलिख्य, तद्बहिः प्राग्वन्मायया संवेष्ट्य, द्वादशदलेषु वासुदेवद्वादशाक्षराण्यालिख्य, तद्बहिर्मायया संवेष्ट्य, तद्बहिः षोडशपत्रेषु षोडशस्वरान् सबिन्दुकानालिख्य, बहिर्मायया ऽऽवेष्ट्य, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलपद्मं कृत्वा, तद्दलेषु प्रोक्तानुष्टुप्-मन्त्रस्य द्वात्रिंशदक्षराण्यालिख्य, प्राग्वन्मायया ऽऽवेष्ट्य तद्बहिर्वृत्तं कृत्वा, तदन्तराले पूर्वभागे कं खं गं घं ङं चं छं जं इत्यष्टौ वर्णानालिख्य, तद्दक्षिणान्तराल झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं इत्येकादशवर्णानालिख्य तत्पश्चिमान्तराले नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं इति विलिख्य, तदुत्तरान्तराले[2] सं हं इति, तत्पार्श्वयोर्दक्षे ळं, वामे क्षं इति विलिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति । तथा—

प्राक्प्रत्यङ्नवरेखाश्च पञ्च स्युर्दक्षिणोत्तरम् ।
द्वात्रिंशत्प्रमितान्येवं जायन्ते कोष्ठकानि च ॥२६५॥

तस्याग्रिमगता रेखाः फणाकाराश्च कारयेत् ।
लिखेन्नृसिंहबीजं तु द्वात्रिंशत्कोष्ठकेषु च ॥२६६॥

मन्त्रराजं समालिख्य ह्यधोरेखाश्च वर्द्धयेत् ।
पुच्छाकाराश्च तास्तत्र साध्यनाम लिखेत् सुधीः ॥२६७॥
सम्पातयेद्धोमशिष्टैः सर्वरोगादिनाशनम् ।

अस्यार्थः—तत्रप्राक्प्रत्यक् नवरेखा, दक्षिणोत्तरं पञ्चरेखाश्च कृत्वा, द्वात्रिंशत्कोष्ठानि निष्पाद्य, तस्य पूर्वाग्रनवरेखाभिः पञ्चफणान् कृत्वा, तेषु फणेषु नृसिंहबीजं विलिख्य, द्वात्रिंशत्कोष्ठेषु पङ्क्त्याकारेणेशानकोष्ठादिक्रमेण मूलमन्त्रस्य द्वात्रिंशद्वर्णानालिख्याऽधोगतनवरेखाः पञ्चपुच्छाकारेण वर्द्धयित्वा, तेषु पुच्छेषु साध्यनाम लिखेदेतदुक्तफलदम् । तथा—

अष्टपत्रकर्णिकायां साध्याख्याकर्मसंयुतम् ।
नृसिंहबीजं विलिखेदष्टपत्रेषु संलिखेत् ॥२६८॥

चतुर्वर्णप्रमाणेन मन्त्रराजं सुसाधितम् ।
यन्त्रं क्षुद्रामयघ्नं च सर्वरक्षाकरं परम् ॥२६९॥

---

१. क. वेष्टय । २. क. तदुत्तराले ।

ससाध्यनिजबीजयुग्वसुदले मनोर्वर्णकान्,
चतुःपरिमितान् लिखेल्लिपिवृतं बहिः कारयेत् ।
स्वबीजयुतकोणयुक्क्षितिपुरद्वयेनावृतं,
रिपुग्रहविषव्रजामयहरं च लक्ष्मीप्रदम् ॥३००॥

अस्यार्थः—अष्टदलकमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां ससाध्यं नृसिंहबीजं विलिख्य, तद्दलेषु मूलमन्त्रार्णान् चतुरश्चतुरो विलिख्य, बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तदन्तरालवीथ्यां सबिन्दून् मातृकार्णान् विलिख्य, तद्बहिरष्टकोणं कृत्वा, तत्कोणेषु नृसिंहबीजं लिखेदिति । तथा—

एतद्यन्त्रयुतं सम्यङ्मण्डलं लक्षणान्वितम् ।
रम्यं नवपदं कृत्वा कलशान् स्थापयेत्सुधीः ॥३०१॥

नवशः शोभनांस्तत्र कषायोदकपूरितान् ।
वस्त्रयुग्मसमायुक्तानावाह्य नृहरिं विभुम् ॥३०२॥

सम्पूजयेच्चन्दनाद्यैः शान्तकायं मनोरमम् ।
पूर्वादिदिक्षु चेन्द्रादीन् यजेन्मन्त्री समाहितः ॥३०३॥

अष्टाधिकं ततो मन्त्रं सहस्रं प्रजपेत्सुधीः ।
एवं जलैः साधितैस्तैर्नरं मन्त्रं त्रिरुच्चरन् ॥३०४॥

अभिषिञ्चेन्मृत्युमुखादवश्यं स निवर्त्तते ।
ग्रहाभिचारभूतादिभयं नश्यति तत्क्षणात् ॥३०५॥

भोजयेद्देवताबुद्धया भूदेवांस्तोषयेदपि ।
प्राणप्रदात्रे गुरवे [1]वित्तशाठ्यविवर्ज्जिताम् ॥३०६॥

स्वकार्यार्थानुरूपेण प्रदद्याद्दक्षिणां नरः ।
स चैहिकीं लभेत्सिद्धिं परत्राऽपि च मोदते ॥३०७॥

तथा— वर्णान्त्याग्नी सभुवनौ बिन्दुनादोत्तमाङ्गकौ ।
नृसिंहबीजमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३०८॥

हृल्लेखासम्पुटं केचित्सङ्गिरन्ते मनुं त्विमम् ।

१. क. वित्तिशाठ्य० ।

वर्णान्त्यः क्षकारः, अग्नी रेफः, भुवनं औकारः, बिन्दुरनुस्वारः, नादोऽर्द्ध-चन्द्रः, एभिर्नृसिंहबीजं क्ष्रौँ इति ।

ऋषिरत्रिश्च गायत्री छन्दः श्रीनृहरिः प्रभुः ॥३०६॥

देवता दीर्घयुग्बीजेनैवाङ्गं परिकल्पयेत् ।
ध्यानार्चाजपहोमादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ॥३१०॥

क्ष्राँ क्ष्रीमित्यादि करषडङ्गम् ।

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
तद्दशांशं हुनेत्सम्यग्घृताक्तैः पायसैः शुभैः ॥३११॥

तर्प्पयेच्छुद्धसलिलैः कृत्वा चाऽत्माभिषेचनम्
ब्राह्मणान्सम्यगाराध्य सिद्धमन्त्रः समाचरेत् ॥३१२॥

मन्त्रराजोदितान् सर्वान् प्रयोगानत्र साधकः ।
अष्टाधिकसहस्रेण जप्तैश्च कलशोदकैः ॥३१३॥

विषार्त्तमभिषिञ्चेत मुच्यते हि विषेण सः ।
मुच्यतेऽन्यैश्च सर्पाद्यैर्लूतामूषकजैरपि ॥३१४॥

बहुपाद्वृश्चिकोत्थैश्च विषैर्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।
अनेन मनुना जप्तं भस्माऽष्टोत्तरकं शतम् ॥३१५॥

शिरोक्षिकर्णहृत्कुक्षिकण्ठरोगान् विनाशयेत् ।
विसर्पिणीं वमिं हिक्वां ज्वरं चैव विनाशयेत् ॥३१६॥

मन्त्रौषधाभिचारादिसम्भूतांश्च विकारकान् ।
शमयेद्भस्मसञ्जप्तं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३१७॥

मृत्युस्थाने लिखेन्मन्त्रं ससाध्यं च दहन्निव ।
क्रूरेण चक्षुषा मन्त्रं जपेदष्टदिनावधि ॥३१८॥

अष्टाधिकसहस्रञ्च म्रियते रिपुरस्य हि ।
वश्यमाकृष्टिविद्वेषे मोहोच्चाटादिकानि च ॥३१९॥

कुर्यादयुतजापेन तत्तदर्हणकर्मणा ।
एवमेकाक्षरो मन्त्रः प्रोक्तः सर्वसमृद्धिदः ॥३२०॥

शारदातिलके—

पाशः शक्तिर्नरहरिरङ्कुशो वर्म फण्मनुः ।
षडक्षरो नरहरेः कथितः सर्वकामदः ।।३२१।।

पाशः आं, शक्तिः ह्रीं, नरहरिः क्ष्रौं० अङ्कुशः क्रों, वर्म हुं, फट् स्वरूपम् । तथा—

उक्तञ्च विष्णुयामले—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
देवता नरसिंहोऽस्य षड्बीजैरङ्गकल्पना ।।३२२।।

पदार्थादर्शे—क्ष्रौं बीजं, माया शक्तिः ।

कोपादालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं सोमसूर्याग्निनेत्रं,
पादादानाभिरक्तप्रभमुपरि सितं भिन्नदैत्येन्द्रगात्रम् ।
चक्रं शङ्खं सपाशाङ्कुशकुलिशगदादारणान्युद्वहन्तं,
भीमं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाकल्पमीडे नृसिंहम् ।।३२३।।

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधःस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे, सर्वाधस्थाभ्यां दारणमुद्राम् । तल्लक्षण तु—

वैहायसपञ्चरात्रे—

मिथः संश्लिष्टसम्मुख्यो[१]ऽङ्गुलयो ऋज्वधोमुखाः ।
स्वस्थानसरलाङ्गुष्ठौ मुद्रैषा दारणाभिधा ।।३२४।। इति ।

तथा— अर्चा प्रागीरिते पीठे मूर्ति मूलेन कल्पयेत् ।
अङ्गावृतेर्बहिश्चक्रं शङ्खं पाशाङ्कुशौ पुनः ।।३२५।।
वज्रं कौमोदकीं खड्गखेटौ पत्रेषु पूजयेत् ।
इन्द्रादींश्च तदस्त्राणि पूजयेन्दाद्यतः सुधीः ।।३२६।।

।। **अथ प्रयोगः** ।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे०, हृदि—श्रीनृसिंहाय देवतायै०, गुह्ये—क्ष्रौं बीजाय०, पादयोः—ह्रीं शक्तये नमः" इति विन्यस्य, प्राग्वदुक्त्वा, "आं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्ष्रौं शिखायै वषट्, क्रों कवचाय हुँ, हुं नेत्राय वौषट्, फट् अस्त्राय फट् ।"

---

१. ख. संश्लिष्टसंख्यो ।

इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यङ्गार्चान्तेऽष्टदलेषु—"चक्राय०, शङ्खाय०, पाशाय०, अङ्कुशाय०, वज्राय०, गदायै०, खड्गाय०, खेटाय नम" इति सम्पूज्येन्द्राद्यर्चादि सर्वं प्रागवत् कुर्यादिति ।

तथा— वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं केवलेन घृतेन च ।
जुहुयात्तत्सहस्राणि तर्पणादि ततश्चरेत् ॥३२७॥

एवं संसिद्धमन्त्रस्तु प्रयोगान्साधयेत्ततः ।
तत्तत्कल्पोदितान्स्वार्थं परार्थं वाऽणुवित्तमः ॥३२८॥

अपामार्गसमिद्भिश्च प्लुताभिः पञ्चगव्यकैः ।
जुहुयाच्च सहस्रैकं सप्ताहं भूतशान्तये ॥३२९॥

गुडूचीसमिधो दुग्धलोलितास्त्रिसहस्रकम् ।
चतुर्दिनं प्रजुहुयाज्ज्वरशान्तिर्भविष्यति ॥३३०॥

रक्तोत्पलैः प्रत्यहं यो मधुरत्रयलोलितैः ।
सहस्रसंख्यं जुहुयान्मासेनेष्टमवाप्नुयात् ॥३३१॥

मन्त्रजापी वत्सरेण धनधान्यसमृद्धियुक् ।
प्रफुल्लैररुणाम्भोजैर्मधुरत्रयलोलितैः ॥३३२॥

सहस्रद्वादशमितं लक्षावधि हुनेत्ततः ।
सर्वलोकप्रियः साध्यो भवेन्नैवाऽत्र संशयः ॥३३३॥

प्रातस्त्रिमधुरोपेतलाजाभिः पक्षमात्रकम् ।
सहस्रं जुहुयात्कन्यां कन्यार्थी लभतेऽचिरात् ॥३३४॥

वरार्थिनी लभेताऽऽशु वरं सर्वमनोहरम् ।
तिलराजी त्वपामार्गपायसाज्यैर्हुनेत्सुधीः ॥३३५॥

स दीर्घायुरवाप्नोति बियुक्तः सकलैर्गदैः ।
कलत्रपुत्रमित्रादिधनधान्यसमन्वितः ॥३३६॥

शिखिगेहयुगोदरे लिखेद् भुवनेशीमथ साध्यसंयुताम् ।
विलिखाश्रिषु मूलमन्त्रकं वसुपत्रे स्वरकेसरे चतुः ॥३३७॥

मनुराजसवर्णकांल्लिखेल्लिपिसंवीतमथो बहिः पुनः ।
वसुधापुरसंवृतं बहिस्त्वथ चिन्तामणिकोणमञ्जुलम् ॥३३८॥

नृहरेरथ यन्त्रमुत्तमं लिखितं भूर्जदले शिरोधृतम् ।
विषरोगरिपुग्रहादिकं भयभूतज्वरमाशु नाशयेत् ॥३३९॥

अस्याऽयमर्थः—तत्र षट्कोणे[1] हृल्लेखां ससाध्यामालिख्य, तत्कोणेषु मूलमन्त्रस्य षडक्षराण्यालिख्य, बाह्येऽष्टदलमूलेषु मन्त्रराजस्य वर्णांश्चतुरश्चतुरो विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले सबिन्दुकान् कादिक्षान्तानालिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु वक्ष्यमाणं **शैवचिन्तामणिबीजं** लिखेदिति ।

शारदातिलके—

बीजं नमो भगवते नरसिंहाय तत्परम् ।
स्याज्ज्वालामालिने पश्चाद्दीप्तदंष्ट्राय तत्परम् ॥३४०॥

अग्निनेत्राय सर्वादिरक्षोघ्नाय पदं वदेत् ।
सर्वभूतविनाशान्ते नकारो दीर्घवान्मरुत् ॥३४१॥

सर्वज्वरविनाशान्ते नायार्णौ दहयुग्मकम् ।
पचद्वयं रक्षयुगं हुं फट् स्वाहा ध्रुवादिकः ॥३४२॥

सप्तषष्टयक्षरैः प्रोक्तो ज्वालामालीमहामनुः ।

बीजं नरसिंहबीजं, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि ।

सारसङ्ग्रहे—

ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्रं देवता हरिः ।
नृसिंहरूपी मन्त्रार्णैः षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ॥३४३॥

त्रयोदशदशस्थाणवष्टादशार्काब्धिभिः क्रमात् ।
षडङ्गानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि मन्त्रवित् ॥३४४॥

स्थाणव एकादश, अर्का द्वादश, अब्धयः चत्वारः ।

उद्यत्कालानलाभं प्रलयहुतवहोद्दीप्तदन्तोत्कटास्यं,
विद्युद्दामाभिरामप्रचुरघनसटाटोपभीमं त्रिनेत्रम् ।
हस्ताब्जैः शङ्खचक्रे दधतमसिवरं खेटकं श्रीनृसिंहं,
वन्दे दैत्यान्तकं तं मुनिसुरनिकरैः स्तूयमानं सदैव ॥३४५॥

वामोर्ध्वादितदधोन्तमायुधध्यानम् । असिवरं खड्गश्रेष्ठम् ।

---

१. ख. षट्कोणोदरे ।

पूर्वोदिते यजेत्पीठे नृहरिं सर्वकामदम् ।
षडक्षरोक्तविधिना सर्वदेवौघवन्दितम् ॥३४६॥

"ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय हृदयाय नमः, ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्राय शिरसे स्वाहा, अग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय शिखायै वषट, सर्वभूतविनाशनाय सर्वज्वरविनाशनाय कवचाय हुँ, दह दह पच पच 'रक्ष रक्ष'[1] नेत्राय वोषट्, हुं फट् स्वाहाऽस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासः । प्रयोगः सुगमः । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्ततः ।
कपिलासर्पिषा वह्नौ तर्प्पणादि विधाय च ॥३४७॥

मन्त्रराजवदेवाऽत्र प्रयोगान्साधयेत्ततः ।
विशेषतः क्षुद्रभूतज्वरनाशकरः परः ॥३४८॥

बहूदितेनाऽत्र च किं जपन्मनुं मनुष्यवर्यो य इहात्तभोगकः ।
स निग्रहानुग्रहशक्तिमान् भवेत्परत्र विष्णोः पदमेति शाश्वतम् ॥३४९॥

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अथ लक्ष्मीनृसिंहस्य विधानमभिधीयते ।
सर्वापत्तारकं दिव्यं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥३५०॥

प्रणवश्रीशक्तिलक्ष्मीबीजानि जयशब्दतः ।
लक्ष्मीप्रियपदं ङेऽन्तं नित्यप्रमुदितं वदेत् ॥३५१॥

चेतसे प्रवदेल्लक्ष्मीश्रितार्द्धं ङेऽन्तदेहकम् ।
रमाशक्तिरमाहृद्युक् स्यात् त्रयस्त्रिंशदर्णकः ॥३५२॥

लक्ष्मीनृसिंहमन्त्रोऽयं जपतां सर्वकामदः ।

श्रीस्तद्बीजं, शक्तिर्भुवनेश्वरीबीजं, लक्ष्मीः श्रीबीजं, जय-स्वरूपम्, लक्ष्मीप्रियं ङेऽन्तं लक्ष्मीप्रियाय, नित्यप्रमुदित-स्वरूपं, चेतसे-स्वरूपं, लक्ष्मीश्रितार्द्ध-स्वरूपं, ङेन्तदेहकं देहाय, पुनः प्रणवरहितं बीजत्रयं, हृन्नमः । तथा—

ऋषिः प्रजापतिश्छन्दोऽनुष्टुब् लक्ष्मीनृसिंहकः ।
देवता निजबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥३५३॥

१. '–' अयमंशो नाऽस्ति क. पुस्तके ।

निजबीजेन नृसिंहबीजेन ।

पुरस्तात्केशवः पातु चक्री जाम्बूनदप्रभः ।
पश्चान्नारायणः शङ्खी नीलजीमूतसन्निभः ॥३५४॥

इन्दीवरदलश्यामो माधवोर्द्ध्वगदाधरः ।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान् ॥३५५॥

उत्तरे हलधृग्विष्णुः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ।
आग्नेय्यामरविन्दाभो मुसली मधुसूदनः ॥३५६॥

त्रिविक्रमः खड्गपाणिर्नैर्ऋत्यां ज्वलनप्रभः ।
वायव्यां वामनो वज्री तरुणादित्यदीप्तिमान् ॥३५७॥

ऐशान्यां पुण्डरीकाक्षः श्रीधरः पट्टिशायुधः ।
विद्युत्प्रभो हृषीकेशो वायव्यां दिशि मुद्गरी ॥३५८॥

हृत्पद्मे पद्मनाभो मे सहस्रार्क्कसमप्रभः ।
सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥३५९॥

इन्द्रगोपसङ्काशः पाशहस्तोऽपराजितः ।
सबाह्याभ्यन्तरं देहं व्याप्य दामोदरः स्थितः ॥३६०॥

एवं सर्वत्र निःछिद्रं नामद्वादशपञ्जरम् ।
प्रविष्टोऽहं न मे किञ्चिद् भयमस्ति कदाचन ॥३६१॥

इति न्यासं विधायाऽदौ लक्ष्मीनरहरिं स्मरेत् ।

सर्पेन्द्रभोगनिलयः सुफणातपत्रो विद्युच्छशाङ्करुचिरः परमो नृसिंहः ।
आलिङ्गितश्च रमया बत दिव्यभूषो हस्तैर्वरारिकमलाभयदान्दधानः[1] ॥३६२॥

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

देवमावाह्य पूर्वोक्ते पीठे सम्यक् प्रपूजयेत् ।
प्रथमाङ्गावृतिः प्रोक्ता द्वितीया शक्तिभिः स्मृता ॥३६३॥

भास्वती भास्करी चित्रा द्युतिरुन्मीलनी तथा ।
रमा कान्तिधृतिश्चैव शक्तयोऽष्टौ रमापतेः ॥३६४॥

तृतीयावृतिरिन्द्राद्यैश्चतुर्थी च तदायुधैः ।

---

१. ख. ०न्धधानः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि — प्रजापतये ऋषये नमः, मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि — श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय देवतायै०", इति विन्यस्य, प्राग्वदुक्त्वा, क्ष्रां क्ष्रीमित्यादिकरषडङ्गन्यासं विधाय, पूर्वोक्तश्लोकैर्नामद्वादशपञ्जरन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यङ्गार्चान्तेऽष्टसु दलेषु — "भास्वत्यै०, भास्कर्य्यै०, चित्रायै०, द्युत्यै०, उन्मीलन्त्यै०, रमायै०, कान्त्यै०, धृत्यै०" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि प्राग्वत्कुर्यादिति ।

तथा—

षष्टयुत्तरत्रिलक्षं तु प्रजपेत्तत्सहस्रकम् ।
मध्वक्तमल्लिकापुष्पैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ॥३६५॥
अभ्यर्च्य सलिले देवं तर्प्पयेन्मनुना ततः ।
अभिषिञ्चेत्स्वमूर्द्धानं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३६६॥
ततः प्रयोगान्कुर्वीत साधको निजवाञ्छितान् ।
मल्लिकाकुसुमैर्होमः सर्वकाम्यकरः शुभः ॥३६७॥

तथा— तारो लक्ष्मीनृसिंहः स्यात् ङेऽन्तः श्रीपूर्वकः परः ।
मन्त्रो लक्ष्मीनृसिंहस्याऽष्टार्णोऽयं हि समीरितः ॥३६८॥

लक्ष्मीनृसिंहो ङेऽन्तः श्रीपूर्वश्च श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय इति । तथा—

ऋषिः प्रजापतिश्छन्दोऽनुष्टुब् देवो विशारदः ।
नृसिंहश्च स्वबीजेन दीर्घयुक्तेन मन्त्रवित् ॥३६९॥
षडङ्गानि मनोरस्य विदध्यात्प्रोक्तवर्त्मना ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं षडक्षरवदीरितम् ॥३७०॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः ।
पायसैर्जुहुयान्मन्त्री तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥३७१॥

तथा— जयशब्दं द्विरुच्चार्य श्रीनृसिंहेति चोद्धरेत् ।
अष्टार्णो मनुराख्यात ऋष्याद्यं पूर्ववच्चरेत् ॥३७२॥

पूर्ववत्पूर्वोक्ताष्टाक्षरवत्, अर्थात्षडर्णवत्पूजा । तथा—

वदेद्बीजं ङेऽन्तमत्स्यं बीजं ङेऽन्तं च कूर्मकम् ।
बीजं ङेऽन्तं च वाराहं बीजं ङेऽन्तं नृसिहकम् ॥३७३॥

बीजं ङेऽन्तं वामनयुक् त्रिबीजं ङेऽन्तरामयुक् ।
बीजं कृष्णाय बीजं स्यात्कल्किने जययुग्मकम् ॥३७४॥

सालग्रामनिवासिने दिव्यसिंहस्वयम्भुयुक् ।
पुरुषो ङेयुतो हृत्स्वबीजान्त्योऽयं मनुर्मतः ॥३७५॥

नृसिंहबीजं मत्स्याय, पुनर्नृसिंहबीजं कूर्माय इत्यादि त्रिरिति त्रिवारम्, बीजं रामाय, पुनर्बीजं रामाय, पुनर्बीजं रामायेति, हृन्नमः । तथा—

ऋष्याद्या अत्यतिच्छन्दोनृसिंहा गदिताः क्रमात् ।
षड्दीर्घयुक्स्वबीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥३७६॥

मन्त्रराजवदेवाऽस्य ध्यानपूजादिकं भवेत् ।
अङ्गान्ते चाऽथ मत्स्यादिकावतारांश्च पूजयेत् ॥३७७॥

॥ अथः प्रयोग ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—अत्रिऋषये०, मुखे—अतिछन्दसे०, हृदि—नृसिंहाय देवतायै०" इति विन्यस्य, क्ष्रां क्ष्रीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यङ्गपूजान्ते 'ॐ मत्स्याय नमः, ॐ कूर्माय नमः" इत्यादि पूजयेत् । तथा—

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं साज्येन हविषा ततः ।
जुहुयात्तद्दशांशेन तर्पणादि ततश्चरेत् ॥३७८॥

काम्यकर्माणि चाऽन्यानि मन्त्रराजवदेव हि ।
अथ वीरनृसिंहस्य मनुः सम्प्रोच्यतेऽधुना ॥३७९॥

प्रणवो हृद्भगवते वीरसिंहाययोर्नृ च ।
ज्वालामालापिनद्धाङ्गायाऽग्निनेत्राय सर्वभू- ॥३८०॥

तविनाशाय पदं दहयुग्मं पचद्वयम् ।
रक्षयुग्मं शक्तियुग्ममस्त्रानलवधूस्तथा ॥३८१॥

वीरसिंहाययोर्नृ चेति-वीरपद-सिंहायपदयोर्मध्ये नृ इत्यर्थस्तेन वीरनृसिंहाय । एवमग्रेऽपि, भक्तियुग्मं मायाबीजद्वयम्, अन्यत्सुगमम् । तथा—

मन्त्रान्तरमथो वच्मि तस्यैवाशुफलप्रदम् ।
प्रणवो हृद्भगवते वीरसिंहाययोर्नृ च ॥३८२॥

ङेऽन्तं ज्वालामालिपदं दीप्तदंष्ट्रं च ङेयुतम् ।
अग्निनेत्राय सर्वान्ते रक्षोघ्नाय पदं वदेत् ॥३८३॥

सर्वभूतविनाशान्ते नायान्ते सर्वशब्दतः ।
ज्वरं विनाशयेति स्याद्धनयुग्मं पचद्वयम् ॥३८४॥

पचद्वयं बन्धयुग्मं रक्षयुग्मं वदेत्ततः ।
वर्माऽस्त्राग्निवधूर्वीरनृसिंहस्य मनुर्मतः ॥३८५॥

अथ मन्त्रान्तरं तस्य वक्ष्यते सर्वकामदम् ।
अग्निनेत्रायान्तकं तु पूर्वमन्त्र उदाहृतः ॥३८६॥

ततो वदेत्सर्वभूतविनाशनायतो वदेत् ।
सर्वज्वरविनाशं च नाशसर्वं च दोषवि- ॥३८७॥

नाशनाय हनद्वन्द्वं दहयुक् पचयुग्मकम् ।
बन्धरक्षयुगं पश्चान्मां गां हुं फट् द्विठावधि ॥३८८॥
एतन्मन्त्रत्रयस्याऽपि विधानं पूर्वमीरितम् ।

पूर्वमीरितं मन्त्रराजोक्तम् ।

तारं नृसिंहबीजं च महासिंहाययोर्नृ च ।
हृदन्तो दशवर्णाः स्यान्नृसिंहमनुरुत्तमः ॥३८९॥

ऋषिश्च वामदेवाख्यो विराट्छन्द उदाहृतम् ।
नृसिंहो देवता चाऽस्य सर्वदेवौघवन्दितः ॥३९०॥

षड्दीर्घयुग्बीजेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ॥३९१॥

पूर्ववत् अष्टाक्षरलक्ष्मीनृसिंहवत्, आदिपदेन पुरश्चरणतद्धोमद्रव्यादिकं गृह्यते तदा तत्र वर्णलक्षमित्युक्तेरत्राऽपि वर्णलक्षं दशलक्षं प्राप्यते ।

तारं नृहरिबीजं हृन्ङेन्तं भगवत्पदम् ।
नरसिंहाय मन्त्रोऽयं त्रयोदशभिरक्षरैः ॥३९२॥

वामदेवो मुनिः प्रोक्तो जगतीछन्द ईरितम् ।
देवता नरसिंहोऽत्र स्वबीजेनाऽङ्गकल्पनम् ॥३९३॥

ध्यानपूजाजपार्चादि षडक्षरवदीरितम् ।
तारं सहस्रारशब्दं ज्वालान्ते वर्त्तिने पदम् ॥३९४॥

नृसिंहबीजं हनयुक् हुँ फट् स्वाहान्तिको मनुः ।
एकोनविंशत्यर्णोऽयं नृहरेश्चक्रसंज्ञकः ॥३९५॥

ऋषिर्जयन्त आख्यातः छन्दो गयत्रमिष्यते ।
सुदर्शननृसिंहोऽस्य देवता परिकीर्त्तितः ॥३९६॥

चक्रराजाय हृत्प्रोक्तं ज्वालाचक्राय वै शिरः ।
जगच्चक्राय च शिखा कवचं त्वस्य सम्मतम् ॥३९७॥

असुरान्तकचक्राय ह्यस्त्राणुश्च महापदम् ।
सुदर्शनायेति मनुः पञ्चाङ्गं समुदीरितम् ॥३९८॥

चक्रासनस्य मध्यस्थं कालाग्निसदृशद्युतिम् ।
चतुर्भुजं विवृतास्यं चतुश्चक्रधरं हरिम् ॥३९९॥

शशिविद्युल्लसद्वर्णं त्रिनेत्रं चोग्रविग्रहम् ।
ध्यायेत्समस्तदुःखौघरोगदारिद्र्यनाशनम् ॥४००॥

पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे पूजयेदुक्तवर्त्मना ।
अङ्गानि पूजयेद्दिक्षु जयाद्याः पूजयेत् क्रमात् ॥४०१॥

जया च विजया पश्चादजिता चाऽपराजिता ।
विदिक्षु पूजयेत्पश्चाद्विमलां मोदिनीं तथा ॥४०२॥

सहाख्यां सिद्धिसंज्ञां च पुरतः पूजयेत्ततः ।
कृष्णाभौ सितदंष्ट्रौ तौ द्वितीयावृतिरीरिता ॥४०३॥

इन्द्रादिभिस्तृतीया स्याद्वज्रादिभिरनन्तरा ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—जयन्ताय ऋषये०, मुखे—गायत्राय छन्दसे०, हृदि श्रीसुदर्शननृसिंहाय देवतायै०" इति विन्यस्य, चक्रराजाय हृदयाय नमः, ज्वालाचक्राय शिरसे स्वाहा, जगच्चक्राय शिखायै वषट्, असुरान्तकचक्राय कवचाय हुँ, महासुदर्शनायाऽस्त्राय फट्" इति पञ्चाङ्गमन्त्रान्मूलाभिमृष्टकराङ्गुलीषु विन्यस्य, नेत्रवर्जंहृदयादिष्वपि विन्यस्य, ध्यानाद्यङ्गपूजान्ते

दिग्दलेषु—"जायायै०, अजितायै०, अपराजितायै०, विदिग्दलेषु—लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति । तथा—

रविलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं तिलैः शुभैः ।
हुनेत्पुष्पैस्तर्पयेच्च चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥४०४॥
आज्येन जुहुयान्मन्त्री सहस्रं च नमस्क्रिया ।
तर्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः ॥४०५॥
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ।

तिलैः पुष्पैर्घृतैश्च प्रतिद्रव्यं चत्वारिंशत्सहस्रमित्यर्थः, रविलक्षं द्वादशलक्षम् ।

ब्राह्मणो जप्तुमिच्छेत कुशानास्तीर्य भूतले ॥४०६॥

तस्मिन्देशे समाराध्य सुदर्शननृसिंहकम् ।
मन्त्रं सहस्रमावृत्य हुनेद्देवस्य सन्निधौ ॥४०७॥

सहस्रं मूलमन्त्रेण ह्यपामार्गसमिद्वरैः ।
तद्भस्मतिलकं कृत्वा निर्गच्छेच्छत्रुसन्निधौ ॥४०८॥

दासवत्कुरुते शत्रून्स सद्यो नाऽत्र संशयः ।
अथ शत्रुमनुस्मृत्य तर्पणं चाऽपि कारयेत् ॥४०९॥
अयुतं जयमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ।
अथोदुम्बरपीठे तु देवदेवं निवेशयेत् ॥४१०॥

तस्याऽग्रे वर्त्तुले कुण्डे होतव्या खादिरी समित् ।
अयुतं गोघृताक्ता तु मध्वक्ता वा जितेन्द्रियः ॥४११॥

जयमाप्नोति संवादे नित्यं परशुरामवत् ।
तज्जप्तहाटकं पट्टं रचयित्वाऽत्र चक्रकम् ॥४१२॥

तेनाऽङ्गुलीयकं कृत्वा जपहोमादिसाधितम् ।
धारयेद् दक्षिणे हस्ते मृत्युं रोगाञ्जयेदरीन् ॥४१३॥

राज्ञः सकाशात् पूजाञ्च लभते धारयन् सदा ।
जलं त्रिसप्तजप्तं तु सर्वोदरगदान्तकम् ॥४१४॥

पूर्वं नवशिफानिष्कत्रयं लवणसंयुतम् ।
स्पृष्ट्वा जप्तं तच्च जयेद् गुल्मशूलादि मासतः ॥४१५॥

मासमेकं प्रतिदिनं दूर्वाहोमं सहस्रकम् ।
कृत्वा सम्पूजयेद्देवं राजयक्ष्मा प्रणश्यति ॥४१६॥

तिलं वा मधुना वाऽपि तादृग् होमः प्रमेहनुत् ।
नेत्ररोगः सहस्रेण पद्महोमेन नश्यति ॥४१७॥

त्रिसप्तजप्ततोयेन क्षालनं नेत्ररोगहृत् ।
दशधा जप्ततोयेन करकेनैव सेचयेत् ॥४१८॥

तावत्सुमन्त्रितेनाऽपि नवनीतेन लेपनात् ।
सप्ताहं चाऽर्द्धसप्ताहं नाशयन्ति विसर्पकान् ॥४१९॥

अपामार्गेण जुहुयान्नित्यमष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वा तावन्नमस्कारं कुर्यान्मासमतन्द्रितः ॥४२०॥

अपस्मारादिकानन्यान्ग्रहान्सर्वान्विनाशयेत् ।
शुद्धाद्भिः पूरिते कुम्भे चन्द्रमण्डलमध्यगम् ॥४२१॥

सुदर्शननृसिंहं तु सुधाविग्रहधारिणम् ।
यथावच्चिन्तयेत्तत्र पूजयेच्चोपचारकैः ॥४२२॥

जप्त्वा शतं सहस्रं वा दष्ट तेनैव सेचयेत् ।
तथा स्पृशेद्वामहस्ते ह्यम्भःस्पर्शाद्विषं हरेत् ॥४२३॥

पद्मं पङ्क्तिदलं हनद्वययुतं मध्ये स्वसाध्यं ध्रुवे,
मन्त्रार्णान् द्विश आलिखेद्दलमनुप्रान्तेऽन्तिमं तद्बहिः ।
षट्कोणे निजबीजमग्निसदनं ज्वालापरीतं लिखेद्,
दीप्तं जापहुतादिसाधितमिदं रक्षाकरं शत्रुहृत् ॥४२४॥

अस्याऽर्थः—त्रिकोणाभ्यन्तरे षट्कोणं तदन्तर्दशदलकमलं च कृत्वा, तत्कर्णिकायां प्रणवमध्ये अमुकं हन हन इति शत्रुनामाऽऽलिख्य, दलेषु नवसु मन्त्राक्षराणि द्वन्द्वशोऽष्टादश विलिख्य, दशमे दलेऽन्त्यमक्षरं विलिख्य, षट्कोणेषु नृसिंहबीजं विलिख्य, जपहोमपूजादिभिः साधितमेतद्यन्त्रं शत्रुनाशकरं स्वरक्षाकरं च भवति ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ पञ्चविंशस्तरङ्गः ॥२५॥

———

[षड्विंशस्तरङ्गः]

शारदातिलके—

तारो हृद्विष्णवे पश्चात् ङेऽन्तः सुरपतिर्भवेत् ।
महाबलाय ठद्वन्द्वं मनुरष्टादशाक्षरः ॥१॥

तारः प्रणवः, हृन्नमः, ङेऽन्तः सुरपतिः सुरपतये इति, ठद्वन्द्वं स्वाहाकारः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

ॐ नमो विष्णवे ब्रूयात् सुरान्ते पतये महा- ।
बलायाऽग्निवधूर्मन्त्रोऽष्टादशाक्षर ईरितः ॥२॥

मुनिरिन्दुः समाख्यातो विराट्छन्द उदाहृतम् ।
दधिवामनदेवोऽस्य विष्णुर्देवः समीरितः ॥३॥

पदार्थादर्शे—प्रणवो बीजं, स्वाहा शक्तिः ।

शारदातिलके—

हृद्येकेन शिरो द्वाभ्यां शिखा त्रिभिरुदीरिता ।
कवचं पञ्चभिः प्रोक्तं नेत्रं तावद्भिरक्षरैः ॥४॥

द्वाभ्यामस्त्रमभिप्रोक्तः प्रकारोऽङ्गस्य सूरिभिः ।

सारसङ्ग्रहे—

भ्रूमध्ये कण्ठहृदयनाभ्यन्ध्वाधारकेषु च ।
षट्पदानि मनोर्न्यस्य वर्णान्न्यस्येत्ततः सुधीः ॥५॥

मूर्द्ध्नि दृक्श्रवणद्वन्द्वे नासायां मुखमध्यतः ।
कण्ठहृद्बाहुयुग्मे च नाभौ पृष्ठे च गुह्यके ॥६॥

जान्वोश्च पादयोस्तद्वत्स्थानेष्वेषु यथाक्रमम् ।

शारदातिलके तु—

मूर्द्ध्नि भाले दृशोर्युग्मे कर्णनासोष्ठतालुषु ।
कण्ठे बाहुद्वये पश्चाद् हृदयोदरनाभिषु ॥७॥
गुह्योरुजानुयुग्मेषु जङ्घयोः पादयोर्न्यसेत् ।

पश्चात् पृष्ठे इत्युक्तम् । अत्र यथोपदेशं न्यस्तव्यः ।

राकेन्द्वाभः सिताब्जे स्रवदमृतमणिच्छत्रतोऽधोनिविष्टः,
श्रीभूम्याश्लिष्टपार्श्वः स्फटिकमणिनिभः शेषशय्याविशेषः ।
वामे दध्यन्नपूर्णं कनकजचषकं स्वर्णपीयूषकुम्भम्-
बिभ्रच्छ्रीवामनाख्यः सततमवतु वो विष्णुरिष्टार्थदायी ॥८॥

वामेन पात्रमित्युक्ते दक्षिणे कुम्भो ज्ञेयः ।

पूजा तु वैष्णवे पीठे कर्त्तव्या साधकोत्तमैः ।
चन्द्रान्तं कल्पिते पीठे प्रागुक्ते तं समर्च्चयेत् ॥९॥

पदार्थादर्शे— चन्द्रान्तमित्यनेन चन्द्रमन्त्रोऽप्युद्धृतः ।

विष्णवे सहसोमाय त्रैलोक्याप्यायनाय च ।
स्वाहान्तस्तारहृत्पूर्वो मन्त्रेणैवाऽर्च्चयेच्च तत् ॥१०॥

एतद् यथाविधिपदेन सूचितं प्रागुक्ते नारायणाष्टाक्षरोक्ते पीठे वक्ष्यमाण-विधानतः तं समर्चयेदिति सम्बन्धः ।

सारसङ्ग्रहे—

आदावङ्गानि सम्पूज्य पश्चाच्छक्तीः प्रपूजयेत् ।
शुभ्रवर्णाः सुभूषाश्च वराभयकराः शुभाः ॥११॥

पूषा सुमनसा प्रीतिस्तुष्टिः पुष्टिस्तथैव च ।
ऋद्धिर्धृतिश्च सौम्या च मरीचिन्यंशुमालिनी ॥१२॥

शशिनी दुर्भगा चैत्र लक्ष्मीश्छाया तथैव च ।
सम्पूर्णमण्डला चैवममृता षोडशी कला ॥१३॥

सशक्तिकान्वासुदेवान् तृतीयावरणेऽर्च्चयेत् ।
केशवाद्यैश्चतुर्थी स्यात्पञ्चमं कुमुदादिभिः ॥१४॥

शुभ्रवर्णैः शङ्खचक्रगदापङ्कजपाणिभिः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ॥१५॥

शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ।
यजेत् षष्ठे लोकपालान्सप्तमे दिग्गजानपि ॥१६॥

अपिशब्देन वज्रादिपूजानन्तरं दिग्गजपूजेत्युक्तम् । "वज्रादीन् दिग्गजा-नष्टौसप्तावरणमीरितमिति" **शारदातिलकात्** ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-इन्दवे ऋषये नमः, मुखे—विराजे छन्दसे०, हृदि०—श्रीदधिवामनाय देवतायै०" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा—"ॐ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, विष्णवे शिखायै वषट्, सुरपतये कवचाय हुं, महाबलाय नेत्राय वौषट्, स्वाहाऽस्त्राय फडि"ति करषडङ्गन्यासं विधाय, "भ्रूमध्ये—ॐ नमः, कण्ठे—नमो नमः, हृदये—विष्णवे०, नाभौ—सुरपतये०, लिङ्गे—महाबलाय०, मूलाधारे—स्वाहा नमः, मूर्द्ध्नि—ॐ नमः, दक्षनेत्रे—नं०, वामे—मों०, दक्षश्रोत्रे—विं०, वामे ष्णं०, नासायां—वें०, मुखे—सुं०, कण्ठे—रं०, हृदि—पं०, दक्षबाहौ—तं०, वामे—यें०, नाभौ—मं०, पृष्ठे—हां०, गुह्ये—बं०, दक्षजानुनि—लां०, वामे—यं०, दक्षपादे—स्वां०, वामे—हां नमः" इति विन्यस्य, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते योगपीठं सम्पूज्य, 'ॐ नमो विष्णवे सहसोमाय त्रैलोक्याप्यायनाय स्वाहा चन्द्रमण्डलाय नम' इति योगपीठमध्ये चन्द्रमण्डलमभ्यर्च्याऽऽवाहनाद्यङ्गार्चान्ते षोडशदलेषु—देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन "पूषायै नमः, सुमनसायै०, प्रीत्यै०, तुष्ट्यै०, पुष्ट्यै० ऋद्ध्यै०, धृत्यै०, सौम्यायै०, मरीच्यै०, अंशुमालिन्यै०, शशिन्यै०, दुर्भगायै०, लक्ष्म्यै०, छायायै०, सम्पूर्णमण्डलायै०, अमृतायै नम" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु दिग्विदिक्षु प्राग्वद्वासुदेवादिमूर्त्तीः समयादिशक्तीश्च सम्पूज्य, तद्बहिर्द्वादशदलेषु प्रागुक्तकेशवादि-द्वादशमूर्त्तीः सम्पूज्याऽष्टदलेषु "कुमुदाक्षाय०, पुण्डरीकाय०, वामनाय०, शङ्कुकर्णाय०, सर्वनेत्राय० सुमुखाय०, सुप्रतिष्ठिताय०" इति सम्पूज्य प्रथमचतुरश्रे—इन्द्रादीन्, द्वितीये—वज्रादीन्, तृतीये—लक्ष्मीप्रकरणोक्तानष्टगजांश्च सम्पूज्य धूपादिशेषं समापयेदिति । तथा—

दीक्षां प्राप्य शुचिर्भूत्वा जपेद् द्वादशलक्षकम् ।
तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥१७॥

तदन्ते जुहुयाद्विद्वान् पायसेन दशांशकम् ।
तर्प्पणादि ततः कुर्य्यान्मन्त्री मन्त्रस्य सिद्धये ॥१८॥

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री वाञ्छितार्थान् प्रसाधयेत् ।१९॥

श्रीमन्दिरे मण्डलमध्यभागे मायावटुं वामनमर्च्चयित्वा ।
दध्योदनं निर्मलशर्कराढ्यं निवेदयेत्तस्य सदा विभूत्यै ॥२०॥

अन्नकामो हुनेन्नित्यमष्टाविंशतिसंख्यया ।
सितान्नं घृतमिश्रं तु प्राप्नुयादन्नमक्षयम् । २१।।

अपूपं षड्रसोपेतं[1] हुनेदष्टसहस्रकम् ।
अलक्ष्मीर्नाशमायाति महतीं श्रियमाप्नुयात् ।।२२।।

अयुतं मन्त्रविद्धुत्वा दध्यन्नं शर्करान्वितम् ।
अन्नपर्वतमाप्नोति यत्र यत्र स गच्छति ।।२३।।

हुनेद्बिलसमीपस्थः पद्माक्षैरयुतं नरः ।
वसुधारा महालक्ष्मीर्वसु वर्षति तत्र च ।।२४।।

विद्यार्थी प्रजपेल्लक्षं ध्यायेद्देवं जनार्द्दनम् ।
जुहुयात्पायसं मन्त्री साक्षाद्वागीश्वरो भवेत् ।।२५।।

पुत्रकामो जपेल्लक्षं पुत्रजीवफलैर्हुनेत् ।
तत्काष्ठदीपिते वह्नावुत्तमं पुत्रमाप्नुयात् ।।२६।।

ध्यात्वा त्रिविक्रमं देवं रक्ताभं करवीरकैः ।
हुनेदयुतसंख्यैश्च सर्वत्र विजयी भवेत् ।।२७।।

राज्यकामोऽपि पद्मानामयुतं जुहुयान्नरः ।
ध्यात्वा चन्द्रपदं राज्यं लभेताऽशु ह्यकण्टकम् ।।२८।।

अपामार्गदलैर्हुत्वा लवङ्गैर्वा मधुप्लुतैः ।
अयुतं साध्यनामाढ्यं स वश्यो भवति ध्रुवम् ।।२९।।

आरोग्यकामो जुहुयादपामार्गैः शतं शतम् ।
सप्ताहान्मुच्यते रोगैस्तावदेव जपेत्सुधीः ।।३०।।

आयुःकामस्त्रिमध्वक्तैस्तिलदूर्वाङ्कुराक्षतैः ।
अयुतं जुहुयात्तावज्जपेदायुर्लभेच्चिरम् ।।३१।।

स्मृत्वा त्रिविक्रमं रूपं जपेदष्टसस्रकम् ।
मुक्तबन्धो भवेत्सद्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ।।३२।।

---

१. ख. खड्रसोपेतं ।

अष्टसहस्रमष्टोत्तरसहस्रम्, एवं सर्वत्र ।

पद्मे सप्तदशारे तु कर्णिकायां ध्रुवं लिखेत् ।
स्वरैः संवेष्टितं तत्र केशरेषु च कादिकान् ॥३३॥

क्षान्तान्द्विशो लवर्जांश्च मन्त्रवर्णान्दले लिखेत् ।
शिष्टान्बाह्ये च संवेष्ट्य प्रणवाभ्यां ततो बहिः ॥३४॥

श्रीबीजाभ्यां वेष्टयेच्च यन्त्रं श्रीपुत्रमित्रदम् ।

अस्याऽर्थः—सप्तदशदलपद्मं विरच्य, तन्मध्ये षोडशस्वरवेष्टितं प्रणवं ससाध्यं विलिख्य, तत्केसरेषु कादिक्षान्तान् द्वितीयलवर्जितान्वर्णान्विलिख्य, दलेषु—मन्त्रवर्णानवशिष्टसप्तदश प्रतिदलमेकैकशो विलिख्य, सम्पुटाकारेण प्रणवद्वयेन मध्ये यन्त्रं यथा भवति तथा संवेष्टय, तद्बहिरपि तथैव श्रीबीजद्वयेन वेष्टयेदिति । तथा—

ससाध्यनामप्रणवाद्यमध्यमष्टाक्षरैरुज्वलपत्रमूलम् ।
मन्त्राक्षराणि द्विश आलिखेच्च पत्रेषु शिष्टद्वयमन्त्यपत्रे ॥३५॥

बहिर्वृतं द्वादशवर्णकेन ततो बहिर्मातृकया च वीतम् ।
सम्पूजितं चन्दनपुष्पवर्य्यैर्यन्त्रं त्विदं श्रीकृदभीष्टदं च ॥३६॥

अस्याऽर्थः—अष्टदलं पद्मं कृत्वा, तन्मध्ये—ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, तत्केसरेषु—नारायणाष्टाक्षरवर्णानेकैकशः समालिख्य तत्पत्रेषु—मूलमन्त्रस्य वर्णान् द्विशो विलिख्याऽवशिष्टद्वयमन्त्यपत्रे—पद्माद्बहिर्वृत्तत्रयवीथीद्वयाभ्यन्तरं वीथ्या वासुदेवद्वादशाक्षरैर्निरन्तरं समावेष्टय बाह्यवीथ्यां मातृकार्णैस्तथैव वेष्टयेदिति । तथा—

तारकामरमासौधैर्बीजैर्युक्तो मनुर्मतः ।

पूर्वमन्त्रस्याऽऽदौ प्रणवकामबीजश्रीबीजवंबीजानि योजयेदित्यर्थः ।

च्यवनो मुनिराख्यातो गायत्री छन्द ईरितम् ॥३७॥

देवता चाऽस्य सम्प्रोक्तः स यज्ञेश्वरवामनः ।
षड्दीर्घकामबीजेन षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ॥३८॥

कर्पूरधवलं देवं निविष्टं सरसीरुहे ।
सुप्रसन्नं सुनेत्रं च चारुस्मितमनोहरम् ॥३९॥

दण्डं चाऽमृतकुम्भं च शरच्चन्द्रसमप्रभम् ।
दधिभक्तं सोपदंशं[1] वसुपात्रं च बिभ्रतम् ॥४०॥

चिन्तयेज्जगतामाद्यं जगदार्त्तिहरं हरिम् ।
अस्य पूजादिकं सर्वं पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥४१॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र योगपीठन्यासान्ते "शिरसि — च्यवनाय ऋषये०, मुखे — गायत्री-छन्दसे०, हृदि—श्रीयज्ञेश्वरवामनाय देवतायै०" इति विन्यस्य, 'क्लां क्लीं' इत्यादि करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यात्वा मानसपूजादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति ।

कुर्यात्ततो मन्त्रसिद्धः काम्यान् स्वाभीष्टदायकान् ।
सहस्रं हविषा होमो लक्ष्मीदो धान्यमाप्नुयात् ॥४२॥

धान्यहोमेन बीजैश्च शतपत्रसमुद्भवैः ।
सहस्रहोमाद्भीतीनां[2] नाशो भवति निश्चितम् ॥४३॥

दध्यक्तान्नेन जुहुयाद् दुर्गतेर्मुच्यते नरः ।
त्रैविक्रमं वामनस्य रूपं ध्यायन्मनुं जपेत् ॥४४॥

घोराद्भयान्मुच्यतेऽसौ देवेशं तु पटे लिखेत् ।
भित्तौ वाऽऽलिख्य गन्धाद्यैर्महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥४५॥

ॐ नमः पदमुक्त्वा तु ततो भगवते पदम् ।
विष्णवे पदमारभ्य पूर्वमन्त्रं समुच्चरेत् ॥४६॥

ऋषिः कपिल आख्यातो गायत्रं छन्द उच्यते ।
उदीरितः सर्ववन्द्यो देवता भोगवामनः ॥४७॥

षड्भिर्मन्त्रपदैरुक्तः षडङ्गविधिरुत्तमः ।
नीलवर्णश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाब्जधृक् ॥४८॥

सर्वान्भोगान्ददात्येष भक्तानां भोगवामनः ।
अस्य पूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत् ॥४९॥

ॐ नमो हृत्, भगवते शिरः, विष्णवे शिखा, सुरपतये कवचं, महाबलाय-नेत्रं, स्वाहाऽस्त्रम् । तथा—

---

१. ख. सोमपदंशं । २. क. भीतानां ।

तारो हृदयमायाबालकान्ते विष्णवेपदम् ।
[1]आरभ्योक्ताणुरस्यर्षिर्ब्रह्मा गायत्रमुच्यते ॥५०॥

छन्दश्च देवता प्रोक्ता माया बालकवामनः ।
षडङ्गानि मन्त्रस्य पदैः षड्भिः समाचरेत् ॥५१॥

पीताम्बरोत्तरीयोऽसौ मौञ्जीकौपीनधृग्धरः ।
कमण्डलुं च दधतं दण्डं छत्रं करैर्दधत् ॥५२॥

यज्ञोपवीती नीलाभो ध्यातव्यश्छद्मवामनः ।
पूजादिकं पूर्ववच्च कुर्य्यान्मन्त्री यथाविधि ॥५३॥
अन्नविद्याभूमिदोऽयं भक्तानामभयप्रदः ।

एतन्मन्त्रोपासकानां नियममाह **महाकपिलपञ्चरात्रे**—

नाऽश्नीयात्तण्डुलीशाकं तथा चौदुम्बरं फलम् ।
न्नं करकं चैव भक्षयेन्न कदाचन ॥५४॥

करकं वर्षोपलम् ।

पद्मपत्रे न भुञ्जीत तथा चाऽर्कदलेष्वपि
तन्तुकार्पासबीजानि न स्पृशेच्च कदाचन ॥५५॥

वल्मीकं गोमयं विप्रच्छायामपि न लङ्घयेत् ।
देवाग्निगुरुपूजां च कुर्याद्भक्तिसमन्वितः ॥५६॥

तथा— अथ सम्यक् प्रवक्ष्यामि सुदर्शनमनुत्तमम् ।
येन सिद्धयन्ति सकलाः साधकानां मनोरथाः ॥५७॥

यात्सप्तमं तदन्त्यं च भृग्वग्नी दीर्घसंयुतौ ।
यान्त्यं व्योमदक्षकर्णयुक् पान्त्यं केवलश्च टः ॥५८॥

वेदाद्याद्यश्चक्रमन्त्रः सप्तवर्ण उदाहृतः ।

यात्सप्तमं सकारः, तदन्त्यं हकारः; भृगुः सकारः, अग्नी रेफः, दीर्घ आकारः, एतैः स्राः; यान्त्यं रेफः; व्योम हकारः, अ अनुस्वारः, दक्षकर्ण उकारः, एतैः हुँ; पान्त्यं फकारः, केवलः टः विस्वरः ट्; वेदाद्याद्यः प्रणवाद्यः ।

---

१. ख. आरभ्योक्तोऽणु० ।

तथा— ऋषिः प्रोक्तो ह्यहिर्बुध्नोनुऽष्टुप् छन्दश्च देवता ।
सुदर्शनात्मा स महाविष्णुर्मुनिभिरीरितः ॥५६॥

चक्रायान्तैराविसुधीः[1] संज्वालाशब्दकैः पृथक् ।
षडङ्गमनवो ह्यस्य ज. तयुक्ता द्विठान्तकाः ॥६०॥

ऐन्द्राद्यधोर्द्ध्वक्रमशश्चक्रेणेति ततो वदेत् ।
वदेद्बध्नामि हृदयं ङेन्तं चक्रपदं शिरः ॥६१॥

दिशामपि दशानां स्याद्बन्धोऽनेनाऽणुनाऽत्र च ।
त्रैलोक्यं प्रणवाद्यं च रक्षयुग्मं तनुत्रकम् ॥६२॥

अस्त्रशीर्षयुतो मन्त्रो ह्यग्निप्राकारसंज्ञकः ।
अनेन मनुना स्वस्य परितोऽग्निमयं बुधः ॥६३॥

प्राकारं परिकल्प्याऽथ न्यासानन्यान्समाचरेत् ।

दिग्बन्धादिमन्त्राः प्रयोगे स्पष्टीकर्त्तव्याः ।

शुभ्ररक्तासिताभं तु प्रणव शिरसि न्यसेत् ॥६४॥

भ्रूमध्याननहृद्गुह्यजानुपद्द्वन्द्वसन्धिषु ।
इतरान्वह्नितुल्याभान्वर्णान्मन्त्री प्रविन्यसेत् ॥६५॥

पद्द्वन्द्वसन्धिर्गुल्फः 'जानुगुल्फेषु विन्यसेत्' इति कपिलवचनात् ।

तथाङ्गदरसद्गदाब्जमुसलं धनुःपाशकौ,
सृणिं दधतमर्ककोटिसप्रभं कराम्भोरुहैः ।
स्वदेहरुचिभिर्जगन्निशभासयन्तं स्मरे-
द्धरिं रथपदाह्वयं विकटभीमदंष्ट्राननम् ॥६६॥

रथाङ्गं चक्रं, दरः शङ्खः, सृणिरङ्कुशः । दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे, तदाद्यधस्थयोरितरे इत्यायुधध्यानम् ।

पूजयेद्वैष्णवे पीठे गन्धपुष्पादिभिस्ततः ।
मूलेन मूर्त्ति सङ्कल्प्य तत्राऽऽवाह्य च पूर्ववत् ॥६७॥

अङ्गानि चक्राद्यस्त्राणि गदाब्जे मुसलं तथा ।
धनुः पाशाङ्कुशौ प्रोक्ताः पीतरक्तसितासिताः ॥६८॥

---

१. ख. ०राविशुधीः ।

द्विशः शक्तय अभ्यर्च्या विष्णुसान्निध्यकारिकाः ।
दर्शयेच्चक्रगायत्र्या ततो मुद्रां च मन्त्रवित् ॥६९॥

मुद्रां चकाराच्चक्रमुद्राम् ।

सुदर्शनाय विवदेत्ततश्च विद्महे महा- ।
ज्वालाय धीमहि तन्नस्ततश्चक्रः प्रचोदयात् ॥७०॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-अहिर्बुध्न्याय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीसुदर्शनाय देवतायै०" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, "चक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, धीचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, संचक्राय स्वाहा नेत्राय वौषट्, ज्वालाचक्राय स्वाहा अस्त्राय फडि" ति कर-षडङ्गन्यासं विधाय, ऐन्द्रीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहा, आग्नेयीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहे" त्यादियुक्त्या दश दिग्बन्धनं दक्षकरतर्ज्जन्यङ्गुष्ठोत्थशब्देन कृत्वा, 'ॐ त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहे'ति मन्त्रेणाऽग्निप्राकारं विचिन्त्य, "ॐ नमः शिरसि, सं० भ्रूमध्ये, मुखे—हं० स्रां० हृदि०, रं० गुह्ये, हुँ० जानुनोः, फट् नमः गुल्फयोः" इति विन्यस्य, ध्यानादिप्राणप्रतिष्ठान्ते वैष्णव-मुद्राः प्रदर्श्य, 'सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयादि'ति गायत्र्या चक्रमुद्रां प्रदर्श्याऽऽसनाद्यङ्गार्चान्तेऽष्टदलेषु—"चक्राय नमः, शङ्खाय०, गदायै०, पद्माय०, मुसलाय०, धनुषे०, पाशाय०, अङ्कुशाय०" इति सम्पूज्य, दलाग्रेषु—हयग्रीवपूजोक्तलक्ष्म्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापये-दिति । तथा—

जपेद् द्वादशलक्षं तु तत्सहस्रं हुनेत्तिलैः ।
सर्षपैर्बिल्वदौग्धान्नघृतैर्मन्त्री यथाविधि ॥७१॥

बिल्वैर्बिल्वपत्रैः, 'सर्षपैर्बिल्वपत्रैश्चे'ति **प्रयोगसार**वचनात् । एकैकद्रव्येण चतुः-शताधिकसहस्रसंख्याको होमः । तिलादिद्रव्यचतुष्टये त्रिमधुयोगः कार्यः । 'त्रिमधु-संयुतैरि'ति **प्रयोगसारात्** । तथा—

तर्पणादि ततः कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणतर्पणम ।
ततो मन्त्री विदध्याच्च प्रयोगानिष्टदायकान् ॥७२॥

चक्रयुग्मं लिखेन्मन्त्री सौम्ययाम्यगतं क्रमात् ।

चक्रयुग्मं षट्कोणद्वयम् ।

आलिखेत् प्रणवं मध्ये षट्कोणेष्वणुवर्णकान् ॥७३॥

पीताभां कर्णिकां कुर्याद्रक्तारं श्याममन्तरम् ।
सितां नेमिं शिखिशिखापरीतं पार्थिवावृतम् ॥७४॥

तत्र सौम्ये च कलशं शोणाम्भःपूर्णमत्र च ।
चक्राह्वयं[1] समावाह्य हरिं सम्यक् प्रपूज्य च ॥७५॥

याम्ये कुर्याद्धोमकर्म षट्त्रिंशाच्छतसम्मितैः ।
आज्यापामार्गकसमिदक्षताराजिकातिलैः ॥७६॥

हविषा पञ्चगव्यैश्च हुनेदाज्यप्लुतैः क्रमात् ।
प्रतिद्रव्यस्य सम्पातान् कुम्भतोये विनिक्षिपेत् ॥७७॥

प्रस्थार्द्धान्नकृतं पिण्डं सम्यक्कुम्भोदये सुधीः ।
याम्याशायामुपावेश्य साध्यं नीराज्य तेन च ॥७८॥

सद्रव्यं तद्घटं दूराद्राशावष्टमके क्षिपेत् ।
तत्सामग्र्यादिकमपि क्षिपेत्तद्दक्षभागके ॥७९॥

ततो बलिं हरेद्धीमान्हुतशिष्टान्नकेन च ।
मन्त्रेणाऽनेन हृदयं वदेद्विष्णुगणे ततः ॥८०॥

वदेद् भ्योऽन्ते सर्वशान्तिकरेभ्योऽन्ते बलिं ददेत् ।
प्रतिगृह्णन्तु शान्त्यै च हृदयं तदनन्तरम् ॥८१॥

विप्रान्सम्भोज्य गुरवे दक्षिणां च प्रकल्पयेत् ।
ज्वरादिरोगसङ्घातान् प्रयोगोऽयं विनाशयेत् ॥८२॥

अपस्माररुजं चैव पिशाचग्रहवैकृतम् ।
रक्षोभूतादिपीडां च नाशयेन्मङ्क्ष्वयं विधिः ॥८३॥

अस्यार्थः—सुशुभे स्थाने गोमयोपलिप्ते दक्षिणोत्तरविभागेन हस्तान्तराले षट्कोणद्वयं वृत्तवेष्टितं बहिश्चतुरस्रावृतं च कृत्वा, तन्मन्त्रं दीक्षोक्तपीतरजसाऽऽपूर्य, कोणषट्कोदरं रक्तेनाऽऽपूर्य्य, तदन्तरालषट्कं श्यामरजसाऽऽपूर्य्य,

---

१. क. चक्रद्वयं ।

रेखाः सर्वाः श्वेतेन कृत्वा, तन्मध्ये प्रणवं विलिख्य, स्वाग्रादिकोणषट्के मूलमन्त्रस्य द्वितीयार्णादिषट्कं विलिख्य, तत्रोत्तरदिग्गतचक्रे कुङ्कुमादिमिश्रजलपूर्णं कुम्भं दीक्षाविधानोक्तक्रमेण संस्थाप्य, तत्र पीठपूजापुरःसरं सुदर्शनं समावाह्य, सर्वोपचारैः साङ्गावरणं सम्पूज्य, दक्षिणदिग्गतचक्रे दीक्षोक्तविधिना नित्यहोमोक्तविधिना वा वैष्णवाग्नि संस्थाप्य, प्रोक्तद्रव्यैः प्रतिद्रव्यं षट्त्रिंशदधिकं शतं शतं प्रत्याहुति प्रतिद्रव्यं हुतशेषं स्रुवलग्नं कुम्भतोये सम्पातयन् जुहुयात् ।

ततो होमं समाप्य, कुम्भे पिण्डं प्रस्थार्द्धन्निकृतं निधाय, साध्यं स्वदक्षभागे समुपवेश्य, तं कुम्भमुद्धृत्य, तस्योपरि त्रिःपरिभ्राम्योक्तस्थाने दूरे तं घट निक्षिप्याऽग्न्यादि सर्वं तद्दक्षभागे निक्षिप्य, हुतशिष्टान्नेन 'नमो विष्णुगणेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यो बलिं प्रतिगृह्णन्तु शान्त्यै नम' इति बलिं दत्वा गृहमागच्छेत् । ततो यजमानो ब्राह्मणानन्नादिभिः परितोष्य, स्वगुरुं प्रयोगकर्त्तारं गोभूहिरण्यवस्त्रादिभिः सम्यक् परितोषयेदिति उक्तफलभाग् भवेत् । तथा—

स्तनजद्रुमसम्भूतैः फलकैः पञ्जरं शुभम् ।
कृत्वा मन्त्री पञ्चगव्यैः पूरयेत्साध्यमत्र च ॥८४॥

निवेशयेच्छुद्धवस्त्रं शुद्धाङ्गं तं स्पृशन् जपेत् ।
मनुं कृशानुवह्न्यादिदिक्षु संस्थाप्य मन्त्रवित् ॥८५॥

विप्रवर्यैः कारयेच्च होमं पूर्वोदितैः क्रमात् ।
द्रव्यैस्तांस्तोषयेद्विप्रान् यजमानो गुरुं तथा ॥८६॥

धनधान्यादिकैर्नत्वा सन्तोष्य प्रीणयेत्तथा ।
एवं योगः सर्वरोगापमृत्युद्रोहनाशनः ॥८७॥

गव्यैः समस्तैः क्षीरद्रुचर्मोत्थैश्च कषायकैः ।
एभिः सम्पूरितैः कुम्भैर्जप्तैः सम्पातसंयुतैः ॥८८॥

साध्यं ग्रहाविष्टमनेन सिञ्चेदुग्राभिचारातुरमुग्रपीडम् ।
स्वस्थो भवेत्तेन नरोऽतिमङ्क्षु भानोर्दिने साधु सुसाधितैस्तैः ॥८९॥

योषां संस्नापयेत्तैश्च सुखेन प्रसवो[1] भवेत् ।
घृतं पक्वं पञ्चगव्ये सञ्जप्तममुनाऽणुना ॥९०॥

---

१. क. प्रसवा ।

ग्रहपीडानिरुद्धानां गर्भिणीनां हितावहम् ।
मनुं जपेद्दशशतं पञ्चगव्यं स्पृशन् सुधीः ॥९१॥

पद्मपत्रे ब्रह्मवृक्षपत्रे बिल्वफलेऽपि वा ।
तन्न्यस्य तत्स्वीयगृहे निखनेच्च परस्य वा ॥९२॥

रक्षा भवति तद्गेहे सम्पद्वृद्धिश्च जायते ।
पलाशस्तनजद्रुत्वक् चन्दनं गुग्गुलुं तथा ॥९३॥

घुसृणं च हरिद्रां च रोचनं विल्वराजिकाः ।
अपामार्गतिला दूर्वा विष्णुक्रान्ता तुलस्यपि ॥९४॥

कृष्णा च तुलसी प्रोक्ता यवोऽर्कद्रुम एव च ।
सहदेवी तथा लक्ष्मीः कुशगोमयसद्वचाः ॥९५॥

कमलं रोचना पञ्चगव्ये सङ्क्राथयेन्मुहुः ।
सिद्धेऽग्नौ भस्म यावत्स्यादेतत्सर्वेष्टदायकम् ॥९६॥

सिद्धे संस्कृते ।

सञ्जप्तं मनुनाऽनेन सम्यक् च शिरसा धृतम् ।
सर्वभूतग्रहव्याधिकृत्यादुःखादिवारणम् ॥९७॥

द्रोहोन्मादरिपुत्राससर्वपापहरं मतम् ।
आपन्नाशकमेतत्स्याद्वश्यदं शिवदं परम् ॥९८॥

फलत्रययुतैः कल्कैः पञ्चगव्ये पचेद् घृतम् ।
प्रस्थं च कल्कद्रव्याणि घनं शुण्ठी निशा तथा ॥९९॥

घनं मुस्ता ।

चित्रकैला मधोर्यष्टिर्वचा पाठा वृषा तथा ।
माध्वीका च विडङ्गं च मञ्जिष्ठा दारु रोहिणी ॥१००॥

मनुनाऽनेन सञ्जप्तं वन्ध्यापुत्रप्रदायकम् ।
भूतप्रेतपिशाचादिभयघ्नं नाऽत्र संशयः ॥१०१॥

पञ्चगव्याज्यमेतत्स्याद् गर्भरक्षाकरं परम् ।
गुलिकां च पुरोः कृत्वा सहस्राष्टं हुनेत्ततः ॥१०२॥

पुरोः गुग्गुलोः ।

दिवसत्रितयं चाऽपि चतुर्दिवसमेव वा ।
भवेत्सर्वोपद्रवानां नाशो मङ्क्षु गदस्य च ॥१०३॥

अपामार्गसमिद्भिश्च हुनेदयुतसंख्यया ।
भूतज्वरभयव्याधिकृत्यापस्मारनाशनम्[1] ॥१०४॥

घृताक्तैः कमलैर्हुत्वा श्रीवृद्धि लभते नरः ।
आज्याक्ताभिश्च दूर्वाभिर्होमो दीर्घायुषे भवेत् ॥१०५॥

पलाशभूरुट्समिद्भिर्मेधावृद्धिर्भवेत्किल ।
वस्त्रार्थी श्वेतकुमुदैराज्याक्तैर्जुहुयान्नरः ॥१०६॥

शूनां वृद्धिमिच्छेत स हुनेत्केवलं घृतम् ।
उदुम्बरसमिद्धोमात्पुत्रलाभो भवेत्किल ॥१०६॥

अष्टोत्तरसहस्रं च हुनेदश्वत्थजैस्तथा ।
समिद्वरैरेकवर्षं मुक्तयेऽयं विधिः स्मृतः ॥१०८॥

चक्रमध्यस्थितं स्वं च चिन्तयंश्च मनुं जपेत् ।
एकोऽपि दुर्जयो युद्धे मर्त्यो भवति मन्त्रवित् ॥१०९॥

कल्पान्ताग्निनिभं चक्रं वैरिणो यस्य मूर्द्धनि ।
स्मरेत्सप्तदिनात्तस्य ज्वलनप्रतिमो ज्वरः ॥११०॥

भवेत्त्रिंशद्दिनैश्चाऽथ प्राप्नोति मरणं ध्रुवम् ।
सकारं स्वरसंवीतं याहीति पदवेष्टितम् ॥१११॥

संस्मरेद्यस्य शीर्षे स तस्योच्चाटो दशाहतः[2] ।
मण्डलान्मरणं याति सान्तं काकनिभं रिपोः ११२॥

मूर्द्धनि स्मरेच्च सप्ताहादुच्चाटो वा मृतिर्भवेत् ।
शरच्छशाङ्कप्रतिमं सुधाधाराभिवर्षणम् ॥११३॥

सकारं संस्मरेन्मूर्द्धनि स जीवेच्छरदां शतम् ।
वह्निगेहयुगे डाद्यान्सप्त मध्ये षडश्रिषु ॥११४॥

---

१. क. ०कृत्वापस्मार० । २. क. दशाहुतः ।

मन्त्रार्णानथ तेष्वेव लिखेद्यन्त्रमिदं शुभम् ।
आपन्निवारणं सम्यक् भूतप्रेतामयापहम् ॥११५॥

अस्यार्थः—षट्कोणं विलिख्य, तन्मध्ये षट्कोणेष्वपि ठकारमालिख्य, तेषु ठकारेषु मन्त्रवर्णानेकैकशो लिखेन्मध्ये साध्याख्यां चेति **सम्प्रदायः** । तदुक्तफलदम् ।

वह्निगेहयुगे साध्यं लिखेत्तारगडाद्यगम् ।
षट्सु कोणेषु मन्त्रार्णान् तत्सन्धिष्वङ्गमन्त्रकान् ॥११६॥

ततः षोडशपत्रं स्यात्षोडशार्णानुसंयुतम् ।
वेष्टितं भूपुरेणाऽथ कृतसम्पातमुत्तमम् ॥११७॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं हितं परमदुर्लभम् ।
उन्मादग्रहभूतादीनभिचारांश्च नाशयेत् ॥११८॥

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये प्रणव, तन्मध्ये ठकारं ससाध्यमालिख्य, षट्सु कोणेषु शिष्टवर्णान् षट्कोणसन्धिष्वङ्गमन्त्रान्, तद्बहिः षोडशदलपद्मदलेषु षोडशाक्षरमन्त्रस्यैकैकाक्षरमालिख्य, बहिश्चतुरश्रेण वेष्टयेदिति । तथा—

षट्कोणे प्रणवगतं च कर्ममध्ये मन्त्रार्णान् दहनयुगस्य कोणकेषु ।
अङ्गाणून् विलिखतु सन्धिषूक्तमेतच्चोरादिग्रहभयनाशकं च यन्त्रम् ॥११९॥

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये ससाध्यं प्रणवं, कोणेषु शिष्टार्णान्, सन्धिष्वङ्गमन्त्रांश्च विलिख्योक्तेषु प्रयुज्यादिति । तथा—

कृशानुगृहयुग्मके लिख ससाध्यतारं लिखेत्,
षडश्रिषु मनुं च सन्धिविवरे तथाऽङ्गानि च ।
स्वरद्वयसुकेसरं वसुदलं लिखाष्टार्णयु-
ग्लिपिद्वयसुकेसरं विकृतिवर्णयुक्सद्दलम् ॥१२०॥

हक्षाभ्यां स्वाख्ययाऽऽवीतं पाशाङ्कुशवृतं त्रिधा ।
चक्रयन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वामयनिवारणम् ॥१२१॥

सर्वभीतिप्रशमनं क्षुद्रचोरविनाशनम् ।

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये प्रणवं ससाध्यं विलिख्य, तत्कोणेषु मन्त्रार्णांस्तत्सन्धिष्वङ्गमन्त्रांश्चाऽऽलिख्य, तद्बहिरष्टदलकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु षोडशस्वरान् सबिन्दून्, तद्दलेषु नारायणाष्टाक्षरवर्णान् सबिन्दुकानेकैकशो विलिख्य, तद्बहिः

षोडशदलकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु कादिसान्तान्सबिन्दुकानेकैकशो विलिख्य, तद्बहिः षोडशदलकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु कादिसान्तान्सबिन्दुकान्द्वन्द्वशो विलिख्य, तत्पत्रेषु वक्ष्यमाणसुदर्शनषोडशाक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरं च विलिख्य, पश्चाद्बहिः सप्त वृत्तानि कृत्वा, वीथीषट्कं परिकल्प्य, तास्वभ्यन्तरगतासु तिसृषु हकार-क्षकारयोर्मध्ये साध्यनामाक्षराणि कृत्वा, संवेष्टच, बाह्यासु तिसृषु पाशाङ्कुशबीजाभ्यां वेष्टयेदेतदुक्तफलदम् । तथा—

तारं हृद्भगवते प्रोक्त्वाऽन्ते महासु-पदं वदेत् ।
दर्शनाय हुमस्त्रान्तः षोडशार्णो मनूत्तमः ॥१२२॥

यन्त्रेषु लिखितो ह्येषः सर्वाभीष्टफलप्रदः ।

तारः प्रणवः, हृन्नमः, अस्त्रं फट्, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि, अत्र सन्धिः नमो भगवते इति । तथा—

अष्टरेखा लिखेत्ताश्च युगशः सम्प्रबन्धयेत् ॥१२३॥

अष्टार्णान्तरितान्पादान्हृषीकेशमनोर्लिखेत् ।
चतुःकोष्ठे मध्यकोष्ठत्रितये साध्यनामयुक् ॥१२४॥

चक्रमन्त्रं लिखेन्मन्त्री भवेत्तत्सप्तकोष्ठकम् ।
यन्त्रं भूर्जे क्षौमपट्टे कोमले कर्पटेऽथवा ॥१२५॥

सम्यक् च गुलिकीकृत्य लाक्षाभिः सम्यगावृतम् ।
कृतसम्पातपातं च सर्वापन्नाशकं स्मृतम् ॥१२६॥

अयमर्थः—प्राक्प्रत्यगायता अष्टरेखाः कृत्वा, रेखात्रितयं त्रितयमन्तरयित्वा, सर्वरेखाग्राणि बध्नीयादेवङ्कृते कोष्ठसप्तकं जायते । तत्राऽभ्यन्तरे कोष्ठत्रयं विहाय, पार्श्वद्वयवर्तिकोष्ठचतुष्टये नारायणाष्टाक्षरमन्त्रवर्णद्वयमध्यस्थस्थाने 'हृषीकेश' इति श्लोकस्य चरणचतुष्टयं स्ववामभागमारभ्य दक्षिणान्तमालिख्य, मध्यकोष्ठत्रये साध्याख्यां कर्मयुक्तां सुदर्शनमन्त्रवर्णद्वयान्तस्थितामालिखेद्यथा—'सं[1] देवदत्तं यज्ञदत्तस्य वशं कुरु कुरु हम्' इत्याद्यूह्य लिखेत् । तथा—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्याऽथ जगत्प्र च ।
हृष्यत्यनुर-शब्दान्ते ज्यते च पदमुच्चरेत् ॥१२७॥

---

१. ख. पुस्तके नाऽस्ति ।

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्तीति पदं वदेत् ।
सर्वे नमस्यन्ति चेति सिद्धसङ्घाः प्रकीर्तयेत् ॥१२८॥

हृषीकेशमनुः प्रोक्तः सर्वरक्षाकरः शुभः ।

मन्त्रोद्धारः सुगमः ।

यन्त्रसारे—

षट्कोणकर्णिकामध्ये तारं कोणेषु षट्स्वपि ।
चक्रमन्त्रषडङ्गानि तत्सन्धिषु दलेष्वथ ॥१२९॥

ऋतुपञ्चर्तुपञ्चर्तुपञ्चषट्पञ्चसंख्यकान् ।
स्थाने हृषीकेशमनोर्वर्णानष्ट सुकेसरे ॥१३०॥

अष्टाक्षरमनोर्वर्णमेकमेकं विलिख्य च ।
मातृकार्णैः समावेष्ट्य नूपुरेण च वेष्टयेत् ॥१३१॥

गीताऽनुष्टुब्यन्त्रमिदं सर्वरक्षाकरं परम् ।

अयमर्थः—षट्कोणमध्ये ससाध्यं तारं विलिख्य, षट्कोणेषु सुदर्शनषडक्षराणि, तत्सन्धिषु आचक्रादीन्षडङ्गमन्त्रांस्तद्बहिरष्टदलकेसरेषु नारायणाष्टाक्षरवर्णाष्टकं, दलेषु "स्थाने हृषीकेश तवे'ति श्लोकमन्त्रस्य षट्पञ्च, षट्पञ्च, षट्पञ्चक्रमेण वर्णान्विभज्य विलिख्य, बहिर्वृत्तयोरन्तराले मातृकार्णैरावेष्टय, बहिश्चतुरश्रं कुर्यादिति । तथा—

तारं हृत्स्याद्भगवते महा प्रोक्त्वा च ङेयुतम् ।
सुदर्शनपदं तद्वन्महाचक्राय वै महा- ॥१३२॥

ज्वालायोक्त्वा महादीप्तरूपायेति च सर्वतः ।
रक्षयुग्मं मां पदान्ते महान्ते च बलाय त्र ॥१३३॥

स्वाहान्तश्चक्रमन्त्रोऽयं गदितः सर्वकर्मसु ।
स्वाकरः सर्वसिद्धोऽयं क्रियमाणेषु कर्मसु ॥१३४॥

अस्याऽर्चनादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत् ।

तारः प्रणवः, हृन्नमः, भगवते इत्यनेन सन्धिः नमो भगवते इति । अन्यत्सुगमम् ।

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अथ राममनून्वक्ष्ये श्रेष्ठान्वैष्णवतन्त्रके ।
तत्राऽदौ मन्त्रराजस्तु षडर्णः प्रोच्यतेऽधुना ॥१३५॥

गाणपत्येषु सौरेषु शाक्तशैवेष्वभीष्टदः ।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्राः फलाधिकाः ॥१३६॥

गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिगुणाधिकाः ।
मन्त्रास्तेष्वप्यनायासफलदोऽयं षडक्षरः ॥१३७॥

षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघविनाशनः ।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥१३८॥

दैनन्दिनं च दुरितं पक्षमासर्तुवर्षजम् ।
सर्वं दहति निःशेषमूर्णाचलमिवानलः ॥१३९॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च ॥१४०॥

सर्वाण्यपि शमं यान्ति मन्त्रराजानुकीर्त्तनात् ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं हत्वाऽपि कल्मषम् ॥१४१॥

सञ्चिनोति नरो मोहाद् भूयस्तदपि नाशयेत् ।
ग्रामारण्यपशुघ्नत्वं सञ्चितं दुरितञ्च यत् ॥१४२॥

निःशेषं नाशयत्येव रामात्मा[1] मन्त्रराजकः ।
मद्यपानेन यत्पापं तदप्याशु विनाशयेत् ॥१४३॥

अभक्ष्यभक्षणोत्पन्नं मिथ्याज्ञानसमुद्भवम् ।
सर्वं विलीयते राममन्त्रस्याऽस्यैव कीर्त्तनात् ॥१४४॥

श्रोत्रियस्वर्णहरणाच्चैनो यदुपगच्छति ।
रत्नादेरपहारेण तदप्याशु विनाशयेत् ॥१४५॥

गत्वा तु मातरं मोहादगम्यां चाऽपि योषितम् ।
उपास्याऽनेन मन्त्रेण रामं तदपि नाशयेत् ॥१४६॥

---

१. क. समात्मा ।

महापातकयुक्तानां सङ्गत्या सञ्चितं च यत् ।
नाशयेत्तत्कथालापशयनासनभोजनैः[1] ॥१४७॥

पितृमातृवधोत्पन्नं बुद्धिपूर्वमघं च यत् ।
निःशेषं नाशयत्येव कालत्रयसमुद्भवम् ॥१४८॥

तदनुष्ठानमात्रेण सर्वमेव प्रलीयते ।
यत्प्रयागादितीर्थेन प्रायश्चित्तादिकैरपि ॥१४९॥

नैवापनुदते पापं तदप्याशु विनाशयेत् ।
पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु कुरुक्षेत्रादिषु स्वयम् ॥१५०॥

बुद्धिपूर्वमघं कुर्यात् तदप्याशु विनाशयेत् ।
कृच्छ्रैस्तप्तपराकाद्यैर्नानाचान्द्रायणैरपि ॥१५१॥

पापञ्च नाऽपनोद्यं यत्तदप्याशु विनाशयेत् ।
आत्मतुल्यसुवर्णादिदानैर्बहुविधैरपि ॥१५२॥

किञ्चिदप्यपरिक्षीणं पापं तदपि नाशयेत् ।
भूतप्रेतपिशाचादिकूष्माण्डग्रहराक्षसाः ॥१५३॥

दूरादेव पलायन्ते मन्त्रराजप्रभावतः ।
मालिन्यमपि साङ्कर्यं यच्च यावच्च दूषणम् ॥१५४॥

सर्वं विलयमाप्नोति मन्त्रराजानुकीर्त्तनात् ।
आब्रह्मवीर्यदोषाश्च नियमातिक्रमोद्भवाः ॥१५५॥

स्त्रीणां च पुरुषाणां स्युर्मन्त्रेणाऽनेन नाशिताः ।
शान्तः प्रसन्नो वरदोऽक्रोधनो भक्तवत्सलः ॥१५६॥

मन्त्रराजसमो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ।
सकामानां भुक्तिदोऽयं निष्कामानां च मुक्तिदः ॥१५७॥

नृणामुभयकामानां भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।
रात्यभीष्टं महीसंस्थो राजते वा महीस्थितः ॥१५८॥

---

१. ख. ०शयनाशन० ।

अथवा राक्षसा यस्मान्मरणं यान्ति सर्वतः । इत्यादि ।

अत्रैवं षडक्षरमन्त्रप्रभावकथनं सर्वेषामपि राममन्त्राणां साधारणं बोध्यम् । अथाऽत्रैकाक्षरमारभ्य क्रमेण सर्वे मन्त्रा उद्ध्रियन्ते । तत्र श्रीस्कन्दयामले—

वह्निस्थं शयनं विष्णोरर्द्धचन्द्रविभूषितम् ।
एकाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्त्रराज सुरद्रुमः ॥१५९॥

वह्निः रेफः, विष्णोः शयनं आकारः । अस्याऽर्थस्तत्रैव ।

रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते ।
मध्यगस्त्वावयोर्ब्रह्मा रविराकार उच्यते ॥१६०॥

ज्योतींषि कवलीकृत्य त्रीण्याकाशो विभुः स्वयम् ।
नादो विधत्ते सन्मात्रं त्वामेव परमेश्वरीम् ॥१६१॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

मूर्त्तिपञ्जरनामानं तत्त्वन्यासं च कारयेत् ।

तथा— ब्रह्मा मुनिः स्याद् गायत्रं छन्दो रामश्च देवता ॥१६२॥

दीर्घार्द्धेन्दुयुजाङ्गानि कुर्याद्वह्न्यात्मना मनोः ।

वह्न्यात्मना रेफेण ।

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने ॥१६३॥

श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् ।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥१६४॥

अवेक्ष्यमाणमात्मानमात्मन्यमिततेजसम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया ॥१६५॥

चिन्तयन् परमात्मानं भानुलक्षं जपेन्मनुम् ।

भानुलक्षं द्वादशलक्षम् । तथा—

वह्निर्नारायणेनाऽऽढ्यो जठरः केवलोऽपि च ॥१६६॥

केवलं इत्यनेन दीर्घराहित्यमुक्तं न तु व्यञ्जनमात्रम् ।

एकाक्षरोक्तमृष्यादि स्यादाद्येन षडङ्गकम् ॥१६७॥

तथा— तारमायारमानङ्गवाक्स्वबीजैश्च षड्विधः ।
अक्षरो मन्त्रराजः स्यात्सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥१६८॥

तारः प्रणवः, माया ह्रीं, रमा श्रीं, अनङ्गः क्लीमिति। वाक् ऐं, स्वं उक्तरामबीजम् ॥३॥

तथा— द्व्यक्षरश्चन्द्रभद्रान्तो द्विविधश्चतुरक्षरः ।
ऋष्यादि पूर्ववज्ज्ञेयमेतेषां च विचक्षणैः ॥१६९॥

सप्रतिष्ठौ रमौ वायुर्हृत्पञ्चार्णो मनुः स्मृतः ।

प्रतिष्ठा आ, रमौ रेफमकारौ, वायुर्य, हृत् नमः ।

विश्वामित्रो मुनिः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्दोऽस्य देवता ॥१७०॥

रामभद्रो बीजशक्ती प्रथमार्णाननी क्रमात् ।
भ्रूमध्ये हृदि नाभ्यन्ध्वोः पादयोर्विन्यसेन्मनुम् ॥१७१॥

षडङ्गं पूर्ववद्यद्वा मन्त्रार्णैर्मनुनाऽखिलकम् ।
मध्ये वनं कल्पतरोर्मूले पुष्पलतासने ॥१७२॥

लक्ष्मणेन प्रगुणितमक्ष्णः कोणेन सायकम् ।
अवेक्षमाणं जानक्या कृतव्यजनमीश्वरम् ॥१७३॥

जटाभारलसच्छीर्षं श्यामं मुनिगणावृतम् ।
लक्ष्मणेन धृतच्छत्रमथवा पुष्पकोपरि ॥१७४॥

दशास्यमथनं शान्तं ससुग्रीवविभीषणम् ।
विजयार्थी विशेषेण वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥१७५॥

तथा— स्वकामशक्तिवाग्लक्ष्मीताराद्यः पञ्चवर्णकः ।
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥१७६॥

पञ्चाशन्मातृकामन्त्रवर्णप्रत्येकपूर्वकः ।
लक्ष्मीवाङ्मन्मथादिश्च तारादिः स्यादनेकधा ॥१७७॥

श्रीमायामन्मथैकैकबीजाद्यन्तगतो मनुः ।
चतुर्वर्णः स एव स्यात् षडर्णो वाञ्छितप्रदः ॥१७८॥

स्वाहान्तो हुं फडन्तो वा नत्यन्तो वा भवेदयम् ।

स चतुर्वर्णः यः पूर्वमुक्तो रामभद्र-रामचन्द्र इत्येवंरूपो द्विविधः ।

पञ्चाशद्वर्णपूर्वो बीजपूर्वश्च षडक्षरः ॥१७९॥

तेन 'श्रीं ग्रं रामचन्द्र' इत्यादि पञ्चाशत् । एवं वाग्बीजादि पञ्चाशत्, कामबीजादि, तारादि । एवं शतद्वयम् । एवं 'श्रीं ग्रं रामभद्रे' त्यपि चतुःशतं सम्भूय[1] । **अगस्त्योऽपि** 'राम इत्यपरो मनुः' ।

चन्द्रान्तश्चैव भद्रान्तः पुनर्द्वेधा विभिद्यते ।
पञ्चाशन्मातृकामन्त्रवर्णप्रत्येकपूर्वकः ॥१८०॥

लक्ष्मीवाङ्मन्मथादिश्च सर्वत्र प्रणवादिकः । इति ।

श्रीमायेत्यादि—स एवं चतुर्वर्णः श्रीमायामन्मथैकैकबीजाद्यन्तगतः, षड्वर्णः षड्विधः, अयं चतुर्वर्णः स्वाहान्तः, हुं फडन्तः, नमोऽन्तश्च षड्वर्णः षड्विधः । पूर्वोक्तो यो नमोऽन्तः षड्विधः सोऽपि । एवमष्टादशभेदास्तेनाऽष्टादशाधिकचतुःशतसंख्यश्चतुरक्षरपञ्चाक्षराभ्यामुत्पन्नः षडक्षरभेद इति । तथा—

ब्रह्मा सम्मोहनः शक्तिर्दक्षिणामूर्त्तिरेव च ।
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्ता मुनयोऽनुक्रमादिमे ॥१८१॥

छन्दो गायत्रसंज्ञं च श्रीरामो देवता मतः ।
अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो मुनिर्मनोः ॥१८२॥

छन्दो देव्यादिगायत्री रामचन्द्रोऽस्य देवता ।
बीजशक्ती यथापूर्वं षड्वर्णान्विन्यसेन्मनोः ॥१८३॥

श्रीबीजयुक्तद्वयधिकशतस्याऽगस्त्य ऋषिर्विश्वामित्रो वा । कामबीजयुक्तद्वयधिकशतस्य सम्मोहनो विश्वामित्रो वा । एवं वाग्बीजयुक्तस्य दक्षिणामूर्त्तिर्विश्वामित्रो वा । एवं तारादेः शिवो विश्वामित्रो वा । एतेन स्वबीजयुक्तस्य ब्रह्मैव । मायायुक्तशतद्वयस्य शक्तिरेव । तथा—स्वाहा-हुंफट्-नमोऽन्तानां षण्णां च विश्वामित्र एव ।

तथा— ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृन्नाभ्यन्धुषु पादयोः ।
बीजैः षड्दीर्घयुक्तैर्वा मन्त्रार्णैर्वा षडङ्गकः ॥१८४॥

ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे ।
पुष्पकाख्यविमानान्तः सिंहासनपरिच्छदे ॥१८५॥

पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलमणिप्रभम् ।
वीरासनसमारूढं व्याख्यामुद्रोपशोभितम् ॥१८६॥

---

१. ख. भूय ।

वामोरुन्यस्तत्तद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
सर्वाभरणसम्पन्नं वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥१८७॥

वर्णलक्षम् षड्लक्षम् ।

रामश्च चन्द्रभद्रान्तो ङेऽन्तो नतियुतो द्विधा ।

ङेऽन्तश्चतुर्थ्यन्तः, नतिर्नमः ।

तारादिसहितः सोऽपि मन्त्रस्त्वष्टाक्षरः स्मृतः ॥१८८॥

तारादयः षट् प्रागुक्तास्तैः सहितः, सः द्विविधः सप्ताक्षरस्तेनाऽष्टाक्षरो द्वादशप्रकारः ।

ताराद्यन्तर्गतः सोऽपि नवार्णः स्यादनेकधा ।

सः सप्तार्ण एव[1] तारादिषण्मध्यगतैरेकैकेन सम्पुटितः । तेन नवार्णोऽपि द्वादशविधः ।

तारं रामश्चतुर्थ्यन्तः क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा ॥१८९॥

अष्टार्णोऽयं परो मन्त्र ऋष्यादिः स्यात्षडर्णवत् ।

क्रोधः हुं, अस्त्रं फट् ।

गुणबीजं वेदमायां हृद्रामाय पुनश्च ताम् ॥१९०॥

शिवो मा राममन्त्रोऽयं वस्वर्णः स्ववसुप्रदः ।

गुणबीजं प्रणवः, माया ह्रीं, हृत् नमः, तां मायां, स्ववसुप्रदः भुक्तिमुक्तिदः ।

ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्रं छन्द उच्यते ॥१९१॥

शिवो मा रामचन्द्रोऽस्य देवता परिकीर्त्तितः ।
दीर्घया माययाऽङ्गानि तारपञ्चार्णयुक्तया ॥१९२॥

'ॐ नमो रामाय ह्रां हृदयाय नमः, ॐ नमो रामाय ह्रीं शिरसे स्वाहे'त्यादिप्रयोगः ।

रामं त्रिनेत्रं सोमार्द्धधारिणं शूलिनं वरम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्द्दिनमुपास्महे ॥१९३॥

रामाभिरामां सौन्दर्यसीमां सोमावतंसिनीम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरां ध्यायेत्त्रिलोचनाम् ॥१९४॥

---

१. ख. ए ।

ध्यायन्नेव वर्णलक्षं जपेत्त्रिमधुराप्लुतैः ।
बिल्वपत्रैः फलैः पुष्पैस्तिलैर्वा पङ्कजैर्हुनेत् ।।१९५।।

दशांशमितिशेषः ।

जानकीवल्लभं ङेऽन्तं स्वाहान्तश्च हुमादिकः ।
दशाक्षरोऽयं मन्त्रः स्याद्वसिष्ठोऽस्य मुनिः स्वराट् ।।१९६।।

छन्दश्च देवता रामः सीतापाणिपरिग्रहः ।
आद्यं बीजं द्विठः शक्तिः कामेनाऽङ्गक्रिया मता ।।१९७।।

द्विठः स्वाहा, कामेन षड्दीर्घयुक्तेन ।

शिरोललाटभ्रूमध्यतालुकण्ठेषु हृद्यपि ।
नासान्धुजानुपादेषु दशार्णान्विन्यसेन्मनोः ।।१९८।।

अयोध्यानगरे रत्नचित्रे सौवर्णमण्डपे ।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणाञ्चिते ।।१९९।

सिंहासने समारूढं पुष्पकोपरि राघवम् ।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैर्दिव्ययानगतैः शुभैः ।।२००।।

संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम् ।
सीतालङ्कृतरामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम् ।।२०१।।

श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् ।
ध्यायन्नेवं जपेन्मन्त्रं वर्णलक्षमनल्पधीः ।।२०२।।

वर्णलक्षम् द्वादशलक्षम् ।

रामं ङेन्तं धनुःपाणयेऽन्ते स्याद्वह्निसुन्दरी ।

धनुःपाणये स्वरूपम् ।

दशाक्षरोऽयं मन्त्रः स्यान्मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम् ।।२०३।।

छन्दोऽस्य देवता प्रोक्तो रामो राक्षसमर्द्दनः ।
आद्यो बीजं द्विठः शक्तिस्तेनैवाऽङ्गानि पूर्ववत् ।।२०४।।

आद्यः रामिति, तेनैव कामेन ।

वर्णन्यासं तथा ध्यानं पौरश्चरणिकं विधिम् ।
दशाक्षरोक्तवत्कुर्याच्चापबाणधरं स्मरेत् ।।२०५।।

ॐ ह्रूं भगवते रामचन्द्रभद्रौ च ङेयुतौ ।
अकारार्णो द्विविधो यस्य ऋषिध्यानादि पूर्ववत् ॥२०६॥

रामान्तं स्वरूपं, पूर्ववद्दशाक्षरवत् ।

श्रीपूर्वं जयमध्यस्थं तद् द्विधा रामनाम च ।
त्रयोदशार्णऋष्यादि पूर्ववत्सर्वकामदः ॥२०७॥

श्रीराम जय राम जय जय राम ।

पदत्रयैर्द्विधावृत्तैरङ्गं ध्यानं दशार्णवत् ।
सतारं ह्रूं भगवते रामं ङेऽन्तं महा ततः ॥२०८॥

पुरुषाय पदं पश्चाद्धृदन्तोऽष्टादशाक्षरः ।
विश्वामित्रो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः ॥२०९॥

दशास्यदर्पदलनो रामभद्रः प्रकीर्त्तितः ।
तारं बीजं नमः शक्तिः षडङ्गं कल्पयेत्तत ॥२१॥

मूलमन्त्रं कोसलेन्द्रं सत्यसन्धमनन्तरम् ।
रावणान्तकनामानं सर्वलोकहितं तथा ॥२११॥

स्वादुप्रसन्नवदनं चतुर्थ्या नमसा वदेत् ।

मूलमन्त्रेण हृत्, कोसलेन्द्राय नमः शिरः, सत्यसन्धाय नमः शिखा, रावणान्तकाय नमः कवचम्, सर्वलोकहिताय नमो नेत्रम्, स्वादुप्रसन्नवदनाय नमोऽस्त्रम् ।

नन्दिग्रामस्योपवने भरतायतकौतुके ।
रम्यैः सुगन्धिपुष्पाद्यैर्वृक्षवृन्दैश्च मण्डिते ॥२१२॥

निःसानभेरीपटहशङ्खतूर्यादिनिःस्वने ।
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते ॥२१३॥

पटीरघुसृणोशीरकर्पूरागुरुसुगन्धिते ।
नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगन्धवहाञ्चिते ॥२१४॥

देवगन्धर्वनारीभिर्गायन्तीभिरलङ्कृते ।
सिंहासनसमारूढं पुष्पकोपरि राघवम् ॥२१५॥

सौमित्रिसीतासहितजटामुकुटशोभितम् ।
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम् ॥२१६॥

हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ।
रामचन्द्रं हृदि ध्यायन् दशलक्षं जपेन्मनुम् ॥२१७॥

रामभद्रं महेपूर्वेष्वासाऽग्निश्च युतः[1] परम् ।
वीरं नृपोत्तमपदं दशास्यान्तक मान्ततः ॥२१८॥

ततो रक्ष ततो देहि मे च दोपय मे[2]श्रियम् ।

अग्नी रेफः, श्लोकरूपो मन्त्रः ।

द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो विश्वामित्रो मुनिर्मतः ॥२१९॥

छन्दोऽनुष्टुब्देवता च रामभद्रः प्रकीर्त्तितः ।
चतुःकरणवेदाब्धिवस्वर्णैरङ्गकल्पनम् ॥२२०॥

करणानि चत्वारि, वेदाः चत्वारः ४, अब्धयः चत्वारः ४, वसवः अष्टौ ८, रामभद्र हृत्, महेष्वास शिरः, रघुवीर शिखा, नृपोत्तम कवचम्, दशास्यान्तक मां रक्ष नेत्रम्, देहि दापय मे श्रियं अस्त्रम् ।

मूर्द्धिन भाले दृशोः श्रोत्रं गण्डयुग्मे सनासिके ।
आस्यदोःसन्धियुगले स्तनहृन्नाभिमण्डले ॥२२१॥

कटचां मेढ्रे पार्श्वपादसन्धिष्वर्णान्न्यसेन्मनोः ।

दृशोर्वर्णद्वयं, द्वयं गण्डयोश्च, द्विवचनयुग्मपदाद्दोःपत्सन्धयः षोडश ।

पूर्वोक्तं ध्यानमत्राऽपि त्रिलक्षं नियतो जपेत् ॥२२२॥

पीतं वा चिन्तयेद्रामं धनार्थं यो मनुं जपेत् ।
सतारं हृद्भगवते चतुर्थ्या रघुनन्दनम् ॥२२३॥

रक्षोघ्नविशदं तद्वन्मधुरेति वदेत्ततः ।
प्रसन्नवदनं ङेऽन्तं वदेदमिततेजसे ॥२२४॥

बलरामौ चतुर्थ्यन्तौ विष्णुं ङेऽन्तं नतिं ततः ।
प्रोक्तो मालामनुः सप्तचत्वारिंशद्भिरक्षरैः ॥२२५॥

अमिततेजसे इत्यस्य न-पूर्वपदेन सन्धिरक्षरसंख्यानुपपत्तेः ।

मुनिः पितामहश्छन्दः स्यादनुष्टुप् च देवता ।
राज्याभिषिक्तो रामश्च बीजशक्ती यथा पुरा ॥२२६॥

---

१. ख. घुतः । २. क. मो ।

ॐ नमो भगवते हृत्, रघुनन्दनाय शिरः, रक्षोघ्नविशदाय शिखा, मधुर-प्रसन्नवदनाय कवचम्, अमिततेजसे नेत्रम्, बलाय रामाय विष्णवे नमः अस्त्रम् ।

शिरस्याननवृत्ते च भ्रूमध्येऽक्षिद्वयोरपि ।
श्रोत्रयोर्घ्राणयोश्चैव गण्डयोरोष्ठयोरपि ॥२२७॥

दन्तयोरास्यदेशे च दोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च ।
कण्ठे हृदि स्तनद्वन्द्वे पार्श्वयोः पृष्ठदेशतः ॥२२८॥

जठरे नाभ्यधिष्ठाने गुह्यवर्णान् क्रमान्न्यसेत् ।
ध्यानं दशाक्षरप्रोक्तं लक्षमेकं जपेन्मनुम् ॥२२९॥

बैल्वैः प्रसूनैर्वा पत्रैः फलैस्त्रिमधुना युतैः ।
मधुरत्रययुक्तेन पायसेनाऽथ वाऽम्बुजैः ॥२३०॥

होमं दशांशतः कुर्यात्तथा सर्वत्र तर्पणम् ।
रमा सीता चतुर्थ्यन्ता स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः ॥२३१॥

सीतामन्त्रश्च कथितः स्वतन्त्रोऽङ्गपरोऽपि च ।
जनकोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः ॥२३२॥

सीता भगवती प्रोक्ता श्रीबीजं शक्तिरन्त्यकौ ।
दीर्घस्वरयुजाद्येन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥२३३॥

पूजयेद्वैष्णवे पीठे ध्यायेद्राघवसंयुताम् ।
स्वर्णाभामम्बुजकरां रामालोकनतत्पराम् ॥२३४॥

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रमिष्टार्थं साधयेत्ततः ।
मन्त्रराजमगस्त्योक्तं लक्ष्मणस्य प्रतन्यते [1]॥२३५॥

रेफपूर्वं समुद्धृत्य सेन्दुं लक्ष्मणसंयुतम् ।
ङेऽन्तोऽयं लक्ष्मणमनुर्नमसाच समन्वितः ॥२३६॥

अगस्ति ऋषिरस्याऽथ गायत्रं छन्द उच्यते ।
लक्ष्मणो देवता प्रोक्तो लं बीजं शक्तिरस्य हि ॥२३७॥

नमः स्याद्विनियोगो हि पुरुषार्थचतुष्टये ।

---

१. पादद्वयं ख. पुस्तके नास्ति ।

रेफपूर्वं लकारम् ।

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम् ॥२३८॥

धनुर्बाणकरं रामसेवासंयुक्तमानसम् ।
पूजा तु वैष्णवे पीठे साङ्गावरणवर्जिता ॥२३९॥

सप्तलक्षं पुरश्चर्या ततः सिद्धीस्तु साधयेत् ।
भरतस्यैवमेव स्याच्छत्रुघ्नस्याऽप्ययं विधिः ॥२४०॥

आदौ चाऽयं ततो वाऽपि पूजायां राघवस्य तु ।
एतेषामपि कर्त्तव्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥२४१॥

अङ्गत्वेनोदिता ह्येते प्राधान्येनाऽपि सुन्दरि ।
वदेद्दशरथायेति विद्महे च पदं ततः ॥२४२॥

सीतापदं समुद्धृत्य वल्लभाय ततो वदेत् ।
धीमहीत्यपि तन्नोऽथ ततो रामः प्रचोदयात् ।२४३॥

एषा स्याद्रामगायत्री भक्तानां भुक्तिमुक्तिदा ।
जन्मप्रभृति यत्पापं दशभिर्याति संक्षयम् ॥२४४॥

पुराकृतं शतेनैव सहस्रेण जपेन वा ।
पुरश्चरणमस्याश्च चतुर्लक्षजपावधि ॥२४५॥

यच्च यावच्च पूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।
तारादिरेषा गायत्री मुक्तिमेव प्रयच्छति ॥२४६॥

मायादिरपि वैदुष्यं रमादिश्च श्रियं पराम् ।
मदनेनाऽपि संयुक्ता सम्मोहयति मेदिनीम् ॥२४७॥

अनयाऽऽराधितो रामः सर्वाभीष्टं प्रयच्छति ।
पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्त्ति मूलेन कल्पयेत् ॥२४८॥
श्रीं सीतायै द्विठान्तेन सीतां पार्श्वगतां यजेत् ।

पार्श्वं वामम् 'वामभागे समासीनामि'ति वचनात् ।

ततो दक्षिणकोणाग्रे सखायं लक्ष्मणं यजेत् ॥२४९॥
वामपार्श्वे त्रिकोणस्य शार्ङ्गं दक्षिणतः शरान् ।

वामादि किञ्चिदग्रे ।

अग्रपार्श्वद्वये शार्ङ्गशरानङ्गानि तद्बहिः ॥२५०॥

इति सारसङ्ग्रहात् । तथा—

अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च पूजयेत् ।
केसरेषु षडङ्गानि प्रथमावृतिरीरिता ॥२५१॥

द्वितीयाऽऽत्मादिभिः प्रोक्ता चतुर्भिश्च सशक्तिकैः ।
आत्मा चैवाऽन्तरात्मा च परमात्मा तृतीयकः ॥२५२॥

ज्ञानात्मा चेति दिक्पत्रेष्वाग्नेयादिदलेष्वथ ।
निवृत्तिं च प्रतिष्ठां च विद्यां शान्तिं यजेत्क्रमात् ॥२५३॥

तृतीया वासुदेवाद्यैर्दलमध्येषु चेरिताः ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः ॥२५४॥

श्रीश्च शान्तिस्तथा प्रीतिश्चतुर्थी च रतिः स्मृता ।
दिग्विदिक्क्रमतः पूज्या गन्धपुष्पादिभिः प्रिये ॥२५५॥

चतुर्थी वायुपुत्राद्यैः पत्राग्रे पूर्वतः क्रमात् ।
हनूमन्तं ससुग्रीवं भरतं सविभीषणम् ॥२५६॥

लक्ष्मणाङ्गदशत्रुघ्नान् जाम्बवन्तं दलाग्रतः ।
आञ्जनेयं च देवाग्रे वाचयन्तं तु पुस्तकम् ॥२५७॥

दक्षान्ययोश्च भरतशत्रुघ्नावात्तचामरौ ।
धारयन्तं च पाणिभ्यां छत्रं पृष्ठे च लक्ष्मणम् ॥२५८॥

सृष्ट्यादीर्मन्त्रिणः पूर्वदिक्क्रमेण कृताञ्जलीः ।
सृष्टिं जयन्तं विजयं सुराष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनम् ॥२५९॥

अकोपं धर्मपालाख्यं सुमन्त्रं च क्रमाद्यजेत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च जाबालं गौतमं तथा ॥२६०॥

भरद्वाजं काश्यपं च कौशिकं वाल्मिकिं तथा ।
नारदं सनकं चैव सनातनमतः परम् ॥२६१॥

सनत्कुमारं प्रयजेद् द्वादशारे विचक्षणः ।
नीलं नलं सुषेणं च महेन्द्रं शरभं ततः ॥२६२॥

द्विविदं वन्दनं गवाक्षं किरीटं च कुण्डलम् ।
श्रीवत्सं कौस्तुभं शङ्खं चक्रं गदां च पद्मकम् ॥२६३॥

षोडशाब्जेऽर्चयेत्पूर्वदिक्क्रमेण कृताञ्जलीन् ।
ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः ॥२६४॥

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्च महायशाः ॥२६५॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चाऽपराजितः ।
भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च दिशाम्पतिः ॥२६६॥

स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृता ।

महायशाः, अपराजितः, भगवानिति विशेषणम् ।

वरुणः सूर्यवेदाङ्गौ भानुरिन्द्रो रविस्तथा ॥२६७॥

गभस्ती तु यमः स्वर्णरेताश्चाऽथ दिवाकरः ।
मित्रो विष्णुरिति प्रोक्ता आदित्या द्वादश क्रमात् ॥२६८॥

धातारमन्ते प्रयजेद् द्वात्रिंशदुदिता[1] इमे ।
ध्रुवाद्यैरष्टमी ज्ञेया द्वात्रिंशद्दलपद्मके ॥२६९॥

इन्द्राद्यैर्भूगृहे बाह्ये नवमावरणं भवेत् ।
तदस्त्रैर्वज्रशक्त्याद्यैर्दशमावरणं स्मृतम् ॥२७०॥

अङ्गैरात्मादिभिर्वासुदेवाद्यैर्वायुजादिभिः ।
सृष्ट्यादिभिर्लोकपालैस्तदस्त्रैर्वा यजेत्प्रभुम् ॥२७१॥

यद्वाऽङ्गैर्वायुपुत्राद्यैः सृष्ट्याद्यैश्च दिशाधिपैः ।
तदस्त्रैश्च यजेद्देवं संक्षेपार्चा समीरिता ॥२७२॥

॥ **अथ प्रयोगः** ॥

तत्र प्रातःकृत्यादिगङ्गामन्त्रजपान्ते 'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः' इति मन्त्रेणाऽष्टधाऽभिमन्त्र्योक्तविधिना स्नानादिकं कृत्वा, सन्ध्यावन्दनेऽघमर्षणानन्तरं पुनर्जलमादाय 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहे'ति मन्त्रेण जलमभिमन्त्र्य,

---

१. क. •द्दुदिता । ख. ०दुरिता ।

स्वाहे"त्यादिकरषडङ्गन्यासं विधाय, "शिरसि—रां नमः, भ्रूमध्ये—रां, हृदि—मां, नाभौ—यं, गुह्ये—नं, पादयोः—मः" इति विन्यस्य, प्रागुक्तमूर्त्तिपञ्जरन्यासं तत्त्वन्यासं च कृत्वा, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते देवस्य वामभागे—"श्रीसीतायै स्वाहा, सीतायै नम' इति सीतां सम्पूज्य, दक्षभागे-[१] 'लं लक्ष्मणाय नमः", त्रिकोणपार्श्वे देवस्य किञ्चिद्वामाग्रे—शार्ङ्गाय,' दक्षिणाग्रे 'शरेभ्य' इति प्रधानार्चां कृत्वा, ततः प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु दिक्षु—"ॐ आत्मने०, अन्तरात्मने०, परमात्मने०, ज्ञानात्मने०, विदिक्षु—निवृत्त्यै०, प्रतिष्ठायै०, विद्यायै०, शान्त्यै०, ततो दलमध्येषु ॐवासुदेवाय०, सङ्कर्षणाय०, प्रद्युम्नाय०, अनिरुद्धाय०, विदिक्षु-श्रियै०, शान्त्यै०, प्रीत्यै०, रत्यै०, दलाग्रेषु—हनूमते०, सुग्रीवाय०, भरताय, विभीषणाय०, लक्ष्मणाय०, अङ्गदाय, शत्रुघ्नाय०, जाम्बवते०, अग्रेषु—सृष्टये०, जयन्ताय०, विजयाय०, सुराष्ट्राय०, राष्ट्रवर्द्धनाय०, अकोपाय०, धर्मपालाय०, सुमन्त्राय०, द्वादशदलेषु—वसिष्ठाय०, वामदेवाय०, जाबालाय०, गौतमाय०, भरद्वाजाय०, कश्यपाय०, कौशिकाय०, वाल्मीकये०, नारदाय०, सनकाय०, सनातनाय०, सनत्कुमाराय०, ततः षोडशदलेषु—नीलाय०, नलाय०, सुषेणाय०, महेन्द्राय०,[२] शरभाय०, द्विविदाय०, वन्दनाय०,[३] गवाक्षाय०, किरीटाय०, कुण्डलाय०, श्रीवत्साय०, कौस्तुभाय०, शङ्खाय०, चक्राय०, गदायै०, पद्माय०, ततो द्वात्रिंशद्दलेषु—ध्रुवाय०, धराय[४]०, सोमाय०, आपाय०, अनिलाय०, अनलाय०, प्रत्यूषाय०, प्रभासाय०, वीरभद्राय०, शम्भवे०, गिरीशाय०, अजैकपादे०, अहिर्बुध्न्याय०, पिनाकिने०, भुवनाधीश्वराय०, कपालिने०, दिक्पतये०, स्थाणवे०, भगाय०, वरुणाय०, सूर्याय०, वेदाङ्गाय०, भानवे०, इन्द्राय०, रवये०, गभस्तिने०, यमाय०, स्वर्णरेतसे०, दिवाकराय०, मित्राय०, विष्णवे०, धात्रे नम" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति ।

मन्त्रान्तराणां तु न्यासध्यानादि विशेषः । अर्चनं तु समानमेव । सारसङ्ग्रहे तु द्वात्रिंशद्देवतानां पूजानन्तरम्—

वषट्कारञ्च पुरतः प्रयजेत्सगुणत्रयम् ।
ततो मेषादिराशींश्च यजेन्नागाष्टकं ततः ॥२७३॥

अनन्तो वासुकिः स्थाणुः कक्कोलः पद्म एव च ।
महापद्मस्तथा शङ्खः कुलिकश्चाऽष्टमः स्मृतः ॥२७४॥

---

१. ख. तद्दक्षभागे । २. क. मेन्दाय० । ख. मन्दाय । ३. क. चन्दनाय० । ४. क. ख. धरायै ।

इत्यावरणान्तरमुक्तम् । एते चतुर्विंशतिसंख्याका द्वात्रिंशद्दलपद्माद्बहिश्चतुर्द्दलपङ्कजे पूज्याः । अधिकस्याऽधिकं फलमिति । तथा—

षट्सहस्रं सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्री नो चेत्प्राप्नोत्यधोगतिम् ॥२७५॥

लक्षषट्कं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
कमलैर्मधुराभ्यक्तैरेधितेऽग्नौ सुपूजिते ॥२७६॥

तर्प्पयेत्सलिलैः शुद्धैः शीतलैश्चन्द्रवासितैः ।
अभिषिक्तः समभ्यर्च्य ब्राह्मणान्भोजनादिभिः ॥२७७॥

गुरुमभ्यर्च्य विभवैस्तोषयेद्भक्तिसंयुतः ।
तदाज्ञयाऽथ कुर्वीत प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ॥२७८॥

धनाय कमलैर्जातीपुष्पैश्चन्दनलोलितैः ।
जुहुयाद्धनाधिपो भूयान्नीलोत्पलहुतेन च ॥२७९॥

वशयेद्विश्वमखिलं बिल्वपुष्पैर्द्धनाप्तये ।
आधाय कुण्डे विधिवदग्निं पूर्वोक्तवर्त्मना ॥२८०॥

तत्र देवं समावाह्य पूजयेदुपचारकैः ।
पञ्चभिर्वा षोडशभिः पूजोपकरणैः पृथक् ॥२८१॥

पलाशाश्वत्थखदिरोदुम्बराम्रद्रुमेन्धनैः ।
अग्निं प्रज्वालयेत्सम्यग् याज्ञियैरथवैन्धनैः ॥२८२॥

तत्र सम्पूजयेत्सम्यग्राघवं प्रोक्तवर्त्मना ।
लक्ष तदर्द्धमथवा जपित्वा तद्दशांशतः ॥२८३॥

तिलैर्वा कमलैर्हुत्वा यद्यदिष्टं तदाप्नुयात् ।
बिल्वप्रसूनैरैश्वर्यमेधितेऽग्नौ हुतैर्भवेत् ॥२८४॥

पलाशकुसुमैर्हुत्वा मेधावी वेदविद्भवेत् ।
दूर्वाभिश्च गुडूचीभिः प्रत्येकमपि वा हुतैः ॥२८५॥

निरामयश्च दीर्घायुर्भवत्येव न संशयः ।
ध्यात्वाऽथ मन्मथं रामं सीतामपि रतिं स्मरन् ॥२८६॥

सर्ववश्यप्रयोगेषु जपहोमादिकर्मसु ।
रामं नवोढया तारं स्मरन्नाराध्य भक्तितः ॥२८७॥

उपैति सदृशीं कन्यां लाजाहोमेन साधकः ।
रामं विधिवदाराध्य ज्वलितेऽग्नौ प्रयोगवित् ॥२८८॥

मधुरत्रययुक्तेन पायसेन हुनेत्सुधीः ।
सर्वाधिपत्यं वैदुष्यं भवेदेव न संशयः ॥२८९॥

तिलैश्च तण्डुलैराज्यैर्हुत्वा लोकस्य पूजितम् ।
आरात्संवत्सरं यावत्षट्सहस्रं दिने दिने ॥२९०॥

जपेच्च जुहुयादग्नौ तद्दशांशं घृतान्धसा ।
अयमेवाऽन्नदो लोके सर्वेषामपि जायते ॥२९१॥

बिल्वप्रसूनैः कुमुदैस्तथा बिल्वदलैरपि ।
हुत्वा स तु लभेल्लक्ष्मीमचिरान्मन्त्रसाधकः ॥२९२॥

आराध्य रामं चण्डांशुमण्डले वत्सरात्सुधीः ।
उदयाद्यावदस्तं स्याज्जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥२९३॥

फलं भवति तस्याऽऽशु देवानामपि दुर्लभम् ।
वैदुष्येणाऽऽधिपत्येन सभ्यानामुत्तमो भवेत् ॥२९४॥

पूर्णिमासु निशीथिन्यामुदयास्तमयं विधोः ।
संवत्सरं प्रकुर्वीत जपहोमादिकं बुधः ॥२९५॥

रात्रौ जपेद्दिवा होमं कुर्यादेवाऽपरेऽहनि ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु व्रतमेतत्समापयेत् ॥२९६॥

सोमसूर्यादिकं यस्तु व्रतं कुर्वीत मानवः ।
भुक्तिं मुक्तिं च लभते इह लोके परत्र च ॥२९७॥

रक्तपद्मैश्च बन्धूकैस्तथा रक्तोत्पलैरपि ।
अभीष्टलोकवश्यार्थं जुहुयादर्चितेऽनले ॥२९८॥

राज्यैश्वर्योपभोगार्थं जपेल्लक्षमनन्यधीः ।
पद्मैर्बिल्वप्रसूनैर्वा दशांशं जुहुयात् सुधीः ॥२९९॥

समुद्रतीरे गोष्ठे वा लक्षजापी पयोव्रतः ।
पायसेनाऽऽज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत् ॥३००॥

मन्त्रवित्स्वाधिपत्याय शाकाहारो जलान्तरे ।
जपेल्लक्षं च जुहुयाद्बिल्वपत्रैर्दशांशतः ॥३०१॥

तदेव पुनरायाति चाऽऽधिपत्यं न संशयः ।
उपोष्य गङ्गादिजलान्तरस्थो राम समाराध्य जपेच्च लक्षम् ।
हुत्वा दशांश कमलैस्तिलैर्वा जपाप्रसूनैर्मधुरत्रयाक्तैः ॥३०२॥

राजा श्रियं विन्दति मन्दभाग्योऽप्यमुष्य राज्यं च सदा स्थिरं स्यात् ।
रामं समाराध्य च यो जपेच्च राज्यं श्रिय विन्दति सेन्दुखण्डैः ॥३०३॥

वैशाखे राघवं सूर्ये पश्यन्ननिमिषेक्षणः ।
निराहारो जपेल्लक्षं मौनी पञ्चाग्निमध्यगः ॥३०४॥

दशांशं कमलैर्हुत्वा सर्वभोगो भवेद् ध्रुवम् ।
माघमासे जले स्थित्वा कन्दमूलफलाशनः ॥३०५॥

जपेल्लक्षं च जुहुयात्पायसेनार्ऽचितेऽनले ।
दशांशं पुत्रपौत्राद्यैरुपेतः प्राप्नुयाच्छ्रियम् ॥३०६॥

श्रीरामसदृशः पुत्रः पौत्रोऽप्यस्य प्रजायते ।
बलिष्ठैः शत्रुभिर्मन्त्री परिभूतार्थमानतः ॥३०७॥

तदा हन हनेत्युक्त्वा जपान्ते वा रणे जपेत् ।
ध्यात्वा रघुपतिं क्रुद्धं कालानलमिवाऽपरम् ॥३०८॥

आकर्णसशराकृष्टकोदण्डभुजमण्डितम् ।
रणाङ्गणे रिपून्सर्वान् तीक्ष्णमार्गणवृष्टिभिः ॥३०९॥

संहरन्तं महावीरमुग्रमैन्द्ररथस्थितम् ।
लक्ष्मणादिमहावीरैर्युतं[1] हनुमदादिभिः ॥३१०॥

कोटिकोटिमहावीरैः शैलवृक्षकरोद्धतैः[2] ।
वज्रीकरणहुङ्कारमोङ्कारसुमहारवैः ॥३११॥

नदद्भिरभिधावद्भिः समरेऽरिगणं प्रति ।
एवं ध्यात्वा निराहारो मारणाय रिपोः पुनः ॥३१२॥

---

१. क. महावीरैर्युतैः । २. ख. ०करोद्धनैः ।

जुहुयाच्छाल्मलीपुष्पैर्दशांशं मन्त्रसाधकः ।
अत्यन्तं तु समृद्धोऽपि न शत्रुरवशिष्यते ॥३१३॥

वैरिणं रावण ध्यात्वा तथाऽऽत्मानं रघूद्वहम् ।
विधाय पूर्ववत्सर्वमनायासेन मारयेत् ॥३१४॥

सीताहरणशोकाच्च स्तब्धीभूतमचेतसम् ।
जपेद्रघुपतिं ध्यात्वा निराहारो जले वसन् ॥३१५॥

दशांशं च तिलैर्हुत्वा स्तम्भयेच्छत्रुसंहतिम् ।
निधाय वायुबीजान्ते तन्नाम भ्रामयेति च ॥३१६॥

जपेन्नक्तं निराहारो जुहुयाच्च तिलैरपि ।
रामं ध्यात्वा विषण्णं तं सीतान्वेषणकातरम् ॥३१७॥

भ्रमयत्यचिरात्साक्षाद्धेमाद्रिमपि वैरिणम् ।
समुद्रतीरे लङ्कायां हेमप्राकारसन्निधौ ॥३१८॥

सुग्रीवादिभिरन्यैश्च दैवतैर्नारदादिभिः ।
उपास्यमानं[1] सदसि ध्यात्वा देवं सलक्ष्मणम् ॥३१९॥

विभीषणायाऽऽगताय ध्यात्वा तं शरणार्थिने ।
वरदं तं जपेल्लक्षं जुहुयात्पङ्कजैरपि ॥३२०॥

स्वस्थानमानयेच्छीघ्रं राजानमथवा प्रभुम् ।
निमील्य चक्षुषी स्नेहादुपलभ्य पुनः पुनः ॥३२१॥

प्रमोदयन्तं सहयाऽऽविरादान्मातलीप्रभुम् ।
रामं ध्यात्वा जपेल्लक्षं हुत्वा रक्ताम्बुजैरपि ॥३२२॥

सम्मोहयति वेगेन राजानमपि वा प्रभुम् ।
तारादिर्मुक्तये ह्येष रमादिर्भुक्तये तथा ॥३२३॥

वाक्सिद्धये च वाग्बीजं प्रणवान्ते नियोजयेत् ।
मान्मथं सर्ववश्याय यदेतत्त्रितयं पुनः ॥३२४॥

---

१. ख. उपास्यमाणां ।

तारान्ते चैव तन्मन्त्री सर्वार्थे विनियोजयेत् ।

स्कन्दयामले—

आदौ विरच्य षट्कोणं तन्मध्ये बीजमालिखेत् ।
तद्बीजान्तरधः साध्य साधकाख्यं तदूर्द्ध्वतः ॥३२५॥

षष्ठ्या च साधकं कर्म मध्ये तत्पार्श्वयोः क्रियाम् ।
रमाबीजं च तस्यान्तस्तत्सर्वं वेष्टयेत्ततः ॥३२६॥

सम्मुखाभ्यां च साराभ्यां कोणेष्वङ्गमनून् लिखेत् ।
षट्कोणपार्श्वयोर्मायाश्रीबीजेऽग्रेषु मन्मथम् ॥३२७॥

षट्सन्धिषु च हुँ बीजं तत्सर्वं वेष्टयेत्ततः ।
वाग्भवेन बहिः पद्ममष्टपत्रं सकेसरम् ॥३२८॥

केसरेषु स्वरान्वर्णान् पत्रेषु विलिखेत्क्रमात् ।
पत्राग्रेषु लिखेन्मालामन्त्रवर्णानृतून्मितान् ॥३२९॥

पद्म चाऽन्त्यदले बाह्ये पुनरष्टच्छदाम्बुजम् ।
तत्केसरेषु श्रीबीजं दलेष्वष्टाक्षराणि च ॥३३०॥

नारायणमनोर्बाह्ये पद्मं द्वादशभिर्द्दलैः ।
तत्केसरेषु चत्वारि चत्वारि विलिखेत्क्रमात् ॥३३१॥

अकारादिक्षकारान्तान्मातृवर्णान्सबिन्दुकान् ।
शिष्टानन्त्ये तद्दलेषु विलिखेत्परमेश्वरि ॥३३२॥

वासुदेवमनोर्वर्णान्द्वादशैकैकशः क्रमात् ।
बहिः षोडशपत्राब्जं मायाबीजाढ्यकेसरम् ॥३३३॥

तत्पत्रेषु च वर्मास्त्रहृदन्तान्द्वादशार्णकान् ।
विलिख्य तत्सन्धिषु तु वायुपुत्रादिबीजकान् ॥३३४॥

द्वात्रिंशद्दलसंयुक्तं पद्मं कृत्वाऽथ तद्बहिः ।
तन्मूलेषु लिखेच्छक्तिमारश्रीबीजकानि च ॥३३५॥

रामानुष्टुभमन्त्रार्णान्नृसिंहानुष्टुबर्णकान् ।
दलेष्वेकैकशो देवि विलिख्य तदनन्तरम् ॥३३६॥

पत्राग्रेषु च मन्त्रज्ञो वषडित्यक्षरद्वयम् ।
बहिर्भूपुरमालिख्य वज्राष्टकविराजितम् ॥३३७॥

नृसिंहबीजं तद्दिक्षु वाराहं कोणकेषु च ।
विलिखेद्रामयन्त्रं हि सर्वयन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥३३८॥

साधितं जपपूजाभ्यां होमसम्पातसेकतः ।
धृतं शिरसि वा बाहावायुरारोग्यदं नृणाम् ॥३३९॥

रक्षाकरं महेशानि महदैश्वर्यवर्द्धनम् ।
वन्ध्यानामपि नारीणां पुत्रदं सुखदं परम् ॥३४०॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव गोपनीयं सुरेश्वरि ।
यस्मै कस्मै नैव देयं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥३४१॥

किं बहूक्तेन देवेशि सर्वदं नाऽत्र संशयः ।

अयमर्थः—षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये श्रीरामबीजं विलिख्य, तन्मध्ये प्रमाणोक्तरीत्या साध्यनामाऽऽलिख्य, तत्सर्वमन्योन्याभिमुखप्रणवाभ्यां संवेष्टय, षट्सु कोणेषु षडङ्गमन्त्रानालिख्य,[1] षट्कोणपार्श्वयोर्वामे मायां, दक्षे श्रीबीजं च विलिख्य, तत्कोणाग्रेषु कामबीजं, षट्कोणसन्धिषु हुं बीजमालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तदन्तरालवीथ्यां वाग्भवबीजानि निरन्तरं वृत्ताकारेण विलिख्य, तद्बाह्येऽष्टदलं कृत्वा, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः षोडशस्वरान्, तद्दलेषु कचटतपयश-लाख्यानष्टवर्णान्, तत्पत्राग्रेषु पूर्वोक्तमालामन्त्रवर्णान् षट् षट् समालिख्याऽन्तिमे पञ्चवर्णान्समालिख्य, तद्बहिः पुनरष्टदलं कृत्वा, तत्केसरेषु श्रीबीजं, दलेषु-नारायणाष्टाक्षराणि चाऽऽलिख्य, तद्बहिर्द्वादशकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु मातृ-काणांश्चतुरश्चतुरस्तद्दलेषु वासुदेवद्वादशार्णानिकैकशो विलिख्य, तद्बहिः षोडशदल-केसरेषु मायाबीजं प्रतिकेसरं, दलेषु पूर्वोक्तद्वादशाक्षराणि द्वादशदलेषु विलिख्याऽव-शिष्टदलेषु 'हुं फट् नम' इति वर्णचतुष्टयं प्रतिदलमेकैकं विलिख्य, तद्दलान्तरालेषु प्रागुक्तहनुमदाद्यष्टकसृष्टयाद्यष्टकयोर्नामाक्षराणि सबिन्दूनि विलिख्य, तद्बहिर्द्वा-त्रिंशद्दलेषु पूर्वोक्तश्लोकरूपद्वात्रिंदक्षररामन्त्राणान्नृसिंहद्वात्रिंशदर्णमन्त्रवर्णांश्चै-कैकशस्तत्केसरेषु प्रतिकेसरं शक्तिश्रीकामबीजानि विलिख्य, पत्राग्रेषु प्रत्यग्रं

---

१. ख. षडङ्गमन्त्राणां० ।

'वषडि' ति विलिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रं वज्राष्टकयुतं कृत्वा, तत्र दिक्षु प्रोक्तनृसिंह-बीजं, विदिक्षु वाराहबीजं च लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवतीति ।

सारसङ्ग्रहे—

दहनपुरयुगे च मारबीजे विलिखतु साध्यसमन्वितं च बीजम् ।
वृतमिदमनुवर्णकैश्च शिष्टैस्तदनु दशाक्षरमन्त्रवर्णवीतम् ॥३४२॥

षडपि च हृदयाद्यमुख्यकोणे विलिखतु शक्तिरमे च कोणपार्श्वे ।
कवचमनुमथो लिखेत्तदग्रे वसुदलकेसरगान् द्विशः स्वरांश्च ॥३४३॥

ऋतुपरिमितवर्णकांश्च मालामनुसुभवांश्च तदन्तिमांश्च ।
कमुखलिपिवृतं धरापुरस्थं दिशि नृहरेश्च वराहबीजमस्त्रे ॥३४४॥

जपहोमादिना सम्यक्साधितं यन्त्रमुत्तमम् ।
सर्वेष्टफलदं मोक्षदायकं श्रीकरं परम् ॥३४५॥

अस्यार्थः—षट्कोणं विरच्य, तन्मध्ये कामबीजोदरे रामबीजं प्राग्वत्ससाध्यं विलिख्याऽवशिष्टमूलमन्त्रार्णैरावेष्टय, तद्बहिश्च 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहे' ति मन्त्रेणाऽऽवेष्टय, षट्कोणेषु प्राग्वत्षडङ्गमन्त्रांस्तत्पार्श्वयोर्वामदक्षिणयोर्मायाबीजं चैकैकशो विलिख्य, कोणाग्रेषु 'हुं' बीजं च विलिख्य, बहिरष्टदलकमलकेसरेषु द्वन्द्वशः स्वरान्, तद्दलेषु प्राग्वन्मालामन्त्रवर्णान्समालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तदन्तरालवीथ्यां कादिक्षान्तवर्णैः सबिन्दुकैः संवेष्टय, बहिश्चतुरश्रे दिक्षु नृसिंहबीजं, कोणेषु वराहबीजं च लिखेदेतदुक्तफलदम् । तथा—

षट्कोणे प्रणवं च साध्यसहितं मूलाणुमश्रिष्वथो,
सन्धिष्वङ्गमनूंश्च शक्तिमदनौ षट्कोणपार्श्वे लिखेत् ।
किञ्जल्केषु कला द्विशश्च दलगं मालाणुषड्वर्णकं,
वस्वत्यन्त्यदले दशार्णमनुना काद्यैर्वृतं भूस्थितम् ॥३४६॥

दिशि विदिशि नृसिंहवराहकौ विलिखतु भूर्जदले कनकोद्भवे ।
राजतेऽथ सुसाधितमुत्तमं विभवकीर्तिरमाविजयप्रदम् ॥३४७॥

अस्यार्थः— तत्र षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, कोणषट्के मूलमन्त्रस्य षडर्णान्, तत्सन्धिषु षडङ्गमन्त्रान्, तत्पार्श्वयोः शक्तिबीजं कामबीजं वामदक्षयोर्विलिख्य, तद्बहिरष्टदलकमलं कृत्वा, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः

स्वरान्, दलेषु प्राग्वन्मालामन्त्रवर्णांश्च विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा, तत्राऽभ्यन्तरवीथ्यां दशाक्षरमन्त्रेण पूर्वोक्तेनाऽऽवेष्टय, बाह्यवीथ्यां कादिक्षान्तवर्णैरावेष्टय, बहिश्चतुरश्र कृत्वा, तद्दिक्षु नृसिंहबीजं, विदिक्षु वराहबीजं च लिखेदेतदुक्तफलदम् ।

ब्रह्मोवाच—

वन्दे रामं जगद्वन्द्यं सुन्दरास्यं शुचिस्मितम् ।
कन्दर्पकोटिलावण्यं कामितार्थफलप्रदम् ॥३४८॥

भास्वत्किरीटकटककटिसूत्रोपशोभितम् ।
विशाललोचनं भ्राजत्तरुणारुणकुण्डलम् ॥३४९॥

नीलजीमूतसङ्काशं नीलालकवृताननम् ।
ज्ञानमुद्रालसद्दक्षबाहुं ज्ञानमयं विभुम् ॥३५०॥

वामजानुपरिन्यस्तवामाम्बुकरं हरिम् ।
वीरासने समासीनं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥३५१॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोमलावयवोज्ज्वलम् ।
जानकीलक्ष्मणाभ्याञ्च वामदक्षिणशोभितम् ॥३५२॥

हनुमद्रविपुत्रादिकपिमुख्यैश्च सेवितम् ।
दिव्यरत्नसमायुक्तसिंहासनगतं प्रभुम् ॥३५३॥

प्रत्यहं प्रातरुत्थाय ध्यात्वैवं राघवं हृदि ।
एभिः षोडशभिर्नामपदैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥३५४॥

नमो रामाय शुद्धाय बुद्धाय परमात्मने ।
विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय ते नमः ॥३५५॥

नमो रावणहन्त्रे ते नमो बलिविनाशिने ।
नमो वैकुण्ठनाथाय नमो विष्णुस्वरूपिणे ॥३५६॥

नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञभोक्त्रे नमो नमः ।
योगिध्येयाय योगाय परमानन्दरूपिणे ॥३५७॥

शङ्करप्रियमित्राय जानक्याः पतये नमः ।
य इदं प्रातरुत्थाय भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥३५८॥

षोडशैतानि नामानि रामचन्द्रस्य नित्यशः ।
पठेद्विद्वान् स्मरेन्नाम स एव स्याद्रघूत्तमः ॥३५९॥

श्रीरामे भक्तिरतुला भवत्येव हि सर्वदा ।
जगत्पूज्यः सुखं जीवेद्रामभद्रप्रसादतः ॥३६०॥

मरणे समनुप्राप्ते श्रीरामः सीतया सह ।
हृदि सन्दृश्यते तस्य साक्षात्सौमित्रिणा सह ॥३६१॥

नित्यं चाऽपररात्रेषु रामस्येमां समाहितः ।
मुच्यतेऽनुस्मृतिं जप्त्वा मृत्युदारिद्रचपातकैः ॥३६२॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे रामाऽनुस्मृतिः सम्पूर्णा ।

तथा— आञ्जनेयमनुर्लोके[1] भुक्तिमुक्त्येकसाधनम् ।
प्रकाशितः शङ्करेण लोकानां हितमिच्छता ॥३६३॥

भूतप्रेतपिशाचादि डाकिनीब्रह्मराक्षसाः ।
दृष्ट्वाऽवशाः पलायन्ते मन्त्राऽनुष्ठानतत्परान् ॥३६४॥

चतुःषष्टि ह्यपस्मारान् षड्विंशतिरतिग्रहान् ।
शत शिशुग्रहाँस्तद्वत्त्रिषष्टिब्रह्मराक्षसान् ॥३६५॥

गन्धर्वान् द्वादश तथा भूतान्नानाविधान् ग्रहान्
सप्तधा राजयक्ष्माणं तथा चाऽष्टविधं ज्वरम् ॥३६६॥

चतुर्विंशद्विषं घोरमन्यान्दंशानसंख्यकान् ।
डाकिनीत्यादिकानन्यान्स्मरणादेव नाशयेत् ॥३६७॥

गुटिकां पादलेपञ्च रसं[2] चैव रसायनम् ।
खड्गं सदञ्जनं चैव खेचरं पादुकादिकान् ॥३६८॥

विद्वेषणं मारणञ्च वश्यमाकर्षणं तथा ।
उच्चाटं मोहनञ्चैव सप्तद्वीपाधिपत्यकम् ॥३६९॥

विद्याधराणां सर्वेषां चक्रवर्त्ती न संशयः ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमो भगवते पदम् ॥३७०॥

---

१. ख. ०मनोर्लोके । २. ख. रक्षं ।

ङेऽन्तं प्रस्फुटसंयुक्तं पराक्रमपदं वदेत् ।
तथाऽऽक्रान्तपदोपेतं दिङ्मण्डलमुदीरयेत् ॥३७१॥

यशोवितानधवलीकृतजगत्पदं वदेत् ।
त्रितयाय पदं वज्रदेहरुद्रावतारतः ॥३७२॥

सम्बुद्ध्यन्तपदं लङ्कापुरीदहनमीरयेत् ।
उदधिलङ्घनं चाऽपि दशग्रीवकृतान्तकम् ॥३७३॥

सीताश्वासनशब्दं च ह्यञ्जनागर्भसम्पदम् ।
भूतान्ते रामलक्ष्मणानन्दकरमीरयेत्[1] ॥३७४॥

[2]कपिसैन्यप्र-पादान्ते कारसुग्रीवसापदम् ।
धारणान्ते पर्वपदं तोत्पाटनपदं वदेत् ॥३७५॥

बालब्रह्मपदं चारिणो गभीरपदं वदेत् ।
शब्दं सर्वग्रहं प्रोक्त्वा विनाशनमथोच्चरेत् ॥३६७॥

सर्वज्वरहरं डाकिनीविध्वंसन ईरयेत्[3] ।
ततस्तारं समुच्चार्य महामायां त्रिरुच्चरेत् ॥३७७॥

एहि सर्वविषं पश्चाद् वरं परबलं[4] पदम् ।
क्षोभयान्ते च मे सर्वकार्याणि साधयद्वयम् ॥३७८॥

वर्मास्त्राग्न्यङ्गणान्तोऽयं[5] हनूमन्मन्त्र ईरितः ।
ऋषिरीश्वर एव स्यादनुष्टुप् छन्द उच्यते ॥३७९॥

हनूमान् देवता प्रोक्तः सर्वाभीष्टफलप्रदः ।
नमो भगवते चाऽऽञ्जनेयायाऽनेन हृन्मतम् ॥३८०॥

रुद्रमूर्त्तय[6] इत्येवं शिरोमन्त्र उदाहृतः ।
ङेन्तो वायुसुतश्चाऽयं शिखामन्त्र उदीरितः ॥३८१॥

अग्निगर्भाय च ततः कवचाणुरयं मतः ।
रामदूताय च पुनर्नेत्रमन्त्रः समीरितः ॥३८२॥

---

१. क. ०लक्ष्म स्यानन्द० । २. ख. कपिसैन्यप्राकारपदान्ते । ३. ख. एरयेत् ।
४. क. पद्बलं । ५. ख. ०नान्तोयं । ६. क. ऊरुमूर्त्तय ।

ब्रह्मास्त्रतो निवारान्ते णायेत्यस्त्रमनुर्मतः ।
एवं षडङ्गं च सुधीः कृत्वा ध्यायेदनन्यधीः ॥३८३॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्ति द्विभुजं च कृताञ्जलिम् ।
कुण्डलद्वयसंशोभिमुखाम्भोजं स्मरेन्मुहुः ॥३८४॥

पूजा तु वैष्णवे पीठे शैवे वा विदधीत वै ।
आवृतीनि विना नित्यं वरिष्ठैश्चन्दनादिभिः ॥३८५॥

अयुतं च पुरश्चर्या रामस्याऽग्रे शिवस्य वा ।

'द्रव्याऽनुक्तौ घृतं होमे' इति कपिलवचनात् घृतेनैव दशांशहोमस्तर्पणादिकं च ।

ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय हृत्, रुद्रमूर्त्तये शिरः, वायुसुताय शिखा, अग्निगर्भाय कवचम्, रामदूताय नेत्र, ब्रह्मास्त्रनिवारणायाऽस्त्रम् । तथा—

जितेन्द्रियश्च नक्ताशी हनूमद्ध्यानतत्परः ॥३८६॥

क्षुद्ररोगनिवृत्त्यर्थमष्टोत्तरशतं सुधीः ।
जप्त्वा त्रिदिनमेकान्ते तेभ्यो मुच्येत तत्क्षणात् ॥३८७॥

क्षुद्रभूतप्रशान्त्यर्थं शतमष्टोत्तरं पुनः ।
दिनत्रयमथो जप्त्वा भूतानां मुच्यते भयात् ॥३८८॥

भूतप्रेतपिशाचादिशान्तयेऽष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वैव तत्क्षणान्मुक्तो भवेदेव न संशयः ॥३८९॥

महारोगादिशान्त्यर्थमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जप्त्वा तस्मात्प्रमुच्येत निशि च नियताशनः ॥३९०॥

जयाभिकाङ्क्षिणां राज्ञामस्मादन्यो न वर्त्तते ।
ध्यायेत चाक्षहन्तारमयुतं नियताशनः ॥३९१॥

जपन्नियतमाश्वेव जयेद् दुर्ज्जयमप्यरिम् ।
सम्यक्च रामं सुग्रीवं सन्धातारं स्मरन्सुधीः ॥३९२॥

अयुतेन च विच्छिन्नां सन्धिमाप्नोत्यसंशयम्[1] ।
लङ्काया दाहकं ध्यायन् जपन्नयुतमञ्जसा ॥३९३॥

[2]शत्रुमापादयेदेव दुग्धाब्धावपि संस्थितम् ।
जयाय रिपुसङ्घानामस्मादन्यो न विद्यते ॥३९४॥

यस्तु गेहे हनूमन्तं सर्वदैव प्रपूजयेत् ।
मन्दिरे मन्त्रिणस्तस्य भवेल्लक्ष्मीरचञ्चला ॥३९५॥

दीर्घमायुर्लभेदेव सर्वत्र विजयी भवेत् ।
नमो हनुमते तुभ्यं नमो मारुतसूनवे ॥३९६॥

नमः श्रीरामभक्ताय श्यामश्यामाय ते नमः ।
नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे ॥३९७॥

लङ्काविदाहनार्थाय हेलासागरतारिणे ।
सीताशोकविनाशाय राममुद्राधराय च ॥३९८॥

रावणान्तकुलच्छेदकारिणे ते नमो नमः ।
मेघनादखरध्वंसकारिणे ते नमो नमः ॥३९९॥

अशोकवनविध्वंसकारिणे भयहारिणे ।
वायुपुत्राय वीराय चाऽऽकाशोदरवर्त्तिने ॥४००॥

वनपालशिरश्छेत्रे लङ्कासागरभञ्जिने ।
ज्वलत्कनकवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे ॥४०१॥

सौमित्रिजयदात्रे च रामभद्राय ते नमः ।
अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मशक्तिनिवारिणे ॥४०२॥

संयुगे च महाशक्तिवातक्षतविनाशिने ।
रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय नमो नमः ॥४०३॥

अक्षवानरवीरैकप्राणदात्रे नमो नमः ।
परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्राघ्नाय ते नमः ॥४०४॥

---

१. ख. ०त्यसंशयः । २. ख. शत्रुमापातये० ।

विषघ्नाय द्विषद्घ्नाय ज्वरघ्नाय नमो नमः ।
महारिपुभयघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे ॥४०५॥

परप्रेरितमन्त्राणां यन्त्राणां स्तम्भकारिणे ।
पयःपाषाणतरिणे तरणाय नमो नमः ॥४०६॥

बालार्कमण्डलग्रासकारिणे भयतारिणे ।
नखायुधाय भीमाय दंष्ट्रायुधधराय च ॥४०७॥

रिपुमानविनाशाय रामाज्ञालोकरक्षिणे ।
प्रतिग्रामस्थितायाऽथ रक्षोभूतवधार्थिने ॥४०८॥

करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः ।
बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्त्तिधराय च ॥४०९॥

पिशङ्गमाय शर्वाय वज्रदेहाय ते नमः ।
कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च ॥४१०॥

दक्षिणाशाय भक्ताय सतां चन्द्रोदयात्मने ।
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च ॥४११॥

स्वस्याज्ञापार्थसङ्ग्रामसख्ये सञ्जयदायिने ।
भक्तानां दिव्यवादेषु सङ्ग्रामे जयदायिने ॥४१२॥

किंकिलाबुंबुकोघोरघोरशब्दकराय च ।
सर्वोग्रव्याधिसंस्तम्भकारिणे वनचारिणे ॥४१३॥

सदा वनफलाहारसन्तृप्ताय विशेषतः ।
महार्णवशिलाबद्धसेतुबन्धाय ते नमः ॥४१४॥

वादे विवादे सङ्ग्रामे भये घोरे महावने ।
सिंहव्याघ्रतस्करेषु पठेत्स्तोत्रं भयं न हि ॥४१५॥

दिव्यभूतभये व्याधौ विषे स्थावरजङ्गमे ।
राजशस्त्रभये चोग्रे तथा ग्रहभयेषु च ॥४१६॥

जलसर्पमहावृष्टौ दुर्भिक्षे व्रणसम्प्लवे ।
पठेत्स्तोत्रं प्रमुच्येत भयेभ्यः सर्वतो नरः ॥४१७॥

तस्य कोऽप्यशुभं नाऽस्ति हनुमत्स्तवपाठतः ।
एककालं त्रिकालं वा पठन्नित्यमिमं स्तवम् ॥४१८॥

सर्वान् कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ।
विभीषणकृतस्तोत्रं तार्क्ष्येण समुदीरितम् ॥४१९॥

ये पठिष्यन्ति भक्त्यैतत्सिद्धयस्तत्करे स्थिताः ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ षड्विंशस्तरङ्गः ॥२४॥

[सप्तविंशस्तरङ्गः]

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अथ मन्त्रवरं वक्ष्ये मुकुन्दस्य जगत्पतेः ।
सर्वसिद्धिकरं लोकवश्यदं कीर्त्तिपुष्टिदम् ॥१॥

विबिन्दुश्रीर्विषं दीर्घा केवला कर्णयुग्रविः ।
चन्द्रविष्णुयुतश्चक्री सत्यः कूर्मो हुताशनः ॥२॥

ससद्यान्ता समृद्धिश्च भृगुः सत्यश्च दीर्घवान् ।
सन्ध्याग्निढान्तवैकुण्ठो गगनं चेन्दुशेखरम् ॥३॥

शूरोऽग्निसहितः शूरः सत्यो रुद्रेरसंयुतः ।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रो मुकुन्दस्य प्रकीर्त्तितः ॥४॥

बिविन्दुश्रीः—बिन्दुविधुरं श्रीबीजं श्री इति, विषं म, दीर्घा न, केवला स्वररहिता, तेन न्; कर्ण उ, रविः म, तेन मु; चन्द्रो बिन्दुः, विष्णुः उ, चक्री क, तेन कुं; सत्यः द, कूर्मः च, हुताशनः र, सद्यान्त औ, समृद्धिः णः, तेन णौ; भृगुः स, सत्यः द, दीर्घः आ, तेन दा; सन्ध्या श, अग्निः र, ढान्तः ण, वैकुण्ठः म, गगनं ह, इन्दुर्बिन्दुः तेन हं; शूरः प, अग्नि र, तेन प्र; शूरः प, सत्यः द, रुद्र ए, ईरः, य, तेन द्ये । तथा—

नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्रीछन्द उच्यते ।
मुकुन्दो देवता प्रोक्तः सुरासुरनमस्कृतः ॥५॥

आचक्राद्यैः प्रकुर्वीत पञ्चाङ्गानि विचक्षणः ।
पूजा तु वैष्णवे पीठे ह्यङ्गेन्द्रादितदायुधैः ॥६॥

मन्त्रं जपेद्वेदलक्षं तद्दशांशं हुनेत्ततः ।
पलाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ॥७॥

मनुनाऽनेन सञ्जप्तमष्टोत्तरशतं जलम् ।
दिनादावन्वहं पीत्वा मासषट्कं प्रसन्नधीः ॥८॥

सम्यक् श्रुतिधरो मन्त्री जायते वेदपारगः ।

गौतमीतन्त्रे—

श्यामलं कोमलं बालं क्रीडन्तं मातुरन्तिके ।
द्विभुजं स्तनपातारं चिन्तयन् श्रुतिमान्भवेत् ॥९॥

लक्षं वा प्रजपेदेनं समानं लभते फलम् ।
कामबीजाद्यमन्त्रोऽयं किन्न सिद्धयति भूतले ॥१०॥

उपसंहृतिदिव्याङ्गं पुरोवन्मातृरङ्कगम् ।
चलदोश्चरणं ध्यात्वा कृष्णं ब्राह्मे मुहूर्त्तके ॥११॥

जप्त्वा मनुवरं विद्वान् सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ।
सर्ववेदार्थकुशलो ज्ञानवान् भवति ध्रुवम् ॥१२॥

नन्दाङ्गणे पर्यटन्तं धूलीनिचयधूसरम् ।
प्रदीप्तमणिगणोद्दीप्तं यशोदालोकनोत्सुकम् ॥१३॥

एवं ध्यात्वा मनुवरं जपेन्नियतमास्थितः ।
लक्षकैकजपादस्य किं न सिद्धयति भूतले ॥१४॥

प्रातः प्रातः पवित्रोऽयमष्टोत्तरशतं जपन् ।
अनेन मूको दुष्टात्मा जडः पाषाणवत्तथाः ॥१५॥

अनेन जलपानेन साक्षाद्वाक्पतिसन्निभः ।
जायते नाऽत्र सन्देहः सत्यं सत्यं च नाऽन्यथा ॥१६॥

पद्भ्यां विक्षिप्य शकटं रुदन्तं प्राकृतं यथा ।
लक्षं जप्यादिति ध्यात्वा आपद्भ्यो मुच्यते ध्रुवम् ॥१७॥

शत्रुभ्यो न भयं तस्य राजतो दस्युतोऽपि वा ।
न तस्य विद्यते भीतिः कदाचिदपि सुव्रत ॥१८॥

सारसङ्ग्रहे—

समस्तेति समुच्चार्य मरुन्नमितमुद्धरेत् ।
बाललीलापदं प्रोक्त्वा आत्मने हुं समीरयेत् ॥१९॥

अस्त्रेण हृदयेनाऽपि युक्तो मन्त्रोऽयमीरितः ।

समस्तेति स्वरूपम्, मरुन्नमित स्व०, बाललीला स्व०, आत्मने हुं स्व०, अत्र सन्धिः—तेन लीलात्मने इति, अस्त्रं फट्, हृदयं नमः । अष्टादशाक्षरोऽयमपि मन्त्रः । तथा—

नलकूवर आख्यातो मुनिश्छन्द उदाहृतम् ॥२०॥
गायत्री बालकृष्णोऽस्य देवता परिकीर्त्तितः ।
पञ्चाङ्गानि पुरोक्तानि ध्यानं पूर्वोदितं भवेत् ॥२१॥

पूजा चाऽङ्गेन्द्रवज्राद्यैः पुरश्चर्यादि पूर्ववत् ।
जपादिकर्मभिर्मन्त्रः सेवितः सर्वसिद्धिदः ॥२२॥

ध्यानं मातुरङ्कगतरूपं ध्येयम् । तथा—

अन्नरूपपदं प्रोक्त्वा रसरूपेति चोच्चरेत् ।
तुष्टरूपं च हृद्युग्ममन्नाधिपतये पदम् ॥२३॥

ममान्नं च समुच्चार्य्य प्रयच्छाऽग्निवधूयुतः ।
अन्नप्रदोऽयमाख्यातस्त्रिंशद्वर्णो मनूत्तमः ॥२४॥

आदिपदत्रयं स्वरूपम्, हृद्युग्मं नमोद्वयम्, अग्निपदचतुष्टयं स्वरूपम्, अग्निवधूः स्वाहा, अत्र नमःपदाऽन्नपदयोर्विसन्धिः त्रिंशद्वर्ण इत्युक्तेः । तथा—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
अत्राऽन्नाधिपतिः[1] कृष्णो देवता प्रोच्यते बुधैः ॥२५॥

अन्नदो जायते मन्त्री मन्त्रमेनं भजेत्सदा ।
तथा — द्वादशाक्षरमन्त्रान्ते वर्मास्त्राग्निवधूयुतः ॥२६॥

प्रसिद्धो यो वासुदेवद्वादशाक्षरमन्त्रः पूर्वोक्तः । सः वर्मास्त्राग्निवध्वन्तो यदा भवति तदा षोडशाक्षरो मन्त्रः स्यात् । वर्म हुं, अस्त्रं फट्, अग्निवधूः स्वाहा ।

---

१. क. अन्नाधिपतिः ।

षोडशार्णो मनुः प्रोक्तो ब्रह्मा मुनिरुदाहृतः ।
गायत्री छन्द इत्युक्तं देवता च निगद्यते ॥२७॥

ग्रहघ्नो देवकीपुत्रो दुष्टग्रहविनाशनः ।
सर्वग्रहभये घोरे जप्तव्योऽयं मनूत्तमः ॥२८॥

एतेषां मन्त्रवर्य्याणां पञ्चाङ्गानि दशार्णवत् ।
अर्चनाऽङ्गैर्लोकपालैर्वज्राद्यैश्च समीरिता ॥२९॥

दशार्णो वक्ष्यमाणः । तथा—

[1]द्वादशार्णमनोरन्ते पुरुषोत्तमशब्दतः ।
आयुर्मे च ततो देहि चतुर्थ्यां विष्णुमुच्चरेत् ॥३०॥

तादृशं प्रभविष्णुं हृन्मन्त्रो द्वात्रिंशदक्षरः ।

द्वादशार्णं वासुदेवद्वादशार्णं, पुरुषोत्तम स्वरूपम्, आयुर्मे देहि स्व०, अत्र न सन्धिः, चतुर्थ्यां विष्णुं विष्णवे, तादृशं प्रभविष्णुं प्रभविष्णवे, हृन्नमः ।

नारदो मुनिरस्य स्याच्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥३१॥

श्रीकृष्णो देवता प्रोक्तः पञ्चाङ्गविधिरुच्यते ।
द्वादशार्णान्समुच्चार्य हृदानन्दात्मने भवेत् ॥३२॥

पञ्चार्णान्ते वदेत्प्रीत्यात्मने च शिरसो मनुः ।
ज्योतिरात्मन इत्यादौ भूतवर्णाः शिखा मता ॥३३॥

मायात्मने च वस्वर्णाः कवचं परिकीर्तितम् ।
चिदात्मने पदात्पूर्वं द्वाभ्यामस्त्रमुदाहृतम् ॥३४॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवानन्दात्मने हृदयाय नमः, पुरुषोत्तम-प्रीत्यात्मने शिरः, आयुर्मे देहि ज्योतिरात्मने शिखा, विष्णवे प्रभविष्णवे मायात्मने कवचम्, चिदात्मनेऽस्त्रम् ।

[2]अङ्गलोकेशवज्राद्यैरर्चनोक्ता जपेन्मनुम् ।
लक्षमेकं दशांशेन जुहुयात्पायसैः शुभैः ॥३५॥

---

१. क. द्वादशार्णो० । २. क. अङ्गकोलो० ।

दुग्धाज्यसम्प्लुतैर्दूर्वात्रितयैरेधितेऽनले
जहुयाद्दीर्घजीवित्वं लभते नाऽत्र संशयः ॥३६॥

तथा — ङेऽन्तं बालवपुः प्रोक्त्वा शिरः सप्तार्णको मनुः ।
बालानां भयशान्त्यर्थं रक्षार्थं च जपेन्मनुम् ॥३७॥

ङेऽन्तं बालवपुः बालवपुषे इति, शिरः स्वाहा । तथा—

गोपालकपदस्याऽन्ते वदेद्वेषधराय तु ।
चतुर्थ्या वासुदेवं च कवचास्त्रद्विठान्तकः ॥३८॥

गोपालकवेषधराय स्वरूपं, वासुदेवं चतुर्थ्यन्तं वासुदेवाय, अस्त्रं फट्, द्विठः स्वाहा ।

अष्टादशाक्षरो मन्त्रो नारदोऽस्य मुनिर्मतः ।
गायत्री छन्द इत्युक्तं देवता कृष्ण ईरितः ॥३९॥

आचक्रादिभिरङ्गानि पूजा पूर्वोक्तवर्त्मना ।
गृहगोबालरक्षादौ प्रशस्तः शान्तिकेऽपि च ॥४०॥

पूर्वोक्तवर्त्मनाऽङ्गेन्द्रवज्राद्यैः । तथा—

कालीयस्य पदं प्रोक्त्वा फणामध्ये ततो वदेत् ।
दिव्यनृत्यं पदस्यान्ते करोतीति तमन्ततः ।४१॥

नमामीति समुच्चार्य देवकीपुत्रमप्यथ ।
नृत्यराजानमाभाष्य वदेदच्युतमन्ततः ॥४२॥

द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रः सर्वक्ष्वेडनिवारणः ।

अयं मन्त्रः—'कालीयस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ।
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ॥' इति श्लोकरूपः ।
मुनिर्नारद आख्यातः छन्दोऽनुष्टुबुदीरितम् ॥४३॥

कालीयमर्दनः कृष्णो देवता सर्ववन्दितः ।
चतुःपादैश्च सर्वेण मनुनाऽङ्गविधिः स्मृतः ॥४४॥

अङ्गैरिन्द्रादिभिः पश्चाद्वज्राद्यैरर्चनेरिता ।
एकलक्षं जपित्वाऽग्नौ जुहुयादोदनं घृतैः ॥४५॥

विषनाशकरा योगाः[1] कर्त्तव्या मनुनाऽमुना ।
एतन्मन्त्रप्रभावेण नश्यन्त्येव महोरगाः ॥४६॥

एतन्मत्रसमानोऽन्यो विषघ्नो नैव विद्यते ।
शुकवृक्षोत्थपञ्चाङ्गैर्गोमूत्रेण सुपेशितैः ॥४७॥

निर्मिता गुलिका सम्यङ्मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रिता ।
तस्या लेपाञ्जनैः पानकर्मणा क्ष्वेडनाशिनी ॥४८॥

मुकुन्दाद्येतदन्तानां मन्त्राणां क्रमतो बुधः ।
दशार्णाणुप्रयोगोक्तध्यानभेदान्प्रकल्पयेत् ॥४९॥

गौतमीतन्त्रे—

बाल्यन्ते कथयाम्यद्य देवस्य परमाद्भुतम् ।
गोपनीयं न ते किञ्चित्त्वं हि वेदविदां वरः ॥५०॥

तपसा कल्मषमनाः कृष्णे[2] भक्तोऽसि निश्चयात् ।
तारः प्रजापतिः शक्रो माया ई बिन्दुरेव च ॥५१॥

एतन्मन्त्रवरं विद्धि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
महाचमत्कारकरं विश्वविक्षोभकारकम् ॥५२॥

चतुर्वर्गफलं चाऽस्य जपमात्रेण सिद्ध्यति ।
श्रीगोपालस्य ये मन्त्रा वक्ष्यन्तेऽत्रैव तन्त्रके ॥५३॥

सन्दीपितमनेनैव फलप्रदमवेक्ष्यताम् ।
चूडामणिरयं प्रोक्तो देवस्य शिशुरूपिणः ॥५४॥

अहं मुनिः समाख्यातो गायत्री छन्द एव च ।
देवता कथितः कृष्णः सर्वकामफलप्रदः ॥५५॥

समाहारोच्चारणोऽयं मध्यमस्वर ईरितः ।
नेत्राब्धितर्कसूर्येन्द्रैः कलवर्णविभेदितैः ॥५६॥

पञ्चाङ्गानि मनोः कृत्वा ध्यानं कुर्यात्समाहितः ।
मथुरायां पुरि ध्यायेत्कंसस्याऽन्तःपुराजिरे ॥५७॥

---

१. ख. रोगाः । २. ख. कृष्ण ।

सूतिकागृहमध्यस्थं जातमात्रं जगत्पतिम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वदेवदानवकिन्नरैः ॥५८॥

यक्षराक्षसवेतालैः खेचरैर्भूचरैरपि ।
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिः समन्ततः ॥५९॥

ब्रह्मणा तनयैः सार्द्धं वीक्ष्यमाणं मुदान्वितैः ।
इन्द्रादिभिश्च दिक्पालैर्लसत्कुसुमवर्षिभिः ॥६०॥

चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गधरं हरिम् ।
दक्षस्योर्द्ध्वे स्मरेच्चक्रं गदां च तदधःकरे ॥६१॥

वामस्योर्द्ध्वे शार्ङ्गधनुः शङ्खं च तदधःकरे ।
नवीनजलदप्रख्यं पीतकौशेयवाससम् ॥६२॥

विलसत्कुन्तलाभोगभास्वरे निजमूर्द्धनि ।
विहिताशेषसद्रत्नशोभिस्वर्णकिरीटकम् ॥६३॥

सुगन्धपारिजातस्रक्शोभिताशेषकुन्तलम् ।
ललाटतटविन्यस्तकस्तूरीकुङ्कुमोज्ज्वलम् ॥६४॥

अष्टमीचन्द्रशकलभासिभालतलोज्ज्वलम् ।
उत्फुल्लपुण्डरीकश्रीनयनद्वयभासितम् ॥६५॥

मनोभवधनुःकल्पचिल्लिचापविराजितम् ।
तिलप्रसूनविजयिनासावंशविभूषितम् ॥६६॥

परार्द्धचन्द्रसङ्काशमुखचन्द्रविराजितम् ।
दाडिमीबीजकुन्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरम्[1] ॥६७॥

पक्वबिम्बफलोद्भासिदन्तवासोज्वलं विभुम् ।
जाम्बूनदानेकरत्नस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥६८॥

महामरकतस्तम्भभासमानभुजद्वयम् ।
रत्नचामीकराभोगैरङ्गदैर्वलयैर्युतम् ॥६९॥

---

१. ख.० दक्तिपङ्क्ति० ।

कम्बुग्रीवं महोरस्कं मुक्ताहारविराजितम् ।
श्रीवत्सलाञ्छनं राजत्कौस्तुभोज्ज्वलवक्षसम् ॥७०॥

रत्नवैदूर्यपुटितकिङ्किणीजालमालिनम् ।
पट्टसूत्रेण सन्नद्धमध्यदेशोपशोभितम् ॥७१॥

रत्नमञ्जीरयुगलमञ्जुश्रीपादपल्लवम् ।
देवक्या वसुदेवेन हरेण विधिना तथा ॥७२॥

विदिक्षु दिक्षु चाऽधस्तु[1] मुखरेण पुटाञ्जलिम् ।
मेरुशृङ्गप्रतीकाशगरुडोपरिसंस्थितम् ॥७३॥

एवं ध्यात्वा परात्मानं गुरुमात्मानमेव च ।
एकीभावेन सम्भाव्य ततः पूजनमाचरेत् ॥७४॥

कर्पूरमिलितालोलसितचन्दनर्चिते ।
आलिखेद्देवकीपुत्रे यन्त्रं शोभनरेखया ॥७५॥

शलाकया[2] विद्रुमया हेमया रजतेन वा ।
किञ्जल्करूपकं वृत्तं ततो लेख्यं चतुर्द्दलम् ॥७६॥

ततो वृत्तं चाऽष्टदलं वृत्तं दशदलं त
समरेखाचतुःकोणचतुर्द्वारोपशोभितम् ॥७७॥

बीजशोभिचतुर्द्वारचतुःकोणविराजितम् ।
मध्ये सम्पूज्य देवेश पूजयेद्धि चतुर्द्दले ॥७८॥

ऐशान्यामीश्वरं देवमाग्नेय्याञ्च पितामहम् ।
नैर्ऋत्यां वसुदेवं च वायव्यां देवकीमपि ॥७९॥

ततश्चाऽष्टसु पत्रेषु पूजयेद्देववल्लभाः ।
रक्ताम्बरधराः सौम्याः कराम्बुजधृताम्बुजाः ॥८०॥

सर्वालङ्करणैर्दीप्ता लसद्यौवनविभ्रमाः ।
श्रीमत्कृष्णमुखाम्भोजन्यस्तनेत्रमधुव्रताः ॥८१॥

---

१. ख. चधस्तु २. क. शलकया ।

तती दशदले पूज्या लोकपालास्ततो बहिः ।
गरुडं पश्चिमे द्वारे जयं पूर्वे प्रपूजयेत् ॥८२॥

विजयं दक्षिणे तद्वन्नारदं च तथोत्तरे ।
पुटाञ्जलिकराः सर्वे स्वस्तोत्रमुखरा अपि ॥८३॥

विलसद्वनमालाकाः[1] पीतकौशेयवाससः ।
ततः शङ्खं च चक्रं च गदां कौमोदकीमपि ॥८४॥

शार्ङ्गं धनुश्च सम्पूज्य तद्बाह्ये पूजयेदपि ।
ऐरावतादीन् सम्पूज्य गजानष्टौ ततो बहिः ॥८५॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—नारदाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीच्छन्दसे०, हृदि—श्रीकृष्णाय देवतायै०," इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, 'क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं अस्त्राय फडि'ति पञ्चाङ्ग-मन्त्रानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं विन्यस्य, हृदयादिष्वपि नेत्रवर्ज्जं पञ्चाङ्गेषु न्यसेत् ।

ततो ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वपुरतश्चन्दनादिपीठे चतुर्द्दलपङ्कजं कृत्वा, तद्बहिरष्टदलं कृत्वा, तद्बहिर्दशदलं, तद्बहिश्चतुर्द्वारोपशोभितं चतुरस्रत्रयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, सम्पूज्याऽऽवाहनाद्यङ्गपूजान्ते चतुर्द्दलपद्मस्येशानदले—'ईश्वराय नमः, आग्नेय्ये—पितामहाय०, नैऋत्ये वसुदेवाय०, वायव्ये—देवक्यै नम' इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रादि—'रुक्मिण्यै०, सत्यभामायै०, नग्नजित्यै०, सुनन्दायै०, मित्रविन्दायै०, सुलक्षणायै०, सुशीलायै०, जाम्बवत्यै०,' तद्बहिर्दशदलेषु—लोक-पालान् सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरश्रस्य पश्चिमे द्वारे 'गरुडाय०, पूर्वे—जयाय०, दक्षे-विजयाय०, उत्तरे—नारदाय०, ततो द्वितीयचतुरश्रस्य चतुर्दिक्षु—शङ्खाय०, चक्राय०, गदायै०, शार्ङ्गधनुषे०, तद्बहिश्चतुरश्रस्याऽष्टदिक्षु—ऐरावताय०, पुण्डरीकाय०, वामनाय०, कुमुदाय०, अञ्जनाय०, पुष्पदन्ताय०, सार्वभौमाय०, सुप्रतीकाय नम' इति सम्पूज्य धूपादि[2] शेषं समापयेदिति । तथा—

---

१. ख. ०वनमालाश्च । २. ख. धूपदीपादि ।

कृते लक्षं जपेन्मन्त्रं त्रेतायां द्विगुणं तथा ।
त्रिलक्षं द्वापरे जाप्यं चतुर्लक्षं कलौ जपेत् ॥८६॥

प्रयोगानथ कुर्वीत साधकः सिद्धिलालसः ।[1]
लक्ष्मीप्रसूनैर्जुहुयाच्छ्रियमिच्छन्ननिन्दिताम् ॥८७॥

आज्येनाऽन्नेन जुहुयात्स्वाज्यान्नस्य समृद्धये ।
आरण्यैः कुसुमैर्विप्रान् जातीभिः पृथिवीपतीन् ॥८८॥

प्रसूनैरसितैर्वैश्यान् शूद्रान्नीलोत्पलैरपि ।
वशेयुर्लवणैः सर्वान् पङ्कजैर्वनिताजनान् ॥८९॥

गोशालासु कृतो होमः पायसेन सर्सपिषा ।
गवां शान्तिं करोत्याशु गोविन्दो गोकुलप्रियः ॥९०॥

शिशुवेषधरं देवं किङ्किणीजालशोभितम् ।
स्मृत्वा प्रतर्प्ययेन्मन्त्री दुग्धबुद्धया शुभैर्जलैः ॥९१।
धनधान्यांशुकादीनि प्रीतस्तस्मै ददाति सः ।

पिण्डं मूलेन वीतं दहनपुरपुटे कोणराजत्षडर्णं,
कुर्यात्पद्मं दशार्णस्फुरितदशदलं कामबीजेन वीतम् ।
पद्मं किञ्जल्कसंस्थस्वरविकृतिदलप्रोल्लसत्षोडशार्णं,
किञ्जल्के व्यञ्जनाढ्यं विकृतिदलयुगे त्वर्पिताऽनुष्टुबर्णम् ॥९२॥

पाशाङ्कुशाभ्यामावीतं क्षोणीपुरयुगान्वितम् ।
अष्टाक्षरेण संवीतं यन्त्रं गोविन्ददैवतम् ॥९३॥

धर्मार्थकामफलदं सर्वरक्षाकरं स्मृतम् ।
पञ्चान्तको ऽधरासंस्थो मनुर्बिन्दुविभूषितः ॥९४॥

---

१. इतः परं ख. पुस्तके विशेषः—

गौतमीतन्त्रे तु विशेषः :—

कृष्णमन्त्रेषु विप्रर्षे युगसंख्या न विद्यते ।
जपहोमतर्पणाद्यैः सिद्ध्यते कृतसंख्यया ॥१॥
सिद्धमन्त्रतया नाऽत्र युगसंख्यापरिश्रमः । इति ।

पिण्डबीजमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं परम् ।
चतुर्लक्षं जपेदेतत्तद्दशांशं हुनेत्ततः ॥९५॥

तर्पयेत्तद्दशांशं च दशांशं चाऽभिषेचयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चाऽपि दशांशमिति च क्रमात् ॥९६॥

गणेशं भास्वरं रुद्रं गौरीं च परिपूजयेत ।
विदिक्षु यन्त्रराजस्य स्वस्वमन्त्रपुरःसरम् ॥९७॥

एतदुद्धारमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ।
यद्यन्निजेप्सितं सर्वं साधयेन्नाऽत्र संशयः ॥९८॥

अनेन सदृशो मन्त्रो यन्त्रं वाऽपि न विद्यते ।
केवलं प्रेमभावेन कथितं त्वयि सुव्रत ॥९९॥

श्रीसारसङ्ग्रहे—

श्रीगोपालमनुं वक्ष्ये सर्वसम्पत्प्रदायकम् ।
ग्रहचोरविषारिघ्नं व्याधिदारिद्र्यनाशनम् ॥१००॥

पुत्रमित्रकलत्रादिभोगमोक्षफलप्रदम् ।
विद्याविभवदं नृणां विशिष्टकविताकरम् ॥१०१॥

समस्तवनिताचित्तराजवश्यकरं परम् ।
पञ्चान्तकोऽधरान्तान्तो लोहितोऽप्यत्रिमूर्तियुक् ॥१०२॥

चतुराननमेषौ च खड्गीशश्च ततः परम् ।
पिनाकीशद्वयं भूयो द्विरण्डेशश्च दीर्घवान् ॥१०३॥

बाली चन्द्रसुधा दीर्घा नकुलीशश्च कान्तियुक् ।
मन्त्रो दशाक्षरः प्रोक्तो गोपालस्य महात्मनः ॥१०४॥

विष्णुपादाम्बुजद्वन्द्वभक्ते वृद्धिकरः परम् ।

पञ्चान्तकः गकारः, अधरान्त ओ-अन्ते यस्य सः तेन गो; लोहितः प, त्रिमूर्त्तिः ई, तेन पी; चतुराननः ज, मेषः न, खड्गी व, पिनाकीशद्वयं ल्ल, द्विरण्डः भ, दीर्घ आ तेन भा; बाली य, चन्द्रः स, सुधा व, दीर्घ आ, एतैः स्वा०; नकुलीशः ह, कान्तिः आ, तेन हा इति ।

गोपायत्यखिलं लोकं गोपयेत्पुरुषं परम् ।
अतो गोपी समाख्याता प्रकृतिर्मूलकारणम् ॥१०५॥

यतो विजायते[1] विश्वं जनशब्देन गद्यते ।
आश्रयत्वेन वै गोपीजनयोः प्रेरणादयम् ॥१०६॥

वल्लभः प्रोच्यते तज्ज्ञैर्नित्यानन्दं महाद्भुतम् ।
स्वाहा-शब्देन चाऽऽत्मानं महसे प्रापयाम्यहम् ॥१०७॥

उत्पाद्योत्पादकाधीशो विष्णुर्वै परमात्मने ।
मन्त्रार्थो विष्णवे तत्त्वं साधकस्य भवेद्ध्रुवम् ॥१०८॥

विश्वरक्षणसामर्थ्यं सेधानो[2]वा निगद्यते ।
गोपीजनपदेनाऽस्य स्वात्माभिन्नस्य वल्लभः ॥१०९॥

प्रभुः प्रिय इति ख्यातः स्वाहार्थः पूववद्भवेत् ।
गोपाङ्गनाप्रियायाऽस्मै स्वात्मानं च स्वकीयकम् ॥११०॥

जुहोमि सगुणे ब्रह्मणीत्थं मन्त्रनिरुक्तयः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट्छन्द उदीरितम् ॥१११॥

देवता नन्दपुत्रोऽत्र कृष्णो दैत्यविधानकृत् ।
कलमायाशिरोभिस्तु बीजं मन्त्रस्य कीर्त्तितम् ॥११२॥

शक्तिः स्वाहा समाख्याता मन्त्रवर्य्यस्य देशिकैः ।
धमर्थिकाममोक्षाप्तिर्विनियोगो भवेदिति ॥११३॥

कृष्णः प्रकृतिरित्युक्तो दुर्गाधिष्ठात्रिदेवता ।
आचक्रेण विचक्रेण सुचक्रेण ततः परम् ॥११४॥

त्रैलोक्यरक्षणाद्येन चक्रेण तदनन्तरम् ।
असुरान्तकचक्रेण चतुर्थ्यन्तैस्तु पञ्चभिः ॥११५॥

स्वाहान्तैर्जातिसंयुक्तैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
हृदये शीर्षके चैव शिखायां कवचे तथा ॥११६॥

---

१. ख. बीजायते । २. ख. सन्धानो ।

अस्त्रे पार्श्वद्वये कट्यां पृष्ठे मूर्द्धनि च क्रमात् ।
मन्त्रार्णान् न्यसेन् मन्त्री बिन्द्वन्तान्नमसा युतान् ॥११७॥

करयोर्मध्यतः पृष्ठे तयोः पार्श्वे च मन्त्रवित् ।
प्रणवाद्यं तदन्तञ्च व्यापयेद्दशवर्णकम् ॥११८॥

ध्रुवसम्पुटितैर्वर्णैर्दशभिश्च नमोयुतैः ।
दशाङ्गुलिषु विन्यसेत् त्रिपर्वव्याप्तितो बुधः ॥११९॥

दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठावधि न्यसेत् ।
हस्तगः सृष्टिराख्याता युग्माङ्गुष्ठादिकः स्थितिः ॥१२०॥

वामाङ्गुष्ठादिको न्यासो दक्षाङ्गुष्ठावधिर्भवेत् ।
संहारो मुनिभिः प्रोक्तः करन्यासत्रयं त्विदम् ॥१२१॥

करयुग्मे दशाङ्गं च पञ्चाङ्गं पूर्ववन्न्यसेत् ।
मन्त्रसम्पुटितैर्वर्णैर्मातृकाया न्यसेत्ततः ॥१२२॥

दशतत्वानि विन्यस्येन्मन्त्रवर्णैः सह क्रमात् ।
अनुलोमेन मन्त्रार्णान् संहारे योजयेद् बुधः ॥१२३॥

मन्त्रवर्णांस्तथा सृष्टौ प्रतिलोमेन योजयेत् ।
उद्धारः पूर्ववज्ज्ञेयो न्यासं वच्मि सुसाम्प्रतम् ॥१२४॥

पृथिवीजलतेजांसि वायुराकाशकं तथा ।
अहङ्कारो महत्तत्त्व प्रकृतिः पूरुषः परः ॥१२५॥

नामानि दशतत्त्वानां स्थानेष्वेषु प्रविन्यसेत् ।
पादयुग्मे शिवे वक्षोमुखयोर्मस्तके न्यसेत् ॥१२६॥

तत्त्वयुग्मं ततो मध्ये सर्वाङ्गे तत्त्रयं न्यसेत् ।
तद्विपर्ययतो न्यासो गुप्तस्तत्त्वदशात्मकः ॥१२७॥

सर्वगोपालमन्त्रेषु विहितः शीघ्रसिद्धये ।
मस्तकादि तु पादान्तं कराभ्यां व्यापकं न्यसेत् ॥१२८॥

वेदादिपुटितं मन्त्रं त्रिवारं मन्त्रिसत्तमः :
मस्तके नयने कर्णनासिकाननहृत्सु च ॥१२९॥

तुन्दाग्धुजानुपादेषु मन्त्रार्णान्विन्यसेत्क्रमात् ।
सृष्टिन्यासस्त्वयं प्रोक्तः स्थितिन्यासं समाचरेत् ।।१३०।।

हृदयादिमुखान्तोऽसौ सृष्टेस्तु विपरीततः ।
संहारः कथितो न्यास एवं न्यासत्रयं भवेत् ।।१३१।।

मूलाधारे ध्वजे नाभौ हृदयेऽथ गले मुखे ।
अंसयोरूरुयुग्मे च न्यास एकः प्रकीर्त्तितः ।।१३२।।

[1]"स्कन्धे देशे' च नाभौ च कुक्षौ हृदि कुचे तथा ।
पार्श्वयुग्मे च पृष्ठे च श्रोणियुग्मे द्वितीयकः ।।१३३।।

मस्तकाननयोरक्ष्णोः कर्णयोर्नासिकाद्वये ।
गण्डयोश्च तृतीयः स्याद्दक्षहस्तस्य सन्धिषु ।।१३४।।

तदग्राऽङ्गुलिषु प्रोक्तश्चतुर्थो न्यास उत्तमः ।
इत्थं वामकरे दक्षवामयोः पदयोरपि ।।१३५।।

न्यासत्रयं समाख्यातं मस्तके तदनन्तरम् ।
तत्पूर्वादिषु दिग्भागेषु सम्पूर्णे शिरस्यथ ।।१३६।।

बाहुयुग्मे सक्थियुग्मेऽप्यष्टमः परिकीर्त्तितः ।
मस्तके नयने चाऽस्य कण्ठे हृदि च तुन्दके ।।१३७।।

मूलाधारे च लिङ्गे च जानुनि प्रपदे पुनः ।
नवमो न्यास आख्यातः कर्णयोर्गण्डयोस्तथा ।।१३८।।

अंसयोः स्तनयोः पार्श्वयोः स्फिचोश्चोरुयुग्मके ।
जानुनोर्जङ्घयोरङ्घ्र्योर्दशमो न्यास ईरितः ।।१३९।।

एषु स्थानेषु मन्त्रार्णान्न्यसेन्मन्त्री मुहुर्मुहुः ।
विभूतिपञ्जरन्यासो दशावृत्तिमयो मनोः ।।१४०।।

आयुरारोग्यधर्मार्थकीर्त्तिकान्त्यादिकारकः ।
नरनारीनरेन्द्राणां वश्यकर्मणि शस्यते ।।१४१।।

---

१. ख. स्कन्धयेशे ।

भुक्तिदो मुक्तिदो भक्तिप्रदो विष्णोः पदाम्बुजे ।
कुर्यान्मन्त्री ततो न्यासं पूर्ववन्मूर्त्तिपञ्जरम् ॥१४२॥

पुनः सृष्टिस्थितिन्यासं दशाङ्गन्यासमाचरेत् ।
पञ्चाङ्गन्यासकं कृत्वा मुन्यादिन्यासमाचरेत् ॥१४३॥

वक्ष्यमाणास्ततो मुद्रा दर्शयेद्भक्तितत्परः ।
एवं कृत्वा विधानेन मन्त्री मन्त्रकलेवरम् ॥१४४॥

विश्वोत्पत्तिस्थितिध्वंसनिदानं त्वादिवर्जितम् ॥१४५॥

त्रय्यन्ते बोधितं नित्यं कृष्णं ध्यायेज्जगत्पतिम् ।
पूर्वं वृन्दावनं मन्त्री स्मरेद्रम्यं सुसंयतः ॥१४६॥

नानासुगन्धसंशोभिपुष्पप्रचयशालिभिः ।
नवीनपल्लवोद्रेकफलसम्पत्तिभिस्तथा ॥१४७॥

लसद्विशिष्टसच्छाखैः शालिभिः सर्वतो वृतम् ।
निर्गच्छन्मञ्जरीसङ्कुलतासन्ततिसेवितम् ॥१४८॥

अत्यन्तशीतलं सेव्यं शिवं लोकशिवप्रदम् ।
विकचत्प्रसवोद्भूतमध्वास्वादकृतश्रमैः ॥१४९॥

भ्रमरोत्तमसङ्घैश्च गुञ्जद्भिर्मुखरीकृतम् ।
मधुपैः कृतभूङ्कारैः पक्षिभिश्च सुखावहम् ॥१५०॥

कीरव्रजगिरा व्याप्तं पारावतशताकुलम् ।
कोकिलप्रमुखानाञ्च सुनादैर्व्याप्तदिङ्मुखम् ॥१५१॥

[1]नृत्यन्मयूरसङ्घातसेवितं च दिवानिशम् ।
वायुभिर्विकचत्पद्ममध्यकिञ्जल्कसङ्गिभिः ॥१५२॥

पुष्पान्तरान्तरुद्भूतरजोभिश्च सुवासितैः ।
आदित्यतनयायाश्च लहरीकणशीतलैः ॥१५३॥

मन्मथानलसन्दीप्त-वल्लवीचीरकम्पनैः ।
सर्वदाऽध्युषितं सम्यगस्मिन्कल्पतरुं स्मरेत् ॥१५४॥

१. ख. नृत्यमयूर० ।

नूतनान्पल्लवांस्तस्य वैद्रुमांस्तदनन्तरम् ।
पत्रजालं मारकतं प्रसूनकलिका अपि ॥१५५॥

वज्रमुक्तादिकांश्चैव पद्मरागफलोज्ज्वलम् ।
ऋतुभिः सेवितं सर्वैरेकदाऽभीष्टसिद्धिदम् ॥१५६॥

स्वर्णशाखाग्रसंयुक्तं महोच्छ्रायं सुतानि(सुमानि?) च ।
दिव्यामृतौघदर्पेण स्रवन्तं विश्वमञ्जसा ॥१५७॥

उद्यत्प्रद्योतनप्रख्यामधोऽस्य वरमेदिनीम् ।
ज्वलद्रत्नसमाबद्धां पुष्परेणुविभूषिताम् ॥१५८॥

षडूर्मिरहितां मन्त्री चिन्तयेदिष्टसिद्धये ।
माणिक्यकुट्टिमं तत्र योगपीठं विचिन्तयेत् ॥१५९॥

पद्ममष्टदलं तत्र यथोक्तं रक्तवर्णकम् ।
तस्य मध्ये सुखासीनं कृष्णं ध्यायेदनन्यधीः ॥१६०॥

उद्यदादित्यसङ्काशं प्रसन्नवदनं विभुम् ।
इन्द्रीनलमणिप्रख्यस्निग्धदीर्घशिरोरुहम् ॥१६१॥

मायूरेण सुपुच्छेण राजमानोत्तमाङ्गकम् ।
भ्रमराक्रान्तकल्पद्रुपुष्पसंशोभिमस्तकम् ॥१६२॥

सम्फुल्लनूतनोत्पन्नकर्णपूरीकृतोत्पलम् ।
कुटिलालकविभ्राजल्ललाटमृदुपट्टिकम् ॥१६३॥

गोरोचनासमासक्ततिलकं चोन्नतभ्रुवम् ।
अकलङ्कशरद्राकाचन्द्रबिम्बाद्भुताननम् ॥१६४॥

[1]कुशेशयदलाकारसुन्दरायतलोचनम् ।
अनर्घ्यमणिसन्दीप्तमकराकारकुण्डलम् ॥१६५॥

कपोलस्थललावण्यविजितस्वच्छदर्पणम् ।
अगस्तिकुसुमाकाराद्भुतोन्नतसुनासिकम् ॥१६६॥

जितविद्रुमसौन्दर्यपक्वबिम्बफलाधरम् ।
दाडिमीबीजसङ्काशदन्तपङ्क्तिविराजितम् ॥१६६॥

---

१. क. कुशेषय० ।

धवलीकृतदिक्चक्रमीषद्धास्यद्विजांशुना ।
अरण्यपल्लवैः पुष्पैः कृतग्रैवेयसम्पदम् ॥१६८॥

अतिरम्यत्रिरेखाङ्ककम्बुसुन्दरकन्धरम् ।
मधुलोलुपभृङ्गालिसङ्गतैश्च सुगन्धिभिः ॥१६९॥

अम्लानकल्पवृक्षस्य प्रसूनप्रचयैः शुभैः ।
कृतदामलसत्स्कन्धमुक्ताहारभूषितम् ॥१७०॥

कौस्तुभप्रभया दीप्तविशालोन्नतवक्षसम् ।
श्रीवत्साङ्काङ्कितोरस्कमुन्नतस्कन्धशालिनम् ॥१७१॥

महापरिघसङ्काशजानुलम्बिमहाभुजम् ।
वलित्रितयसंशोभिकिञ्चिद्बन्धुरितोदरम् ॥१७२॥

दक्षिणावर्त्तसंयुक्तनाभिपल्वलमण्डितम् ।
षट्पदप्रमदापङ्क्तिशोभिरोमावलीयुतम् ॥१७३॥

अनेकरत्नसम्बद्धवलयाङ्गदमुद्रिकम् ।
ग्रैवेयौदरिकाबन्धतुलाकोटिसुमण्डितम् ॥१७४॥

क्षुद्रघण्टिकयाऽऽबद्धकटिदेशविभूषितम् ।
दिव्योत्तमाङ्गलेपेन भूषिताशेषगात्रकम् ॥१७५॥

पीतम्बरधरं सम्यगूरुजानुमनोहरम् ।
मयूरगलसङ्काशजङ्घायुगलमण्डितम् ॥१७६॥

[1]लसत्प्रपदशोभाभिर्निरस्तकच्छपश्रियम् ।
माणिक्यमुकुराकारनखराजिविराजितम् ॥१७७॥

सष्ठुशोणाङ्गुलीपत्रविकाशिचरणाम्बुजम् ।
चक्रशङ्खलसत्पद्मसीराङ्कुशगदादिभिः ॥१७८॥

कुलिशप्रमुखैश्चिह्नै रङ्कितं रक्तपत्तलम् ।
सौन्दर्यनिधिसम्भाररचितं विलसच्छ्रिया ॥१७९॥

सम्पद्विजितकन्दर्पगात्रशोभामनोहरम् ।
मुखाम्बुजसमासक्तवंशीछिद्रार्पिताङ्गुलिम् ॥१८०॥

---

१. ख. लसत्प्रमदशोभाभिर्निरास्त० ।

तदुत्थदिव्यसद्रागश्रवणार्द्रितमानसम् ।
अपाङ्गैः प्राणिजातं तु मोहयन्तमनारतम् ॥१८१॥

परमानन्दसन्दोहसम्पूर्णाहृतमानसम् ।
मुखपद्मसमासक्तस्वान्तनेत्राभिरावृतम् ॥१८२॥

गोभिरूधोभराक्रान्तमन्दयानाभिरेव च ।
[1]कवलीकृतसन्त्यक्तघासलेखाभिरप्यथ ॥१८३॥

भूमिस्पृष्टमहास्थूलबालधीभिर्निरन्तरम् ।
प्रस्तुतस्तनपानेन सम्भृताननिर्गतैः ॥१८४॥

डिण्डीरपिण्डसंयुक्तैर्दुग्धैर्दृष्टिमनोहरैः ।
वंशवादनतोद्गीतगीताकर्णनलालसैः ॥१८५॥

उत्तम्भितीकृतश्रोत्रपुटयुग्मैश्च तर्णकैः ।
किंविषाणाङ्कुरोद्भूतजातकण्डूतिमस्तकैः ॥१८६॥

परस्परविमर्दार्थं खुरस्पृष्टमहीतलैः ।
स्निग्धैर्गुरुभिरुत्पुच्छैः सुशोभिगलकम्बलैः ॥१८७॥

वत्सवत्सीसमूहैश्च संवृतं तदनन्तरम् ।
कृतहम्भाशब्दजालैर्गुरुदीर्घककुद्मलैः ॥१८८॥

उच्चकर्णपुटापीतवेणुशब्दसुधारसैः ।
कृतौद्धत्यैर्वृषैर्वीतं महाविवृतनासिकैः ॥१८९॥

विद्यास्वभाववर्णादिक्रीडानेपथ्यधारणैः ।
समानतां गतैर्गोपैर्वयःसाम्ययुतैरपि ॥१९०॥

वंशवादनशीलैश्च रम्यरागकृतश्रमैः ।
वल्लकीकांस्यतालादिधृततारसमस्वरैः ॥१९१॥

वलद्बाहुलताक्षेपं नृत्यद्भिर्भावगर्भितम् ।
जङ्घिकाकटिदेशेषु किङ्किणीजालमण्डितैः ॥१९२॥

इतस्ततश्चलद्भिश्च मञ्जुभाषणतत्परैः ।
मधुराकृतिभिर्बालैरस्पष्टोद्भूतभाषणैः ॥१९३॥

---

१. ख. ॰घासलेश्वाभि॰ ।

शार्दूलनखसङ्क्लृप्तगलाकल्पैर्वृतं तथा ।
ततो गोपपुरन्ध्रीणां स्मरेद्वृन्दं समाहितः ॥१९४॥

तद्वंशहृद्यस्वनधीररागनिष्यन्दपीयूषरसावसेकात् ।
सञ्जातबोधाङ्गजभूरुहस्य श्रीकोरकाकारविशिष्टरूढैः ॥१९५॥

रोमोद्गमैर्भूषितदेहकानां तन्मन्दहासामृतमानसानाम् ।
सम्पर्कतो वृद्धसुरागवाचां रागैस्तरङ्गैरिव रागवार्द्धेः ॥१९६॥

प्रस्वेदजालैः समतां गतैस्तैः सम्भूषिताशेषशरीरकानाम् ।
तद्भ्रूधनुःप्रेरिततीक्ष्णदृष्टिपञ्चेषुपञ्चेषुसमूहवर्षैः ॥१९७॥

सम्भिन्नबन्धाच्छिथिलीकृताङ्गसञ्जातकम्पाद्भुतवेदनानाम् ।
तद्गात्रलावण्यसुधारसौघपाने सतृष्णेक्षणपङ्कजानाम् ॥१९८॥

सस्नेहसालस्यवलत्सुरम्यसाह्लादभावाद्भुतलोचनानाम् ।
धम्मिल्लशैथिल्यवशात् स्रवत्सु प्रफुल्लपुष्पेषु परागलुब्धैः ॥१९९॥

धीरं सगुञ्जद्भिरनेकभृङ्गैरासादितानां मधुराकृतीनाम् ।
मनोजवेगोन्मदमानसानां मदस्खलद्वाग्विभवाद्भुतानाम् ॥२००॥

[1]शैथिल्यसञ्जातसुनीविकानां [2]श्रोणीभृतेर्दृष्टिपथं गतानाम् ।

मृदुस्खलितपादाब्जधीररम्यगतेरणैः ।
मुखरीकृतदिक्कानां चरणाभर्दृशब्दतः ॥२०१॥

निमीलन्नेत्रपद्मानां चलदोष्ठयुजां मुहुः ।
ओष्ठम्लानिं वहन्तीनां दीर्घनिःश्वासयोगतः ॥२०२॥

अनेकप्राभृतासक्तहस्तपद्मजुषां तथा ।
पङ्क्तिभिर्वेष्टितं सम्यक्पूर्वतश्च ततो बहिः ॥२०३॥

एतासां नेत्रपद्मानां मालाभिर्भूषिताङ्गकम् ।
महानन्दनिभं सर्वविलासभवनं प्रभुम् ॥२०४॥

वल्लवीवल्लवगवां देववृन्दं बहिः स्मरेत् ।
सम्मुखे देवदेवस्य कांक्षन्तं धनसञ्चयम् ॥२०५॥

---

१. ख. शैथिल्यसंजतसुनीतिकानां । २. क. श्रोणीभवे० ।

ब्रह्मेशाखण्डलश्रेष्ठं[1] स्तुतिं कुर्वाणमादरात् ।
ऋषिसङ्घं तथा दक्षे वेदाध्ययनतत्परम् ॥२०६॥

धर्मार्थिनः स्मरेत्पश्चात्सनकप्रमुखांस्तथा ।
योगीन्द्रान्ध्याननिष्ठाँस्तान्निःश्रेयसफलार्थिनः ॥२०७॥

सस्त्रीकान्वामभागे च यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ।
सिद्धविद्याधरांश्चापि चारणानप्सरोगणान् ॥२०८॥

गीतनर्त्तनवाद्यादीन् कुर्वतः कामतत्परान् ।
चन्द्रकर्पूरकुन्दाभं काशपाशनिभं मुनिम् ॥२०९॥

मन्त्रतन्त्रप्रवेत्तारं विद्युद्दामसदृग्जटम् ।
विष्णुपादाम्बुजद्वन्द्वे भक्तिमिच्छन्तमक्षयाम् ॥२१०॥

त्यक्तान्यसर्वसङ्गं तं वेदवेदार्थपारगम् ।
अनेकश्रुतिसम्पन्नसप्तरागसमन्वितम् ॥२११॥

ग्रामत्रयीसमासक्तमूर्च्छनाभिर्यथाविधि ।
सम्यग्जाताभिराराद् गायन्तं कृष्णं स्ववीणया ॥२१२॥

आकाशे नारदं ध्यायेन्मुनिवर्य्यं गतस्मयम् ।
ध्यात्वैवं परमात्मानं नन्दपुत्रं विशालधीः ॥२१३॥

यजेत्पूर्वोदिते पीठे वैष्णवे नवशक्तिके ।
पूर्वमर्घादिभिर्मन्त्री मानसैरुपचारकैः ॥२१४॥

सर्वैः पूज्यतमं पूजयित्वा भक्तिपरायणः ।
स्वीयदेहमये पीठे भगवन्तं पुरोक्तवत् ॥२१५॥

ततो बहिःस्थितैर्द्रव्यैः पूजयेत्साधकोत्तमः ।
तत्साधनविधिः सम्यक् प्रोच्यते मन्त्रसिद्धिदः ॥२१६॥

मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मूर्त्तिमस्य प्रकल्पयेत् ।
तत्राऽऽवाह्य यजेद्देवं सर्वावरणसंयुतम् ॥२१७॥

---

१. ख. श्रेष्ठः ।

आसनादिविभूषान्तानुपचारान्प्रकल्पयेत् ।
न्यासोक्तक्रमतः पश्चाद् गन्धाद्यैर्देवमर्चयेत् ॥२१८॥

सृष्ट्या स्थित्या च सम्पूज्य पञ्चाङ्गं च दशाङ्गकम् ।
वेणुं प्रपूजयेत्पश्चाद्वनमालामनन्तरम् ॥२१९॥

श्रीवत्सं कौस्तुभं मन्त्री देहे कृष्णस्य पूजयेत् ।
मूलेन चात्मपूजावदावृतीः पूजयेत्ततः ॥२२०॥

कर्णिकायां चतुर्दिक्षु देवस्य परितोऽर्चयेत् ।
दामं सुदामनामानं वसुदामं च किङ्किणीम् ॥२२१॥

चकाराच्चतुर्थोऽपि दामशब्दान्तः । 'वसुदामं समभ्यर्च्य किङ्किणीदाममर्चयेदि'ति त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रोक्तेः ।

तेजोरूपधरा ह्येते केसरेष्वङ्गपूजनम् ।
रुक्मिणीप्रमुखा ह्यष्टपत्रेषु महिषीर्यजेत् ॥२२२॥

कमलं चाऽर्घपात्रं च करयोर्दक्षिणान्ययोः ।
बिभ्रतीर्दिव्यशुक्लाभवस्त्रलेपादिभिर्युताः ॥२२३॥

रुक्मिणीसत्यभामे द्वे नाग्नजित्यपरा मता ।
सुदेष्णा मित्रविन्दा च परा चाऽथ सुलक्षणा ॥२२४॥

सुशीलान्ता[1] जाम्बवती स्वर्णमारकतप्रभाः ।
द्विश एवं क्रमाज्ज्ञेयाः सर्वा एता मनीषिभिः ॥२२५॥

स्तनभारनता नानारत्नजालविभूषणाः ।
पत्राग्रेषु ततः पूज्यो वसुदेवश्च[2] देवकी ॥२२६॥

नन्दगोपो यशोदा च बलभद्रः सुभद्रिका ।
गोपाला गोपिकाः कृष्णमुक्तासक्तहृदीक्षणाः ॥२२७॥

स्वर्णाभो वसुदेवस्तु शुक्लो नन्दः प्रकीर्त्तितः ।
ज्ञानमुद्रां धारयन्तौ दक्षवामेऽभयं तथा ॥२२८॥

---

१. क. सुशीतान्ता । २. क. वासुदेवश्च ।

दिव्यवस्त्रानुलेपादिपुष्पालङ्कारसंयुतौ[1] ।
रक्तश्यामनिभे तद्वन्मातरौ दक्षिणे करे ॥२२६॥

वरं वामे वहन्त्यौ तु पात्रं च पयसा भृतम् ।
मुक्ताहारधरे रत्नकुण्डलादिविभूषिते ॥२३०॥

बलभद्रस्तु कुन्दाभो मुसली हलसंयुतः ।
नीलाम्बरो मनोन्मत्तश्चञ्चलश्चैककुण्डलः ॥२३१॥

श्यामा तन्वी सुभद्राख्या चारुभूषणभूषिता ।
पीताम्बरा पुत्रवती बिभ्राणा वरदाभये ॥२३२॥

गोपाला वंशवीणादिदरशृङ्गलसत्कराः ।
नानोपायनहस्ताब्जा गोपपत्न्यः सुभूषिताः ॥२३३॥

तद्बहिः पञ्च सम्पूज्याः कल्पवृक्षाश्रया बुधैः ।
मन्दारः प्रथमो ज्ञेयः सन्तानस्तदनन्तरम् ॥२३४॥

पारिजाताह्वयः पश्चात्कल्पवृक्ष इतीरितः ।
हरिचन्दननामा च मध्ये दिक्षु च संस्थिताः ॥२३५॥

दीर्घनम्रबृहच्छाखाः साधकेष्टफलप्रदाः ।
तद्बाह्ये लोकपालांस्तु वज्रादीन्पूजयेत्ततः ॥१३६॥

धूपदीपौ समर्प्याऽथ नैवेद्यं[2] च निवेदयेत् ।
पूर्वोक्तविधिना सम्यक् संस्कृत भक्तितत्परः ॥२३७॥

शर्करादधिसंयुक्तं सघृतं गोपयो हविः ।
नालिकेरगुडापूपैर्नवनीतसितोपलम् ॥२३८॥

मोचाफलं सोपदंशं सक्षौद्रं रुचिरं शुचि ।
ततः सङ्कल्प्य नैवेद्यं ग्रासमुद्रां प्रदर्श्य च ॥२३९॥

प्राणादिपञ्चवायूनां मुद्रा दक्षेण दर्शयेत् ।
अङ्गुष्ठाभ्यामनामे द्वे स्पृष्ट्वा पाणितलद्वये ॥२४०॥

---

१. ख. ०पुष्पाकार० । २. ख. नैवेद्यं ।

नैवेद्यस्य ततो मुद्रां दर्शयेन्मन्त्रमुच्चरन् ।
लाङ्गलीजलसद्यान्तशिरोभिः सहितो नतिः ॥२४१॥

परायेति समुच्चार्य ब्रह्मात्मपदमुच्चरेत् ।
नेऽनिरुद्धं चतुर्थ्यन्तं निवेद्यं कल्पया-पदम् ॥२४२॥

निवेद्यदानमन्त्रोऽयं म्यन्तो विंशतिवर्णकः ।

लाङ्गली ठ, जलं व, सद्यान्तः औ, शिरो बिन्दुः, एतैः 'ठ्वौं' इति । नतिर्नमः, पराय स्वरूपं, ब्रह्मात्म रूपम्, नेऽनिरुद्ध-स्वरूपं चतुर्थ्यन्तं तेनाऽनिरुद्धाय, निवेद्यं स्व०, कल्पया स्व०, म्यन्तः मि-इत्यन्तः । तथा—

समर्प्यैवं निवेद्यं हि कुर्यादन्यत्पुरोक्तवत् ॥२४३॥

ततश्चन्दनपङ्केन स्वीयदेहं विभूषयेत् ।
मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मूर्त्तिपञ्जरमन्त्रकैः ॥२४४॥

[1]ललाटादिषु कुर्वीत तिलकानि ह्यनामया ।
कुर्यात्पुष्पाञ्जलीन्पञ्च तुलसीयुग्मतो बुधः ॥२४५॥

मूलमन्त्रं समुच्चार्य पादपद्मद्वये विभोः ।
करवीरद्वयेनाऽथ मध्यदेहे प्रकल्पयेत् ॥२४६॥

अम्भोजयुग्मतः पश्चादुत्तमाङ्गे निवेदयेत् ।
एभिः सर्वैः सर्वगात्रे तावतः कुसुमाञ्जलीन् ॥२४७॥

देवस्य दक्षिणे दद्याच्छुक्लपुष्पाणि मन्त्रवित् ।
रक्तपुष्पाणि वामे तच्छ्वेतरक्तपटीरकैः ॥२४८॥

सप्तावरणसंयुक्तमित्थं कृष्णस्य पूजनम् ।
सर्वसम्पत्करं पुंसां भोगमोक्षफलप्रदम् ॥२४९॥

अङ्गैरिन्द्रादिभिर्वज्रप्रमुखैरावृतित्रयम् ।
पूजयेदथवा त्वेवं संक्षेपात्साधकोत्तमः ॥२५०॥

---

१. ख. ललाबिषु ।

एवं गन्धादिभिः सम्यक्पूजयित्वा विधानवित् ।
अष्टौ कृष्णान्यजेत्पश्चात्सुगन्धिकुसुमादिभिः ॥२५१॥

कृष्णश्च वासुदेवश्च नारायण इतीरितः ।
देवकीनन्दनश्चाऽथ यदुश्रेष्ठस्ततः परः ॥२५२॥

वार्ष्णेयश्चासुराक्रान्तभारहारी ततो भवेत् ।
धर्मसंस्थापकस्त्वन्यो ङेनमोऽन्ता ध्रुवादिकाः ॥२५३॥

एतैरेव विधातव्या कृष्णार्चाऽप्यथवा बुधैः ।
भवाब्धेः पारमिच्छद्भिः सर्वसम्पत्तिसिद्धये ॥२५४॥

मूलमन्त्र यथाशक्ति जपित्वा तं जपं बुधः[1] ।
समर्प्पयेदर्घजलैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥२५५॥

ततो नानाविधैः स्तोत्रैः स्तुत्वा देवं विशालधीः ।
प्रणम्याऽऽत्महृदम्भोजमुद्वास्य प्रयजेत्ततः ॥२५६॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीटन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि—नारदाय ऋषये नमः, मुखे—विराजे छन्दसे०, हृदि—श्रीकृष्णाय देवतायै०, गुह्ये—क्लीं बीजाय०, पादयोः—स्वाहाशक्तये०, सर्वाङ्गे—कृष्णाय कृतये०, हृदि—श्रीदुर्गायै अधिष्ठात्र्यै देवतायै नम' इति विन्यस्य, मम चतुर्विध-पुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, मूलेन करयोर्व्यापकं कृत्वा, "आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, असुरान्तकचक्राय स्वाहाऽस्त्राय फडि'ति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादि-कवचान्तं देहेऽङ्गचतुष्टयं विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं दश दिग्बन्धनं च कृत्वा, 'हृदि—गों नमः, शिरसि—पीं०, शिखायां—जं०, कवचस्थाने—नं०, अस्त्रस्थाने-वं०, दक्षपार्श्वे—ल्लं०, वामे—भां०, कट्यां—यं०, पृष्ठे—स्वां०, मूर्द्धिन—हां नमः," ततः 'ॐ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॐ' इति करतलयोः, करपृष्ठयोः करपार्श्वयोश्च प्रत्येकं मन्त्रमुच्चरन् व्यापकं कृत्वा, "वामाङ्गुष्ठे—ॐ गों ॐ नमः,

---

१. क बुजः ।

तत्तर्जन्यां—ॐ पीं ॐ नमः, एवं मध्यमायां—जं०, अनामायां—नं०, कनिष्ठायां—वं०, दक्षकनिष्ठायां ळं०, अनामायां—भां०, मध्यमायां—यं०, तर्जन्यां—स्वां०, अङ्गुष्ठे—हां नम" इति संहारेण प्रथमं विन्यस्य, पुनर्दक्षाङ्गुष्ठादिवामाङ्गुष्ठपर्यन्तं दशवर्णानुक्तक्रमेण विन्यस्याऽङ्गुष्ठद्वयमारभ्य कनिष्ठाद्वयपर्यन्तं स्थित्वा, विन्यस्य, कराङ्गुलिषु दशाङ्गं पञ्चाङ्गं च प्राग्विन्यस्य, मूलमुच्चार्य, 'अं पुनर्वैपरीत्येन मूलं नमः' इत्यादियुक्त्या मातृकां विन्यस्य, पादयोः—गों नमः पराय पृथिवीतत्त्वात्मने नमः, लिङ्गे—पीं नमः परायाऽप्तत्वात्मने०, हृदि—जं नमः पराय तेजस्त०, मुखे—नं नमः पराय वायुत०, शिरसि—वं न० आकाशत०, हृदि—ळं न० अहङ्कारत०, हृदि—भां न० महत्त०, सर्वाङ्गे—यं न० प्रकृतित०, स्वां न० पुरुषत०, हां नमः पराय परत०, सर्वाङ्गे—हां नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः, स्वां न० पुरुषत० यं न० प्रकृतित०, हृदि—भां नमः प० महत्त०, ळं नमः परायाऽङ्कारत०, शिरसि—वं न० आकाशत०, मुखे—नं० वायुत०, हृदि—जं न० तेजस्त०, लिङ्गे—पीं नमः जलत०, पादयोः—गों नमः पराय पृथिवीतत्त्वामने नम" इति तत्त्वानि विन्यस्य, ततः प्रणवपुटितमूलेन मस्तकादिपादान्तं त्रिर्व्यापकं विन्यस्य, पादयोः—गों नमः, जानुनोः—पीं०, लिङ्गे—जं०, जठरे—नं०, हृदि—वं०, मुखे—ळं, नासायां—भां०, कर्णयोः यं०, नेत्रयोः—स्वां०, शिरसि—हां नमः । शिरसि—गों०, नेत्रयोः—पीं०, कर्णयोः—जं०, नासायां—नं, मुखे—वं०, हृदि—ळं०, उदरे—भां०, लिङ्गे—यं०, जानुनोः—स्वां०, पादयोः हां नमः । हृदि गों नमः, उदरे—पीं०, लिङ्गे—जं०, जानुनोः—नं०, पादयोः—वं०, शिरसि—ळं०, नेत्रयोः—भां०, कर्णयोः—यं०, नासायां—स्वां०, मुखे—हां नमः ।

[1]'अथ विभूतिपञ्जरन्यास':—मूलाधारे—गों०, लिङ्गे—पीं०, नाभौ—जं०, हृदि—नं०, गले—व०, मुखे—ळं०, दक्षांसे—भां०, वामे—यं०, दक्षोरौ—स्वां०, वामोरौ—हां नमः ॥१॥ स्कन्धयोः—गों०, नाभौ—पीं०, कुक्षौ—जं०, हृदि—नं०, कुचद्वये—व०, दक्षपार्श्वे—ळं०, वामे—भां०, पृष्ठे—यं०, दक्षश्रोण्यां—स्वां०, वामा यां— हां नमः ॥२॥ मस्तके—गों० मुखे—पीं०. दक्षनेत्रे—जं०, वामे—नं०, दक्षकर्णे वं०, वामे—ळं०, दक्षनसि भां०, वामे यं०, दक्षगण्डे—स्वां०, वामे—हां० ॥३॥ दक्षदोर्मूले—गों०, तन्मध्ये—पीं०,

---

१. '—' वयमंशः क. पुस्तके नास्ति ।

तन्मणिबन्धे जं०, तदङ्गुलिमूले—नं०, तदग्रे—वं०, तदङ्गुष्ठे—ळं०, तत्तर्जन्यां—भां०, मध्यमायां—यं०, अनामिकायां—स्वां०, तत्कनिष्ठायां—हां ॥४॥ एवं वामबाहौ ॥५॥ दक्षोरुमूले—गों०, जानुनि पीं०, गुल्फे—जं०, अङ्गुलिमूले—नं०, अग्रे—वं०, अङ्गुष्ठे—ळं०, तर्जन्यां—भां०, मध्यमायां—यं०, अनामायां—स्वां०, कनिष्ठायां—हां नमः ॥६॥ एव वामपादेऽपि ॥७॥ शिरसि—गों०, तत्पूर्वभागे—पीं०, तद्दक्ष—जं०, तत्पृष्ठे—नं०, तद्वामे—वं०, सर्वशिरसि—ळं०, दक्षबाहौ—भां०, वामे—यं०, दक्षसक्थिनि—स्वां०, वामे हां०, ॥८॥ मस्तके—गों०, नयने—पीं०, मुखे—जं०, कण्ठे—नं०, हृदि—वं०, उदरे—ळं०, मूलाधारे—भां०, लिङ्गे—यं०, जानुनोः—स्वां० प्रपदयोः—हां० ॥९॥ कर्णयोः—गों०, गण्डयोः—पीं०, अंसयोः—जं०, स्तनयोः—नं०, पार्श्वयोः—वं०, स्फिचोः—ळं०, ऊर्वोः—भां०, जानुनोः यं०, जङ्घयोः—स्वां०, पादयोः—हां नमः इति विन्यस्य ॥१०॥

ततः पूर्वोक्त पञ्जरन्यासं[1] कृत्वा, पुनः सृष्टिस्थितिन्यासौ, दशाङ्गपञ्चाङ्गन्यासौ, ऋष्यादिन्यासं च कृत्वा, मुद्राविरचनादिपुष्पोपचारान्ते देवस्य देहे न्यासोक्तस्थानेषु सृष्टिस्थितिन्यासक्रमेण दशाङ्गानि पञ्चाङ्गानि च सम्पूज्य—

"मुखे—वेणवे नमः, स्कन्धे—वनमालायै०, वक्षसि-श्रीवत्साय०, गले—कौस्तुभाय०", ततो विभूतिपञ्जरन्यासक्रमेण देवस्य देहे सम्पूज्य, कर्णिकायां—देवाग्र्यादिप्रादक्षिण्येन—"ॐ दामाय०, सुदामाय०, किङ्किणीदामाय०, केसरेषु—पञ्चाङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रादि—रुक्मिण्यै०, सत्यभामायै०, नग्नजित्यै०, सुनन्दायै०, मित्रविन्दायै०, सुलक्षणायै०, सुशीलायै०, जाम्बवत्यै०, दलाग्रषु—वसुदेवाय०, देवक्यै०, नन्दगोपाय०, यशोदायै०, बलभद्राय०, सुभद्रायै०, गोपालेभ्यः०, गोपिकाभ्यः०, पद्ममध्ये—मन्दाराय०, पद्माद्बहिर्देवाग्रे—सन्तानाय०, पारिजाताय०, कल्पवृक्षाय०, हरिचन्दनाय नमः" इति प्रादक्षिण्येन देवाग्रादितः सम्पूज्य, लोकपालान्वज्रादींश्च समभ्यर्च्य, धूपदीपौ समर्प्य, देवस्य पुरतः प्राग्वन्नैवेद्यं निधाय, संस्कृत्य, पाद्याचमनीये दत्त्वा, देवं गन्धादिभिः सम्पूज्याऽऽपोशनं दत्त्वा, ग्रासमुद्रां प्रदर्श्य, प्राणादिपञ्चमुद्रास्तत्तन्मन्त्रेण प्रदर्श्य, करद्वयेन नैवेद्यमुद्रां बद्ध्वा, 'ठ्वौं नमः पराय ब्रह्मात्मनेऽनिरुद्धाय निवेद्यं कल्पयामि 'इति नैवेद्यं समर्प्य, तत्कालध्यानादिप्रसन्नाचान्ते मूलमुच्चार्य, 'श्रीकृष्णाय नम' इति देवस्य चरणयोः—शुक्लकृष्णैस्तुलसीदलैः पञ्चधा सम्पूज्य, देवस्य हृदये—पञ्चधा श्वेतरक्तकरवीरपुष्पैर्देवस्य शिरसि—पञ्चधा सितरक्तपद्मैर्देवस्य सर्वगात्रे—श्वेतकृष्णतुलसीभिः,

१. ख. मूर्तिपञ्जरन्यासं ।

श्वेतरक्तकमलैः, श्वेतरक्तकरवीरैश्च पञ्च पुष्पाञ्जलीर्दत्वा, पुनर्मूलमुच्चार्य्य—'श्रीकृष्णाय नमः' एवं "श्रीवासुदेवाय०, श्रीनारायणाय०, श्रीदेवकीनन्दनाय०, श्रीयदुश्रेष्ठाय०, श्रीवार्ष्णेयाय०, श्रीग्रसुराक्रान्तभारहारिणे०, धर्मसंस्थापकाय नम" इत्यष्टौ कृष्णान्सम्पूज्य राजोपचारादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति तथा—

ध्यात्वैवं परमात्मानं नन्दपुत्रं विशालधीः ।
पूर्वोक्तविधिना सम्यग्दीक्षितः प्रजपेन्मनुम् ॥२५७॥

मन्त्रार्थं चिन्तयन्मन्त्री नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि श्वेतपद्माक्षमालया ॥२५८॥

पश्चान्मन्त्रस्य सिद्धयर्थं दशलक्षं जपेत्सुधीः ।
लक्षं हुनेद्रक्तपद्मैः सितासर्पिर्मधुप्लुतैः ॥२५९॥

शर्कराघृतयुक्तेन हविर्द्रव्येण वा हुनेत् ।
तर्पयेत्सलिलैः शुद्धैश्चन्द्रचन्दनवासितैः ॥२६०॥

ग्रात्माभिषेकं कृत्वाऽथ भूदेवान्भोजयेत्ततः ।
नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैस्ताम्बूलैश्च सदक्षिणैः ॥२६१॥

ततो निजगुरुं सम्यक् प्रणिपत्य यथाविधि ।
धनधान्याम्बराद्यैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥२६२॥

तोषयेत्परया भक्त्या निजकार्यस्य सिद्धये ।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्निजवाञ्छितान् ॥२६३॥

कुर्याद्भक्तियुतः सम्यङ् नित्यनैमित्तिके रतः ।

प्रयोगाश्चाऽग्रे वक्ष्यन्ते ।

सारसङ्ग्रहे—

ग्रथो वदामि कृष्णस्य मन्त्ररत्नं सुगोपितम् ।
त्रैलोक्यख्यातसामर्थ्यं नारदाद्यैरुपासितम् ॥२६४॥

धर्मार्थकाममोक्षाप्तिकरं वश्यादिसाधनम् ।
ग्रज्ञानेन्धनकालाग्नियोगैश्वर्य्यफलप्रदम् ॥२६५॥

अकालमृत्युसंहारदुरदृष्टनिवारणम् ।
गलग्रहमहारोगभूतराक्षसनाशनम् ॥२६६॥

सङ्ग्रामे जयदं नृणामरण्ये चाऽभयप्रदम् ।
भृत्यदासीगजाश्वादिरथधेनुरथावहम् ॥२६७॥

क्षेत्रपुत्रकलत्रादितेजःकान्तियशस्करम् ।
[1]धैर्यगाम्भीर्यशौर्यादिमर्यादाप्रतिभाकरम् ॥२६८॥

ब्रह्माण्डक्षोभजनकं सिद्धचष्टकसमृद्धिदम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वदं नाऽत्र संशयः ॥२६९॥

चक्री पुरन्दरारूढस्त्रिमूर्त्तीन्दुसमन्वितः ।
बीजमाद्यं भवेदेतत्क्रोधीशाधस्त्रिविक्रमः ॥२७०॥

श्वेतो नरकजित्कान्तिर्वायुः शार्ङ्गी तु सद्ययुक् ।
अमृताक्षीन्दवः पश्चादत्रिर्दीर्घयुतस्ततः ॥२७१॥

वायुर्दशाक्षरश्चाऽष्टादशार्णोऽयं मनूत्तमः ।
आनन्दार्थो णकारोऽपि कृष्णस्तस्मात्तदर्थकः ॥२७२॥

कर्षणात्पापजातस्य भक्तानां कृष्ण उच्यते ।
मन्त्रात्मकशरीरस्य तद्वर्णत्वाच्च देशिकैः ॥२७३॥

गोशब्दवाचकत्वात्तु ज्ञानं तत्तेन लभ्यते ।
वेति शब्दमशेषं वा गोविन्दो गोविचारणात् ॥२७४॥

दशार्णपूर्वतुर्यार्द्धस्तदर्द्धश्चाऽपि पूर्ववत् ।

चक्री ककारः, पुरन्दरः लकारः, त्रिमूर्त्तिः ईकारः, इन्दुर्बिन्दुः, एतैः कामबीजमुद्धृतम् । क्रोधीशः ककारः, त्रिविक्रमः ऋस्वरस्तेन कृ इति । श्वेतः षकारः, नरकजित् ण, कान्तिराकारस्तेन ष्णा । वायुः यकारः, शार्ङ्गी गकारः, सद्य ओकारस्तेन 'गो । अमृतं व, अक्षि इ, इन्दुः बिन्दुस्तेन'[2] विं । अत्रिर्दकारः, दीर्घं आकारस्तेन दा । वायुर्यकारः, दशाक्षरः पूर्वोक्त एव । तथा—

नारदो मुनिराख्यातो गायत्रं छन्द ईरितम् ॥२७५॥

---

१. क. धैर्यगाम्भीर्यसौन्दर्यादि० । २. '—' चिह्नान्तर्गतोऽशः क. पुस्तके नाऽस्ति ।

श्रीकृष्णो देवता प्रोक्तो बीजशक्त्यादि पूर्ववत् ।
अन्तःकरणवेदाब्धिचतुर्भिर्युगलेन च ॥२७६॥

मूलमन्त्रविभक्तार्णैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।

सनत्कुमारकल्पे तु—

मन्त्रस्याऽस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रं छन्द उच्यते ।
गोपवेषधरो विष्णुर्देवता परिकीर्तितः ॥२७७॥

वर्णेनैकेन हृदयं त्रिभिर्वर्णैः शिरो मतम् ।
चतुर्भिश्च शिखा प्रोक्ता तावद्भिः कवचं मतम् ॥२७८॥

नेत्रं तथा चतुर्वर्णैर्द्वाभ्यामस्त्रं तथा मुने ।

इत्युक्तम् । अत्र यथागुरूपदेशमादरणीयम् ।

पञ्चाङ्गानि न्यसेत्पश्चादङ्गुलीषु करद्वये ॥२७९॥

मूलमन्त्रेण सर्वाङ्गे त्रिवारं व्यापकं न्यसेत् ।
ध्रुवं व्यापय्य चाऽन्ते तु मन्त्रार्णन्यासमाचरेत् ॥२८०॥

के ललाटे भ्रुवोर्मध्ये कर्णयोर्नेत्रयोर्नसोः ।
मुखे ग्रीवाहृदोर्नाभौ कट्यां लिङ्गे ततः परम् ॥२८१॥

जानुयुग्मे पदद्वन्द्वे न्यसेदेकैकमक्षरम् ।
वेदाद्यं मस्तके न्यस्य पादान्यं च विन्यसेत्[1] ॥२८२॥

शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु मनुवित्तमः ।
पञ्चाङ्गानि पुनर्न्यस्य मुन्यादिन्यासमाचरेत् ॥२८३॥

न्यासान्तरादिकं सर्वं दशवर्णोक्तवद्भवेत् ।
ध्यानञ्चोक्तप्रकारेण पूजनं च तथा भवेत् ॥२८४॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'शिरसि नारदाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीकृष्णाय देवतायै नमः'

१. क. षविन्यसेत् ।

इति विन्यस्य, बीजशक्त्यादिन्यासं प्राग्वत्कृत्वा, 'क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा गोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुं, स्वाहाऽस्त्राय फडि'ति पञ्चाङ्गान्प्राग्वद्विन्यस्य, मूलमन्त्रेण प्राग्वद् व्यापकं त्रिः कृत्वा, सकृत्प्रणवेन च व्यापकं विन्यस्य, 'शिरसि—क्लीं नमः, ललाटे—कृं०, भ्रूमध्ये—ष्णां०, दक्षकर्णे—यं०, वामे—गों०, दक्षनेत्रे—विं०, वामे—दां० दक्षनसि यं०, वामे गों०, मुखे—पीं०, ग्रीवायां जं०, हृदि—नं० नाभौ वं०, दक्षकटौ—ल्लं०, वामायां—भां०, लिङ्गे—यं०, जानुनोः—स्वां०, पदयोः—हां नमः ।' तत 'ॐ नम' इति विन्यस्य, 'शिरसि—क्लीं नमः, मुखे—कृष्णाय०, हृदये—गोविन्दाय०, गुह्ये—गोपीजनवल्लभाय०, पादयोः—स्वाहा नम' इति विन्यस्य, पुनः पञ्चाङ्गन्यासं कृत्वा, दशाक्षरोक्तानन्यान्न्यासांश्च विधाय ध्यानादि सर्वमन्यद्दशाक्षरोक्तवत्कुर्यादिति । तथा—

अयुतद्वयसंख्यातमधिकारार्थमादरात् ।
पञ्चलक्षं जपेत्पश्चाद्दशांशं पूर्ववद्धुनेत् ॥२८५॥

तर्पणादि ततः सर्वं पूर्वोक्तविधिनाऽऽचरेत् ।
अथ काम्यानि कर्म्माणि वक्ष्यन्ते मन्त्रयोर्द्वयोः ॥२८६॥

देवकीतनयं कृष्णं तदानीं जातमद्भुतम् ।
चक्रशङ्खगदापद्मधारिणं गगनप्रभम् ॥२८७॥

पीतवस्त्रलसद्गात्रं शोभिसर्वाङ्गसुन्दरम् ।
एवं सञ्चिन्त्य सञ्जप्य रात्रिशेषे दशायुतम् ॥२८८॥

त्रिमध्वक्तैर्दशांशं तु किंशुकप्रसवैर्हुनेत् ।
मन्त्रयोरेकतो मन्त्री यः करोतीत्थमादरात् ॥२८९॥

वीर्यं प्रज्ञां स्मृतिं प्राप्य कवीनामग्रणीर्भवेत् ।
त्यक्तदिव्याद्भुताङ्गं तं मातृक्रोडगतं शुभम् ॥२९०॥

चलत्पादकरन्यास चिन्तयन्नयुतं जपेत् ।
तावत्संख्यं हुनेदग्नौ घृतेनैव स साधकः ॥२९१॥

स लभेत्परमां भक्तिमास्तिकः शान्तचेतनः ।
रुदन्तं बालशयने गोपीभिर्दोलितं शिशुम् ॥२९२॥

ध्यात्वा क्षीरधिया तोयैस्तर्प्पयन् लभतेऽशनम् ।
क्षुद्रबालग्रहप्रेतस्मृतिनाशादिभीतिषु ॥२९३॥

पिबन्तं पूतनास्तन्यं ग्रस्तस्य शिरसि स्मरन् ।
शतं साग्रं जपेन्मन्त्रं रुदन्तीं पूतनां तथा ॥२९४॥

सप्राणचूषणाशेषच्छिन्नमर्मकलेवरम् ।
तदानीं प्रकटीभूय प्रोक्त्वा नश्यन्ति राक्षसाः ॥२९५॥

हुनेत्सुरवरमञ्जर्याः समिधस्त्वेधितेऽनले ।
पञ्चगव्योक्षिताः[1] सम्यक्पूतनावैरिणो मुखे ॥२९६॥

पाययेद्धुतशिष्टं तद्गव्यं पीतनरं ततः ।
सहस्रमन्त्रितैस्तोयैः कुम्भगैरभिषेचयेत् ॥२९७॥

ग्रहपीडानिवृत्त्यर्थं दुःखौघध्वंसनाय च ।
स्वकीयचरणाक्षिप्तशकटं भावयन्मनुम् ॥२९८॥

अयुतं प्रजपेत्सर्वविघ्नसङ्घाः शमं ययुः ।
नीलगात्रं स्वहस्ताभ्यां नवनीतं नवं हविः ॥२९९॥

दधानं किङ्किणीसङ्गतरक्षुनखभूषणम् ।
एवं ध्यात्वा हुनेन्मन्त्री दूर्वाकाण्डत्रिकैः शुभैः ॥३००॥

दुग्धाज्यलोलितैर्लक्षं तावन्मन्त्रं जपेद् बुधः ।
गुरुं सन्तोष्य वसुभिस्तर्प्पयेच्च द्विजोत्तमान् ॥३०१॥

आधिव्याधिविनिर्मुक्तो दीर्घजीवी भवेत्तु सः ।
बाहुभ्यां वकमादाय पाटयन्तं हि तुण्डयोः ॥३०२॥

कृष्णं ध्यायंस्तु बालानां भये स्पृष्ट्वा जपेन्मनुम् ।
अभिमन्त्रिततैलेन लिम्पेत्तद्दुःखशान्तये ॥३०३॥

गोगणं साधु रक्षन्तं चारयन्तमितस्ततः ।
वेणुं धमन्तं गोविन्दं ध्यायन्पूर्वोदितं फलम् ॥३०४॥

---

१. क. पञ्चगव्योत्क्षिताः ।

[1]महासर्पगरव्याप्तौ चिन्तयन्दष्टमस्तके ।
कालीयस्य फणामध्ये नृत्यन्तं कृष्णमञ्जसा ॥३०५॥

सुधादृष्ट्याऽभिवीक्षन्तं तद्गात्रं प्रजपेन्मनुम् ।
वामहस्तस्य तर्जन्या तर्जयन्मन्त्रिसत्तमः ॥३०६॥

सुखीकरोति विषिणं कालदष्टमपि क्षणात् ।
कालीयदमनं[2] कृष्णं ध्यात्वा कुम्भे प्रपूजयेत् ॥३०७॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा स्नापयेत्तज्जलेन यम् ।
कालकूटविषग्रस्तः सुखीभवति सेचनात् ॥३०८॥

गोवर्द्धनगिरिं वामबाहुदण्डेन बिभ्रतम्[3] ।
दक्षहस्तसुशाखाभिर्वेणुयोजितसन्मुखम् ॥३०९॥

कृष्णं सञ्चिन्तयन्मन्त्रं गच्छेच्छत्रुमृतं[4] जपन् ।
भीतिदास्तं न बाधन्ते विद्युद्वर्षणवायवः ॥३१०॥

व्यर्थमेघौघमायान्तं वासवं चिन्तयन् हुनेत् ।
अयुतं लवणैः शुद्धैरनावृष्टिर्भवेद् ध्रुवम् ॥३११॥

कलिन्दतनयातोये विहारनिरतं मुदा ।
मज्जनोन्मज्जनाद्यैश्च तरणैर्जलसेवनैः ॥३१२॥

गोपाङ्गनासमूहेन सिच्यमानं मुहुर्मुहुः ।
कृष्णं विचिन्त्य मन्त्रज्ञो वेतसोत्थैः समिद्वरैः ॥३१३॥

हुनेदयुतसंख्यातैः क्षीराक्तैर्यो यथाविधि ।
भूयसीं वृष्टिमिष्टां हि कुर्यादसमयेऽपि सः ॥३१४॥

एवमेव स्मरन्कृष्णं पीडितस्य तु मस्तके ।
मोहनार्त्तिगरस्फोटभूतराक्षसपन्नगैः ॥३१५॥

मन्त्रं जपेत्तदानीं स सुखीभवति नाऽन्यथा ।
वैनतेयगतं कृष्णं सप्रद्युम्नबलान्वितम् ॥३१६॥

---

१. क. महासर्पो ग० । २. पुस्तकद्वये ०मदनं । ३. ख. विभ्रमंतम् । ४. ख. ०च्छत्रमृतं ।

आत्मज्वरपराभूतज्वरेण स्तुतमादरात् ।
एवं ध्यात्वा ज्वराक्रान्तमस्तके सञ्जपेन्मनुम् ॥३१७॥

महाघोरज्वरो दुष्टस्तदानीं नाशमाप्नुयात् ।
एव ध्यात्वाऽनले कृष्णमभ्यर्च्याऽङ्गादिसंयुतम् ॥३१८॥

गुडूचीशकलैर्हुत्वा क्षीराक्तैरयुतं बुधः ।
क्रूरज्वरमशक्यञ्च नाशयेन्नाऽत्र संशयः ॥३१९॥

तीक्ष्णबाणप्रविद्धाङ्गभीष्मपीडाहरं हरिम् ।
ध्यात्वा जपेत्स्पृशन्नार्त्तं पाणिभ्यां स सुखी भवेत् ॥३२०॥

कृष्णं सान्दीपनेः पुत्रप्रदं ध्यात्वाऽयुतं हुनेत् ।
दुग्धाऽऽप्लुतैर्गुडूचीनां शकलैरर्चितेऽनले ॥३२१॥

अपमृत्युर्विनश्येत कृत्याः क्रूरा अपि क्षणात् ।
कृष्णं पुत्रान् प्रयच्छन्त द्विजाय मृतसूनवे ॥३२२॥

ध्यात्वा पार्थयुतं लक्षं जपेत्पुत्रसमृद्धये ।
पुत्रंजीवोत्थकाष्ठेन ज्वलिते हव्यवाहने ॥३२३॥

फलैस्तदीयैर्जुहुयादयुतं मधुनाऽऽप्लुतैः ।
पुत्रान्बहूनरोगांश्च लभते चिरजीविनः ॥३२४॥

दुग्धवृक्षत्वचां क्वाथैः कुम्भमापूर्य रात्रिषु ।
पूजयित्वाऽयुतं जप्त्वा प्रातर्योषां पतिव्रताम् ॥३२५॥

अभिषिच्य विधानज्ञो घृतं जप्तं च पाययेत् ।
नित्यमर्कदिने त्वेवं सुपुत्रान्बुद्धिशालिनः ॥३२६॥

वन्ध्याऽपि सा समाप्नोति नीरुजो दीर्घजीविनः ।
बोधिपत्रपुटे तोयं तप्तमष्टोत्तरं शतम् ॥३२७॥

मौनं कृत्वा पिबेन्नारी प्राग्वर्षात्सा सुतं लभेत् ।
कृत्यां क्रूरां महाभीमां काशिराजेन योजिताम् ॥३२८॥

पराजित्याऽऽत्मचक्रेण काशीतद्भववह्निना ।
शेषेण भस्मीकुर्वन्तं कृष्णं सम्यग्विचिन्तयन् ॥३२९॥

जुहुयान्निशि सिद्धार्थैः स्वीयतैलविलोलितैः ।
एवं कृते तु सप्ताहं वैरिणा केनचित्कृता ॥३३०॥

कृत्या भूयस्तमेवाऽऽशु संक्षयेन्नाऽत्र संशयः ।
आश्रमे रुचिरे दिव्ये बदरीवृक्षभूषिते ॥३३१॥

सूपविष्टं स्पृशन्तं च हस्ताम्बुजयुगेन च ।
घण्टाकर्णस्य सर्वाङ्गं स्मृत्वा गोविन्दमादरात् ।
मधुराक्तैस्तिलैर्लक्षं जुहुयादेधितेऽनले ॥३३२॥

अशेषपापनाशार्थं पुष्ट्यर्थं वा जपेत्ततः ।
रौक्मिणं बलभद्रं च दीव्यन्तं चाऽक्षकर्मणा ॥३३३॥

ध्यायन्[1] कृष्णं द्वेषयन्तं होमयेद् गुलिकाः शुभाः ।
गोमयोत्थाः क्षणाद् द्वेषः प्रीतयोर्जायते ध्रुवम् ॥३३४॥

खगेश्वरसमारूढं कुर्वन्तं बाणवर्षणम् ।
धावमानं रिपुगणमनुधावन्तमाशुगम् ॥३३५॥

जपेत्सप्तसहस्राणि कृष्णं ध्यात्वा मनुं बुधः ।
सप्ताहाद्वैरिणो भूयादुच्चाटो देशतो ध्रुवम् ॥३३६॥

कपित्थफलसम्पातने[2] वने[3] वत्सकं क्षिपन् ।
कृष्णो ध्येयोऽयुतं जप्यो मनुरुच्चाटकृद्रिपोः ॥३३७॥

ध्यायन् स्कन्धं[4] समघनं स्वेन मञ्चादधःकृतम् ।
वैरिणं कंसरूपं च कर्षन्तं प्राणवर्जितम् ॥३३८॥

अयुतं प्रजपेन्मत्रं हुनेद्वा तत्समं बुधः ।
समिद्भिर्जन्मनक्षत्रतरूणां तस्य मन्त्रवित् ॥३३९॥

शत्रुर्निधनमाप्नोति सुधाभक्षोऽपि नाऽन्यथा ।
कलिद्रुमसमिद्भिर्यो नित्यं तैलप्लुतैर्हुनेत् ॥३४०॥

यामिन्यामयुतं स्वस्थो रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।
कार्पासबीजचूर्णानि निशानिम्बदलानि च ॥३४१॥

---

१. ख. ध्यानयन् । २. ख. ०फलसम्पात । ३. ख. वने वै । ४. ख. स्तंभनं ।

एरण्डतैलसिक्तानि हुनेत्त्रिकटुकानि च ।
रात्रौ श्मशानभूमिस्थो रिपुनाशाय मान्त्रिकः ॥३४२॥

मारणं निन्दितं कर्म यदि कुर्वीत साधकः ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं तावद्वा हविषा हुनेत् ॥३४३॥

मन्त्री तत्पापनाशाय शान्तचेता दृढव्रतः ।
पुरन्दरमुखान् जित्वा हरन्तं सुरपादपम् ॥३४४॥

कृष्णं ध्यायन् जपेल्लक्षं सर्वतो जयमाप्नुयात् ।
व्याख्यानमुद्रया कृष्णं गीतार्थं फल्गुनाय च ॥३४५॥

कथयन्तं रथारूढं भावयन् प्रजपेन्मनुम् ।
धर्मवृद्धिर्भवेत्तस्य योगसिद्धिश्च जायते । ३४६॥

त्रिस्वादुयुक्तैर्लक्षं यः किंशुकप्रसवैर्हुनेत् ।
महाकविः स वादीन्द्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥३४७॥

कोटिभास्करसङ्काशं विश्वरूपशरीरिणम् ।
तप्तहाटकसत्कान्तिमग्नीषोमशरीरिणम् ॥३४८॥

सूर्यानलस्फुरद्वक्त्रं चरणाम्बुजमण्डितम् ।
विविधानेकसद्धेतिं दिव्यनेपथ्यधारिणम् ॥३४९॥

जगद्व्योमान्तरालेषु व्याप्तं कृष्णं विचिन्तयन् ।
मन्त्रश्रेष्ठं जपेत्सम्यक् सहस्रं साष्टकं बुधः ॥३५०॥

देशगेहपुरग्रामवास्तुस्वात्माभिरक्षणम् ।
भवेद्दशार्णमन्त्रेण तद्वदष्टादशार्णतः ॥३५१॥

उक्तानेतान् प्रयोगांस्तु यदृच्छातः[1] समाचरेत् ।
वश्यं कर्माऽधुना वक्ष्ये मन्त्रद्वयत आदरात् ॥३५२॥

यत्कृत्वा विधिना मन्त्री सर्वलोकप्रियो भवेत् ।
अरण्योद्भवसत्पुष्पैर्विकचैररुणैः शुभैः ॥३५३॥

---

१. क. पवछातः ।

मध्याह्नोक्तविधानेन पूजयित्वा गृहे हरिम् ॥३५४॥

मध्याह्नोक्तविधानपूजनं त्वग्रे वक्ष्यते ।

प्रत्यहं दशवर्णं यः सहस्रं साष्टकं जपेत् ।
मण्डलाद् द्विजमुख्यानां चक्रं तस्य वशे भवेत् ॥३५५॥

मालतीकुसुमश्रेष्ठैर्गोपवेषं यथा पुरा ।
कृष्णमभ्यर्च्य नृपतीन्वशं नयति दासवत् ॥३५६॥

क्रीडन्तं रक्तकुसुमैरश्वमारसमुद्भवैः ।
वैश्यान्नीलोत्पलैः शूद्रानिष्ट्वा गायन्तमच्युतम् ॥३५७॥

तण्डुलैः शुक्लपुष्पैश्च घृताक्तैर्यः सहस्रकम् ।
अन्वहं सप्तरात्रं तु हुत्वा तद्भस्म धारयेत् ॥३५८॥

अलिके धारणान्नारी स्वपुमांसं[1] वशं नयेत् ।
पुरुषश्च तथा नारीं दासीं कुर्यान्न संशयः ॥३५९॥

पुष्पताम्बूलवासांसि कज्जलालेपनादिकम् ।
एकेन मन्त्रयोर्मन्त्री सहस्रमभिमन्त्र्य च ॥३६०॥

दद्याद्येभ्यः सदा ते स्युः किङ्करा मरणान्तिकम् ।
आपण्ये व्यवहारादौ विवादे राजवेश्मसु ॥३६१॥

परिषद्यक्षकर्मादौ शतं साग्रं जपेत्तु यः ।
तत्र यद्वचनं ब्रूयात्तेनैव स जयी भवेत् ॥३६२॥

सूपविष्टं कदम्बाधो वल्लवीभिः सहाऽच्युतम् ।
हृद्यगानपरं ध्यात्वा हुत्वा त्रिमधुराप्लुतैः ॥३६३॥

अपामार्गसमिच्छ्रेष्ठैस्त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
रासक्रीडारसं कृष्णं ध्यात्वा मन्त्रं दशाक्षरम् ॥३६४॥

जपेत्सहस्रं नित्यं यो मासमात्रेण साधकः ।
इष्टां कन्यामवाप्नोति दुर्लभामपि नाऽन्यथा ॥३६५॥

अत्युच्चकुन्दमारूढं कृष्णं ध्यात्वा सहस्रकम् ।
सायं जप्यात्तु या कन्या प्रत्यहं मण्डलाद्धि सा ॥३६६॥

---

१. ख. स्वयुग्मांसं ।

मन्त्रस्याऽस्य प्रभावेन वाञ्छितं वृणुयाद्वरम् ।
गोपीहस्तसरोजानि धृत्वा नृत्यन्तमञ्जसा ॥३६७॥

कृष्णं सञ्चिन्त्य मन्त्रं यो जपेदष्टादशाक्षरम् ।
लक्षं मधुप्लुतैर्वाऽपि चूर्णैर्लाजसमुद्भवैः ॥३६८॥

हुत्वाऽयुतं जपेत्तावत्कन्यामिष्टां लभेत सः ।
अष्टादशार्णमन्त्रेण पलाशसमिधोऽयुतम् ॥३६९॥

मधुप्लुतैः कुशैर्वाऽपि हुनेद्वा तिलतण्डुलैः ।
वशीभवन्ति भूदेवा दत्वा सर्वस्वमादरात् ॥३७०॥

कृतमालप्रसूनैश्च कुरण्डकुसुमैरपि ।
हुत्वा वशीकरोत्येव भूपालान्सपरिच्छदान् ॥३७१॥

बकुलोद्भवसत्पुष्पैः "पाटलोत्थैश्च तैरपि ।
इक्षुजैर्विट्तुरीयौ च स्वायत्तौ कुरुते क्षणात् ॥३७२॥

नूतनोत्फुल्लसत्पद्मैः सुगन्धैररुणोत्पलैः ।
मध्वक्तैश्चम्पकैर्वाऽपि"[1] पाटलोत्थैः प्रसूनकैः ॥३७३॥

हुत्वाऽयुतं क्रमेणैव वशयेद्वर्णयोषितः ।
अश्वमारप्रसूनैश्च मध्वक्तैः प्रत्यहं हुनेत् ॥३७४॥

रात्रौ सहस्रसंख्यातैः सप्तरात्रमतन्द्रितः ।
पण्याङ्गनानां साहस्रं चारुयौवनगर्वितम् ॥३७५॥

पञ्चबाणप्रविद्धाङ्गं दासीकुर्यान्न संशयः ।
सिद्धार्थैर्लवणोपेतैर्मध्वक्तैस्त्रिसहस्रकम् ॥३७६॥

होमं प्रकुर्वतो रात्रौ चन्द्रोऽपि द्राग्वशीभवेत् ।
श्रीवृक्षस्य फलैः पत्रैस्तर्पणैश्च प्रसूनकैः ॥३७७॥

त्रिस्वादुसंयुतैर्होमात् [2]पद्मैस्तण्डुलसंयुतैः ।
प्रत्येकद्रव्यतो लक्ष्मीं वशीकुर्यान्निजालये ॥३७८॥

---

१. "–" चिह्नान्तर्गतोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । २. ख. पत्रै० ।

वासांसि वल्लवस्त्रीणां मनोभिः सह केशवम् ।
समादाय कदम्बं तु समारूढं तु चिन्तयन् ॥३७९॥

जप्यात्सहस्रमानं यो रात्रौ स दशभिर्दिनैः ।
इ चीमप्यानयेन्मन्त्री शीघ्रमेव न संशयः ॥३८०॥

किं बहूक्तेन मन्त्राभ्यामेताभ्यां सदृशोऽपरः ।
नाऽस्ति वश्ये तथाऽऽकृष्टौ[1] देवदानवयोषिताम् ॥३८१॥

चन्द्रकुन्दसुगौराङ्गं रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
अरिकम्बू गदापद्मे बाहुदण्डैस्तु बिभ्रतम् ॥३८२॥

अरिश्चक्रं, कम्बुः शङ्खः ।

दिव्यैश्च मण्डनालेपैः पद्मदाम्ना च भूषितम् ।
पीताम्बरलसद्गात्रं तरुणं मुनिसेवितम् ॥३८३॥

विकचत्पद्ममध्यस्थं ध्यात्वा नन्दात्मजं प्रभुम् ।
स्वहृत्पद्मगतं देवं पुराणपुरुषं नवम् ॥३८४॥

नीलमेघनिभं वाऽपि द्रुतहेमद्युतिं तु वा ।
जपेदेकतरं मन्त्री ध्रुवाभ्यां पुटितं कृती ॥३८५॥

लक्षद्वादशकं सम्यक् तत्सहस्रं समिद्वरैः ।
दुग्धाप्लुतैर्हुनेन्मन्त्री पयोद्रुमसमुद्भवैः ॥३८६॥

मध्वाज्यलोलितेनाऽपि हविषा वा जितेन्द्रियः ।
पश्चाद्विश्वाधिप नित्यं चिदानन्दकलेवरम् ॥३८७॥

भवान्धकारतरणिं स्वीयहृत्सरसीरुहे ।
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य[2] प्रत्यहं परमेश्वरम् ॥३८८॥

त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्री यजेत्सन्ध्योक्तवर्त्मना ।
विधिमेनं भजेद्यस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥३८९॥

संसाराब्धिमहाभीमं जरामृत्युसमाह्वयैः ।
अत्युच्चैर्लहरीजालैर्विषयग्राहसम्भृतम् ॥३९०॥

---

१. ख. तथा कृष्णौ । २. ख. संचिन्त ।

समुल्लङ्घ्य परं तेजो [जीवन् विष्णोर्निरञ्जनम् ।
उच्चरंस्तस्य नामानि पिबंस्तस्य कथामृतम् ॥३९१॥

आकारांस्तस्य च ध्यायंस्तत्पादाब्जं नमन्नपि ।
भक्त्या परमयोपेतो][1] जीवन्मुक्तः स कथ्यते ॥३९२॥

पिण्डं वह्निपुटे सुवृत्तविवरे संलिख्य तत्कोणगान्,
षड्वर्णान् पुनरङ्गपञ्चकलसत्सन्धीन् दलेष्वष्टसु ।
अष्टार्णान् वसुयुग्मवर्णसुमनुं तत्संख्यपत्रस्थितं,
बाह्येऽष्टादशपत्रपद्मलसितांस्तत्संख्यवर्णांल्लिखेत् ॥३९३॥

पद्मं तत्त्वदलं ततः प्रतिदलं गायत्रिवर्णांल्लिखे—
त्संवेष्ट्य स्मरबीजतः पुनरथो त्रिंशद्विपत्राम्बुजम् ।
तत्राऽनुष्टुब्वर्णकाननुदलं वीतं च पिण्डेन तत्,
पञ्चाशल्लिपिभिः क्रमेण च पुनः पाशाङ्कुशाभ्यां वृतम् ॥३९४॥

सर्वं वृत्तेन संवीतं यन्त्रमेतत्प्रकल्पितम् ।
यन्त्रराजमिति ख्यातं सर्वविश्वप्रमोहनम् ॥३९५॥

कामधर्मार्थफलदं शत्रुदस्युनिवारणम् ।
कीर्त्तिकान्तिधरारोग्यरक्षाश्रीविजयप्रदम् ॥३९६॥

पुत्रपौत्रप्रदं लोके भूतवेतालनाशनम् ।
लिखितं भूर्जपत्रादौ पूजितं चाऽभिमन्त्रितम् ॥३९७॥

धारितं सर्वकामानां वृद्धिदं नाऽत्र संशयः ।

अस्याऽर्थः—षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये वृत्तं, तस्योदरे पिण्डगोपालैकाक्षरबीज विलिख्य, तन्मध्ये साध्यनाम स्फुट कृत्वा, षट्कोणेषु षडर्णमन्त्रस्य वर्णानिकैकशो विलिख्य, तत्सन्धिषु 'आचक्राय स्वाहे' त्यादिपञ्चाङ्गमन्त्रानालिख्य[2], तद्बहिः षोडशदलेषु वक्ष्यमाणकृष्णषोडशाक्षरमन्त्रवर्णान् विलिख्य, तद्बहिरष्टादशदलपद्मदलेषु कृष्णगायत्रीवर्णान् समालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तरालवीथ्यां कामबीजेन संवेष्ट्य, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलपद्मदलेषु गोपालानुष्टुभ्वर्णानालिख्य, तद्बहिर्वृत्तचतुष्टयवीथीष्वभ्यन्तरवीथ्यां पिण्डगोपालमन्त्रेणाऽऽवेष्ट्य, द्वितीयवीथ्यां

१. कोष्ठबद्धोंऽशो न दृश्यते ख. पुस्तके । २. क. ॰मन्त्राणां लिख्य ।

मातृकार्णैस्तृतीयवीथ्यां पाशाङ्कुशबीजाभ्यां निरन्तरं संवेष्टयेदेतद्यन्त्रमुक्तविधिना साधितं धृतमुक्तफलदं भवतीति ।

तथा— कामं कृष्णाय गोविन्दो ङेयुग्वस्वक्षरो मनुः ।

कामः तद्बीजं, कृष्णाय स्वरूपं, गोविन्दो ङेयुक् गोविन्दाय, वस्वक्षरः अष्टाक्षरः ।

तथा— तारं नमः पदं कृष्णं चतुर्थ्यन्तं वदेत्ततः ॥३९८॥

ङेऽन्तं च देवकीपुत्रं वर्माख्यान्ते द्विठान्तकः ।
मनुः षोडशवर्णोऽयं षोडशारे प्रकल्पितः ॥३९९॥

द्विठः स्वाहा ।

तथा— दामोदरं चतुर्थ्यन्तं विद्महे तदनन्तरम् ।
वासुदेवाय चेत्यन्ते धीमहीति पदं वदेत् ॥४००॥

तन्नः कृष्ण इति प्रोक्त्वा पुनर्ब्रूयात्प्रचोदयात् ।
गायत्र्येषा समाख्याता गोपालस्य जगत्पतेः ॥४०१॥

तथा — पिण्डमारहृदन्तेऽपि ङेयुतं भगवत्पदम् ।
नन्दपुत्रपदं ङेन्तं बालतो वपुषे तथा ॥४०२॥

श्यामलाय पदस्याऽन्ते दशवर्णमनुं वदेत् ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रस्तत्संख्यदलकल्पितः ॥४०३॥

पिण्डं ग्लौं-बीजं, दशवर्णमनुं पूर्वोक्तदशाक्षरम् । एतन्मन्त्रचतुष्टयं यन्त्रे लेख्यम् । तथा—

षट्कोणे पिण्डबीजं द्विनवलिपिवृतं कोणषट्के षडर्णं,
दिक्पत्राब्जे दशार्णं विलिखतु च ततो वेष्टितं मारबीजैः ।
किञ्जल्केषु स्वराढ्यं द्विवसुदललसत्षोडशार्णं च पद्मं,
कादीन् किञ्जल्कसंख्यान् रददललिखितानुष्टुबर्णं च पद्मम् ॥४०४॥

पाशाङ्कुशवृतं बाह्ये भूबिम्बं द्वितयाश्रिषु ।
वस्वर्णमन्त्रसंयुक्तं कृष्णयन्त्रमिदं विदुः ॥४०५॥

रक्षाकृच्चोरमारिघ्नं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये पिण्डबीजं ससाध्यं विलिख्य, तद्बीजमष्टादशाक्षरमन्त्रेणाऽऽवेष्ट्य, षट्कोणेषु प्रोक्तषडक्षरमन्त्रवर्णान्विलिख्य, तद्बहिर्दशदलपद्म-

दलेषु पूर्वोक्तगोपालदशाक्षराण्यालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले कामबीजैर्निरन्तरं संवेष्टच, तद्बहिः षोडशदलकेसरेषु षोडश स्वरांस्तद्दलेषु प्रोक्तषोडशाक्षरमन्त्रवर्णांश्चाऽऽलिख्य, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलकेसरेषु कादि-सान्तवर्णांस्तद्दलेषु प्रोक्ताष्टाक्षरमन्त्रवर्णान् विलिखेदेतदुक्तं फलदम्भवतीति ।

तथा— कृत्वा नवपदं मन्त्री मण्डलं चाऽश्रशूलकम् ।
मध्यकोष्ठे लिखेच्छ्लोकं वर्त्तुलद्वयशोभिते ॥४०६॥

वृत्ताकारेण मन्त्रज्ञो मध्यादिं मध्यपश्चिमम् ।
अष्टार्णं शिष्टकोष्ठेषु द्वादशार्णेन वेष्टितम् ॥४०७॥

कृष्णयन्त्रमिति ख्यातं सर्वरक्षाकरम्परम् ।
भूर्जपत्रे लिखित्वा तत्पूजितं स्थापितानिलम् ॥४०८॥

करेण धारितं नित्यं सर्वेष्टसुखवर्द्धनम् ।
द्विजद्रुपाट्टिकामध्ये सम्यगालिख्य पूजितम् ॥४०९॥

शालादौ निहितं यन्त्रं गवां वृद्धिकरं सदा ।

अस्याऽर्थः—प्राक्प्रत्यक्सूत्रचतुष्टयं दक्षोत्तरं सूत्रचतुष्टयं च कृत्वा, नवकोष्ठयुतं चक्रं विरच्य, तस्य कोणचतुष्टये शूलचतुष्टयं कृत्वा, तन्मध्यकोष्ठे वर्त्तुलद्वयान्तरालवीथ्यां वक्ष्यमाणश्लोकमन्त्राक्षराणि वक्ष्यमाणप्रकारेण लिखेत् । तद्यथा—

प्रथमवर्त्तुले पूर्वार्द्धं प्रतिलोमतो विलिख्य, द्वितीयवर्त्तुले द्वितीयार्द्धं तथैव लिखित्वाऽवशिष्टकोष्ठेषु पूर्वोक्तगोपालाष्टाक्षरमन्त्रवर्णानेकमेकं लिखेत् । ततस्तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले पूर्वोक्तद्वादशाक्षरमन्त्रेण वेष्टयेदेतदुक्तफलदम् ।

तथा— तसुकीति पदं ब्रूयाद्देवदेवत उच्चरेत् ।
तवेदेवरतो ब्रूयाद्रतं च तरतो वदेत् ॥४१०॥

रूढतो ख्यातशब्दान्ते तख्यते-पदमुद्धरेत् ।[1]
तरतो रूढतो ख्यात तस्यातो देवकीसुत ॥४११॥ इति ।

---

१. इतः परमयमंशो विशेषो दृश्यते ख. पुस्तके—
'देवकीसुतशब्दान्तः श्लोकमन्त्रोऽयमीरितः ।
तथा चाऽयं मन्त्रः—तसुकीदेवदेवेत तवे देवरतो रतः ।'

तथा— श्लोकमन्त्रं महेशानि चतुःषष्टिपदे लिखेत् ।
राक्षसादि च तद्भूयः सर्वतोभद्रनामकम् ॥४१२॥

यन्त्रं पुष्टिबलारोग्यकीर्त्तिलक्ष्मीजयप्रदम् ।
सारजे फलके कृत्वा निखातं गोष्ठमध्यतः ॥४१३॥

दस्युमारीग्रहादिभ्यो रक्षां कुर्याद् गवां सदा ।

तथा— क्षीरगोपपदं प्रोक्त्वा यगोरक्षीति[1] चोद्धरेत् ।
रक्षमाक्ष-पदं पश्चात्क्षमाक्षरपदं ततः ॥४१४॥

गोभानो[2]-पदमाभाष्य गगनोमापदं वदेत् ।
गोपक्षग-पदं प्रोक्त्वा त्यत्य क्षपमुच्चरेत् ॥४१५॥

अयं श्लोकमनुः प्रोक्तो द्वितीयः सर्वसिद्धिदः ।

अयं मन्त्रः—

क्षीरगोपयगोक्षीर रक्षमाक्षक्षमाक्षर ।
गोभानो गगनो मागोपक्षगत्यत्यगक्षप ॥४१६॥ इति ।

केरलीये यन्त्रसारे—

साध्यगर्भं लिखेत्कामं वह्निगेहयुगोदरे ।
षट्सु कोणेषु षड्वर्णं चतुःपत्राम्बुजे ततः ॥४१७॥

केसरोद्यच्चतुर्वर्गो द्वादशार्णमनोर्लिखेत् ।
त्रीणि त्रीणि च वर्णानि प्रतिपत्रं ततो बहिः ॥४१८॥

पद्मे दिक्पत्रके राजदशार्णमनुकेसरे ।
विंशत्यर्णमनोर्वर्णान् प्रतिपत्रं द्विशो लिखेत् ॥४१९॥

बहिः षोडशपत्रेषु स्वरोद्यत्केसरेष्वथ ।
आगावाद्यस्य सूक्तस्य चाऽर्द्धमर्द्धमृचां लिखेत् ॥४२०॥

बहिः संवेष्टच[3] काद्यैश्च ततो भूबिम्बमालिखेत् ।
वराहबीजं तद्दिक्षु भूबीजं कोणगं लिखेत् ॥४२१॥

गोपालयन्त्रमेतद्धि विधिना स्थापितं गृहे ।
तत्र गावः पयस्विन्यः सवृषाश्च निरामयाः ॥४२२॥

---

१. ख. गोरक्षीति । २. ख. गोमानो० । ३. क. संवेद्य ।

पीनोध्न्यो बहुरूपाश्च सुशीलाश्च भवन्ति हि ।
धनधान्यधरारत्नशालिनी तस्य मन्दिरे ॥४२३॥
लक्ष्मीरतिस्थिरा भूत्वा वसेदाभूतसम्प्लवम्[1] ।

अस्यार्थः—षट्कोणं विलिख्य, तन्मध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, षट्सु कोणेषु पूर्वोक्तकृष्णषडक्षरमन्त्रार्णानालिख्य, तद्बहिश्चतुःपत्रकमलकेसरेषु 'क्लीं कृष्ण क्लीं' इति मन्त्रस्य वर्णानालिख्य, तद्दलेषु पूर्वोक्तद्वादशाक्षरमन्त्रस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि विलिख्य, तद्बहिर्दशदशदल[2]-पद्मकेसरेषु पूर्वोक्तदशाक्षरमन्त्रार्णांस्तद्दलेषु पूर्वोक्तविंशतिवर्णमन्त्रस्य द्वि-द्वि-क्रमाद्विंशतिवर्णानालिख्य, तद्बहिःषोडशदलपद्मकेसरेषु षोडशस्वरान्, तद्दलेषु ऋग्वेदोक्तस्य 'गावो अग्मन्नुत' इत्येतत्सूक्तस्य प्रतिदलमृचामर्द्धमर्द्धं विलिख्य तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले ककारादिक्षकारान्तैरावेष्ट्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तस्य चतुर्दिक्षु वराहबीजं, कोणेषु भूबीजं च लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम् । तथा—

मध्ये तारं ससाध्यं वसुदलविवरे गव्यसूक्तस्य चर्चा—
मेकामेकां क्रमेण प्रविलिखतु बहिर्वेष्टितं मातृकार्णैः ।
आगावो-सूक्तयन्त्रं कुगृहगतमिदं स्थापितं मन्दिरादौ,
दद्याद् गोगृष्टिसम्पूर्णकवृषमहिषैः सङ्कुलामाशु लक्ष्मीम् ।४२४।।

अस्यार्थः—अष्टदलकमलमध्ये ससाध्यं प्रणवं विलिख्य, दलेषु वक्ष्यमाणगावोसूक्तस्यैकैकामृचं विलिख्य, वृत्तयोरन्तराले मातृकयाऽऽवेष्ट्य बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतदुक्तफलदम् ।

आगावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदंतु गोष्ठे रणयंत्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ।।४२५।।

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्द्धयन्नभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयुम् ।।४२६।।

न ता नशंति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरादधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः स च ते गोपतिः सह ।।४२६।।

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुपयंति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनुगावो मर्तस्य विचरन्ति यज्वनः ।।४२७।।

---

१. ख. सम्प्लुतम् । २. तद्बहिर्दशदल० ।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः सजनास इंद्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ।।४२६।।

यूयं गावो मे दयथा कृशंचिदश्रीरंचित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ।।४३०।।

प्रजावतीः सूयवसं रिशंतीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वस्तेन ईशतमाघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ।।४३१।।

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूपपृच्यतां ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ।।४३२।।

तथा— षट्कोणे कर्णिकायां स्मरमथ विलिखेत्कोणषट्के षडर्णं,
पत्रेष्वेकैकवर्णं दशसु च दशवर्णस्य बाणैः स्मरस्य ।
आवीतं मातृकार्णैरपि च कुगृहगं[1] साधु गोपालयन्त्रं,
प्रोक्तं धर्मार्थकामप्रचुरसुखकरं श्रीप्रदं वश्यकारि ।।४३३।।

अस्यार्थ—षट्कोणमध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, तद्बहिर्दशदल-पद्मदलेषु दशाक्षरमन्त्रवर्णान्, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः' इति बाणबीजैर्मातृकार्णैश्च वेष्टयेदेतदुक्तफलदम् । प्रचुरसुखं[2] मोक्षः ।

तथा— मारं मध्ये वसुदललसच्छिष्टकृष्णादिवर्णान्,
द्वौ द्वावन्त्ये त्रयमथ लिखेत्केसरेषु स्वराणाम् ।
द्वौ द्वौ वर्णौ बहिरपि समावेष्टित मातृकार्णै—
र्भूगेहस्थं निखिलसुखद यन्त्रमष्टादशार्णम् ।।४३४।।

अस्यार्थः—अष्टदलकमलमध्ये कामबीजं ससाध्यमालिख्य, तद्दलेषु पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमन्त्रस्य कृष्णायेत्यादिवर्णेषु चतुर्द्दशवर्णान् द्विद्विक्रमादालिख्याऽन्तिमदले वर्णत्रय विलिख्य, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः-षोडशस्वरानालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तरालवीथ्यां कादि-क्षान्तवर्णैरावेष्टय, बहिश्चतुरस्रं कुर्यादेतदुक्तफलदम्भवतीति ।

तथा— अथ साधितमन्त्रस्य साधकस्य फलाप्तये ।
त्रिकालार्चाविधिं वक्ष्ये गोविन्दस्य जगत्पतेः ।।४३५।।

---

१. क. कुगृहं । २. क. प्रवरसुखं ।

उक्ते वृन्दावने रम्ये स्वर्णभूमौ तु मण्डपम् ।
रम्यं रत्नमयं दिव्यं स्मरेत्कल्पतरोरधः ॥४३६॥

नानारत्नस्थले मध्ये रत्नसिंहासने शुभे ।
यथोक्तपद्ममध्यस्थं वासुदेवं विचिन्तयेत् ॥४३७॥

इन्द्रनीलनिभं कान्तं शिशुं सुमकराकृतिम् ।
[1]स्निग्धचक्रललाटान्तर्लुठन्मूर्द्धजसञ्चयम् ॥४३८॥

भृङ्गसङ्घसमासक्तप्रसुन्दरसन्मुखम् ।
इन्दीवरदलाकारशोभिनेत्रद्वयान्वितम् ॥४३९॥

चलत्कुण्डलसंशोभिपृथुगण्डसुमण्डितम् ।
रक्ताधरं सुनासं च हसन्तं हृष्टमानसम् ॥४४०॥

नानारत्नगणाकीर्णकण्ठाभरणभूषितम् ।
गोधूलिधूसरोरस्कं शार्दूलनखधारिणम् ॥४४१॥

विशिष्टपुष्टसद्देहं स्वर्णनेपथ्यदीपितम् ।
कटिदेशलसज्जङ्घाद्वयबद्धमनोरमम् ॥४०२॥

रत्नकाञ्चनसञ्छन्नकिङ्किणीजालमालया ।
तिरस्कुर्वन्तमत्यर्थं बन्धूकप्रसवश्रियम् ॥४४३॥

अत्यन्तारुणसच्छायहस्तपादाब्जशोभया ।
पयसा हृद्द्रुतं पिण्डं नवनीतं नवं शुभम् ॥४४४॥

दक्षिणोत्तरयोः पाण्योर्वहन्तं साधु सस्पृहम् ।
पृथिव्युद्वेगकर्तॄणां दैत्यानां दुष्टचेतसाम् ॥४४५॥

पूतनाशकटादीनां विनाशाय कृतोद्यमम् ।
गोपीगोपालधेनूनां समूहेनाऽऽवृतं सदा ॥४४६॥

आखण्डलमुखैर्देवैः सेवितं कामतत्परैः ।
प्रातरेवंविधं कृष्णं ध्यात्वा सुस्थिरमानसः ॥४४७॥

प्रागुक्त एवं पीठे तु हरिं सम्पूजयन् प्रभुम् ।
अङ्गावरणमाद्यं स्याद् द्वितीयं लोकपालकैः ॥४४८॥

---

१. ख. स्निग्धवक्र० ।

वज्रादिभिस्तृतीयं च पूजयित्वा प्रसन्नधीः ।
पक्वरम्भाफल खण्डं नवनीतं हविर्दधि ।।४४६।।

मेलयित्वा सुनैवेद्यं निवेद्य प्रीणयेद्विभुम् ।
उषस्येवंविधानेन श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।४५०।।

श्रीकृष्णं पूजयेद्यस्तु पूजोपकरणैः शुभैः ।
ऐहिकीं सर्वसम्पत्तिं द्रागेव प्राप्नुयात्तु सः ।।४५१।।

देहान्ते विष्णुसायुज्यं प्रयाति नियतं कृती ।
प्रगे प्रत्यहमेवं हि पूजयित्वा नरो हरिम् ।।४५२।।

गव्यं दधि निवेद्याऽस्मै गुडयुक्तमथाऽपि वा ।
तद्बुद्ध्या शुद्धनीरेण तर्प्पयीत मुखे हरेः ।।४५३।।

तद्बुद्ध्या गोदधिबुद्ध्या ।

अष्टोत्तरसहस्रं तु मूलमन्त्रं जपेत्ततः ।
[1]मध्यन्दिने भजेच्चाऽतिसुन्दराकृतिमद्भुतम् ।।४५४।।

देवर्षिदेवसिद्धौघसेवितं खेचरैः सदा ।
गवां गोपालगोपीनां समूहैः परितो वृतम् ।।४५५।।

नीलाम्बुवाहसत्कान्तिं विशिष्टाङ्गश्रियं विभुम् ।
नीलकण्ठस्य सत्पिच्छैः केशभारे सुमण्डितम् ।।४५६।।

उद्धतभ्रूलतं देवं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
पूर्णचन्द्रलसद्वक्त्रं रत्नकुण्डलमण्डितम् ।।५५७।।

गण्डमण्डलसंशोभिसुघोणं सस्मिताननम् ।
पीतवस्त्रधरं चारुमुक्ताहारविभूषितम् ।।४५८।।

काञ्चीकटककेयूरमुद्रिकानूपुरादिभिः ।
अलङ्कृतशरीरं तमङ्गरागपिशङ्गितम् ।।४५९।।

त्यक्तमालिन्यसञ्छिन्नवनमालाद्भुतांसकम् ।
कामबाणप्रविद्धाङ्गं वेणुवादनतत्परम् ।।५६०।।

---

१. ख. मध्ये दिने ।

हस्ते च बिभ्रतं वेणुं वामे शङ्खं सुवेत्रकम् ।
अभिरामतरं दक्षे रत्नश्रेष्ठमभीष्टदम् ॥४६१॥

ध्यात्वैवं विधिना देवं पूजयेदिष्टसिद्धये ।
दामाद्यैरङ्गकैश्चाऽपि महिषीभिश्च तत्परम् ॥४६२॥

वसुदेवादिभिः पश्चात्कल्पवृक्षैरनन्तरम् ।
इन्द्राद्यैश्च तदस्त्रैश्च सप्तावरणसंयुतम् ॥४६३॥

अर्चयित्वा तु गोविन्दं विधिवत्साधकोत्तमः ।
नैवेद्यं काञ्चने पात्रे पूर्वोक्तं विनिवेदयेत् ॥४६४॥

अष्टाधिकं शतं पश्चाद्धुनेत्साधु पयोऽन्धसा ।
शर्कराघृतयुक्तेन बलिं पश्चात्प्रकल्पयेत् ॥४६५॥

देवर्षियतिसङ्घेभ्योऽप्युपदेवेभ्य आदरात् ।

उपदेवा गन्धर्वयक्षादयः ।

स्वस्वदिक्क्रमतो विद्वान् भक्तियुक्तः प्रसन्नधीः ॥४६६॥

स्वस्वदिक्क्रमतः देवसम्मुखे देवस्योक्तदिक्क्रमेण । बलिं पायसादिभिः । तन्निवेदनप्रकारस्तु—देवाग्रादिचतुर्दिक्षु पायसादिकं पात्रेषु साधारेषु निधाय, 'देवेभ्य एष गन्धो नम' इति [1]गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, स्वहस्ते जलमादाय, 'देवेभ्य एष बलिर्नम' इति बलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्रणमेदित्येवमृषिभ्यः, योगिभ्यः, गन्धर्वादिभ्यश्च बलिं सम्पूज्य दद्यात् । तथा—

नवनीतहविर्बुद्ध्या तोयैः सन्तर्प्य तन्मुखे ।
सहस्रं शतमानं वा सम्पूज्य साष्टकं जपेत् ॥४६७॥

साष्टकमिति शतं सहस्रं वेत्यत्राऽन्वेति ।

मध्याह्ने कृष्णमेवं यः पूजयेद्भक्तितत्परः ।
गीर्वाणवृन्दवन्द्योऽसौ सम्मतः सर्वजन्तुषु ॥४६८॥

आयुर्बुद्धीन्दिराकान्तिसुभगत्वादिसंयुतः ।
सत्सन्ततिसुहृद्वर्गपशुक्षेत्रधनादिभिः ॥४६९॥

सर्वैश्वर्यसमेतोऽत्र सुखं भुक्त्वा हरिं व्रजेत् ।
अपराह्णार्चने भेदमङ्गीकुर्वन्ति तद्विदः ॥४७०॥

---

१. क. गन्धापंचो० ।

सन्ध्यायामूचिरे केचिद्रात्रावेवाऽपरे तथा ।
अष्टादशाक्षरान्मन्त्रात्सन्ध्याकाले समर्चनम् ॥४७१॥

यामिन्यां सर्वसम्पत्तिर्दशार्णमनुना यदि ।
कालद्वयेऽपि मन्त्राभ्यां पूजने केऽपि सम्मताः ॥४७२॥

सन्ध्यायां द्वारकामध्ये रम्यारामाश्रिते शुभे ।
गृहैः षोडशसाहस्रैः सर्वतः परिवेष्टिते ॥४७३॥

पद्मेन्दीवरकह्लारसम्भृतैः सुजलाशयैः ।
हंसादिपक्षिभिर्व्याप्ते संवृतेऽद्भुतमन्दिरे ॥४७४॥

उद्यदादित्यसङ्काशे चित्रितेऽद्भुतमण्डपे ।
कोमलास्तरणे दिव्ये स्वर्णपङ्कजमण्डिते ॥४७५॥

सूपविष्टं परात्मानं कृष्णं ध्यायन्समाहितः ।
नारदादिमुनिश्रेष्ठैः संवृतं मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥४७६॥

अद्वैतार्थविचारेण मुनिवर्येभ्य एव तु ।
आत्मरूपंपरं तेजो दिशन्तं मन्त्रगौरवात् ॥४७७॥

नीलेन्दीवरसत्कान्ति शान्तिमूर्त्ति गुणान्वितम् ।
सरोजदलसङ्काशनेत्रं मकरकुण्डलम् ॥४७८॥

स्निग्धालकाग्रसम्बद्धमुकुटाद्भुतमस्तकम् ।
अत्यन्तमकराकारं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥४७९॥

श्रीवत्साङ्कितवक्षस्कं वनमालाविभूषितम् ।
कौस्तुभप्रभया दीप्तं कुङ्कुमारुणवक्षसम् ॥४८०॥

वनमालालङ्कृतांसं पीतवस्त्रावृतं प्रभुम् ।
नूपुराङ्गदहारादिकटिसूत्रादिभूषितम् ॥४८१॥

दूरीकृतधराभारं प्रसन्नहृदयं विभुम् ।
दरारिसगदापद्मधारिणं सुचतुर्भुजम् ॥४८२॥

इत्थं सञ्चिन्त्य देवेशं गोविन्दं सम्यगर्च्चयेत् ।
अङ्गैरष्टप्रियाभिश्च प्रथमावरणद्वयम् ॥४८३॥

ततो नारदनामानं पर्वतं जिष्णुमेव च ।
निःशठं चोद्धवं चैव दारुकं तदनन्तरम् ॥४८४॥

विष्वक्सेनं ततो मन्त्री शैनेयं पूजयेत्ततः ।
पूर्वादिपूजितैरेतैस्तृतीयावरणं भवेत् ॥४८५॥

अग्रे गरुडमाराध्य लोकपालान्प्रपूजयेत् ।
तदस्त्राणि च तद्वाह्ये पञ्चावरणमर्चनम् ॥४८६॥

नैवेद्यं पायसं दत्वा सम्यक्पूजावसानके ।
खण्डाक्तक्षीरसद्बुद्ध्या नीरैः कृष्णं प्रतर्पयेत् ॥४८७॥

अष्टोत्तरशतं पश्चाज्जपेकृत्ष्णं विचिन्तयन् ।

अष्टोत्तरशतमिति तर्प्पणजपयोः सम्बध्यते ।

सर्वार्चासु हुनेन्मन्त्री मध्याह्ने वा यथाविधि ॥४८८॥

अत्रसानार्घविध्यन्तं विधाय स्तुतिमारभेत् ।
नत्वा निवेद्य चाऽऽत्मानं विसृज्य स्वहृदि प्रभुम् ॥४८९॥

न्यस्य देवमयो भूत्वा स्वात्मानं पूजयेत्ततः ।
सन्ध्याकाले हरिं त्वेवं प्रत्यहं योऽर्चयेद्बुधः ॥४९०॥

इह भोगान्बहून् भुक्त्वा व्रजेदन्ते स सद्गतिम् ।
नन्दात्मज यजेद्रात्रौ कामाकुलितचेतसम् ॥४९१॥

रासक्रीडासमाक्रान्तवल्लवीचक्रवेष्टितम् ।
वितस्त्युच्चं सुवृत्त च स्थूलं चिक्कणमद्भुतम् ॥४९२॥

निखातं शङ्कुमाक्रम्य पादाभ्यां च परस्परम् ।
भूमिगृहीतस्तैर्या रासगोष्ठी तु सा भवेत् ॥४९३॥

स्थलपङ्कजपुष्पाणां मध्यरेणुयुतेन च ।
रिङ्गत्तरङ्गबिन्दूनां समूहार्द्रेण वायुना ॥४९४॥

कालिन्दीसैकते शुभ्रे शीतले तापहारिणा ।
कामबाणप्रविद्धाङ्गदिव्यस्त्रीकोटिकोटिभिः ॥४९५॥

संवृत्तैश्चन्द्रकिरणसमुद्योतितदिङ्मुखे ।
चलद्भृङ्गाङ्गनाशब्दवाचालितदिगन्तरे ॥४९६॥

सिद्धगन्धर्वदेवौघयक्षकिन्नरपन्नगैः ।
विद्याधरैः सपत्नीकैर्विमानेषु कृतासनैः ॥४९७॥

आकाशे सञ्चरद्भिस्तैः पुष्पवर्षकृताद्भुते ।
परस्पराबद्धहस्तसुन्दरीजालनिर्मितम् ।।४६८।।

रासक्रीडाविधौ रत्नशङ्कुगं परमेश्वरम् ।
एतद्देहसमाक्लृप्तदिव्यानेककलेवरम् ।।४६९।।

नारीणां युग्मयोर्देवं प्रत्येकं चाऽन्तरागतम् ।
तत्तत्कण्ठसमालम्बिबाहुद्वन्द्वविराजितम् ।।५००।।

आत्मसम्बद्धसञ्जातकामानलसुदीपनात् ।
रोमोद्गमसमाक्रान्तगात्रवल्लीयुजां मुहुः ।।५०१।।

भ्रमन्तमाभिरत्यन्तं महामणिपरिष्कृतैः ।
कृतचारुस्वनैः सर्वालङ्कारैर्हृदयङ्गमम् ।।५०२।।

इत्थं पृथक्शरीरं तं संयुतं मणिभिर्यथा ।
हिरण्यरचितैः सम्यग् युक्तं मारकतं तथा ।।५०३।।

मणिशङ्कौ सुविस्तीर्णे रक्तपद्मगतं प्रभुम् ।
अतसीसूनसङ्काशं यौवनश्रीसमन्वितम् ।।५०४।।

तदानीं फुल्लरक्तारविन्दच्छदविलोचनम् ।
नूतनैर्विविधैश्चारुपल्लवैर्नवगुच्छकैः ।।५०५।।

शितिकण्ठशिखण्डैश्च बद्धमूर्द्धजसञ्चयम् ।
सुभ्रुवं चन्द्रसङ्काशसुन्दराननपङ्कजम् ।।५०६।।

रत्नकुण्डलसंशोभिगण्डमण्डलमण्डितम् ।
पक्वबिम्बफलाकाररक्ताधरविराजितम् ।।५०७।।

नानारत्नसमाक्लृप्तसर्वभूषणभूषितम् ।
स्वर्णवर्णलसद्वस्त्रं विभ्रमश्रीगृहं परम् ।।५०८।।

नवप्रवालरुचिरहस्तपादतलं विभुम् ।
भ्रमरालोलसत्सूनमाल्यशोभिभुजद्वयम् ।।५०९।।

अङ्गनाकुचसंश्लेषलग्नकुङ्कुमवक्षसम् ।
महोक्षचारुगमनं वंशवादनतत्परम् ।।५१०।।

अनङ्गबाणसंविद्धसर्वलोकैकसद्गतिम् ।
ध्यात्वेत्थं प्रोक्तसत्पीठे लक्ष्मीकान्तं प्रपूजयेत् ॥५११॥

अङ्गैरावरणं पूर्वं मिथुनैस्तदनन्तरम् ।
केशवाद्याः पुरा प्रोक्ताः षोडशस्वरमूर्त्तयः ॥५१२॥

कीर्त्यादिशक्तिसहिता लक्ष्मीमन्मथपूर्विकाः ।
प्रत्येकं स्वरसंयुक्ता मिथुनानि भवन्ति हि ॥५१३॥
'श्रीं क्लीं अं केशवाय कीर्त्यै नम' इत्यादिप्रयोगः ।

षोडशारदलेष्वर्च्या रासक्रीडनतत्पराः ।
इन्द्रादीन्पूजयेद्बाह्ये वज्रादीनि ततः परम् ॥५१४॥

इत्थमावरणैर्युक्तं चतुर्भिः पूजयेत्प्रभुम् ।
ततः सुक्वथितं दुग्धं सितशर्करया युतम् ॥५१५॥

राजते भाजने सम्यक् संस्कृत्य विनिवेदयेत् ।
कांस्यपात्रेषु नैवेद्यं स्वरसंख्येषु कल्पयेत् ॥५१६॥

प्रत्येकं मिथुनेभ्यश्च पयस्तादृक् च वैभवात् ।
अन्यत्सर्वं यथापूर्वं कृत्वा पूजां समापयेत् ॥५१७॥

रात्रावेनं विधिं यो वै भजेल्लोकवशीकरः ।
इन्दिरामन्दिरं भूयात्सर्वाराध्यः स मुक्तिभाक् ॥५१८॥

रात्रावह्नो विरामे वा प्रत्यहं यस्तु पूजयेत् ।
तुल्यं फलं स आप्नोति भवाब्धेः पारगो भवेत् ॥५१९॥

इत्थं मन्त्रकलेवरं कमलजाजानिं तु कालत्रये,
भक्त्याऽभ्यर्च्चयतीह यः स नियतं भूलोकभर्त्ता भवेत् ।
धर्मे नित्यमतिर्महार्हविभवः कामान्यथेष्टान् भजे-
दन्ते विष्णुपुरं प्रयाति परमं सिद्धौघसंसेवितम् ॥५२०॥

अर्चान्ते देवदेवस्य तर्पणानां विधिं ब्रुवे ।
पुरोक्तानां च काम्यानां साधकेष्टफलप्रदम् ॥५२१॥

पूजनव्यतिरेकेऽपि तत्फलं लभ्यते बुधैः[1] ।
पीठाणुभिस्तर्प्पणादौ सकृन्मूलेन चैकशः ॥५२२॥

तत्राऽऽवाह्य यजेद्देवं जलैरेवोपचारकैः ।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याऽथ स्मृत्वा तर्प्पणसाधनम् ।।५२३॥

तद्धिया जलमादाय स्वर्णपात्रीकृतेन तु ।
सम्यगञ्जलिना देवं तर्प्पयेन्मूलमुच्चरन् ॥५२४॥

त्रिकाल तर्प्पयेन्नित्यमष्टाविंशतिसंख्यया ।
तत्तत्कालोचितान्पश्चात्तर्पयेत्परिवारकान् ॥५२५॥

एकैकवारं मन्त्रज्ञो मूलेनाऽपि प्रतर्प्पयेत् ।
गुडयुक्तं दधि प्रातर्नवनीतयुतं हविः ॥५२६॥

अह्नो मध्ये समाख्यातं सन्ध्यायां दुग्धमुत्तमम् ।
सितोपलाविमिश्रं तु तर्प्पणद्रव्यमीरितम् ॥५२७॥

वाक्यं तु पूर्ववद्विद्यादन्यत्सर्वं तथा भवेत् ।
तत्प्रसादजलैः पश्चात्सिञ्चेदात्मानमात्मवित् ॥५२८॥

मूलमन्त्राभिसञ्जप्तं जलं मन्त्री पिबेत्ततः ।
हरिमुद्वास्य मन्त्रज्ञो जपेन्मन्त्रं तु तन्मयः ॥५२९॥

काम्यतर्प्पणवस्तूनि ततो वक्ष्यामि यानि तु ।
भजेदुक्तप्रकारेषु समालम्ब्यैकमादरात् ॥५३०॥

सकृज्जलेन सन्तर्प्य दुग्धैर्वारचतुष्टयम् ।
पश्चात्षोडशभिर्द्रव्यैश्चैकतस्त्वेकशः क्रमात् ॥५३१॥

आवृत्य तर्प्पयेन्मन्त्री मूलमन्त्रेण संयतः ।
चतुर्वारं पुनः क्षीरैरेकवारं जलेन च ॥५३२॥

अन्त्ये दुग्धात्पुरा दद्याद् भूयसीं च सितोपलाम् ।
प्रातरेवं तर्पयेद्यश्चतुःपूजितसंख्यया[2] ॥५३३॥

---

१. ख. लभ्यो बुधः । २. क. ०श्चतुःसपूजितसंख्यया ।

कृष्णं प्रतिदिनं विद्वान् शुद्धबुद्धिश्च तत्परः ।
तस्य मण्डलमात्रेण वाञ्छितं भवति ध्रुवम् ॥५३४॥

पायसं दधिभक्तं च तिलतण्डुलमेव च ।
गुडभक्तं च दुग्धं च दध्यतो नवनीतकम् ॥५३५॥

घृतं च कदली मोचा ततश्चैव रजस्वला
मोचमोदकपूपाश्च पृथुकाश्चैव लाजकाः ॥५३६॥

द्रव्याणि षोडशैतानि कथयन्ति मनीषिणः ।

मोचा रजस्वला च मोचश्च कदलीभेदा एव । तेन चत्वारः कदलीभेदा इति ज्ञेयाः ।

अपरं तर्प्पणं वक्ष्ये तुल्यं पूर्वोक्तयत्फलम् ॥५३७॥

धारोष्णक्वथिते दुग्धे दधि दध्युत्थके पुनः ।
सर्पींषि पायसं चैव मत्स्यण्डी क्षौद्रमेव च ॥५३८॥

पञ्चामृतं नवैतानि द्वादशावृत्ति तर्प्पयेत् ।

धारोष्णं तत्कालदुग्धं[1], मत्स्यण्डी खण्डशर्करविशेषः ।

प्रत्येकद्रव्यतस्त्वेतैरष्टोत्तरशतं विदुः ॥५३९॥

तर्प्पणानि विधानेन कृतानि यशसे तथा ।
लोकसञ्चलनार्थं च कथितानि मनीषिभिः ॥५४०॥

खण्डमिश्रितधारोष्णदुग्धबुद्ध्या जलैः शुभैः ।
कृष्णं सन्तर्प्पयेद्यस्य ग्रामं वा नगरं तथा ॥५४१॥

स तु नानारसोपेतं भक्ष्यं भोज्यं च विन्दति ।
सुवर्णवस्त्रधान्यादि मनोभीष्टं च यद्भवेत् ॥५४२॥

तर्प्पणं यावदाख्यातं जपस्तावानिह स्मृतः ।
इह सन्तर्प्पणादेव फलमाप्नोति वाञ्छितम् ॥५४३॥

भिक्षुको ब्राह्मणो नित्यं स्वयं गोविन्दरूपधृक् ।
भूत्वा नानाविधैर्भावैरेभिरन्यैर्मुहुर्मुहुः ॥५४४॥

---

१. ख. तत्कालं दुग्धानीतम् ।

मनोभिः सह गोपीनां दधिदुग्धघृतादिकम् ।
बलाद् गृह्णन्नटन् भिक्षामाप्नोति महतीं तु ताम् ॥५४५॥

[1]षट्कोणान्तर्लिखेत्कामं साध्याख्याकर्मसंयुतम् ।
षडक्षरमनोर्वर्णान् षट्सु कोणेषु संलिखेत् ।।५४६।।

पद्मं दशदलं बाह्ये रचयेल्लक्षणान्वितम् ।
विंशत्यर्णं मनोर्वर्णान् किञ्जल्केषु द्विशो लिखेत् ॥५४७॥

मूलमन्त्रस्य चैकैकवर्णान् पत्रेषु संलिखेत् ।
कोणेषु मदनाक्रान्तं भूगृहं रचयेत्ततः ॥५४८॥

रोचनालिखितं ह्येतत्सम्यक् स्वर्णशलाकया ।
हेमपट्टे विधानेन गुलिकीकृत्य पूजितम् ॥५४९॥

सम्यक्सम्पातसंसिक्तं मन्त्रितं मूलमन्त्रतः ।
गोपालयन्त्रमेतद्धि पुण्यवद्भिः करे धृतम् ॥५५०॥

त्रैलोक्यवश्यकर्मादौ समर्थश्चापि गोपितम् ।
कोर्त्यादिवर्द्धनं राज्यपुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥५५१॥

कान्तिरक्षाकरं नृणां सर्वसौभाग्यदायकम् ।
अपस्मारमतिभ्रंशमोहमूर्च्छाज्वरादिभिः ॥५५२॥

राक्षसोन्मादभूताद्यैः पीडितानां च मस्तके ।
एतद्यन्त्रे स्मरेन्मन्त्रं जपेन्नश्यति तत्क्षणात् ॥५५३॥

अस्यार्थः—षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, तत्कोणेषु वक्ष्यमाणगोपालषडक्षरमन्त्राणोनेकैकशो विलिख्य, तद्बहिर्दशदलं पद्मं कृत्वा, तत्केसरेषु वक्ष्यमाणगोपालविंशत्यक्षरमन्त्राणान्[2] द्विद्विरालिख्य, दलेषु पूर्वोक्तदशाक्षरवर्णान् विलिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तत्कोणेषु कामबीज लिखेदेतदुक्तफलदम् ।

तथा— कामो ब्रह्मा भारभूतिः ष्णा वायुर्नमसाऽन्वितः ।
षडर्णो मनुराख्यातः सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥५५४॥

---

१. ख. षट्कोणान्तर्लि० । २. ख. ०मन्त्रवर्णान्

कामस्तद्बीजम्, ब्रह्माक, भारभूतिः ऋ, तेन कृ; ष्णा-स्वरूपम्, वायुः य, नमसा नमःशब्देन। तथा—

मायालक्ष्मीपुरोष्टादशार्णो विंशाक्षरोमनुः।

माया ह्रीं, लक्ष्मी श्रीं, एतद्बीजद्वयादिः पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरो विंशत्यर्णमन्त्रः।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ सप्तविंशस्तरङ्गः ॥२७॥

[अष्टाविंशस्तरङ्गः]

श्रीगौतमीये नारद उवाच—

कर्मान्तरमथो वक्ष्ये शृणुष्वाऽवहितो बुधः।
यत्कृत्वा मन्दभाग्योऽपि लभेन्मन्त्रफलानि वै ॥१॥

प्रणवद्वयमध्यस्थं जपेदयुतसंख्यया।
त्रिरात्रिजपमात्रेण बृहस्पतिसमो भवेत् ॥२॥

व्याख्याता सर्वशास्त्राणां वेदानामपि जायते।
रविवारेऽश्वत्थमूलमासाद्याऽष्टोत्तरं शतम् ॥३॥

भूयो भूयो भवेच्छान्तिर्जीवेदष्टोत्तरं शतम्।
तस्य सिद्धिर्भवेन्नूनं यमुद्दिश्य कृता क्रिया ॥४॥

अशुकैरर्चयेत्कृष्णं मासमात्रं तु निर्मलैः।
मुच्यते सकलैः कृच्छ्रैः पापैर्घोरतरैरपि ॥५॥

पट्टवस्त्रैर्यजेद्भक्त्या सम्पत्तिमतुलां लभेत्।
विद्रुमैः पूजयेत्कृष्णं त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥६॥

माणिक्यैः पूजयेद्भक्त्या सार्वभौमसमो भवेत्।
अपि हीरकरत्नेन पूजयन्किन्न साधयेत् ॥७॥

सुबाणपुष्पैरभ्यर्च्य मासं भक्तिपरायणः ।
कुबेरसमसम्पत्तिं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥८॥

देहान्ते हरितां प्राप्य निर्वाणपदमृद्धये ।
रविवारेऽरुणाम्भोजैः कह्लारैः सोमवासरे ॥९॥

मङ्गले रक्तपुष्पैस्तु बुधे तगरसम्भवैः ।
चम्पकैर्गुरुवारे च शुक्रे कुन्दसमुद्भ ॥१०॥

शनिवारे शमीपुष्पैः पूजयेद्भक्तितो हरिम् ।
रविवारे घृतान्नं तु पयोऽभ्यक्तं निवेदयेत् ॥११॥

सोमवारे पिष्टकानि सितया सह योजयेत् ।
मङ्गले गुडसम्मिश्रमन्नं बहुगुणान्वितम् ॥१२॥

बुधवारे यावकैस्तु गुरौ पूपसमुद्भवैः ।
मुद्गान्नं[1] शुक्रवारे तु शनौ सघृतपायसम् ॥१३॥

वैशाखे मासि विधिवत्तर्पयेद्विमलैर्जलैः ।
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन फलैः सम्पूजयेद्धरिम् ॥१४॥

आषाढे मासि विधिवत्पवित्रैः पूजयेद्विभुम् ।
एकैकं स्वर्णसूत्राणि ग्रन्थियुक्तानि कारयेत् ॥१५॥

अथवा पट्टसूत्राणि पद्मसूत्राणि वा पुनः ।
पूजान्ते देवदेवाय महिषीभ्यो निवेदयेत् ॥१६॥

[मिथुनेभ्यस्तथा दत्वा महान्तमुत्सवं चरेत् ।
तोषयेद्भक्ष्यभोज्याद्यैर्ब्राह्मणान् शंसितव्रतान् ॥१७॥

एवं संवत्सरं मन्त्री कृत्वा स्वेष्टमवाप्नुयात् ।][2]
न चेद्वर्षकृता पूजा वास्तोर्भक्षाय कल्पते[3] ॥१८॥

श्रावणे मासि कृष्णं तं पुष्पैः केतवसम्भवैः ।
चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमादिसुवासितैः ॥१९॥

एलालवङ्गकक्कोलफलानि बहुधाऽर्पयेत् ।
भाद्रे मासि यजेद्विष्णुं भक्ष्यैर्बहुगुणान्वितैः ॥२०॥

---

१. क. उमान्नं । २. [—] कोष्ठान्तर्गतोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । ३. ख. कल्पयेत् ।

ईषे मासि यजेद्भक्त्या भक्ष्यैर्भोज्यैश्च विस्तरैः ।
कार्पासनिर्मितैर्वस्त्रैर्नानाभरणसंयुतैः ॥२१॥

तुलास्थे भास्करे कृष्णं पूजयेन्मासमात्रकम् ।
रात्रौ प्रदीपैर्होमैस्तु बहुपिष्टादिसंयुतैः ॥२२॥

घृतदीपमविच्छिन्नं दद्यान्मासि महोज्वलम् ।
एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां पारणादिने ॥२३॥

शुक्लायां विष्णुमभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
अस्यां तिथौ तु मतिमान् वर्षतोत्सवमाचरेत् ॥२४॥

भोज्यानि बहुभक्ष्याणि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।
एवं कृते देवताऽस्य तुष्टा स्वेष्टं प्रयच्छति ॥२५॥

स तु लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्ज्जितम् ।
मार्गशीर्षे यजेद्देवं नवान्नैर्व्यञ्जनैः शुभैः ॥२६॥

नारिकेलफलं क्षौद्रमिश्रितं गुडजीरकैः ।
सुपक्वं देवदेवाय भक्त्या तस्मै निवेदयेत् ॥२७॥

पौषे मासि च माषं वै कृतापूपैः प्रपूजयेत् ।
ग्रहदोषं विजित्याऽशु भूयान्नृपतिसन्निभः ॥२८॥

माघे मासि यजेत्कृष्णं स्वक्षतैः सुशुभैः सितैः ।
दुग्धान्नं शर्करायुक्तं मिष्टान्नं विनिवेदयेत् ॥२९॥

अस्मिन् मासि शुभे काले वस्त्रेणाऽऽच्छादयेद्विभुम् ।
फाल्गुने देवकीपुत्रमर्च्चयेत्स्वर्णपुष्पकैः ॥३०॥

चूतसौगन्धिकुसुमैर्धूपैर्गन्धैः सुविस्तरैः ।
मासि चैत्रे वासुदेवं सर्वपुष्पैः समर्च्चयेत् ॥३१॥

पौर्णमास्यां यजेद्भक्त्या दमनैश्च सगुच्छकैः ।
अस्मिन् दिने रतिं कामं पूजयेद्भक्तितत्परः ॥३२॥

न चेत्सांवत्सरी पूजा वृथा भवति निश्चितम् ।
भस्मीभूतं स्मरं दृष्ट्वा रुदिता सा रतिः सती ॥३३॥

तां दृष्ट्वा कृपयाऽऽविष्टो वरं दातुं स्वयं शिवः ।
प्रत्युवाच पतिं त्वं हि सुभगाङ्गमवाप्स्यसि ॥३४॥

सुन्दरी सर्वलोकेषु क्रीडार्थं व्रज सुन्दरि ।
ततो भवकन्दजलात्पुष्पं दमनकं शुभम् ॥३५॥

तेन पूजनमात्रेण संवत्सरफलं भवेत् ।
होमयेल्लक्षमात्रं यः पिष्टकैर्घृतभर्जितैः ॥३६॥

तावत्संख्यं मनुं जप्त्वा कृष्णमाप्नोति मन्त्रवित् ।
इति ते कथितं सम्यक् पूजनं वार्षिकोद्भवैः ॥३७॥

कृत्वाऽनेन विधानेन किन्न सिद्ध्यति भूतले
पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मुनयो ब्रह्मचारिणः ॥३८॥

वनस्थाश्च तथा कृत्वा वाञ्छितार्थानवाप्नुयुः ।
स्त्रियः शूद्राश्च विधिवत्कृत्वा फलमवाप्नुयुः ॥३९॥

इह भुक्त्वा वरान् भोगान् न भूयो भवसम्भवः ।
एवं कृष्णं यजन् भक्त्या यत्कृतं कोटिजन्मभिः ॥४०॥

स तु पापैर्न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा ।

गौतमीये श्रीगौतम उवाच—

विस्तरेण च मे ब्रह्मन् कृष्णमन्त्रान्ब्रवीहि हि ।
भक्तोऽस्मि तव शिष्योऽहं योग्योऽस्मि श्रवणे गुरो ॥४१॥

श्रीनारद उवाच—

शृणु ब्रह्मन् कृष्णमन्त्रान्सर्ववेदैकसम्मतान् ।
यदेकज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ॥४२॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य नमस्तदनु चोच्चरेत् ।
कौस्तुभाह्वाय सम्प्रोक्तो मनुरष्टाक्षरः परः ॥४३॥

एतद्विज्ञानमात्रेण साक्षाद्विष्णुर्भवेद्यतिः ।
[1]षड्दीर्घस्वरसम्भेद्यकामेनाङ्गक्रिया मता ॥४४॥

---

१. क. षड्दीर्घस्वरं भेद्य० ।

कलायकुसुमश्यामं शङ्खचक्रगदाम्बुजम् ।
अनेकरत्नसङ्गृह्लत्कौस्तुभोद्भासिवक्षसम् ॥४५॥

तारहारावलीरम्यं गरुडोपरिसंस्थितम् ।
ध्यात्वैवं परमानन्दं दशलक्षं जपेन्मनुम् ॥४६॥

होमयेत्तद्दशांशेन साधितैर्घृतपायसैः ।
पुरश्चरणमङ्गं यच्छेषमन्यत्समापयेत् ॥४७॥

य एवं जपते मन्त्रं भोगमोक्षैककारणम् ।
करप्रचेयाः सर्वार्था अन्ते च परमं व्रजेत् ॥४८॥

दशाक्षरसमानं हि पूजनं समुदीरितम् ।
अथाऽन्यं सम्प्रवक्ष्यामि षडर्णं मन्त्रनायकम् ॥४९॥

यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो महीं चरेत् ।
त्रिमात्रं नमसा युक्तं चतुर्थ्या कृष्ण इत्यपि ॥५०॥

षडक्षरमनुः प्रोक्तो दृष्टादृष्टफलप्रदः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्रीछन्द उच्यते ॥५१॥

श्रीकृष्णो देवता साक्षाद् दुर्गाधिष्ठातृदेवता ।
त्रिमात्रं बीजमित्युक्तं नमः शक्तिरुदाहृता ॥५२॥

कृष्णाय कीलकं चाऽस्य मन्त्रराजस्य कीर्त्तितम् ।
विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये ॥५३॥

पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैरुदीर्यते ।
नीलनारदसङ्काशं किङ्किणीजालमालिनम् ॥५४॥

सर्वाभरणसन्दीप्तं रक्तपद्मोपरिस्थितं ।
सनकाद्यैर्मुनिवरैः स्तुतं ध्यायेद्दिगम्बरम् ॥५५॥

आलोलकुन्तलोद्भासिमुखचन्द्रविराजितम् ।
शशरक्ताधरौष्ठं च पाणिपादविराजितम् ॥५६॥

कराभ्यां पायसं श्लक्ष्णं सद्यो हैयङ्गवीनकम् ।
दधतं[1] चिन्तयेद्देवं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥५७॥

---

१. ख. दधन्तं ।

ध्यात्वैवं परमानन्दं दशलक्षं जपेन्मनुम् ।
जपान्ते पायसैः शुद्धैर्होमं कुर्यात्सशर्करैः ॥५८॥

तर्प्पयेत्तद्दशांशेन जलैः कर्पूरवासितैः ।
अभिषेकं दशांशेन दशांशैर्विप्रभोजनम् ॥५९॥

तदन्ते दक्षिणां दत्वा साधयेद्धितमात्मनः ।
भिक्षाहारो जपेन्मन्त्रं वर्षमेकं व्रते स्थितः ॥६०॥

कविर्वाग्मी समृद्धश्च सर्वज्ञो जायते ध्रुवम् ।
नवनीताशिनं ध्यात्वा देवं लक्षं जपेन्मनुम् ॥६१॥

दिव्यज्ञानमवाप्नोति त्रिलोकीं प्राप्य मोदते ।
य एवं मन्त्रराजं तु भजते भक्तितत्परः ॥६२॥

इह भुक्त्वा वरान् भोगान्देहान्ते परमं विशेत् ।
गोपालं पिण्डसंज्ञं तं कथयामि मुने शृणु ॥६३॥

यदाकर्ण्य गुरोर्भक्त्या परत्रेह च मोदते ।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ॥६४॥

पञ्चान्तकोऽधरासंस्थ इन्दुचतुर्द्दशस्वरैः ।
कथितो मन्त्रराजोऽयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥६५॥

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य गायत्रं छन्दः कृष्णोऽस्य देवता ।
गलाभ्यां बीजशक्ती तु कीलकं त्वौं समुच्यते ॥६६॥

षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
वृन्दावनगतं कृष्णं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥६७॥

कदम्बमूलदेशे तु गोपिकाजनवेष्टितम् ।
नारदाद्यैर्मुनिवरैर्दिव्यज्ञानपरायणैः ॥६८॥

स्तुतं परमया भक्त्या वनमालिनमीश्वरम् ।
रत्नालङ्कारसन्दीप्तं शङ्खचक्रलसत्करम् ॥६९॥

शब्दब्रह्ममयं वेणुमधःपाणिद्वयेरितम् ।
एवं ध्यात्वा मनुवरं लक्षमात्रं जपेत्सुधीः ॥७०॥

सिताान्वितैः पायसैस्तु अयुतं होममाचरेत् ।
य एवं भजते मन्त्री सिद्धयस्तस्य हस्तगाः ॥७१॥

धवलैः कुसुमैर्होमाद्वाक्सिद्धिं लभते नरः ।
कर्णिकारस्य होमेन लक्ष्मीः सर्वविधा भवेत् ॥७२॥

अनेन मन्त्रितं तोयं प्रातः प्रातः पिबेद्यदि ।
कविर्वाग्मी श्रुतिधरः सर्वज्ञो जायतेऽचिरात् ॥७३॥

अस्योपासनमात्रेण किन्न सिद्धयति मन्त्रिणः ।
इह भोगान्वरान् भुक्त्वा पुत्रपौत्रैः समन्वितः ॥७४॥

अन्ते तत्परमं धाम मन्त्री याति निरामयः ।

तथा— अथ वक्ष्ये मनुवरं समस्तपुरुषार्थदम् ।
यद्ज्ञात्वा सिद्धयः सर्वा भवन्ति करसंस्थिताः ॥७५॥

लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदं तथा ।
स्वाहेति मन्त्रराजोऽयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥७६॥

नारदोऽस्य मुनिः ख्यातोऽनुष्टुप्छन्द उदीरितम् ।
देवता कृष्ण इत्युक्तः समस्तपुरुषार्थदः ॥७७॥

षडङ्गं कामबीजेन षड्दीर्घभेदितेन च ।
कलायकुसुमश्यामं वृन्दावनगतं हरिम् ॥७८॥

गोगोपगोपिकावीतं पीतवस्त्रयुगावृतम् ।
नानालङ्कारसुभगं कौस्तुभोद्भासिवक्षसम् ॥७९॥

सनकाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः संस्तुतं परया मुदा ।
शङ्खचक्रलसद्बाहुं वेणुं हस्तद्वयेरितम् ॥८०॥

ध्यात्वैवं परमात्मानं चतुर्लक्षं जपेन्मनुम् ।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ॥८१॥

भक्त्या त्रिसन्ध्यं प्रजपेत्स्वाङ्गैरिन्द्रादिभिस्ततः ।
तथा प्रयोगान् कुर्वीत चतुर्वर्गफलाप्तये ॥८२॥

पायसैरयुतं हुत्वा दिव्यं ज्ञानमवाप्नुयात् ।
तद्वच्चलदलैर्हुत्वा लोकानाकर्षयेत्सुखम् ॥८३॥

पलाशकुसुमैर्हुत्वा कविर्वाग्मी च जायते ।
मत्स्यण्डीकदलीदुग्धघृतपायसतद्धिया ॥८४॥

तर्प्पयेदयुतं मन्त्री गाङ्गेयेन जलेन च ।
मण्डलादीप्सिता सिद्धिर्भवेन्नैवाऽत्र संशयः ॥८५॥

वाग्भवाद्येन जापेन वागीशसमतां व्रजेत् ।
[1]व्याघ्रातकुसुमैर्हुत्वा निधिमाप्नोत्ययत्नतः ॥८६॥

श्रीवृक्षफलहोमेन राज्यैश्वर्य्यमवाप्नुयात् ।
एवं ते कथितो विप्र दुर्लभो मन्त्रनायकः ॥८७॥

सत्सम्प्रदायसम्प्राप्तं किं न सिद्ध्यति मन्त्रिणः ।
अष्टादशार्णो मारान्तो मन्त्रः पुत्रधनप्रदः ॥८८॥

नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं कथितम्बुधैः ।
बालकृष्णो देवताऽस्य चतुर्वर्गफलप्रदः ॥८९॥

षड्दीर्घभाजा कामेन बीजेनाऽङ्गक्रिया मता ।
इन्दीवरसमाभासं बालं त्रैलोक्यमोहनम् ॥९०॥

लसद्रत्नमयैर्दीप्तैर्मण्डितं बहुभूषणैः ।
नानारत्नमयोद्भासिव्याघ्रनखकण्ठभूषणम् ॥९१॥

कुन्तलान्तःसमुद्भासिस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
हस्तिहस्तकराभ्यां च नवनीतं च पायसम् ॥९२॥

दधतं देववृन्दैश्च वेष्टितं गोपबालकैः ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ॥९३॥

जपान्ते जुहुयादग्नौ पायसैस्तद्दशांशतः ।
तर्प्पणादीनि सर्वाणि पूर्ववत्समुपाचरेत् ॥९४॥

---

१. ख. व्याघात० ।

साधयेत्सर्वकर्माणि सिद्धेनाऽनेन मन्त्रवित्[1] ।
रक्तपद्मायुतं हुत्वा द्विजो ज्ञानमवाप्नुयात् ॥९५॥

सर्वलोकैकशास्ता च क्षत्रियो नाऽत्र संशयः ।
अन्येषां यद्यदिष्टानि साधयेन्मनुनाऽमुना ॥९६॥

रक्तपद्मोपरि ध्यात्वा शर्करा पृथुलाजकैः ।
कदली गुडबुद्ध्या च जलैः सन्तर्प्य केशवम् ॥९७॥

वत्सराल्लभते पुत्रं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
अनेन यद्यदिष्टं स्याज्जपमात्रेण साधयेत् ॥९८॥

तथा— प्रणवं स्मरमायां च नमो भगवते वदेत् ।
नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं भूधरो मुखवृत्तयुक् ॥९९॥

मांसं वपुपदं ङेऽन्तं मनुर्विंशतिवर्णकः ।

भूधरो वकारः, मांसं लकारः ।

नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम् ॥१००॥

देवता नन्दतनयः सर्वलोकैकनन्दनः ।
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य चक्राद्यैः परिकल्पयेत् ॥१०१॥

नवीननीरदश्यामं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
मुक्तादामलसत्कण्ठं केयूराङ्गदभूषणम् ॥१०२॥

अनेकरत्नसम्बद्धस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
उदारकौस्तुभोद्भासि वक्षः श्रीवत्सलाञ्छनम् ॥१०३॥

बर्हिर्बर्हकृतोत्तंसं गोपगोपीगवावृतम् ।
ध्यात्वैवं परमात्मानं जपेन्मनुवरं ततः ॥१०४॥

चतुर्लक्षं जपान्ते तु दशांशं रक्तपङ्कजैः ।
होमयेच्छेषमन्यत्तु पूर्ववत्समुपाचरेत् ॥१०५॥

दशार्णयन्त्रे विश्वेशं समावाह्य प्रपूजयेत् ।
प्रथमाऽऽवृतिरङ्गैः स्यान्महिषीभिर्द्वितीयिका ॥१०६॥

---

१. क. मन्त्रमंतु ।

तृतीया दिगधीशैस्तु वज्राद्यैस्तु चतुर्थिका ।
एवं यः पूजयेत्कृष्णं चतुरावृतिसंयुतम् ॥१०७॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्पूर्णं लभते फलम् ।
पायसैरयुतं हुत्वा महाधनपतिर्भवेत् ॥१०८॥

पुत्रायुर्लभते मन्त्री चाऽयुतं घृतहोमतः ।
दूर्वाया लक्षहोमेन जीवेद्वर्षशतं सुधीः ॥१०९॥

इत्येषः कथितो मन्त्र; सर्वेषां सर्वसिद्धिदः ।
वाग्भवं कामबीजं च मायां लक्ष्मीमनन्तरम् ॥११०॥

दशार्णो मनुवर्यश्च भवेच्छक्राक्षरो मनुः ।
वाग्भवाद्यो यदा चाऽयं मन्त्री वाक्पतिसन्निभः ॥१११॥

वेदवेदाङ्गवेदान्तसिद्धान्तिमतिरुत्तमः[1] ।
अमृतस्यन्दिनीर्वाचः कविता सर्वजित्वरी ॥११२॥

सर्ववाङ्मयवेत्ता च सर्वज्ञो जायतेऽचिरात् ।
संविदाद्यं यदा मन्त्रं साधको यदि वाऽभ्यसेत् ॥११३॥

अचिरात्सर्वभूतानामधिपो जायतेऽचिरात् ।
राजानो वश्यतां यान्ति सामात्याः सपरिच्छदाः ॥११४॥

देवाः सर्वे नमस्यन्ति किम्पुनः कथ्यते मुने ।
श्रीबीजाद्यं यदा जप्याद्भक्तितो मन्त्रनायकम् ॥११५॥

अनन्यगा रमा तस्य मन्दिरे सम्पदावहा ।
तस्य वंशे स्थिरा लक्ष्मीर्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥११६॥

कामपूर्वो यदा मन्त्रो जप्यते साधकोत्तमैः ।
त्रैलोक्यं वश्यतामेति मनोवाक्कायकर्मभिः ॥११७॥

स्त्रीणां कन्दर्प्पसदृशो दर्शनादेव मोहकृत् ।
चमत्कारकरो लोके जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥११८॥

---

१. ख. ०सिद्धान्तमति० ।

ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द ईरितम् ।
देवता सर्वजगतां मोहनः कृष्ण ईरितः ॥११९॥

पञ्चाङ्गानि मनोरस्य ह्याचक्राद्यैः प्रकल्पयेत् ।
सृष्टिस्थितिसंहृतिभिर्दशवर्णान् करे न्यसेत् ॥१२०॥

तारसम्पुटितान्कृत्वा नमोमध्यगतान्मुने ।
दशवर्णान्न्यसेत्स्थाने दशवर्णान्विनिर्दिशेत् ॥१२१॥

केशवादि तथा तत्वं दशतत्वं क्रमोत्क्रमात् ।
ऋष्यादिन्यासमापाद्य पञ्चाङ्गन्यासमाचरेत् ॥१२२॥

कामाक्षरं परं बीजं [1]महाप्रकृतिरीश्वरी ।
केवलं चित्कलाशक्तिर्मन्त्राधिष्ठातृदेवता ॥१२३॥

ध्यायेद् वृन्दावने रम्ये काञ्चनीभूमिमध्यमे (गे?) ।
नानापुष्पलताकीर्णे वृक्षखण्डैश्च मण्डिते ॥१२४॥

कल्पाटवीकुले सम्यक् श्रीमन्माणिक्यमण्डपे ।
देवकिन्नरगन्धर्वमुनिभिः परिसेविते ॥१२५॥

नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः स्तुतिभिः परिसेविते ।
रत्नसिंहासने ध्यात्वोपविष्टं पङ्कजोपरि ॥१२६॥

सजलजलदश्यामं रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
रक्तपद्मसदृक्पाणिपादाभ्यां परिमण्डितम् ॥१२७॥

नवरत्नसमाबद्धभूषणैः परिभूषितम् ।
आमुक्तवक्षसि श्रीमत्कौस्तुभोद्भासिताम्बरम् ॥१२८॥

तारहारावलीरम्यश्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
रोचना तिलकप्रान्ते कुन्तलालिसमावृतम् ॥१२९॥

कन्दर्प्पचापसदृशचिल्लिमालविराजितम् ।
अनेकरत्नसम्बद्धस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१३०॥

---

१. क. मह कृति० ।

बर्हिबर्हकृतोत्तंसं सर्वदा सर्ववेदिभिः ।
उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद्धरिं सुधीः ॥१३१॥

एवं ध्यात्वा मनुवरं दशलक्षं व्रते स्थितः ।
दशाक्षरविधानेन जपात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥१३२॥

सिद्धेनाऽनेन मनुना सर्वाभीष्टानि साधयेत् ।
दशाक्षरोदिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत् ॥१३३॥

अयुतं जुहुयान्मन्त्री कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।
महाकविर्महाप्राज्ञो भवेन्मन्त्री न संशयः ॥१३४

मालतीकुसुमैर्होमाद्वाक्सिद्धिरतुलाभवेत् ।
तगरैः क्षीरसिक्तैश्च होमात्सर्वज्ञतां व्रजेत् ॥१३५॥

वकुलकुसुमैर्होमात्स्त्रियमाप्नोति चेप्सिताम् ।
भक्ष्यभोज्यस्य होमेन [1]समृद्धिमतुलां लभेत् ॥१३६॥

केवलं घृतहोमेन ब्रह्मतेजः प्रजायते ।
श्रीफलस्य दलैर्होमाद्राज्यमाप्नोत्ययत्नतः ॥१३७॥

तत्फलैर्मन्त्रसिद्धिः स्याद् दूर्वाभिश्चाऽऽयुषे हुनेत् ।
तर्प्पण पूर्वविहितं कृत्वा सर्वं प्रसाधयेत् ॥१३८॥

दशाक्षरोदितं सर्वं प्रयोगमनुना भवेत् ।
अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि मन्त्रं सर्वार्थसाधकम् ॥१३९॥

कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं मध्यस्थं कामबीजयोः ।
सद्यःफलप्रदो मन्त्रः कथितो भक्तितत्परैः ॥१४०॥

अस्याऽऽराधनतः शक्रो देवेशत्वमवाप्तवान् ।
ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द ईरितम् ॥१४१॥

देवता जगतामादिर्मुनिभिः कृष्ण ईरितः ।
दीर्घषट्केण कामेन षडङ्गं विधिनाऽऽचरेत् ॥१४२॥

---

१. ख. समृद्धिरतुलां ।

एवमङ्गविधिं कृत्वा मन्त्री ध्यायेदथाऽच्युतम् ।
कलायकुसुमश्यामं द्रुतहेमनिभ तु वा ॥१४३॥

पारिजाततले रम्ये रत्नसिंहासनोपरि ।
देहोत्थस्वप्रभाभिश्च भासयन्तं दिगन्तरम् ॥१४४॥

शिशुवेषधरं देवं वासुदेवं जगन्मयम् ।
नानालङ्कारसुभगं गोपीभिः परिवीक्षितम् ॥१४५॥

कल्पवृक्षविनिःक्रामद्रत्नौघैः परिवेष्टितम् ।
तारहारावलीरम्यं पीताम्बरयुगावृतम् ॥१४६॥

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं व्रतस्थः साधकोत्तमः ।
दशांशं जुहुयादन्ते श्रीफलैः सर्वसिद्धये ॥१४७॥

अष्टच्छदाम्बुजे देवमावाह्य परिपूजयेत् ।
अङ्गषट्कावृतेरन्ते पूजयेद्दिगधीश्वरान् ॥१४८॥

तदस्त्राण्यपि वाऽन्ते च सपर्यैषा समीरिता ।
नवनीतायुतं हुत्वा श्रियमाप्नोत्यनिन्दिताम् ॥१४९॥

श्रीफलायुतहोमेन राज्याप्तिर्मन्त्रिणो भवेत् ।
धान्यमञ्जरिभिर्हुत्वा धान्यवान् जायतेऽचिरात् ॥१५०॥

अन्नवानन्नहोमेन घृतहोमाच्छ्रियं लभेत् ।
य एवं भजते मन्त्री जपहोमादितत्परः ॥१५१॥

स तु सम्यक् श्रियं लब्ध्वा देहान्ते तत्परं व्रजेत् ।
चूडामणिमथो वक्ष्ये मन्त्रराजं सुदुर्लभम् ॥१५२॥

यज्ज्ञानान्मुनयः सर्वे भूस्थास्त्रैलोक्यदर्शिनः ।
चतुर्वर्णस्य मन्त्रस्य कामाधो वह्नियोगतः ॥१५३॥

अयं शिखामणिः प्रोक्तस्त्रैलोक्या दर्शनक्षमः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम् ॥१५४॥

श्रीकृष्णो देवता चाऽस्य मुनिभिः परिकीर्त्तितः ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन कामेनाऽङ्गक्रिया मता ॥१५५॥

मन्त्रसम्पुटितं कृत्वा मन्त्रन्यासं तथाऽऽचरेत् ।
दशतत्वं ततो न्यस्य कराङ्गन्यासमन्ततः ॥१५६॥

वृन्दवानगतं ध्यायेत्कल्पकोद्यानमध्यगम् ।
दोलायमानं गोपीभिः सौवर्णीदोलिकागतम् ॥१५७॥

सूर्यायुतसमाभासं लसन्मकरकुण्डलम् ।
नानारत्नपरिभ्राजन्नानालङ्कारमण्डितम् ॥१५८॥

पंचवर्षाधिकं बालं मण्डलोल्लासिसन्मुखम् ।
हसितोदारकान्त्या च भासयन्तं दिगन्तरम् ॥१५९॥

इति[1] ध्यात्वा चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं शिखामणिम् ।
तद्दशांशेन जुहुयात्पायसैरयुताम्बुजैः ॥१६०॥

अङ्गेन्द्रवज्रावृतिभिस्त्रिभिः पूजनमीरितम् ।
ब्रह्मवृक्षोत्थकुसुमैर्हुनेदयुतमादरात् ॥१६१॥

त्रिकालज्ञो भवेन्मन्त्री नवनीतहुतादपि[2] ।
श्रीफलस्य फलैर्होमाद्राज्यमाप्नोत्यसंशयम् ॥१६२॥

लक्ष्मीं पुष्पाहुतान्मन्त्री बहुलक्ष्मीमवाप्नुयात् ।
मूलत्रिकोणमध्ये तु ज्योतीरूपं विचिन्तयेत् ॥१६३॥

लक्षजापान्मनोरस्य त्रिकालज्ञो भवेद् ध्रुवम् ।
करस्थामलकन्यायाद्विश्ववृत्तं च पश्यति ॥१६४॥

हृदि स्थितं जनानां च सर्वं पश्यति चक्षुषा ।
रविवारेऽश्वत्थमूले शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥१६५॥

एवं च नियतं कृत्वा म्रियते नाऽपमृत्युतः ।
वसंस्तत्र लक्षजपात्सर्वज्ञो जायतेऽचिरात् ॥१६६॥

सारसङ्ग्रहे—

मायारमादिकोऽष्टादशार्णो विंशाक्षरो मनुः ।
एतन्मन्त्रसमानोऽन्यः सिद्धिदो द्राङ् न विद्यते ॥१६७॥

अष्टादशाक्षरमन्त्रस्तु—

---

१. ख. प्रति । २. क. ०हुवादपि ।

गोपालकपदस्याऽन्ते वदेद्वेषधराय तु ।
चतुर्थ्या वासुदेवं च कवचास्त्रद्विठान्तकः ॥१६८॥ इति ।

मन्त्रः पूर्वोक्तः । तथा—

मुनिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द ईरितम् ।
श्रीकृष्णो देवता बीजशक्त्याद्युक्तवदीरयेत् ॥१६९॥

श्रीकान्तस्य प्रवक्ष्यामि ध्यानमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
कुबेरादिधनाध्यक्षैः सर्वदा यद्विधीयते ॥१७०॥

अक्षयस्य धनस्याऽपि करं सम्पत्प्रदं शुभम् ।
कोटिभास्करसङ्काशैर्द्वारिकायां गृहोत्तमैः १७१॥

बहुभिः कल्पतरुभिर्वेष्टिते रत्नमण्डपे ।
विद्योतन्मणिवर्योद्यत्स्तम्भद्वारान्तभित्तिके ॥१७२॥

विकचत्पुष्पमालाभिः सहितानन्तमौक्तिकैः ।
पुष्परागधराशोभिरत्ननद्योरथाऽन्तरे ॥१७३॥

निरन्तरस्रवद्रत्नसुधाधाराभिवर्षिणः ।
अधःकल्पकवृक्षस्य शाखाव्याप्तस्य सर्वतः ॥१७४॥

ज्वलद्रत्नप्रदीपालिसमुद्योतितदिङ्मुखे ।
उद्योतद्रविबिम्बाभरत्नसिंहासनाम्बुजे ॥१७५॥

सूपविष्टं रमाकान्तं द्रुतस्वर्णनिभं स्मरेत् ।
[1]समुद्यद्रविबिम्बौघविद्युत्कोटिनिभच्छविम ॥१७६॥

हृद्याङ्गं सर्वतः सौम्यं नानालङ्कारमण्डितम् ।
अरिशङ्खगदापद्मधारिणं पीतवाससम् ॥१७७॥

स्पृशन्तं कलशं द्योतन्मणिधारमहर्निशम् ।
सव्येन चरणाग्रेन विद्रुमद्युतिकारिणा ॥१७८॥

रुक्मिणीसत्यभामे द्वे दक्षवामस्थिते प्रभे ।
उत्तमाङ्गेऽभिषिञ्चन्त्यौ नानारत्नसुधारया ॥१७९॥

---

१. क. समोद्य० ।

लसत्स्वीयकराम्भोजगृहीतघटजातया ।
यच्छन्त्यौ नग्नजित्याह्वसुनन्दे सुघटौ तयोः ॥१८०॥

मित्रविन्दा तथैवान्या परा चैव सुलक्षणा ।
एतयोर्जाम्बवत्याह्वसुशीले दक्षवामगे ॥१८१॥

रत्नधुन्योः समादाय कलशौ रत्नसम्भृतौ ।
अर्पयन्त्यौ विलासेन ध्यातव्यौ मन्त्रिसत्तमैः ॥१८२॥

ततः षोडशसाहस्रमिता नार्यः समन्ततः ।
स्मर्त्तव्याः [1]स्वर्णरत्नादिधारायुग्घटसत्कराः ॥१८३॥

स्मरेदष्टनिधींस्तासां धनान्यावर्षतो बहिः ।
वृष्णींश्च तद्बहिर्भूयो देवादीनपि पूर्ववत् ॥१८४॥

एवं सञ्चिन्त्य देवेशं ततः पूजनमारभेत् ।
पुरोदितप्रकारेण पीठन्यासावसानकम् ॥१८५॥

कर्म निर्वर्त्य मन्त्रज्ञो मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥१८६॥

कराङ्गुलीषु तलयोः षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
व्यापकं मूलमन्त्रेण विन्यस्य करयोस्ततः ॥१८७॥

पुनः षडङ्गं विन्यस्य देहे देशिकसत्तमः ।
पुटितां मूलमन्त्रेण मातृकां च प्रविन्यसेत् ॥१८८॥

चकारात्पुनः षडङ्गन्यास उक्तः, पुनः षडङ्गकं कृत्वा मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेदिति **सनत्कुमारोक्तेः** ।

संहारवर्त्मना सृष्ट्या दश तत्वानि विन्यसेत् ।
व्यापकं च प्रविन्यस्य मन्त्रार्णन्यासमाचरेत् ॥१८९॥

उत्तमाङ्गे ललाटे च भ्रूमध्ये दृक्श्रुतिद्वये ।
नासिकाननयोश्चैव चिबुके च गले पुनः ॥१९०॥

---

१. ख. स्वर्णरत्नाद्यैर्दि० ।

बाहुमूलहृदोस्तुन्दे नाभिदेशे शिवे तथा ।
मूलाधारे कटिद्वन्द्वे जानुयुग्मे च जङ्घयोः ॥१९१॥
गुल्फयुग्मे पादयुग्मे न्यसेद्वर्णान्मनोः क्रमात् ।
सृष्टिन्यासोऽयमाख्यातो हृदयाद्या स्थितिस्तथा ॥१९२॥
बाहुमूलान्तिकः प्रोक्तः संहारोऽपि पदादिकः ।
स्थित्यन्तं पञ्चधा केचिन्न्यासोक्तं मूर्त्तिपञ्जरम् ॥१९३॥
न्यस्त्वा सृष्टिस्थितिं पश्चात्षडङ्गानि प्रविन्यसेत् ।
त्रिवह्निसागरैर्वेदैर्वेदनेत्रैः क्रमाद्बुधः ॥१९४॥
मूलमन्त्रभवैर्वर्णैर्हृदादौ जातिसंयुतैः ।
दर्शयित्वा किरीटादिमुद्रा दिग्बन्धनं चरेत् ॥१९५॥
मूर्त्तिपञ्जरतो देवं सम्पूज्याऽङ्के निजे ततः ।
देवस्य बाह्यपूजार्थमुच्यते यन्त्रमुत्तमम् ॥१९६॥
गोमयेनोपलिप्तायां पीठ भूमौ प्रविन्यसेत् ।
पूर्वोक्तगन्धपङ्केन संलिप्याऽब्जं वसुच्छदम् ॥१९७॥
विलिख्य कर्णिकासंस्थमग्निमण्डलसंपुटम् ।
मादनं साध्यसहितं मन्त्रवान्विनिवेशयेत् ॥१९८॥
तदूर्द्ध्वगैस्ततो वर्णैस्तदेव परिवेष्टयेत् ।
शक्रराक्षसवायूनां कोणगां कमलां लिखेत् ॥१९९॥
अन्येषु त्रिषु कोणेषु मायाबीजं प्रकल्पयेत् ।
कोणसन्धिषु तद्वर्णं दलमूलेषु चाऽग्निशः ॥२००॥
गायत्री कामदेवस्य मालाणुं चाऽष्टपत्रगम् ।
रसाक्षरक्रमात्पश्चान्मातृकार्णैः प्रवेष्टयेत् ॥२०१॥
धरापुरचतुर्दिक्षु रमां मायां च कोणगाम्[1] ।
विलिख्यैवं महायन्त्रं पट्टे स्वर्णादिके बुधः ॥२०२॥
सम्यक् सञ्जप्य सम्पूज्य धृतं च मनुजोत्तमैः ।
करोति लोकपूज्यत्वं राजवश्यं च सर्वदा ॥२०३॥

---

१. क. ख. पुस्तकद्वये 'गोणगाम्' इति पाठः ।

यन्त्रोद्धारः प्रयोगे वक्ष्यते ।

कामदेवं चतुर्थ्यन्तं विद्महे तदनन्तरम् ।
ङेयुतं पुष्पबाणं च प्रवदेद्धीमहीति च ॥२०४॥

तन्नोऽन्तेऽनङ्ग इत्युक्त्वा प्रवदेच्च प्रचोदयात् ।
गायत्रीयं समाख्याता जपेदेनां प्रयत्नतः ॥२०५॥

सर्वगोपालमन्त्राणां जपादौ वश्यकारिणी ।
हृदन्ते ङेयुतं कामदेवं सर्वजनप्रियम् ॥२०६॥

तथा सर्वजनस्याऽन्ते ङेऽन्तं सम्मोहनं वदेत् ।
ज्वलं संवीप्स्य मन्त्रज्ञः प्रज्वलेति प्रभाषयेत् ॥२०७॥

सर्वान्ते जनशब्दं च षष्ठ्यन्तं हृदयं ततः ।
ममेति च समुच्चार्य वशं प्रोक्त्वा कुरुद्वयम् ॥२०८॥

द्विठान्तो मारमालाणुश्चतुर्विंशद्वयाक्षरः ।
जपादिसमये चाऽयं कामबीजादिको भवेत् ॥२०९॥

राजादिसर्वलोकानां परो वश्यकरो मतः ।

ज्वलं वीप्स्य ज्वल ज्वल, जनषष्ठ्यन्तं जनस्य, अन्यत्सुगमम् । तथा—

अस्मिन्यन्त्रे पीठपूजां कृत्वा पूर्वोक्तवर्त्मना ॥२१०॥

तत्र मूर्त्ति प्रकल्प्याऽऽसां[1] कृष्णमावाह्य पूजयेत् ।
आसनप्रमुखैर्मन्त्री भूषान्तैरुपचारकैः ॥२११॥

मुहुर्न्यासक्रमेणैव पूजयेद्भक्तितत्परः ।
आदौ सृष्टिः स्थितिः पश्चात्षडङ्गानि किरीटकम् ॥२१२॥

कुण्डलद्वितयं भूयो ह्यरिं जलजकं गदाम् ।

जलजं शङ्खम् ।

पद्मं च वनमालां च श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा ॥२१३॥

चन्दनाक्षतपुष्पाद्यैः पुरोवन्मूलतोऽर्च्चयेत् ।
षट्सु कोणेषु बाह्यादि षडङ्गानि यजेत्पुरा ॥२१४॥

---

१. क. प्रकल्प्याऽस्यां ।

वासुदेवादिका मूर्त्तीः कोणकेसरगा यजेत् ।
[शान्ति श्रियं सरस्वत्या रतिं दिग्दलमूलगाः ॥२१५॥

ततः पूर्वादिपत्रेषु रुक्मिणीप्रमुखा यजेत् ।
दक्षवामक्रमात्पश्चादेकदैव समर्चयेत्][1] ॥२१६॥

षोडशस्त्रीसहस्राणि देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
दलाग्रस्थास्ततः पूज्या निधायाऽष्टौ क्रमादमी ॥२१७॥

इन्द्रो नीलो मुकुन्दश्च मकरोऽनङ्गकच्छपौ ।
शङ्खपद्मौ च तद्बाह्ये लोकेशायुधपूजनम् ॥२१८॥

इत्थं सम्पूज्य गोविन्दं नैवेद्यं हविरर्प्पयेत् ।

हविः पायसम् ।

खण्डाज्यदधिभिः पश्चाच्छत्रादीनि निवेदयेत् ॥२१९॥

स्तुत्वा प्रणम्य चोद्वास्य हरिं सावरणं हृदि ।
पुनर्विन्यस्य सम्पूज्य स्वं जपेच्छक्तितो मनुम् ॥२२०॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयान्ते 'शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीकृष्णाय देवतायै०, गुह्ये—क्लीं बीजाय०, पादयोः—स्वाहाशक्तये नम' इति विन्यस्य, मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोगं उक्त्वा, "ह्रीं क्लीं हृदयाय नमः, कृष्णाय शिरसे स्वाहा, गोविन्दाय शिखायै वषट्, गोपीजन कवचाय हुं, वल्लभाय नेत्राय वौषट्, स्वाहाऽस्त्राय फडि"ति करषडङ्ग—न्यासं कृत्वा, मूलेन मूर्द्धादिपादान्तं व्यापकं कृत्वा, मूलमन्त्रपुटितमातृकार्णान् विन्यस्य, संहारसृष्टिक्रमेण दशाक्षरोक्तप्रकारेण दशतत्वानि विन्यस्य, पुनर्मूल-मन्त्रेण प्रणवपुटितेन त्रिर्व्यापकं कृत्वा, पुनः षडङ्गानि विन्यस्य, "शिरसि—ह्रीं नमः, भाले—श्रीं०, भ्रुवोर्मध्ये—क्लीं०, नेत्रयोः—कृं०, श्रोत्रयोः—ष्णां०, नासिकायां—यं०, मुखे—गों०, चिबुके—विं०, गले—दां०, बहुमूलयोः—यं०, हृदि—गों०[2], उदरे—पीं०, नाभौ—जं०, लिङ्गे—नं०, मूलाधारे—वं०, कटचोः—ल्लं०, जानुनोः—भां०, जङ्घयोः—यं०, गुल्फयोः—स्वां०, पादयोः—हां नमः" एवं सृष्टचा विन्यस्य, "हृदि—ह्रीं, उदरे—श्रीं०,

---

१. [—] कोष्ठान्तर्गतोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । २. ख. यों०,

जङ्घानाभौ क्लीं०, गुल्फलिङ्गे—कृं०, मूले—ष्णां०, कट्यां—यं०, जानुनः—गों०, जङ्घयोः—विं०, गुल्फयोः—दां०, पादयोः—यं०, शिवे—गों०, शिरसि—पीं०, भ्रूमध्ये—जं०, नेत्रयोः—नं०, श्रोत्रयोः—वं०, नसोः—ल्लं०, मुखे—भां०, चिबुके—यं०, कण्ठे—स्वां०, बाहुमूलयोः—हां नम" इति स्थितिः। पादादिमस्तकान्तं संहारेण विन्यसेत्। अयं क्रमस्तु यतीनाम्। गृहस्थैस्तु संहारसृष्टिस्थितिक्रमेण कार्यः। वर्णिभिस्तु स्थितिसंहारसृष्टिक्रमेण कार्य इति।

ततः पूर्वोक्तं मूर्त्तिपञ्जरन्यासं कृत्वा, पुनरत्रोक्तप्रकारेण सृष्टिस्थितिक्रमेण विन्यस्य, पुनः षडङ्गानि विन्यस्य, वैष्णवमुद्रां दर्शयित्वा, दिग्बन्धनं कृत्वा, निजदेहे मूर्त्तिपञ्जरन्यासक्रमेण देवं सम्पूज्य, स्वपुरतश्चन्दनादिपीठे कुङ्कुमादिनाऽष्टदलं पद्मं विरच्य, तत्कर्णिकायां षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, कृष्णायेत्यादिभिः सप्तदशभिरक्षरैः कामबीजं संवेष्टय, षट्कोणस्य पूर्वनिर्ऋतिवायुकोणेषु श्रीबीजं, शिष्टकोणेषु मायाबीजं च विलिख्य, षट्कोणेषु सन्धिषु[1] पूर्वोक्तकृष्णषडक्षरमन्त्रवर्णानालिख्य, तत्केसरेषु प्रोक्तकामगायत्रीवर्णांस्त्रिश आलिख्य, तद्दलेषु प्रोक्तमकरध्वजमालामन्त्रवर्णान् षट् षडालिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले मातृकार्णैः सबिन्दुभिः संवेष्ट्य, तद्बहिश्चतुरश्रं कृत्वा, तस्य चतुर्दिक्षु श्रीबीजं, कोणेषु मायाबीजं च विलिख्य, तत्र प्राग्वत्पीठपूजां विधाय, मूर्त्तिकल्पनादि-पुष्पोपचारान्ते देवस्य देहे सृष्टिस्थितिन्यासक्रमेण सम्पूज्य, लयाङ्गत्वेन देवस्य देहे षडङ्गन्यासस्थाने षडङ्गानि सम्पूज्य, देवस्य शिरसि मूलमुच्चार्य्य "किरीटाय नमः, कर्णयोः—कुंडलाभ्यां०, दक्षोर्ध्वहस्ते—चक्राय०, वामोर्द्ध्वहस्ते—शङ्खाय०, वामाधः करे—गदायै०, दक्षाधः—पद्माय०, स्कन्धादिपादान्तं—वनमालायै०, वक्षसि—श्रीवत्साय० कण्ठे—कौस्तुभाय नम" इति मूलेनैव सम्पूज्य, षट्कोणेषु शान्त्यादिशक्तीश्च सम्पूज्य, दलेषु देवस्य दक्षवामक्रमेण[2] रुक्मिण्याद्यष्टमहिषीः सम्पूज्य, 'षोडशसहस्रसंख्याभ्यो देवीभ्यो नम' इति देवस्य परितः सम्पूज्य, दलाग्रेषु—"इन्द्राय०, नीलाय०, मुकुन्दाय०, मकराय०, अनङ्गाय०, कच्छपाय०, शङ्खाय०, पद्माय नम" इति निध्यष्टकं सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्समापयेदिति। तथा—

एवमभ्यर्च्य देवेशं वेदलक्षं जपेन्मनुम्।
सर्पिषा जुहुयात्पश्चाद्दशांशं तर्प्पयेत्ततः ॥२२१॥

---

१. क. थिषु। २. क. दक्षवामदक्षवामक्रमेण।

स्वाभिषेकं विधायाऽथ ब्राह्मणान् भोजयेदपि ।
इत्थं साधितमन्त्रस्तु प्रयोगान्विदधीत वै ॥२२२॥

पूजयित्वाऽनले कृष्णं श्वेतसंसूनतण्डुलैः ।
अयुतं घृतसंयुक्तैर्हुत्वा तद्भस्म धारयेत् ॥२२३॥

समस्तधनधान्याप्तिः स्त्रीवश्यं च भवेद् ध्रुवम् ।
रक्ताब्जैर्लक्षसंख्यैर्यो हुनेन्मकरलोलितैः ॥२२४॥

जुहुयाद् गोघृतैर्वाऽपि तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ।
रक्तादिवसनाकाङ्क्षी हुनेत्पुष्पैश्च तादृशैः ॥२२५॥

मधुराक्तैर्घृताक्तैर्वाऽष्टोत्तरं च सहस्रकम् ।
मधुना संयुतैश्चैव कुसुमैरष्टसंयुतम् ॥२२६॥

सहस्रमन्वहं हुत्वा मासमात्रेण साधकः ।
राज्ञः पुरोहितो भूयान्मन्त्रिणो वा न संशयः ॥२२७॥

प्रयोगजपहोमादि दशाष्टादशवर्णजम् ।
मन्त्रेणाऽनेन कुर्वीत ताभ्यामत्रोक्तमादरात् ॥२२८॥

न्यासध्यानजपार्चादिहोमतो यो भजेन्मनुम् ।
रक्तकाञ्चनध्यानाद्यैः समृद्धं तस्य मन्दिरम् ॥२२९॥

जायते हस्तगा तस्य सकला वसुधाऽचिरम् ।
पुत्रपौत्रकलत्राद्यैर्भुक्त्वा भोगान्बहूनिह ॥२३०॥
अन्ते याति परं धाम वैष्णवं मुनिदुर्लभम् ।

यन्त्रसारे—

षट्कोणकर्णिकामध्ये ससाध्यं मदनं लिखेत् ।
षट्सु कोणेषु षड्वर्णं चतुर्वर्णं चतुर्द्दले ॥२३१॥

दशपत्रे केसरोद्यद्दशार्णैकैकवर्णके ।
विंशत्यर्णमनोर्वर्णान् क्रमाद् द्वौ द्वौ विलिख्य च ॥२३२॥

मालामन्त्रेण मारस्य बाणैर्मातृकयाऽपि च ।
वेष्टितं भूपुराश्रिस्थशक्तिश्रीवसुधास्मरम् ॥२३३॥

विंशत्यर्णमनोर्यन्त्रं प्रोक्तमेतद्यथाविधि ।
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ॥२३४॥

धर्मार्थकाममोक्षायुःपुत्रधान्यधराप्रदम् ।
रक्षाकरं वश्यकारि कान्तिसौभाग्यकीर्त्तिदम् ॥२३५॥

किमत्र बहुनोक्तेन काङ्क्षितार्थसुरद्रुमम् ।

अस्यार्थः—षट्कोणाभ्यन्तरे ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, षट्सु कोणेषु षडर्णान्विलिख्य, बहिस्थचतुःपत्रेषु चतुरक्षरं विलिख्य, बहिर्दशदलपद्म-केसरेषु दशाक्षरं, तत्पत्रेषु विंशत्यर्णमन्त्रवर्णान् द्वौ द्वौ विलिख्य, बहिर्वृत्तचतुष्टयं कृत्वा, तदन्तरालवीथीत्रयेऽभ्यन्तरवीथ्यां पूर्वोक्तकाममालामन्त्रेण तद्बहिर्वीथ्यां पूर्ववत्पंचबाणैस्तद्बहिर्वीथ्यां मातृकार्णैश्च निरन्तरं संवेष्ट्य, बहिःस्थचतुरश्रकोणेषु प्रतिकोणं शक्तिश्रीवसुधाकामबीजानि लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदम् । पूर्वोक्त पूजायन्त्रं होमादिसाधितं धारणायन्त्रं भवति तदपि यथाविधि धृतं यथोक्त-फलदमिति ।

श्रीगौतमीये—

अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि षोडशार्णं महामनुम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण कृष्णात्मा परमं व्रजेत् ॥२३६॥

प्रणव नमसा युक्तं कृष्णगोविन्दकौ तथा ।
श्रीपूर्वौ ङेऽन्तावुच्चार्य्य हूं फट् स्वाहेति कीर्त्तितः ॥२३७॥

ॐ नमः श्रीकृष्णाय गोविन्दाय हुं फट् स्वाहे'ति मन्त्रः ।

नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
परमात्मा हरिर्देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥२३८॥

दशार्णकवदेवाऽस्य पूजाहोमौ प्रकीर्त्तितौ ।
प्रयोगस्तत्समः प्रोक्तो बीजशक्ती च तत्समे ॥२३९॥

य एवं प्रजपेन्मन्त्रं सोऽधीते श्रुतिचतुष्टयम् ।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ॥२४०॥

अनेनाऽऽराधितः कृष्णः प्रसीदत्येव तत्क्षणात् ।

श्रीगौतम उवाच—

[सर्वं जानासि त्वं विद्वन् स्वयम्भूसदृश प्रभो ।
त्वदुदीरितमाकर्ण्य कृतार्थोऽस्मि न चाऽन्यथा ॥२४१॥

तपस्तप्त्वा पुरा ब्रह्मन् प्रार्थितो हरिरीश्वरः ।
तेनैवोक्तं नारदेदं कथितव्यमखण्डितम् ॥२४२॥

तदवश्यं सदा ब्रह्मन् तव दर्शनलालसः ।
गङ्गाप्रवाहणं मन्त्रं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥२४३॥

श्रीनारद उवाच—][1]

बहवः कथिता मन्त्रा मया ते मुनिसत्तम ।
तं मन्त्रं कथयाम्यद्य येन ज्ञानं प्रसीदति ॥२४४॥

यस्य विज्ञानमात्रेण भक्तिः स्यात्प्रेमलक्षणा ।
चतुर्विधं तु पाण्डित्यं ज्ञानमात्रेण सिद्ध्यति ॥२४५॥

मन्दभाग्यो दरिद्रोऽपि शठो मूठोऽतिपातकी ।
उपास्य मन्त्रराज तु वागीशसमतामियात् ॥२४६॥

मयाऽप्येवं पुरा पृष्टः पद्मयोनिर्यथा वदेत् ।
तथा ते कथयिष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं मुने ॥२४७॥

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रवर्त्तकः ।
सर्वतन्त्रेषु गुह्योऽयं गोपनीयस्त्वया द्विज ॥२४८॥

वेदः प्राहुरभूदाद्यो मन्त्रेणाऽनेन वेधसः ।
कवीन्द्रत्वं भार्गवश्च वागीशत्वं बृहस्पतिः ॥२४९॥

श्रियमिन्द्रादयो देवा ज्ञानं च सनकादयः ।
सौभाग्यं चन्द्रमाः प्राप्तः कुबेरोऽपि धनेशताम् ॥२५०॥

इमं मन्त्रवरं ज्ञात्वा सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ।
अदृष्टाश्रुतशास्त्रस्य व्याख्याता शिल्पगो भवेत् ॥२५१॥

१. [—] कोष्ठकान्तर्गतोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

महाकविर्महाप्राज्ञो वाक्पतेः समतां व्रजेत् ।
ज्ञानं च परमं लब्ध्वा विष्णोः सायुज्यतां व्रजेत् ॥२५२॥

यं यं काममभिध्यायन् मनुष्यो भजते मनुम् ।
तं तं काममवाप्नोति भुवि स्वर्गे रसातले ॥२५३॥

तस्योद्धारमहं वक्ष्ये मम सार्वज्ञकारणम् ।
कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ तथा गोपीजनात्ततः ॥२५४॥

[वल्लभोऽग्निप्रिया सर्गो हपूर्वः समनुस्वरः ।
नाम्नामादौ क्रमात्कामं मायां लक्ष्मीं नियोजयेत् ॥२५५॥

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वाग्भवाद्यः प्रकीर्त्तितः ।][1]

कृष्णगोविन्दौ ङेऽन्तौ कृष्णाय गोविन्दाय इति; तथा गोपीजनात् वल्लभः गोपीजनवल्लभायेति, अग्निप्रिया स्वाहा; सर्गो विसर्गः, हपूर्वः सकारः, मनुस्वर-औकारः, एतैः सौः इति; कामं क्लीं, मायां ह्रीं, लक्ष्मीं श्रीं इति, वाग्भवः ऐं । तथा—

अहमस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मनोः ॥२५६॥

गङ्गाप्रवाहणः कृष्णः सर्वदेवनमस्कृतः ।
गङ्गाप्रवाहवद्वाणी जायते तेन तत्तथा ॥२५७॥

गङ्गाप्रवाहणो नाम कीर्त्यते परमार्थतः ।
बीजं तु मान्मथं प्रोक्तं शक्तिः पत्नी हविर्भुजः ॥२५८॥

कृष्णाय कामबीजाद्यं हृदयं परिकीर्त्तितम् ।
गोविन्दाय शिरस्तद्वन्मायाद्यचरणेन च ॥२५९॥

गोपीजन शिखा तद्वच्छ्रीबीजाद्येन विन्यसेत् ।
वल्लभायेति कवचमस्त्रं जाया हविर्भुजः ॥२६०॥

शेषबीजेन सहिता पञ्चाङ्गमनवः स्मृताः ।
मूर्द्धिन भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रे कर्णे तथा नसि ॥२६१॥

---

१. [—] कोष्ठबद्धोऽशः ख. पुस्तके नाऽस्ति ।

आस्ये कण्ठे च दोर्मूले हृदयोदरनाभिषु ।
लिङ्गमूले तथाऽऽधारे ऊर्वोर्जान्वोश्च गुल्फयोः ॥२६२॥

पादयोश्च समस्तेन मन्त्रेण व्यापकं न्यसेत् ।
कलायकुसुमश्यामं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ॥२६३॥

बर्हिबर्हकृतोत्तंसं वनमालिनमीश्वरम् ।
किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम् ॥२६४॥

श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिवक्षसं वनमालिनम् ।[1]
युवतीवेषलावण्यरमणीयतनुं[2] हरिम् ॥२६५॥

दिव्यपीताम्बरधरं मुक्ताहारविभूषितम् ।
स्मेरारुणाधरन्यस्तवेणुं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२६६॥

सर्वदेवमयं वेणुं वादयन्तं चतुर्भुजम् ।
स्फाटिकीमक्षमालां च विद्यामूर्द्ध्वकरद्वये ॥२६७॥

दधतं पुण्डरीकाक्षं दिव्यगानपरायणम् ।
अतुलश्यामसौन्दर्यं मोहयन्तं जगत्त्रयम् ॥२६८॥

तपनीयलसत्कान्त्या वीणाकमलहस्तया ।
निरीक्ष्यमाणचरणं वामपार्श्वस्थया श्रिया ॥२६९॥

हेमसिंहासने रम्ये सर्वरत्नोपशोभिते ।
रुक्मिण्यादिमहिषीभिर्निरन्तरनिषेवितम् ॥२७०॥

चन्द्रमण्डलसङ्काशश्वेतच्छत्रोपशोभितम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैर्ज्ञानार्थिभिरुपासितम् ॥२७१॥

इन्द्रादिदेवतावृन्दैः सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ।
पूजा दशाक्षरे पीठे अङ्गावृतिरनन्तरम् ॥२७२॥

महिषीभिर्द्वितीया स्यात्तृतीया दिगधीश्वरैः ।
चतुर्थी तत्प्रहरणैश्चतुरावृतिरीरिता ॥२७३॥

---

१. ख. श्रीवत्सवक्षसम्भ्राजत्कौस्तुभोद्भासितोरसम् । २. क. ०लावण्यमणीयततनुं ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—नारदाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीगङ्गाप्रवाहनाथ कृष्णाय देवतायै०, गुह्ये—क्लीं बीजाय०, पादयोः—स्वाहाशक्तये नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा "क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, ह्लीं गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, श्रीगोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुं, स्वाहा सौः अस्त्राय फट्" इति पञ्चाङ्गानि पूर्ववद्विन्यस्य, "मूर्द्धिन—ऐं नमः, भाले—क्लीं०, भ्रुवोर्मध्ये—कृं०, नेत्रयोः—ष्णां०, कर्णयोः—यं, नसोः—ह्लीं०, आस्ये—गों०, कण्ठे—विं०, दोर्मूलयोः—दां०, हृदि—यं०, उदरे—श्रीं०, नाभौ—गो०, लिङ्गमूले—पीं०, मूलाधारे—जं०, दक्षोरौ—नं०, वामोरौ—वं०, दक्षजानुनि—ल्लं०, वामे—भां०, दक्षगुल्फे—यं०, वामे—स्वां०, दक्षपादे—हां०, वामे—सौः०" इति विन्यस्य, समस्तमन्त्रेण व्यापकं विधाय, ध्यानाद्यङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु रुक्मिण्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत्समापयेदिति । तथा—

सर्वज्ञं जगदीशानं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे ।
जपेदेनं मनुवरं ध्यात्वा लक्षचतुष्टयम् ॥२७४॥

आज्याक्तकुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैर्होममाचरेत्[1] ।
दशांशं तेन मन्त्रोऽयं सिद्धो भवति नाऽन्यथा ॥२७५॥

प्रातः प्रातः पिबेत्तोयं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रितम् ।
वागीश्वरसमो भूत्वा काव्यकर्त्ता महान्भवेत् ॥२७६॥

अनेन मन्त्रितं नित्यं ब्राह्मीपत्रं प्रभक्षयेत् ।
मण्डलादेव मतिमान् महाश्रुतिधरो भवेत् ॥२७७॥

ब्राह्मीकुष्ठवचाकल्कं घृतेन द्विगुणेन च ।
चतुर्गुणं भवेद् दुग्धं पाचितं घृतमुत्तमम् ॥२७८॥

अवतार्य्य जपेदेनमयुतं मन्त्रमादरात् ।
वर्षमात्रं प्रातरेव भक्षयेन्मौनमास्थितः ॥२७९॥

एतद्भक्षणमात्रेण वृहस्पतिसमो भवेत् ।
हस्तमारोप्य जिह्वायां जपेदयुतमादरात् ॥२८०॥

---

१. ख. ०वृक्षैर्होममथाचरेत् ।

प्रतिभा जायते दिव्या सर्वलोकैकभाविता ।
धवलैरुपचारैस्तु यदि देवं प्रपूजयेत् ॥२८१॥

दिव्यं ज्ञानमवाप्नोति प्रतिभा विश्वजित्वरी ।
श्रीबीजाद्यं यदा जप्यात्तदा लक्ष्मीरचञ्चला ॥२८२॥

कामाद्यजपमात्रेण सर्वलोकं वशं नयेत् ।
मायादिजपनादेव वाक्सिद्धिर्जायतेऽचिरात् ॥२८३॥

शक्तिबीजादिको मन्त्रो निर्वाणमचिराद्दिशेत् ।
पुटनात्प्रणवाभ्यां तु मोक्षं प्राप्नोति निश्चितम् ॥२८४॥

एवं मनुवरं जप्त्वा किन्न सिद्धयति भूतले ।
एवं मन्त्रवरं यस्तु भजते भक्तितत्परः ॥२८५॥

इह भुक्त्वा वरान् भोगान्सर्वसम्पत्तिसंयुतान् ।
समृद्धि परमां लब्ध्वा यायादन्ते परम्पदम् ॥२८६॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ अष्टाविंशस्तरङ्गः ॥२८॥

———

[एकोनत्रिंशस्तरङ्गः]

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अथ गोपालमन्त्राणां वक्ष्ये श्रेष्ठतमं मनुम् ।
कविताश्रीप्रदं वश्यमोहनादिकरम्परम् ॥१॥

वाङ्माया विष्णुपत्न्यन्ते ह्लादिनीन्द्वग्निभूषितः ।
दीर्घा स्थिरा स्थितिः प्रोक्ताः साग्निशान्तिसुधाकराः ॥२॥

जयं संवीप्स्य कृष्णं च दीर्घा लोचनशालिनी ।
रक्तेन्दुकामिका रक्तौ सृष्टयग्नी वामदृग्युतौ ॥३॥

नन्दद्यनन्तान्वितो जीवश्चक्री कामिकया युतः ।
पार्श्वरक्ते रविश्रोत्रे सत्यनेत्रे च कामिका ॥४॥

कूर्मो झिण्टीशसंयुक्तः कामिका च सुधाकरः ।
झिण्टीशो नित्यशब्दान्ते पार्श्वाग्नी नेत्रभूषिते ॥५॥

वाद्यनन्तौ पुनर्वायुः कृष्णो ङेऽन्तो रतिप्रियः ।
दशार्णः सरमा माया वाग्भवान्तो मनुर्मतः ॥६॥

वैदुष्यवश्यलक्ष्मीदो द्विपञ्चाशद्भिरक्षरैः ।

वाक् ऐं, माया ह्रीं, विष्णुपत्नी श्रीं, ह्लादिनी द, अत्र ईकारस्य प्रश्लेषस्तेन ई-स्वरूपं, अग्निः र, इन्दुः तेन द्रीं; दीर्घा न, स्थिरा ज, स्थितिः भ, एते वर्णाः पृथक् पृथक्; अग्नी र, शान्तिरीकारः, सुधाकरः बिन्दुः, एतैर्युक्ताः तेन न्रीं ज्रीं भ्रीं[1] इति; जयं वीप्स्य जय जय, कृष्णं चेति चकाराद्वीप्स्येति तेन कृष्ण कृष्ण; दीर्घा न, लोचनं इ, तेन नि; रक्तं र, इन्दुर्बिन्दुः रं इति; कामिका त, रक्तं र, सृष्टिः क, अग्निः र, वामदृक् ई, एतैः क्री; नन्दी ड, अनन्त आ, तेन डा; जीवः स, चक्री क, कामिका त, तेन क्त; पार्श्वः प, रक्तं र, तेन प्र; रविः म, श्रोत्रं उ, तेन मु; सत्यः द, नेत्रं इ, तेन दि; कामिका त, कूर्मः च, झिण्टीश ए, तेन चे; कामिका त, सुधाकरः स, झिण्टीश ए, तेन से; नित्य-स्वरूपं; पार्श्वः प, अग्नी रेफः, नेत्रं इ, तैः प्रि; वायुः य, अनन्त आ, वायुः य, कृष्णो ङेन्तः कृष्णाय, रतिप्रियः क्लीं, दशार्णः प्रथमोक्तगोपाल दशाक्षरः, रमा श्रीं, माया ह्रीं, वाग्भव ऐं इति । तथा—

आनन्दनारदाख्योऽस्य मुनिश्छन्दो विराड् भवेत् ।
अमृताद्या तु सम्प्रोक्त देवता मोहनो हरिः ॥७॥

अष्टभिर्हृदयं वर्णैः शिरो द्वादशभिः स्मृतम् ।
धातुसंख्यैः शिखा वर्म वस्वर्णैर्नेत्रमात्मना ॥८॥

पङ्क्त्यर्णैरस्त्रमुद्दिष्टं त्रिबीजपुटितैः क्रमात् ।
एवं मूलभवैर्वर्णैः षडङ्गं समुदीरितम् ॥९॥

धातवः सप्त, वस्वर्णैः अष्टभिः, आत्मना एकेन, पङ्क्त्यर्णैः दशभिः ।

---

१. ख. द्रीं त्रीं ज्रीं भ्रीं ।

एतत्करणमात्रेण लोकसञ्चलनं भवेत् ।
भूतशुद्धयादिकं कृत्वा देहे पीठं प्रकलल्प्य च ॥१०॥

हस्तद्वये दशार्णोक्तविधिना न्यासमाचरेत् ।
षडङ्गं न्यस्य कामानां पञ्चकं च प्रविन्यसेत् ॥११॥

त्रिवारं मूलमनुना व्यापकं च प्रविन्यसेत् ।
कामसम्पुटितां न्यस्येन्मातृकार्णान् यथा पुरा ॥१२॥

दशतत्वादिकान्न्यासान्मूर्त्तिपञ्जरपश्चिमान् ।
सृष्टिस्थितिषडङ्गानि बाणान्न्यस्येच्च पूर्ववत् ॥१३॥

सर्वमन्यत्पुरोक्तेन विधानेन विधाय वै ।
साधकः सर्वलोकेशं ध्यायेत्सम्मोहनं हरिम् ॥१४॥

पुरोत्तमे निजे रम्ये पर्वताम्बुधिमध्यगे ।
विपुलोच्चमहादुर्गगोपुरादिसुवीथिके ॥१५॥

मेघोच्छ्रितसुधाधौतसौधजालसमाकुले ।
रक्तमन्दिरविस्तीर्णकपाटद्वारमण्डिते ॥१६॥

भूदेवबाहुजविशां वृषलानां गृहोत्तमैः ।
नानाशिल्पिगृहैश्चाऽपि हस्त्यश्वोष्ट्रखरालयैः ॥१७॥

गोछागमहिषादीनामसंख्यातैर्गृहैर्युते ।
वह्वापणगतानेकसाधुलोकसमाहृतैः ॥१८॥

क्रयविक्रयकार्यार्थं वस्तुसङ्घैश्च मण्डिते ।
लोकस्वान्तवशीकारदशनारीनिकेतनैः ॥१९॥

दीर्घानेकसुदीर्घिकाजलसमुत्फुल्लाम्बुजान्तस्रव-
न्मध्वास्वादकृतादरैर्जलचरैर्भृङ्गैश्च हंसैः शुभैः ।
कारण्डादिगणैरथाङ्गविहगैरन्यैश्च सर्वैस्तथा,
सन्तुष्टैरनिशं प्रियासहचरैरश्वादिभिः सेविते ॥२०॥

फुल्लानेकसुगन्धिपुष्पनिचयासक्तैर्भ्रमद्भृङ्गकै-
र्व्याप्ते कल्पकपादपैरनुदिनं कामान्यथेष्टान्मुहुः ।
यच्छद्भिर्मनुजेभ्य आदरपरैः शीतैश्च मन्दानिलै-
र्लोलत्सर्वशिखैर्वृते मणिमये सन्मण्डपे भास्वरे ॥२१॥

पङ्क्तिभी रत्नदीपानां समुद्योतितमध्यके ।
नानावर्णवितानेन मौक्तिकालम्बिना युते ॥२२॥

बहुवर्णसुपुष्पाभिर्मालाभिः शोभितान्तरे ।
सम्यक्सुगन्धिना गन्धवारिणा सिक्तभूतले ॥२३॥

मञ्जुलस्त्रीसहस्त्रौघैर्मदाघूर्णितलोचनैः ।
कामालसगतैर्हस्तपद्मलोलसुचामरैः ॥२४॥

पृथून्नतकुचाभारत्रुटचत्क्षीणावलग्नकैः ।
स्खलन्मधुरवाग्गुम्फैरभितः सेवितेऽनिशम् ॥२५॥

निरन्तरं महारत्नधारौघं वर्षतोऽद्भुतम्[1] ।
परानन्दसुधास्यन्दं स्रवतः स्वस्तरोरधः ॥२६॥

रत्नभूमौ सहस्त्रार्क्कभास्वत्सिंहासनाम्बुजे ।
लक्ष्मीकान्तं समासीनं चिन्तयेदिष्टसिद्धये ॥२७॥

उद्यन्नूतननीलनीरजलसत्कान्तिं जगत्कारणं,
चक्रस्निग्धसुमूर्द्धजात्तकुसुमं माणिक्यमौलिं प्रभुम् ।
सम्यक्शोभिललाटनासिकमुदञ्चद्भ्रूलतालङ्कृतं,
संरक्तायतलोललोचनयुगं रत्नोल्लसत्कुण्डलम् ॥२८॥

श्रीमद्गण्डतलं विनिर्जितलसद्बन्धूकशोणाधरं,
हासश्रीविशदीकृताखिलदिशं प्रस्विन्नमुग्धाननम् ।
स्फूर्ज्जद्रश्मिमहार्घरत्ननिकरप्रत्युप्तभूषागणै —
र्मुक्ताहारमुखैर्विभूषिततनुं रोमोद्गमालम्बितम् ॥२९॥

कर्पूरागुरुकुङ्कुमद्रवविलिप्ताङ्गं स्वतः सुन्दरं,
वृत्तस्थूलसुदीर्घकोमलभुजैर्दिङ्नामसंख्यैर्युतम् ।
रक्ताब्जद्युतिपादपद्मयुगलं कामार्त्तचिन्ताकुलं,
स्वाङ्कन्यस्तकराम्बुजद्वयमतस्तत्र स्थिताया भृतम् ॥३०॥

---

१. ख. वर्षतोद्भुवम् ।

रुक्मिण्या लसदूरुयुग्मपिहितं सत्स्वर्णकान्ति प्रिया-
मालिङ्गन्तममुं कराब्जयुगलेनाऽऽसक्तभावां दृढम् ।
बाहुभ्यां भगवन्तमार्द्रजघनामालिङ्गच सम्यक्स्थितां,
रोमाञ्चाञ्चितदेहवल्लिलसितामानन्दभाराहताम् ॥३१॥

प्रस्वेदच्छद्ममुक्ताभिर्भूषिताङ्गमनोरमाम् ।
तस्मिन्नेव समासक्तसर्वेन्द्रियगणक्रमाम् ॥३२॥

तरङ्गरहितैरङ्गैर्म्मज्जन्तीं सुखसागरे ।
स्वदक्षस्थितयाऽऽश्लिष्टं श्यामया सत्यभामया ॥३३॥

दिव्यक्षौमानुलेपाद्यैर्युक्तया सर्वभूषणैः ।
कामबाणप्रविद्धाङ्गचा बाहुना परिरब्धया ॥३४॥

रक्तया जाम्बवत्या चाऽऽश्लिष्टं वामस्थया तया ।
तामुक्तलक्षणोपेतामालिङ्गन्तं स्वबाहुना ॥३५॥

कालिन्द्या च परीरब्धं पृष्ठदेशस्थया विभुम् ।
करोद्यत्पद्मया नीलमेघश्यामरुचा ततः ॥३६॥

अनङ्गबाणसम्पातभीतया भूषिताङ्गया ।
पद्मं गदां चक्रशङ्खौ चतुर्भिर्दधतं करैः ॥३७॥

करद्वयलसद्वेणुच्छिद्रार्पितमुखाम्बुजम् ।
चतुर्दिक्षु बहिर्देवैर्मुनिभिः खेचरैर्वृतम् ॥३८॥

सर्वैर्भक्तिभरप्रेमयावभारानताङ्गकैः ।
स्तुवद्भिः स्तुतिभिः सम्यक् सेवासंसक्तमानसैः ॥३९॥

चतुर्वर्गप्रदं नित्यं मनोवाचामगोचरम् ।
स्वतेजसि स्थितं मग्नं महानन्दसुधाम्बुधौ ॥४०॥

इत्थं ध्यात्वा महाविष्णुं सर्वलोकगुरुं परम् ।
पीठे पूर्वोदिते चैनं पूजयेन्नित्यमादरात् ॥४१॥

विभूतिपञ्जरन्यासक्रमाद्वाणान् समर्चयेत् ।
मूर्त्तिपञ्जरमभ्यर्च्य पश्चादङ्गावसानकम् ॥४२॥

पूर्वोक्तविधिना सम्यगभ्यर्च्याऽऽत्मानमादरात् ।
विंशाक्षरोक्तसद्यन्त्रे मध्यबीजाद्बहिर्लिखेत् ।।४३।।

जलेन्दुरविजेन्द्राणामाशास्वादौ समाहितः ।
चतुर्बीजान्यथोक्तानि द्विचत्वारिंशदक्षरैः ।।४४।।

शिष्टैः संवेष्ट्य कोणेषु शम्भुपूर्वाग्निगेषु च ।
वाक्शक्तिलक्ष्मीबीजानि संलिख्य तदनन्तरम् ।।४५।।

क्षपाटवरुणेराणां तान्येवाश्रिषु संलिखेत् ।
शेषं पुरोक्तवत्कृत्वा पीठमभ्यर्च्य तत्र तु ।।४६।।

मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य तत्राऽऽवाह्य हरिं यजेत् ।
मध्यबीजगतं पश्चादग्रदक्षिणवामयोः ।।४७।।

पृष्ठतश्च समभ्यर्च्या बीजगा रुक्मिणीमुखाः ।
अङ्गानि षट्सु कोणेषु बाणान्केसरगान्यजेत् ।।४८।।

दलमध्येषु लक्ष्म्याद्यास्तदग्रेषु ध्वजादिकान् ।
ध्वजं कृष्णाभमग्रे तु पृष्ठगं चाऽऽरुणं विपम् ।।४९।।

शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ शुक्लरक्तौ तु पार्श्वयोः ।
सर्वदा चाऽऽभिवर्षन्तौ[1] धाराभिर्वसुसञ्चयम् ।।५०।।

हेरम्बं शास्तनामानं दुर्गां च तदनन्तरम् ।
विष्वक्सेनं च कोणेषु वह्न्यादि परितो यजेत् ।।५१।।

रक्तमारकतप्रख्यदूर्वाकनकवर्णकान् ।
तद्बहिर्वासवादीनां वज्रादीनां च पूजनम् ।।५२।।

सप्तावरणसंयुक्ता विष्णुपूजा समीरिता ।

।।अथ प्रयोगः।।

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि आनन्दाय ऋषये नमः, मुखे—अमृतविराट्छन्दसे०, हृदि—श्रीसम्मोहनाय

१. क. याभिवर्षन्तौ ।

कृष्णाय देवतायै०," इति विन्यस्य पूर्ववद्विनियोगमुक्त्वा, "ऐं ह्लीं श्रीं द्रीं त्रीं ज्रीं ह्लीं ऐं हृदयाय नमः, ऐं ह्लीं श्रीं कृष्ण कृष्ण निरन्तरक्रीडासक्त श्रीं ह्लीं ऐं शिरसे स्वाहा, ३ कृष्णाय प्रमुदितचेतसे ३ शिखायै वषट्, ३ नित्यप्रियाय ३ कवचाय हुं, ३ क्लीं नेत्राय वौषट्, ३, ३ गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ३ अस्त्राय फडि" ति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, दशाक्षरमन्त्रप्रकारेण करन्यासं विधाय, पुनः प्रोक्त-षडङ्गानि विन्यस्य, पूर्वोक्तप्रकारेण पञ्चकामन्यासं कृत्वा, मूलेन स्वदेहे त्रिव्यापकं विन्यस्य, कामबीजपुटितमातृकावर्णान् स्वदेहे प्राग्वद्विन्यस्य, पूर्वोक्तदशतत्वन्यासं कृत्वा, [1]पुनः सृष्टिस्थितिषडङ्गानि विन्यस्य, पूर्वोक्तपञ्चबाणन्यासं कृत्वा, पुनश्च ऋष्यादिन्यासं विधाय, मुद्राः प्रदर्श्य, ध्यानादिमानसपूजान्ते विंशत्यक्षर-प्रोक्तयन्त्रे मध्यस्थबीजं परितस्तस्य पश्चिमोत्तरदक्षिणपूर्वदिक्षु—'द्रीं त्रीं ज्रीं क्रीं' इति विलिख्य, तच्चतुष्टयं शिष्टैर्द्विचत्वारिंशदक्षरैर्दशबीजरहितैः संवेष्ट्य, षट्कोणेषु पुनस्तान्येव बीजानि विन्यस्याऽत्रशिष्टं यन्त्रं पूर्वोक्तमेव विलिख्य, पुरतः सस्थाप्याऽर्घस्थापनादिपीठार्चान्ते मध्यबीजे देवमावाह्याऽऽवाहनादिवैष्णव-मुद्रादर्शनान्ते न्यासक्रमेण विभूतिपञ्जरादिमूर्त्तिपञ्जरान्तं सम्पूज्याऽऽसनादिपुष्पो-पचारान्ते देवाग्रतद्दक्षवामपृष्ठलिखितबीजेषु रुक्मिणीं, सत्यभामां, जाम्बवतीं, कालिन्दीं च सम्पूज्य, षट्कोणेषु प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, केसरेषु प्राग्वत्पञ्च-बाणान्, दलाष्टके लक्ष्म्याद्याः प्रागुक्ताः सम्पूज्य, देवाग्रदलस्याऽग्रे—'ध्वजायै नमः, पृष्ठदलाग्रे — विपाय, दक्षदलाग्रे — शङ्खनिधये०, वामे—पद्मनिधये०, आग्नेयादिदलाग्रेषु — हेरम्बाय०, शास्त्रे०, दुर्गायै, विष्वक्सेनाय नम' इति सम्पूज्य तद्बहिश्चतुरस्रे लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति ।

तथा— दीक्षितो विधिना मन्त्रं प्राप्याऽमुं सद्गुरोः कृती ।
दर्शनं भाषणं स्पर्शं वचनश्रवणादिकम् ॥५३॥

वर्जयेत्प्रजपेल्लक्षं स्त्रीमात्रस्य गुरोरपि ।
सिताज्यमधुमिश्रेण दशांशं हविषा हुनेत् ॥५४॥

हविषा पायसेन ।

तर्प्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
मन्त्रमेनं जपेद्यस्तु प्रत्यहं विधिनाऽमुना ॥५५॥

---

१. इतः पूर्वं ख. पुस्तके विशेषो दृश्यते—'प्रणवपुटितमूलमन्त्रेण त्रिव्यापकं कृत्वा, सृष्टि-न्यासादिमूर्त्तिपञ्जरन्यासान्तं दशार्णगोपालमन्त्रप्रकारेणोक्तवत्कृत्वा' ।

तमर्चयन्ति गीर्वाणा लोकानन्दकरश्च सः ।
दिनादौ शर्करायुक्तदुग्धबुध्या जलैः शुभैः ॥५६॥

अन्वहं तर्प्पयेद्यस्तु शतं साग्रं भवेद् ध्रुवम् ।
इदं श्रीजलबिम्बाभातद्विभूतिमहार्णवे ॥५७॥

चन्द्रचन्दनपङ्काक्तमालतीकुसुमैर्नवैः ।
अयुतं मन्त्रवर्येण यो जुहोति विभावसौ ॥५८॥

त्रैलोक्यं तद्वशे[1] तिष्ठेत् ख्यातः कविवरो भवेत् ।
मन्त्रिणो ध्यानमात्रेण मन्त्रस्याऽस्य यथाविधि ॥५९॥

वश्या भवन्ति सततं स्मरार्त्ताः सुरयोषितः ।
जपादिकर्मभिर्नूनमस्मात्किञ्चिन्न लभ्यते ॥६०॥

स्पर्द्धां स्वाभाविकीं त्यक्त्वा चित्रमेतत्[2] सुनिश्चितम् ।
महेन्दिरासरस्वत्यौ सेवेते भक्तितत्परे ॥६१॥

व्याधिदारिद्र्यपापौघज्वरमोहविषादिभिः ।
जरापमृत्युदौर्भाग्यदुखादिरहितः सदा ॥६२॥

पुत्रपौत्रधनारोग्यवरस्त्रीबान्धवादिभिः ।
उपेतः सर्वसम्पद्भिर्यशस्वी दीर्घजीवितः ॥६३॥

उपासकोऽस्य मन्त्रस्य भवत्येव न चाऽन्यथा ।

श्रीसारसङ्ग्रहे—

रमामायास्मरान्ते तु चतुर्थ्या कृष्णमीरयेत् ।
गोविन्दं ङेयुतं चाऽथ स्वाहान्तो द्वादशाक्षरः ॥६४॥

रमा श्रीबीजं, माया तद्बीजं, स्मरः कामबीजं, चतुर्थ्या कृष्णं कृष्णाय, गोविन्दं ङेयुतं गोविन्दाय । तथा—

मन्त्रे ब्रह्मा मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् ।
श्रीकृष्णो देवता चन्द्रधरेन्द्वग्न्यब्धिनेत्रकैः ॥६५॥

---

१. ख. तद्विशे । २. ख. चितमेतत् ।

मूलमन्त्रभवैर्वर्णैः षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
ध्यानपूजाजपाद्यस्य विंशार्णोक्तवदाचरेत् ॥६६॥
कामयेत्सर्वसम्पत्तिं मन्त्रमेनं भजेद् बुधः ।

श्रीं हृत्, ह्रीं शिरः, क्लीं शिखा, कृष्णाय कवचं, गोविन्दाय नेत्रं, स्वाहाऽस्त्रम् । तथा—

लक्ष्मीशक्तिमनोजातबीजान्ते दशवर्णकम् ।
काममायेन्दिरान्तोऽयं षोडशार्णो मनुर्मतः ॥६७॥

लक्ष्मीः श्रीं, शक्तिः ह्रीं, मनोजः क्लीं, दशवर्णः पूर्वोक्तः, कामः क्लीं, माया ह्रीं, इन्दिरा श्रीं, ऋष्यादिकं दशार्णोक्तं[1] पञ्चाङ्गमपि तद्वत् तथा—

पूजा विंशाक्षरे पीठे ध्यानं तस्य निगद्यते ।
वराभयकराब्जाभ्यामालिङ्गन्तं प्रियाङ्गकम् ॥६८॥

अब्जोत्पललसद्धस्तेनाऽऽभ्यामालिङ्गितं मुदा ।
धारयन्तं रथाङ्गं च शङ्खाभयकलेवरम् ॥६९॥

देवं ध्यात्वा जपन्मन्त्रं दशलक्षं समाहितः ।
तावत्संख्यसहस्राणि हुनेदाज्यमनुत्तमम् ॥७०॥

तर्प्पणाद्यैर्भवेन्मन्त्रः[2] सिद्ध्यत्येव फलप्रदः ।
मायाश्रीसहितो मन्त्रो द्वादशार्णो दशाक्षरः ॥७१॥
विधानमपि विज्ञेयं षोडशार्णोक्तवर्त्मना ।

सुगमम् ।

काममायेन्दिरापूर्वो मायाश्रीकामतस्तथा ।
लक्ष्मीमायास्मराद्यैश्च मन्त्रराजो दशाक्षरः ॥७२॥

त्रयोदशाक्षरा मन्त्रास्त्रय एते समुद्धृताः ।
मुन्याद्यङ्गविधिस्त्वेष पङ्क्त्यर्णोक्तविधानतः ॥७३॥

ध्यानं तृतीयमन्त्रे तु दशार्णोक्तमुदाहृतम् ।
विंशार्णोक्तं द्वितीयेऽथ प्रथमेऽथ निगद्यते ॥७४॥

---

१. क. दशार्णीयं । २. क ०र्भयेन्मन्त्रः ।

दरचापलसद्वाणगुणाङ्कुशकराम्बुजम् ।
वेणुमादाय हस्ताभ्यां वादयन्तं मुदान्वितम् ॥७५॥

रविमण्डलगं कृष्णं ध्यायेदिष्टफलाप्तये ।
अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरर्चना सर्वसिद्धिदा ॥७६॥

बाणलक्षं जपित्वाऽग्नौ दशांशं हविषा हुनेत् ।
तर्प्पणादि ततः कुर्यात्सिद्धमन्त्रः समाचरेत् ॥७७॥

कान्तिपुष्टिधनारोग्यकामो मन्त्रे प्रयोगकान् ।
बाणलक्षं पञ्चलक्षं कामान्तो[1] वसुपुत्रदः ॥७८॥

मुनिर्नारद आख्यातो गायत्रीछन्द ईरितम् ।
श्रीकृष्णो देवताऽङ्गानि षड्दीर्घाढ्यस्मरेण हि ॥७९॥

क्लां क्लीमित्यादि करषडङ्गम् ।

बालं नीलमुदारकान्तिविभवं हस्ताम्बुजैर्दक्षिणे,
विभ्राणं परिपक्वदौग्धकवलं नन्दात्मजं सुन्दरम् ।
वामे तद्दिनजातमद्भुतरसं दध्युत्थपिण्डं सुतं,
वैयाघ्रेण नखेन राजितगलं त्यक्तांशुकं भावयेत् ॥८०॥

अङ्गैर्वासववज्राद्यैरर्च्चनाऽस्य समीरिता ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमेकलक्षमनन्यधीः ॥८१॥

शर्कराघृतयुक्तेन दशांशं हविषा हुनेत् ।
तर्प्पणादि ततः कुर्यात् पूर्वोक्तविधिना सुधीः ॥८२॥

सरोजमध्यगं कृष्णं पूजयित्वा विधानतः ।
तस्यैव श्रीमुखाम्भोजे तर्प्पयेन्मन्त्रमुच्चरेत् ॥८३॥

गोदुग्धेन सुशुद्धेन सुपक्वैः कदलीफलैः ।
दध्ना च नवनीतेन पुत्रमाप्नोति वत्सरात् ॥८४॥

तथा— अधरो बिन्दुमान् कामो ङेयुक् कृष्णश्च मायया ।
गोविन्दो ङेयुतो लक्ष्मीर्दशार्णस्तदनन्तरम् ॥८५॥

---

१. क. करमान्तो ।

भृगुर्मनुविसर्गाढ्यो द्वाविंशार्णो मनुर्मतः ।
वागैश्वर्यप्रदो नित्यं साधकानामभीष्टदः ॥८६॥

अष्टादशलिपिप्रोक्तं मुन्याद्यं चाऽङ्गकल्पनम् ।

अधरः ऐ, बिन्दुमान् विन्दुयुक्तस्तेन ऐं; कामस्तद्बीजं, ङेयुक् कृष्णः कृष्णाय, मायया तद्बीजेन सहेति शेषः । गोविन्दो ङेयुतः गोविन्दाय; लक्ष्मी श्रीं बीजं, दशार्णः पूर्वोक्तः, भृगुः स, समनुः औ, विसर्गः अः, तैः सौः ।

विंशाक्षरोक्ता विज्ञेया सपर्य्या ध्यानमुच्यते ॥८७॥

दक्षोर्द्ध्वे हस्तपद्मे स्फटिकजपवटीं मातृकावर्णरूपां,
वामोर्द्ध्वे सर्वविद्याकलितमभिनवं पुस्तकं सन्दधानः ।
शब्दब्रह्मैकवेणुं करयुगलधृतं वादयन्यः[1] श्रिये वो[2],
गायन्पीताम्बरोऽसौ भवतु मुररिपुः श्यामलः कोमलाङ्गः ॥८८॥

मयूरपत्रसम्बद्धकेशजालश्रियाऽन्वितः ।
सर्वज्ञो मुनिवृन्देन सेवितः सर्ववेदिना ॥८९॥

इत्थं सञ्चिन्त्य देवेश नारीनेपथ्यधारिणम् ।

नेपथ्यमलङ्कारः । तेन स्त्रीभूषणधारी ध्येयः ।

युवतीवेषलावण्यरमणीयतनुं हरिम् ॥९०॥

इति **गौतमीयतन्त्रात्** ।

क्लीं कृष्णाय हृदयं, गोविन्दाय शिरः, गोपीजन शिखा, **वल्लभाय कवचं**, स्वाहाऽस्त्रं, इति पञ्चाङ्गम् । अन्यत्सुगमम् ।

तथा— वेदलक्षं मनुं जप्त्वा किंशुकैर्मधुराप्लुतैः ।
दशांशं जुहुयादग्नौ साधको मन्त्रसिद्धये ॥९१॥

तर्प्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्री पूर्वोक्तवर्त्मना ।
मन्त्रमेनं जपेद्यस्तु मन्त्री प्रोक्तेन वर्त्मना ॥९२।

देवस्याऽनुग्रहात्तस्य मुखपद्माद्विजृम्भते ।
गङ्गातरङ्गकल्लोलवाग्विलासमनोहरा ॥९३॥

---

१. क. ख. पुस्तकद्वये 'वादयानः' इति पाठः । २. ख. वं ।

गद्यपद्यात्मिका सम्यक् प्रचण्डा भारती सदा ।
अशेषवेदवेदार्थसर्वशास्त्रविशारदः ॥९४॥

राज्यैश्वर्य्यं महत्प्राप्य मुक्तिमेति परां कृती ।
तथा— वेदादिहृदयस्याऽन्ते ङेयुतं भगवत्पदम् ॥९५॥

नन्दपुत्राय नन्दान्ते वपुषे श्रीदशाक्षरः ।
अष्टाविंशाक्षरो मन्त्रो भजतां कामदो मणिः ॥९६॥

वेदादिः प्रणवः, हृदयं नमः, ङेयुतं भगवत्पदम् भगवते, नन्दपुत्राय-स्वरूपं, नन्दवपुषे-स्वरूपं दशाक्षरः पूर्वोक्तः ।

तथा— नारदो मुनिरस्य स्यादुष्णिक् छन्द उदीरितम् ।
देवता नन्दपुत्रोऽस्य चिन्तितेष्टफलप्रदः ॥९७॥

आचक्रादिपदैरङ्गपञ्चकं परिकीर्त्तितम् ।
रत्नपात्रं करे दक्षे हेमवेत्रं च वामतः ॥९८॥

वहन्तं भावयेत्कृष्णं स्त्रीभ्यामालिङ्गितं मुदा ।
अङ्गलोकेशवज्राद्यैरर्चना फलसिद्धये ॥९९॥

दशायुतं जपित्वाऽन्ते जुहुयाद्धविषा युतम् ।
साधिते साधको मन्त्रे भवेत्सर्वसमृद्धिमान् ॥१००॥

तथा— नन्दपुत्राय-शब्दान्ते श्यामलाङ्गाय भाषयेत् ।
ङेऽन्तं बालवपुः प्रोक्त्वा चतुर्थ्या कृष्णमीरयेत् ॥१०१॥

तादृग्गोविन्दशब्दान्ते दशार्णं च मनुं वदेत् ।
मन्त्रोऽयं साधु सम्प्रोक्तो द्वात्रिंशद्वर्ण उत्तमः ॥१०२॥

गौतमीये भेदान्तरमुक्तं यथा—

नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं श्यामलाङ्गपदं तथा ।
अमृतं मुखवृत्तं च मांसं चैव वपुस्तथा ॥१०३॥

दशाक्षरान्तः प्रोक्तोऽयं मनुः सर्वसमृद्धिदः । इति ।
मुन्याद्या नारदानुष्टुप्कृष्णा अन्यत्पुरोक्तवत् ॥१०४॥

पुरोक्तवत् अष्टाविंशत्यक्षरोक्तवत् ।

तथा— प्रणवान्ते रमा माया हृदयं भगवांस्ततः ।
ङेयुक् च नन्दपुत्राय छगलण्डोऽप्यनन्तयुक् ॥१०५॥

इन्द्रतो वपुषे ब्रूयाच्छ्यामलाङ्गं च ङेयुतम् ।
अष्टादशलिपिर्मन्त्रो द्विचत्वारिंशदर्णवान् ॥१०६॥

रमा श्रीं, माया ह्रीं, ङेयुग्भगवान् भगवते, श्यामलाङ्गं ङेयुतं श्यामलाङ्गाय, अष्टादशलिपिः पूर्वोक्तः ।

तथा— ब्रह्माऽनुष्टुप्छन्दकृष्णा मुन्याद्याः कथिता बुधैः ।
अन्यत्सर्वं पुरोक्तेन विधानेन समो भवेत् ॥१०७॥

वह्न्येकादशभूतेषु धृतिसंख्यैस्तु मन्त्रवित् ।
मूलमन्त्रभवैर्वर्णैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥१०८॥

वह्नयः त्रयः, भूतानि पञ्च, इषवः पञ्च, धृतिरष्टादश, ॐ श्रीं ह्रीं हृत्, नमो भगवते नन्दपुत्राय शिरः, बालवपुषे शिखा, श्यामलाङ्गाय कवचं, क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा अस्त्रम् । अन्यदष्टाविंशत्यक्षरवत् ।

तथा— मन्त्रोऽयं सकलैश्वर्य्यकाङ्क्षितार्थैकसाधनम् ।

तथा— ध्रुवान्ते हृदयं ब्रूयाच्चतुर्थ्या भगवत्पदम् ।
रुक्मिण्यन्ते वल्लभाय स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ॥१०९॥

ध्रुवः प्रणवः, हृदयं नमः, चतुर्थ्या भगवत्पदं भगवते, रुक्मिणीवल्लभाय-स्वरूपम् ।

तथा— मुनिर्नारद आख्यातः छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
रुक्मिणीवल्लभः कृष्णो देवता सर्वसिद्धिदः ॥११०॥
भूद्वन्द्वश्रुतिपातालयुग्मार्णैरङ्गकल्पना ।

भूः १, श्रुतयः ४, पातालाः ६ ।

कलायश्यामलं कृष्णं नानालङ्कारमण्डितम् ।
पीतकौशेयसद्वस्त्रं स्वर्णवेत्रविभूषितम् ॥१११॥

करपद्मेन दक्षेण श्लिषन्तं वामपाणिना ।
चिन्तारत्नवतीं देवीमङ्कगां काञ्चनप्रभाम् ॥११२॥

वामहस्तधृताम्भोजामन्येनाऽऽलिङ्गितप्रियाम् ।
अङ्गैर्नारदमुख्यैश्च लोकपालैस्तदायुधैः ॥११३॥

पूजनं धर्मकामार्थनिःश्रेयसफलावहम् ।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेन्मधुरलोलितैः ॥११४॥

दशांशं कमलैः पश्चात्तर्प्पणादि समाचरेत् ।
महदैश्वर्य्यवश्यादिकाङ्क्षिभिः सेव्यतां मनुः ॥११५॥

ॐ हृत्, नमः शिरः, भगवते शिखा, रुक्मिणीवल्लभाय कवचं, स्वाहाऽस्त्रम् ।

तथा— वदेल्लीलापदस्याऽन्ते दण्डगोपीजनं पुनः ।
संसक्तदोःपदं पश्चाद्दण्डबालपदं वदेत् ॥११६॥

रूप-मेघपदं प्रोक्त्वा श्यामं भगपदं वदेत् ।
वन्-विष्णो वह्निवध्वन्त एकोनत्रिंशदक्षरः ॥११७॥

लीलादण्ड गोपीजनसंसक्तदोर्दण्ड बालरूप मेघश्याम भगवन्विष्णो इति पदानि स्वरूपाणि । वह्निवधूः स्वाहा ।

तथा— मन्त्रो निखिलसद्वश्यसिद्धिसम्पत्प्रदो मतः ।
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता मता ॥११८॥

लीलादण्डमहाविष्णुः सर्वदेवौघवन्दितः ।
चतुर्द्दशचतुर्वेदत्र्यब्ध्यर्णैरङ्गकल्पनम् ॥११९॥

लीलादण्ड गोपीजनसंसक्तदोर्दण्ड हृत्, बालरूप शिरः, मेघश्याम शिखा, भगवन् कवच, विष्णो स्वाहाऽस्त्रम् ।

वामहस्ताम्बुजस्थेन लीलादण्डेन गोपिकाः ।
पुराङ्गनाश्च साकूतं मोहयन्तं महाप्रभुम् ॥१२०॥

आत्मनः प्रियमित्रस्य स्कन्धन्यस्तान्यहस्तकम् ।
हतकंस स्मरेत्कृष्णमप्रमेयपराक्रमम् ॥१२१॥

अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरर्च्चनाऽस्य मताऽन्वहम् ।
लक्षमेनं जपेन्मन्त्रं दशांशं तिलतण्डुलैः ॥१२२॥

त्रिमध्वक्तैर्हुनेत्पश्चात्तर्पणादि समाचरेत् ।
नियमस्थो नरो योऽमुं लीलादण्डमनुं भजेत् ॥१२३॥
सुभगः स जगद्वन्द्यो रमाया भवनं भवेत् ।

गौतमीये—

लीलादण्डधरं प्रोक्त्वा गोपीजनपदं ततः ।
संसक्ततत्परं दोर्दण्डमेघश्यामपदं ततः ॥१२४॥

विष्णो स्वाहेति मन्त्रोऽयं समस्तपुरुषार्थदः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥१२५॥

देवता श्रीकृष्णदेवः[1] सर्वविश्वार्थसाधकः ।
पदैः पञ्चाङ्गक्लृप्तिः स्यादतो ध्यायेदथाऽच्युतम् ॥१२६॥

तापिच्छकुसुमश्यामं सदा षोडशवार्षिकम् ।
गोपीमध्यस्थितं ताभ्यां स्वाश्रितं कामदित्सया ॥१२७॥

सर्वालङ्कारसुभगं पीताम्बरधरं हरिम् ।

भुवनैकगुरुं ध्यात्वा लक्षमेकं जपेन्मनुम् ॥१२८॥
दशांशं कमलैर्हुत्वा शेषमन्यत्समापयेत् । इति ।

तथा— शार्ङ्गी सद्येन सन्दीप्तो बालचन्द्रद्वयं तथा ।
विलोमाद्यतृतीयश्च[2] सानन्तोऽथ समीरणः[3] ॥१२९॥
कृशानुदयितोपेतो मन्त्रोऽयं धातुवर्णकः ।

शार्ङ्गी गः, सद्यः ओ, तेन गो; बालः व, इन्द्रद्वयं ल्ल, विलोमाद्यतृतीयः भ, अनन्तः आ, तेन भा; समीरणः य, कृशानुदयिता स्वाहा, धातुवर्णः सप्ताक्षरः । **गौतमीये** त्वन्यथोक्तः—

ऊर्ध्वदन्तयुतः खान्तो वर्णो मांसद्वयं तथा ।
भीषणामुखवृत्तेन वीतिहोत्रसखान्वितः ॥१३०॥

सर्वार्थसाधकः प्रोक्तो नमोऽन्तोऽष्टाक्षरो मनुः ।
कामबीजं मुखे दद्यात्सर्वार्थसम्प्रसाधकः ॥१३१॥

---

१. ०क. ख. ०देवो । २. ख. ०तृतीयश्च । ३. क समीरिणः ।

ऊर्ध्वदन्त ओकारः, खान्तो गः, मांसद्वयं ल, भीषणा भ, वीतिहोत्रसखा यकारः ।

तथा— नारदो मुनिरस्य स्यादुष्णिक् छन्दश्च देवता ।
गोवल्लभो हरिः प्रोक्तो गवां वृद्धिकरः परः ॥१३२॥
दशार्णोक्तविधानेन पञ्चाङ्गविधिरीरितः ।
इन्द्रनीललसत्कान्ति पीतवाससमच्युतम् ॥१३३॥
सर्पारिपिच्छनिकरैः सम्यक्क्लृप्तावतंसकम् ।
वेणुं वामकरे दक्षे यष्टिं पाशं च बिभ्रतम् ॥१३४॥
कपिलाजातमध्यस्थमाह्वयन्तं च तां मुदा ।
एवं ध्यात्वा यजेत्सम्यक् पीठे पूर्वोदिते शुभे ॥१३५॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य पूजयेद् गोगणाष्टकम् ।
सुवर्णवर्णा प्रथमा द्वितीया गौरपिङ्गला ॥१३६॥
तृतीया रक्तपिङ्गाक्षी चतुर्थी गलपिङ्गला ।
पञ्चमी बभ्रुवर्णा स्यादुत्तमा कपिला गवाम् ॥१३७॥
षष्ठी चतुष्कपिङ्गा स्यात्सप्तमी समपिङ्गला ।
अष्टमी कपिला गोषु विज्ञेया पुच्छपिङ्गला ॥१३८॥
पुरन्दरमुखास्तेषामायुधानि ततः परम् ।
ध्यात्वा मन्त्रं जपेत्सम्यक् वर्णलक्षं जितेन्द्रियः ॥१३९॥
तत्सहस्रं हुनेन्मन्त्री गोदुग्धैस्तु पुरोक्तवत् ।
गोदुग्धैः प्रत्यहं साग्रं सहस्रं जुहुयात्तु यः ॥१४०॥
मासार्द्धेन गवां वृद्धिर्जायते तस्य भूयसी ।
दशाक्षरोक्तवत्सर्वं विधानं च प्रकल्पयेत् ।१४१॥

गौमतीयोक्तस्य तु—
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम् ।
देवता चाऽस्य श्रीकृष्णः समस्तपुरुषार्थदः ॥१४२॥
पञ्चाङ्गानि मनोरस्य आचक्राद्यैः[1] प्रकल्पयेत् ।
कलायकुसुमश्यामं नीलेन्दीवरसन्निभम् ॥१४३॥

---
१. क. याचक्राद्यैः ।

नानालङ्कारसुभगं बालकं पञ्चहायनम् ।
दध्युत्थं पायसं स्फीतं कराभ्यां दधतं हरिम् ॥१४४॥

तारहारावलीरम्यं गोपगोपीगणावृतम् ।
ध्यात्वैवं परमानन्दं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् ॥१४५॥

अर्कलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं पायसैर्हुनेत् ।
अथवा पङ्कजैर्हुत्वा सिद्धमन्त्रो भवेत्सुधीः ॥१४६॥

दशाक्षरोदिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत् ।
अथवा स्वाङ्गवज्रादिपूजा चाऽस्य समीरिता ॥१४७॥

नवनीतायुत हुत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पुत्राप्तिश्चम्पकैर्होमात्पाटलै राज्यवश्यता ॥१४८॥

अन्नाद्यैर्होमतो नित्यं लक्ष्मीस्तस्य गृहे स्थिरा ।
पूर्वोक्ततर्पणादेव सर्वाभीष्टानि साधयेत् ॥१४९॥

तथा— ब्रूयात्तारहृदोरन्ते चतुर्थ्या भगवत्पदम् ।
अस्थ्यग्निवामनेत्रान्ते गोविन्दं तादृशं वदेत् ॥१५०॥

रव्यर्णो मनुराख्यातो नारदोऽस्य मुनिर्भवेत् ।
गायत्री छन्द इत्युक्तं देवता कृष्ण ईरितः ॥१५१॥

तारः प्रणवः, हृन्नमः, चतुर्थ्या भगवत्पदं भगवते, अस्थि श, अग्निः र, वामनेत्रं ई, तैः श्री; गोविन्दं तादृश गोविन्दाय ।

चन्द्रनेत्राब्धिबाणार्णैर्मन्त्रेणाऽप्यङ्गकल्पनम् ।
कल्पद्रुमतले रम्ये रत्नसिंहासने शुभे ॥१५२॥

सर्वलक्षणसन्दीप्तं निविष्टं नन्दनन्दनम् ।
प्रस्नुतस्तनभारेण गोवृन्देनाऽऽवृतं स्मरेत् ॥१५३॥

मेघश्यामतनुं सुपीतवसनं वेत्रं दरं बिभ्रतं,
हस्ताभ्यां कमलायताक्षमनिशं सौन्दर्यसीमास्पदम् ।
देवाधीश्वरहस्तयुग्मविलसत्सौवर्णसत्कुम्भतो
निर्यातामृतधारया हरिमह संसिच्यमानं भजे ॥१५४॥

दक्षे वेत्रं, वामे शङ्खः ।

सम्पूज्य वैष्णवं पीठं तत्राऽऽवाह्य यजेद्धरिम् ।
देवस्य दक्षिणे भागे कर्णिकायां तु रुक्मिणीम् ॥१५५॥

सत्यभामां च तद्वामे वासवं चाग्रऽदेशतः ।
सुरतिं पृष्ठतोऽभ्यर्च्य दलमूलेषु मन्त्रवित् ॥१५६॥

हृदादिकवचान्तानि दिग्गतेषु समर्चयेत् ।
चत्वार्य्यङ्गानि कोणेषु सम्यगस्त्रं यजेत्ततः ॥१५७॥

पूर्वादिपत्रमध्येषु कालिन्दीं रोहिणीं ततः ।
नग्नजित्यादिकाश्चाऽपि षट्शक्तीरुदिताऽर्चयेत् ॥१५८॥

तद्बहिर्वह्निकोणादिशिवान्तं सम्यगर्चयेत् ।
किङ्किणीदामयष्ट्यां सुवेणु पश्चात्पुरोगतौ ॥१५९॥

श्रीवत्सकौस्तुभौ पूज्यौ वनमालां पुरोऽर्च्चयेत् ।
पूर्वादि तद्बहिः शङ्खं गदां चक्रं ततः सुधीः ॥१६०॥

वसुदेवादिभिः पश्चाद्देवकीनन्दगोपकम् ।
यशोदां धेनुगोपालगोपिकाः पूजयेत्ततः ॥१६१॥

लोकपालांस्तदस्त्राणि कुमुदादींश्च पूजयेत् ।
उत्तरे तद्बहिः पश्चाद्विष्वक्सेनविधानतः ॥१६२॥

कुमुदः प्रथमो ज्ञेयः कुमुदाक्षो द्वितीयकः ।
पुण्डरीकस्तृतीयश्च वामनस्तदनन्तरम् ॥१६३॥

शङ्कुकर्णः पञ्चमश्च सर्वनेत्रस्ततः परः ।
सुमुखः सप्तमः पश्चादष्टमः सुप्रतिष्ठितः ॥१६४॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि नारदाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे, हृदये—श्रीकृष्णाय देवतायै नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा "ॐ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्, श्रीगोविन्दाय कवचाय हुं, ॐ नमो भगवते गोविन्दायाऽस्त्राय फडि" ति पञ्चाङ्गानि प्राग्वद्विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकायां

देवस्य दक्षिणे—"रुक्मिण्यै नमः, वामे—श्रीसत्यभामायै०, अग्रे—इन्द्राय०, पृष्ठे—सुरभ्यै०," दिग्गतकेसरेषु—हृदादिकवचान्तानि, कोणकेसरेषु चाऽस्त्रं च सम्पूज्य, दलेषु देवाग्रादि—"कालिन्द्यै०, रोहिण्यै०, नग्नजित्यै०, सुनन्दायै०, मित्रविन्दायै०, सुलक्षणायै०, जाम्बवत्यै०, सुशीलायै०," अष्टदलाद्बहिश्चतुरस्राभ्यन्तरे वह्निकोणादि "किङ्किणीभ्यः०, दामभ्यः०, यष्टयै०, वेणवे०," इतीशानान्तमभ्यर्च्य, देवाग्रे—"श्रीवत्साय०, कौस्तुभाय०, वनमालायै०," चतुरस्रे देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन "शङ्खाय०, गदायै०, चक्राय० वसुदेवाय०, देवक्यै०, नन्दगोपाय०, यशोदायै०, धेनुभ्यः०, गोपालेभ्यः०, गोपिकाभ्यः०" इति सम्पूज्य, लोकापालांस्तदस्त्राणि च तद्बहिः सम्पूज्य, तद्बहिः "कुमुदाय०, कुमुदाक्षाय०, पुण्डरीकाय०, वामनाय०, शङ्कुकर्णाय०, सर्वनेत्राय०, सुमुखाय०, सुप्रतिष्ठाय नम" इति' बहिर्देवस्योत्तरे, 'विष्वक्सेनाय नम' इति सम्पूज्य धूपादि शेषं समापयेदिति ।

तथा— एवं सञ्चिन्त्य देवेशं वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ।
तत्सहस्राणि गोक्षीरैर्जुहुयात्तर्पणं ततः ॥१६५॥
ब्राह्मणाराधनान्तं तु प्राग्वत्कुर्यादतन्द्रितः ।
दिनादौ चाऽथ मध्याह्ने समयत्रितयेऽथवा ॥१६६॥

गोष्ठाभ्यासगतं कृष्णमर्च्चयन् विधिनाऽमुना ।
भक्त्या परमयोपेतो गोभ्यश्च तृणमर्प्पयन् ॥१६७॥

दीर्घायुर्निर्भयश्चैव धनधान्यधरादिभिः ।
पुत्रैः पौत्रैश्च सन्मित्रैराढ्योऽन्ते विष्णुमेति च ॥१६८॥

तथा— स्मृतिराप्यायनीयुक्ता सृष्टिरिन्धिकयाऽन्विता ।
क्रिया दीर्घा प्रतिष्ठाऽढ्या वरदा तादृशी मता ॥१६९॥

क्षुधा दीर्घा च तन्द्राख्या रसना दीपिका भवेत् ।
अष्टाक्षरः समाख्यातो मूलमन्त्रो मनीषिभिः ॥१७०॥

स्मृतिः ग; आप्यायनी ओ, तेन गो; सृष्टिः क, इन्धिका उ, तेन कु; क्रिया ल, दीर्घा न, प्रतिष्ठा आ, तेन ना; वरदा थ, तादृशी आकारयुक्ता तेन था; क्षुधा य, दीर्घा न, तन्द्रा म, रसना विसर्गः तेन मः ।

तथा— ब्रह्मा मुनिस्तु गायत्री छन्दो देवो हरिर्मतः ।
वर्णद्वन्द्वक्रमादङ्गं सकलेनाऽपि कल्पयेत् ॥१७१॥

वन्दे नीलकलेवरं रुचिरया कान्त्या महत्या युतं,
बालं कुन्तलजालरुद्धनयनं पञ्चाब्दिकं चाऽङ्गणे ।
धावन्तं रसनासुनूपुरमणिग्रैवेयहाराङ्गदै-
रादीप्तं तरलं स्तुतं मुनिगणैर्हृष्टं यशोदासुतम् ।।१७२।।

श्रीकृष्णं पूजयेन्नित्यं पीठे पूर्वसमीरिते ।
दिग्विदिक्क्रमतः पूर्वं पूजयेदङ्गपञ्चकम् ।।१७३।।

दिक्पत्रेषु यजेन्मूर्त्तीर्वासुदेवादिकास्ततः ।
रुक्मिणीं सत्यभामां च लक्ष्मणां तदनन्तरम् ।।१७४।।

ततो जाम्बवतीं मन्त्री कोणपत्रेषु पूजयेत् ।
तद्बहिर्वासवादीनां वज्रादीनां च पूजनम् ।।१७५।।

।। अथ प्रयोगः ।।

तत्र: प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीकृष्णाय देवतायै०" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, "गोकु हृत्०, लना शिरः०, थाय शिखा०, नमः कवचं०, गोकुलनाथायाऽस्त्रं०," इति पञ्चाङ्गानि विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते देवाग्रादिकेसरचतुष्केऽङ्गचतुष्टयं, कोणकेसरेष्वस्त्रमिति पञ्चाङ्गानि सपूज्य, दिग्दलेषु वासुदेवादिमूर्त्तिचतुष्टयं सम्पूज्य, कोणपत्रे—'रुक्मिण्यै०, सत्यभामायै०, लक्ष्मणायै०, जाम्बवत्यै नम" इति सम्पूज्य दिगीशार्चादि प्राग्वत्कुर्यादिति । तथा—

सम्पूज्यैनं मनुं जप्त्वा वर्णलक्षं हुनेत्ततः ।
वसुसाहस्रसंख्यातैः पालाशोत्थसमिद्वरैः ।।१७६।।

पायसैरथवाऽऽज्याक्तैस्तर्प्पणादि ततश्चरेत् ।
मन्त्रमेनं भजेन्नित्यमन्वहं श्रद्धयाऽन्वितः ।।१७७।।

सर्वैश्वर्य्यसमृद्धोऽन्ते विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
तथा— ध्रुवो रमा महामाया कामान्ते ङेयुतं वदेत् ।
श्रीकृष्णं तादृशं चैव श्रीगोविन्दमपीरयेत् ।।१७८।।

श्रीगोपीजनशब्दान्ते वल्लभाय ततो वदेत् ।
त्रिः श्रीमत्यद्भुतो मन्त्रः सिद्धगोपालसंज्ञकः ।।१७९।।

ध्रुवः प्रणवः, रमा श्रीं, महामाया ह्रीं, कामः क्लीं, ङेयुतं श्रीकृष्णं श्रीकृष्णाय, तादृशं गोविन्दं श्रीगोविन्दाय, श्रीगोपीजनवल्लभाय-स्वरूपं, त्रिः श्रीं त्रिवारं श्रीवीजं वदेदित्यर्थः ।

सेवितौ वैनतेयेन माधवीमण्डितस्थितौ ।
रमन्तौ दिव्यभावेन बलकृष्णौ तु संस्मरेत् ॥१८०॥

गौतमीये तु—

वेदादि कमला माया कामबीजादथो वदेत् ।
श्रीकृष्णाख्यं पदं ङेऽन्तं गोविन्दं च तथा भवेत् ॥१८१॥

गोपीजनपदस्याऽन्ते वल्लभं ङेऽन्तमीरयेत् ।
कामान्तं तु रमाबीजं सम्प्रोक्तो मन्त्रनायकः ॥१८२॥

सिद्धगोपालमन्त्रोऽयं सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ।
बीजैः पदैश्च पञ्चाङ्गं कृत्वा ध्यायेदथाऽच्युतम् ॥१८३॥

पक्षिराजकृतच्छायौ सुरद्रुमतलासिनौ ।
शङ्खेन्दुमरकताभासौ दध्युत्थपयसाशिनौ ॥१८४॥

अलकैरावृतमुखौ ग्रहयुक्तौ यथा विधू ।
नानालङ्कारसुभगौ कौस्तुभामुक्तकन्धरौ ॥१८५॥

तारहारावलीरम्यौ सर्वाश्चर्यमयौ शिशू ।
त्रैलोक्यशरदौ देवौ रामकृष्णौ स्मरञ्जपेत् ॥१८६॥

लक्षमेकं मनुवरं दशांशं श्रीफलैर्हुनेत् ।
होमान्ते विरमेन्मन्त्री शेषमन्यत्समापयेत् ॥१८७॥

दशाक्षरोदिते पीठे वक्ष्यमाणेन पूजयेत् ।
षडङ्गं केसरेष्विष्ट्वा दिगीशान्प्रहरणान्यपि ॥१८८॥

एवं त्रयावृत्तिमयं सम्पूज्य परमेश्वरम् ।
दुग्धबुध्या जलैर्नित्यं तर्प्पयेदिष्टसिद्धये ॥१८९॥

मुखे करं समायोज्य जप्याद्वाग्मी कविर्भवेत् ।
नवनीतायुतं हुत्वा धरापरिवृढो भवेत् ॥१९०॥

रविवारेऽश्वत्थमूले त्वष्टोत्तरशतं जपेत् ।
पुत्रैर्मित्रैश्च सम्पन्नो म्रियते नाऽपमृत्युतः ॥१६१ ।

तथा— सर्गी तिथीशयुक् चक्री मन्त्र एकाक्षरो भवेत् ।

चक्री कः, सर्गी विसर्गयुक्तः तिथीशः ऋ, तेनाऽपि युक्तः तेन कृः, इति मन्त्रः ।

द्व्यर्णः कृष्णेति ताराद्यो गुणवर्णोऽयमेव हि । १६२॥

कृष्ण इति द्व्यर्णः । अयं त्र्यर्णस्ताराद्यः ।

वेदार्णः सचतुर्थ्यन्तः कृष्णाय हृदयान्तकः ।

सः त्र्यर्णः चतुर्थ्यन्तश्चेद्वेदार्णः । चतुरर्णः—ॐ कृष्णाय इति । कृष्णाय-स्वरूपं, हृदयं नमः ।

बाणार्णः कामयुग्मान्तः कृष्णायेति परो मनुः ॥१६३॥

बाणार्णः पञ्चार्णः, अस्य पूर्वेण सम्बन्धः । कामः कामबीजद्वयं तयोरन्तः मध्ये कृष्णायेति स्वरूपं, परः पञ्चवर्ण इत्यर्थः ।

गोपालो ङेयुतो मन्त्रो द्विठान्तोऽयं षडक्षरः ।

गोपालो ङेयुतः गोपालाय, द्विठः स्वाहा ।

मारान्ते ङेयुतं कृष्णं षडर्णोऽन्यः शिरोऽन्तकः ॥१६४॥

मारः कामबीजं, ङेयुतं कृष्णं कृष्णाय, शिरः स्वाहा ।

ङेऽन्तः कृष्णश्च गोविन्दस्तादृक् सप्ताक्षरो मनुः ।
रमा माया स्मरान्ते तु चतुर्थ्या कृष्णमीरयेत् ॥१६५॥

कामान्तः कृष्णमन्त्रोऽयं द्वितीयः परिकीर्त्तितः ।

रमा श्रीं, माया ह्रीं, स्मरः क्लीं ।

कामकृष्णाय गोविन्दश्चतुर्थ्याऽष्टाक्षरो मनुः ॥१६६॥

द्वितीयोऽष्टाक्षरो ङेयुक् दधिभक्षण ठद्वयम् ।

ङेयुग्दधिभक्षणः दधिभक्षणाय, ठद्वयं स्वाहा ।

सुप्रसन्नात्मशब्दान्ते ने-हृद्वस्वर्णकोऽपरः ॥१६७॥

सुप्रसन्नात्मने-स्वरूप, हृत् नमः ।

स्मरः कृष्णाय गोविन्दो ङेऽन्तोऽनङ्गो नवाक्षरः ।

स्मर; क्लीं, कृष्णाय-स्व०, गोविन्दो ङेऽन्तः गोविन्दाय, अनङ्गः क्लीं ।

अयमेव हृदन्तोऽन्यो विना कामं नवाक्षरः ॥१९८॥

हृत् नमः, विना कामं कामद्वयविधुरः ।

कामसम्पुटितं पिण्डं श्यामलाङ्गश्च ङेयुतः ।
हृदन्तोयं समाख्यातो दशार्णो वक्ष्यतेऽपरः ॥१९९॥

कामबीजद्वयमध्यगतं, पिण्डं ग्लौं, श्यामलाङ्गः ङेयुतः श्यामलाङ्गाय, हृत् नमः ।

बालान्ते वपुषे कृष्णं ङेऽन्तं स्वाहान्तको मनुः ।

बालवपुषे-स्वरूपं, ङेन्तं कृष्णं कृष्णाय ।

कामः कृष्णाय बालान्ते वपुषे वह्निवल्लभा ॥२००॥

कामः क्लीं, वह्निवल्लभा स्वाहा ।

गौतमीये—

कृष्णेति द्व्यक्षरः प्रोक्तः कामपूर्वो गुणाक्षरः ।
कामाद्यन्तश्चतुर्वर्णश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥२०१॥

ङेऽन्तः कृष्णो नमोऽन्तश्च पञ्चवर्णो महामनुः ।
स एव कामपूर्वश्चेत्षडक्षरमनुः स्मृतः ॥२०२॥
सुप्रसन्नात्मने वह्निवल्लभा चाऽष्टवर्णकः ।

तथा— नारदो मुनिरेतेषां मन्त्राणां छन्द उच्यते ।
सम्यग्देव्यादिकाः प्रोक्ता गायत्री देवता पुनः ॥२०३॥

बालगोपालसंज्ञोऽत्र सर्वदेवौघवन्दितः ।
षड्दीर्घयुक्तकामेन षडङ्गविधिरीरितः ॥२०४॥

वन्दे बालं मुकुन्दं सरसिजनिलयं रक्तपद्माभनेत्रं,
नीलाम्भोजच्छविन्तं कटितटकरणात्किङ्किणीजालनद्धम् ।
हस्ताभ्यां बिभ्रतं सद्दधिजमभिनवं पायसं दिक्षु वीतं,
गोगोपीगोपवृन्दैरुरुनखलसितं कण्ठदेशेऽतिरम्ये ॥२०५॥

दधिजं नवनीतम् ।

यजेत्पूर्वोदिते पीठे वह्नीशासुरवायुषु ।
हृदादिकवचान्तानि चत्वार्यङ्गानि साधकः ॥२०६॥

दृशं तत्पुरतोऽभ्यर्च्य दिक्ष्वस्त्रं तद्बहिस्ततः ।
आखण्डलमुखान्देवान् वज्रादींश्च समर्चयेत् ॥२०७॥

प्रयोगः सुगमः ।

तथा— विचिन्त्यैवं जपेन्मन्त्रमेकमेकं दशायुतम् ।
सितोपलाघृताक्तेन दशांशं हविषा हुनेत् ॥२०८॥

तर्प्पयेन्मन्त्रसिद्धयर्थं तावन्मन्त्री जितेन्द्रियः ।
मूलमन्त्रेण मूर्द्धानमभिषिच्याऽथ तर्प्पयेत् ॥२०९॥

ब्राह्मणानन्नपानेन गुरुं वसुभिरादरात् ।
एवं यो भजते मन्त्रमेषामेकं दिने दिने ॥२१०॥

चतुर्वर्गफलं प्राप्य देवः साक्षात्स जायते ।
मन्त्रान्तरमथो वक्ष्ये चतुर्वर्गसमृद्धिदम् ॥२११॥

कामः कृष्णेति कामश्च मन्त्रः शीघ्रफलप्रदः ।
कामः कामबीजं, कृष्ण-स्वरूपम्, पुनः कामबीजम् ।
मुन्यादींश्च षडङ्गानि विदुरुक्तेन वर्त्मना ॥२१२॥

एकाक्षराद्युक्तवर्त्मना ।

श्रीमद्गीर्वाणभूमीरुहतलविकचाम्भोजसंस्थं मुकुन्दं,
शाखायास्तस्य नम्रप्रमुदितकमलप्रोद्भुतानेकरत्नम् ।
संसक्तस्वर्णवर्णं निजवपुविलसत्तेजसा व्याप्तलोकं,
वन्देऽहं पायसादं दधिजमभिनवं भक्षयन्तं सुशीतम् ॥२१३॥

अङ्गैरावरणं पूर्वं निधिभिस्तदनन्तरम् ।
लोकपालैश्च वज्राद्यैः पश्चादावरणद्वयम् ॥२१४॥

प्रयोगः सुगमः ।

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं वेदलक्षं जितेन्द्रियः ।
दशांशं जुहुयादग्नौ श्रीफलैर्मधुराप्लुतैः ॥२१५॥

तर्प्पणादि ततः कुर्यात्पूर्वोक्तं मन्त्रसिद्धये ।
एवं सम्पूज्य गोविन्दं प्रत्यहं तर्प्पयेद्बुधः ॥२१६॥

मधुरत्रयसद्बुध्या शुद्धतोयैर्दिनागमे ।

श्रीयन्त्रसारे—

स्मरं कर्णिकायां षडश्रे षडर्णं चतुःपत्त्रराजश्चतुर्वर्णमन्त्रम् ।
वृतं मातृकार्णैर्द्धरागेहसंस्थं चतुर्वर्णयन्त्रं समस्तार्थदायि ॥२१७॥

अस्यार्थः—षट्कोणमध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, षट्कोणेषु पूर्वोक्तषडर्णवर्णानालिख्य, बहिश्चतुर्दलकमलं कृत्वा, तद्दलेषु चतुरक्षरमन्त्रवर्णानालिख्य, बहिर्वृत्तयोरन्तराले मातृकार्णैः संवेष्टच बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवतीति ।

अस्यैव कामयोरिन्द्रवह्निदीप्तावधो यदि ।
अन्यो मन्त्रस्तथा ज्ञेयः सर्वश्रेष्ठो मनीषिभिः ॥२१८॥

पूर्वोक्तमन्त्रस्य कामबीजद्वयगतलकारयोरधस्ताद्रेफे दत्तेऽन्यो मन्त्रो भवेदित्यर्थः ।

षड्दीर्घभाजा बीजेन तादृशेनाऽङ्गकल्पना ।

शोणोद्यानगदेववृक्षशिखरे सौवर्णदोलागतं,
नीलाकुञ्चितमूर्द्धजं कटितटे सत्किङ्किणीमण्डितम् ।
रक्तं द्वीपिनखप्रकल्पितगलाकल्पं मुदा प्रेङ्खितं,
गोपीभ्यामतिसुन्दरं मुररिपुं वन्दे यशोदासुतम् ॥२१९॥

पूर्वोदिते यजेत्पीठे पूर्वोक्तविधिना हरिम् ।
सम्यगभ्यर्च्य गोविन्दं जपेन्मन्त्री पुरोक्तवत् ॥२२०॥

मधुराक्तैर्हुनेन्मन्त्री रक्तपद्मैर्दशांशतः ।
तर्प्पणं पूर्वसङ्ख्यं स्याद् गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥२२१॥

मधुरत्रयसंसिक्तामारक्तां शालिमञ्जरीम् ।
जुहुयान्नित्यशोऽष्टोर्ध्वं शतमेकेन मन्त्रयोः ॥२२२॥

मण्डलात्सर्वसस्याढ्या वसुधा हस्तगा भवेत् ।
धनधान्यसमृद्धिश्च स कान्तेर्मन्दिरं[1] भवेत् ॥२२३॥

---

१. ख. कान्ते मन्दिरं ।

पूजाहोमजपप्रयोगविधिभिर्मन्त्री य एकं भजे-
द्भक्त्या काम इवाऽपरः स युवतीवृन्देन सम्भाव्यते ।
लक्ष्म्यायुश्च यशश्च सर्वविभवान्कामांश्च लब्ध्वा तनो-
रन्तेऽनन्तसुखप्रबोधजनकं लोकं व्रजेद्वैष्णवम् ॥२२४॥

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अथ सन्तानगोपालमन्त्रं वच्मि सुतप्रदम् ।
देवकीसुतशब्दान्ते गोविन्देति समीरयेत् ॥२२५॥

वासुदेवपदात् पश्चात्सम्बुद्ध्यन्तं जगत्पतिम् ।
देहि मे पदमाभाष्य तनयं कृष्णमुच्चरेत् ॥२२६॥

त्वामहं शरतो ब्रूयाद् णं गतोऽयं मनुर्भवेत् ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो नारदोऽस्य मुनिर्मनोः ॥२२७॥

छन्दोऽनुष्टुब् देवता च कृष्णः सन्तानसिद्धिदः ।
पादैश्चतुर्भिः सर्वेण पञ्चाङ्गानि मनोर्विदुः ॥२२८॥

शङ्खचक्रधरं देवं श्यामवर्णं चतुर्भुजम् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तं पीतवाससमच्युतम् ॥२२९॥

मयूरपिच्छसंयुक्तं विष्णुं तेजोपबृंहितम् ।
समर्प्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान् ॥२३०॥

[1]करुणामृतसम्पूर्णचेष्टैकनिलयं त्वजम् ।

चतुर्भुजमित्यनेन गदाम्बुजे सूचिते । वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये । इत्यायुधध्यानम् । [2]स्त्रीभिस्तु—

स्वाङ्के सम्मुखसन्निविष्टममले रक्ताम्बुजे बालकं,
माणिक्योज्ज्वलबालभूषणगणं प्रोत्तप्तहेमद्युतिम् ।
प्रेम्णाऽऽलिङ्ग्य मुहुर्मुहुः सुखवशात्संलालितं स्वात्मना,
पुत्रत्वेन विभावयन्मुररिपुं पुत्रार्थिनी कामिनी ॥२३१॥

---

१. ख. करुणामृतसम्पूर्णं० । २. इतः पूर्वं निम्नांशो विशेषः ख. पुस्तके—
"गौतमीतन्त्रे तु—चतुर्भुजं शङ्खचक्रमूर्द्ध्वपाणिद्वये धृतम् ।
अधःपाणिद्वये वेणुं वादयन्तं मुदाऽन्वितम् ॥१॥
इत्युक्तं यथागुरूपदेशं ध्येयम् ।"

इति ध्येयः ।

ध्यात्वा जपार्च्चनादीनि कुर्याद् भक्तिपरायणः ।
अर्चनाऽङ्गेन्द्रवज्राद्यैरुदिताऽस्य महामनोः ॥२३२॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्ते "शिरसि नारदाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्-छन्दसे०, हृदये—श्रीकृष्णाय देवतायै०" इति विन्यस्य, मूलेन करयोर्व्यापकं विन्यस्य, "देवकीसुत गोविन्द हृत्०, वासुदेव जगत्पते शिरः०, देहि मे तनयं कृष्ण शिखा०, त्वामहं शरणं गतः अस्त्रं०" इति पञ्चाङ्गमन्त्रान् प्राग्वद्विन्यस्य, ध्यानादि सर्वं प्राग्वत्कुर्यादिति । तथा—

लक्षं जप्त्वा तद्दशांशं जुहुयाद् गोघृतेन च ।
तर्प्पणादि ततः कुर्यान्मन्त्रः सिद्धचति मन्त्रिणः ॥२३३॥
[1]दशम्यामर्द्धरात्रे तु शुक्लपक्षस्य मन्त्रवित् ।
पुत्रार्थी स्वस्तिके न्यस्य तत्संस्थं विष्णुमर्च्चयेत् ॥२३४॥
य एवं भजते मन्त्रं साधकः पुत्रकाङ्क्षया ।
सोऽवश्यं लभते पुत्रं विनीतं चिरजीविनम् ॥२३५॥

स्वस्तिके मण्डले ।

यन्त्रसारे—

कामं मध्ये स्वरयुगलसत्केसरेष्वष्टपत्रे—
ष्वालिख्यान्तर्जलनिधिमितान् मन्त्रवर्णान् क्रमेण ।
भूयो हल्भिर्बहिरभिवृतं भूपुरस्थं तदेत—
द्यन्त्रं सद्यो वितरति नृणां पुत्रपौत्रादिवृद्धिम् ॥२३६॥

---

१. अस्मात्प्राक् ख. पुस्तके विशेषतो दृश्यतेऽयमंशः—
"गौतमीतन्त्रे—एवमभ्यर्च्य देवेशं लक्षमात्रं जपेन्मनुम् ।
पुत्रञ्जीवेन्धनचिते तत्फलैरयुतं हुनेत् ॥१॥
अनन्तरं दशांशेन तर्प्पणादीनि चाऽऽचरेत् ।
इत्युक्तम् । अथ द्वात्रिंशदक्षरो मनुस्तन्त्रान्तरे कामबीजसम्पुटितोऽपि । ऋष्यादि पूर्ववत् । कराङ्गन्यासौ षड्दीर्घभाजा कामबीजेन कुर्यात्, ध्यानं तु—
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं धारयन्तं जनार्द्दनम् ।
अङ्के शयानं देवक्याः सूतिकामन्दिरे शुभे ॥२॥
शेषं प्राग्वत् ।

अस्यार्थः—अष्टदलकमलकर्णिकायां ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः स्वरान्विलिख्य तद्दलेषु मूलमन्त्राक्षराणि चत्वारि चत्वारि विलिख्य, बहिर्वृत्तद्वयान्तराले कादिक्षान्तवर्णैरावेष्ट्य, बहिश्चतुरश्रं कामबीजकोणचतुष्टयं[1] कुर्यादितद्यन्त्रमुक्तफलदम् ।[2]

तथा— वसुदेवं चतुर्थ्यन्तं निगडच्छे-पदं वदेत् ।
दनं वा-शब्दतो ब्रूयात्सुदेवं ङेसमन्वितम् ॥२३७॥

---

१. ख. सकामबीज० । २. ख. पुस्तकेऽतः परमयमंशो विशेषः—

गौतमीये—प्रातर्वाचंयमा नारी बोधिद्रुमदले जलम् ।
मन्त्रयित्वाऽष्टोत्तरशतं पिबेत् पुत्रीयति ध्रुवम् ॥१॥

एवं प्रयोगान्मासमात्रात्तनयं लभते ध्रुवम् ।
अनेन मन्त्रितं त्वाज्यं पुत्रसिद्धिकरं परम् ॥२॥

अनेन जलपानेन वन्ध्या वर्षाल्लभेत् प्रजाम् ।

क्रमदीपिकायाम्—अपमृत्युविनाशाय सान्दीपनिसुतप्रदम् ।
ध्यात्वाऽमृतलताखण्डैः क्षीराक्तैरयुतं हुनेत् ॥१॥

मृतपुत्राय ददतं सुतान् विप्राय सार्जुनम् ।
ध्यात्वा लक्षं जपेदेकं मनुं सुतविवृद्धये ॥२॥

पुत्रजीवेन्धनचिते जुहुयादनलेऽऽयुतम् ।
तत्फलैर्मधुराक्तैः स्युः पुत्रा दीर्घायुषोऽस्य तु ॥३॥

क्षीरद्रुक्क्वाथसम्पूर्णमभ्यर्च्य कलशं निशि ।
जप्त्वाऽयुतं प्रगे नारीमभिषिञ्चेद् द्विषड्दिनम् ॥४॥

सा वन्ध्याऽपि सुतान्दीर्घजीविनो गदवर्जितान् ।
लभते नाऽत्र सन्देहस्तज्जलाऽन्नाशिनी सती ॥५॥

इति मृतवत्साप्रयोगः । मृतप्रजेन मृत्युञ्जयपुटितजपः कार्यः । 'ॐ जूं सः क्लीं देवकीसुत गोविन्द० शरणं गतः क्लीं सः जूं ॐ' । तत्राऽऽदौ केवलत्र्यक्षरमृत्युञ्जयस्य लक्षत्रयं जपं कृत्वा तदनु सम्पुटितस्य षट्लक्षं पुरश्चरणं कुर्यात्, चिरजीविनः पुत्रा भवन्ति । अयं द्वात्रिंशदक्षरो मनुस्तन्त्रान्तरे कामबीजसम्पुटितोऽपि । ऋष्यादि पूर्ववत् । कराङ्गन्यासौ षड्दीर्घभाजा कामबीजेन कुर्यात् । ध्यानन्तु—

शङ्खं चक्रं गदां पद्मं धारयन्तं जनार्दनम् ।
अङ्के शयानं देवक्याः सूतिकामन्दिरे शुभे ॥१॥

शेषं प्राग्वत् ।

वर्माक्षिवन्हिजायान्तो विंशार्णोऽयं मनुर्मतः ।
नारदोऽस्य मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द उच्यते ॥२३८॥

श्रीकृष्णो देवता प्रोक्तो निगडच्छेदताह्वयः ।
न्यासध्यानजपार्चादि दशवर्णोक्तवद्भवेत् ।२३६॥

तथा— अथ सम्यक् प्रवक्ष्यामि प्रणवाख्यं महामनुम् ।
पापौघध्वंसनं नानाकामकल्पमहीरुहम् ॥२४०॥

निःश्रेयसकरं नृणां मुनिवृन्दैस्तु सेवितम् ।
केशवो विष्णुतन्द्रे च बिन्दुः प्रोक्तो ध्रुवाभिधः ॥२४१॥

केशवः अ, विष्णुः उ, तन्द्रा म, बिन्दुरनुस्वारः, एतैः प्रणवः सिद्धः ।

तथा—

मन्त्रस्त्रिमात्रिकः प्रोक्तो मुनिर्ज्ञेयः प्रजापतिः ।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥२४२॥

दक्षिणामूर्त्तिः । बीजं शक्तिस्त्वनुक्रमात् । मकारं कीलकमिति । तथा—

ह्रस्वदीर्घस्वरान्तस्थैः षडङ्गानि ध्रुवैर्विदुः ।
षड्भिर्व्याहृतिभिः सम्यक् सत्यहीनाभिरेव वा ॥२४३॥

निर्मलाङ्गश्रियं विष्णुं पीतकौशेयवाससम् ।
सर्वतो भासमानेन तेजसा भास्करप्रभम् ॥२४४॥

किरीटाङ्गदहाराख्यरसनानूपुरादिभिः ।
ग्रैवेयकङ्कणाद्यैश्च भूषणैर्भूषिताङ्गकम् ॥२४५॥

शङ्खाम्बुजगदाचक्रं धारयन्तं कराम्बुजैः ।
कौस्तुभप्रभया दीप्तं मणिकुण्डलमण्डितम् ॥२४६॥
भजेऽहं सर्वसम्पत्यै प्रफुल्लाम्बुजसंस्थितम् ।

वामाधःकरमारभ्य दक्षाधःपर्यन्तमायुधध्यानम् ।

सम्पूज्य वैष्णवं पीठं तत्राऽऽवाह्य यजेद्धरिम् ।
केसरेष्वङ्गपूजा स्याद्दिक्पत्रेषु यजेदिमान् ॥४४७॥

वसुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ।
शान्तिं श्रियं सरस्वत्या रतिं कोणदलेषु च ॥२४८॥

दिक्पत्राग्रेषु चाऽऽत्मानमन्तरात्मानमप्यथ ।
परमाद्यं तथाऽऽत्मान ज्ञानात्मानं च पूजयेत् ॥२४६॥

कोणपत्राग्रगाः पूज्या निवृत्याद्याः पुरोदिताः ।
तद्बाह्ये शक्रमुख्यानां वज्रादीनां च पूजनम् ॥२५०॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—देवीगायत्रीछन्दसे०, हृदये—परमात्मने देवतायै०, गुह्ये—अं बीजाय०, पादयोः—ऊं शक्तये०, नाभौ—मं कीलकाय नम" इति विन्यस्य, मम मोक्षार्थे विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, अ ऊं आं[1] हृदयाय नमः, इ ऊं ईं शिरसे स्वाहा, उं ऊं ऊं शिखायै वषट्, एं ऊं ऐं कवचाय हुं, ओं ऊं औं नेत्राय वौषट्, अं ऊं अः अस्त्राय फडि" ति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानाद्यङ्ग-पूजान्ते दिग्विदिक्पत्रेषु प्राग्वद्वासुदेवादीन् सशक्तिकानभ्यर्च्य लोकपालार्चादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति । तथा—

सन्दीक्षितो विधानेन कोटिसंख्यं जपेन्मनुम् ।
हविषा घृतसिक्तेन दशांशं जुहुयात्ततः ॥२५१॥

गुरुमभ्यर्च्य वित्ताद्यैः प्रणम्य परितोषयेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री कृतकृत्यो न संशयः ॥२५२॥

घृतं हविश्च शालींश्च तिलांश्च समिधो घृतम् ।
क्रमेण जुहुयाद्यस्तु मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ॥२५३॥

अभीष्टसिद्धिस्तस्य स्यादिह लोके परत्र च ।

इत्थं मन्त्रवरं जपार्चनहुतैर्यः सेवते साधकः,
सद्भक्त्या प्रणवं निराकुलमतिर्विध्वस्तपापव्रजः ।
पत्नीपुत्रविशिष्टमित्रसहितः सत्सम्पदा संयुतो,
लोकेऽस्मिन्पुनरप्यवाप्तविमलज्ञानो व्रजेत् सद्गतिम् ॥२५४॥

तथा— अथ वक्ष्ये महामन्त्रमेकाक्षरसमाह्वयम् ।
धनपुत्रकलत्रादिभोगमोक्षफलप्रदम् ॥२५५॥

---

१. ख. नाऽस्ति ।

सिद्धर्षियोगिवृन्दानां पुरारेरपि मोहनम् ।
नरारगसुरस्त्रीणां वश्यकर्मकरं परम् ॥२५६॥

जयाभूशान्तिबिन्द्वात्मा मनुरेकाक्षरस्त्वयम् ।

जया ककारः, भूः लकारः, शान्तिरीकारः, बिन्दुरनुस्वारः, एतैः कामबीजमुद्धृतम् । तथा—

मुनिः सम्मोहनाद्योऽस्य नारदो गदितो बुधैः ॥२५७॥

मन्त्रतन्त्ररहस्यज्ञैः छन्दो गायत्रमीरितम् ।
जगत्सम्मोहनः कृष्णो देवता देववन्दितः ॥२५८॥

षड्दीर्घाढ्येन बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
आसनन्यासपर्यन्तमुक्तरीत्या विधाय तु ॥२५९॥

अङ्गुलीषु न्यसेदङ्गे हस्तयोस्तलयोरपि ।
पञ्चाङ्गुलीषु बाणांश्च पूर्वोक्तांस्तत्क्रमान्न्यसेत् ॥२६०॥

बीजसम्पुटितान्न्यस्येन्मातृकार्णाननन्तरम् ।
षडङ्गानि पुनर्न्यस्य यथास्थानं शरान्न्यसेत् ॥२६१॥

शिरोवदनहृल्लिङ्गपादेषु क्रमतः सुधीः ।
शोषणप्रमुखान् ङेऽन्तान् हृदन्तान्बीजपूर्वकान् ॥२६३॥

जगत्सम्मोहनं कृष्णं ध्यायेत्पश्चात्समाहितः ।
वृन्दारकद्रुमोद्यानविलसत्कल्पशाखिनः ॥२६४॥

मूले रत्नस्थलीराजद्रत्नसिंहासनोपरि ।
उद्यदादित्यसङ्काशविश्वप्राणस्वरूपिणः ॥२६५॥

महतो वैनतेयस्य वामस्कन्धोपरिस्थितम् ।
बन्धूककुसुमाभं तं शम्बरारिसवर्णकम् ॥२६६॥

अरिशङ्खसृणीन्पाशं पुष्पबाणेक्षुकार्मुके ।
पद्मं गदां च हस्ताब्जैरष्टभिर्दधतं निजैः ॥२६७॥

स्निग्धारुणविशालोद्यद्घूर्णिताक्षिद्वयाम्बुजम् ।
रत्नप्रत्युप्तमुकुटं मणिकुण्डलमण्डितम् ॥२६८॥

मुक्ताहाररलसद्रत्नकङ्कणाङ्गदमुद्रिकम् ।
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च रक्तमाल्यैरलङ्कृतम् ॥२६९॥

शोणालेपं स्वर्णकान्तिक्षौमाम्बरविराजितम् ।
आत्मवामोरुपीठस्थां लक्ष्मीमालिङ्गितप्रियाम् ॥२७०॥

वामबाहुधृताम्भोजां क्लिद्यन्मदनमन्दिराम् ।
कामोन्मदमदव्याप्तव्याकुलाङ्गलतोज्ज्वलाम् ॥२७१॥

रम्यमाल्यविलेपाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम् ।
सूक्ष्मशुक्लसुवस्त्राढ्यां कान्तसद्वदनाम्बुजे ॥२७२॥

प्रेरितालोलनीलाभनेत्रषट्पदमण्डिताम् ।
सेक्षुचापेन वामेन बाहुना तरुणीमिमाम् ॥२७३॥

आलिङ्गन्तममुं तज्जपरमानन्दमन्दिरम् ।
सुरासुरभुजङ्गेन्द्रसिद्धगन्धर्वयोषिताम् ॥२७४॥

वृन्दैर्वृन्दं सुभूषाढ्यैः कामबाणातिपीडितैः ।
सर्वलोकगुरुं देवं सत्यानन्दं विचिन्तयेत् ॥२७५॥

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदादि द्वन्द्वक्रमेणाऽधोऽधोऽन्यान्यपि ध्यायेत् ।

विंशाक्षरकृते यन्त्रे प्रत्यहं कृष्णमर्च्चयेत् ।
आदावर्घ्यादिभूषान्तैरुपायैर्यथाविधि ॥२७६॥

पश्चादङ्गानि बाणांश्च न्यासमार्गेण पूजयेत् ।
किरीटं मस्तके श्रोत्रद्वये कुण्डलयुग्मकम् ॥२७७॥

चक्राद्यस्त्राणि हस्तेषु श्रीवत्सं कौस्तुभं ततः ।
कुचोर्द्ध्वदेशतः कण्ठे वनमालां नितम्बके ॥२७८॥

पीताम्बरं महालक्ष्मीं वामाङ्के बीजपूर्विकाम् ।
अभ्यर्च्य कर्णिकामध्ये दिग्विदिक्ष्वङ्गदेवताः ॥२७९॥

तद्बहिश्चतुरो वर्णान् दिक्षु कोणेषु पञ्चमम् ।
यजेदग्रादिपत्रेषु लक्ष्म्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः ॥२८०॥

दिव्याम्बरानुलेपाद्यैर्भूषणैश्च विभूषिताः ।
श्वेतचामरधारिण्यः कामार्त्ताः सस्मिताननाः ॥२८१॥

इन्द्रादीन्पूजयेद्बाह्ये वज्रादीन्यायुधानि च ।
एकाक्षरमनोरित्थं पूजा सम्यक् समीरिता ॥२८२॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि-नारदाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—जगत्सम्मोहनाय कृष्णाय देवतायै०, गुह्ये—कं बीजाय०, पादयोः—ईं शक्तये०, नाभौ—लं कीलकाय नम" इति विन्यस्य, पूर्ववदुक्त्वा, 'क्लां क्लीमि' त्यादि करषडङ्गन्यासं विधाय, करयोः पञ्चाङ्गुलीषु पुरुषोत्तमप्रकरणोक्तान्पञ्चबाणान्विन्यस्य, कामबीजपुटितमातृकां विन्यस्य, पुनर्हृदयादिषु षडङ्गानि विन्यस्य, शिरोवदनहृदयलिङ्गपादेषु पञ्चबाणान् विन्यस्य, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते विंशाक्षरोक्तं यन्त्रं कृत्वा, पीठार्चादि-पुष्पोपचारान्ते देवस्य देहे न्यासस्थानेषु षडङ्गानि पञ्चबाणांश्च सम्पूज्य, "देवस्य शिरसि—किरीटाय नमः, कर्णयोः—कुण्डलाभ्यां०, चक्राय०, शङ्खाय०, अङ्कुशाय०, पुष्पबाणेभ्यः, इक्षुधनुषे०, पद्माय०, गदायै०," इति देवस्य हस्तेषु ध्यानोक्तक्रमेण सम्पूज्य, "वक्षस्थले—श्रीवत्साय०, कौस्तुभाय०, कण्ठे—वनमालायै०, नितम्बे—पीताम्बराय०, वामाङ्के—श्रीं लक्ष्म्यै०, कर्णिकायां प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, केसरेषु देवाग्रादिचतुर्दिक्षु बाणचतुष्टयं, चतुष्कोणेषु पञ्चममिति बाणान्सम्पूज्याऽष्टदलेषु लक्ष्म्याद्याः प्रागुक्ताः सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति । तथा—

एकाक्षरमनुं जप्यान्मासलक्षं जितेन्द्रियः ।
पलाशकुसुमैः स्वादुत्रयाक्तैरर्चितेऽनले ॥२८३॥

हुनेद्दविसहस्राणि तोयैस्तावच्च तर्प्पयेत् ।
आत्माभिषेकं कृत्वाऽथ विप्रानभ्यर्च्य तोषयेत् ॥२८४॥

त्रैलोक्यमोहनं ङेऽन्तं प्रवदेद्विद्महे पदम् ।
चतुर्थ्यन्तं स्मरं ब्रूयाद्धीमहि[1] तदनन्तरम् । २८५॥

तन्नो विष्णुरिति प्रोक्त्वा ततो मन्त्री प्रचोदयात् ।
गायत्र्येषा जपात्पूर्वं जप्या पापविशुद्धये ॥२८६॥

जपपूजाहुताद्यैश्च लक्ष्मीवृद्धिकरी मता ।
शुद्धचर्थमेतया मन्त्री पूजाद्रव्यादि सेचयेत् ॥२८७॥

१. क ख. पुस्तकद्वये तु 'धीमही' इति पाठः ।

अनेन मनुना तोयैर्मोहिनीपुष्पसंयुतैः ।
दिनादावन्वहं मन्त्री तर्प्पयेद्यः शतं हि सः ॥२८८॥

सर्वान्कामानवाप्नोति वाञ्छितान्यत्नवर्जितान् ।
अयुतं सर्पिषा हुत्वा ससम्पातं हुताशने ॥२८९॥

तावज्जप्तं च सम्पातघृतं स्वां भोजयेत्प्रियाम् ।
यस्तस्य वशगा सा स्यात्सोऽपीत्थं वशगो भवेत् ॥२९०॥

अष्टादशलिपिप्रोक्तं वश्यकर्माऽत्र साधयेत् ।
विधिनाऽनेन यो मन्त्रं भजेदेनमनन्यधीः ॥२९१॥

लोकत्रयं वशीकृत्य भोगान्भुक्त्वा मनोरमान् ।
स याति वैष्णवं धाम दाहप्रलयवर्जितम् ॥२९२॥

यथा— अथाऽयमेव कामस्य मनुरेकाक्षरो भवेत् ।

अयमेव प्रोक्तकृष्णैकाक्षरमन्त्र एव ।

सम्मोहनो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता स्मरः ।
अस्याऽङ्गानि स्वबीजेन दीर्घभाजा प्रकल्पयेत् ॥२९३॥

रक्तं रक्तविलेपनं सुरुचिरं रक्ताम्बरं बिभ्रतं,
रत्नोद्यन्मुकुटादिभूषणगणैरादीप्तदेहं प्रभुम् ।
पाशं साङ्कुशमिक्षुचापसुमनोबाणान्वहन्तं करै
रक्ताम्भोजनिकेतनं मनसिजं देवं सदा भावये ॥२९४॥

वामाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये ।

पीठे सम्पूजयेत्कामं मोहिन्यादि सशक्तिके ।
मोहिनी क्षोभिणी चैव त्रासिनी स्तम्भिनी ततः ॥२९५॥

आकर्षिणी द्राविणी चाऽऽह्लादिनी तदनन्तरम् ।
क्लिन्ना स्यात् क्लेदिनी प्रोक्ताः कामपीठस्य शक्तयः ॥२९६॥

आसनं मनुना दद्यान्मूर्त्ति मूलेन कल्पयेत् ।
तत्राऽऽवाह्य स्मरं भक्त्या पूजयेद्विधिनाऽमुना ॥२९७॥

अङ्गानि पूर्वमाराध्य मध्ये दिक्षु शरान्यजेत् ।
उक्तबीजादिकानष्टदलेष्वर्च्या इमाः क्रमात् ॥२९८॥

[1]प्रथमानङ्गरूपाख्याऽप्यनङ्गमदना ततः ।
अनङ्गमन्मथाऽनङ्गकुसुमाह्वा परा मता ॥२९९॥

पञ्चमी च ततः प्रोक्ता ह्यनङ्गकुसुमातुरा ।
अनङ्गशिशिरा षष्ठी भूयश्चाऽनङ्गमेखला ॥३००॥

अनङ्गदीपिका सर्वाः पद्महस्ताः स्वलङ्कृताः ।
स्वरसंख्यदलेष्वर्च्या बहिस्तत्संख्यशक्तयः ॥३०१॥

युवतिः प्रथमा ज्ञेया विप्रलम्भा ततः परा ।
ज्योत्स्ना सुभ्रूस्ततश्चैव पञ्चमी च मदद्रवा ॥३०२॥

सुरता-वारुणीसंज्ञे लोका लीलाऽपरा मते ।
सौदामिनी ततः कामछत्राख्या चन्द्रलेखया ॥३०३॥

शुकी मदनया युक्ता योनिर्मायावती ततः ।
कल्हारहस्ताः कामार्त्तास्तरुण्यः सस्मिताननाः ॥३०४॥

पत्राग्रेषु ततोऽभ्यर्च्याः कामस्य परिचारकाः ।
शोकमोहौ विलासाख्यो विभ्रमो मदनातुरः ॥३०५॥

अपत्रपयुवानौ च चन्दनस्तदनन्तरम् ।
चूतपुष्पाह्वयस्याऽन्ते ज्ञातव्योऽयं रतिप्रियः ॥३०६॥

ग्रीष्माभिधस्तापनाख्य ऊर्जो[2] हेमन्तसंज्ञकः ।
शिशिराख्यो मदः पुष्पबाणेक्षुजधनुर्द्धराः ॥३०७॥

पृष्ठतोऽर्पिततूणीराः शोणाः स्त्रीसक्तमानसाः ।
तद्बहिः पूजयेदष्टौ दिक्क्रमेण रतिप्रियान् ॥३०८॥

परभृतसारसाख्यौ तु शुको मेघस्ततः परः ।
अपाङ्गो भ्रूविलासश्च हावो भावो रतिप्रियाः ॥३०९॥

भूगृहस्य च कोणेषु चतस्रः पूजयेदिमाः ।
माधव्याख्या मालती च हरिणाक्षी मदोत्कटा ॥३१०॥

श्वेतचामरसद्धस्ताः श्यामा भूषितविग्रहाः ।
इन्द्रादींश्च ततो बाह्ये वज्रादीन्यपि पूजयेत् ॥३११॥

---

१. ख. प्रथमानन्दारूपाख्या० । २. क. दुर्लो ।

एवमाराधयेद्यस्तु गन्धपुष्पादिभिः स्मरम् ।
सौभाग्यमतुलं कामान्महालक्ष्मीं च विन्दति ॥३१२॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते "शिरसि—सम्मोहनाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदये—श्रीकामाय देवतायै०," प्राग्वद्बीजादिकं विन्यस्य, विनियोगं स्मृत्वा, 'क्लां क्लीमि'त्यादि करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानादिपरतत्वार्चान्तेऽष्टदलकेसरेषु—"मोहिन्यै नमः, क्षोभिण्यै०, स्तम्भिन्यै०, आकर्षिण्यै०, द्राविण्यै०, आल्हादिन्यै०, क्लिन्नायै०, क्लेदिन्यै नम" इति स्वाग्रादिमध्यान्तं सम्पूज्य, 'क्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम' इति समस्तं पीठं सम्पूज्याऽऽवाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि कर्णिकायां मध्ये चतुर्दिक्षु च बाणान्सम्पूज्याऽष्टदलेषु "अनङ्गरूपायै०, अनङ्गमदनायै०, अनङ्गमन्मथायै०, अनङ्गकुसुमायै०, अनङ्गकुसुमातुरायै०, अनङ्गशिशिरायै०, अनङ्गमेखलायै०, अनङ्गदीपिकायै नम" इति सम्पूज्य, बहिः षोडशदलेषु "युवत्यै०, विप्रलम्भायै०, ज्योत्स्नायै०, सुभ्रुवे०, मदद्रवायै०, सुरतायै०, वारुण्यै०, लोकायै०, लीलायै०, सौदामिन्यै०, कामछत्रायै०, चन्द्रलेखायै०, शुक्यै०, मदनायै०, योन्यै०, मायावत्यै०" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, दलाग्रेषु[1] "शोकाय०, मोहाय०, विलासाय०, विभ्रमाय०, मदनातुराय०, अपत्रपाय०, यूने०, चन्दनाय०, चूतपुष्पाय०, रतिप्रियाय०, ग्रीष्माय०, तापनाय०, ऊर्जाय०, हेमन्ताय०, शिशिराय०, मदाय नमः" इति सम्पूज्य, चतुरश्रस्याऽष्टदिक्षु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन "परभृते०, साराय०, शुकाय०, मेघाय०, अपाङ्गाय०, भ्रूविलासाय०, हावाय०, भावाय०, ततः चतुरश्रस्य चतुष्कोणेष्वाग्नेयादि—माधव्यै०, मालत्यै०, हरिणाक्ष्यै०, मदोत्कटायै० नम" इति सम्पूज्य लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति । तथा—

सञ्चिन्त्यैवं जपेन्मन्त्रं राशिलक्षं विधानतः ।
तद्दशांशं त्रिमध्वक्तैः किंशुकप्रसवैर्हुनेत् ॥३१३॥

तर्प्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ।
ततोऽभ्यर्च्य गुरुं वित्तैः प्रणम्य परितोषयेत् ॥३१४॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ।
अशोककुसुमैः स्वादुत्रयार्द्रैस्त्रिदिनं हुनेत् ॥३१५॥

---

१ ख. तद्दलाग्रेषु ।

अष्टाधिकं सहस्रं यः सर्वेषां स प्रियो भवेत् ।
गोघृतेन ससम्पातमष्टोत्तरशतं हुनेत् ॥३१६॥

सम्यक्सम्पूजिते वन्हौ मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
सम्पातसर्पिषा तेन नारीं स्वाम्भोजयेत्प्रियाम् ॥३१७॥

आज्ञानुवर्त्तिनी साऽस्य भवेज्जन्मान्तरेऽपि च ।
दध्यक्तलाजहोमेन प्रत्यहं मण्डलावधि ॥३१८॥
वाञ्छितां लभते मन्त्री कन्यां साऽपि प्रियं प्रति ।

षट्कोणे मदनं ससाध्यमथ तत्कोणेषु चाऽङ्गं बहि-
र्गायत्र्या गुणशो विभज्य विलिखेद्वर्णान् दलेष्वष्टसु ।
तेषामग्रगतांश्च तर्कसुमितान्मालाणुवर्णांस्तथा,
भूगेहाश्रिषु मन्मथेन लसितं यन्त्रं शुभं मान्मथम् ॥३१९॥

पूजितं धारितं ह्येतल्लोकत्रयवशीकरम् ।

अस्याऽर्थः—षट्कोणगर्भमष्टदलकमलं कृत्वा, षट्कोणमध्ये ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, कोणेषु षडङ्गमन्त्रानष्टदलेषु पूर्वोक्तकामगायत्र्या वर्णत्रयं वर्णत्रयं[1] प्रतिदलं विलिख्य, दलाग्रेषु पूर्वोक्तकाममालामन्त्रस्य षट् षड् वर्णान् विभज्य विलिख्य, बहिश्चतुरश्रकोणेषु कामबीजं लिखेदेतदुक्तफलदम् । तथा—

साध्याख्यार्णपुटीकृतैः सुमदनैः कामं लिखेद्वेष्टितं,
मध्ये तारविसर्गपक्षलिपिभिर्ऋद्धया सधात्वर्णया ।
षष्ट्यैकादशखड्गिभिश्च लसितैरष्टच्छदैरम्बुजं,
दिक्शूलाढ्यमिदं मनोहरतरे ताम्बूलपत्रे कृतम् ॥३२०॥

यन्त्रमेतद्विधानेन पूजितं स्थापितानिलम् ।
मूलमन्त्रेण सञ्जप्तं नारीं यां खादयेन्निशि ॥३२१॥
मन्त्री सा तद्वशे तिष्ठेद्यावज्जीवं न संशयः ।

अयमर्थः—अष्टदलकमलं सुगन्धद्रव्यैर्नागवल्लीदले कृत्वा, तत्कर्णिकायां साध्यनामाक्षरसम्पुटितैः कामबीजैर्वेष्टितं कामबीज विलिख्य, पूर्वादिदलेषु 'ॐ नः आ ख ऋ ऊ ए व' इत्यष्टौ वर्णानेकैकशो विलिख्य दिग्दलाग्रेषु त्रिशूलं कुर्यादिति ।

---

१. ख. पुस्तकेऽस्य पदस्य द्विरुक्तिर्नैवाऽस्ति ।

केरलीये यन्त्रसारे—

मदनभासितमध्यमथेन्द्रियच्छदविराजितपञ्चमनोभवम् ।
स्मरशरैर्लिपिभिश्च समावृतं कुगृहकोणविराजितमन्मथम् ॥३२२॥

लिखतु पञ्चमनोभवयन्त्रमि-
त्युदितमेतदशेषसमृद्धिदम् ।
कनकनिर्मितपट्टतले ततः,
शुभतरे दिवसे विधृतं द्रुतम् ॥३२३॥

सकलमानवसिद्धसुराङ्गणा-
हृदयरञ्जनमीक्षितसिद्धिदम् ।
रुचकपूर्वविभूषणमध्यगं,
विदधती वनिताऽप्यखिलान्नरान् ॥३२४॥

निजवशे प्रविधाय रमां परां,
समधिगम्य सुतैः सह मोदते ।
इति विलिख्य च कुङ्कुमकर्दमे,
तदनुलिप्ततनोः सकलं जगत् ॥३२५॥

वशमुपैति निरीक्षणमात्रतः
किमुत सान्त्वनहासनसङ्गमैः ।

अस्यार्थः—पञ्चदलकमलकर्णिकायां ससाध्यं कामबीजं विलिख्य, तद्दलेषु 'ऐं ह्रीं क्लीं ब्लूं स्त्रीं' इति पञ्चकामन्त्रान् संलिख्य, बहिर्वृत्तत्रयान्तरालयोरभ्यन्तरवीथ्यां पूर्वोक्तबाणबीजैरावेष्ट्य, बाह्यान्तराले मातृकयाऽऽवेष्ट्य, बहिश्चतुरश्रकोणेषु कामबीजं प्रतिकोणं लिखेदेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवतीति ।

॥ **अथ वैष्णवस्तोत्राणि लिख्यन्ते** ॥

अस्य श्रीगोपालस्तवस्य 'शि०—नारदाय ऋ०, मु०—अनुष्टुप्छन्द०, हृ०—गोपालाय दे०,' मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोगः । करसम्पुटे ।

नवीननीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
वल्लवीवदनाम्भोजमधुपानमधुव्रतम् ॥१॥३२६

स्फुरद्बर्हिच्छदोन्नद्धनीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
कदम्बकुसुमोद्भासिवनमालाविभूषितम् ॥२॥३२७

गण्डमण्डलसंसर्गलसत्काञ्चनकुण्डलम् ।
स्फुरन्मुक्ताफलोदारहारोद्योतितवक्षसम् ॥३॥३२८

हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटोज्ज्वलविग्रहम् ।
मन्दमारुतसंक्षोभचलिताम्बरसञ्चितम् ॥४॥३२९

रुचिरौष्ठपुटन्यस्तवंशीमधुरनिस्वनैः ।
ललद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥५॥३३०

गोगोपगोपिकाभिश्च सेव्यमानः[1] परस्परम् ।
क्षोभयन्तं[2] मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षितैः ॥६॥३३१

यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥७॥३३२

प्रभिन्नाञ्जनकालिन्दीजलकेलिकलोत्सुकम् ।
योधयन्तं क्वचिद् गोपान् व्याहरन्तं गवाङ्गणम् ॥८॥३३३

कालिन्दीजलसंसर्गशीतलानिलकम्पिते ।
कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥९॥३३४

रत्नभूधरसंलग्नरत्नासनपरिग्रहम् ।
कल्पपादपमध्यस्थरत्नमण्डपिकागतम् ॥१०॥३३५

वसन्तकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखे ।
गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासनवोत्सवम्[3] ॥११॥३३६

सव्यहस्ततलन्यस्तगिरिवर्यातपत्रकम् ।
[4]खण्डिताखण्डलोन्मुक्तमुक्तासारघनाघनम् ॥१२॥३३७

वेणुवाद्यमहोल्लासकृतहुङ्कृतनिस्वनैः ।
सोत्सवैरुन्मुखैः शश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥१३॥३३८

कृष्णमेवाऽनुगायद्भिस्तच्चेष्टावशवर्तिभिः ।
दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरभिशोभितम् ॥१४॥३३९

---

१. ख. सेव्यमानैः । २. ख. क्षोजयन्तं । ३. ख. रासनसोत्सवम् । ४. ख खण्डिताखण्डिलोन्मुक्त० ।

नारदादिमुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परस्परम् ॥१५॥३४०

य एवं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।
त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१६॥३४१

राजवल्लभतामेति भवेत्सर्वजनप्रियः ।
अचलां श्रियमाप्नोति स वाङ्मी जायते ध्रुवम् ॥१७॥३४२

इति गौतमीयतन्त्रे गोपालस्तवराजः समाप्तः ॥१॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच—

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ।
अत्राऽन्तरं न पश्यामि तेन ते द्विषतः शिवम् ॥१॥३४३

अनादिमध्यनिधनमेतदक्षयमव्ययम् ।
तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरिहरात्मकम् ॥२॥३४४

यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः ।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥३॥३४५

वरदा लोककर्त्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः ।
अर्द्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः ॥४॥३४६

यथा जले जलं क्षिप्तं जलमेव तु तद्भवेत् ।
तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत् ॥५॥३४७

अग्निरग्निं प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत् ।
तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत् ॥६॥३४८

रुद्रमग्निमयं विद्यात् विष्णुः सोमात्मकः स्मृतः ।
अग्नीषोमात्मकं चैव जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥७॥३४९॥

कर्त्तारौ चाऽपि हर्त्तारौ स्थावरस्य चरस्य च ।
जगतः शुभकर्त्तारौ प्रभू विष्णुमहेश्वरौ ॥८॥३५०

कर्त्तुः कारणकर्त्तारौ कर्त्तुः कारणकारकौ ।
भूतभव्यभवौ देवौ नारायणमहेश्वरौ ॥९॥३५१

एते चैव प्रहर्षन्ति भान्ति पान्ति सृजन्ति च ।
एतच्च परमं गुह्यं कथितं ते पितामह ॥१०॥३५२॥

यश्चैनं पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयान्नरः ।
प्राप्नोति परमं स्थानं विष्णुरुद्रप्रसादजम् ॥११॥३५३

देवौ हरिहरौ तौ तौ ब्रह्मणा सह सङ्गतौ ।
एतौ च परमौ देवौ जगतः प्रभवाव्ययौ ॥१२॥३५४

रुद्रश्च परमो विष्णुर्विष्णुश्च परमः शिवः ।
एक एव द्विधा भूत्वा लोके चरति नित्यशः ॥१३॥३५५

न विना शङ्करं विष्णुर्न विना केशवं शिवः ।
तस्मादेकत्र सञ्जातौ रुद्रोपेन्द्रौ ततः पुरा ॥१४॥३५६

ॐ नमो रुद्राय कृष्णाय नमः संहारकारिणे ।
नमः षडर्द्धनेत्राय सिद्धनेत्राय वै नमः ॥१५॥३५७

नमः कुमारगुरवे प्रद्युम्नगुरवे नमः ।
नमो धरणिधराय[1] गङ्गाधराय वै नमः ॥१६॥३५८

नमो मयूरपिच्छाय केयूरधारिणे नमः ।
नमः कपालमालाय वनमालाय वै नमः ॥१७॥३५९

नमस्त्रिशूलहस्ताय चक्रहस्ताय वै नमः ।
नमः कनकदण्डाय नमस्ते ब्रह्मदण्डिने ॥१८॥३६०

नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे ।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः ॥१९॥३६१

नमः खट्वाङ्गधाराय नमो मुशलधारिणे
नमो भस्माङ्गरागाय नमः कृष्णाङ्गधारिणे ॥२०॥३६२

नमः श्मशानवासाय नमोऽस्त्वाश्रमवासिने ।
नमो वृषभवाहाय नमो गरुडवाहिने ॥२१॥३६३

---

१ ख. धरणीधराय ।

नमोऽस्त्वनेकरूपाय बहुरूपाय वै नमः ।
नमः प्रलयकर्त्रे च नमः सागरशायिने ॥२२॥३६४

नमः सुररिपुघ्नाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ।
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमो भैरवरूपिणे ॥२३॥३६५

विरूपाक्षाय देवाय नमः सौम्येक्षणाय च ।
दक्षयज्ञविनाशाय बलेर्नियमनाय च ॥२४॥३६६

नमः पर्वतवासाय नमः सागरशायिने ।
नमोऽस्तु नरकघ्नाय नमः कामाङ्गनाशिने ॥२५॥३६७

नमस्त्वन्धकनाशाय नमः कैटभनाशिने ।
नमः सहस्रहस्ताय नमोऽसंख्येयबाहवे ॥२६॥३६८

नमः सहस्रशीर्षाय बहुशीर्षाय वै नमः ।
दामोदराय देवाय मौञ्जमेखलये नमः ॥२७॥३६९

नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते भगवन् शिव ।
नमस्ते भगवन्देव नमस्ते देवपूजित ॥२८॥३७०

नमस्ते सामभिर्गीत नमस्ते यजुभिः सह ।
नमस्ते सुरशत्रुघ्न नमस्ते सुरपूजित ॥२९॥३७१

नमस्ते कर्मभिर्गीत नमोऽमितपराक्रम ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु स्वर्णाकेश नमोऽस्तु ते ॥३०॥३७२

इमं स्तवं यो रुद्रस्य विष्णोश्चैव महात्मनः ।
समेत्य ऋषिभिः सर्वैः स्तुतौ तौ तु महात्मभिः ॥३१॥३७३

व्यासेन वेदविदुषा नारदेन च धीमता ।
भारद्वाजेन गार्ग्येण विश्वामित्रेण वै तदा ॥३२॥३७४

अगस्त्येन पुलस्त्येन[1] धौम्येन च महात्मभिः ।
यश्चैनं पठते नित्यं स्तोत्रं हरिहरात्मकम् ॥३३॥३७५

अरोगी बलवांश्चैव जायते नाऽत्र संशयः ।
श्रियश्च लभते नित्यं कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ॥३४॥३७६

---

१. क. पुलस्तेन ।

गुर्विणी श्रृणुते या तु वरं पुत्रं प्रसूयते ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूतानि च विनायकाः ॥३५॥३७७

भयं तत्र न कुर्वन्ति यत्राऽयं पठ्यते स्तवः ।

इति श्रीहरिवंशे हरिहरात्मकस्तोत्रं समाप्तम् ॥१॥

॥ वेदनिधिरुवाच ॥

महर्षेऽनुगृहीतोऽस्मि कथया पावनीकृतः ।
अनया विष्णुसङ्गिन्या गङ्गयेवाऽहमद्य वै ॥१॥३७८

किं तत्स्तोत्रं तदाख्याहि प्रसन्नो येन माधवः ।
तस्य स्तोत्रस्य विप्रर्षे महत्कौतूहलं मम ॥२॥३७९

त्वत्प्रसादादहं विप्र मन्ये प्राप्तमनोरथः ।
महतां सङ्गतिः कस्य महत्त्वाय न कल्पते ॥३॥३८०

॥ लोमश उवाच ॥

कथयामि रहस्यं ते तज्जप्यं स्तोत्रमुत्तमम् ।
प्राग्गृहीतं सुपर्णेन गरुडान्मम चाऽऽगतम् ॥४॥३८१

अध्यात्मगर्भसार तन्महोदयकरं शुभम् ।
सर्वपापहरं विप्र स्वात्मज्ञानकरं परम् ॥५॥३८२

ॐ नमो वासुदेवाय नमो विश्वाय चक्रिणे ।
भक्तप्रियाय कृष्णाय जगन्नाथाय तेजसे ॥६॥३८३

स्तोता स्तुत्यः स्तुतिः सर्वं जगद्विष्णुमयं यदा ।
तदा संस्तूयते केन भक्तिर्भेदकरी नृणाम् ॥७॥३८४

यस्य देवस्य निःश्वासा वेदाः साङ्गाः ससूत्रकाः ।
का स्तुतिः प्रमुदे तस्य भक्त्याऽहं मुखरोऽभवम् ॥८॥३८५

वेदो न वक्ति यं साक्षान्न च वाग्वक्ति नो मनः ।
मद्विधस्तं कथ स्तौति भक्तिमान् वा न किं वदेत् ॥९॥३८६

ब्रह्मादिर्ब्रह्म विष्णो त्वं त्वमेव ब्रह्मणो वपुः ।
स्रष्टा ब्रह्मनिदानं च शुद्धं ब्रह्मत्वमेव च ॥१०॥३८७

कायिकायियुगं खादि भित्वा स्पृशति कायिनम् ।
कायदोषैरनाघ्रातस्तथा त्वं भासि योगिनाम् ॥११॥३८८

देहभावेन जागर्त्ति न निद्राति निजात्मनि ।
सुखसन्दोहबुद्धिर्या सा त्वं विष्णोर्न[1] संशयः ॥१२॥३८९

महदादि द्विधा भावास्तथा वैकारिका गुणाः ।
त्वमेव नाथ तत्सर्वं नान्यत्त्वं[2] मूढकल्पना ॥१३॥३९०

केशकेशवरूपाभिः कल्पनाऽतिसृतिस्तथा ।
त्वमेकः कल्पसे ब्रह्मन् पुत्रादिभिः पुमानिव[3] ॥१४॥ ९१

विदोषं विगुणं चैकं चिन्मूर्त्तिमखिलं जगत् ।
कवीनां भाति यद्रूपं तं विष्णुं नौमि निर्गुणम् ॥१५॥३९२

यस्मिन् ज्ञाते न कुर्वन्ति कर्म चाऽतिश्रुतीरितम् ।
निनीषणं जगन्मित्रं शुद्धं ब्रह्म नमामि[4] तम् ॥१६॥३९३

स्वं स्वेतरं च सन्मात्रं यत्प्रबोधादुदासते ।
योगिनः सर्वभूतेषु सद्रूपं नौमि तं हरिम् ॥१७॥३९४

ब्रह्माऽहमिति गायन्ति यद्ज्ञात्वैकवरा नराः ।
पश्यन्तो हि त्वया तुल्यं देयं तं नौमि माधवम् ॥१८॥३९५

मायया यो विचित्राभस्तथाऽहं ममता नृणाम् ।
सद्यो नश्यति[5] पापौघो नमस्तस्मै चिदात्मने ॥१९॥३९६

महानलोल्लसज्ज्वालज्वलल्लोकेषु सर्वदा ।
यन्नामाम्भोधरच्छायां प्रविष्टो ना न दह्यते ॥२०॥३९७

यस्य स्मरणमात्रेण न मोहो नैव दुर्गतिः ।
न रोगो नैव दुःखानि तमनन्तं नमाम्यहम् ॥२१॥३९८

कामयन्ते प्रजा नैवं ह्येषणाभ्यः समुत्थिताः ।
लोकमात्मैव पश्यन्तो यं बुद्ध्वैकवरा नराः ॥२२॥३९९

१. ख. विष्णो न । २. ख. नानात्वं । ३. क. पुमानि च । ४. क. न्मामि । ५. क. नस्यति ।

शब्दार्थः संविदर्थश्च विष्णोर्नाऽस्ति परो यदि ।
सत्येन तेन संसारो मा मा स्पृशतु माधव ।२३॥४००

नारायणो जगद्व्यापी यदि देवादिसम्मतः ।
सत्येन तेन निर्विघ्ना विष्णोर्भक्तिर्ममाऽस्तु वै ॥२४॥४०१

योनिबीजं विना बीजं बीजं यो बीजभावितम् ।
स विष्णुर्भवबीजं मे शितविद्यासिना द्यतु ॥२५॥४०२

त्रितनुर्नटवद्यस्तु सृष्टिस्थितिलयेषु च ।
गुणैर्भवति कार्येषु स प्रसीदतु मे हरिः ॥२६॥४०३

दशधेहाऽवतीर्णो यो धर्मत्राणाय केवलम् ।
अभ्यर्थितः सुरैः सर्वैः स प्रसीदतु मे हरिः ॥२७॥४०४

अनादिस्तम्बपर्यन्तं प्राणिहृन्मन्दिरेऽनलः ।
एको वसति यो देवः स प्रसीदतु मे हरिः ॥२८॥४०५

ईक्षाञ्चक्रे सदैवाऽग्रे य एकः स्याम्बहुस्तथा ।
प्रविष्टो देवताः स्रष्टा स प्रसीदतु मे हरिः ।२९॥४०६

हृत्खगः खसमः खादिः खातीतः खक्रियः खगः ।
खब्रह्म खादिभुक् खान्तः खमूर्त्तिः खमखाश्रयः ॥३०॥४०७

यद्भासयन्मुदा यस्य सत्तया स त्यजेद्यमो ।
जाड्यं दुःखमसत्त्वं च स भवानेव तन्मयः ॥३१॥४०८

त्वत्सृष्टं मोदते विश्वं त्वत्त्यक्तमशुचिर्भवेत् ।
तत्सङ्गतोऽप्यसङ्गस्त्वं विकारस्तेन तेन हि ॥३२॥४०९

भूतयोगजचैतन्यं चार्वाकास्त्वामुपासते ।
सौगताः स्तुवते तर्कैस्त्वां बुद्धिं क्षणभङ्गुराम् ॥३३॥४१०

शरीरपरिमाणं त्वां मन्यन्ते जिनदेवताः ।
ध्यायन्ति पुरुषं सांख्यास्त्वामेव प्रकृतेः परम् ॥३४॥४११

जन्मादिरहितं पूर्णं चित्सदानन्दलक्षणम् ।
त्वामौपनिषदा ब्रह्म चिन्तयन्ति परात्परम् ॥३५॥४१२

१. ख. मा मां ।

खादिभूतानि देहश्च मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
विद्याविद्ये त्वमेवाऽत्र नान्यत्त्वत्तोऽस्ति किञ्चन ।।३६।।४१३

प्रभवः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं मम ।
त्वमग्निस्त्वं हविस्त्वं स्रुग् होता मन्त्रक्रियाफलम् ।।३७।।४१४

त्वमस्ति नाऽस्ति वैकुण्ठ त्वामहं शरणं गतः ।
त्वं कर्मफलदाता च दीक्षितानां क्रियाक्षये ।।३८।।४१५

त्वं हेतुः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं मम ।
युवतीनां यथा यूनि यूनां च युवतौ यथा ।।३९।।४१६
मनोऽभिरमते तद्वन्मनो मे रमतां त्वयि ।

अपि पापं दुराचारं नरं त्वत्प्रणतं हरे ।
नेक्षन्ते किङ्करा यामा उलूकास्तपनं यथा ।।४०।।४१७

तापत्रयमहौघश्च तावत्पीडयते जनः ।
यावच्छ्रयति नो नाथ भक्त्या त्वत्पादपङ्कजम् ।।।४१।।४१८

यन्न स्पृशन्ति गुणजातिशरीरधर्मा,
यन्न स्पृशन्ति जगतः खमिवेन्द्रियाणि ।
यं च स्पृशन्ति मुनयो गतसङ्गमोहा-
स्तस्मै नमो भगवते हरये प्रतीचे ।।४२।।४१९

यद्ध्यानसंवननचूर्णवशीकृतान्तै[१]-
रैश्वर्यचारुगुणिनी सुखमोक्षलक्ष्मीः ।
आलिङ्ग्य शेरत इहात्मसुखैकभाज-
स्तस्मै नमोऽस्तु हरये सुखसेविताय ।।४३।।४२०

जन्मादिभावविकृते विरहस्वभावो,
यस्मिन्नयं परिचिनोति षडूर्मिवर्गः ।
यन्ताडयन्ति न सदा मदनादिदोषा-
स्तं वासुदेवममलं प्रणतोऽस्मि सार्द्रम्[२] ।।४४।।४२१

---

१. क. ०कृतान्त । २. क. सार्द्धम् ।

स्थूलं विलप्य करणे करणं निदानं,
तत्कारणं करणकारणवर्जितं च ।
इत्थं विलप्य यतिनः प्रविशन्ति यत्र,
तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥४५॥४२२

यद्ज्ञानसङ्गतमलं विजहात्यविद्यां,
यद्ज्ञानबीजपतितं जगदेति दाहम् ।
यद्ज्ञानमुल्लसदसिर्द्यति संशयारिं,
तंत्वां हरिं विशदबोधघनं नमामि ॥४६॥४२३

चराचराणि सर्वाणि भूतान्यस्य हरेः पुनः ।
यथाऽत्र तेन सत्येन पुरस्तिष्ठतु मे हरिः ॥४७॥४२४

यथा नारायणः सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तेन सत्येन मे देवः स्वं दर्शयतु केशवः ॥४८॥४२५

भक्तिर्यथा हरौ मेऽस्ति तद्वरिष्ठगुरौ यदि ।
ममाऽस्तु तेन सत्येन स्वं दर्शयतु मे हरिः ॥४९॥४२६

तथेदं शपथैः सत्यैर्भक्ति तस्यानुचिन्तयन् ।
दर्शयामास चाऽऽत्मानं सम्प्रीतः पुरुषोत्तमः ॥५०॥४२७

ततो दत्वा वरं तस्य पूरयित्वा मनोरथम् ।
जगाम कमलाकान्तः स्तुत्या विप्रेण तोषितः ॥५१॥४२८

कृतकृत्यो द्विजः सोऽपि वासुदेवपरायणः ।
शिष्यैः सार्द्धं जपन्स्तोत्रं तस्मिन्नाऽऽस्ते तपोवने ॥५२॥४२९

कीर्त्तयेद्य इमं स्तोत्रं शृणुयाद्योऽपि मानवः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥५३॥४३०

आत्मविद्याप्रबोधं च लभते ब्राह्मणः सदा ।
न पापे जायते बुद्धिर्नैव पश्यत्यमङ्गलम् ॥५४॥४३१

बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियिकं तथा ।
नृणां भवति सर्वेषामस्य स्तोत्रस्य कीर्त्तनात् ॥५५॥४३२

विचार्यार्थं जपेद्यस्तु श्रद्धया तत्परो नरः ।
स विधूयेह पापानि लभते वैष्णवं पदम् ॥५६॥४३३

वाञ्छितान् लभते कामान् पुत्रान् प्राप्नोत्यनुत्तमान् ।
दीर्घमायुर्बलं वीर्यं लभते सर्वदा पठन् ॥५७॥४३४

तिलपात्रसहस्रेण गोसहस्रेण यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति य इमां कीर्त्तयेत् स्तुतिम् ॥५८॥४३५

धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यं कामयते तदा ।
अचिरात्तमवाप्नोति स्तोत्रेणाऽनेन मानवः ॥५९॥४३६

आचारे विनये धर्मे ज्ञाने तपसि सन्नये ।
नृणां भवति नित्यं धीरिमां सङ्गृणतां स्तुतिम् ॥६०॥४३७

महापातकयुक्तोऽपि तथा युक्तोऽपपातकैः ।
सद्यो भवति शुद्धात्मा स्तोत्रस्य पठनात् सकृत् ॥६१॥४३८

प्रज्ञा लक्ष्मीर्यशः कीर्तिर्ज्ञानं धर्मविवर्द्धनम् ।
दुष्टग्रहोपशमनं सर्वाशुभविनाशनम् ॥६२॥४३९

सर्वव्याधिहरं पथ्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ।
दुर्गतेस्तरणं स्तोत्रं पठितव्यं जितात्मभिः ॥६३॥४४०

नक्षत्रग्रहपीडासु राजदैवभयेषु च ।
अग्निचौरनिपातेषु सद्यः सङ्कीर्त्तयेदिदम् ॥६४॥४४१

सिंहव्याघ्रभयं नाऽस्ति नाऽस्ति चौरभयं तथा ।
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो राक्षसेभ्यस्तथैव च ॥६५॥४४२

पूतनाजम्भकेभ्यश्च विघ्नेभ्यश्चैव सर्वशः ।
नृणां क्वचिद्भयं नास्ति स्तवे ह्यस्मिन् प्रकीर्त्तिते ॥६६॥४४३

वासुदेवस्य पूजां यः कृत्वा स्तोत्रमुदीरयेत् ।
एकादश्युपवासेन द्वादश्यां पठते यदि ॥६७॥४४४

लिप्यते पातकैर्नाऽसौ पद्मपत्रमिवाऽम्भसा ।
गङ्गायां पुण्यतीर्थेषु सेवनैर्याति यां गतिम् ॥६८॥४४५

तां गतिं समवाप्नोति पठन् पुण्यामिमां स्तुतिम् ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाऽपि यः पठेत् ॥६९॥४४६

सर्वदा सर्वकालेषु सोऽक्षयं सुखमश्नुते ।
चतुर्णां साङ्गवेदानां त्रिरावृत्या च यत्फलम् ॥७०॥४४७

तत्फलं लभते स्तोत्रमधीयानः सकृन्नरः ।
अक्षयं धनमाप्नोति स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥७१॥४४८

पूजां विन्दति लोकेऽस्मिन् श्रद्धया संस्मरन् हरिम् ।
सर्वदा सम्पदा युक्तो विपदं नैव पश्यति ॥७२॥४४९

गोभिर्न हीयते स्तोत्रं नित्यं यः कीर्त्तयेत्स्तवम् ।
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ॥७३॥४५०

सद्यो नश्यति भक्तानामेनां सङ्गृणतां स्तुतिम् ।
प्रातरुत्थाय योऽधीते शुचिर्विष्णुपरायणः ॥७४॥४५१

अक्षयं लभते सौख्यं इह लोके परत्र च ।
देवद्युतिप्रणीतं वै विष्णुप्रीतिकरं शिवम् ॥७५॥४५२

विष्णुप्रसादजननं विष्णुदर्शनकारकम् ।
योगसारमिदं नाम स्तोत्रं परमपावनम् ॥७६॥४५३

यः पठेत् सततं भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ।
इति ते कथितं स्तोत्रं गुह्यं पापप्रणाशनम् ॥७७॥४५४

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि पिशाचस्य विमोक्षणम् ॥७८॥[1]

॥ इति योगसारस्तोत्रं समाप्तम् ॥

नमस्कृत्य गणाधीशं सर्वविघ्ननिवारणम् ।
नृसिंहकवचं वक्ष्ये प्रह्लादेनोदितं पुरा ॥१॥४५५

सर्वरक्षाकरं नृणां सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सर्वसम्पत्करं चैव स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥२॥४५६

---

१. ख. पुस्तके नाऽस्तीयं द्विपदी ।

ध्यात्वा नृसिंहं देवेशं स्वर्णसिंहासने स्थितम् ।
विवृतास्यं त्रिनयनं शरादिन्दुसमप्रभम् ॥३॥४५७

लक्ष्म्याऽऽलिङ्गितवामाङ्गं विभूतिभिरुपासितम् ।
चतुर्भुजं कोमलाङ्गं मणिकुण्डलशोभितम् ॥४॥४५८

हारोपशोभितोरस्कं रत्नकेयूरमुद्रितम् ।
तप्तकाञ्चनसङ्काशं पीतनिर्मलवाससम् ॥५॥४५९

इन्द्रादिसुरमौलिस्थबाहुमाणिक्यतेजसा ।
विराजितपदद्वन्द्वं शङ्खचक्रादिहेतिभिः ॥६॥३६०

गरुत्मता च विनयात्स्तूयमानं¹ मुदाऽन्वितम् ।
सुहृत्कमलसङ्काशं कृत्वा तु कवच पठेत् ॥७॥४६१

नृसिंहो मे शिरः पातु लोकरक्षार्थसम्भवः ।
सर्वगोपिस्तम्भवासो भालं मे रक्षताद्वली ॥८॥४६२

नृसिंहो मे दृशौ पातु सोमसूर्याग्निलोचनः ।
श्रुतीर्मे पातु नृहरिः मुनिवर्यस्तुतिप्रियः ॥९॥४६३

नासां च मे सिंहनासौ मुखं लक्ष्मीमुखप्रियः ।
सर्वविद्योदधिः पातु नृसिंहो रसनां मम ॥१०॥४६४

नृसिंहः पातु मे कण्ठं सदा प्रह्लादवन्दितः ।
वस्त्रं पात्विन्दुवदनः स्कन्धौ भूभारनाशकृत् ॥११॥४६५

दिव्यास्त्रशोभितभुजो नृसिंहः पातु मे भुजौ ।
करौ मे देव वरदो नृसिंहः पातु सर्वतः ॥१२॥४६६

हृदयं योगिहृत्पद्मनिवासः पातु मे हरिः ।
मध्यं पातु हिरण्याक्षो रक्षःकुक्षिविदारणः ॥१३॥४६७

नाभिं मे पातु नृहरिः स्वनाभिब्रह्मसंस्थितः ।
ब्रह्माण्डकोटयः कट्यां यस्याऽसौ पातु मे कटिम् ॥१४॥४६८

---

१. ख. विणयात्° ।

गुह्यं मे पातु गुह्यानां मन्त्राणां गुह्यरूपधृक् ।
ऊरू मनोजवः पातु जानुनी पररूपधृक् ॥१५॥ ४६९

जङ्घे पातु सदा भारहारकोऽसौ नृकेसरी ।
सुरराज्यप्रदः पातु पादौ मे नृहरीश्वरः ॥१६॥ ४७०

सहस्रशीर्षः[1] पुरुषः पातु सर्वतस्तनुम् ।
महोग्रः पूर्वतः पातु महावीरोऽग्निभागतः ॥१७॥ ४७१

महाविष्णुर्दक्षिणे महाज्वाली च नैर्ऋते ।
विपश्चित्पातु सर्वेशः पश्चिमे सर्वतोमुखः ॥१८॥ ४७२

नृसिंहः पातु वायव्ये सौम्ये भीषणविग्रहः ।
ईशाने पातु भद्रो मां सर्वमङ्गलदायकः ॥१९॥ ४७३

संसारभयतः पातु मृत्युमृत्युर्नृकेसरी ।
इदं नृसिंहकवचं प्रह्लादमुखनिर्गतम् ॥२०॥ ४७४

भक्तिमान्यः पठन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
पुत्रवान् धनवान् लोके दीर्घायुरिह जायते ॥२१॥ ४७५

यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयः ।
सर्वत्र जयमाप्नोति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥२२॥ ४७६

भूम्यन्तरिक्षदिव्यानां ग्रहाणां विनिवारणम् ।
वृश्चिकोरगसम्भूतविषापहरणं परम् ॥२३॥ ४७७

ब्रह्मराक्षसयक्षाणां दूराद्विद्रावकारणम् ।
भूर्जे वा ताडपत्रे वा लिखितं कवचं शुभम् ॥२४॥ ४७८

करमूले धृतं येन सिद्ध्यस्तत्करे स्थिताः ।
नृसिंहकवचेनैव रक्षितो वज्ररक्षितः ॥२५॥ ४७९

देवासुरमनुष्येषु स्वाज्ञयैव जयं लभेत् ।
एकसन्ध्यं द्विसन्ध्यं वा त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥२६॥ ४८०

---

१. ख. सहस्रशीर्षा ।

स सर्वमङ्गलावासो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।
द्वात्रिंशतः सहस्राणां पाठाच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥२७॥ ४८१

कवचस्याऽस्य मन्त्रस्य मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
अनेन मन्त्रराजेन कृत्वा भस्माऽभिमन्त्रितम् ॥२८॥ ४८२

तिलकं विन्यसेद्यस्य तस्य ग्रहभयं हरेत् ।
त्रिवारं जपमानस्तु पूर्वं सर्वाभिमन्त्रितम् ॥२९॥ ४८३

पाठयेद्यो नरो मन्त्री नृसिंहध्यानमाचरेत् ।
तस्य रोगाः प्रणश्यन्ति ये वा स्युः कुलसम्भवाः ॥३०॥ ४८४

किमत्र बहुनोक्तेन नृसिंहसदृशो भवेत् ।
मनसा चिन्तितं यद्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयः[1] ॥३१॥ ४८५

इति परमरहस्यसारमेतत्कवचवरं पठतीह भक्तिमान्यः ।
स भवति धनपुत्रधान्यभोगी तनुविगमे समुपैति नारसिंहम् ॥३२॥ ४८६

॥ इति नृसिंहककचं समाप्तम् ॥

॥ श्रीनारद उवाच ॥

श्रीकृष्णकवचं वक्ष्ये श्रीकीर्त्तिविजयप्रदम् ।
कान्तारे पथि दुर्गे च सदा रक्षाकरं नृणाम् ॥१॥ ४८७

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं नीलकुञ्चितकुन्तलम् ।
बर्हिबर्होल्लसन्मौलिं शरच्चन्द्रनिभाननम् ॥२॥ ४८८

राजीवलोचनं राजद्वेणुनादविभूषितम् ।
दीर्घपीनमहाबाहुं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥३॥ ४८९

पीताम्बरधरं देवं गोपिगोकुलसेविनम् ।
रुक्मिणीसत्यभामाभ्यां संश्रितोभयपार्श्वकम् ॥४॥ ४९०

भूभारहरणोद्युक्तं कृष्णं गीर्वाणवन्दितम् ।
जपेन्नित्यममुं भक्त्या मन्त्रं सर्वार्थसिद्धये ॥५॥ ४९१

---

१. ख ०त्यसंशयम् ।

हृदये वसुदः पातु मूर्द्धानं मम सर्वदा ।
ललाटं देवकीसूनुर्भ्रुवौ नन्दसुनन्दनः ॥६॥ ४६२

[1]यमलार्जुनहृत्कर्णौ कपोलौ नागमर्द्दनः ।
दन्तान् गोपालकः पातु जिह्वां हैयङ्गवीनभुक् ॥७॥ ४६३

ओष्ठं धेनुकजित्पायादधरं कौशिकात्मजः ।
चिबुक पातु गोविन्दो बलदेवानुजो मुखम् ॥८॥ ४६४

अक्रूरसहितः कण्ठं कुक्षौ दन्तिमदान्तिकः ।
भुजौ चाणूरवैरी मे करौ कंसनिषूदनः ॥९॥ ४६५

हृदयं पातु मे कृष्ण उतङ्कावयवप्रदः ।
उदरं मथुरानाथो नाभिं द्वारावतीपतिः ॥१०॥ ४६६

रुक्मिणीवल्लभः पृष्ठं जघनं शिशुपालहा ।
ऊरू पाण्डवदूतो मे जानुनी पार्थसारथिः ॥११॥ ४६७

विश्वरूपधरो जङ्घे प्रपदे भूमिपालकः ।
चरणौ यादवः पातु पातु कृष्णोऽखिलं वपुः ॥१२॥ ४६८

दिवा पातु जगन्नाथो रात्रौ नारायणः स्वयम् ।
एतत्कृष्णबलोपेतं यः कृष्णकवचं पठेत् ॥१३॥ ४६९
स सर्वतो भयान्मुक्तः कृष्णे भक्तिमवाप्नुयात् ।

॥ इति श्रीवराहपुराणे श्रीकृष्णकवचम् ॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ एकोनत्रिंशस्तरङ्गः ॥२९॥

---

१. क. जमला० ।

[त्रिंशस्तरङ्गः]

उड्डामरेश्वरतन्त्रे— ॥ श्रीदेव्युवाच ॥

देवदेव महादेव देवारिबलसूदन ।
देववर्द्धन देवेन्द्रवन्दितेन्दुशिखामणे ॥१॥

पृच्छे भवन्तं भगवन् कार्त्तवीर्यस्य भूपतेः ।
माहात्म्यं मन्त्रराजस्य विस्तरेण ब्रवीहि मे ॥२॥

कार्त्तवीर्यमनोर्देव विधानं वक्तुमर्हसि ।
सरहस्यं महापुण्यं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥३॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

शृणु देवि महामन्त्रं विस्तरेणाऽखिलार्थदम् ।
चोरमारीविपक्षाणां विशेषेणाऽपकृन्तनम् ॥४॥

महद्वश्यकरं शीघ्रं राज्ञां विजयवर्द्धनम् ।
भजतां सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यकरं परम् ॥५॥

सर्वसम्पत्करं मन्त्रमुद्धरिष्येऽधुना प्रिये ।
इन्द्रो[1] रुद्रार्णरूढोऽग्निः सतारोऽर्द्धेन्दुनादयुक् ॥६॥

तन्मन्त्रबीजं मुनिभिर्गदितं क्षोभकारकम् ।
तस्य साग्नेर्महामायाबिन्दुनादैश्च सङ्गमम् ॥७॥

इच्छन्त्येके महात्मानो लोकवश्याभिकाङ्क्षिणः ।
तस्य साग्नेर्नादबिन्दुयुक्तस्य परमेश्वरि ॥८॥

इच्छन्त्येके महात्मानो भौतिकेन समागमम् ।
इत्थं स्वरुच्या तद्बीजं समुद्धृत्य च मानवः ॥९॥

द्वितीयमुद्धरेद्बीजं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
द्वितीयबीजं वक्ष्यामि प्रतिलोमेन सुन्दरि ॥१०॥

---

१. अत्र 'इन्दोः' इति पाठः समीचीनो दृश्यते वक्ष्यमाणव्याख्यायामुक्तत्वात् । यथा—'अग्निः रेफः, सः इन्दोः ठकाराद्यो रुद्रार्णः एकादशो वर्णः फकारस्तेनाऽऽरूढः । (सम्पादकः)

सूर्याद्विंशतिवर्णस्तु तत्तृतीयं त्रिमूर्त्तिना ।
युक्तं प्रागर्द्धशशिना[1] नादेन च पुनः प्रिये ॥११॥

सेन्द्रं षष्ठं द्वितीयात्तु प्रतिलोमेन[2] मायया ।
नादेन बिन्दुना युक्तं तृतीयं लोकवश्यदम् ॥१२॥

तृतीयं प्रथमात्तस्माच्चतुर्थेन चतुर्थकम् ।
वामकर्णेन्दुनादेन प्रोक्तं संस्तम्भनं क्षणात् ॥१३॥

मुखवृत्तं बिन्दुनादसंसक्तं परमेश्वरि ।
'पञ्चमं च'[3] महाबीजं क्षणादाकृष्टिकारकम् ॥१४॥

व्योमार्द्धेन्द्वग्निदेव्या च युक्तं षष्ठं समीरितम् ।
उद्धरेत्सप्तमं च क्रों बिन्दूत्थं बिन्दुवह्निना ॥१५॥

करणेन च संयुक्तमष्टमं मुनिभिः स्मृतम् ।
हुं फट् च कार्त्तवीर्यार्जुनायेत्युक्त्वा नतिं वदेत् ॥१६॥

विंशत्यर्णः स्मृतो मन्त्रस्तारादिर्मुनिभिः स्मृतः ।
एकोनविंशद्वर्णः स्याद्वितारो यदि भाव्यते ॥१७॥
कार्त्तवीर्यार्जुनस्यैतन्महासामर्थ्यदं प्रिये ।

अग्निः रेफः, सः इन्दोः ठकाराद्यो[4] रुद्रार्णः एकादशो वर्णः फकारः तेनाऽऽरूढः । यद्वा पुरस्तात्प्रतिलोमेनेति स्वयमुक्तत्वादत्राऽप्यध्याहारात्तस्य पदस्येति । इन्दुः सकारस्तस्मात्प्रतिलोमेनैकादशार्णः फकारः, सतारः ॐकारयुक्तः । अत्र तारशब्देन केवलस्त्रयोदशस्वर एव गृह्यते अर्धेन्दुनादयुगिति स्वयमुक्तत्वात् । अर्द्धेन्दुरर्द्धचन्द्रः, नादो बिन्दुः । एतस्यैव भेदमाह—तस्येति—अत्र तच्छब्देन फकारो[5] गृह्यते साग्नेरिति स्वयमुक्तत्वात् । महामाया ईकारस्तेन तद्बीजस्थं त्रयोदशस्वरमपास्य तत्स्थाने ईकारो योजनीय इत्यर्थः । पुनः प्रकारान्तरमाह—भौतिक ऐकारः,[6] ईकारस्थाने ऐकारो योजनीय इत्यर्थः । द्वितीयमिति—सूर्यात् मकारात् प्रतिलोमेन विलोमेन, विंशतितमो वर्णश्चकारः, तत्तृतीयं मकारात्तृतीयं अक्षरं अनुलोमेन रेफः, त्रिमूर्त्तिरीकारः, अर्द्धशशिनेत्यादि प्राग्वत् । तेनैतैः च्रीं इति सिद्धम् । द्वितीयात् द्वितीयबीजाक्षरात् चकारात्प्रतिलोमेन० षष्ठं अक्षरं

१. ख. प्रागर्द्धशिशिना । २. ख. प्रतिलोम्येन । ३. ख. पञ्च पञ्च । ४. पकाराद्यो ।
५. क. फलकारो । ६. क. औकारः ।

ककारः, तत्सेन्द्रं लकारसहितं, मायया ईकारेण नादेन बिन्दुना च युक्तम्, एतेन कामबीजमुक्तम् । प्रथमात् प्रथमबीजात्ककारात्, तृतीयमक्षरं मकारस्तस्माद्ध्-काराच्चतुर्थेन रेफेण, वामकर्णेन[1] ऊकारेण, नादेन, बिन्दुना च युक्तं तेन 'भ्रूं' इति । मुखवृतमाकारः, बिन्द्वादि प्राग्वत्, तेन श्रां इति । व्योम हकारः, अग्निः रेफः, देवी ईकारः, अर्धेन्द्वादि प्राग्वत्, तेन मायाबीजं सिद्धम् । बिन्दूत्थं—बिन्दुः रेतः, तदुत्थम् अस्थि, तस्य रेतोंऽशकत्वात् । तथा च श्रुतिः—'अस्थिस्नायुमज्जा[2]-नः पितृत' इति । तेन तद्वाचकमक्षरं शकारो गृह्यते । वह्नी रेफः, । करणेन चतुर्थस्वरेण, बिन्दुनादौ प्राग्वत्, एतैः श्रीबीजमुद्धृतम् । हुं स्वरूपम्, फट्-स्वरूपम्, कार्त्तवीर्यार्जुनाय स्वरूपम्, नतिर्नमः । तथा—

मन्त्रस्याऽस्य पुरा प्रोक्तो मुनिभिर्मुनिरम्बिके ।
दत्तात्रेय इति च्छन्दोऽनुष्टुबस्य मनोः स्मृतम् ॥१८॥

देवता चाऽर्जुनो नाम कार्त्तवीर्यपदादिकः ।
मूलबीजैः स्वरारूढैः कुर्यात्पञ्चाङ्गकं सुधीः ॥१९॥

द्वाभ्यां द्वितीयस्वरसंयुताभ्यां, तुरीयस्वरसंयुताभ्याम्, द्वाभ्यां च षष्ठस्वरसंयुताभ्यां, तथा[3] द्वादशसंयुताभ्यां, द्वाभ्यां च वर्माखपदाक्षराभ्यामङ्गानि कृत्वाऽप्यवशिष्ट-वर्णैः । स्वर ऊ०, द्वादश ऐं तदारुढैरित्यर्थः ।

हृदुदरनाभिजघनगुह्यपदद्वयसोरुजानुजङ्घास्य[4]-
मूर्द्धनि तुङ्गभ्रूश्रुतिलोचननासास्यकण्ठबाह्वोश्च ॥२०॥

दशबीजानि प्रणवद्वयमध्यस्थानि प्रविन्यसेच्छिष्टान् ।
बिन्द्वन्तिकान् ध्रुवादीनुक्तस्थानेषु मन्त्रवित्स्वतनौ ॥२१॥

तुङ्गे शिखास्थाने ।

ध्यायेच्च मन्त्रमूर्त्तिं स्वात्मैक्येनाऽऽदरात्समाहितधीः[5] ।
रक्षायै च भयेभ्यो वाञ्छितसिद्ध्यै धनर्द्धये सुचिरम् ॥२२॥

अव्यात्सर्वभयात्प्रकाशिततनुः प्रद्योतनोद्योतितः,
स्वर्णस्रक्परिवीतकन्धरधरो रक्तांशुकोष्णीषवान् ।
नानाकल्पविभूषितः करसहस्रार्द्धान्तबाणासनो,
बाणात्तार्द्धसहस्रबाहुरनिशं भूवल्लभो नः प्रभुः ॥२३॥

---

१. क. कर्णेन । २. ख. ०मज्जनः । ३. ख. द्वाभ्यां तथा । ४. ख. ०जङ्घाख्ये ।
५. क. ०नारदात्समाहितधीः ।

सप्तद्वीपैकनाथः सवितृसमरुचिः सर्वदुष्टान्तको नः,
पायादब्जायताक्षो रथवरनिलयः स्थूलकायोऽतिभीमः ।
चापात्तेषुस्त्रिलोकीं करधृतधनुषो निःस्वनैस्त्रासया(मा)नः,
स श्रीमान् कार्त्तवीर्यो निखिलनृपनताङ्घ्र्यम्बुजः क्षिप्रकारी ॥२४॥

एवं स्मरन्नित्यमतीवभक्त्या समर्चयेद्धैहयवंशनाथम् ।
गन्धादिभिर्वैष्णवपीठमध्ये स्वाङ्गाष्टमूर्त्त्यष्टकशक्तियुक्तम् ॥२५॥

तस्याऽङ्गमूर्त्तयः पञ्च स्फुटिकाभा मनोहराः ।
खड्गचर्मधरा वीराः सर्वाभरणभूषिताः ॥२६॥

बाणबाणासनधरा मूर्त्तयो रक्तरोचिषः ।
सर्वाभरणसंयुक्ता ध्येयाः सर्वसमृद्धये ॥२७॥

चोरमार्यरिसुरारिपदाद्या दिक्षु तन्मदविभञ्जनकाख्यान् ।
दुष्टदुःखदुरितामयनाशनाकपानभियजेच्च[1] विदिक्षु ॥२८॥

क्षेमङ्करी वश्यकरी श्रीकरी च यशस्करी ।
आयुःकरी तथा प्रज्ञाकरी विद्याकरी तथा ॥२९॥
धनङ्करी च पूर्वादिदिक्षु पूज्या प्रभा सिताः ।

सितप्रभाः ।

वरदाम्बुजलसत्करा रक्तांशुकहारकुण्डलोल्लसिताः ।
हैहयनाथमनोज्ञा ध्येयाः सौन्दर्यलालिताः प्रमदाः ॥३०॥

लोकेशास्तद्बहिः पूज्या गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
षोडशैरुपचारैस्तु पूजयेद्यो दिने दिने ॥३१॥

कार्त्तवीर्यं महावीर्यं परिवारप्रियं प्रभुम् ।
स सर्वकामानप्येह प्राप्यते हरिमन्दिरम् ॥३२॥

एवं यः पूजयित्वा दिनमनुविधिनैवाऽमुना मन्त्रमुख्यं,
जप्याद्भक्त्या स विन्द्याद्बलधनवसुशौर्यायुरारोग्यविद्याः ।
श्रीमेधाकान्तिपुष्टि धृतिमतिवचसां भाजनं स्यान्नरेन्द्रै-
र्नारीभिः पूजितः स्यादनुगतभुवनश्चापधृष्यश्च लोकैः ॥३३ इति ।

१. क. ०नभिजये ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ॐ दत्तात्रेयाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदये—श्रीकार्त्तवीर्यार्जुनाय देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, मूलेन करयोर्व्यापकं विन्यस्य, "फ्रां ध्रां हृदयाय नमः, क्लीं भ्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, फ्रें[1] श्रैं कवचाय हुं, हुं फट् अस्त्राय फडिति पञ्चाङ्गानि प्राग्वद्विन्यस्य, "ॐ कार्त्तवीर्यार्जुनाय नम' इति सर्वाङ्गे व्यापकं कृत्वा, हृदये—"ॐ फ्रों ॐ नमः, उदरे—ॐ ध्रीं ॐ नमः, नाभौ—ॐ क्लीं ॐ नमः, एवं जघने—भ्रूं०, गुह्ये—आं०, पादयोः—ह्रीं०, ऊर्वोः—फ्रों०, जानुनोः—श्रीं०, जङ्घयाः—हुं, मूर्ध्नि—फट्०, शिखायां—कां०, भ्रूद्वये—र्त्तं०, श्रुत्योः—वीं०, नेत्रयोः—र्यां०, नासायां जुं०, मुखे—नां०, कण्ठे—यं०, दक्षबाहौ—नं, +बामबाहौ—मः०+" इति विन्यस्य, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तं वैष्णवं पीठमभ्यर्च्य, तत्र देवमावाह्याऽङ्गार्च्चान्तं प्राग्वत्कृत्वाऽष्टदलेषु[2] देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन "ॐ चोरमदविभञ्जनाय नमः, ॐ मारीमदविभञ्जनाय०, अरिमदविभञ्जनाय०, सुरारिमदविभञ्जनाय०; विदिग्दलेषु—ॐ दुष्टमदविभञ्जनाय०, दुःखमदवि०, दुरितमद०, आमयमद०," इति सम्पूज्य, दलाग्रेषु—"ॐ क्षेमङ्कर्य्यै नमः, वश्यकर्य्यै०, श्रीकर्य्यै, यशस्कर्य्यै, आयुःकर्य्यै०, प्रज्ञाकर्य्यै०, विद्याकर्य्यै०, धनङ्कर्य्यै नम" इति देवाग्रादि सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरश्रे प्राग्वल्लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति। तथा—

इत्थं ध्यात्वा मन्त्रवर्यं प्रजप्याल्लक्षावृत्या मन्त्रवित्प्राप्तदीक्षः।
नद्यास्तीरे गुर्वनुज्ञानुपूर्वं पश्चात्कुर्याच्चोरपीडाप्रयोगान् ॥३४॥

कुम्भोदकासिक्ततनुः प्रजप्त्वा मन्त्रेण होमं प्रकरोतु मन्त्री।
पयोन्धसाऽग्नौ तिलतण्डुलैर्वा दशांशमानं सघृतैश्च मन्त्री ॥३५॥

एष लक्षजपः कृतयुगपरः, कलावेतच्चतुर्गुणः। प्राग्वत्तर्प्पणादिकमपि यथावत्कुर्यादिति। तथा—

एवं सिद्धमनुर्नरः स्वविहितान्कुर्यात्प्रयोगान् प्रिये,
वश्यादीन्विधिवद्विशिष्टचरितश्चौरापहृत्यै भृशम्।
दुष्टानामपि वक्ष्यमाणविधिभिर्मन्त्रैर्हुतैस्तर्प्पणै-
र्ध्यानैर्मन्त्रविशेषकैश्च मतिमान् गुर्वाज्ञया तत्परः ॥३६॥

१. ख. फ्रें। +—+ चिह्नस्थोऽयमंशः क. पुस्तके नाऽस्ति। २. ख. ०ऽष्टदलदिग्दलेषु।

लिखेदष्टदलं पद्मं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।
वृत्तं बहिर्भूपुराढ्यं वज्राष्टकविभूषितम् ॥३७॥

तद्बीजं कर्णिकामध्ये साध्याख्याकर्मसंयुतम् ।
लिख्यात् समीरबीजं च सहतारगतम्प्रिये ॥३८॥

सवाग्भवञ्च पूर्वादिपत्रेषु विलिखेत्ततः ।
सवर्मान्तानि बीजानि शिष्टार्णानन्तरालये ॥३९॥

केशरेषु स्वरानूष्मवर्णयुक्तान् समर्पयेत् ।
वृत्तं प्रवेष्टयेद्वर्णैः कादिभिश्चोष्मवर्जितैः ॥४०॥

भूमिकोणचतुष्के तु भूतवर्णान् समर्पयेत् ।
संस्थाप्य विधिवत् प्राज्ञः कलशं सम्यगर्च्चयेत् ॥४१॥

तोयाभिषेकः कर्त्तव्यो नृणामीहितसिद्धये ।
[1]तद्यन्त्रारूढकुम्भाम्बुनाऽभिषिक्तस्य सुन्दरि ॥४२॥

किन्न सिद्धयति लोकेऽस्मिन् कामिनां मनसेप्सितम्[2] ।
तद्यन्त्रस्थापनाद्राज्यं ग्रामं पुरमथाऽपि वा ॥४३॥

रक्षायै चाऽभितोऽरिभ्यो मन्त्ररोगविषार्दितः[3] ।
सर्वभूतानि सन्त्रायेदेतेन गदिनं दिने ॥४४॥

न प्रकाश्यं हि मूर्खाय स्तेनाय पिशुनाय च ।
गुरुप्रियाय धीराय दक्षाय महते तथा ॥४५॥

प्रकाश्यमेसद्यन्त्रं हि मन्त्रं च परमेश्वरि ।
मोहयेत् क्षोभयेन्मन्त्री मारयेच्चाटयेदरीन् ॥४६॥

एतेन वशयेत् क्षिप्रं द्वेषयेच्च परस्परम् ।
कर्षयेद् भ्रामयेच्चौरान् दमयेच्च ज्वरादिकान् ॥४७॥

---

१. इतः पूर्वमयमंशो विशेषः ख. लना. पुस्तकद्वये—
वन्ध्यानां पुत्रसम्प्राप्त्यै दीक्षायै चाऽऽयुषे तथा ।
धनार्थं रोगनाशाय चोरशान्त्यै विशेष [तः] ॥१॥
वश्याय च हितार्थं वाक्सिद्धयै वाणिज्यसिद्धये ।

२. लना. मनसि स्थितम् । ३. ख. लना. विषार्दितः ।

तत्तद्बीजार्प्पणाद् देवि क्षिप्रं सिद्ध्यति मन्त्रिणः ।
बहुनोक्तेन किन्देवि मन्त्रोऽयमखिलार्थदः ॥४८॥

अस्यार्थः—यथोक्तमष्टदलकमलं कृत्वा, तद्बहिर्वृत्तं, तद्बहिरष्टवज्रयुक्तं चतुरश्रं कृत्वा, तत्कर्णिकायां ससाध्यं कार्त्तवीर्यबीजं 'घँ' इति वाग्भवं च प्रणवोदरे विलिख्य, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः स्वरान् 'शषसह' इति वर्णांश्चैकैकशो द्विरावृत्त्या विलिख्य, पूर्वादिदलेषु द्वितीयबीजादि-हुंबीजान्तान्यष्टौ बीजानि प्रतिदलमेकैकशो विलिख्याऽन्तिमदल एव फट्कारं विलिख्याऽवशिष्टवर्णानन्तरालेषु सबिन्दुकान् विलिख्याऽवशिष्टवर्णमन्तिमान्तराले विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा, तदन्तरालवीथ्यां ककारादि-क्षकारान्तैः शषसहवर्जितैरावेष्ट्य, चतुरश्रस्य कोणचतुष्टये तत्तत्कार्योपयोगान् भूतार्णान् दश दश विलिख्य, तत्र दीक्षोक्तविधिना कुम्भं संस्थाप्य, तत्र देवमावाह्य साङ्गावरणं सम्पूज्य, मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं तत्कुम्भं स्पृशन् जपित्वा, तत्कुम्भजलेनाऽभिषेकादुक्तफलसिद्धिर्भवतीति ।

भूतवर्णास्तु शान्तौ—'ऋ ॠ औ[1] घ झ ढ ध भ व स' इति जलवर्णा दश लेख्याः । वश्यमारणयोस्तु—'इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष' इत्यग्निवर्णा दश लेख्याः । स्तम्भने तु—'उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळ[2]' इति भूमिवर्णा दश लेख्याः । उच्चाटने तु—'अ आ ए क च ट त प य ष' इति वायुवर्णा दश लेख्याः । विद्वेषणे व्याधिकरणे च—'ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह' इत्याकाशवर्णा लेख्याः । अत्र भूतवर्णलेखनप्रकारस्तु—आग्नेयकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन चतुर्षु कोणेषु द्वित्रिद्वित्रिक्रमेण विभज्य दशवर्णांल्लिखेदिति **सम्प्रदायः** । तथा—

कृतवीर्यात्मजस्याऽथ मन्त्रभेदान् हि मन्त्रिणः ।
हिताय देवि वक्ष्यामि देशधैकोऽपि भिद्यते ॥४९॥

कार्त्तवीर्यस्य मन्त्राणामृषिरेकः स्मृतः पुरा ।
दत्तात्रेयो महाप्राज्ञः साक्षान्नारायणांशजः ॥५०॥

देवता च स्वयम्प्रोक्तो मन्त्रभेदेषु सुन्दरि ।
असौ चक्रहरेरंशादुत्पन्नो[3] हैहयान्वये ॥५१॥

आज्ञया देवदेवस्य सर्वदुष्टप्रशान्तये ।
यस्मिन् गर्जति दैत्येन्द्रस्त्रीणां गर्भा बलाद् भृशम् ॥५२॥

---

१. ख. ओ । २. ख. उ ऊ ओ गजदलल । ३. ख. ०दुत्पन्तों ।

प्रच्यवन्ति स चक्राख्यो हरिरासीत् क्षितौ स्वयम् ।
कृतवीर्यस्य भार्य्यायां महिष्मत्यां पुरोत्तमे ॥५३॥

रेवातीरे समुत्पन्नो नाम्नाऽर्जुन इतीरितः ।
दत्तात्रेयात् प्राप्तविद्यस्तत्प्रियश्च द्विजप्रियः ॥५४॥

राजराजो महातेजाः सहस्रकिरणोपमः ।
सहस्रबाहुदोर्दण्डः स विष्णोरंशसम्भवः ॥५५॥

शीघ्रगामी महावीर्यः सर्वदुष्टान्तकः प्रभुः ।
सर्वदा सर्वदुष्टघ्नः पुरस्थो बहुरूपवान् ॥५६॥

सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं तपोबलपराक्रमैः ।
दमयन् सर्वदुष्टान् यो ररक्ष स हरिः स्वयम् ॥५७॥

एकस्य मूलमन्त्रस्य दशधाऽस्य महात्मनः ।
कार्त्तवीर्यस्य वक्ष्यामि भेदान् हि शृणु सुन्दरि ॥५८॥

छन्दोभेदांश्च देवेशि ध्यानभेदांश्च तत्वतः ।
कार्त्तस्याऽदौ तस्य मूलं जपेत् सर्वार्थसिद्धये ॥५९॥

दशाक्षरविधानेन ह्यवशिष्टाक्षरान् प्रिये ।
मूलबीजं च चामुण्डाबीजयुक्त नवाक्षरम् ॥६०॥

जपेत् संस्तम्भनायाऽशु चोराणां वसुहारिणाम् ।
मूलेन समहच्छत्रुबीजं देवि नवाक्षरम् ॥६१॥

प्रजपेन्नरनारीणां नृपाणां मोहनाय च ।
स्वमूलेन[1] च रावार्णसहितं तु नवाक्षरम् ॥६२॥

भ्रामणोच्चाटनद्वेषमारणाय जपेद्बुधः ।
मन्त्री स्वमूलं[2] मायाख्यबीजयुक्तं नवाक्षरम् ॥६३॥

आकर्षणाय चोराणां क्षिप्रं देवि न संशयः ।
मूलमङ्कुशबीजेन पुटितं तु नवाक्षरम् ॥६४॥

वाक्स्तम्भनाय गमनस्तम्भनाय जपेत् क्षणात् ।
वर्माऽस्त्राक्षरयोर्मध्यगतं मूलं नवाक्षरम् ॥६५॥

१. ख. सुमूलेन । २. ख. स्वमूल ।

जपेदुन्मादनायाऽऽशु स्तम्भनायाऽरिमोहने ।
वृक्षाग्रस्थितचौराणां स्तम्भनाय विशेषतः ॥६६॥
मूर्द्धसंस्फोटनायाऽलं चौराणां देव्यसंशयः ।
स्वमूलं कमलाबीजपुटितं तु नवाक्षरम् ॥६७॥

यो जपेदब्दमात्रेण स स्याद् वैश्रवणोपमः ।
मूलं वाग्भवयोगेन यो जपेल्लक्षमात्रकम् ॥६८॥

मन्त्रवर्णैः स सर्वैर्वा स कवित्वमवाप्नुयात् ।
एतदेकमपि प्रोक्तो दशधोक्तप्रभेदतः ॥६९॥

एषामन्यतमं[1] मन्त्रं प्रोक्तमेतद्दशाक्षरम् ।
तस्य छन्दो विराडत्र शेषाणां शृणु तत्वतः ॥७०॥

एकादशाक्षराः सर्वे शेषा नव समीरिताः ।
शेषाणां त्रैष्टुभं प्रोक्तं मुनिभिर्वेदपारगैः ॥७१॥
सर्वेषां कार्त्तवीर्यस्य मन्त्राणां जपकर्मणि ।
आदौ तारेण संयोज्य जप्तव्यानि मनून्यथ[2] ॥७२॥

एकस्येत्याद्यथेत्यन्तैः[3] षोडशभिः श्लोकैः कार्त्तवीर्यमन्त्रस्य मन्त्रभेदांश्छन्दोभेदांश्चाऽऽह—तत्र तस्य बीजं 'फ्रौं' इति कार्त्तवीर्यबीजम् । एतत्तु दशस्वपि भेदेषु ज्ञेयम् । चामुण्डाबीजं 'ग्लौं' इति । मच्छत्रुः—मम शिवस्य शत्रुः कामः, तद्बीजं कामबीजमित्यर्थः । रावाणं 'भ्रूं', माया 'ह्रीं', पाशः 'आं', अङ्कुशः 'क्रों', वर्म 'हुं', अस्त्रं 'फट्', कमला 'श्रीं' । अत्र 'मूलमङ्कुशबीजेन पुटितन्त्वि'त्यत्र मूलकार्त्तद्व्यक्षरयोर्मध्येऽङ्कुशबीजं देयमिति तु शब्दस्याऽर्थः, अन्यथा एकादशाक्षरासम्भवात् । 'वर्मास्त्राक्षरयोर्मध्यगतं मूलं नवाक्षरमि' त्यत्र मूलनवाक्षरयोर्मध्ये 'हुं' बीजं, तथैव फट्कारं च पृथक् पृथग्योजयेदित्यर्थः, अन्यथा दशविधत्वासम्भवात् । वाग्भवादिस्तु दशभेदाद्बहिर्भूतः, अत एव 'सर्वैर्वा' इत्युक्तम्, सर्वैर्विंशतिवर्णैरेकोनविंशद्वर्णैर्वाऽऽदौ संयोज्य जपेदित्यर्थः । तथा—

यन्त्रं च दशमन्त्राणां पूर्वोक्तं विलिखेद् बुधः ।
कर्णिकायां लिखेन्मूलं दशपत्रे दशाक्षरान् ॥७३॥

---

१. ख. लना. एषामन्यन्महा । २. ख. मन्नुनथ । ३. क. एकस्योत्पाद्यतेत्यन्तः । ख. एकस्योत्पाद्यत्यन्तः ।

दशाक्षरप्रयोगे च मूलं[1] मध्ये दले तथा ।
लिखेद् गुरूपदेशेन शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥७४॥

अस्यार्थः– तत्र दशदलकमलकर्णिकायां ससाध्यं मूलबीजं प्राग्वद्विलिख्य, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः स्वरानष्टसु विलिख्य, नवमकेसरे 'श ष', दशमे 'स ह' इति विलिख्य, दशपत्रेषु—कार्त्तादिनवाक्षराणि नवसु पत्रेषु, दशमे पुनर्मूलबीजमिति सम्प्रदायः एष एव गुरूपदेशः । इति दशवर्णान् विलिख्य शेषमन्यत्सर्वं पूर्वोक्तयन्त्रवद् विलिखेदिति । एतद्यन्त्रमुक्तफलदम् । एतद्दशाक्षरमन्त्रस्य यन्त्रम् । अन्ययन्त्रेषु तु मध्ये प्राग्वन्मूलं ससाध्यं विलिख्य, तदनु तथैव तत्केसरेषु प्राग्वत् स्वरान् 'श ष स ह' सहितान् विलिख्य, पत्रेषु चाऽवशिष्टदशवर्णान् विलिख्य शेषं प्राग्वद् विलिखेदिति । तथा—

पूजायां पूर्वसम्प्रोक्तावरणैः सम्यगर्च्चयेत् ।
तारादिविंशार्णमिदं पूजयेत् प्रयतोऽनिशम् ॥७५॥

मन्त्रं गुर्वाज्ञया देवि स सर्वार्थानिवाप्नुयात् ।
कार्त्तवीर्यस्य मन्त्राणां प्रयोगो वक्ष्यतेऽधुना ॥७६॥

हिताय मन्त्रिणां होमः सर्वकामार्थसिद्धये ।
गौरवे कर्मणि चरेद् बहुद्रव्यघृतादिभिः ॥७७॥

होमं रात्रौ वक्ष्यमाणद्रव्यैर्देवि सदक्षिणैः ।
लाघवे च लघुद्रव्यैर्ज्ञात्वा सम्यक् समाचरेत् ॥७८॥

कल्पोक्तसर्वकार्याणां यान्वाञ्छति सदा प्रिये ।
सम्पूजयेद् गुरुं भक्त्या द्रव्यैश्चाऽस्य समीहितैः ॥७९॥

अन्नदानैर्द्विजान् भक्त्या प्रीणयेत् सर्वकर्मसु ।
वस्त्राद्यैर्वात्महितवित् प्रारभेत् सर्वकर्म च[2] ॥८०॥

विप्राणां वचनैः कुर्यात् कर्माणि कमलेक्षणे ।
सितसर्षपहोमेन मारयेद् रिपुमात्मनः ॥८१॥

कार्पासलसुनारिष्टैर्विषवृक्षदलैस्तथा ।
कनकैर्होमयेच्चोरान् स्तम्भयेन्मोहयेत्तथा ॥८२॥

---

१. क. मूल । २. ख. सु ।

विभीतजैः खादिरोत्थैः समिद्भिश्चाटयेच्चिरम् ।
निम्बैर्विद्वेषयेन्मत्री चाऽऽकर्षेन्मधुरत्रयैः ॥८३॥

नीलोत्पलैश्च वशयेत् तत्क्षणाद् भुवनत्रयम् ।
पद्मैः साज्यैः श्रिये होमः स्यात्तथा स महान् वशः ॥८४॥

तिलहोमेन पापानि व्यपोहेद् गोघृतेन च ।
तिलतण्डुललोणाच्च लाजासिद्धार्थमिश्रितैः ॥८५॥

मधुराक्तैर्हुनेदेतैर्महद्वश्याय तत्क्षणात् ।
लोणैश्च सर्ववर्णानां वश्यार्थी या वकैर्हुनेत्[1] ॥८६॥

सर्वसिद्ध्यै च दूर्वाभिः पयोभिश्च तथाऽऽयुषे ।
+लक्ष्म्यै चैवाऽथ[2] दूर्वा या[3]ऽपामार्गसमिदादिभिः ॥८७॥

होमो रोगविमुक्त्यर्थं ग्रहशान्त्यै तथाऽऽयुषे ।[4]+
वटोदुम्बरबिल्वानां समिद्भिरभिवृद्धये ॥८८॥

हुनेद् धनचये वाऽपि क्षीराज्याक्तैर्विशेषतः ।
केवलेनैव पयसा हुनेद् गोकुलवृद्धये ॥८९॥

ब्रह्मवृक्षसमिद्भिश्च ब्रह्मवर्चःसमृद्धये ।
अश्वत्थैर्मनसः शान्त्यै प्लक्षैः सन्ततिवृद्धये ॥९०॥

भूतशान्त्यै गुग्गुलुभिः स्त्रीवश्याय प्रियङ्गुभिः ।
पुष्पैर्हुनेच्च वस्त्राप्त्यै तत्तद्वर्णैर्मनोहरैः ॥९१॥

शालिहोमेन भूमान् स्यादन्नैरन्नादिमान् भवेत् ।
गोरोचनागोमयाभ्यां सेनायाः स्तम्भनं भवेत् ॥९२॥

होमेन देवि शत्रूणां गोमूत्रेण विशेषतः ।
कार्पासगृहधूमारिपादपांसुविमिश्रितैः ॥९३॥

क्षीरवृक्षसमिद्भिश्च हुनेन्निशि निशातधीः ।
अङ्गहीनाय चोराणां विद्वेष्ट्यै मारणाय च ॥९४॥

---

१. ख. याचकैर्हुनेत् । २. लना. चैवाऽनृता । ३. लना. नास्ति ।
४. +–+ चिह्नान्तस्थोऽंशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

सर्पनिर्मोककनकसिद्धार्थैर्हवनक्रिया ।
लवणैः सह चोराणां कुलनाशाय तद्भवेत् ॥९५॥

सर्पनिर्मोकः सर्पमुक्तत्वक् ।

तर्प्पयेच्च दशांशेन शुद्धतोयेन नित्यशः ।
हुतसंख्या च साहस्रं सहस्रादयुतान्तकम् ॥९६॥

लघुगौरवकार्येषु विचार्य निपुणश्चरेत् ।
पुष्पैर्होमः पयोज्याक्तैर्द्रव्यैः सत्त्वैर्विधीयते ॥९७॥

रोगशान्त्यायुषे तद्वद् वश्याय मधुरैः सह ।
मारणद्वेषणोच्चाटस्तम्भसंहृतकर्मसु ॥९८॥

तीक्ष्णतैलयुतैर्द्रव्यैर्माहिषाज्ययुतैस्तथा ।
यद्यष्टविषयुक्तैर्वा चरेत् कर्माऽऽज्ञया गुरोः ॥९९॥

एवं षट्कर्म सम्प्रोक्तं मनुनाऽनेन सुन्दरि ।
हिताय मन्त्रिणां सम्यग् हैहयाधिपतेर्विभोः ॥१००॥

मन्त्रसिद्धस्य सिद्ध्यन्ति कर्मण्येतानि तत्वतः ।
यस्याऽसिद्धो मनुर्होमात् स पुमान्नाऽऽचरेत् क्रियाम् ॥१०१॥

न सिद्ध्यति ह्यसिद्धस्य कल्पोक्तं कर्मणां फलम् ।
सदा वैदिकजप्तस्य शुद्धस्य ब्राह्मणस्य च ॥१०२॥

न्यायागतमनोः किञ्चित्क्रियस्याऽपि प्रसिद्ध्यति ।
तस्मात् सदाचारवता गुरुभक्तेन सुन्दरि ॥१०३॥

जप्तव्यो मन्त्रस्तीर्थे हि पुरुषेण मनूत्तमः ।
रक्षितुं[1] पुरराष्ट्रादीन् स्त्रीबालादीन् स मन्त्रवित् ॥१०४॥

गोब्राह्मणवरांश्चाऽपि स्वात्मानं च विशेषतः ।
कुर्यात् प्रयोगान् विधिवन्मारणादीनपि प्रिये ॥१०५॥

सर्वथा चोरजातीनां मारणान्नाऽस्ति पातकम् ।
यदि स्यात् प्राणिहननात् पापमेतेन नाशयेत् ॥१०६॥

---

१. ख. रक्षितं ।

अन्नगोभूमिदानाद्यैराज्यहोमैश्च मन्त्रवित् ।
व्यपोहेच्चोरहत्याद्यं प्राणायामजपादिभिः ॥१०७॥

जपेच्च देवीं गायत्रीं सर्वपापापनुत्तये ।
सहस्रं नित्यशो देवीं सर्वरक्षार्थमात्मनः ॥१०८॥

गायत्रीं जपमानस्य द्विजातेः संयतात्मनः ।
किमसाध्यं प्रयोगेषु वैदिकेषु विशेषतः ॥१०९॥

गायत्रीजापकं भक्त्या ब्राह्मणं सुसमाहितम् ।
न स्पृशन्ति महात्मानं पापहत्यादयोऽपि च ॥११०॥

किमु भूतादयः सर्वे घोरा रुधिरभोजनाः ।
तस्माज्जप्येत[१] गायत्रीं प्रयोगादौ समाहितः ॥१११॥

प्रयोगान्ते च गायत्रीं नियतः सर्वकर्मणि ।
अन्यानपि च वक्ष्यामि मन्त्रान् क्षिप्रप्रसादकान् ॥११२॥

कृतवीर्यात्मजस्याऽऽत्मभूतान् देवि शृणुष्व तान् ।
यैः कुर्यात् पुरराष्ट्राणां रक्षां संसिद्धमन्त्रिणः(न्त्रकः) ॥११३॥

मन्त्रैर्जप्तैरपि भवेद् रक्षोभिश्च जपादिभिः ।
तारागिनजाययोर्मध्ये नमः कार्त्ताऽक्षरान् वदेत् ॥१ ४॥

वीर्यार्जुनाय हुं फट् च ऋष्याद्याश्च पुरोदिताः ।
चतुर्दशार्णो मन्त्रोऽयमनेनाऽङ्गं समाचरेत् ॥११५॥

तारः प्रणवः, अग्निजाया स्वाहा, सुगममन्यत् ।

तारेण नतिना सप्तवर्णैर्वर्माऽस्त्रठद्वयैः ।
कुर्यात् पञ्चाङ्गकं मन्त्री ध्यायेत् पूर्वोक्तमार्गतः ॥११६॥

ॐ हृत्०, नमः शिरः०, कार्त्तवीर्यार्जुनाय[२] शिखा०, हुं फट् कवचम्०, स्वाहा अस्त्रम्० ।

नमोऽन्ते कार्त्तयोः पूर्वे[३] स्याच्चेद् भगवतेपदम् ।
तदाऽष्टादशवर्णः स्यान्मनुरेष मनूत्तमः ॥११७॥

---

१. क. जपेत । २. ख. कार्त्तवीर्यार्जुनप । ३. ख. पूर्वं ।

'ॐ नमो भगवते कार्त्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् स्वाहा' इति ।

मूलमन्त्रेण पञ्चाङ्गं कुर्यात् पूर्ववदेव हि ।
सतारनतिनैव स्यात्तदा हृदयमम्बिके ॥११८॥

ॐ नमः हृत्०, भगवते शिरः०, सप्तभिः शिखा०, द्वाभ्यां कवचम्०, द्वाभ्यामस्त्रम्० । ध्यानम्प्रागुक्तमेव ।

यन्त्रं लिखेच्च चोराणां मारणादिषु मन्त्रवित् ।
षट्कोणमध्ये तद्बीजं लिखेत् कोणे षडक्षरम् ॥११९॥

लिखेच्च द्वादशदले शिष्टान् सद्द्वादशाक्षरान् ।
स्वरवेष्टितषट्कोणं कादिभिर्वृत्तपङ्कजम् ॥१२०॥

भूताक्षरबहिःकोणं भूतमण्डलवेष्टितम् ।
तत्तत्कार्यवशाद् देवि तत्तन्मण्डलमालिखेत् ॥१२१॥

ताले च फलके कुड्यमूले चोरकृते बिले ।
विलिखेत् सर्वसम्पत्त्यै चोराणां स्तम्भनाय च ॥१२२॥

एतद्यन्त्रं मन्त्रजप्तं स्थापितं यत्र कुत्रचित् ।
भयानि न भवन्त्यत्र देशे देव्यखिलानि[1] च ॥१२३॥

ताले तालपत्रे । **एतद्यन्त्ररचनाप्रकारो** यथा—द्वादशदलपद्मं[2] विरच्य, तत्कर्णिकायां वृत्तद्वयवीतं षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्ये कार्त्तवीर्यबीजं ससाध्यं विलिख्य, षट्सु कोणेषु मूलमन्त्रस्य 'ॐ नमो भगव' इति षडक्षराणि सबिन्दूनि, विलिख्य, षट्कोणाद् बहिर्वृत्तद्वयान्तराले षोडशस्वरैरावेष्ट्य, द्वादशदलेषु शिष्ट-द्वादशवर्णान् सबिन्दूनालिख्य, प्राग्वत् तत्तत्कार्योपयोगीनि भूताक्षराणि चतुरश्रकोणेषु विलिख्य, तद्बहिस्तत्तद्भूतमण्डले च विलिखेदिति । तथा—

महावीर्यमनुर्नाम कार्त्तवीर्यस्य वक्ष्यते ।
स्मरणादपि नश्यन्ति तस्य चोरकुलादयः ॥१२४॥

नमो भगवतेत्युक्त्वा श्रीकार्त्तार्णान् समुद्धरेत् ।
वीर्यार्जुनायेति ततः सर्वदुष्टान्तकाय च ॥१२५॥

---

१. ख. देव्यशिलानि । २. ख. द्वादशदलकंच ।

तपोबल-पदस्याऽन्ते पराक्रममितीरयेत् ।
परिपालितसप्तद्वीपाय सर्वपदन्ततः ॥१२६॥

राजन्यचूडामणये महाशक्तिमते तथा ।
सहस्रदहनस्याऽन्ते हुं फडित्युद्धरेदिदम्[1] ॥१२७॥

चतुःषष्टयक्षरो मन्त्रो वाञ्छितार्थप्रसाधकः ।

अयमपि मन्त्रः प्रणवादिरिति ज्ञेयः, चतुःषष्ट्यक्षर इत्युक्तत्वात् ।

ऋष्यादिस्तु हुताद्याश्च पूर्वोक्तास्तु स्मृताः प्रिये ।
जपश्चाऽयुतसंख्यः स्याच्छन्दोऽस्य त्रिष्टुबुच्यते ॥१२८॥

राजन्यचक्रयुतवर्त्तितवीरशूर-
माहिष्मतीपतिपदैश्च चतुर्थियुक्तैः ।
रेवाम्बुलीलपरिदृप्तपदेन कारा-
गेहप्रबाधितदशास्यपदेन चाऽङ्गम् ॥१२९॥

राजन्यचक्रवर्त्तिने हृत्०, वीराय शिरः०, शूराय शिखा०, माहिष्मतीपतये कवचम्०, रेवाम्बुलीलापरिदृप्ताय नेत्रम्०, कारागेहप्रबाधितदशास्यायाऽस्त्रम्० । तथा—

एव कृत्वा षडङ्गं नृपकुलतिलकं कार्त्तवीर्यं महान्तं,
ध्यायेद् रेवाजलस्थं युवतिभिरभितः क्रीडमानं मदान्धम् ।
मज्जन्तं नग्नरूपम्प्रमुदितमनसं लोलरक्तायताक्षं,
हस्ताब्जैः स्वैः सहस्रैर्भृशपरिविततै रुध्यमानं जलौघान् ॥१३०॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मत्री मन्त्रवीर्यमनुत्तमम् ।
सर्वार्थसिद्धयै सम्यक् च वश्यायाऽऽशु विशेषतः ॥१३१॥

जले भयं यदि स्याच्चेत्तदैवं संस्मरेद् बुधः ।
अन्यथा वक्ष्यते ध्यानं राज्यैश्वयप्रसिद्धये ॥१३२॥

माहिष्मत्यां महात्मा[2] कनकमणिगणालङ्कृताङ्गं सभाया-
मासीनं मन्त्रिमध्ये रविरुचिविलसद्रत्नपीठे प्रसन्नम् ।
ध्यायेत् स्वैर्बाहुदण्डैर्धृतशरनिकरेष्वासवर्मासिपाश-
प्रासाद्यैः सर्वसिद्धयै सकलदुरितचोरापहृत्यै च लक्ष्म्यै ॥१३३॥

---

१. ख. पडित्यु० । २. ख. महात्म ।

परचक्रभये प्राप्ते तावद्राज्ञो महात्मनः ।
अन्यथा वक्ष्यते ध्यानं रक्षायै चाऽऽशु सर्वदा ॥१३४॥

दशशतहययुतरथवरनिलयं त्रैलोक्यभीषणं ध्यायेत् ।
मध्याह्नार्कसमानं गर्ज्जनतस्तर्ज्जयन्नचलान् ॥१३५॥

[1]दोर्मण्डलैस्तथाऽऽयुधमण्डलमाक्षिपन्तमाशुचरम् ।
कुण्डलमण्डितगण्डं खण्डितसर्वारिमण्डलं मन्त्री ॥१३६॥

नानायुधनिकरधरैः पदातिभिर्वेष्टितं तथा रथिभिः ।
अभितो गजयूथयुतैर्हयमादिभिरुल्वणैश्च पत्तैः स्वैः ॥१३७॥

ध्यात्वा यो वै मन्त्रमिति प्राङ्मुखो जपेन्नियतः[2] ।
स तु सकलवाञ्छितार्थान्मासेन लभेदयत्नवानपि च ॥१३८॥

यन्त्रमस्योच्यते देवि सर्वकर्मार्थसिद्धये ।
आदौ चतुर्दलं पद्मं लिखेदष्टदलं बहिः ॥१३९॥

तद्बहिः षोडशदलं द्वात्रिंशत्तद्बहिर्दलम् ।
कर्णिकायां लिखेद्बीजं कार्त्तवीर्यस्य गोपतेः ॥१४०॥

वेदादिनतिमध्यस्थं साध्यनाम च दिग्दले ।
दलाष्टके द्विशो लिख्यान्मन्त्रार्णान् बिन्दुसंयुतान् ॥१४१॥

षोडशारदले लिख्यात् कामराजमनूत्तमम् ।
द्वात्रिंशतिदले तस्याऽनुष्टुबर्णान् समालिखेत् ॥१४२॥

एकैकशो बहिर्मालामन्त्रेणैतत् प्रवेष्टयेत् ।
तद्बहिः कादिभिर्वीतं प्रतिलोमानुलोमतः ॥१४३॥

क्रूँ ख्रूँ ग्रूँ घ्रूँ महाबीजैश्चतुर्भिः पूरयेत् सुधीः ।
चतुर्दलान्तराले तु च्रूँ छ्रूँ ज्रूँ झ्रूँ पुनस्तथा ॥१४४॥

ट्रूँ ठ्रूँ ड्रूँ ढ्रूँ महाबीजैः त्रूँ थ्रूँ द्रूँ ध्रूँ पुनस्तथा ।
प्रूँ फ्रूँ ब्रूँ भ्रूँ महाबीजैर्य्रूँ रूँ ल्रूँ व्रूँ पुनस्तथा ॥१४५॥

---

१. ख. लना. दोर्दण्डमण्डलैरायुध० ० । २. ख. ०न्नियतम् ।

श्रूँ ष्रूँ स्रूँ ह्रूँ पुनर्यन्त्रमेतैर्बीजैः समाहितः ।
द्विरावृत्या लिखेद् देवि बहिर्वै भूतमण्डले ॥१४६॥

भूताक्षराणि विलिखेत् तत्तत्कार्यसमाप्तये ।
एतद्यन्त्रस्य माहात्म्यं को नु जानाति पार्वति ॥१४७॥

किमु देवादयः सर्वे सुरासुरनमस्कृते ।
अहं जानामि विष्णुश्च दत्तात्रेयश्च तद्गुरुः १४८॥

प्रभावमस्य देवेशि यन्त्रस्याऽखिलभूपतेः ।
तद्यन्त्रधारकं दृष्ट्वा भीता भूतादिवैरिणः ॥१४९॥

चोररोगादयश्चाऽपि प्राद्रवन्ति न संशयः ।
स्वर्णपत्रे स्थितं यन्त्रमेतत्सर्वार्थदं क्षणात् ॥१५०॥

विश्वैश्वर्यप्रदं विश्वमोहनं क्षोभकन्तथा ।
राजते विलिखेदेतद् राज्यलाभाय मन्त्रवित् ॥१५१॥

ताम्रे च सर्वरक्षायै फलके वाऽम्बरेऽपि वा ।
भित्तौ वा सर्ववश्याय भूर्जपत्रे समालिखेत् ॥१५२॥

चन्दनागुरुकर्पूररोचनासृगुशीरकैः ।
लाक्षामृगमदाद्यैश्च विलिखेद् वश्यकर्मसु ॥१५३॥

लिखेदष्टविषेणाऽथ[1] मारणादिषु कर्मसु ।
अष्टगन्धेन वादेऽपि गुर्वनुज्ञापुरस्सरम् ॥१५४॥

कारस्करस्य फलके तथा वैकङ्कतोद्भवे[2] ।
अक्षजे वाऽथ पाषाणे शरावे वा समाहितः ॥१५५॥

एतद्यन्त्रं ध्वजाग्रस्थं युद्धयमानस्य शत्रुभिः ।
एतद् दृष्ट्वाऽरयः सर्वे प्राद्रवन्ति न संशयः ॥१५६॥

यत्र यत्र स्थितं यन्त्रं तत्र तत्र जयो भवेत् ।
नागाश्च नागकन्याश्च यक्षण्यश्च सुराङ्गनाः ॥१५७॥

---

१. ख. लिखेदष्टविशेषेणाथ । २. क. वंकन्ततोद्भवे ।

नरनारीनृपगणा दृष्ट्वा तद्यन्त्रधारिणम् ।
आगत्य दृष्ट्वा मोहेन तस्मै दद्युश्च वाञ्छितम् ।।१५८।।

तद्यन्त्रकलशासेकाद् वन्ध्या पुत्रं प्रसूयते ।
राजाऽभिषिक्तो भवति शत्रूनिर्यातिवानपि[1] ।।१५६।

त्रैलोक्यमपि चाऽनेन रक्षयेत्तु समाहितः ।
बहुना किमिहोक्तेन यन्त्रमेतदनुत्तमम् ।।१६०।।
सर्वकार्यार्थदं नॄणां कुर्यान्मन्त्री विचक्षणः ।

।। **अथैतद्यन्त्ररचनाप्रकारः** ।।

तत्र प्रथमं चतुर्द्दलकमलं, तद्बहिरष्टदलं, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलमिति कमलचतुष्टयं निष्पाद्य, तत्कर्णिकायां ससाध्यं कार्त्तवीर्यबीजं विलिख्य, चतुर्द्दलेषु 'ॐ अमुकं मे वशमानय नमः' इति प्रतिदलं लिखेत् । अत्र वशमित्युपलक्षणम् । स्तम्भय-मोहय-द्वेषयेत्यादि स्वेष्टकर्मपदं लिखेदिति । ततोऽष्टदलेषु विंशत्यक्षरमूलमन्त्रस्य प्रणवमूलबीजं नमःपदात्मकाक्षरचतुष्टयं विहाय, द्वितीयबीजादिनाय-इत्यन्तान् षोडशवर्णान् सबिन्दून् द्विशो द्विशः प्रतिदलं विलिख्य, तद्बहिः षोडशदलेषु प्रतिदलं कामबीजमालिख्य, तद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलेषु वक्ष्यमाणकार्त्तवीर्यानुष्टुभस्यैकैकमक्षरं सबिन्दुकं विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तद्वयान्तराले पूर्वोक्तचतुष्षष्टिवर्णमालामन्त्रेण संवेष्टय, तद्बहिर्वृत्तत्रयान्तरालगतवीथीद्वयेऽन्तर्वीथ्यां प्रतिलोमेन मातृकार्णैरावेष्टय, बहिर्वीथ्यामनुलोमेन तैरेव वर्णैरावेष्टय, चतुर्द्दलस्याऽन्तरालचतुष्टये प्रमाणोक्तककारादि-हकारान्तेष्वष्टाविंशतिबीजेषु कवर्गोत्थबीजचतुष्टयमष्टदलान्तरालेषु टवर्गोत्थं बीजाष्टकं च विलिख्य, षोडशदलान्तरालेष्ववशिष्टषोडशबीजानि विलिख्य, द्वात्रिंशद्दलान्तरालेषु पुनः कादि-हान्तोत्थाष्टाविंशतिबीजान्यष्टाविंशत्यन्तरालेषु विलिख्य, पुनः कवर्गोत्थ बीजचतुष्टयं शिष्टान्तरालचतुष्टये लिखेत् । अत्र केचिदादिबीजचतुष्टयं चतुर्द्दलान्तरालेषु प्रथमं विलिख्य, पुनस्तदाद्यान्यष्टाविंशतिबीजानि अष्टदलान्तरालादिषु द्विरावृत्या लिखेदिति वदन्ति । नैतदस्मदाराध्यचरणसम्मतम् । यथागुरूपदेशं लेख्यमिति । ततस्तद्बहिस्तत्तत्कार्योपयोगिभूतमण्डलं विलिख्य, तत्र तत्र[2] तत्तद्भूताक्षराणि च प्रागुक्तयुक्त्या लिखित्वा यथाविधि विनियुञ्जीत । यथोक्तफलसिद्धिर्भवतीति । तथा—

१. क. शत्रूनियति० । २. ख. लना. नास्ति ।

अनुष्टुबुच्यतेऽथाऽस्य कार्त्तवीर्यस्य भूपतेः ।
एतत्सौम्यं च रौद्रं च सर्वकामफलप्रदम् ॥१६१॥

कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ।
तस्याऽनुस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यते ॥१६२॥

स्वयं छन्दः स्मृतः[1] पादैः सर्वैः पञ्चाङ्गकं भवेत् ।
अनुष्टुभस्ततो ध्यानं द्विविधं वक्ष्यतेऽधुना ॥१६३॥

कैलासाद्रिसमप्रभेभपतिपृष्ठस्थं महाभीषणं,
नागस्यन्दनसत्रिपत्तिनिकरैराघूर्णितैरावृतम् ।
दोर्दण्डाम्बुजबद्धचापसशरं पाशाङ्कुशैरावृतं,
ध्यायेद्यं तमरातिवर्गहननायाऽतीवसम्पत्तये[2] ॥१६४॥

वने महाचोरभये गजानां युद्धे च रात्रिग्रहरक्षणाय ।
एवं स्मरन्मन्त्रवरं प्रजप्यादानुष्टुभं संयतधीर्हि देवि ॥१६५॥

स्वैर्हस्ताब्जैः सहस्रैर्धृतकमलसहस्रं स्मरन्मन्त्रमेनं,
जप्यादासीनमब्जे निखिलमणिगणालङ्कृताङ्गं[3] प्रसन्नम् ।
बुद्ध्वैनं योगनिष्ठं मुनिभिरभिवृतं दीप्तमर्कौघतुल्यं,
स्वर्णाप्त्यै गोसमृद्ध्यै सकलधनसमृद्ध्यै च मन्त्रं महान्तम् ॥१६६॥

संवननाय जनानां दीर्घायुर्वर्द्धनाय रोगाणाम् ।
शान्त्यै च वसुसमृद्ध्यै ध्यायेदित्थं महाभयेऽपि तथा ॥१६७॥

आशापत्रे सरोजे दलमनु चतुरोऽनुष्टुबवर्णान् विलिख्या-
त्तद्बीजं कर्णिकायां स्वरयुगविलसत्केसरं[4] कादिवीतम् ।
मालामन्त्रार्णवीतं दलविवरलसत्तस्य गायत्रिवर्णा-
स्तिस्रो भूतार्णवृत्तं सकलसुखकरं यन्त्रमानुष्टुभाख्यम् ॥१६८॥

अस्याऽर्थः—तत्राऽष्टदलकमलकर्णिकायां ससाध्यं कार्त्तवीर्यबीजं विलिख्य, तत्केसरेषु द्वन्द्वशः स्वरानालिख्य, तद्दलेष्वानुष्टुभमन्त्रस्य चतुरश्चतुरो वर्णान् विलिख्य, तेष्वेव वक्ष्यमाणकार्त्तवीर्यगायत्रीवर्णांस्त्रिशस्त्रिशो विलिख्य, तद्बहिर्वृत्त-

१. लना. स्मृत । २ क. ख. ध्यायेद्यान्निमरातिवर्गहननायाऽऽवीतसम्पत्तये ।
३. ख. ०लबुताङ्ग । ४. ख. लना. स्वरयुगललसत्० ।

त्र्यान्तरालगतवीथीद्वयेऽभ्यन्तरवीथ्यां ककारादि-क्षकारान्तैर्वर्णैरावेष्टच, बहिर्वीथ्यां प्रागुक्तचतुष्षष्टचक्षरमालामन्त्रेण संवेष्टच, तद्बहिर्वृत्तं कृत्वाऽभ्यन्तरे प्राग्वत् कार्यानुसारेण तत्तद्वर्णांल्लिखेदित्युक्तफलदं भवतीति ।

'कार्त्तवीर्याय विद्महे सहस्रकराय धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात्' ।

सर्वमन्त्रप्रयोगेषु जप्तव्यैषा हितार्थिना ।
गायत्री जपमात्रेण मन्त्रवीर्यप्रवर्द्धिनी ।।१६९।।

मन्त्रस्याऽस्य जपाद् देवि नष्टद्रव्यं च लभ्यते ।
हृताश्चोरा भविष्यन्ति नष्टद्रव्यं च सिद्धचति ।।१७०।।

श्रीयन्त्रसारे —

क्ष्रौँ बीजान्तस्थसाध्यं दहनपुरयुगाश्रिष्वथो[1] चक्रमन्त्रं,
सन्धिष्वप्यङ्गषट्कं स्वरयुगललसत्केसरे चाऽष्टपत्रे ।
आलिख्यान्मन्त्रवर्णाञ्जलधिपरिमितान् वेष्टयेद् व्यञ्जनार्णै —
र्भूगेहस्थं तदेतन्निखिलसुखकरं कार्त्तवीर्यस्य यन्त्रम् ।।१७१।।

सर्वरक्षाकरमिदं धनधान्यसमृद्धिदम् ।
स्थापितं भवने क्षेत्रे सर्वसम्पत्करं नृणाम् ।।१७२।।
चोरभूतपिशाचादिव्याघ्रादिभयनाशनम् ।

करधृतमेतद्यन्त्रं विलिख्य कनकादिषु च पट्टेषु ।
वितरति योद्धुर्युद्धे विजयं रक्षां महत्तरां लक्ष्मीम् ।।१७३।।

अस्याऽर्थः—अष्टदलकमलमध्यस्थषट्कोणमध्ये ससाध्योदरं नृसिंहबीजं विलिख्य, षट्सु कोणेषु सुदर्शनषडक्षरं, सन्धिषु तत्षडङ्गानि, केसरेषु युगशः स्वरान्, दलेषु 'ॐ नमो भगवते कार्त्तवीर्यार्जुनाय महाबलाय सर्वदुष्टविनाशनाय हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रस्य चतुरश्चतुरो वर्णान् विलिख्य, तद्बहिर्वृत्तयोरन्तराले कादि-क्षान्तार्णैः संवेष्टच तद्बहिश्चतुरश्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदम्भवतीति ।

तद्यन्त्रस्थापनान्नृणां रक्षा सर्वत्र जायते ।
वाञ्छितार्थाः प्रसिद्धयन्ति भूतादपि तथा प्रिये ।।१७४।।

---

१. ख. ०युगाश्रिष्वथो । लना. ०युगाश्विष्वथो ।

आनुष्टुभजपाद् रात्रौ तपःस्वाध्यायतत्परः ।
तिष्ठन् प्रत्यङ्मुखो नित्यं शतमष्टोत्तरं प्रिये ॥१७५॥

मण्डलान् म्रियते चौरो विकलाङ्गोऽथ वा भवेत् ।
जपमात्रेण वा चौरो भविष्यति न संशयः ॥१७६॥

यस्यां दिशि भयं देवि विद्यते मन्त्रवित्तमः ।
नित्यं तत्सम्मुखे रात्रौ जपेच्चाऽऽनुष्टुभं मनुम् ॥१७७॥

भयानि न भवन्त्यस्य नाऽत्र कार्या विचारणा ।
आसीनो वा जपेन्मन्त्री मन्त्रसाधनकर्मणि ॥१७८॥

अनेन तर्प्पयेत् प्राज्ञो वाञ्छिताप्त्यै जलैः शुभैः ।
हुनेद्वा पूर्वसम्प्रोक्तद्रव्यैर्मन्त्री सुरेश्वरि ॥१७९॥

अनुष्टुभेन मन्त्रेण साधयेत् साधकोत्तमः ।
सर्वकार्याणि संसिद्धः स्वयं मन्त्री समाहितः ॥१८०॥

॥ **इत्यानुष्टुभमन्त्रः** ॥

तथा— प्रवक्ष्यामि च सिद्धयर्थं सर्वकार्येषु सुन्दरि ।
येनाऽऽशु मुनयः सिद्धिं गताः पूर्वं महाहवे ॥१८१॥

"ॐ नमो भगवते श्रीकार्त्तवीर्यार्जुनाय हैहयनाथाय श्रीकार्त्तवीर्यार्जुन सहस्रकरसदृश सर्वदुष्टान्तक सर्वशिष्टेष्टद सर्वत उदधेरागन्तुकामानस्मद्वसुविलुम्पकांश्चोरसमूहान् स्वकरसमूहैर्निवारय निवारय[1] रुन्ध रुन्ध स्वपाशसहस्रैर्बन्धय बन्धय अङ्कुशसहस्रैराकर्षय आकर्षय स्वचापोद्गतबाणसहस्रैर्भिन्द भिन्द स्वहस्तोद्गतखड्गसहस्रैश्छिन्द छिन्द[2] स्वहस्तोद्गतमुशलसहस्रैर्मर्द मर्द स्वशङ्खोद्गतनादसहस्रैर्भीषय भीषय स्वहस्तोद्गतचक्रसहस्रैर्निकृन्तय निकृन्तय परकृत्यां त्रासय त्रासय गर्ज गर्ज आकर्षय आकर्षय भ्रामय भ्रामय मोहय मोहय उद्वासय उद्वासय उन्मादय उन्मादय तापय तापय विनाशय विनाशय विदारय विदारय स्तम्भय स्तम्भय जृम्भय जृम्भय मारय मारय वशं कुरु कुरु उच्चाटय उच्चाटय विनाशय विनाशय दत्तात्रेयश्रीपादप्रिय नमः श्रीकार्त्तवीर्यार्जुन सर्वत उदधेरागन्तुकामानस्मद्वसुविलुम्पकान् चोरसमूहान् सम्यगुन्मीलयोन्मूलय हुँ फट् स्वाहा" **अयं मालामन्त्रः** ।

---

१. ख. नाऽस्ति । २. क. ०छिद छिद ।

अस्य मन्त्रस्य दत्तात्रेय ऋषिर्गायत्रीछन्दः, श्रीकार्त्तवीर्यार्जुनो देवता, दत्तात्रेयप्रियतमाय[1] हृदयाय नमः, माहिष्मतीनाथाय शिरसे स्वाहा, रेवाजलक्रीडासक्ताय शि०, हैहयाधिपतये क०, सहस्रबाहवे अ०। ध्यानम्—

दोर्दण्डैकसहस्रसम्मितकरेष्वेतेष्वजस्रं दध-
त्कोदण्डैः सशरैरुदग्रविशिखैरुद्यद्विवस्वत्प्रभुः।
ब्रह्माण्डं परिपूरयंस्तदखिलं गण्डस्थलान्दोलित[2]-
द्योतत्कुण्डलमण्डितो विजयते[3] श्रीकार्त्तवीर्यः प्रभुः ॥१८२॥

एवं ध्यात्वा समभ्यर्च्य सर्वकर्माणि कारयेत्।
त्रिसहस्रजपः प्रोक्तः शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१८३॥

मन्त्रभेदेषु पूजाया ऋष्यादिन्यासतस्ततः।
पूजयेत्तत्तदङ्गाद्यं पूर्वोक्तावरणैर्बुधः ॥१८४॥

अनेन मन्त्रराजेन सर्वकर्माणि कारयेत्।
मालामन्त्रजपाच्छत्रूंश्चौरांश्चाऽपि[4] महाबलान् ॥१८५॥

क्षपयेत् स्तम्भयेद्वाऽपि[5] चाटयेन्मारयेत्तदा।
वशयेत् तत्क्षणाद्देवि त्रैलोक्यमपि मन्त्रवित् ॥१८६॥

क्षोभयेत् स्तम्भयेत् प्राज्ञः क्षमयेच्च[6] ज्वरादिकान्।
क्षिप्रं समीहितार्थाप्त्यै[7] मालामन्त्रः प्रजायते ॥१८७॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण ध्यायेत् तन्मन्त्रदेवताम्।

ध्यानम्— चक्रेषुखड्गमुसलाख्यकुठारपाश—
[8]प्रासाख्यचर्मधृतशङ्खकरैः सहस्रैः।
दक्षोत्तरैः प्रतिशतैररुणाम्बराढ्यं[9],
मध्यन्दिनार्कसदृशं स्मरताऽतिघोरम् ॥१८८॥

रक्ताम्बराक्षमतिभीषणमेकनाथं,
नीलाम्बुदाभगजपृष्ठगतं सहस्रैः।
संवेष्टितं सकलदुष्टहरं विशिष्टं,
शिष्टेष्टदं सकलदुःखनिवारणाय ॥१८९॥

---

१. क. लना. प्रियतमा। २. ख. गन्धस्थला०। ३. क. विजये। ४. ख, श्चोरीश्चापि।
५. लना. ०वाप्युच्। ६. ख. शमयेच्च। ७. क. समाहितार्थाप्त्यै। ८. क. प्राशाख्य०।
९. लना. ०ररुणं बलाढ्यं।

एवं ध्यात्वा जपेमन्त्रं मालामन्त्रमनुत्तमम् ।
अर्द्धरात्रे विशेषेण नष्टद्रव्याप्तिसिद्धये ॥१९०॥

चौरैर्हृतं[1] समानेतुं नित्य [मष्टोत्तरं शतम् ।
जपेन्निश्येकपादेन सदा रात्रौ विचक्षणः ॥१९१॥

हृतद्रव्यं [2]प्रगृह्याऽतिकृच्छ्रेण भ्रान्तमानसः ।
समेत्य मन्त्रिणे चोराः प्रार्थयिष्यन्त्य][3] संशयः ॥१९२॥

नाऽऽयाति चेदरिस्तस्य षण्मासाज्जपमात्रतः ।
चोरैर्हृतपशून्मन्त्री यदाऽऽनेतुं[4] समिच्छति ॥१९३॥

अनेन मनुना नाऽऽसां[5] कण्ठपाशं जपेन्निशि ।
प्रगृह्य देवतां ध्यायन् नित्यमष्टोत्तरं शतम् । १९४॥

आयान्ति स्वगृह गावो द्वादशाहैर्विमोचिताः ।
आयान्ति त्रिदिने देवि सितसर्षपहोमतः ॥१९५॥

हुतशेषं हुनेद्रात्रौ चोरैर्द्रव्यसमाहितः ।
व्रीहिधान्यादिक मन्त्री गुर्वादिशेन तत्क्षणात् ॥१९६॥

हृतं प्रकाश्यते देवि चोरैर्झटिति[6] नाऽन्यथा ।
बाणान् प्रवेशयेद्रात्रौ धनुषा[7] ध्यानतत्परः ॥१९७॥

दश दिक्षु जपेन्मन्त्रं गृहस्य नगरस्य च ।
राष्ट्रस्य चाऽपि देशस्य चरणाद्यद्वयोमयात्[8] ॥१९८॥

मन्त्रमूर्त्तिः स्वयं कृत्वा रक्षायै जगतो भयात् ।
मन्त्रेण परिजप्तानि पार्थिवानि रजांस्यथ ॥१९९॥

क्षिप्तानि मन्त्रिणा यत्र तत्र रक्षा भवेन्निशि ।
तर्पयेद्वा हुनेद्वाऽपि जपमानस्य नित्यशः ॥२००॥

सर्वार्थसिद्ध्यै लक्ष्म्यै च रक्षायै च विशेषतः ।
सर्वत्र भूपतेर्ध्यान विना ध्यानं न सिद्ध्यति ॥२०१॥

---

१. लना. चौरैर्हृतं । २. ख. प्रगृह्येति । ३. [—] कोष्ठकगतोंऽशो लना. पुस्तके नाऽस्ति ।
४. क. जघानेतुं । लना. यद्यानेतुं । ५. क. लना. तासां । ६. ख. ०झंगिति । ७. ख. धेनुषा ।
८. लना. चरणाद्यव्ययोमयात् ।

यथा च लभ्यते[1] ध्यानं गुरुभक्तेन सुन्दरि ।
नाऽन्येन लभ्यते[2] ध्यानं मन्त्रिणा चेति निश्चयः ॥२०२॥

सर्वथा[3] कुर्वतः कर्म जपहोमार्च्चनादिभिः ।
विना ध्यानेन चेत्सर्वं तत्फलं नाऽस्य सिद्धयति ॥२०३॥

गुर्वाज्ञातत्परश्चेत् स्याद्विना ध्यानादपि[4] प्रिये ।
सिद्धयन्ति सर्वकर्माणि तस्य नाऽस्त्यत्र संशयः ॥२०४॥

तस्मात्प्राज्ञः सदा यत्नाद् गुरुभक्तिं +समाचरेत् ।
प्राणेन च धनैः सर्वैः कर्मणा मनसा गिरा ॥२०५॥

सर्वदा सर्वदेवेशि गुरोराज्ञां न लङ्घयेत् ।
कृतवीर्यसुतस्याऽस्य मन्त्रभेदं सविस्तरम्+[5] ॥२०६॥

गदितं देवदेवेशि मया गुह्यमनुत्तमम् ।
त्वया चैतन्महामन्त्रं न प्रकाश्यं दुरात्मने ॥२०७॥

विष्णुभक्ताय दातव्यमतिगुह्यं सुदुर्लभम् ।
सर्वरक्षाकरं देवि चोरनाशं मलापहम् ॥२०८॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं देवि सत्यं सत्यं न संशयः ।

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक ॥२०९॥

पृच्छामि त्वां सुरश्रेष्ठ लोकानां हितकाम्यया ।
कार्त्तवीर्यस्य नृपतेर्वंद[5] दीपविधिं प्रभो ॥२१०॥

॥ ईश्वर[6] उवाच ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोकानुग्रहकाम्यया ।
गुह्यं च मम सर्वस्वं न चाऽऽख्येयं दुरात्मने ॥२११॥

राजचौरादिपीडासु ग्रहरोगभयेषु च ।
नानादुःखेषु देवेशि सुखप्राप्त्यै तथैव च ॥२१२॥

१-२. ख. लभते । ३. ख. लना. सर्वदा । ४. लना. दपि । ५. +—+ चिह्नान्तःस्थोंशो नाऽस्ति लना. पुस्तके । ६. क. ०वंर । ७. क. ईश्वरो ।

दीपं कुर्वीत विधिवद् गुरुदर्शितमार्गतः ।
सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्ये लोहेऽथ मृण्मये ॥२१३॥

गोधूममाषमुद्गानां चूर्णेन घटितेऽपि वा ।
सौवर्णे कार्यसिद्धिः स्याद् रौप्ये वश्यं जगद् भवेत् ॥२१४॥

ताम्रे तयोरभावेऽपि कांस्ये विद्वेषणं भवेत् ।
मारणं लोहपात्रे तु उच्चाटो मृण्मये तथा ॥२१५॥

गोधूमचूर्णघटिते विवादे विजयो भवेत् ।
माषे शत्रुमुखस्तम्भः स्यान्मुद्गे शान्तिरुत्तमा ॥२१६॥

अलाभे सर्वपात्राणां ताम्रे कुर्याद् विचक्षणः ।
सप्त पञ्च तथा तिस्र एका वा वर्त्तिका भवेत् ॥२१७॥

गुरुकार्येऽधिकाः कार्याः स्वल्पे स्वल्पा मताः प्रिये ।
सूत्रं श्वेतं तथा पीतं माञ्जिष्ठं च कुसुम्भकम् ॥२१८॥

कृष्णं च कर्बुरं चैव क्रमतो विनियोजयेत् ।
सर्वाभावे सितेनैव कुर्याद् वर्त्तीः पृथक् पृथक् ॥२१९॥

दश पञ्चाधिकाश्चैव [1]विंशतिस्त्रिंशत्तथैव च ।
चत्वारिंशत्तथा कार्याः पञ्चाशदपि वा भवेत् ॥२२०॥

तत्तत्कार्यवशाद् देवि कुर्यात्तन्तून् समाहितः ।
गोघृतेन प्रकर्त्तव्यो दीपः सर्वार्थसिद्धये ॥२२१॥

गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ यन्त्रं समालिखेत् ।
कपिलागोमयेनैव षट्कोणं रचयेत्ततः ॥२२२॥

मारबीज कर्णिकायां षट्कोणे बीजषट्ककम्[2] ।
दिक्षु बीजचतुष्कं च शेषैः संवेष्टयेद्धि तत् ॥२२३॥

तत्र प्रत्यङ्मुखो दीपः स्थाप्यः सर्वाङ्गसुन्दरि ।
प्राणानायम्य विधिवन्मूलेनाऽङ्गं समाचरेत् ॥२२४॥

मूलेन प्राणानायम्य प्रागुक्तं पञ्चाङ्गं कुर्यादित्यर्थः ।

---

१. ग. विंशतिस्त्रिंशत्० । २. ख. बीजषट्कन् ।

यन्त्रराजं विलिख्याऽथ ताम्रपात्रेऽष्टगन्धकैः ।
स्थापयेत् पूर्वतस्तस्य कुर्यात् सङ्कल्पमादरात् ॥२२५॥

तारं पूर्वं समुद्धृत्य वक्त्रवृत्तं समुद्धरेत् ।
संयोजयेत्तत्सोमार्द्धनादेन च पुनः सति ॥२२६॥

व्योमार्द्धेन्द्वग्निना देव्यो युक्तं तदपि संलिखेत् ।
वषट्पदं ततः कार्त्तवीर्यार्जुनपदं तथा ॥२२७॥

माहिष्मतीनाथपदं सहस्रबाहुमुच्चरेत् ।
सहस्रक्रतुदीक्षितदत्तात्रेयप्रियस्तथा ॥२२८॥

ङेऽन्तान्येतानि सम्प्रोच्य आत्रेयाय पठेत् पुनः ।
अनुसूयागर्भरत्नपदं ङेऽन्तं समुद्धरेत् ॥२२९॥

व्योमाग्निवामकर्णेन्दुनादयुक्तं[1] पुनः प्रिये ।
चक्रिणं पुनरुद्धृत्य वह्निनादेन संयुतम् ॥२३०॥

वामकर्णेन्दुसंयुक्तमिमं दीपं पुनर्वदेत् ।
गृहाणेति पदं पश्चादमुकं रक्ष रक्ष च ॥२३१॥

दुष्टान्नाशय पातय घातयेति वदेद् द्विशः ।
शत्रूञ्जहि जहीत्युक्त्वा मायां प्रणवमुच्चरेत् ॥२३२॥

स्वबीजं मारबीजं च [2]वामाक्षिबिन्दुसंयुतम् ।
वह्निजायां वदेत् पश्चान्मन्त्रशास्त्रविशारदः ॥२३३॥

अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन च ।
मां रक्ष च वदेद् देवि देवदत्तपदं पुनः ॥२३४॥

वरप्रदानाय-पदं व्योमयुग्मं वदेत्ततः ।
करणेन्दुसमायुक्तं नादेन च पुनः प्रिये ॥२३५॥

व्योमाग्निमायासंयुक्तं नादयुक्तं पुनर्वदेत् ।
तारं मारं द्वितीयं च बीजं प्रोक्त्वा वदेत्ततः ॥२३६॥

---

१. क. ०नादमुक्तं । २. ख. वामाक्ष० ।

वह्निजायां ततो देवि जलं भुवि विनिक्षिपेत् ।

मन्त्राः प्रयोगे स्पष्टयितव्याः । तथा—

त-पवर्गौ सनादौ च वेदादिर्वह्निवल्लभा ॥२३७॥

पश्चिमाभिमुखो भूत्वा कृत्वा च करसम्पुटम् ।
सकृज्जप्त्वा पुनर्म्मन्त्री जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥२३८॥

तारं नारायणं सेन्दुं व्योमाग्निनादसंयुतम् ।
मायायुक्तं समुद्धृत्य प्रथमं मायया युतम् ॥२३९॥

उद्धरेच्च द्वितीयन्तु बीजं स्याद् वह्निवल्लभा ।
चक्रिणं वह्निसंयुक्तं तारं नादयुत प्रिये ॥२४०॥

तारमुद्धृत्य प्रजपेद्[1] दीपाग्रे वै सहस्रकम् ।
अनेन विधिना देवि कार्त्तवीर्यस्य गोपतेः ॥२४१॥

दीपो देयः प्रयत्नेन सर्वकार्यमभीप्सता ।
गुरोराज्ञां पुरस्कृत्य कुर्याद्देवि प्रयत्नतः ॥२४२॥

अन्यथा हि कृतं लोके विपरीतफलं भवेत् ।
विधानं दीपदानस्य कृतघ्नपिशुनाय च ॥२४३॥

ब्रह्मकर्मविहीनाय न वक्तव्यं कथञ्चन ।
सुभक्ताय सुशिष्याय साधकाय विशेषतः ॥२४४॥

विधिना देवि वक्तव्यं मम प्रीतिकरं शिवे ।
किम्बहूक्तेन भो देवि कल्पोऽयमखिलार्थदः ॥२४५॥

अथाऽभिधीयते मानमाज्यस्य वरवर्णिनि ।
साधकानां हितार्थाय सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥२४६॥

पलानां पञ्चविंशत्या दीपो देयोऽर्थसिद्धये ।
पञ्चाशता चोरशान्त्यै शत्रुवश्याय चेष्यते ॥२४७॥

पञ्चसप्ततिभिर्देवि शत्रूणां स्यात्पराजयः ।
शतेन शत्रुनाशः स्यात् सहस्रेणाऽखिलाः क्रियाः ॥२४८॥

---

१. लना. प्रभयेद् ।

सिद्धयन्ति साधकानां हि प्रयोगा येऽपि दुष्कराः ।
नित्यदीपेन मानं हि कार्यः सोऽपि स्वशक्तितः ॥२४६॥

यथाकथंञ्चिद्देवेशि नित्यं दीपम्प्रकल्पयेत् ।
कार्त्तवीर्याय देवाय सर्वकल्याणसिद्धये ॥२५०॥
गुरुकार्येऽधिकं मानं कर्त्तव्यं देवि सर्वदा ।

सहस्रादपीति ।

अल्पद्रव्यैः प्रकर्त्तव्यस्त्वल्पे कार्ये वरानने ॥२५१॥

विना मानं न कुर्वीत कार्त्तवीर्यस्य भूपतेः ।
दीपं देवेशि कार्यार्थी कुर्वन्नेष्टमाप्नुयात् ॥२५२॥

॥ अथैतत्प्रयोगः ॥

तत्र साधकः कृतनित्यकृत्यः शुभे स्थाने पूजिते स्वासने पश्चिमाभिमुख उपविश्य, स्वपुरतो रहसि वितानादिभिरलङ्कृते गृहे गोमयेनोपलिप्ते[1] स्थाने कपिलागोमयेन षट्कोणमण्डलं कृत्वा, तन्मध्ये कुङ्कुमचन्दनादिभिः कामबीजं विलिख्य, षट्सु कोणेषु मूलविंशत्यक्षरमन्त्रस्य प्रणवादिकामबीजरहितं बीजषट्कं विलिख्य, षट्कोणस्य चतुर्दिक्षु स्वाग्रादिशिष्टं बीजचतुष्टयं विलिख्य, कार्त्तादिनवभिर्वर्णैः षट्कोणं संवेष्ट्य, तत्र कार्यानुरूपेण प्रोक्तदीपपात्रे प्रोक्तवर्त्तीर्निक्षिप्य, प्रज्वाल्य, षट्कोणमध्ये पश्चिमाभिमुखं दीपं निधाय, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं ऋष्यादिन्यासजातं च विधाय, ताम्रादिपात्रे वैष्णवाष्टगन्धेन कार्त्तवीर्यस्य पूजायन्त्रं प्रागुक्तं विलिख्य, दीपस्य पूर्वभागे गोमयोपलिप्ते स्वाभिमुखं संस्थाप्य, 'ॐ अद्येत्यादि-तिथ्युल्लेखनान्ते स्वगोत्रनामाद्युच्चार्याऽमुककार्यसिद्धयर्थं दीपदानमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य, तस्मिन्यन्त्रे देवमावाह्य, सर्वोपचारैः साङ्गं सावरणं सम्पूज्य, दक्षिणहस्ते जलमादाय, "ॐ आँ ह्रीँ वषट् कार्त्तवीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्रक्रतुदीक्षिताय दत्तात्रेयप्रियाय अनुसूयागर्भरत्नाय ह्रूँ क्रूँ इमं दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष दुष्टान्नाशय नाशय पातय पातय घातय घातय शत्रूञ्जहि जहि ह्रीँ ॐ फ्रोँ क्लीँ ईँ स्वाहा अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन मां रक्ष रक्ष देवदत्तवरप्रदानाय [2]ह्रीं ह्रीँ ह्रीँ ॐ क्लीँ भ्रीँ स्वाहा" इमं मन्त्रं जपित्वा, तज्जलं भूमौ निक्षिप्य, पश्चिमाभिमुखो भूत्वा, कृताञ्जलिः "तँ थँ दँ धँ

१ ख गोमयेन लिप्ते । २. क. ह्रीं । नाऽयं पाठः समीचीनः सूत्रविरुद्धत्वात् (सम्पादकः) ।

नँ पँ फँ बँ भँ मँ ॐ स्वाहा" इति सकृज्जपित्वा, "ॐ श्राँ ह्रीँ फ्रीँ च्रीँ स्वाहा क्रोँ ॐ" इति मन्त्रं सहस्रावृत्ति जपित्वा, यावद्दीपस्तिष्ठति तावत्प्रत्यहं तस्मिन्यन्त्रे देवं पूजयेत् । दीपनिर्वाणे देवं विसर्जयेदिति । ततो देवाय जपं समर्प्य, स्तुत्वा प्रणमेत् । इत्थं यावद्धृतसमाप्तिर्यावत्कार्यसिद्धिस्तावत्कुर्यादिति **दीपदान-विधिः** ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ त्रिंशस्तरङ्गः ॥३०॥

———

[अथैकत्रिंशस्तरङ्गः]

शारदातिलके—

अथ वक्ष्ये महेशस्य मन्त्रान् सर्वसमृद्धिदान् ।
यैः पूर्वमृषयः प्राप्ताः शिवसायुज्यमञ्जसा ॥१॥

हृदयं व-परं साक्षि लान्तोऽनन्तान्वितो मरुत् ।
पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः ॥२॥

हृदयं नमःपदम्, वपरं शकारः, साक्षि इकारयुक्, तेन शि; लान्तो वकारः, अनन्त आकारस्तेनाऽन्वितस्तेन वा; मरुत् यकारः,

नन्दिकेश्वरमतेऽपि—

सुसमे भूप्रदेशे तु गोमयेनोपलेपिते ।
[1]पुष्पप्रकरशोभाढ्ये गन्धधूपतरङ्गिते ॥३॥

विलिखेन्मातृकां तत्र वर्गाष्टकविभेदतः ।
स्वरैः षोडशभिर्वर्गः प्रथमः परिकीर्त्तितः ॥४॥

पञ्च पञ्चाक्षराश्चाऽन्ये द्वावन्त्यौ चतुरक्षरौ ।
वर्गाष्टकं भवेदेवं ततो मन्त्रान् समुद्धरेत् ॥५॥

———

१. ख. पुष्पप्राकार० ।

पञ्चमस्य तु वर्गस्य पञ्चमं प्रथमं भवेत् ।
षष्ठवर्गान्तिमो वर्णः प्रथमान्त्यसमन्वितः ॥६॥

द्वितीयवर्णमाख्यातमष्टमस्याऽऽद्यमक्षरम् ।
प्रथमस्य तृतीयार्णसमेतं तत्तृतीयकम् ॥७॥

चतुर्थं सप्तमस्याऽऽद्यद्वितीयार्णसमन्वितम् ।
चतुर्थवर्णो मन्त्रस्य सप्तमाद्यं तु पञ्चमम् ॥८॥

एष पञ्चाक्षरो मन्त्रः प्रणवाद्यः षडक्षरः ।
यत्साधनात्तु मनुजाः शिवसायुज्यमाप्नुयुः ॥९॥

प्रणवस्तु परब्रह्मबोधकः समुदीरितः ।
पञ्चाक्षरमयानि स्युः पञ्चभूतानि सुव्रत ॥१०॥
भूतात्मकं जगदिदं तेनाऽस्य जगदात्मता[1] ।

स्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे—

शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ।
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ॥११॥

मन्त्राणाम्परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः ।
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रः केवलो मुक्तिदायकः ॥१२॥

संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैर्मुक्तिकांक्षिभिः ।
अस्यैवाऽक्षरमाहात्म्यं नाऽलं वक्तुं चतुर्मुखः ॥१३॥

श्रुतयो यत्र रमन्ते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ।
एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना ॥१४॥

लेभिरे मुनयः सर्वे परम्ब्रह्म निरामयम् ।
नमस्कारेण जीवत्वं शिवेति परमात्मनि ॥१५॥

ऐक्यं गतमतो मन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ।
भवपाशनिबद्धानां देहिनां हितकाम्यया ॥१६॥

---

१. ख. जगदात्मना ।

प्राहों नमः शिवायेति मन्त्रमाद्यं शिवः स्वयम् ।
किन्तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ॥१७॥

यस्यों नमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ।
तावद् भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसङ्कुले ॥१८॥

यावन्नोच्चारयन्तीमं मन्त्रं देहभृतः सकृत् ।
मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः ॥१९॥

सर्वज्ञाननिधानं च सोऽयं शैवः षडक्षरः ।
कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्यासिन्धुवाडवः ॥२०॥

महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च सङ्कीर्णैर्धार्यते[1] मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥२१॥

नाऽस्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः ॥२२॥

महापातकविच्छित्यै शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्प्यते ॥२३॥

उपदिष्टः[2] सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ।
सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीति किमद्भुतम् ॥२४॥

अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः ।
पुरा क्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धिं प्रयच्छति ॥२५॥

पदार्थादर्शे केचित् प्रणवानन्तरं प्रासादबीजप्रक्षेपात् सप्ताक्षरं वदन्ति ।

तन्त्रान्तरे तु—

आद्यन्ते सम्पुटीकृत्य सह वागीश्वरं मनुम् ।
शिवमन्त्रं जपेद्धीमान् सद्यः प्रत्ययमेष्यति ॥२६॥

सम्पुटं शिवमन्त्रस्य जपेन्मासमतन्द्रितः ।
एकाकी यतचित्तात्माऽवश्यमर्थं स विन्दति ॥२७॥

अत्र वागीश्वरशब्देन वाग्भवं ज्ञेयम् ।

---

१. क. ०र्वार्यंते । २. ख. उपविष्टः ।

नन्दिकेश्वरमते—

ऋषिरुक्तो वामदेवः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
सदाशिवो देवताऽस्य मन्त्रस्य परिकीर्त्तितः ॥२८॥
षडङ्गानि मनोर्वर्णैर्जातियुक्तानि कल्पयेत् ।

शारदातिलकेऽपि—

षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्रस्य देशिकः ।
ततस्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकाः ॥२९॥

मूलवर्णादिकान्न्यस्येत् त्रिषु स्थानेष्वतन्द्रितः ।
सतर्जनीमध्यमान्त्यानामङ्गुष्ठेष्वथाऽपरः ॥३०॥

आस्यहृत्पद्गुह्यमूर्द्ध्नि पञ्चवक्त्रेषु चाऽपरः ।
प्राग्याम्यवारुणोदीच्यमध्यवक्त्रेषु पञ्चसु ॥३१॥

ततः षडङ्गं विन्यस्येद् वक्ष्यमाणं यथाविधि ।
सर्वज्ञो नित्यतृप्तश्च बोधान्तोऽनादि कीर्त्तितः ॥३२॥

स्वतन्त्रशक्तिश्चाऽलुप्तशक्तिश्चाऽनन्तशक्तियुक् ।
मूलमन्त्रार्णपूर्वैश्च धाम्ने शब्दान्तिकैः क्रमात् ॥३३॥

षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ।
कुर्वीत गोलकन्यासं रक्षायै नन्दिकेश्वर ॥३४॥

हृदि वक्त्रांसयोरूर्वोः कण्ठे नाभौ द्विपार्श्वयोः ।
पृष्ठे हृदि ततो मूर्द्ध्नि वदने नेत्रयोर्नसोः ॥३५॥

दोःपत्सन्धिषु साग्रेषु विन्यस्य तदनन्तरम् ।
शिरोवदनहृत्कुक्षिसोरुपादद्वये पुनः ॥३६॥

हृदि वक्त्राम्बुजे कण्ठे मृगाभयवरेष्वथ ।
वक्त्रांसहृत्सुपार्श्वोरुजठरेषु क्रमान्न्यसेत् ॥३७॥

मूलमन्त्रस्य षड्वर्णान् यथावद् देशिकोत्तमः ।
मूर्द्ध्नि भालोदरांसेषु हृदये ताः पुनर्न्यसेत् ॥३८॥

पश्चादनेन मन्त्रेण कुर्याच्च व्यापकं सुधीः ।
नमोऽस्तु स्थाणुभूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने ॥३९॥

चतुर्मूर्त्तिवपुश्छायाभासिताङ्गाय शम्भवे ।
एव न्यस्ततनुर्नन्दिन् ध्यायेद्देवमनन्यधीः[1] ॥४०॥

गोक्षीरफेनधवलं रजताद्रिसमप्रभुम्[2] ।
चारुचन्द्रकलाराजज्जटामुकुटमण्डितम् ॥४१॥

पञ्चवक्त्रधरं शम्भुं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
शार्दूलचर्मवसनं रत्नाभरणभूषितम् ॥४२॥

दक्षोर्द्ध्वहस्ते परशुं वरं च तदधःकरे ।
वामोर्द्ध्वहस्ते हरिणं दधानमभयं परे ॥४३॥

सुप्रसन्नमुखाम्भोजं निविष्टं पद्मविष्टरे ।
ब्रह्मविष्णुमहेन्द्राद्यैः स्तुतं भक्त्या सुरासुरैः ॥४४॥

विश्वाद्यं विश्ववपुषं भवभीतिहरं शिवम् ।
इति ध्यात्वा गणश्रेष्ठ मानसैरर्चयेच्छिवम् ॥४५॥

उपचारैः षोडशभिर्बाह्यं पीठं समर्चयेत् ।
पद्मं वसुदलं कृत्वा कर्णिकाकेसरोज्वलम् ॥४६॥

बहिरष्टदलद्वन्द्वं चतुरश्रत्रयावृतम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं मण्डलेऽस्मिन् प्रपूजयेत् ॥४७॥

शारदातिलके—

देवं सम्पूजयेत्पीठे वामादिनवशक्तिके ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलपदादिका ॥४८॥

विकरण्याह्वया प्रोक्ता बलाद्या[3] विकरण्यथ ।
बलप्रमथनी पश्चात्सर्वभूतदमन्यथ ॥४९॥

मनोन्मनीति सम्प्रोक्ता शैवपीठस्य शक्तयः ।
नमो भगवते पश्चात्सकलादि वदेत्पुनः ॥५०॥

---

१. ख. ध्यायद्देव० । २. क. रजताद्रिसमं प्रभु । ३. क. बलाया ।

गुणात्मशक्तियुक्ताय ततोऽनन्ताय तत्परम् ।
योगपीठात्मने भूयो नमस्तारादिको मनुः ।।५१।।

तथा— एवं पीठं समभ्यर्च्य मूर्त्ति मूलेन तत्र वै ।
संस्थाप्य देवमावाह्य तस्यां सम्पूजयेच्छिवम् ।।५२।।

सर्वोपचारैराराध्य मध्ये वत्स ततोऽर्चयेत् ।
प्रथमेऽष्टदले मूर्त्तीर्यजेत्तत्पुरुषादिकाः ।।५३।।

दिक्पत्रेषु गणश्रेष्ठ ईशं[1] मध्ये समर्चयेत् ।
पीतासितश्वेतरक्तश्वेताभाश्चतुराननाः ।।५४।।

वराभयमृगान्वत्स परशुं बिभ्रतीः करैः ।
कोणपत्रेषु मध्ये च निवृत्याद्याः कला यजेत् ।।५५।।

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्ततः परम् ।
शान्त्यतीता च ताः प्रोक्तास्तेजोरूपाः कलाः क्रमात् ।।५६।।

अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च पूजयेत् ।
केसरेषु षडङ्गानि तृतीयेऽष्टदले ततः ।।५७।।

अनन्ताद्यान्यजेद्वत्स देवाग्रादिप्रदक्षिणम् ।
अनन्तं सूक्ष्मनामानं शिवोत्तममनन्तरम् ।।५८।।

एकनेत्रमेकरुद्रं त्रिमूर्त्ति तदनन्तरम् ।
श्रीकण्ठं च गणश्रेष्ठं शिखण्डिनमपि क्रमात् ।।५९।।

रक्तपीतसितारक्तकृष्णरक्ताञ्जनासितान् ।
"किरीटार्पितबालेन्दून्पद्मस्थांश्चारुभूषणान् ।।६०।।

त्रिनेत्रान् शूलवज्रेषुचापहस्तान् मनोहरान् ।
ततोऽर्चयेद् गणश्रेष्ठ तृतीयेऽष्टदले पुनः ।।६१।।"[2]

उमा चण्डेश्वरो[3] नन्दी महाकालो गणेश्वरः ।
वृषभो भृङ्गिरिटचाह्वः स्कन्दश्चैतान्यथाक्रमम् ।।६२।।

---

१. क. ईश । २. "—" चिह्नान्तःस्थोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । ३. ख. उमाश्वरौ ।

उत्तरं दलमारभ्य पीतनीलारुणासितान् ।
मुक्तानिशाकरश्वेतपाटलान् क्रमतः सुधीः ॥६३॥

चतुरश्रे गणाश्रेष्ठ पूर्वादिक्रमतो यजेत् ।
इन्द्रं सुराधिपं पीतं वज्रहस्तं सवाहनम् ॥६४॥

अग्नितेजोधिपं रक्तं शक्तिहस्तं सुभूषितम् ।
यमं प्रेताधिपं कृष्णं दण्डहस्तं समर्चयेत् ॥६५॥

रक्षोधिपं च निर्ऋतिं खड्गहस्तं सुधूम्रकम् ।
पाशहस्तं सुशुभ्राङ्गं वरुणं यादसाम्पतिम् ॥६३॥

वायुं प्राणाधिपं धूम्रमङ्कुशाढ्यकरं यजेत् ।
यक्षःपतिं कुमारञ्च मुक्तावर्णं गदाकरम् ॥६७॥

विद्याधिपं तथेशानं स्वच्छं शूलकरं यजेत् ।
नागाधिपं तथाऽनन्तं गौरं चक्रकरं यजेत् ॥६८॥

लोकाधिपं विधातारं रक्तं पद्मकरं यजेत् ।
ऐरावतं तथा मेषं महिषं मृतपूरुषम् ॥६९॥

मकरं मृतमर्त्यौ च वृषं च विपहंसकौ ।
इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि गणाधिप ॥७०॥

ततो बहिस्तदस्त्राणि तत्तत्पार्श्वे समर्चयेत् ।
वज्रं पीतं सितां शक्तिं दण्डं कृष्णं समर्चयेत् ॥७१॥

खड्गमाकाशसङ्काशं पाशं विद्युन्निभं यजेत् ।
अङ्कुशं रक्तवर्णं च शुक्लवर्णां गदां यजेत् ॥७२॥

त्रिशूलं नीलवर्णं च यजेद्वत्स समाहितः ।
रथाङ्गं करवन्दाभं पद्मं रक्तं समर्चयेत् ॥७३॥

लोकपालायुधान्येवं कथितानि तवाऽनघ ।
य एवं पूजयेद्देवं स सद्यः शिवतां व्रजेत् ॥७४॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रागुक्तविधिना दीक्षितः साधकः प्रागुक्तप्रकारेण प्रातरुत्थानादि-योगपीठन्यासान्तं कर्म कृत्वा, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं विधाय, "शिरसि

वामदेवाय ऋषयेनमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे०, हृदि—श्रीसदाशिवाय देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत्।

'ॐ हृदयाय नमः, न शिरसे स्वाहा, मः शिखायै वषट्, शि कवचाय हुं, वा नेत्राय वौषट्, य अस्त्रायफट्' इति मन्त्रानङ्गुष्ठादिकरतलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिष्वपि न्यसेत्। ततस्तर्ज्जन्योः—"ॐ नं तत्पुरुषाय नमः, मध्यमयोः—ॐ मं अघोराय०, कनिष्ठयोः—ॐ शिं सद्योजाताय०, अनामयोः—ॐ वां वामदेवाय०, अङ्गुष्ठयोः—ॐ यं ईशानाय नम" इति करयोर्विन्यस्य, मुखे, हृदि, पार्श्वयोर्गुह्ये, मूर्द्धिन च ता एव मूर्त्तीर्विन्यस्य, पुनर्मुखे—अनन्तपुरुषाय प्राग्वक्त्राय नमः, दक्षकर्णे—मं अघोराय दक्षिणवक्त्राय०[1], चूडाधः—शिं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय०, वामकर्णे--वां वामदेवायोत्तरवक्त्राय०, मूर्द्धिन--ईशानायोर्द्ध्ववक्त्राय नम" इति पञ्चमूर्त्तीर्विन्यस्य, "ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः, नं नित्यतृप्तशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा, मं अनादिबोधशक्तिधाम्ने शिखायै वषट्, शिं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने कवचाय हुं, वां अलुप्तशक्तिधाम्ने नेत्राय वौषट्, यं अनन्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट्" इति मन्त्रैः करषडङ्गानि यथास्थानं विन्यस्य मूलमन्त्रेण व्यापकन्यासं कुर्यात्।

ततः हृदि—"ॐ नमः, वक्त्रे—नं०, दक्षिणांसे—मं०, वामांसे—शिं०, दक्षोरौ वां०, वामे—यं०, कण्ठे—ॐ०, नाभौ—नं०, दक्षपार्श्वे—मं०, वामे—शिं०, पृष्ठे—वां०, हृदि—यं०, मूर्द्धिन—ॐ०, मुखे—नं०, दक्षनेत्रे—मं०, वामे—शिं०, दक्षनसि-वां०, वामे यं०, दक्षदोर्मूले—ॐ०, मध्ये—नं०, मणिबन्धे—मं०, अङ्गुलिमूले—शिं०, अङ्गुलिमध्ये-वां०, अग्रे—यं०, एवं वामेऽपि। दक्षोरुमूले—ॐ०, जानुनि—नं०, गुल्फे—मं०, अङ्गुलिमूले—शिं०, मध्ये—वां०, अग्रे—यं०, एवं वामे। शिरसि—ॐ०, मुखे—नं०, हृदि—मं०, कुक्षौ—शिं०, दक्षोरुमूलादिपादाग्रपर्यन्तं वां०, वामोरुमूलादितत्पादाग्रपर्यन्तं यं०, हृदि—ॐ०, वक्त्रे—नं०, टंके दक्षोर्द्ध्वकरे-मं०, वामोर्द्ध्वहस्ते मृगे—शिं०, वामाधःकराभये वां०, दक्षाधःकरवरे—यं०, वक्त्रे—ॐ०, अंसयोः—नं०, हृदि—मं०, पादयोः—शिं०, ऊर्वोः—वां०, जठरे—यं नम" इति विन्यस्य।

नमोऽस्तु स्थाणुभूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने।
चतुर्मूर्त्तिवपुश्छायाभासिताङ्गाय शम्भवे।

---

१. ख. दक्षिणवक्त्राय नमः।

इति मन्त्रेण मूर्द्धादिपादपर्य्यन्तं व्यापकन्यासं कृत्वा, यथोक्तरूपं देवं ध्यात्वा, मानसपूजादि-परतत्त्वपूजान्ते केसरेषु स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन "वामायै०, ज्येष्ठायै०, रौद्रयै०, काल्यै०, कलविकरण्यै०, बलप्रमथन्यै०, सर्वभूतदमन्यै०, मनोन्मन्यै नमः" इति मध्यान्तं सम्पूज्य, 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायाऽनन्ताय योगपीठात्मने नमः' इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, प्रमाणोक्ते पूजाचक्रे यथाविधि देवमावाह्याऽऽसनादि-पुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, 'भगवन्नावरणपूजार्थमनुज्ञां देही'ति प्रार्थ्य,

प्रथमेऽष्टदले दिग्दलेषु—"ॐ नं तत्पुरुषाय नमः, एवं मं अघोराय०, शिं सद्योजाताय०, वां वामदेवाय०, मध्ये—ईशानाय० इति देवाग्रादि-प्रादक्षिण्येन सम्पूज्याऽऽग्नेयादिदलेषु प्रादक्षिण्येन—ॐ निवृत्त्यै नमः, ॐ प्रतिष्ठायै०, ॐ विद्यायै०, ॐ शान्त्यै०, मध्ये—ॐ शान्त्यतीतायै नम" इति सम्पूज्य,

द्वितीयाष्टदलान्तःकेसरेषु देवस्य दक्षाग्रकेसरे—"ॐ हृदयाय नमः, वामाग्रे ईशाने—नं शिरसे नमः, पृष्ठदक्षिणे—मं शिखायै नमः, वामे-शिं कवचाय नमः, अग्रे—वां नेत्राय नमः, अग्रादिचतुर्दिक्षु—यं अस्त्राय नमः" इति सम्पूज्य द्वितीयेऽष्टदले देवाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन—ॐ अनन्ताय नमः, एवं सूक्ष्माय०, शिवोत्तमाय०, एकनेत्राय०, एकरुद्राय०, त्रिमूर्त्तये०, श्रीकण्ठाय०, शिखण्डिने०" ततस्तृतीयेऽष्टदले देवस्य वामदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन "उमायै नमः, चण्डेश्वराय०, नन्दिने०, महाकालाय०, गणेश्वराय०, वृषभाय०, भृङ्गिरिटये०, स्कन्दाय नमः"।

ततश्चतुरश्रे—रेखात्रयान्तरालवीथीद्वयेऽभ्यन्तरवीथ्यां देवस्याऽग्रमारभ्य 'लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्रहस्तायैरावतवाहनाय नमः, रं अग्नये तेजोधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः, टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय नमः, क्षं निर्ऋतये रक्षोधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय नमः, वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय नमः, यं [वायवे प्राणाधिपतये धूम्रवर्णायाऽङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय नमः, सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः][1] हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय शूलहस्ताय वृषवाहनाय नमः" इति सम्पूज्येन्द्रेशानयोर्मध्ये—'आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्त=

१. [—] कोष्ठगतोंऽशः ख. पुस्तके नाऽस्ति।

वर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः', निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—'ह्रीँ अनन्ताय-नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नम' इति सम्पूज्य, द्वितीय-वीथ्यां "ॐ वज्राय नमः, शक्तये०, एवं दण्डाय०, खड्गाय०, पाशाय०, अङ्कुशाय०, गदायै०, शूलाय०, पद्माय०, चक्राय नम" इति लोकपालायुधानि तत्समीपस्थानेषु पूजयेदित्थं लोकपालपूजाविस्ताराशक्तौ[1] प्राक्प्रयोगोक्तप्रकारेण वा पूजयेत् । इत्थं षडावरणसमेतं देवं सम्पूज्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य, 'साङ्गाय सपरिवाराय श्रीसदाशिवाय नम' इति पुष्पाञ्जलिना मध्ये देवं सम्पूज्य धूपदी-पादिपूजाशेषं प्रागुक्तविधिना समापयेदिति । तथा—

लक्षषट्कं जपेद् वत्स नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
तावत्सहस्रं जुहुयात्तिलैः शुद्धैर्घृतप्लुतैः ॥७५॥

पायसैः क्षीरवृक्षोत्थसमिद्भिर्वा गणेश्वरः ।
तावत्संख्यं जलैः शुद्धैस्तर्पयेच्चन्द्रवासितैः ॥७६॥

मार्ज्जयेच्च गणश्रेष्ठ स्वात्मानं मूलमन्त्रतः ।
तर्पणस्य दशांशेन तद्दशांशेन भोजयेत् ॥७७॥

शिवभक्तान्द्विजश्रेष्ठान्सदाचारानतन्द्रितः ।
पञ्चाङ्गमेव विधिवत्पुरश्चरणमाचरेत् ॥७८॥
एवं संसिद्धमन्त्रस्तु सर्वान्कामान्प्रयच्छति ।

एष षड्लक्षजपः कृतयुगपरः । कलावेतच्चतुर्गुणजपः कार्यः ।

लिङ्गपुराणे—

विनियोगं प्रवक्ष्यामि सिद्धमन्त्रप्रयोजनम् ।
दौर्ब्बल्यं याति तन्मन्त्रं विनियोगमजानतः ॥७९॥

यस्य येन नियुञ्जीत कार्येण च विशेषतः ।
विनियोगः स विज्ञेय ऐहिकामुष्मिकं फलम् ॥८०॥

विनियोगजमायुष्यमारोग्यं तत्सुनित्यता ।
राजैश्वर्यं च विज्ञानं स्वर्गो निर्वाणमेव च ॥८१॥

---

१. ख. लोकपालपूजायां विस्ताराशक्तौ ।

प्रोक्षणं चाऽभिषेकं च अघमर्षणमेव च ।
स्नानं च सन्ध्ययोश्चैव कुर्यादेकादशेन वै ॥८२॥

शुद्धः पर्वतमारुह्य जपेल्लक्षमतन्द्रितः ।
महानद्यां द्विलक्षं तु दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥८३॥

दूर्वाङ्कुरैस्तिलैर्वाऽपि शुभैर्द्रव्यैस्तथैव च ।
तेषां दशसहस्राणि होममायुष्यवर्द्धनम् ॥८४॥

अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य जपेल्लक्षद्वयं सुधीः ।
शनैश्चरदिने स्पृष्ट्वा दीर्घमायुर्लभेन्नरः ॥८५॥

जपेदष्टोत्तरशतं सोऽपमृत्युहरो भवेत् ।
आदित्याभिमुखो भूत्वा जपेल्लक्षमनन्यधीः ॥८६॥

अर्कैरष्टशतं नित्यं जुह्वन् व्याधीन् विमुच्यते ।
समस्तव्याधिशान्त्यर्थं पालाशसमिधो नरः ॥८७॥

हुत्वा दशसहस्रं तु नीरोगो मनुजो भवेत् ।
जपेल्लक्षं तु पूर्वाह्णे हुत्वा चाऽष्टशतेन वै ॥८८॥

सूर्यं नित्यमुपस्थाय यः स आरोग्यमाप्नुयात्[1] ।
[नदीतोयेन सम्पूर्णं घटं संस्पृश्य शोभनम् ॥८९॥

जप्तवाऽयुतं तु तैः स्नायाद्रोगाणां भेषजं भवेत् ।
अष्टाविंश जपित्वाऽन्नमश्नीयादन्वहं शुचिः ॥९०॥

हुत्वा च तालपालाशैरेतैरारोग्यमश्नुते ।][2]
नित्यमष्टशतं जप्त्वा पिबेदापोऽर्कसन्निधौ ॥९१॥

औदरैर्व्याधिभिः सर्वैर्मासेनैकेन मुच्यते ।
एकादशेन भुञ्जीयादन्नं चैवाऽभिमन्त्रितम् ॥९२॥

भक्ष्यं चाऽन्नं तथा पेयं विषमप्यमृतं भवेत् ।
चन्द्रसूर्यग्रहे पूर्वमुपोष्यं विधिना शुचिः ॥९३॥

१. ख. ०आरोयमश्नुते । २. [—] कोष्ठबद्धोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

यावद्ग्रहणमोक्षं तु तावन्नद्यां समाहितः ।
जपेत्समुद्रगामिन्यां विमोक्षे ग्रहणस्य तु ।।९४।।

अष्टोत्तरसहस्रेण पिबेद् ब्राह्मीरसं द्विजः ।
ऐहिकीं लभते मेधां सर्वश्रुतिवहां शुभाम् ।।९५।।

सरस्वती भवेद्देवि तस्य वागतिमानुषी ।
ग्रहनक्षत्रपीडासु जपेद्भक्त्याऽयुतं नरः ।।९६।।

हुत्वा चाऽष्टसहस्रं च ग्रहपीडा विनश्यति ।
दुःस्वप्नदर्शने स्नात्वा जपेद्वै चाऽयुतं नरः ।।९७।।

घृतेनाऽष्टशतं हुत्वा सद्यः शान्तिर्भविष्यति ।
चन्द्रसूर्यग्रहे लिङ्गं समभ्यर्च्य यथाविधि ।।९८।।

यत्किञ्चित्प्रार्थयेद्देवि जपेदयुतमादरात् ।
सन्निधौ तस्य देवस्य शुचिः संयतमानसः ।।९९।।

सर्वान्कामानवाप्नोति पुरुषो नाऽत्र संशयः ।
गजानां तुरगानां तु गोजातीनां तथैव च ।।१००।।

व्याध्यागमे शुचिर्भूत्वा जुहुयात्समिधाहुतिम् ।
समाभ्यर्च्य विधिना अयुतं भक्तिसंयुतः ।।१०१।।

तेषामृद्धिश्च शान्तिश्च भविष्यति न संशयः ।
उत्पाते शत्रुबाधायां जुहुयादयुतं शुचिः ।।१०२।।

पालाशसमिधैर्देवि तस्य शान्तिर्भविष्यति ।
आभिचारिकशङ्कायामेतद्देवि समाचरेत् ।।१०३।।

प्रतिह्नवति तच्छक्ति शत्रोः पीडा भविष्यति ।
विद्वेषणार्थं जुहुयाद्बिभीतसमिधाष्टकम् ।।१०४।।

प्रायश्चित्तं च वक्ष्यामि सर्वपापविशुद्धये ।
पापशुद्धि यथा सम्यकर्त्तुमभ्युद्यतो नरः ।।१०५।।

पापशुद्धिर्न चेत्पुंसः क्रियाः सर्वाश्च निष्फलाः ।
ज्ञानं च दीयते तस्मात्कर्त्तव्यं पापशोधनम् ।।१०६।।

विद्यालक्ष्मीविशुद्धयर्थं मां ध्यात्वाऽञ्जलिना शुभे ।
शिवेनैकादशेनाऽद्भिरभिषिञ्चेत्स मां नरः ॥१०७॥

अष्टोत्तरशतेनैव स्नायात्पापविशुद्धये ।
सर्वतीर्थफलं तच्च सर्वपापहरं शुभम् ॥१०८॥

सन्ध्योपासनविच्छेदी जपेद्दशशतं बुधः ।
विड्वराहैश्च चाण्डालैर्मार्जारैः कुक्कुटैरपि ॥१०९॥

स्पृष्टमन्नं न भुञ्जीत भुङ्क्त्वा चाऽष्टशतं जपेत् ।
ब्रह्महत्यादिशुद्धयर्थं जपेल्लक्षायुतं नरः ॥११०॥

पातकानां तदर्धं स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा ।
उपपातकदुष्टानां तदर्द्धं परिकीर्त्तितम् ॥१११॥

शेषाणामपि पापानां जपेत्पञ्चसहस्रकम् ।
आत्मावबोधपरगुह्यशिवरूपप्रसाधकम् ॥११२॥

जितश्वासो जपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षमनाकुलः ।
पञ्चवायुजयं भद्रे प्राप्नोति मनुजः सुखी ॥११३॥

यो जपेत्पञ्चलक्षं तु निगृहीतेन्द्रियः शुचिः ।
पञ्चेन्द्रियाणां विजयो भविष्यति वरानने ॥११४॥

ध्यानयुक्तो जपेद्यस्तु मनः संयम्य यत्नतः ।
सम्यग्विजयमाप्नोति करणानां वरानने ॥११५॥

पञ्चविंशतिलक्षाणां जपेन कमलानने ।
पञ्चविंशतितत्वानां विजयं मनुजो लभेत् ॥११६॥

मध्यरात्रे न व्यतीते जपेदयुतमादरात् ।
स ब्रह्मसिद्धिमाप्नोति इहैवाऽनेन सुन्दरि ॥११७॥

जपेल्लक्षमनालस्यो विवादे ध्वनिवर्जितम् ।
मध्यरात्रे शिवज्योत्स्नां पश्यत्येव न संशयः ॥११८॥

अन्धकारविनाशं च दीपस्येव प्रकाशकम् ।
हृदयान्तर्बहिर्वाऽपि भविष्यति न संशयः ॥११९॥

सर्वसम्पत्समृद्ध्यर्थं जपेदयुतमात्मवान् ।
स बीजसम्पुटं मन्त्रं शतलक्षं जपेच्छुचिः ॥१२०॥

मत्सायुज्यमवाप्नोति भक्तिमान् किमतः परम् ।
अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि ऋषिच्छन्दोऽधिदैवतम् ॥१२१॥

बीजं शक्ति स्वरं वर्णंस्थापने चैऽवाऽक्षरं प्रति ।
वामदेवो नाम ऋषिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ॥१२२॥

देवता शिव एवाऽहं मन्त्रस्याऽस्य वरानने ।
नकारादीनि बीजानि पञ्चभूतात्मकानि च ॥१२३॥

आत्मानं प्रणवं विद्धि सर्वव्यापिनमव्ययम् ।
शक्तिस्त्वमेव देवेशि सर्वदेवनमस्कृता ॥१२४॥

त्वदीयं प्रणवं केचिन्मदीयं प्रणवं तथा ।
त्वदीयं देवि मन्त्राणां शक्तिभूतं न संशयः ॥१२५॥

ॐकारस्य स्वरोदात्तो ऋषिर्ब्रह्मा सितप्रभः ।
छन्दो देवी च गायत्री परमात्माऽधिदेवता ॥१२६॥

उदात्तः प्रथमस्तद्वच्चतुर्थश्च द्वितीयकः ।
पञ्चमः स्वरितश्चैव मध्यमो निषधस्तथा ॥१२७॥

नकारः पीतवर्णोऽस्य स्थानं पूर्वमुखं स्मृतम् ।
इन्द्रोऽधिदैवतं छन्दो गायत्री गौतमो ऋषिः ॥१२८॥

मकारः कृष्णवर्णोऽस्य स्थानं वै दक्षिणं मुखम् ।
छन्दोऽनुष्टुब् ऋषिश्चाऽत्री रुद्रो दैवतमुच्यते ॥१२९॥

शिकारो धूम्रवर्णोऽस्य स्थानं वै पश्चिमं मुखम् ।
विश्वामित्रो ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुश्च देवता ॥१३०॥

वाकारो हेमवर्णोऽस्य स्थानं वै चोत्तरं मुखम् ।
ब्रह्माऽधिदैवतं छन्दो बृहती चाऽङ्गिरा ऋषिः ॥१३१॥

यकारो रक्तवर्णोऽस्य स्थानमूर्द्ध्वमुखं विराट् ।
छन्दो ऋषिर्भरद्वाजः स्कन्दो दैवतमुच्यते ॥१३२॥

तथा **सारसङ्ग्रहे—**

इत्थं शिवं समभ्यर्च्य सहस्रं नित्यशो जपेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नुयाद्वाञ्छितां रमाम् ॥१३३॥

सहस्रद्वयजापेन महारोगैः प्रमुच्यते ।
सहस्रत्रयजापेन दीर्घमायुर्लभेन्नरः ॥१३४॥

चतुःसहस्रजापेन वाञ्छितार्थानवाप्नुयात् ।
तिलैः शुद्धैर्घृताभ्यक्तैर्हुनेदुत्पातसम्भवे ॥१३५॥

रोगा विनश्यन्त्यचिरान्नाऽत्र कार्या विचारणा ।
प्रजपेच्छतलक्षं यः स शिवो नाऽत्र संशयः ॥१३६॥

नादीनां पञ्चवर्णानामृषयोऽमी मताः क्रमात् ।
गौतमोऽत्रिर्द्वितीयः स्याद्विश्वामित्रोऽङ्गिरास्तथा ॥१३७॥

भरद्वाजश्च गायत्री साऽनुष्टुप्त्रिष्टुबेव च ।
बृहती सविराडेवं छन्दांसीह मतानि वै ॥१३८॥

इन्द्ररुद्रहरिब्रह्मस्कन्दा देवाः प्रकीर्त्तिताः ।
एषामाद्यः पूर्ववत्स्याद्वर्णाः पीतोऽसितस्तथा ॥१३९॥
धूम्रपीतारुणा ज्ञेया एवं पञ्चार्णवो मताः ।

एषामाद्यः नादीनामाद्यः प्रणवः, सः पूर्ववत्स्यात्परब्रह्मबोधक इत्यर्थः । अथ च पूर्वोक्तमुन्यादिकश्च **स्यात्** । तथा च—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम् ॥१४०॥

देव्यादिकं देवताऽस्य परमात्मा समीरितः ।
ज्योतिर्वर्णः समाख्यातो मोक्षार्थे विनियुज्यते ॥इत्यादि १४१॥

॥ इति पञ्चाक्षरविधिः ॥

शारदातिलके—

षडक्षरः शक्तिरुद्धः कथितोऽष्टाक्षरो मनुः ।

पूर्वोक्तः प्रणवाद्यः षडक्षरो मन्त्रः, शक्तिरुद्धो भुवनेश्वरीबीजसम्पुटितोऽष्टाक्षरो भवति ।

नन्दिकेश्वरमतेऽपि—

श्रृणु नन्दिन् प्रवक्ष्यामि मन्त्रान्तरमुमापतेः ।
अष्टमान्त्यं सप्तमस्य [1]द्वितीयार्णस्थमालिखेत् ॥१४२॥

आद्यवर्गे तुरीयार्णोपान्त्याभ्यां परिमण्डितम् ।
मायाबीजमिदं वत्स त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१४३॥

अनेनाऽऽद्यन्तयोर्युक्तः पञ्चार्णः सप्तवर्णकः ।
षडर्णश्चाऽष्टवर्णः स्यादेवं मन्त्रद्वयं भवेत् ॥१४४॥

अष्टमान्त्यं हकारः, सप्तमद्वितीयार्णस्थं रेफोपरिस्थितं, आद्यवर्गतुरीयार्णः[2] ईकारः,[3] तस्योपान्त्यो बिन्दुस्ताभ्यां युक्तं लिखेत्, तेन मायाबीजं सिद्धम् । तथा—

ऋषिरुक्तो वामदेवः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
उमापतिर्देवता स्यान्मन्त्रयोर्जगदीश्वरः ॥१४५॥

तारषड्दीर्घयुङ्मायापूर्वमन्त्रार्णकैः क्रमात् ।
षडङ्गानि गणश्रेष्ठ जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥१४६॥

प्रणवो बीजम्, माया शक्तिः । **शारदातिलके—**

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं शशिशकलधरं स्मेरवक्त्रं वहन्तम्,
हस्तैः शूलं कपालं वरदमभयदं चारुहारं नमामि ।
वामोरुस्तम्भगायाः करतलविकसच्चारुरक्तोत्पलाया
हस्तेनाऽऽश्लिष्टदेहं मणिमयविलसद्भूषणायाः प्रियायाः ॥१४७॥

दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, इत्यायुधध्यानम् ।

नन्दिकेश्वरमते—

पद्मं पञ्चदलं कृत्वा तद्बहिश्चाऽष्टपत्रकम् ।
बहिरष्टच्छदाम्भोजं चतुरश्रत्रयं बहिः ॥१४८॥

वीथीद्वयसमोपेतं चतुर्द्वारोपशोभितम् ।
अस्मिन्पीठे यजेद्देवं मूर्त्ति सङ्कल्प्य मूलतः ॥१४९॥
सर्वोपचारैराराध्य प्राग्वदङ्गानि पूजयेत् ।

---

१. ख. द्वितीयार्णस्य० । २. ख. ०तुयार्णः । ३. ख. इकारः ।

शारदातिलके—

प्राक्प्रोक्ते पूजयेत्पीठे गन्धपुष्पैरुमापतिम् ।
अङ्गावृतेर्बहिः पूज्या हृल्लेखाद्या यथा पुरा ॥१५०॥

मध्यप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु विधानतः ।
हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका ॥१५१॥

महोच्छुष्मा क्रमादेताः पञ्चभूतसमप्रभाः ।
पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्यो मितभूषणाः ॥१५२॥

यजेत्पूर्वादिपत्रेषु वृषभाद्याननुक्रमात् ।
हिमालयाभं वृषभं तीक्ष्णशृङ्गं त्रिलोचनम् ॥१५३॥

सर्वाभरणसन्दीप्तं साक्षाच्छन्दःस्वरूपिणम् ।
कपालशूलविलसत्करं कालसमप्रभम् ॥१५४॥

क्षेत्रपालं त्रिनयनं दिगम्बरमथाऽर्च्चयेत् ।
शूलटङ्काक्षवलयकमण्डलुलसत्करम् ॥१५५॥

रक्ताकारं त्रिनयनं चण्डेशमथ पूजयेत् ।
चक्रशङ्खाभयाभीष्टकरं मरकतप्रभम् ॥१५६॥

दुर्गां प्रपूजयेत्सौम्यां त्रिनेत्रां चारुभूषणाम् ।
कल्पशाखा[1] रत्नघण्टा[2] दधानं द्वादशेक्षणाम् ॥१५७॥

वालार्काभं शिशुं कान्तं षण्मुखं पूजयेत्ततः ।
नन्दिनं प्रयजेत्सौम्यं रत्नभूषणमण्डितम् ॥१५८॥

परश्वेणवराभीतिधारिणं श्यामविग्रहम् ।
पाशाङ्कुशवराभीष्टधारिणं कुङ्कुमप्रभम् ॥१५९॥

विघ्ननायकमभ्यर्च्येच्चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।
श्यामं रक्तोत्पलकरं वामार्द्धन्यस्ततत्करम् ॥१६०॥

द्विनेत्रं रत्नवस्त्राढ्यं सेनापतिमथाऽर्चयेत् ।
ततोऽष्टमातरः पूज्या ब्राह्म्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः ॥१६१॥

---

१. ख. कल्पशाखां । २. ख. रत्नघण्टां ।

इन्द्रादिकांल्लोकपालान्स्वस्वदिक्षु समर्चयेत् ।
वज्रादीनि तदस्त्राणि तद्बहिः क्रमशोऽर्च्चयेत् ॥१६२॥

एवं यो भजते मन्त्री देवेशं तु उमापतिम् ।
स भवेत्सर्वलोकानां प्रियः सौभाग्यसम्पदाम् ॥१६३॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्तं प्राग्वत्कृत्वा, "शिरसि—वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे०, हृदि—श्रीउमापतये देवतायै०" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत् । ततः "ॐ ह्राँ ॐ हृदयाय नमः, ॐ ह्रीँ नं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूँ मं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैँ शिं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौँ वां नेत्राय वौषट्, ॐ ह्रः यं अस्त्राय फट्" इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्रमाणोक्तं पूजाचक्रं निर्मायाऽर्घादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, पञ्चदलेषु—देवाग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन "ॐ हृल्लेखायै नमः, एवं गगनायै०, रक्तायै०, महोच्छुष्मायै०, करालिकायै" इति सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य वृषभाय०, क्षेत्रपालाय०, चण्डेश्वराय, दुर्गायै०, षण्मुखाय०, नन्दिने०, विघ्ननायकाय०, सेनापतये० "इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन "आं ब्राह्म्यै नमः, ईं महेश्वर्य्यै०, ऊँ कौमार्य्यै०, ॠँ वैष्णव्यै०, लृं वाराह्यै०, ऐं इन्द्राण्यै०, औं चामुण्डायै०, अः महालक्ष्म्यै नमः" इति सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति ।

नन्दिकेश्वरमते—

एवं सम्पूज्य देवेशं नियमेन जितेन्द्रियः ।
लक्षत्रयं जपेत्सार्द्धं तत्सहस्रं समिद्वरैः ॥१६४॥

आरग्वधतरूद्भूतैस्तत्पुष्पैर्वा हुनेत्ततः ।
मधुरत्रयसंसिक्तैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ॥१६५॥

प्रागुक्तेन विधानेन ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
सौभाग्यसम्पदायुष्यपुत्रपौत्रादिवर्द्धनः[1] ॥१६६॥
देहान्ते च गणश्रेष्ठ शिवसायुज्यदो भवेत् ।

---

१. क. ०वर्द्धतः । ख. ०र्वाद्धतः ।

शारदातिलके—

सान्तः सद्यान्तसंयुक्तो बिन्दुभूषितमस्तकः ।
प्रसादाख्यो मनुः प्रोक्तो जपतां सर्वसिद्धिदः ॥१६७॥

सान्तो हकारः, सद्यान्त औकारः ।

नन्दिकेश्वरमते—

प्रसादकरणाच्छीघ्रमस्य प्रासादता मता ।

आचार्यास्तु—

प्रसादनत्वान्मनसो यथावत् प्रासादसंज्ञाऽस्य मनोः प्रदिष्टा ॥इति॥

हृल्लेखासम्पुटित इति केचित् ।

शारदातिलके—

वामदेवो मुनिश्छन्दः पङ्क्तिर्देवः सदाशिवः ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः ॥१६८॥

पदार्थादर्शे—बीजं हं, शक्तिरौं स्मृतेति । तथा—

ईशानाद्या न्यसेन्मूर्त्तीरङ्गुष्ठादिषु देशिकः ।
ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं तदनन्तरम् ॥१६९॥

वामदेवाह्वयं सद्यमासां बीजं क्रमाद्विदुः ।
ओकाराद्यैः पञ्चह्रस्वैर्विलोमात् संयुतं वियत् ॥१७०॥

तत्तदङ्गुलिभिर्भूयस्तत्तद्बीजादिकान्न्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपाददेशे यथाक्रमात् ॥१७१॥

ऊर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु ताः ।
ततः प्रविन्यसेत्पश्चादष्टत्रिंशत्कलास्तनौ ॥१७२॥

ईशानाद्या ऋचः सम्यगङ्गुलीषु यथाक्रमम् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यसेद्देशिकसत्तमः ॥१७३॥

मूर्द्धास्यहृदयाम्भोजगुह्यपादेषु ताः[1] पुनः ।
'वक्त्रे पूर्वादि विन्यस्येद्'[2] भूयोऽङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥१७४॥

तारपञ्चकमुच्चार्य्य सर्वज्ञाय हृदीरितम् ।
अमृततेजोमालिनि तृप्तायेति पदं पुनः ॥१७५॥

---

१. क. तां । २. क्वचित् 'वक्त्रेषूर्द्ध्वादिषु न्यस्येद्' इत्यपि पाठः । (सम्पादक)

तदन्ते ब्रह्मशिरसे शिरोऽङ्गं ज्वलितं ततः ।
शिखिशिखाय परतोऽनादिबोधाय तच्छिखा ॥१७६॥

वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय तनुच्छदम् ।
[1]सौ चौ हौमिति सम्भाष्य 'परतो लुप्तशक्तये'[2] ॥१७७॥

नेत्रमुक्तं श्लीं पशु हुं फडन्तेऽनन्तशक्तये ।
अस्त्रमुक्तं षडङ्गानि कुर्य्याद्देशिकसत्तमः ॥१७८॥

तारपञ्चकन्तु—तारो वाक् कमला हसखफ्रें हसौः पुनरित्यत्रैवोक्तम् ।

पूर्वदक्षिणपाश्चात्यसौम्यमध्येषु पञ्चसु ।
वक्त्रेषु पञ्च विन्यस्येदीशानस्य कलाः क्रमात् ॥१७९॥

ईशानः सर्वविद्यानां शशिनी प्रथमा कला ।
ईश्वरः सर्वभूतानामङ्गदा तदनन्तरम् ॥१८०॥

ब्रह्माधिपतिशब्दान्ते ब्रह्मणोऽधिपतिः पुनः ।
ब्रह्मेष्टदा तृतीया स्याच्छिवो मेऽस्तु ततः परा ॥१८१॥

मरीचिः कल्पिता तन्त्रे चतुर्थी च सदाशिवोम् ।
अंशुमालिन्यथ परा प्रणवाद्या नमोऽन्विता ॥१८२॥

पूर्वपश्चिमयाम्योदग्वक्त्रेषु तदनन्तरम् ।
चतस्रो विन्यसेन्मन्त्री पुरुषस्य कलाः क्रमात् ॥१८३॥

आद्या तत्पुरुषायेति विग्रहे शान्तिरीरिता ।
महादेवाय-शब्दान्ते धीमहि स्यात्ततः परम् ॥१८४॥

विद्या द्वितीया कथिता तन्नो रुद्रपदात्ततः ।
प्रतिष्ठा कथिता पश्चात्तृतीया स्यात्प्रचोदयात् ॥१८५॥

निवृत्तिस्तत्पराः सर्वाः प्रणवाद्या नमोन्विताः ।
हृद्ग्रीवांसद्वये नाभौ कुक्षौ पृष्ठे सवक्षसि ॥१८६॥

अघोरस्य कला न्यस्येदष्टौ मन्त्री यथाविधि ।
अघोरेभ्यस्तमा पूर्वमीरिता प्रथमा कला ॥१८७॥

१. ख. शौचौ । २. '—' 'पुरतोऽलुप्तशक्तये' इत्यपि पाठो दृश्यते । (सम्पा०)

अथ घोरेभ्य इत्यन्ते मोहा स्यात्तदनन्तरम् ।
घोरान्ते स्याज्जया पश्चात्तृतीया परिकीर्त्तिता ।।१८८।।

घोरतरेभ्यो निद्रा स्यात्सर्वतः सर्वतत्परा ।
व्याधिस्तु पञ्चमी प्रोक्ता सर्वेभ्यस्तदनन्तरम् ।।१८९।।

मूर्त्तिर्निगदिता षष्ठी नमस्ते अस्तु तत्परम् ।
क्षुधा स्यात्सप्तमी[1] रुद्ररूपेभ्यः कथिता तृषा ।।१९०।।

अष्टमी कथिता एता ध्रुवाद्या नमसाऽन्विताः ।
गुह्यमुष्कोरुयुग्मेषु जानुजङ्घायुगे स्फिचोः ।।१९१।।

कट्यां पार्श्वद्वये वामकला न्यस्येत्त्रयोदश ।
प्रथमा वामदेवाय नमोऽन्ते स्याद्रजा कला ।।१९२।।

स्याज्ज्येष्ठाय नमो रक्षा द्वितीया परिकीर्त्तिता ।
स्याद्रुद्राय नमः पश्चात्तृतीया रतिरीरिता ।।१९३।।

कालाय नम इत्यन्ते पालिनी परिकीर्त्तिता ।
कलकामा पञ्चमी स्यात्ततो विकरणाय च ।।१९४।।

नमः संयमिनी षष्ठी कथिता तदनन्तरम् ।
बलक्रिया समादिष्टा कला विकरणाय च ।।१९५।।

नमो वृद्धिरष्टमी स्याद्बलान्ते च स्थिरा कला ।
पश्चात्प्रमथनायाऽन्ते नमो रात्रिरुदीरिता ।।१९६।।

सर्वभूतदमनाय नमोऽन्ते भ्रामिणी कला ।
मनोऽन्ते मोहिनी प्रोक्ता मन्त्रज्ञैर्द्वादशी कला ।।१९७।।

उन्मनाय नमः पश्चाज् जरा प्रोक्ता त्रयोदशी ।
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्तास्ताः प्रकीर्त्तिताः ।।१९८।।

पाददोस्तननासासु मूर्द्ध्नि बाहुयुगे न्यसेत् ।
सद्योजातोद्भवाः सम्यगष्टौ मन्त्री कलाः क्रमात् ।।१९९।।

---

१. क. स्यात्सप्त ।

सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्धिः स्यात्प्रथमा कला ।
सद्योजाताय वै भूयो नमः स्याद् वृद्धिरीरिता ॥२००॥

भवे द्युतिस्तृतीया स्यादभवे तदनन्तरम् ।
लक्ष्मीश्चतुर्थी कथिता ततो नातिभवे-पदम् ॥२०१॥

मेधा स्यात्पञ्चमी प्रोक्ता कला भूयो भजस्व माम् ।
प्रज्ञा समीरिता षष्ठी भवान्ते स्यात्प्रभा कला ॥२०२॥

उद्भवाय नमः पश्चात्सुधा स्यादष्टमी कला ।
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ताः कलाः सर्वा नमोऽन्विताः ॥२०३॥

अष्टत्रिंशत्कलाः प्रोक्ताः पञ्चब्रह्मपदादिकाः ।
इति विन्यस्तदेहोऽसौ भवेद् गङ्गाधरः स्वयम् ॥२०४॥

पदार्थादर्शे—प्रणवाद्या इति प्रणवशक्तिप्रासादाद्या इत्यर्थः । **पद्मपादाचार्याः** पञ्चाक्षरीयोगमप्याहुः ।

ततः समाहितो भूत्वा ध्यायेद्देवं सदाशिवम् ।

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजपावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
शूलं टङ्कक्रपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्,
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत् ॥२०५॥

पूर्वोदिते यजेत्पीठे मूर्त्ति मूलेन कल्पयेत् ।
आवाह्य पूजयेत्तस्यां मूर्त्याद्यावरणैः सह ॥२०६॥

शक्ति डमरुकाभीतिवरान् सम्बिभ्रतं करैः ।
ईशानं त्रीक्षणं शुभ्रमैशान्यां दिशि पूजयेत् ॥२०७॥

परश्वेणवराभीतीर्दधानं विद्युदुज्ज्वलम् ।
चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं पूर्वतोऽर्चयेत् ॥२०८॥

अक्षस्रजं वेदपाशौ शृणि (सृणि) डमरुकं ततः ।
खट्वाङ्गं निशितं शूलं कपालं बिभ्रतं करैः ॥२०९॥

अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदंष्ट्रं भयावहम् ।
अघोरं त्रीक्षणं याम्ये पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ॥२१०॥

कुङ्कुमाभं चतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनम् ।
वराभयाक्षवलयकुठारं दधतं करैः ॥२११॥

विलासिनं स्मेरवक्त्रं सौम्ये सम्यक् समर्चयेत् ।
कर्पूरेन्दुनिभं सौम्यं सद्योजातं त्रिलोचनम् ॥२१२॥

हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम् ।
बालेन्दुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत् ॥२१३॥

कोणेष्वर्चेन्निवृत्याद्यास्तेजोरूपाः कलाः क्रमात् ।
विद्येश्वराननन्ताद्यान् पत्रेषु परितो यजेत् ॥२१४॥

उमादिकांस्ततो बाह्ये शक्राद्यानायुधैः सह ।
इति सम्पूज्य देवेशं भक्त्या परमया युतः ॥२१५॥
प्रीणयेन्नृत्यगीताद्यैः स्तोत्रैर्मन्त्री मनोहरैः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे०, हृदि—श्रीसदाशिवाय देवतायै०, गुह्ये—ह्रीं बीजाय०, पादयोः—ॐ शक्तये०" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, "हां हृदयाय नमः, हीं शिरसे स्वाहा, हूँ शिखायै वषट्, हैं कवचाय हुं, हौं नेत्राय वौषट्, हः अस्त्राय फडि"ति करषड़ङ्गन्यासं विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं, तर्जन्यङ्गुष्ठोत्थशब्देन दशदिग्बन्धनं कृत्वाऽ"ङ्गुष्ठयोः—हौं ईशानाय नमः, तर्ज्जन्योः—हैं तत्पुरुषाय०, मध्यमयोः—हुं अघोराय०, अनामिकयोः—हिं वामदेवाय०, कनिष्ठयोः—हं सद्योजाताय०" इति विन्यस्यैवमेव शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु च विन्यस्य, "शिरसि—हौं ईशानायोर्द्ध्ववक्त्राय नमः, मुखे—हैं तत्पुरुषाय पूर्ववक्त्राय०, दक्षकर्णे—हुं अघोराय दक्षिणवक्त्राय०, वामकर्णे—हिं वामदेवायोत्तरवक्त्राय०, चूडाधः—हं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय नम" इति विन्यस्याऽष्टत्रिंशत्कलान्यासं कुर्यात् यथा—

ऐं ह्रीं श्रीं ह स ख फ्रें ह सौः सर्वज्ञाय हृदयाय नमः, ५ अमृततेजोमालिनि तृप्ताय ब्रह्मशिरसे स्वाहा, ५ ज्वलितशिखायाऽनादिबोधाय शिखायै वषट्, ५ वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय कवचाय हुं, ५ सौं चौं हों लुप्तशक्तये

नेत्राय—वौषट्, ५ श्लीं पशु हुं फट् अनन्तशक्तये अस्त्राय फट्'' इति करषडङ्गन्यासं विधाय ।

ततः पूर्वदक्षिणपाश्चात्यसौम्यमध्येषु पञ्चसु वक्त्रेषु ''ॐ ह्रीं हौं ईशानः सर्वविद्यानां शशिन्यै कलायै नमः, ३ ईश्वरः सर्वभूतानामङ्गदायै कलायै नमः, ३ ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मेष्टदायै कलायै०, ३ शिवो मे अस्तु मरीच्यै०, ३ सदाशिवों अशुमालिन्यै०'' इति विन्यस्य, ततः पूर्वपश्चिमयाम्योदग्वक्त्रेषु । ''तत्पुरुषाय विद्महे शान्त्यै नमः, ३ महादेवाय धीमहि विद्यायै०, ३ तन्नो रुद्रः प्रतिष्ठायै०, ३ प्रचोदयात् निवृत्यै नमः । ततो हृदि—३ अघोरेभ्यस्तमायै नमः, ३ ग्रीवायां अथ घोरेभ्यो मोहायै०, दक्षांसे—३ घोर जायायै[1]०, वामांसे—३ घोरतरेभ्यो निद्रायै०, नाभौ—३ सर्वतः सर्व व्याध्यै०, कुक्षौ—३ सर्वेभ्यो मूर्त्तये०, पृष्ठे—३ नमस्ते अस्तु क्षुधायै०, वक्षसि—३ रुद्ररूपेभ्यस्तृषायै नम'' इति विन्यस्य, ''गुह्ये—३ वामदेवाय नमो रजायै०, मुष्के—३ ज्येष्ठाय नमो रक्षायै०, दक्षोरौ—३ रुद्राय नमो रत्यै०, वामोरौ—३ कालाय नमः पालिन्यै०, दक्षजानुनि-३ कल कामायै०, वामे—विकरणाय नमः संयमिन्यै०, दक्षजङ्घायां—३ बल क्रियायै०, वामायां—३ विकरणाय नमो वृद्ध्यै०, दक्षस्फिचि—३ बल स्थिरायै०, वामस्फिचि—३ प्रमथनाय नमः रात्र्यै०, कट्यां—३ सर्वभूतदमनाय नमो भ्रामिन्यै०, दक्षपार्श्वे—३ मनो मोहिन्यै०, वामे [३ उन्मनाय नमो जरायै नम''][2] इति विन्यस्य, ततो ''दक्षपादे—३ सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्ध्यै०, वामे—३ सद्योजाताय वै नमो वृद्ध्यै०, दक्षस्तने—३ भवे द्युत्यै०, वामे—३ अभवे लक्ष्म्यै०, नासायां—३ नातिभवे मेधायै०, मूर्दध्नि—३ भजस्व मां प्रज्ञायै०, दक्षबाहौ—३ भव प्रभायै०, वामे—प्रभवाय नमः सुधायै नम'' इत्यष्टत्रिंशत्कलान्यासं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते पञ्चाक्षरोक्तं पूजायन्त्रं निर्मायाऽर्घादिपुष्पोपचारान्ते ''प्रथमेऽष्टदले देवस्य पृष्ठदले—हं सद्योजाताय नमः, वामदले—हिं वामदेवाय०, दक्षदले—हिं अघोराय०, अग्रदले—हें तत्पुरुषाय०, कर्णिकायां देवस्याऽग्रे—हों ईशानाय नम'' इति सम्पूज्याऽऽग्नेयादिदलेषु मध्ये च निवृत्याद्याः सम्पूज्य, प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्याऽनन्तादिपूजामारभ्य पञ्चाक्षरोक्तवत्सर्वं समापयेदिति । तथा—

लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥२१५॥

---

१. ख. घोर जयायै० । २. [—]कोष्ठगोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके ।

पञ्चसप्ततिसाहस्रसमेतं करवीरजैः ।
जपापुष्पैस्तु पद्मैर्वा त्रिमध्वक्तैर्दशांशतः ॥२१६॥

पायसैः सघृतैर्वाऽथ राजवृक्षसमिद्वरैः ।
जुहुयात्तस्य पुष्पैर्वा तर्पणादि ततश्चरेत् ॥२१७॥

इति गोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ एकत्रिंशस्तरङ्गः ॥३१॥

[द्वात्रिंशस्तरङ्गः]

शारदातिलके—

तारो माया वियद्बिन्दुमनुस्वारविभूषितम् ।
पञ्चाक्षरसमायुक्तो वसुवर्णो मनुर्मतः ॥१॥

तारः प्रणवः, माया भुवनेशीबीजम्, वियत् हकारः, मनुस्वर औकारः ।

नन्दिकेश्वरमते—

वामदेवो (व) ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो देवः सदाशिवः ।
मायाप्रासादबीजाभ्यां भेदिताभ्यां स्वरैरथ ॥२॥

षड्भिः कुर्यात् षडङ्गानि मन्त्रवर्णैः सजातिभिः ।
ध्यायेद्देवं ततो वत्स हृदि चैकाग्रमानसः ॥३॥

सिन्दूरपञ्चशोणाङ्गं स्मेरवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
मणिमौलिलसच्चन्द्रकलालङ्कृतमस्तकम् ॥४॥

दक्षिणोर्द्ध्वकरे टङ्कं दधानं तदधो वरम् ।
वामोर्द्ध्वहस्ते हरिणं तदधःकरमादरात् ॥५॥

पीनवृत्तघनोत्तुङ्गस्तनाग्रे विनिवेश्य च ।
वामाङ्के सन्निविष्टायाः प्रियाया रक्तपङ्कजम् ॥६॥

दधत्या दक्षिणे हस्ते चाऽऽसीनं रक्तपङ्कजे ।
नानाभरणसन्दीप्तं दिव्यगन्धस्रगम्बरम् ॥७॥

एवं ध्यात्वा गणश्रेष्ठ पूर्वोक्ते पूजयेच्छिवम् ।
योगपीठे समावाह्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥८॥

पञ्चाक्षरोक्तविधिना पूजायन्त्रं प्रकल्प्य च ।
तन्त्रोक्तेन विधानेन यजेन्मूर्त्तीः कलाश्च ताः ॥९॥

ततोऽङ्गानि समभ्यर्च्याऽनन्तादीनप्युमादिकान् ।
लोकेशांश्च तदस्त्राणि पूजयेद्वत्स पूर्ववत् ॥१०॥

अनेन विधिना यस्तु शिवमाराधयेत्सदा ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्य्यभोगमोक्षान्स विन्दति ॥११॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते पञ्चाक्षरोक्तम्पुष्पादिकं विन्यस्य, "ह्रां हां हृदयाय नमः, ह्रीं हीं शिरसे स्वाहा" इत्यादि करषडङ्गन्यासं विधायोक्तरूपं देवं ध्यात्वा मानसपूजादि पञ्चाक्षरमन्त्रोक्तवत्सर्वं कुर्यादिति ।

शारदातिलके—

तारः स्थिरा सकर्णेन्दुर्भृगुः सर्गविभूषितः ।
अक्षरात्मा निगदितो मन्त्रो मृत्युञ्जयात्मकः ॥१२॥

तारः प्रणवः, स्थिरा जकारः, कर्ण-वामकर्णा ऊकारः, इन्दुरनुस्वारः, भृगुः सकारः, सर्गो विसर्गः ।

नन्दिकेश्वरमतेऽपि—

अथ मृत्युञ्जयं मन्त्रं कथयामि तवाऽनघ ।
आद्यत्रयोदशोपान्त्यस्वरानुद्धृत्य नन्दिक ॥१३॥

ततस्तृतीयवर्गस्य तृतीयं चाऽऽद्यषष्ठयुक् ।
तदुपान्त्यस्वरारूढमष्टमस्य तृतीयकम् ॥१४॥

आद्यान्त्यवर्णसंयुक्तं तृतीयार्णं समुद्धरेत् ।
एष मृत्युञ्जयो मन्त्रः प्रोक्तो मृत्युभयापहः ॥१५॥

आद्यत्रयोदशः ओकारः, उपान्त्यो बिन्दुस्तेन प्रणवो जातः; तृतीयवर्गस्य तृतीयं जकारः, आद्यषष्ठ ऊकारः, उपान्त्यो बिन्दुस्ताभ्यां युक्तस्तेन जूं; अष्टमस्य तृतीयं सः, आद्यान्त्यो विसर्गस्तेन सः इति ।

शारदातिलके—

ऋषिः कहोलो देव्यादिगायत्रीछन्द ईरितम् ।
मृत्युञ्जयो महादेवो देवता समुदीरितः ॥१६॥

नन्दिकेश्वरमते—

प्रणवो बीजमित्युक्तं सः शक्तिरिति कीर्त्तिता ।
षड्दीर्घयुक्तेनाऽन्त्येन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥१७॥

आधारहृच्छिरःस्वेवं न्यसेद्वर्णत्रयं ततः ।
ध्यायेद्देवं ततो वत्स समाहितमनाश्चिरम् ॥१८॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभ्रपद्मासने स्थितम् ।
कपर्दमौलिविलसच्चन्द्रखण्डच्युतामृतैः ॥१९॥

अभिषिक्तसमस्ताङ्गमर्केन्द्वनललोचनम् ।
दक्षिणोर्द्ध्वकरे मुद्रां ज्ञानाख्यां तदधःकरे ॥२०॥

अक्षमालाञ्च वामोर्द्ध्वे पाशं वेदमधःकरे ।
दधानं चिन्तयेद्देवं मृत्युरोगभयापहम् ॥२१॥

इति ध्यात्वा यजेत्पीठे शैवे पूर्वसमीरिते ।
अष्टपत्राम्बुजे वत्स चतुरस्रत्रयावृते ॥२२॥
अर्चनाऽङ्गेन्द्रवज्राद्यैरावृत्तित्रयसंयुते ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते—"शिरसि कहोलाय ऋषये नमः, मुखे—देवीगायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्रीमृत्युञ्जयाय देवतायै०, गुह्ये—ॐ बीजाय०, पादयोः—सः शक्तये नमः" इति विन्यस्य, ममेष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा 'सां सीं सूं सैं सौं सः' इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, 'मूलाधारे ॐ नमः, हृदये—जूं नमः, शिरसि—सः नम' इति विन्यस्य, ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य लोकपालपूजादि सर्वं समापयेदिति । अत्र पूजामण्डलं चतुरस्रत्रयवेष्टितमष्टदलं ज्ञेयम् ।

शारदातिलके—

गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं विशालधीः ।
जुहुयादमृताखण्डैः शुद्धदुग्धाज्यलोलितैः ॥२३॥

जपपूजादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन्मनुनाऽमुना ।
कुर्यात्प्रयोगान्कल्पोक्तानभीष्टफलसिद्धये ॥२४॥

दुग्धसिक्तैः सुधाखण्डैर्मन्त्री मासं सहस्रकम् ।
आराधितेऽग्नौ विधिवद् जुहुयाद्विजितेन्द्रियः ॥२५॥

सन्तुष्टः शङ्करस्तेन सुधाप्लावितविग्रहः ।
आयुरारोग्यसम्पत्तियशःपुत्रान्विवर्द्धयेत् ॥२६॥

सुधावटतिलान् दूर्वा पयः सर्पिः पयो हविः ।
इत्युक्तैः सप्तभिर्द्रव्यैर्जुहुयात्सप्तवासरम् ॥२७॥

क्रमाद्दशशतं नित्यमष्टोत्तरमतन्द्रितः ।
सप्ताधिकान्द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितम् ॥२८॥

विकारानुगुणं मन्त्री वर्द्धयेद्धोमवासरात् ।
होतृभ्यो दक्षिणां दद्यादरुणा गाः पयस्विनीः ॥२९॥

गुरुं सम्पूजयेत्पश्चाद्धनाद्यैर्देवताधिया ।
अनेन विधिना साध्यः कृत्याद्रोहज्वरादिभिः ॥३०॥

विमुक्तः सुचिरं जीवेच्छरदां शतमञ्जसा ।
अभिचारे ज्वरे तीव्रे घोरोन्मादे शिरोगदे ॥३१॥

असाध्यरोगे क्ष्वेडार्त्तौ मोहे दाहे महाभये ।
होमोऽयं शान्तिदः प्रोक्तः सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥३२॥

द्रव्यैरेतैः प्रजुहुयात्त्रिजन्मसु यथाविधि ।
भोजयेन्मधुरैर्भोज्यैर्ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥३३॥

दीर्घमायुरवाप्नोति वाञ्छितान्विन्दति श्रियम् ।
एकादशाहुतीर्नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयाद् बुधः ॥३४॥

अपमृत्युजिदेष स्यादायुरारोग्यवर्द्धनः ।
त्रिजन्मसु सुधावल्लीकाश्मीरवकुलोद्भवैः ॥३५॥

समिद्वरैः कृतो होमः सर्वमृत्युगदापहः ।
सिद्धार्थैर्विहितो होमो महाज्वरविनाशनः ॥३६॥
अपामार्गसमिद्धोमः सर्वामयनिषूदनः ।

प्रणवरचितनालं मन्त्रमध्यार्णपत्रम्,
भृगुविलसितमध्यं पद्मयुग्मं तदन्तः ।
कृतवसतिमुमेशं वर्णनिर्यत्सुधार्द्रम्,
कलयतु हृदि नित्यं सर्वदुःखप्रशान्त्यै ॥३७॥

पत्राढ्ये कमले सौम्यं कलशं प्रोक्तवर्त्मना ।
नवरत्नसमायुक्तं दुकूलाभ्यामनन्तरम् ॥३८॥

आपूर्णसलिलैः शुद्धैस्तस्मिन्देवं प्रपूजयेत् ।
उपचारैः षोडशभिर्विधानेन विधानवित् ॥३९॥
अभिषिञ्चेत्प्रियं साध्यं विनीतं दत्तदक्षिणम् ।

आधिव्याधिमहारोगकृत्याद्रोहनिवारणः ॥४०॥
अभिषेकोऽयमाख्यातः कान्तिलक्ष्मीजयप्रदः ।

मध्ये साध्याक्षराद्यं ध्रुवमभिविलिखेन्मध्यमं दिग्दलस्थं,
कोणेष्वन्त्यं मनोस्तत्क्षितिभवनमथो दिक्षु च द्राग्विदिक्षु ।
टान्तं यन्त्रं तदुक्तं सकलभयहरं क्ष्वेडभूतापमृत्यु-
व्याधिव्यामोहदुःखप्रशमनमुदितं श्रीपदं कीर्त्तिदायि ॥४१॥

अथ वक्ष्ये मन्त्ररत्नं समस्तपुरुषार्थदम् ।
अवापुर्येन जप्तेन दिव्यज्ञानं मुनीश्वराः ॥४२॥

दक्षिणामूर्त्तये पूर्वं तुभ्यं पदमनन्तरम् ।
बटमूलपदस्याऽन्ते पदं पश्चान्निवासिने ॥४३॥

ध्यानैकनिरताङ्गाय पश्चाद् ब्रूयान्नमःपदम् ।
रुद्राय शम्भवे तारशक्तिरुद्धोऽयमीरितः ॥४४॥

षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ।
मुनिः शुकः समुद्दिष्टोऽनुष्टुप्छन्दः समीरितम् ॥४५॥
दक्षिणामूर्त्तिनामाऽस्य देवता शम्भुरीरितः ।

नन्दिकेश्वरमते—

प्रणवो बीजमित्युक्तं हृल्लेखा शक्तिरीरिता ।
विनियोगः समुद्दिष्टः पुरुषार्थचतुष्टये ॥४६॥

आदौ तु मूलमन्त्रेण करशुद्धिं समाचरेत् ।
षड्भिर्वर्णैर्हृदाख्यातं द्वाभ्यां शिर उदीरितम् ॥४७॥

शिखाऽष्टभिः[1] समुद्दिष्टा वस्वर्णैः कवचं स्मृतम् ।
पञ्चभिर्नेत्रमाख्यातं त्रिभिरस्त्रमुदीरितम् ॥४८॥

षडेते तारशक्त्याद्या ह्रामाद्यन्ताः सजातयः ।
अङ्गमन्त्राः समादिष्टा यथावद्देशिकोत्तमैः ॥४९॥

मूर्द्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे गण्डयुग्मेऽथ नासिके ।
आस्ये दोःसन्धिषु गले स्तनहृन्नाभिमण्डले ॥५०॥

कट्यां गुह्ये पुनः पादसन्धिवर्णान्न्यसेन्मनोः ।
व्यापकं तारशक्तिभ्यां कुर्य्याद्देहे ततः परम् ॥५१॥

हेमाचलतटे रम्ये सिद्धकिन्नरसेविते ।
विविधद्रुमशाखाभिः सर्वतो वारितातपे ॥५२॥

सुपुष्पितैर्लताजालैराश्लिष्टकुसुमद्रुमे ।
शिलाविवरनिर्गच्छन्निर्जरानिलशीतले ॥५३॥

गायद्भृङ्गाङ्गनासङ्घे नृत्यद्बर्हिकदम्बके[2] ।
कूजत्कोकिलसङ्घेन मुखरीकृतदिङ्मुखे ॥५४॥

परस्परविनिर्मुक्तमात्सर्यमृगसेविते ।
आदौ शुकाद्यैर्मुनिभिरजस्रं समुपस्थिते ॥५५॥

पुरन्दरमुखैर्देवैः सेवायां[3] तैर्विलोकितैः ।
वटवृक्षं महोच्छ्रायं पद्मरागफलोज्वलम् ॥५६॥

गारुत्मतमयैः पत्रैर्निबिडैरुपशोभितम् ।
नवरत्नमयाकल्पैर्लम्ब्यमानैरलङ्कृतम् ॥५७॥

---

१. ख. शिवाष्टभिः । २. ख. बर्हिकदम्बे । ३. क. सेवाया ।

जलजैः स्थलजैः पद्मै रामोदिभिरलङ्कृतम् ।
गृणद्भिर्वेदशास्त्राणि शुकवृन्दैर्निषेवितम् ॥५८॥

संसारतापविच्छेदकुशलच्छायमद्भुतम् ।
विचिन्त्य तस्य मूलस्थे रत्नसिंहासने शुभे ॥५९॥

आसीनममिताकल्पं शरच्चन्द्रनिभाननम् ।
स्तूयमानं मुनिगणैर्दिव्यज्ञानाभिलाषिभिः ॥६०॥
संस्मरेज्जगतामाद्यं दक्षिणामूर्त्तिमव्ययम् ।

कैलाशाद्रिनिभं शशाङ्कशकलस्फूर्ज्जज्जटामण्डलं,
नासालोकनतत्परं त्रिनयनं वीरासनाध्यासिनम् ।
मुद्राटङ्ककुरङ्गजानुविलसत्पाणिं प्रसन्नाननं,
कक्षाबद्धभुजङ्गमं मुनिवृतं वन्दे महेशं परम् ॥६१॥

ध्यात्वैवं दक्षिणामूर्त्तिं मुनिवृन्दसमावृतम् ।
प्राक्प्रोक्ते पूजयेत्पीठे देवमावाह्य पूर्ववत् ॥६२॥

लिखेदष्टदलं पद्मत्रयं लक्षणसंयुतम् ।
अन्तर्बहिर्विभागेन कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥६३॥

चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरश्रत्रयावृतम् ।
अस्मिन्पीठे यजेद्देवं प्राग्वदङ्गानि पूजयेत् ॥६४॥

प्रथमेऽष्टदले वत्स सनकं च सनन्दनम् ।
सनातनं चाऽथ सनत्कुमारं शुकमेव च ॥६५॥

जाबालिनं नारदं च व्यासमेतान्प्रपूजयेत् ।
द्वितीयेऽनन्तसूक्ष्मादींस्तृतीये वृषभादिकान् ॥६६॥
वीथीद्वये लोकपालांस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ।

॥ **अथ प्रयोगः** ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते प्राणायामपूर्वकं[१] "शिरसि—शुकाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीदक्षिणामूर्त्तये देवतायै०,

---
१. ख. प्राणायामत्रयपूर्वकं ।

गुह्ये—ॐ बीजाय०, पादयोः—ह्रीँ शक्तये नम" इति विन्यस्य, मम चतुर्विध-पुरुषार्थसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत्। ततो मूलमन्त्रेण करशुद्धिं कृत्वा ॐ ह्रीँ दक्षिणामूर्त्तये ह्राँ हृदयाय नमः, ॐ ह्रीँ तुभ्यं ह्रीँ शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीँ वटमूलनिवासिने ह्रूँ शिखायै वषट्, ॐ ह्रीँ ध्यानैकनिरताङ्गाय ह्रैँ कवचाय हुं, ॐ ह्रीँ नमो रुद्राय ह्रौँ नेत्राय वौषट्, ॐ ह्रीं शम्भवे ह्रः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तकरयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततः "शिरसि—दं नमः, भाले—क्षिं०, दक्षनेत्रे—णं०, वामे—मूं०, दक्षश्रोत्रे—र्त्तं०, वामे—यं०, दक्षगण्डे—तुं०, वामे—भ्यं०, नासायां—वं०, आस्ये—रं०, दक्षबाहुमूले—मूं०, मध्ये—लं०, मणिबन्धे—निं०, अङ्गुलिमूले—वां०, वामबाहुमूले—सिं०, मध्ये—नें०, मणिबन्धे—ध्यां[1]०, अङ्गुलिमूले—नैं०, गले—कं०, स्तनयोः—निं०, हृदि—रं०, नाभौ—तां०, कटौ—गां०, गुह्ये—यं०, दक्षोरुमूले—नं०, जानुनि—मों०, गुल्फे—रुं०, अङ्गुलिमूले—द्रां०, वामोरुमूले—यं०, जानुनि—शं०, गुल्फे—म्भं० अङ्गुलिमूले—वें नम" इति विन्यस्य, ध्यानादिषडङ्गपूजान्ते प्रथमाष्टदले देवाग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन "सनकाय नमः, सनन्दनाय०, सनातनाय०, सनत्कुमाराय०, शुकाय०, जाबालिने०, नारदाय०, व्यासाय०, द्वितीयेऽनन्ताद्यान्, तृतीये वृषभादिकान्समभ्यर्च्य प्राग्वल्लोकपालार्चादि सर्वं समापयेदिति।[2] तथा—

इत्थं देवं समभ्यर्च्य प्रजपेदयुताष्टकम् ॥६७॥

पुरश्चरणसिद्ध्यर्थं यथोक्तनियमान्वितः।
जुहुयात्तद्दशांशेन तिलैः क्षीरपरिप्लुतैः ॥६८॥

पायसेनाऽथवा नन्दिन् सघृतेन द्वयेन च[3]।
तर्पणादि ततः कुर्याद्यथोक्तेन विधानवित् ॥६९॥

एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगानाचरेदथ।
मासमेकं च भिक्षाशी सहस्रं साष्टकं जपेत् ॥७०॥

मन्त्रं प्रतिदिनं मन्त्री वैदुष्यं लभते ध्रुवम्।
मूलमन्त्रेण पुटितां मातृकां मन्त्रवित्तमः ॥७१॥

---

१. क. म्यां। २. इतः परं निम्नांशोऽयं विशेषो दृश्यते ख. पुस्तके—

शारदातिलके तु —अयुतद्वयसंयुक्तं गुणलक्षं जपेन्मनुम्।
तद्दशांशं तिलैः शुद्धैर्जुहुयात्क्षीरसंयुतैः ॥१॥

इत्युक्तम्। होमोऽपि *मन्त्रदेवप्रकाशिकाया*मन्यत्र च शतांशः प्रोक्तस्तत्र गुरूपदिष्टमार्गेण व्यवस्थेति। ३. ख. वा।

जलं स्पृष्ट्वा त्रिधाऽऽजप्य पिबेदद्वाद्भवेद् ध्रुवम् ।
अखिलानां च शास्त्राणां व्याख्याता च महाकविः ॥७२॥

रोगपिप्पलिकाब्राह्मीवचासर्षपसैन्धवैः ।
सुगन्धद्रव्यसंयुक्तैर्नन्दिकेश्वरकल्पितैः[1] ॥७३॥

तत्कल्कसहिते ब्राह्मीरसे पक्वं च गोघृतम् ।
अनेन मन्त्रवर्येण प्रजप्तमयुतावधि ॥७४॥

एतत्संसेवितं कीर्त्तिकविताश्रीधृतिप्रदम् ।
कान्तिरक्षायुष्यदं च गदितं सर्वसिद्धिकृत् ॥७५॥

शारदातिलके—

प्रणवो हृदयं पश्चात्ततो भगवते-पदम् ।
ङेयुतं दक्षिणामूर्त्ति मह्यं मेधामुदीरयेत् ॥७६॥
प्रयच्छ ठद्वयान्तोऽयं द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।

अत्र केचिदस्मिन्मन्त्रे मेधामिति पदं त्यक्त्वा तत्स्थाने प्रज्ञामिति पदं वदन्ति ।

तदुक्तं **मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—**

'मेधास्थाने सूरयोऽन्ये प्रज्ञापदमथोचिरे ॥७७॥ इति ।

तथा— मुनिश्चतुर्मुखश्छन्दो गायत्री देवता मनाः ।
दक्षिणामूर्त्तिराख्यातो वेदव्याख्यानतत्परः ॥७८॥

नन्दिकेश्वरमते—

प्रणवः प्रोच्यते बीजं स्वाहाशक्तिरिति स्मृता ।
मेधापदं कीलकं स्यात्पुरुषार्थे नियुज्यते ॥७९॥

ताररुद्धैः स्वरैर्दीर्घैः षड्भिरङ्गानि कल्पयेत् ।
शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु हृदि नाभौ च गुह्यके ॥८०॥

जान्वोश्चरणयोर्न्यस्येत्पदानि क्रमशः सुधीः ।
मूर्ध्नि पश्चाल्ललाटे च चक्षुषोः श्रोत्रयोस्तथा ॥८१॥

---

१. क. ०कल्पिते ।

नासापुटद्वये पश्चादोष्ठयोर्दन्तयोरपि ।
जिह्वायां चिबुकाग्रे च अंसयोर्युगले गले ॥८२॥

बाह्वोश्च हृदये चैव नाभौ गुह्ये गुदे तथा ।
ऊर्वोर्जान्वोश्च जङ्घायां[1] पादपाणियुगे तथा ॥८३॥

सर्वाङ्गेषु च विन्यस्येन्मन्त्रवर्णानतन्द्रितः ।
एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री ध्यायेद्देवमनन्यधीः ॥८४॥

अकलङ्कशरच्चन्द्रनिभमम्भोजमध्यगम् ।
गङ्गाधरं लसच्चन्द्रशकलोल्लासिशेखरम् ॥८५॥

प्रसन्नवदनाम्भोजं त्रिनेत्रं सुस्मिताननम् ।
दिव्याम्बरधरं दिव्यगन्धमाल्यैरलङ्कृतम् ॥८६॥

नानारत्नमयाकल्पमहिकक्षाविभूषितम् ।
मुक्ताक्षमालां दक्षोर्द्ध्वे ज्ञानमुद्रामधःकरे ॥८७॥

वामोर्द्ध्वे च सुधाकुम्भं पुस्तकं तदधःकरे ।
दधानं चिन्तयेन्नन्दिन्मुनिवृन्दनिषेवितम् ॥८८॥

अपस्मारशिरःपीठलसद्वामाङ्घ्रिपङ्कजम् ।
एवं ध्यात्वा गणश्रेष्ठ पूर्वोक्ते शैवपीठके ॥८९॥

पद्मत्रयसमोपेते भूगृहत्रितयान्विते ।
चतुर्द्वारसमायुक्ते देवमावाह्य पूजयेत् ॥९०॥

आदावङ्गानि सम्पूज्य केसरेषु यथा पुरा ।
स्वरान्षोडश नन्दीश द्वन्द्वशः केसरस्थितान् ॥९१॥

यजेद् वर्गाष्टकं पश्चादष्टपत्रेषु मन्त्रवित् ।
द्वितीयेऽष्टदले वत्स सरस्वत्यादिकान्यजेत् ॥९२॥

सरस्वती चतुर्वक्त्रः[2] सनकश्च सनन्दनः ।
सनातनस्ततो वत्स सनत्पूर्वः कुमारकः ॥९३॥

---

१. क. संधायां । २. क. चतुर्वक्त्रः ।

शुको व्यासश्च सम्पूज्यस्तृतीयेऽष्टदले पुनः ।
पार्वती सुभगा भद्रा क्रिया शान्तिस्तथैव च ॥९४॥

रौद्री काली वल्लभेति दक्षिणामूर्त्तिशक्तयः ।
चतुरश्रचतुष्कोणेष्वग्न्यादीशान्तमर्चयेत् ॥९५॥

सिद्धगन्धर्वयोगीन्द्रविद्याधरगणानपि ।
इन्द्रादींश्च तदस्त्राणि प्राग्वद्वीथीद्वये यजेत् ॥९६॥

॥ **अथ प्रयोगः** ॥

तत्र प्राग्वत् प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—चतुर्मुखाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदि—श्री-दक्षिणामूर्त्तये देवतायै०, गुह्ये—ॐ बीजाय०, पादयोः—स्वाहाशक्तये०, नाभौ—मेधाकीलकाय नम" इति विन्यस्य, मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, "ॐ आं ॐ हृदयाय नमः, ॐ ईं ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ ऊँ ॐ शिखायै वषट्, ॐ ऐं ॐ कवचाय हुं, ॐ औं ॐ नेत्राय वौषट्, ॐ अः ॐ अस्त्राय फडि"ति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, "शिरसि—ॐ नमः, भ्रूमध्ये—नमो नमः, वक्त्रे—भगवते नमः, हृदि—दक्षिणामूर्त्तये नमः, नाभौ—मह्यं नमः, गुह्ये—मेधां नमः, जान्वोः—प्रयच्छ नमः, पादयोः—स्वाहा नमः, शिरसि—ॐ नमः, भाले—नं०, नेत्रयोः—मों०, कर्णयोः—भं०, नासापुटयोः—गं०, नाभौ—मं०, गुह्ये—ह्यं०, गुदे—में०, ऊर्वोः—धां०, जान्वोः—प्रं०, जङ्घयोः यं०, पादयोः छं०, पाण्योः—स्वां०, सर्वाङ्गे—हां नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद् ध्यानादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वदङ्गानि सम्पूज्य, प्रथमाष्टदले "अं आं नमः, एवं इं ईं, उं ऊं, ऋं ॠं, लृं लॄं, एं ऐं, ओं औं, अं अः" इति देवाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तद्दलेषु तथैव "कं ५ नमः, एवं चं ५, टं ५, तं ५, पं ५, यं ४, शं ४, लं क्षं नमः" ।

ततो द्वितीयाष्टदले तथैव "सरस्वत्यै नमः, एवं ब्रह्मणे०, सनकाय०, सनन्दनाय०, सनातनाय०, सनत्कुमाराय०, शुकाय०, व्यासाय०" ।

ततस्तृतीयाष्टदले तथैव "पार्वत्यै०, सुभगायै०, भद्रायै०, क्रियायै०, शान्त्यै० रौद्र्यै०, काल्यै०, वल्लभायै नमः" ।

ततः पद्मचतुष्कोणयोरन्तरालस्थकोणचतुष्के आग्नेयादि "सिद्धगणेभ्य नमः, गन्धर्वगणेभ्यः, योगीन्द्रगणेभ्यः०, विद्याधरगणेभ्यो नम" इति सम्पूज्य, प्राग्वल्लोकपालपूजादि सर्वं समापयेदिति ।

तथा— एकलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेदथ ।
क्षीराप्लुतैस्तिलैः पद्मैः पालाशैर्वा घृतप्लुतैः ॥९७॥

तर्पणादि ततः कुर्याद्यथोक्तविधिना सुधीः ।
मन्त्रवर्यं प्रसाध्यैवं काम्यकर्माणि साधयेत् ॥९८॥

कण्ठमात्रोदके स्थित्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रकम् ।
प्रत्यहं मण्डलादर्वाक्कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥९९॥

पञ्चविंशतिधा जप्तमन्नं पायसमेव च ।
भक्षितं सर्पिषा सिक्तं परं वाक्सिद्धिकारकम् ॥१००॥

सर्वापन्नाशकं चैव सर्वरोगविनाशनम् ।
त्रयोदश्यां प्रदोषेषु सोपवासः शिवालयम् ॥१०१॥

मौनी गत्वाऽर्चयेद्देवं विद्यायुर्वृद्धयेऽनघ ।
आज्येन पायसान्नेन वाक्कामः सर्वदा हुनेत् ॥१०२॥

श्रीकामः पद्मकैर्बिल्वैर्नन्द्यावर्त्तैः सदा हुनेत् ।
आज्यक्षीराक्तदूर्वाभिर्हुत्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ॥१०३॥

गुरवे गां च महिषीं तस्य मृत्युभयं कुतः ।
आदित्याभिमुखो दद्यादञ्जलीनां जलैर्दश ॥१०४॥

मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञः सर्वदोषैर्न बाध्यते ।
प्रातः सायं च सप्तैव मध्याह्ने चैकविंशतिः ॥१०५॥

दुग्धबुद्धया जलैर्देवं तर्पयेदर्चयेद्धुनेत् ।
पलाशपुष्पैरचिरात्कविर्होमादिभिर्भवेत् ॥१०६॥

गौर्या पार्श्वस्थया सार्द्धं श्रीकामश्चिन्तयेत्प्रभुम् ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं भूयसीं श्रियमाप्नुयात् ॥१०७॥

भुञ्जानः प्रयतो मन्त्री गोमूत्रे पक्वमोदनम् ।
भिक्षान्नमथवा मन्त्रमयुतद्वितयं जपेत् ॥१०८॥

अश्रुतान्वेदशास्त्रादीन् व्याचष्टे नाऽत्र संशयः ।
पद्मं दशदलं कृत्वा तारं तत्कर्णिकोदरे ॥१०९॥

साध्याख्यां कर्मसंयुक्तां विलिखेन्नन्दिकेश्वर ।
पत्रेषु मन्त्रसम्भूतानर्णान्द्विद्विक्रमाल्लिखेत् ॥११०॥

अन्त्यमन्त्ये समालिख्य वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ।
यन्त्रं श्रीदक्षिणामूर्त्तेः साधितं विधिवन्नृणाम् ॥१११॥
अपस्मारग्रहादीनां नाशनं धारणाद् भवेत् ।

अस्याऽर्थः:- तत्र दशदलपद्मं कृत्वा, तत्कर्णिकायां प्रणवं विलिख्य, तन्मध्ये 'देवदत्तं रक्ष रक्षे'ति साध्यनामाऽऽलिख्य, तत्पत्रेषु द्विद्विमन्त्रवर्णान्समालिख्याऽन्त्यदले वर्णत्रयं लिखित्वा, बहिर्वृत्तद्वयं विधाय, तयोरन्तरालवीथ्यां प्रागादिप्रादक्षिण्येनाऽकारादि-क्षकारान्तां सबिन्दुकां मातृकां विलिखेदेतदुक्तफलदं भवति । तथा—

पद्ममष्टदलं कृत्वा मध्ये साध्यं समालिखेत् ।
किञ्जल्केषु स्वरान्नन्दिन् द्वन्द्वशस्तु समालिखेत् ॥११२॥

तारमाद्यदले नन्दिन्वर्णत्रियविभागशः ।
आलिख्य विलिखेत्पश्चाद्वर्णत्रयविभागतः ॥११३॥

शिष्टपत्रेषु मन्त्रस्य शिष्टवर्णान्समाहितः ।
बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा अन्तराले तयोर्लिखेत् ॥११४॥

कादिक्षान्तान्सबिन्दूंश्च बहिर्भूबिम्बमालिखेत् ।
प्रधानदिक्षु तस्याऽथ सप्तमान्त्यं समालिखेत् ॥११५॥

प्रथमोपान्त्यसंयुक्तं चतुर्थस्य द्वितीयकम् ।
कोणेषु विलिखेच्चैतद्यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥११६॥

पुत्रपौत्रप्रदं नृणामायुःश्रीविजयप्रदम् ।
कृत्यापस्मारभूतादिनाशनं सर्वकामदम् ॥११७॥

अस्याऽर्थः:—अष्टदलं पद्मं कृत्वा, तत्कर्णिकायां साध्यनाम समालिख्य, [किञ्जल्केषु द्विशः स्वरान्सबिन्दूनालिख्य, प्रथमदले प्रणवं अकार-उकार-मकार-

भेदेन विभज्य, विलिख्य, सप्तदलेषु मंत्रस्यैकविंशतिवर्णांस्त्रिशः समालिख्य][1] वृत्तान्तरालवीथ्यां कादिक्षान्तान्वर्णानालिख्य भूपुरस्य दिक्षु 'वं' कोणे ठमिति विलिखेदेतदुक्तफलदम् ।

नन्दिकेश्वरमते—

शृणु नन्दिन्प्रवक्ष्यामि मन्त्रमन्यन्नवाक्षरम् ।
देवस्य दक्षिणामूर्त्तेः सर्वज्ञत्वप्रदायकम् ।।११८।।

आद्यत्रयोदशार्णं तु तस्य पञ्चदशान्वितम् ।
उद्धृत्य पुनराद्यस्य प्रथमार्णं समुद्धरेत् ।।११६।।

पञ्चाक्षरमनुं पश्चादाद्यवर्णद्वयं पुनः ।
व्युत्क्रमेण वदेन्नन्दिन्मन्त्रः प्रोक्तो नवाक्षरः ।।११०।।

आद्यत्रयोदशार्ण ओकारः, तस्य पञ्चदशो बिन्दुस्तेन प्रणवः सिद्धः, आद्यस्य प्रथमार्ण अकारः; पञ्चाक्षरमनुः पूर्वोक्तः शिवपञ्चाक्षरः; आद्यवर्णद्वयं प्रणवाकारौ, व्युत्क्रमेण अकारप्रणवक्रमेण । तथा—

ऋषिः शुकः समाख्यातोऽनुष्टुप् छन्द उदाहृतम् ।
देवता जगतामादिर्दक्षिणामूर्त्तिरव्ययः ।।१२१।।

तारेण हृदयं प्रोक्तमकारेण शिरः स्मृतम् ।
शिखा नमःपदेन स्याच्छिवाय कवचं मतम् ।।१२२।।

अकारेण च नेत्रं स्यादस्त्रं तारेण विन्यसेत् ।

मुद्रापुस्तकवह्निनागविलसद्बाहुं प्रसन्नाननम्,
मुक्ताहारविभूषणं मणिरुचा भास्वत्किरीटोज्वलम् ।
अज्ञानापहमादिमादिमगिरामर्थं भवानीपतिम्,
न्यग्रोधान्तनिवासिनं परगुरुं ध्यायेदभीष्टाप्तये ।।१२३।।

इति ध्यात्वा यजेद्देवं शैवे पीठे पुरोदिते ।
पञ्चाक्षरोक्तविधिना पुरश्चर्यादिकं तथा ।।१२४।।

---

१. [—] ख. पुस्तके कोष्टबद्धोंऽशो नाऽस्ति ।

तथा पञ्चाक्षरवत् ।

एवं यो भजते मन्त्रं स सर्वज्ञो भवेद् ध्रुवम् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा—"शिरसि शुकाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—दक्षिणामूर्त्तये देवतायै नम" इति विन्यस्य, प्राग्वद्विनियोगमुक्त्वा, "ॐ हृदयाय नमः, अ शिरसे स्वाहा, नमः शिखायै वषट्, शिवाय कवचाय हुम्, अ नेत्राय वौषट् ॐ अस्त्राय फडि"ति कर षडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानादि सर्वं पञ्चाक्षरवत् कुर्यादिति । तथा—

आद्यद्वादशवर्णं तु तस्योपान्त्येन संयुतम् ।
पञ्चमं पञ्चमस्याऽथ षष्ठस्याऽपि च पञ्चमम् ॥१२५॥

प्रथमान्त्यसमोपेतं द्वितीयप्रथमं ततः ।
सप्तमस्य 'तृतीयस्थं प्रथमस्य'[1] तुरीययुक् ॥१२६॥

प्रथमोपान्त्यसंयुक्तमष्टमस्याऽऽद्यमक्षरम् ।
[2]तृतीयोपेतमाद्यस्य सप्तमस्य तुरीयकम् ॥१२७॥

आद्यद्वितीयसंयुक्तं सप्तमस्याऽऽद्यमक्षरम् ।
अष्टमस्य तृतीयं तु आद्योपान्त्याद्य संयुतम् ॥१२८॥

तदन्त्यसहितं नन्दिस्ताराद्योऽयं नवाक्षरः ।
तव स्नेहान्मया नन्दिन् कथितः सर्वसिद्धिदः ॥१२९॥

आद्यद्वादश ऐ, तस्योपान्त्यो बिन्दुस्तेन ऐं; पञ्चमस्य पञ्चमं न; षष्ठपञ्चमं मकारः, प्रथमान्त्यो विसर्गस्तेन मः, द्वितीयप्रथम ककारः, सप्तमस्य तृतीयस्थं लकारोपरिस्थितम्, प्रथमस्य तुरीय ईकारः; प्रथमोपान्त्यो बिन्दुस्तेन क्लीं; अष्टमस्याद्यं शकारः, आद्यस्य तृतीयमिकारस्तेन शि; सप्तमस्य तुरीयकं वकारः, आद्यद्वितीय आकारस्तदुक्तस्तेन वा; सप्तमस्याऽऽद्यं यकारः, अष्टमस्य तृतीय सकारः, आद्योपान्त्याद्य औकारः, तदन्त्यो विसर्गस्ताभ्यां युक्तस्तेन सौः । तथा—

मुन्याद्याः पूर्वमुद्दिष्टाः पादैः षड्भिः षडङ्गकम् ।
ध्यायेत्पूर्ववदेवेशं वामार्द्धदयितं शिवम् ॥१३०॥

१. '—' अयमंशः क. पुस्तके नास्ति । २. ख. तृतीयेपित० ।

यजेत्पूर्वोदिते पीठे पञ्चाक्षरविधानतः ।
पुरश्चरणकृत्यं च पूर्वोक्तं नन्दिकेश्वर ॥१३१॥

पूर्वोक्तं नवाक्षरोक्तम् ।

पूर्वमन्त्रोदितान्कुर्यात्प्रयोगान्साधकोत्तमः ।

पूर्वमन्त्रोदितान् दक्षिणामूर्त्तिमन्त्रोक्तान् । ॐ हृत्, ऐं शिरः, नमः शिखा, क्लीं कवचं, शिवाय नेत्रं, सौः अस्त्रं, अन्यत्सुगमम् ।

शारदातिलके—

लोहितोऽग्न्यासनः सद्यबिन्दुमान्प्रथमं ततः ।
द्वितीयं वह्निबीजस्था दीर्घा शान्तीन्दुभूषिता ॥१३२॥

तृतीयं लाङ्गुली सर्गी मन्त्रो बीजत्रयान्वितः ।
नीलकण्ठात्मकः प्रोक्तो विषद्वयहरः परः ॥१३३॥

लोहितः पकारः, अग्न्यासनः रेफस्थः, सद्य ओकारः, बिन्दुमान् तेन 'प्रों' इति । दीर्घा नकारः, वह्निबीजं रेफः, शान्तिरीकारस्तेन 'त्रीं' इति । लाङ्गुली ठकारः, सर्गी विसर्गवान्, तेन ठः इति ।

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

अरुणो मुनिरुद्दिष्टोऽनुष्टुप्छन्दस्तु देवता ।
नीलकण्ठः शिवो देवी·································॥१३४॥ इति ।

पदार्थादर्शे—आद्यं बीजमन्त्यं शक्तिरिति ।

शारदातिलके—

हरद्वयं वह्निजाया हृदयं परिकीर्त्तितम् ।
कपर्द्दिने ठयुगलं शिरोमन्त्र उदाहृतः ॥१३५॥

नीलकण्ठाय ठद्वन्द्वं शिखामन्त्रोऽयमीरितः ।
कालकूटपदस्याऽन्ते विषभक्षण ङेयुतम् ॥१३६॥

हुं फट् कवचमादिष्टं विद्वद्भिर्नीलकण्ठिने ।
स्वाहान्तमस्त्रमेतानि पञ्चाङ्गानि मनोर्विदुः ॥१३७॥

मूर्द्ध्नि कण्ठे हृदम्भोजे क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत् ।
ततः समाहितो भूत्वा नीलकण्ठं विचिन्तयेत् ॥१३८॥

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

ध्यायेद्देवं नीलकण्ठं बालार्क्कायुतवर्चसम् ।
जटाजूटलसच्चन्द्रशकलं फणिसत्तमैः ॥१३९॥

कृताकल्पं कराम्भोजैर्दधानं जपमालिकाम् ।
शूलं दक्षिणाधोर्द्ध्वे वामार्द्धे च कपालकम् ॥१४०॥

खट्वाङ्गं तदधोहस्ते पञ्चवक्त्रविराजितम् ।
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनं व्याघ्रचर्मावृतं कटौ । १४१॥

पद्ममध्ये समासीनमतिसुन्दरविग्रहम् ।
एवं ध्यात्वाऽर्चयेत्पीठे शैवे सर्वोपचारकैः ॥१४२॥

पद्मे वसुदले रम्ये चतुरश्रत्रयावृते ।
चतुर्द्वारसमायुक्ते पूर्वमङ्गानि पूजयेत् ॥१४३॥

लोकेश्वरानथाऽभ्यर्च्य तदस्त्राणि च संयजेत् ।
एवं समर्चयन्मन्त्री नीलकण्ठं महेश्वरम् ॥१४४।
दृष्ट्वा विनाशयेत्क्ष्वेडं नीलकण्ठ इवाऽपरः ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—अरुणाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदि—श्रीनीलकण्ठाय देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, मूलमन्त्रेण करशुद्धिं विधाय, "हर हर स्वाहा हृदयाय नमः, कपर्द्दिने स्वाहा शिरसे स्वाहा, नीलकण्ठाय स्वाहा शिखायै वषट्, कालकूटविषभक्षणाय हुं फट् कवचाय हुं, नीलकण्ठिने स्वाहाऽस्त्राय फडि'ति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य, नेत्रवर्जं हृदयादिपञ्चाङ्गेष्वपि न्यसेत् । ततः शिरसि—ॐ नमः, कण्ठे—त्रीं नमः, हृदये—ठः नम" इति विन्यस्य, ध्यानाद्यङ्गपूजान्ते लोकेशांस्तदस्त्राणि च प्राग्वद्वीथीद्वये पूजयेत्, ततः प्राग्वत्समापयेदिति । तथा—

लक्षत्रयं जपेद्देवी दीक्षितो विजितेन्द्रियः ।
हविषा सघृतेनाऽथ हुनेद्देवि दशांशतः ॥१४५॥

तर्पणं मार्जनं कृत्वा भोजयेन्मधुरैर्द्विजान् ।
एवं सिद्धे मनौ देवि मन्त्री हरति तत्क्षणात् ॥१४६॥

क्ष्वेडत्रयं न सन्देहो नीलकण्ठ इव स्वयम् ।
स्पृष्ट्वा जपेद्विषग्रस्तं तत्क्षणान्निर्विषो भवेत् ॥१४७॥

[बीजाभ्यां प्रथमान्ताभ्यां पार्श्वयोर्विषमाहरेत् ।
मध्येन मध्यगं सर्वं मनुनाऽनेन संहरेत् ॥१४८॥

एतन्मन्त्राभिसञ्जप्तकलशोदकसेचनात् ।
तक्षकेणाऽभिसन्दष्टं तत्क्षणान्निर्विषो भवेत् ॥१४९॥][1]

विलोक्य विषिणं मन्त्रं प्रजपेत्सुसमाहितः ।
विषद्वयान्मुच्यतेऽसावचिरान्नाऽत्र संशयः ॥१५०॥

दृष्ट्वा क्ष्वेडग्रहग्रस्तं स्वशिरःकण्ठहृत्सु च ।
मन्त्रवर्णत्रयं न्यस्य देवतारूपकं गुरुम् ॥१५१॥

स्मरेत्स्वदक्षिणानामामध्यमातर्जनीछटाः ।
मन्त्राक्षरत्रयं देवि तदङ्गुलिभिरुत्तमाम् ॥१५२॥

त्रिशूलमुद्रामापाद्य ग्रस्तस्याऽभिमुखं ततः ।
प्रदर्श्य मन्त्रं प्रजपेत्पञ्चाशद्वारमद्रिजे ॥१५३॥

स्थावरं जङ्गमञ्चैव कृत्रिमं च तथा विषम् ।
रोगग्रहाद्यपस्मारानपमृत्युं च नाशयेत् ॥१५४॥

पञ्चाशन्मनुना जप्तमन्नमौषधमेव च ।
भक्षितं क्ष्वेडरोगादिनाशनं परमं शिवे ॥१५५॥

मन्त्रान्तरमथो वक्ष्ये नीलकण्ठस्य पार्वति ।
तारहृन्नीलकण्ठाय मनुरष्टाक्षरो मतः ॥१५६॥

तारः प्रणवः, हृन्नमः, नीलकण्ठाय-स्वरूपम् । तथा—

---

१. [—] कोष्ठान्तर्गतोंऽशः ख. पुस्तके नाऽस्ति ।

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द उच्यते ।
देवता नीलकण्ठोऽस्य विषग्रहविनाशनम् ॥१५७॥

अङ्गध्यानार्चनाजाप्यहोमाद्यं तु पुरोक्तवत् ।
तारङेनीलकण्ठाग्निवधूरष्टार्णकोऽपरः ॥१५८॥

तारः प्रणवः, ङे नीलकण्ठो नीलकण्ठाय, अग्निवधूः स्वाहाकारः । तथा—

अरुणोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता शिवः ।
नीलकण्ठो महापूर्वो विषरोगादिनाशनः ॥१५९॥

नीलकण्ठायाऽग्निवधूस्तारङेनीलकण्ठकम् ।
स्वाहा चैभिर्हृदन्तैः स्युः पञ्चाङ्गानि न्यसेत्क्रमात् ॥१६०॥

दक्षतर्जनिकारम्भाद् वामतर्जनिकावधि ।
वर्णाष्टकं न्यसेन्मन्त्री पादोरुगुह्यनाभिषु ॥१६१॥

हृत्कण्ठमुखशीर्षेषु न्यसेद्वर्णाष्टकं प्रिये ।
पूर्वाद्यैराननैर्युक्तः श्वेतपीतारुणासितैः ॥१६२॥

अभयं परशुं चापं वासुकिं च दधद्भुजैः ।
ध्येयो देवस्तु पार्श्वस्थगौरीकश्चाऽतिसुन्दरः ॥१६३॥
संहारनिर्विषस्तम्भावेशान् कुर्वन्क्रमान्मुखैः ।

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । तथा—

अक्षरोक्तविधानेन पूजयेत्परमेश्वरम् ॥१६४॥
पुरश्चरणमप्युक्तं वर्णलक्षं महेश्वरि ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—अरुणाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदये—श्रीमहानीलकण्ठाय देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत् । ततो मूलेन करशोधनं कृत्वा, "नीलकण्ठाय नमो हृदयाय नमः, स्वाहा नमः शिरसे स्वाहा, ॐ नमः शिखायै वषट्, नीलकण्ठाय नमः कवचाय हुम्, स्वाहा-

नमोऽस्त्राय फडि"ति पञ्चाङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं करयोर्विन्यस्य नेत्रवर्जं हृदादिष्वपि न्यसेत् । ततः उक्तरूपं ध्यात्वाऽन्यत्सर्वं त्र्यक्षरोक्तं कुर्यादिति ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ द्वात्रिंशस्तरङ्गः ॥३२॥

[त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः]

श्रीशिवरहस्ये—

अथ वक्ष्ये महासेन मन्त्रं पाशुपताह्वयम् ।
अस्त्रराजं समस्तापत्तारकं शत्रुकृन्तनम् ॥१॥

तारो वकेशः शान्तीन्द्रभूषितश्चन्द्रशेखरः ।
शिखीशपूर्वो वान्तश्च पञ्चमस्वरसंयुतः ॥२॥
वर्मास्त्रान्तः षडर्णोऽयं षडाननसमीरितः ।

तारः प्रणवः, वकेशः शकारः, शान्तिरीकारः, इन्द्रो लकारस्ताभ्यां भूषितः, चन्द्रशेखरो बिन्दुस्तेन श्लींमिति; शिखीशपूर्वः पकारः; वान्तः शकारः, पञ्चमस्वर उकारस्तेन शुं; वर्म हुं, अस्त्रं फट् । तथा—

ऋषिः स्याद्वामदेवोऽस्य पङ्क्तिश्छन्दः समीरितम् ॥३॥

रुद्रः पशुपतिः प्रोक्तो देवता देववन्दितः ।
मन्त्रार्णैः षड्भिरङ्गानि हुं फडन्तैः सबिन्दुकैः ॥४॥

जातियुक्तानि विन्यस्य षडाननकराङ्गयोः ।
ध्यायेत्पशुपतिं सम्यङ् मन्त्री चैकाग्रमानसः ॥५॥

पञ्चवक्त्रं दशभुजं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
अग्निज्वालानिभं श्मश्रुमूर्द्धजं[1] भीमदंष्ट्रकम् ॥६॥

---

१. क. ०मूर्द्धनं ।

खड्गं बाणानक्षसूत्रं शक्तिं परशुमेव च ।
दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्द्ध्वादिक्रमतो गुह ॥७॥

खेटचापौ कुण्डिकां च त्रिशूलं ब्रह्मदण्डयुक् ।
वामहस्तैश्च बिभ्राणं मध्याह्नार्कसमप्रभम् ॥८॥

नानाभरणसन्दीप्तं पन्नगेन्द्रैरलङ्कृतम् ।
स्फटिकौघनिभं शान्तं सर्वरक्षाकरं स्मरेत् ॥९॥

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे शैवे गन्धादिभिः शिवम् ।
पद्ममष्टदलं कृत्वा कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥१०॥

चतुर्द्वारसमायुक्तचतुरश्रत्रयावृतम् ।
एवं यन्त्रं समालिख्य स्वर्णरूप्यादिके शुभे ॥११॥

पदे वा फलके वत्स श्रीखण्डादिसमुद्भवे ।
सर्वोपचारैराराध्य यजेदङ्गानि पूर्ववत् ॥१२॥

दलेषु मातरः पूज्या लोकेशास्त्राणि तद्बहिः ।
पूजयेद्विधिनाऽनेन रुद्रं परमभक्तितः ॥१३॥
यः स सर्वानवाप्येह कामानन्ते शिवो भवेत् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्पीठन्यासान्ते प्राणायामत्रयपूर्वकं "शिरसि—वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे०, हृदये—श्रीपशुपतये देवतायै नम" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इत्युक्त्वा, "ॐ हुं फट् हृदयाय नमः, श्लीं पशु हुं फट् शिरसे स्वाहा, पं हुं फट् शिखायै वषट्, शुं हुं फट् कवचाय हुं, हुं हुं फट् नेत्राय वौषट्, फट् हुं फट् अस्त्राय फडि"ति करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यानाद्यङ्ग-पूजान्तेऽष्टदलेषु ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, बहिर्वीथीद्वये इन्द्राद्यांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य प्राग्वत्सर्वं समापयेदिति ।

तथा— वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
तद्दशांशं हुनेद् गव्यैर्घृतैः सुसंस्कृतेऽनले ॥१४॥

तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेदथ ।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्विदधीत वै ॥१५॥

अनेन मन्त्रितं तोयं ग्रस्तस्य वदने क्षिपेत् ।
सद्यस्तं मुञ्चति क्रन्दन् ग्रहो मन्त्रप्रभावतः ॥१६॥
अमुना मन्त्रितान् बाणान्विसृजेद्युधि भूपतिः ।
जपेत् क्षणेन सबलानपि शत्रून् षडानन ॥१७॥

शारदातिलके—

अथाऽभिधास्ये विधिवदघोरास्त्रमनूत्तमम् ।
यस्य संस्मरणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ॥१८॥

माया स्फुरद्वयं भूयः[1] 'प्रस्फुरद्वितयं ततः'[2] ।
घोरघोरतरेत्यन्ते तनुरूपपदं पुनः ॥१९॥

चटयुग्मं तदन्ते स्यात्प्रचटद्वितयं पुनः ।
कहद्वन्द्वं वमद्वन्द्वं ततो बन्धयुगं ततः ॥२०॥

घातयद्वितयं वर्म-फडन्तः समुदीरितः ।
एकपञ्चाशदर्णोऽयमघोरास्त्रमहामनुः ॥२१॥

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

अघोरोऽस्य ऋषिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्दः समीरितम् ।
अघोरोऽस्य देवता स्याद्धुं बीजं देवि कीर्त्तितम् ॥२२॥

शक्तिश्च शक्तिबीजं स्यात्पुरुषार्थचतुष्टये ।
विनियोगो भवेद्देवि षडङ्गं विन्यसेत्ततः ॥२३॥

शरर्त्तुदशदिग्दन्तिदिवाकरमितैः क्रमात् ।
पदान्येकादश मनोरेषु स्थानेषु विन्यसेत् ॥२४॥

कनेत्रवक्त्रगलहृन्नाभ्यन्धूरुषु जानुषु ।
सजङ्घापादयोश्चैवं पदानि परमेश्वरि ॥२५॥

शरर्त्तुनेत्रवस्वब्धिरसवेदाब्धिवेदकैः ।
रसनेत्रमितैर्वर्णैः पदानि स्युर्महेश्वरि ॥२६॥

षडङ्गन्यासे वर्णविभागमाह शर इत्यादि—शराः पञ्च, ऋतवः ६, दिक् १०, दन्तिनः ८, दिवाकराः १२ । पदेषु वर्णविभागमाह—शर इत्यादि—शराः ५, ऋतवः ६, नेत्रं २, वसवः ८, अब्धयः ४, रसाः ६, वेदाः ४ ।

---

१. ०क ततः । २. '—' चिह्नान्तःस्थोंशः क. पुस्तके नाऽस्ति ।

एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री ध्यायेद्देवं प्रसन्नधीः ।
कालमेघनिभं देवं भीमदंष्ट्रं त्रिलोचनम् ॥२७॥

भुजङ्गभूषणं रक्तवसनालेपशोभितम् ।
परशुं करवालं च बाणांस्त्रिशिखमेव च ॥२८॥

दधानं दक्षिणैर्हस्तैरूर्ध्वादिक्रमतः परैः ।
डमरुं खेटकं चापं नृकपालं च पार्वति ॥२९॥

काम्यकर्मसु रक्ताभमसितं चाऽभिचारके ।
निग्रहे ग्रहभूतादिमुक्तौ मुक्तानिभं स्मरेत् ॥३०॥

एवं सञ्चिन्त्य देवेश शैवे पीठे पुरोदिते ।
षट्कोणान्तस्थिते पद्मद्वितये भूपुरावृते ॥३१॥

चतुर्द्वारसमायुक्ते वसुपत्रे महेश्वरि ।
पूजयेद्देवमावाह्य गन्धपुष्पैर्मनोहरैः ॥३२॥

अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य केसरेषु यथा पुरा ।
प्रथमेऽष्टदले देवि पूजयेदायुधाष्टकम् ॥३३॥

परशुं डमरुं खड्गं खेटं बाणान्धनुस्तथा ।
शूलं कपालं चैतानि द्वितीयेऽष्टदले पुनः ॥३४॥

ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्याश्चतुरश्रत्रयान्तरे ।
वीथीद्वये लोकपालांस्तदस्त्राणि च पूजयेत् ॥३५॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते प्राणायामत्रयानन्तरं "शिरसि—अघोराय ऋषये नमः, मुखे—त्रिष्टुप्छन्दसे०, हृदये—श्रीअघोररुद्राय देवतायै०, गुह्ये—हुं बीजाय०, पादयोः—ह्रीं शक्तये नमः" इति विन्यस्य मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोग इत्युक्त्वा, "ह्रीं स्फुर स्फुर हृदयाय नमः, प्रस्फुर प्रस्फुर शिरसे स्वाहा, घोरघोरतर तनुरूप शिखायै वषट्, चट चट प्रचट प्रचट कवचाय हुं, कह कह वम वम नेत्राय वौषट्, बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् अस्त्राय फडि"ति करषडङ्गन्यासं विधाय "शिरसि—ह्रीं स्फुर स्फुर नमः, मुखे—प्रस्फुर २ नमः, नेत्रयोः—घोरघोरतरतनुरूप नमः, हृदये—चट चट नमः, नाभौ—

प्रचट प्रचट २ नमः, लिङ्गे—कह कह नमः, ऊर्वोः—वम वम नमः, जान्वोः—बन्ध बन्ध नमः, जङ्घयोः—घातय घातय नमः, पादयोः—हुं फट् नम" इति विन्यस्य, ध्यानादिषडङ्गपूजान्ते प्रथमाष्ट दलेषु देवाग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन "परशवे नमः, डमरुकाय०, खड्गाय, टङ्काय०, बाणेभ्यः, धनुषे०, शूलाय०, कपालाय नमः, ततो द्वितीयाष्टदले तथैव ब्राह्म्याद्यष्टमातॄः सम्पूज्य प्राग्वदिन्द्रादिपूजामारभ्य सर्वं समापयेदिति । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी यतव्रतः ।
जुहुयात्तद्दशांशेन तिलैः शुद्धैर्घृतप्लुतैः ॥३६॥

तर्पणं मार्जनं कृत्वा भोजयेन्मधुरैर्द्विजान् ।
एवं सिद्धे मन्त्रवरे काम्यकर्माणि साधयेत् ॥३७॥

क्रमात्सर्प्पिरपामार्गतिलसर्षपपायसैः ।
साज्यैः सहस्रं प्रत्येकं यामिन्यां जुहुयात्सुधीः ॥३८॥

समिधो जुहुयात्कृष्णपञ्चम्यां निशि संयतः ।
पृथक् सहस्रहोमेन भूतानां निग्रहो भवेत् ॥३९॥

क्रमात्सर्पिरपामार्गपञ्चगव्यहविर्घृतैः ।
हुत्वा सहस्रं प्रत्येकं पात्रे सम्पातयेद् घृतम् ॥४०॥

सम्पातसर्पिषा साध्यं भोजयेद् भूतशान्तये ।
लिखेदष्टदलं पद्मं वह्निगेहयुगान्तरे ॥४१॥

मायां तत्कर्णिकामध्ये साध्याख्याङ्कसंयुताम् ।
स्वरैरावेष्ट्य तां शक्तिं किञ्जल्केष्वष्टवर्गजान् ॥४२॥

ककारादिलकारान्तानालिख्य दलसप्तके ।
अष्टमे तु दले वादि-क्षान्तान्सप्तार्णकांल्लिखेत् ॥४३॥

स्फुरादिचटयुग्मान्तान्मन्त्रवर्णांस्त्रिशस्त्रिशः ।
दलमध्येषु संलिख्य दलाग्रेषु महेश्वरि ॥४४॥

प्रचटाद्यान्घातयान्तांस्तथैव गुणशो लिखेत् ।
बहिःषट्कोणकोणेषु प्रतिकोणं समालिखेत् ॥४५॥

वर्माख्यबीजे तद्बाह्ये भूपुरेण तु वेष्टयेत् ।
दीक्षोक्तविधिना कुम्भमस्मिन्यन्त्रे निधाय च ॥४६॥

तत्र देवं समाराध्य तज्जलैरभिषेकतः ।
भूतापस्मारकृत्याद्याः सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ॥४७॥

अयमर्थः[1]—कचिद्भूतले सुसमे सिन्दूरादिना विपुलं षट्कोणं विरच्य, तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं कृत्वा, तत्कर्णिकायां शक्तिबीजमालिख्य, तद्बीज सबिन्दुभिः षोडशस्वरैरावेष्ट्याऽऽद्यष्टदलकेसरेषु प्रथमदलकेसरे—"कं खं गं घं, द्वितीये—ङं चं छं जं, तृतीये—झ ञं टं ठं, चतुर्थे—डं ढं णं तं, पञ्चमे—थं दं धं नं, षष्ठे—पं फं बं भ, सप्तमे—मं यं रं लं, अष्टमे—वं शं षं सं हं ळं क्षं" इति स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वर्णानालिख्य, पत्रमध्येषु स्वाग्रदलमारभ्य, प्रादक्षिण्येन प्रथमदले—"स्फुर स्फु, द्वितीये—रप्रस्फु, तृतीये—रप्रस्फु, चतुर्थे—रघोर, पञ्चमे घोरत, षष्ठे रतनु, सप्तमे—रूप च, अष्टमे—ट चट" इति विलिख्य, ततः प्रथम-दलाग्रे "प्रचट, द्वितीये—प्रचट, तृतीये कह क, चतुर्थे—ह वम, पञ्चमे—वम बं, षष्ठे—ध बन्ध, सप्तमे—घातय, अष्टमे—घातय" इति च विलिख्य, तद्बहिः षट्कोणकोणेषु 'हुं फडि'ति प्रतिकोणं विलिख्य, तद्बहिश्चतुरश्रेण वेष्टयित्वा, तत्र दीक्षोक्तविधिना कलशं संस्थाप्य, देवमावाह्य, सम्यगभ्यर्च्य, तेन जलेन साध्यमभिषिञ्चेत् । ततो यथोक्तफलं सिद्ध्यतीति । तथा—

अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं षट्कोणं तस्य मध्यतः ।
तन्मध्ये शक्तिमालिख्य साध्याख्यां कर्मसंयुताम् ॥४८॥

स्फुर-द्वयेन तां शक्तिं वेष्टयेज्जगदीश्वरि ।
षट्कोणस्य तु कोणेषु प्रस्फुर-द्वितयं लिखेत् ॥४९॥

एकैकशो महेशानि शिष्टवर्णान्दलेष्वथ ।
मूलमन्त्रस्य देवेशि रसवेदचतूरसैः ॥५०॥

चतुश्चतुर्वेदरसैर्विभक्तांस्तद्बहिस्ततः ।
पुनः षट्कोणमालिख्य तत्कोणेषु महेश्वरि ॥५१॥

हुं फडित्यालिखेद् बाह्ये चतुरश्रेण वेष्टयेत् ।
यन्त्रमेतदघोरस्य कीर्त्तितं भुवि दुर्लभम् ॥५२॥

---

१. ख अस्याऽर्थः ।

क्षुद्रचोरग्रहव्यालभूतापस्मारनाशनम् ।
संसाधितं धृतं नृणां सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥५३॥

अस्यार्थः—विपुलं षट्कोणं कृत्वा, तन्मध्येऽष्टदलपद्मं विलिख्य, तत्कर्णिकायां पुनः षट्कोणमालिख्य, तन्मध्ये प्राग्वत्ससाध्यां शक्तिमालिख्य, तां 'स्फुर स्फुरे' त्यक्षरचतुष्टयेनाऽऽवेष्ट्याऽन्तःषट्कोणकोणेषु 'प्रस्फुर प्रस्फुरे'ति षडक्षराणि प्रतिकोणमेकमेकमालिख्याऽष्टदलेषु स्वाग्रदलमारभ्य, प्रादक्षिण्येन 'घोर' इत्यादि 'घातये' त्यन्तान्वर्णान् '६।४[1]।४।६।४।४।४।६।' इति क्रमेण विभज्याऽऽलिख्य बहिः षट्कोणे प्राग्वदन्त्याक्षरद्वयं लिखेत्, ततस्तद्बहिश्चतुरश्रेण वेष्टयेदेतदुक्तफलदं भवतीति ।

॥ **अथ चिन्तामणिमन्त्रः** ॥ तत्र **श्रीशिवरहस्ये**—

कैलाशशिखरे रम्ये नानारत्नविचित्रिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे मन्दवायुतरङ्गिते ॥५४॥

नानाकुसुमसौरभ्यैरामोदितदिगन्तरे ।
सिद्धकिन्नरगन्धर्वचारणाप्सरसां गणैः ॥५५॥

गीतवादित्रनृत्यैश्च प्रीणयद्भिः शिवं सदा ।
ब्रह्मविष्णुसहस्राक्षप्रमुखैरमरैस्तथा ॥५६॥

गजास्यनन्दिभृङ्गाद्यैर्गणैर्मुनिगणैरपि ।
निषेवितं शिलापृष्ठे वैडूर्यमणिनिर्मिते ॥५७॥

सिंहासने समासीनमर्द्धनारीश्वरं हरम् ।
सुप्रसन्नमुखं शम्भुं स्कन्दः पप्रच्छ शङ्करम् ॥५८॥

स्कन्द उवाच—

भगवन् शर्व सर्वज्ञ जगदाद्य जगत्पते ।
अनाद्यन्ताऽखिलाधीश भक्तानुग्रहविग्रह ॥५९॥

रहस्यं किञ्चिदिच्छामि प्रष्टुं त्वां भक्तवत्सल ।
भक्तोऽस्मि तव देवेश वदस्व कृपया विभो ॥६०।

---

१. ख. नाऽस्ति ।

चिन्तामणिमनुर्देव सूचितो यस्त्वया पुरा ।
इदानीं तं जगन्नाथ श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ॥६१॥

श्रीमहादेव उवाच—

साधु साधु गुह प्राज्ञ सर्वतन्त्रार्थपारग ।
रहस्यमपि वक्ष्यामि भक्तोऽसीति षडानन ॥६२॥

न कस्याऽपि मयाऽऽख्यातं त्वत्स्नेहात् प्रवदाम्यहम् ।
गोपितव्यं त्वया वत्स न प्रकाश्यं षडानन ॥६३॥

सद्भक्ताय सुशान्ताय सुकुलीनाय दीयताम् ।
मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु वत्स समाहितः ॥६४॥

भुजङ्गेशं समुद्धृत्य क्रोधीशं तदधः कुरु ।
श्वेतेशं तदधः कृत्वा महाकालं च षण्मुख ॥६५॥

पुनर्भुजङ्गमालिख्य वालीशं तदधः कुरु ।
अनुग्रहेशमर्घीशमक्रूरेशं च योजयेत् ॥६६॥

गुरूपदेशविधिना बीजं चिन्तामणेरिदम् ।
मथित्वा ज्ञानदण्डेन वेदागममहार्णवम् ॥६७॥

उद्धृतोऽयं महामन्त्रः साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ।
तपस्तप्त्वा चिरं पूर्वं कश्यपस्तु प्रजापतिम् ॥६८॥

दृष्टवांस्तेजसां राशिं प्रज्वलन्तं महाद्भुतम् ।
मन्त्ररत्नं महाकूटं चिन्तयंस्तच्चिरं पुनः ॥६९॥

स्रष्टाऽभूज्जगतां वत्स चिन्तामणिरतो(थो)च्यते ।

भुजङ्गेशो रेफः, क्रोधीशः ककारः, श्वेतेशः षकारः, महाकालो मकारः, भुजङ्गेशो रेफः, वालीशो यकारः, अनुग्रहेश औकारः, अर्घीश ऊकारः, अक्रूरेशः बिन्दुः, एतैः सम्पिण्डितं क्ष्म्र्‍्यौँ[1] इति कूटं भवति । तथा—

ऋषिः कश्यप आख्यातोऽनुष्टुप् छन्द उदाहृतम् ॥७०॥

देवता जगतामादिः पार्वतीपतिरीरितः ।
क्षकारं बीजमाख्यातं रेफः शक्तिरितीरिता ॥७१॥

---

१. क. क्ष्म्यूं ।

मकारं कीलकं वत्स रेफाद्यैः षड्भिराचरेत् ।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि षण्मुख ॥७२॥

ततः सञ्चिन्तयेद्देवमर्द्धनारीश्वरं शिवम् ।
विद्रुमारक्तवामार्द्धदेहं नीलापराङ्गकम् ॥७३॥

अहिगङ्गाशशाङ्कार्द्धविलसत्तुङ्गमौलिकम् ।
हावभावविलासार्द्धनारीरूपं महेश्वरम् ॥७४॥

भीषणापरदेहार्द्धं वामोर्द्ध्वे पाशमद्भुतम् ।
पद्मं च तदधोहस्ते दधानं दक्षिणोर्द्ध्व के ॥७५॥

करे त्रिशूलं तस्याऽधो नृकपालं च षण्मुख ।
प्रविभक्तांशुकाकल्पमालालेपविराजितम् ॥७६॥

एवं ध्यात्वा यजेत्पीठे शैवे सर्वोपचारकैः ।
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं चतुरश्रत्रयं ततः ॥७७॥

चुतुर्द्वारसमोपेतमस्मिन्षण्मुख पूजयेत् ।
आदावङ्गानि सम्पूज्य केसरेषु यथाविधि ॥७८॥

अर्चयेदष्टपत्रेषु कार्त्तिकेयवृषादिकान् ।
ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्या द्वितीयेऽष्टदले पुनः ॥७९॥

लोकेश्वरांस्तदस्त्राणि प्राग्वद्वीथीद्वये यजेत् ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते प्राणायामत्रयं मूलेन विधाय, "शिरसि—कश्यपाय ऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृद्यर्द्धनारीश्वराय देवतायै०, गुह्ये—क्षं बीजाय०, पादयोः—रं शक्तये०, +सर्वाङ्गे—मं कीलकाय नमः+[१]" इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत् । ततः "रं हृदयाय नमः, कं शिरसे स्वाहा, षं शिखायै वषट्, मं कवचाय हुं, रं नेत्राय वौषट्, यं अस्त्राय फडि"ति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तकरयोर्विन्यस्य, हृदयादि-नेत्रान्तेषु-पञ्चमन्त्रान्विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं दशदिग्बन्धनं च कृत्वा, ध्यानादिपुष्पोपचारान्तेऽष्टदलकेसरेषु आग्नेये "रं हृदयाय नमः' इत्यादि षडङ्गानि सम्पूज्य, प्रथमाष्टदले देवाग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन "वृषभाय नमः, क्षेत्रपालाय०, चण्डे-

१. +—+ क. ख. पुस्तकद्वयेऽप्यस्यांऽशस्याऽभावः ।

श्वराय०, दुर्गायै०, षण्मुखाय०, नन्दिने०, विघ्ननायकाय०, सेनापतये नम" इति सम्पूज्य, द्वितीयाष्टदले तथैवाऽऽरभ्य ब्राह्म्याद्यष्टमातृः सम्पूज्येन्द्रादिपूजनादिकं सर्वं प्राग्वत्समापयेदिति । तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः ॥८०॥

जुहुयात्तद्दशांशेन त्रिमध्वक्तैस्सतण्डुलैः ।
तिलैः सन्तर्प्पयेद्देवं शुद्धतोयैः षडानन ॥८१॥

ततोऽभिषिञ्चेन्मूलेन स्वमूर्द्धनि समाहितः ।
ब्राह्मणांस्तर्प्पयेत्पश्चादन्नपानैः सदक्षिणैः ॥८२॥

एवं सिद्धमनुर्वत्स प्रयोगान्विदधीत वै ।

एष लक्षजपः कृतयुगपरः । शिवसद्भावे तु शिवशक्त्योः पृथक्पृथग्ध्यानमुक्तं यथा—

अथवा देवदेवेशि ध्यायेदष्टभुजं शिवम् ।
दक्षिणोर्द्ध्वकरे देवि परशुं तदधः क्रमात् ॥८३॥

खड्ग वह्निं शरांश्चैव दधानं वामबाहुभिः ।
भुजङ्गं त्रिशिख चैव कपाल चापमेव च ॥८४॥

ऊर्द्ध्वादितः स्त्रीविलासं त्रीक्षणं त्रिदशार्चितम् ।
गङ्गातरङ्गविलसच्चन्द्रखण्डाहिशेखरम् ॥८५॥

इति सञ्चिन्त्य देवेशं तत्पार्श्वस्थां शिवामपि ।
अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम् ॥८६॥

अरुणालेपमाल्याढ्यां त्रिनेत्रामहिभूषणाम् ।
शूलैः षोडशभिर्व्यग्रभुजषोडशमण्डिताम् ॥८७॥

चिन्तयेत्परमेशानि साधकाभीष्टदायिनीम् ।

इति । प्रायशः काम्यमेतदिति चिन्त्यम्, नित्यं तु प्रागुक्तमेव ।

शिवरहस्ये—

रेफं त्यक्त्वाऽऽदिमं वत्स शिवशक्ती नियोज्य च ।
प्रजपेत्तेन सिद्धिः स्याच्छीघ्रमेव न संशयः ॥८८॥

अयमर्थः—बीजस्याऽऽदिमं रेफमपास्य, तत्स्थाने शिवशक्ती हकारसकारौ संयोज्य जपेदिति ।

प्रासादाद्यं जपेन्मन्त्रमयुतं मन्त्रवित्तमः ।
तेनाऽऽवेशो भवेत्सद्यो भूतादीनां रुजामपि ॥८९॥

ग्रस्तस्य शिरसि ध्यायेच्चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।
स्वरैः षोडषभिर्वीतं स्रवत्पीयूषसिञ्चितम् ॥९०॥

अपमृत्युज्वरक्ष्वेडभ्रान्त्यपस्मारनाशनम् ।
शिरोरोगहरं चाऽपि गदितं शिखिवाहन ॥९१॥

रेफादिवर्णषट्काढ्यं[1] षट्कोणान्तस्त्रिकोणगम् ।
प्रतिसोमस्वरावीतं ग्रस्तस्य शिरसि स्मरेत् ॥९२॥

बीजमेतन्महासेन ग्रहार्त्ति तत्क्षणाद्धरेत् ।
त्रिकोणं चिन्तयेन्मूर्ध्नि ग्रस्तजन्तोः षडानन ॥९३॥

तन्मध्ये चिन्तयेद्बीजं ज्वलत्कालानलप्रभम् ।
क्षणादावेशयेन्मन्त्री ग्रहान् रोगादिकानपि ॥९४॥

एतन्मन्त्राभिजप्तं च बन्धुजीवप्रसूनकम् ।
ग्रस्तस्य मूर्द्ध्नि निक्षिप्तं क्षणादावेशकारकम् ॥९५॥

पौष्टिके शान्तिके मन्त्रं शुक्लवर्णं विचिन्त्य च ।
सकारमादौ संयोज्य जपेन्मन्त्रं षडानन ॥९६॥

आकृष्टौ च वशीकारे रक्तो रेफादिको भवेत् ।
हकारादिश्च हेमाभः स्तम्भने क्षोभणे गुह ॥९७॥

धूम्रवर्णो यकारादिर्विद्वेषोच्चाटयोरपि ।
पीतवर्णो लकारादिः स्तम्भने शिखिवाहन ॥९८॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशो मन्त्रो ध्येयो मुमुक्षुभिः ।
अकारादिश्च जप्तव्यो देशिकादेशतो गुह ॥९९॥

वायुमण्डलमध्यस्थं मन्त्रं कृष्णं विचिन्तयेत् ।
नेत्रयोर्द्विषतां वत्स आन्ध्यमाशु प्रजायते ॥१००॥

---

१. क. रेफादिकर्णषट्काढ्यं ।

बाधिर्यं कर्णयो रन्ध्रे छर्दिं च वदने स्मृतम् ।
कुक्षौ शूलं करोत्याशु वायुं मर्मसु संस्मृतम् ॥१०१॥

दुःसहं च शिरोरोगं कुर्याच्छिरसि षण्मुख ।
वाग्रोधं कण्ठनाले च चतुरश्रस्य मध्यगम् ॥१०२॥

चन्द्रमण्डलमध्यस्थं स्वरैः षोडशभिर्वृतम् ।
नेत्रे ध्यातं नेत्ररोगं हरत्याशु न संशयः ॥१०३॥

रक्तश्रा(स्रा)वं कृशाङ्गीनां योनौ ध्यातं हरेत्क्षणात् ।
कुक्षौ ध्यातं शूलनुत्स्याद्विस्फोटे विषमज्वरे ॥१०४॥

तृषि रक्तामये वत्स भ्रमे दाहे शिरोगदे ।
स्मरेन्मन्त्रं विद्रुमाभं तत्र तद्दोषशान्तये ॥१०५॥

अत्यारक्तं त्रिकोणान्तःस्थितं बीजं स्मरेद् गुह ।
यस्य मूर्द्ध्नि स वश्यः स्यादचिराद्दासवद् ध्रुवम् ॥१०६॥

इष्टाङ्गनाहृदम्भोजे स्थितं मन्त्रं विचिन्त्य च ।
मन्त्रवर्णैर्दृढं बद्ध्वा तेजोरूपं च संस्मरेत् ॥१०७॥

तच्छीर्षमाशु पाशेन कर्षयेद्योषितं ध्रुवम् ।
स्वनामगर्भितं बीजं योषायोनौ विचिन्तयेत् ॥१०८॥

वशयेत्तत्क्षणाद्योषां स्रावयेच्छुक्रमेव च ।
निजलिङ्गशिरःस्थं तद्बीजं सञ्चिन्तयेद् गुह ॥१०९॥

प्रवेशयेद्योनिमध्ये सम्पर्काद्योषितं वशे ।
विदध्याद् द्रावयेच्चैव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥११०॥

कुलालमृत्स(द)मानीय तत्र बीजं समालिखेत् ।
तन्मकारस्थरेफे तु साध्याख्याङ्कर्मसंयुताम् ॥१११॥

विलिख्य तत्त्रिकोणेन वेष्टयेत्तद्बहिस्तथा ।
षट्कोणेन समावेष्ट्य षट्सु कोणेषु चाऽऽलिखेत् ॥११२॥

रेफं सबिन्दुकं तच्च विलोमैर्वेष्टयेत्स्वरैः ।
प्राणप्रतिष्ठां तस्याऽथ कृत्वा सम्यक् षडानन ॥११३॥

निखनेच्चुल्ल्यधस्ताच्च तत्र पाकं समाचरेत् ।
तदन्नभक्षणात्सद्यो वश्यो भवति निश्चितम् ॥११४॥

पतिः प्रियायाः षड्वक्त्र नाऽत्र कार्या विचारणा ।
मधुरत्रययुक्तेन शालिपिष्टेन षण्मुख ॥११५॥

कृत्वा पुत्तलिकां सम्यक् स्पष्टाङ्गीमतिमञ्जुलाम् ।
प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः ॥११६॥

नाभेरधस्ताद्धृदयात्कण्ठादाशीर्षकं ततः ।
एवं द्वादशधा छित्वा तीक्ष्णशस्त्रेण साधकः ॥११७॥

मूलमन्त्रेण जुहुयाद्यमुद्दिश्य षडानन ।
स वश्यो भवति क्षिप्रं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥११८॥

चतुरश्रं समं कृत्वा नागवल्लीदले गुह ।
तन्मध्ये तु वकारस्थबीजे साध्यं समालिखेत् ॥११९॥

मन्त्रमध्यमकाराधःस्थिते रेफे विचक्षणः ।
चतुरश्रस्य कोणे तु वकारं बिन्दुसंयुतम् ॥१२०॥

विलिख्य स्थापितप्राणं मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
अष्टोत्तरसहस्रेण शिरोरोगी प्रभक्षयेत् ॥१२१॥

आम्बिकेयाऽचिरादेव रोगान्मुक्तः सुखी भवेत् ।
सरेफेण ककारेण कण्ठं साध्यस्य षण्मुख ॥१२२॥

दक्षस्तनं षकारेण वामं चैव मकारतः ।
दक्षांसं रेफतो बद्ध्वा वामं चाऽपि यकारतः ॥१२३॥

औकारेण मुखं वत्स नाभिमूकारतो गुह ।
वक्ष्ये बिन्द्वर्द्धचन्द्राभ्यां बद्ध्वाऽऽकर्षन्स्मरेद्धिया ॥१२४॥

स्ववशन्तं स वश्यः स्यादचिरान्नाऽत्र संशयः ।
बन्धुजीवाख्यपुष्पेण त्रिकोणं रचयेद् गुह ॥१२५॥

तन्मध्ये विलिखेद्बीजं चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।
पुष्पेण तेन तन्मध्ये कार्त्तिकेय विधानतः ॥१२६॥

अग्निं संस्थाप्य तत्रेशं सम्पूज्य विधिवत्सुत ।
हुनेदष्टोत्तरशतं घृतैः सम्पातयेद् घृतम् ॥१२७॥

त्रिलोहनिर्मितायां तु मुद्रिकायां विचक्षणः ।
सम्पातसिक्तां तां वत्स सहस्रेणाऽभिमन्त्रिताम् ॥१२८॥

साष्टकेनाऽथ तां हस्ते धारयेद्यस्तु भूपतिः ।
जयेत्स युधि षड्वक्त्र बलाढ्यानखिलान् रिपून् ॥१२९॥

विषवेतालभूतादिदुरितैर्बाध्यते न सः ।
वक्ष्ये भागं त्रिलोहस्य शृणु षण्मुख साम्प्रतम् ॥१३०॥

सोमसूर्याग्निरूपत्वं मातृकायाः षडानन ।
तन्मयत्वात्त्रिलोहस्य भागस्तद्वर्णसंख्यया ॥१३१॥

भवेद्रूप्यस्य सौम्यत्वाद्भागः षोडश उच्यते ।
काञ्चनस्याऽर्करूपत्वात् तद्वर्णाः पञ्चविंशतिः ॥१३२॥

तेन भागस्तस्य तावत्ताम्रस्याऽग्निमयत्वतः ।
तद्वर्णाश्च दशैतेन तस्य भागोऽपि तादृशः ॥१३३॥

अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं कर्णिकायां षडश्रकम् ।
तन्मध्ये च त्रिकोणं स्यात्तन्मध्ये बीजमालिखेत् ॥१३४॥

साध्याख्याकर्मसंयुक्तं षट्कोणेषु षडङ्गकम् ।
लिखेत्पूर्वादिपत्रेषु बीजवर्णान्विचक्षणः ॥१३५॥

रं कं षं मं रं यमिति ग्रौमूमिति च षण्मुख ।
बहिर्वृत्तचतुष्कं स्यादन्तरालत्रयान्वितम् ॥१३६॥

स्वरानाद्यन्तरालेषु कादिमान्तान्द्वितीयके ।
तृतीये तु यकारादीन् वेष्टनत्वेन संलिखेत् ॥१३७॥

चतुरश्रं बहिः कृत्वा तस्य कोणेषु संलिखेत् ।
बीजं नरहरेर्वत्स क्षौमित्यक्षररूपकम् ॥१३८॥

एतद्यन्त्रं धृतं सर्वरक्षाकरमनुत्तमम् ।
अस्मिन्यन्त्रे समाधाय कलशं विधिवद् गुह ॥१३९॥

तत्र देवं समभ्यर्च्य साध्यं तेनाऽभिषेचयेत् ।
ग्रहरोगादिभिर्मुक्तः सुचिरं सुखमाप्नुयात् ॥१४०॥

आदौ षट्कोणमालिख्य ठकारं तत्र संलिखेत् ।
तन्मध्ये साध्यसंयुक्तं लिखेद्बीजं षडानन ॥१४१॥

स्वरैः षोडशभिर्वीतं षडश्रेषु समालिखेत् ।
बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा अन्तराले तयोर्लिखेत् ॥१४२॥

ककारादिक्षकारान्तान्वर्णान्बिन्दुसमन्वितान् ।
अष्टकोणं बहिः कृत्वा तत्कोणेषु लिखेद् गुह ॥१४३॥

नृसिंहबीजं प्रागुक्तं यन्त्रमेतत् षडानन ।
दुष्टग्रहविषव्याधिनाशनं सर्वसिद्धिदम् ॥१४४॥

आदौ षट्कोणमालिख्य तन्मध्ये साध्यसंयुतम् ।
चिन्तामणिं समालिख्य षट्सु कोणेषु षण्मुख ॥१४५॥

रं कं षं मं रं यमिति ओमूमिति च सन्धिषु ।
विलिख्य बहिरावेष्टच वृत्तेन प्रणवेन च ॥१४६॥

तद्बहिर्वेष्टयेद्वत्स पुनर्वृत्तं समालिखेत् ।
तद्बहिश्चतुरश्रेण वेष्टयित्वा विचक्षणः ॥१४७॥

नृसिंहबीजं विलिखेत्तत्कोणेषु च षण्मुख ।
एतद्यन्त्रं रोचनया विलिखेद् गोमयाम्भसा ॥१४८॥

लाक्षावीतमिदं कृत्वा सञ्जप्य विधिवद् बुधः ।
मस्तके धारयेदेतल्लक्ष्मीसौभाग्यवर्द्धनम् ॥१४९॥

आयुरारोग्यविजयवश्यकृत्पुत्रपौत्रदम् ।
चौरव्यालमहारोगभूतापस्मारनाशनम् ॥१५०॥

कारस्कुरतरोः[1] शाखां साग्रामानीय तत्र च ।
अग्रदेशे महासेन सुरम्यं कारयेत्स्थलम् ॥१५१॥

---

१. ख. कारस्करतरोः ।

षट्कोणं विलिखेद्वत्स तत्र साध्यसमन्वितम् ।
चिन्तामणिं विलिख्याऽथ षट्सु कोणेषु रं लिखेत् ॥१५२॥

वह्निज्वाला इवाऽऽरक्ता रेखाः कार्याश्च तद्बहिः ।
कार्त्तिकेयाऽथ सञ्जप्तमष्टोत्तरसहस्रतः ॥१५३॥

मूलमन्त्रेण तत्सम्यक् स्थापयेद्यत्र तत्र वै ।
चौरव्याघ्रक्रोडसर्परिपुभूतपिशाचकाः ॥१५४॥

न व्रजन्ति कदाचिच्च यन्त्रस्याऽस्य प्रभावतः ।

शारदातिलके—

क्षकारोमाग्निपवनवामकर्णार्द्धचन्द्रवान् ।
उक्तं तुम्बुरुबीजं तद्येन सिद्ध्यन्ति मानवाः ॥१५५॥

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रीछन्द ईरितम् ।
श्रीरुद्रो देवता प्रोक्तः सर्वाभीष्टाप्तये भवेत् ॥१५६॥

षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
तथा— क्षकाररहितं बीजं क्रमाद्यलवहान्वितम् ॥१५७॥

चत्वारि देवीबीजानि देव्योज्ञेया इति क्रमात् ।
जयाख्या विजया पश्चादजिता चाऽपराजिता ॥१५८॥

बीजमङ्गुलिषु न्यस्य करयोर्व्यापकं ततः ।
कनिष्ठादिषु विन्यसेत्षडङ्गानि तलावधि ॥१५९॥

[देवं देवीस्वबीजादि कनिष्ठादिषु विन्यसेत् ।
पादान्मूर्द्धावधि न्यस्येन्मुष्टिनाऽवयवेषु ततः ॥१६०॥

तलाभ्यां व्यापकं कुर्यान्मूर्द्धादिचरणावधि ।][1]
षडङ्गानि ततो न्यस्येद्यथास्थानं विशालधीः ॥१६१॥

देवं देवीं यथापूर्वं मूर्द्धास्ये हृदयाम्बुजे ।
नाभौ गुह्ये क्रमान्न्यस्य पश्चाद्देवं विचिन्तयेत् १६२॥

---

१. [–] कोष्ठगतोंऽशः ख. पुस्तके न दृश्यते ।

रक्ताभमिन्द्रशकलाभरणं त्रिनेत्रम्,
खट्वाङ्गपाशशृणिशुभ्रकपालहस्तम् ।
वेदाननं चिपिटनासमनर्घ्यभूषम्-
रक्ताङ्गरागकुसुमांशुकमीशमीडे ॥१६३॥

श्रीकण्ठसंहितायामपि—

दक्षिणोर्द्ध्वकरे देवि शृणिं खट्वाङ्गमप्यधः ।
पाशं वामोर्द्ध्वहस्ते च कपालं तदधोज्ज्वलम् ॥१६४॥

तथा— वक्ष्यमाणे यजेत्पीठे देवमावरणैः सह ।
नपुंसकस्वरैर्विद्वाननुलोमविलोमगैः ॥१६५॥

धर्मादिकानधर्माद्यान्पादान् गात्राणि विन्यसेत् ।
ईकारेण न्यसेत्पश्चात्तन्तुरूपान् गुणांस्तथा ॥१६६॥

शान्त्या तत्परवर्णेन मायाविद्यामये क्रमात् ।
अध ऊर्द्ध्वच्छदे न्यस्येदर्घीशेन ततोऽम्बुजम् ॥१६७॥

सन्ध्यक्षरैर्यजेन्मन्त्री शक्तीर्वामादिकाः क्रमात् ।
वामा ज्येष्ठा ततो रौद्री चेच्छा ज्वालास्वरूपिणी ॥१६८॥

एवं प्रकल्पिते पीठे मूर्ति मूलेन कल्पयेत् ।
आवाह्य पूजयेद्देवं तस्यामावरणैः सह ॥१६९॥

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

चतुर्द्वारसमायुक्तचतुरश्रत्रयावृते ।
अष्टपत्राम्बुजे देवि यजेदावरणैः सह ॥१७०॥

अङ्गावृतेर्बहिर्देवीदिक्पत्रेषु समर्चयेत् ।
जयाद्याः स्वस्वबीजेन रक्ता रक्तानुलेपनाः ॥१७१॥

अरुणांशुकपुष्पाढ्यास्ताम्बूलापूरिताननाः ।
वल्लकीवादनपरा मदमन्मथपीडिताः ॥१७२॥

ईशादिकोणेष्वभ्यर्च्येद्दूतीर्बीजादिकाः क्रमात् ।
दुर्भगां सुभगां भूयः करालीं मोहनीमिमाः ॥१७३॥

बद्धाञ्जलिपुटाः किञ्चिदानम्रवदनाम्बुजाः ।
देवीसदृशभूषाढ्या दूतीमन्त्रान्विदुः क्रमात् ॥१७४॥

चतुरः शादिकान्वर्णानर्द्धेन्दुकृतशेखरान् ।
लोकपालान् यजेद्वाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥१७५॥

एवं यो भजते भक्त्या देवमुक्तेन वर्त्मना ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रि लोकेषु विद्यते ॥१७६॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत्प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे०, हृदये—तुम्बुरुरुद्राय देवतायै नम" इति विन्यस्य, क्ष्म्य्रां हृदयाय नमः, क्ष्म्य्रीं शिरसे स्वाहा, क्ष्म्य्रूं शिखायै वषट्, क्ष्म्य्रैं कवचाय हुम्, क्ष्म्य्रौं नेत्राय वौषट्, क्ष्म्य्रः अस्त्राय फडि"ति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, पुनः 'क्ष्म्य्रूं नम' इति केवलबीजमेव कनिष्ठाद्यङ्गुलिषु विन्यस्य, करयोश्च व्यापकं कृत्वा, 'कनिष्ठयोः—क्ष्म्य्रूं श्रीतुम्बुरुरुद्राय नमः, अनामिकयोः—क्ष्म्य्रूं जयायै नमः, मध्यमयोः—क्ष्म्य्रूं विजयायैनमः, तर्जन्योः—क्ष्म्य्रूं अजितायै नमः, अङ्गुष्ठयोः—क्ष्म्य्रूं अपराजितायै नम" इति विन्यस्य, पादादिमूर्द्धावधि 'क्ष्म्य्रूं नमः' पुनर्मूर्द्धादिपादपर्यन्तं करतलाभ्यां बीजं विन्यस्य, पुनः पूर्ववत्षडङ्गानि विन्यस्य, शिरोवदनहृदयनाभिगुदेषु प्राग्वद्देवं देवीश्च विन्यस्य, ध्यानाद्यात्मपूजान्ते यथोक्तं पूजाचक्रं कृत्वा, संस्थाप्य, तत्र मण्डूकादिसिंहासनान्तं प्राग्वत्सम्पूज्य, 'सिंहासनस्य पदेषु—ऋं धर्माय०, ॠं ज्ञानाय०, लृं वैराग्याय०, लॄं ऐश्वर्याय०, लॄं अधर्माय०, लृं अज्ञानाय०, ॠं अवैराग्याय, ऋं अनैश्वर्याय नम" इति सम्पूज्य, ततोऽनन्तं पद्ममानन्दकन्दं संविन्नालं च सम्पूज्य, "ईं प्रकृतिमयपत्रेभ्यः०, ऊँ विकारमयकेसरेभ्यः०, ऊँ सर्वतत्वरूपायै कर्णिकायै०, इति सम्पूजयेत् । अत्र षष्ठस्वरेण पद्ममित्यनेन पद्ममध्यस्था कर्णिका लक्ष्यते पद्मस्य प्रागेवं पूजितत्वादिति । ततः सूर्यादिमण्डलपूजान्ते 'इं सम्प्रबोधात्मने सत्वाय' इत्यादि गुणत्रयमिकारादि यथावत्सम्पूज्याऽऽत्मचतुष्टयपूजान्ते दिग्दलकेसरेषु "[एं वामायै०,][1] ऐं ज्येष्ठायै०, ओं रौद्रयै०, औं इच्छायै०" इति शक्तिचतुष्टयं पूजयेत् । अत्र नवशक्तिपूजनं नाऽस्तीति प्रतीयते विशिष्य सबीजशक्तिचतुष्टयमात्रस्योक्तत्वात् शैवपीठनवशक्तिबहिर्भूतेच्छाशक्तिरिति

१. [–] चिह्नान्तःस्थोंऽशो नाऽस्ति क. पुस्तके ।

सारसङ्ग्रहवचनाच्च । इत्थं पीठपूजां विधाय, तत्र मूर्त्तिकल्पनादि-षडङ्गपूजान्तेऽष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन "एं वामायै नमः, ऐं ज्येष्ठायै०, ओं रौद्रयै०, औं इच्छायै०, ततोऽग्न्यादिकोणपत्रेषु—शं दुर्भगायै०,[1] षं सुभगायै०, सं कराल्यै०, हं मोहिन्यै नम" इति सम्पूज्येन्द्राद्यर्चनादिकं सर्वं समापयेदिति । तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतैर्हुनेत् ।
तर्प्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्तथा ॥१७७॥

वायुवह्निपुरान्तस्थबीजं स्मृत्वा जपेत्प्रिये ।
ज्वरशूलमहारोगास्तेन नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥१७८॥

कुपितस्य हृदम्भोजे स्मृत्वा बीजमिदं जपेत् ।
तत्कोपं शमयेच्छीघ्रं ध्रुवं मन्त्रप्रभावतः ॥१७९॥

एतन्मन्त्राभिजप्तं तु जलं प्रातः पिबेन्नरः ।
हृद्रोगकामलाकाशश्वासविष्टम्भकास्तथा ॥१८०॥

नश्यन्ति तत्क्षणादेव नाऽत्र कार्या विचारणा ।
मण्डलं नवनाभाख्यं कृत्वा रम्यं महेश्वरि ॥१८१॥

तत्र संस्थापयेद्रम्यान्कलशान्नव मन्त्रवित् ।
देवं मध्येऽष्टसु तथा देवीर्दूतीश्च पूजयेत् ॥१८२॥

पुरोक्तवत्तेन षिञ्चेत्कुलजां योषितं शिवे ।
सुतं वन्ध्याऽपि सा सूते किमन्या कन्यकाप्रसूः ॥१८३॥

राजाऽभिषिक्तो विजयी भूयाद्देवि न संशयः ।
भूतप्रेतादिकाः कृत्या रोगा नश्यन्ति सेचनात् ॥१८४॥

अष्टपत्राम्बुजे मध्ये ससाध्यं बीजमालिखेत् ।
केसरेषु स्वरान्देवि दिक्पत्रेषु लिखेत्ततः ॥१८५॥

पूर्वोक्तदेवीबीजानि विदिक्पत्रेषु पार्वति ।
दूतीमन्त्रान्पुरा प्रोक्तानाऽऽलिखेत्तद्बहिः पुनः ॥१८६॥

वृत्तद्वयं विधायाऽथ तयोर्मध्ये समालिखेत् ।
ककरादि-क्षकारान्तान्बिन्दुयुक्तान्महेश्वरि ॥१८७॥

---

१. ख. दुर्गायै०, ।

तद्बहिश्चतुरश्रेण वेष्टयेज्जगदीश्वरि ।
एतद्यन्त्रं महादेवि प्रोक्तं श्रीतुम्बुरोर्महत्[1] ॥१८८॥

साधितं जपहोमाभ्यां घृतं नाशयति क्षणात् ।
रोगकृत्याग्रहान् सम्यग् भूतापस्मारकादिकान् ॥१८९॥

शारदातिलके—

प्रणवो हृदयं पश्चान्ङेऽन्तं पशुपतिं पुनः ।
तारो नमो भूतपदे ततोऽधिपतये ध्रुवम् ॥१९०॥

नमो रुद्राय-युगलं खड्गरावणशब्दतः ।
[2]विहर-द्वितयं पश्चात्सर-नृत्य-युगं पृथक् ॥१९१॥

श्मशानभस्मार्चितान्ते शरीराय ततः परम् ।
घण्टाकपालमालादिधरायेति पदं ततः ॥१९२॥

व्याघ्रचर्मपदस्याऽन्ते परिधानाय तत्परम् ।
शशाङ्ककृत-शब्दान्ते शेखराय ततः परम् ॥१९३॥

कृष्णसर्पपदं पश्चात्ततो यज्ञोपवीतिने ।
चल-युग्मं वल-युगमनिवर्त्तकपालिने ॥१९४॥

हनयुग्मं ततो भूतांस्त्रासय-द्वितयं पुनः ।
भूयो मण्डलमध्ये स्यात् कहयुग्मं[3] ततः परम् ॥१९५॥

रुद्राङ्कुशेन शमय प्रवेशय-युगं ततः ।
आवेशय-पदं पश्चात् चण्डासिपदमीरयेत् ॥१९६॥

धाराधिपतिरुद्रोऽथ ज्ञापयेत्यग्निसुन्दरी ।
खड्गरावणमन्त्रोऽयं सप्तत्यूर्द्ध्वशताक्षरः ॥१९७॥

भूताधिपतये स्वाहा पूजामन्त्रोऽयमीरितः ।
सद्यादिपञ्चह्रस्वाद्यकान्तबीजादिकान्न्यसेत् ॥१९८॥

ईशानाद्याः पञ्चमूर्त्तीर्देहे वक्त्रेषु च क्रमात् ।
षड्दीर्घबिन्दुयुक्तेन कान्तेनाऽङ्गक्रिया मता ॥१९९॥

---

१. क. तुंबरोर्महत् । २. क. विरह० । ३. ख. कदयुग्मं ।

घण्टाकपालसृणिमुण्डकृपाणखेट-
खट्वाङ्गशूलडमरूनभयं दधानम् ।
रक्ताङ्गमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रम्,
पञ्चाननाब्जमरुणांशुकमीशमीडे ॥२००॥

पञ्चाक्षरोदिते पीठे पूजयेत्खड्गरावणम् ।
बीजेन मूर्त्तिक्लृप्तिः स्यात्तत्कान्तमनुबिन्दुमत् ॥२०१॥

अङ्गानि दलमूलेषु दूतीः पत्रेषु संयजेत् ।
चुलुकुण्डां प्रस्खलिनीं तृतीयां कृष्णपिङ्गलाम् ॥२०२॥

फाल्गुनीं टिरिटिल्लीं च पञ्चमीं मन्त्रमालिकाम् ।
सप्तमीं खिखिनीं पश्चाच्चन्द्राङ्कितजटामिमाः ॥२०३॥

पूर्वपत्रादि सव्येन खड्गरावणवल्लभाः ।
ऐन्द्रीं कौमारिकां ब्राह्मीं वाराहीं वैष्णवीं पुनः ॥२०४॥

वैनायकीं च चामुण्डां माहेशीं दिक्षु पूजयेत् ।
द्वारपालान्यजेद्दिक्षु द्वौ द्वौ प्रागादि देशिकः ॥२०५॥

रौद्रपिङ्गलनामानौ द्वौ श्मशानाह्वभीषणौ ।
दृढकर्णं भृङ्गिरिटिमुदीच्यामर्चयेत्पुनः ॥२०६॥

आमर्द्दकमहाकालौ लोकपालान्यजेत्पुनः ।
कुम्भकर्णमशोकाख्यं भल्लाटं जातहारकम् ॥२०७॥

इन्द्रादिकांल्लोकपालान्सायुधान्पूजयेत्ततः ।
धूपदीपादिभिर्द्देवं प्रीणयित्वा महेश्वरम् ॥२०८॥

पञ्चक्रूरान्धसा बाह्ये ततो भूतबलिं हरेत् ।
एवं पूजादिभिः सिद्धे मन्त्रे मन्त्रविदां वरः ॥२०९॥

नाशयेत्सकलान्भूतान् कृत्याग्रहमहामयान् ।
आदेशं तस्य कुर्वन्ति भूता भीता महात्मनः ॥२१०॥

बहुना किमिहोक्तेन मन्त्रेणाऽनेन भूतले ।
सदृशो नाऽस्ति मन्त्रोऽन्यो भूतनिग्रहसाधनम् ॥२११॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, 'खां हृदयाय नमः, खीं शिरसे स्वाहे'त्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, "अङ्गुष्ठयोः—खों ईशानाय नमः, तर्जन्योः—खें तत्पुरुषाय०, मध्यमयोः—खुं अघोराय०, अनामयोः—खिं वामदेवाय०, कनिष्ठयोः—खं सद्योजाताय नमः, ततः शिरसि—खों ईशानायोर्द्ध्ववक्त्राय नमः, मुखे—खें तत्पुरुषाय पूर्ववक्त्राय०, दक्षकर्णे—खुं अघोराय दक्षिणवक्त्राय, वामे—खिं वामदेवायोत्तरवक्त्राय, चूडाधः खं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय नम" इति विन्यस्य, यथोक्तरूपं ध्यात्वा[1] मानसपूजान्ते[2] पञ्चाक्षरोक्तं चक्रं[3] निर्माय, पात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पञ्चाक्षरोदिताः पीठशक्तीः पीठमन्त्रेण पीठञ्च सम्पूज्य, 'खमि'ति मूर्त्ति सङ्कल्प्य, तत्र देवमावाह्य, मूलमन्त्रान्ते 'भूताधिपतये स्वाहे'ति मन्त्रेण पुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, प्रथमाष्टदलमूलेष्वङ्गानि तत्पत्रेषु प्रागादिवामावर्त्तेन "चुलुकुण्डायै नमः, प्रस्खलिन्यै०, कृष्णपिङ्गलायै०, फाल्गुन्यै०, टिरिटिल्ल्यै०, मन्त्रमालिकायै०, खिंखिन्यै०, चन्द्राङ्कितजटायै नम" इति सम्पूज्य, द्वितीयाष्टदले तथैव "ऐन्द्र्यै०, कौमारिकायै०, ब्राह्म्यै०, वाराह्यै०, वैष्णव्यै०, वैनायक्यै०, माहेश्वर्यै नम" ततस्तृतीयाष्टदले पूर्वदले "रौद्राय नमः, पिङ्गलाय नमः, दक्षिणदले श्मशानाय०, भीषणाय०, पश्चिमदले ढढकर्णाय०, भृङ्गिरिटये०, उत्तरदले आमर्द्दकाय०, महाकालाय०, आग्नेये—कुम्भकर्णाय०, नैर्ऋत्ये — अशोकाय०, वायव्ये — भल्लाटाय०, ईशाने—जातहारकाय नम" इति सम्पूज्य, चतुरश्रे प्राग्वदिन्द्रादिलोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य धूपादि शेषं समापयेदिति । तथा—

अयुतद्वितयं मन्त्रं जपित्वा तद्दशांशतः ।
पायसेन घृताक्तेन जुहुयात्तस्य सिद्धये ॥२१२॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥३३॥

———

१. ख. धकत्वा । २. ख. सानस० । ३. ख. नाऽस्ति ।

[चतुस्त्रिंशस्तरङ्गः]

कोलेशकोटिप्रभेदे—

अथ वक्ष्ये महादेवि भैरवस्येश्वरेश्वरि ।
मन्त्ररत्नं महागुप्तं दुष्टग्रहनिकृन्तनम् ॥१॥

सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सर्वापत्तारकं देवि सर्वसौभाग्यदायकम् ॥२॥

वश्याकर्षविद्वेषस्तम्भनोच्चाटमारणे ।
निग्रहे व्याधिकरणे प्रशस्तमखिलेष्टदम् ॥३॥

उद्धरिष्ये महामन्त्रं शृणुष्वाऽवहिता प्रिये ।
व्योमाग्निशान्तितिथिभिरुद्धरेद्बीजमादिमम् ॥४॥

जलं च खेचरीकर्णयुताकाय ततः शिवे ।
अनन्तो लोहितश्चाऽत्रिः कर्णवान्मीनयुग्यकम् ॥५॥

वह्निष्टपञ्चमोऽनन्तगुहः पवन एव च ।
क्रोधी कर्णयुतो वह्निः कर्णवान्परमेश्वरि ॥६॥

पुनरेतद्द्वयं प्रोक्त्वा द्वितीयार्णादि पार्वति ।
चतुष्टयं तु वर्णानां पुनराद्यं समुद्धरेत् ॥७॥

एकविंशतिवर्णात्मा मन्त्रराजः समुद्धृतः ।
गोपनीयः प्रयत्नेन त्रैलोक्येष्वपि दुर्लभः ॥८॥

व्योम हः, अग्नी रेफः, शान्तिः ई, तिथिः बिन्दुस्तेन ह्रीं इति सिद्धम् । जलं व, खेचरी ट, कर्ण उ, तेन टु । काय-स्वरूपं, अनन्तः आ, अत्र यकार-आकारयोर्न सन्धिरेकविंशतिवर्ण इत्युक्तेः । लोहितः प, अत्रिः द, कर्ण उ तेन दु । मीनयुग्मं धकारद्वयं तेन द्ध इति वह्निः रेफः, टपञ्चमो ण, अनन्त आ तेन णा । पवनो य, क्रोधी क, कर्ण उ, तेन कु । वह्निः र, कर्ण उ, तेन रु । पुनरेतद्द्वयं कुरु इति । द्वितीयार्णादिचतुष्टयं वटुकाय इति, आद्यं ह्रीमिति । अयं प्रणवादिरपि । 'आदौप्रणवमुद्धृत्य देवी प्रणवमुद्धरेदि'ति रुद्रयामलतन्त्रोक्तापदुद्धारकस्तोत्रोक्तेः । तथा—

ऋषिरुक्तो महादेवि बृहदारण्यसंज्ञकः ।
अनुष्टुप् छन्द इत्युक्तं भैरवो देवता शिवे ॥९॥

शक्तिबीजं तु शक्तिः स्यादा-कीलकमुदाहृतम् ।
आद्याक्षरयुगं देवि पञ्चह्रस्वान्वितं कुरु ॥१०॥

सद्यादिप्रतिलोमेन नपुंसकविवर्जितम् ।
एतद्बीजद्वयाद्यास्तु न्यस्तव्याः पञ्चमूर्त्तयः ॥११॥

अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु मूर्द्धास्यहृदयेषु च ।
सगुह्यचरणेष्वेवं मूर्द्धास्ये दक्षकर्णके ॥१२॥

वामकर्णे च चूडाध ऊर्द्ध्वपूर्वान्तिकेतरे ।
पश्चिमेऽपि च वक्त्रेषु मूर्त्तयस्ता महेश्वरि ॥१३॥

ईशानाख्यस्तत्पुरुषो घोरो देवि तृतीयकः ।
वासुदेवश्चतुर्थः स्यात्सद्योजातस्तु पञ्चमः ॥१४॥

पुनराद्यर्णयुगलं षड्दीर्घस्वरभेदितम् ।
कृत्वा तैस्तु षडङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत् ॥१५॥

रुद्रयामले श्रीदेव्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ शम्भो त्रैलोक्यनायक ।
भैरवस्य विधिं भूयो ममाऽऽचक्ष्व महामते ॥१६॥

येन कार्याणि सिद्ध्यन्ति साधकानां निरन्तरम् ।
सुगोप्यमपि देवेश विधिं मे ब्रूहि शङ्कर ॥१७॥

यतोऽहं ते प्रिया देव सदावर्त्ते[1] निरन्तरम् ।
ततः कृपां समाधाय विधिं कथय शोभनम्[2] ॥१८॥

श्रीभैरव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बटुकस्य महात्मनः ।
विधानं परमं गोप्यं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥१९॥

---

१. ख. वर्त्तो । २. क. शोभनाम् ।

सूत्रेणैव सुसंक्षेपात्कथयिष्यामि वल्लभे ।
येन विज्ञातमात्रेण त्रैलोक्यं साधयेत्सुधीः ॥२०॥

एकदा देवदेवेशि तपसे मन्दराचलम् ।
गतोऽहं परमानन्दान्मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥२१॥

चक्रे परमसन्तुष्टा तपसा भाविताऽत्मना ।
साऽऽकाशरूपिणी देवी प्रोवाच वचनं मुदा ॥२२॥

तुष्टाऽहं शङ्कर प्रीता वरं वरय सुव्रत ।
इति वाक्यं समाकर्ण्य प्रोवाचाऽहं सुवल्लभे ॥२३॥

देवि मातर्जगत्पूज्ये यदि दास्यसि मे वरम् ।
दुर्लभं कस्यचिद् ब्रूहि विधानं परमाशयात् ॥२४॥

मन्त्रस्य येन सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि साम्प्रतम् ।
इति वाक्यं च मे श्रुत्वा पूज्यभूता सनातनी ॥२५॥

उवाच यादृशं देवि विधानं शृणु वल्लभे ।
वटुकाख्यस्य देवस्य भैरवस्य महात्मनः ॥२६॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्वन्दितस्य दयानिधे ।
न्यासा एकादश प्रोक्ता वटुकाराधने शिवे ॥२७॥

यान्विना नैव सिद्धिः स्याद्वर्षाणामयुतैरपि ।

आदौ न्यासं प्रेतबीजेन कार्यम्,
पश्चात्साक्षात् सिंहबीजेन देवि ।
न्यासं कार्यं काणबीजेन तद्वत्,
मन्याबीजन्यासमग्रे धिदध्यात् ॥२८॥

महाश्रीबीजतो न्यासं प्राणबीजेन चाऽपरम् ।
घण्टाबीजस्य च न्यासं विधाय ख्यातिबीजतः ॥२९॥

मूलबीजेन पश्चाच्च न्यासं कृत्वा महामतिः ।
भ्रामरीबीजतो न्यासं विदध्यात्प्रीतिसंयुतः ॥३०॥

एवं न्यासान्दशाऽऽदौ तु न करोति नरो यदा ।
त्वां शपेऽहं वरारोहे तावन्मन्त्रो न सिद्ध्यति ॥३१॥

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ शम्भो संसारतारक ।
कृपां कृत्वा न्यासविधिं प्राकट्येन निरूपय ॥३२॥

कस्तेनेह यथाऽल्पेन साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ।
गोपनीयो न मन्त्रोऽयं[1] वटुकाख्यजगद्गुरोः ॥३३॥

तथा निरूपय विभो बालकोऽपि यथा भवेत् ।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि जगत्पूज्ये न्यासबीजानि शोभने ॥३४॥

प्रकटानि यथा शश्वत्कथयामि हिताय ते ।
स्थानेषु येषु बीजानि न्यस्तव्यानि महात्मभिः ॥३५॥

तथाऽत्र प्रवदिष्यामि शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
शिवचन्द्रशिवैः शक्रस्वरोपेतैः सबिन्दुभिः ॥३६॥

प्रेतबीजं समाख्यातं तेनाऽङ्गानि न्यसेच्च षट् ।
हृच्छिरश्च शिखानेत्रकवचास्त्रेषु सुन्दरि ॥३७॥

शिवो हः, चन्द्रः स, शक्रस्वर औ । तथा—

शिवचन्द्रौ ससंवर्त्तौ कालवामाक्षिभूषितौ ।

बिन्दुनादयुतौ देवि न्यासात्सान्निध्यकारकम् ॥३८॥
सिंहबीजमिदं देवि विन्यसेत्सुरसुन्दरि ।

संवर्त्तः क्ष, कालो म, वामाक्षि ई, बिन्दुरनुस्वारः, नादोऽर्द्धचन्द्रः ।

तथा— मूर्ध्नि बाह्वोश्च लिङ्गे च नाभौ हस्ताङ्गुलीषु च ॥३९॥
पादाङ्गुलीषु देवेशि विन्यसेत्परमेश्वरि ।
गजेशोऽग्निसमारूढः शक्रस्वरशशीयुतः ॥४०॥

कालबीजमिदं प्रोक्तं विन्यसेत्परमेश्वरि ।

गजेशो (शः)कः अग्निः र, शक्रस्वरः औ, शशी बिन्दुः । तथा—

ब्रह्मरन्ध्रे मुखे नेत्रयुगे ग्रीवानसोरपि ॥४१॥

---

१. ख. मन्त्रीयं ।

कपोलयोश्च चिबुके ब्रह्मरन्ध्रे पुनर्न्यसेत् ।
कालशक्रशिवाः सद्यबिन्दुनादविभूषिताः ॥४२॥

मन्याबीजं महेशानि पादयोर्हस्तयोस्तथा ।
नेत्रयोः श्रोत्रयोः कुक्षौ मेढ्रे चैव प्रविन्यसेत् ॥४३॥

कालः मः, शक्रः ल, शिवः ह, सद्य श्रो । तथा—

अस्थ्यग्निवामकर्णेन्दुनादैर्देवि समीरितम् ।
महाश्रीबीजमीशानि चिबुके पादयोर्गले ॥४४॥

पादयोर्हृदये पादद्वये नाभौ च पादयोः ।

अस्थि शः, अग्निः र, वामकर्ण ऊ, इन्दुनादौ प्राग्वत् ।

लोहितोऽग्न्यासनो वामकर्णबिन्दुभिरद्रिजे ॥४५॥

प्राणबीजं मुखे देवि हृदये नाभिमण्डले ।
हृदये पादयोर्देवि हृदये दक्षकुक्षिके ॥४६॥

हृदये वामकुक्षौ च हृदये दक्षपत्तले[1] ।
हृदये वामपादे च हृदये दक्षनेत्रके ॥४७॥

हृदये वामनेत्रे च हृदये दक्षघोणके ।
हृदये वामघोणे च हृदये दक्षकर्णके ॥४८॥

हृदये वामकर्णे च हृदये विन्यसेत् प्रिये ।

लोहितः प, अग्निः र, वामकर्ण ऊ बहुवचनान्नादोऽपि ज्ञेयः ।

कतुरीयोऽग्निमारूढो वामकर्णेन्दुनादवान् ॥४९॥

घण्टाबीजं महेशानि विन्यसेत्परमेश्वरि ।

कतुरीयो घ, अन्यत् प्राग्वत् ।

घण्टिकायां च नाभौ च घण्टिकायां हृदि न्यसेत् ॥५०॥

पादयोर्हृदये कट्यां मस्तके मस्तके कटौ ।
स्तनयोर्गुल्फयोश्चैव गुल्फयोः स्तनयोर्न्यसेत् ॥५१॥

---

१. ख. दक्षपुत्तले ।

चण्डेशो वायुवह्न्याद्यवामकर्णेन्दुनादवान् ।
ख्यातिबीजमिदं प्रोक्तं विन्यसेद्देवि साधकः ॥५२॥

चण्डेशः ख, वायुः य, वह्न्यादि प्राग्वत् ।

मस्तके पादयोश्चैव ग्रीवायां नाभिमण्डले ।
गले च हृदि देवेशि जङ्घयोर्नेत्रयोस्तथा ॥५३॥

कर्णयोर्बाहुयुग्मे च स्तनयोश्च न्यसेत्प्रिये ।
प्रणवो मूलबीजं स्याद्धृदये पादयोः प्रिये ॥५४॥

हस्तयोः कर्णयोर्नासायुगले चैव विन्यसेत् ।
द्विरण्डरेवतीशक्रचन्द्रहंसत्रिमूर्तिभिः ॥५५॥

सबिन्दुनादैर्देवेशि भ्रामरीबीजमीरितम् ।

द्विरण्डः भः, रेवती र, शक्रः ल, चन्द्रः स, हंसः ह, त्रिमूर्त्तिः ई, बिन्दुनादौ प्राग्वत् ।

मुखे नेत्रद्वये कर्णद्वये चैव कपोलयोः ॥५६॥

गण्डयोः कण्ठदेशे च स्तनयोर्हृदि पादयोः ।
चिबुके मस्तके बाह्वोः स्कन्धयोर्दन्तलेखयोः ॥॥५७॥

ब्रह्मरन्ध्रे तथाऽऽधारे भ्रूमध्ये च न्यसेत्प्रिये
इति न्यासान्समाधाय पुरश्चरणकारकः ॥५८॥

यथोक्तन्यासकारी च यदि नो वरमाप्नुयात् ।
तदा कन्यादूषणोत्थं मम पापं प्रजायताम् ॥५९॥

न्यासैरेतैर्वरारोहे ब्रह्महत्या विनश्यति ।
का कथाऽन्यस्य पापस्य सत्यं सत्यं वदामि ते ॥६०॥

मर्मन्यासानथो वक्ष्ये त्रीन्देवस्य महात्मनः ।
यान्विधाय नरो विन्देत्सिद्धिं लोकेषु दुर्लभाम् ॥६१॥

आकूतबीजं विन्यस्य मस्तके गण्डयोर्मुखे ।
कालबीजं चक्षुषोश्च कर्णयोरपि विन्यसेत् ॥६२॥

नाभौ लिङ्गे गुदे चाऽपि विद्याबीजं कपोलयोः ।
ब्रह्मरन्ध्रे दन्तपङ्क्त्योर्विन्यसेत्साधकोत्तमः ॥६३॥

श्रीदेव्युवाच—

भगवन्करुणासिन्धो दीनबन्धो जगद्गुरो ।
कृपां कृत्वा समाख्याहि तत्तैरेव पृथक् पृथक् ॥६४॥

साधकस्तु यथा सिद्धिमचिरेणैव विन्दति ।

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि न्यासत्रयविधिं पृथक् ॥६५॥

दीर्घाकालाग्निशक्राणामधःकालानलान्तकाः ।
वह्न्यस्थिवह्निगगनचन्द्रा वामाक्षिमण्डिताः ॥६६॥

बिन्दुनादसमाक्रान्ता बीजमाकृतमुद्धृतम् ।

दीर्घा न, कालो म, अग्निः र, शक्रः ल, कालो म, अनलः र, अन्त्यः क्ष, वह्निः र, अस्थि श, वन्हिः र, गगनं ह, चन्द्रः स, वामाक्षि ई, बिन्दुनादौ प्राग्वत् । तथा—

ब्रह्माग्नीन्द्रेन्द्वग्निकालवह्निवामाक्षिभिः प्रिये ॥६७॥

सबिन्दुनादैर्देवेशि कालबीजमितीरितम् ।

ब्रह्मा क, अग्निः र, इन्द्रः ल, इन्दुः स, अग्निः र, कालो म, वह्निः रः, यामाक्षि ई, बिन्द्वादि प्राग्वत् ।

संवर्त्तानलचन्द्राग्निशिवचन्द्रत्रिमूर्त्तिभिः ॥६८॥

सबिन्दुनादैर्देवेशि विद्याबीजं समुद्धृतम् ।

संवर्त्तः क्ष, अनलः र, चन्द्रः स, अग्निः र, शिवः ह, चन्द्रः स, त्रिमूर्त्तिः ई, बिन्द्वादि प्राग्वत् ।

एतन्न्यासत्रयं प्रोक्तं साधकाभीष्टसिद्धिदम् ॥६९॥

यस्य प्रसादमासाद्य भैरवः शीघ्रसिद्धिदः ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शृङ्खलान्यासमुत्तमम् ॥७०॥

यस्य प्रसादाच्च शिवे वटुकः सिद्धिदो भवेत् ।
मस्तके दक्षनेत्रे च वामनेत्रे तथैव च ॥७१॥

दक्षकर्णे वामकर्णे कपोले दक्षिणे तथा ।
वामे कपोले दले च गण्डके वामके पुनः ॥७२॥

चिबुकेऽथ गले स्कन्धे दक्षिणे वामके तथा ।
स्तने दक्षे च वामे च हृदये दक्षकुक्षिके ॥७३॥

वामकुक्षौ च नाभौ च दक्षजङ्घे च वामके ।
लिङ्गे मेढ्रे दक्षिणे च वामे च वरवर्णिनि ॥७४॥

मेढ्रशब्दोऽत्र वृषणवाची दक्षवामनिदर्शनाल्लिङ्गस्योक्तत्वाच्चेति

मूलाधारे दक्षगुल्फे वामगुल्फे तथैव च ।
दक्षे वामे च पादे च दक्षपादाङ्गुलीषु च ॥७५॥

वामपादाङ्गुलीष्वेवं ब्रह्मरन्ध्रे तथैव च ।
मूलाधारे पुनश्चैव पुनर्वै ब्रह्मरन्ध्रके ॥७६॥

महापराख्यं बीजं च विन्यसेत्साधकोत्तमः ।
चन्द्रसूर्यौ पुनस्तौ च मही ब्रह्मा मही प्रिये ॥७७॥

त्रिमूर्त्तिरस्थिवह्न्यम्बु वह्न्यम्बु धरणी जलम् ।
षष्ठस्वरस्त्रिमूर्त्तीन्दुनादभूषितमस्तकम् ॥७८॥

महापराख्यबीजं ते कथितं सुरवन्दिते ।

चन्द्रसूर्यौ सहौ, पुनस्तौ चन्द्रसूर्यौ सहावेवेत्यर्थः; मही ल, ब्रह्मा क, मही ल, त्रिमूर्त्तिः ई, अस्थि श, वह्निः र, अम्बु व, धरणी ल, जलं व, षष्ठस्वर ऊ, त्रिमूर्त्तिः ई, बिन्दुनादौ प्राग्वत् ।

न्यासेनाऽनेन सुश्रोणि साक्षाच्छिवसमो भवेत् ॥७९॥

वटुकस्याऽथ वक्ष्यामि मातृकान्यासमुत्तमम् ।
कृतेन येन वटुकः साधकस्योन्मुखो भवेत् ॥८०॥

श्रीबीजैः पञ्चभिर्यत्र मातृकामण्डलं भवेत् ।
प्रोतमादौ च भान्ते च तान्ते फान्ते तथाऽन्धके ॥८१॥

---

१. ख. भ्रान्ते ।

वटुकस्य परं पूज्यं मातृकान्यासमुत्तमम् ।
विज्ञाय साधयेत्प्राज्ञः स सद्यः शिवतां व्रजेत् ॥८२॥

विनेमं मातृकान्यासं योऽन्येन न्यासमाचरेत् ।
वटुकस्तस्य[1] कुपितः सद्यः शापं प्रयच्छति ॥८३॥

तस्मान्न्यासः प्रकर्त्तव्यः साधकेन विपश्चिता ।
सर्वेषु मातृस्थानेषु वपुःपावित्र्यहेतवे ॥८४॥

मातृकान्यासमेनं हि त्यक्त्वा योऽन्यं समाचरेत् ।
वर्षकोटिप्रयत्नेन स सिद्धिं नैव विन्दति ॥८४॥

ॐ कारमादौ संयोज्य सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।
अयमन्तर्मातृकाख्यो न्यासः स्यात्सर्वसिद्धिदः ॥८६॥

क्षकारमादिमं कृत्वा न्यासोऽयं वरवर्णिनि ।
नाम्ना बहिर्मातृकाख्यो न्यासश्चूडामणिर्भवेत् ॥८७॥

ध्यानादि पूर्ववद्देवि कथितानि महामते ।
अथान्यं न्यासमाख्यास्ये शृणुष्व वरवर्णिनि ॥८८॥

सरस्वतीमातृकाख्यं सद्यः सिद्धिप्रदायकम् ।
न्यसेन्महामते बीज मातृकास्थानकेषु च ॥८९॥

महासरस्वतीदेव्याः सद्यः सिद्धिप्रदायकम् ।
क्रोधीशाधः पिनाकीशो दारुकेशभुजङ्गकौ ॥९०॥

भृग्वीशनकुलीशौ च भुजङ्गो नकुली शिवे ।
संवर्त्तबकरेवत्यग्निमूर्त्तीन्दुविभूषिताः ॥९१॥

महासरस्वतीबीजं कथितं देवदुर्लभम् ।

क्रोधीशः क, पिनाकीशः ल, दारुकेशः ड,[2] भुजङ्गः र, भृग्वीशः स, नकुलीशः ह, भुजङ्गः र, नकुलीशः ह, संवर्त्तः क्ष, वकः श, रेवती र, त्रिमूर्त्तिः ईः, इन्दुर्बिन्दुः । तथा—

इति न्यासाः समाख्याता वटुकाराधने शिवे ॥९२॥

---

१. क. बटुकात्युक्त । २. ख. ड ।

सद्यःसिद्धिकरा ज्ञेया भाग्यलभ्या न संशयः ।
न्यूनन्यासस्य कर्त्ता यः सद्यो हानिमवाप्नुयात् ॥९३॥
एतस्मादधिकन्यासान्निःष्कः स्याज्जन्मजन्मनि ।

तथा **कोलेशकोटिप्रभेदे—**

एवं न्यस्ततनुर्देवि ध्यायेद्वटुकभैरवम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं द्विनेत्रोत्पलशोभितम् ॥९४॥
कुटिलालकसंवीतचारुस्मेरमुखाम्बुजम् ।
नानारत्नमयाकल्पैः किङ्किणीजालनूपुरैः ॥९५॥
दीप्तं शुभ्राम्बरावीतं द्विभुजं दक्षिणे करे ।
त्रिशिखं सव्यहस्ते च दधानं दण्डमद्भुतम् ॥९६॥
वटुवेषधरं शम्भुं सात्विकं साधकः स्मरेत् ।

रुद्रयामले—

कपालं वामहस्ते तु सूक्ष्मदण्डं च दक्षिणे ॥९७॥

इत्युक्तम् । सात्विके चतुर्भुजध्यानं तत्रैव ।

त्रिशूलपाशहस्तं च दण्डहस्तं कमण्डलुम् ॥९८॥
त्रिनेत्रं नीलकण्ठं च मुक्ताभरणभूषितम् । इति ।
एवं ध्यात्वा यजेद्देवं शैवे पीठे सुरेश्वरि ॥९९॥
अष्टपत्रं महादेवि कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।
पद्मं विरच्य तन्मध्ये कर्णिकायां सुरेश्वरि ॥१००॥
कृत्वा षट्कोणमस्यान्तस्त्रिकोणं परिकल्पयेत् ।
व्योमपद्मं तु तन्मध्ये वसुपत्रविराजिते ॥१०१॥
कर्णिकाकेसरैर्युक्तं चतुरश्रत्रयं बहिः ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं तन्मध्ये वटुकं यजेत् ॥१०२॥
मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाहयेत्प्रभुम् ।
सद्योजातेन मन्त्रेण मूलाद्येन महेश्वरि ॥१०३॥
स्थापयेद्वामदेवेन मूलाद्यन च सुव्रते ।
सन्निधायाऽथ मूलेन केवलेन समुद्रया ॥१०४॥

अघोरान्तेन मूलेन सन्निरोधनमाचरेत् ।
मूलेन सम्मुखीकुर्यादवगुण्ठ्याऽथ मूलतः ॥१०५॥

ङङ्गैः सकलीकृत्याऽमृतीकृत्य च मूलतः ।
षपरमीकरणं चैव स्वस्वमुद्राभिरुक्तवत् ॥१०६॥

एतत्सर्वं विधातव्यं ततो ध्यात्वा समाहितः ।
कृत्वा सुस्थापनं तस्य मुद्राः सन्दर्शयेदथ ॥१०७॥

लिङ्गाद्याः पूर्वमुद्दिष्टा योनिमुद्रा तु तत्र या ।
तां दर्शयेत्तत्पुरुषमूलाभ्यां च महेश्वरि ॥१०८॥

ईशानेन नमस्कुर्यान्मूलाद्येन महेश्वरि ।
आसनाद्यैश्च पुष्पान्तैरुपचारैस्ततोऽर्च्चयेत् ॥१०९॥

देवस्य देहे देवेशि पञ्चमूर्त्तीर्यजेत्क्रमात् ।
अङ्गुलीदेहवक्त्रेषु त्रिविधन्न्यासमार्गतः ॥११०॥

कर्णिकायां यजेत्पश्चात्पूर्वदक्षोत्तरेषु च ।
पश्चिमे देवमूर्त्तौ च व्योमपद्मदलेषु च ॥१११॥

असिताङ्गं रुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तभैरवम् ।
कपालं भीषणं चैव संहार च समर्पयेत् ॥११२॥

षट्कोणेषु षडङ्गानि यजेद्देवि यथाविधि ।
ततोऽष्टदलपद्मान्तः षट्कोणाद्वहिरद्रिजे ॥११३॥

पूर्वादीशानपर्यन्तं वक्ष्यमाणान्समर्च्चयेत् ।
डाकिनीपुत्रकान्देवि राकिनीपुत्रकानपि ११४।

लाकिनीपुत्रकान्पश्चात्काकिनीपुत्रकानथ ।
साकिनीपुत्रकान् भूयो हाकिनीपुत्रकांस्ततः ॥११५॥

मालिनीपुत्रकान्देवि देवीपुत्रानतः परम् ।
उमापुत्रान् रुद्रपुत्रान्मातृपुत्रानपीश्वरि ॥११६॥

वामभागे तु देवस्य यजेदेतान् क्रमेण वै ।
इन्द्रेशानदिशोर्मध्ये ऊर्द्ध्वमुख्याः सुतान्यजेत् ॥११७॥

अधोमुख्याः सुतान्देवि यजेद्रक्षोजलेशयोः ।
अन्तराले महेशानि पुत्रवर्गांस्त्रयोदश ॥११८॥

रुद्रयामलके तु—रुद्रपुत्राननन्तरम्—

देशग्रामाधिपौ चैव स्थानाधिपमनुक्रमात् ।
मेघनादं प्रचण्डाख्यं कालदूतं तथैव च ॥११९॥

इत्युक्तं । यथोपदेशमत्र कार्यम् ।

इत्थं सम्पूज्य तद्बाह्ये पद्मपत्रेषु पूजयेत् ।
ब्रह्माणीपुत्रकं पूर्वे माहेशीपुत्रमीश्वरे ॥१२०॥

वैष्णवीपुत्रकं सौम्ये कौमारीपुत्रमानिले ।
इन्द्राणीपुत्रकं देवि पश्चिमे पूजयेत्ततः ॥१२१॥

देवेशि नैऋते पश्चान्महालक्ष्मीसुतं यजेत् ।
वाराहीपुत्रकं देवि दक्षिणे वह्निकोणके ॥१२२॥

चामुण्डापुत्रमभ्यर्च्येल्लोकेशवटुका इमे ।
अष्टपत्राद्बहिर्देवि चतुरश्रान्तरे पुनः ॥१२३॥

अष्टदिक्षु यजेदेतान्हेतुकं त्रिपुरान्तकम् ।
वेतालमग्निजिह्वं च कालान्तकमतः परम् ॥१२४॥

करालमेकपादं च भीमरूपं महेश्वरि ।
अन्तरालेषु चाऽभ्यर्च्येच्छ्रीकण्ठादीन् स्वरेश्वरान् ॥१२५॥

ततो द्वितीयरेखायां क्रोधीशादीन्महेश्वरि ।
आषाढचन्तान्समभ्यर्च्य तृतीयायां समर्चयेत् ॥१२६॥

दण्डीश्वरादिभृग्वन्तान्नकुलीशादिकाञ् शिवे ।
देवस्य वामभागे तु पूजयेत्परमेश्वरि ॥१२७॥

दिव्यन्तरिक्षभूमिष्ठान्योगीशान् शक्तिसंयुतान् ।
योगिनीश्च समभ्यर्च्येदीशानादिषु सुन्दरि ॥१२८॥

कोणेषु देवदेवेशि दिगीशानायुधैः सह ।
चतुरश्राद्बहिर्देवि पूजयेदुक्तवर्त्मना ॥१२९॥

इति सम्पूजयेद्देवं वटुकं भक्तितत्परः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां पतिर्भवति मानवः ॥१३०॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादि-प्राग्वद्बिन्दुविसर्गमातृकान्यासानन्तरं भ(अ?)कारादि[1] भकारान्तान्वामकराङ्गुलिमूलादि-तन्मणिबन्धान्तेषु स्थानेषु विन्यस्य, कला-मातृकादि-श्रीबीजादिमातृकान्यासानन्तरं पुनश्च 'श्रीं अं नमः' इत्यनन्तरं 'श्रां नमः' इत्यादि 'भं नमः' इत्यन्तं केवलाक्षराणि शुद्धमातृकावदेव विन्यस्य, पुनर्भकारादौ श्रीबीजं, पुनः थकारादौ श्रीबीजं, [पुनः थकारादौ[2]] पुनर्वकारादौ, पुनः क्षकारान्ते 'श्रीं नमः' इति विन्यसेत् ।

ततः 'कलडर सहरहक्षश्रीं अं नमः' इत्यादि मातृकां विन्यस्य, ततः कामबीजादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—बृहदा-रण्यकऋषये नमः, मुखे—अनुष्टुप्छन्दसे०, हृदये—श्रीवटुकभैरवाय देवतायै०, गुह्ये—ह्रीं बीजाय०, पादयोः—ह्रीं शक्तये०, नाभौ—ॐ कीलकाय नम" इति विन्यस्य, मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत् । तत "अङ्गु-ष्ठयोः—ह्रों वों ईशानाय नमः, तर्ज्जन्योः—ह्रें वें तत्पुरुषाय०, मध्यमयोः—ह्रुं वुं अघोराय०, अनामयोः—ह्रिं विं वामदेवाय०, कनिष्ठयोः—ह्रं वं सद्योजाताय नमः, तत शिरसि, मुखे, हृदये, गुह्ये, पादयोश्चैता एव मूर्त्तीर्विन्यस्य, "शिरसि—ह्रों वों ईशानायोर्द्ध्ववक्त्राय नमः, मुखे—ह्रें वें तत्पुरुषाय पूर्ववक्त्राय० दक्षकर्णे—ह्रुं वुं अघोराय दक्षिणवक्त्राय०. वामकर्णे—ह्रिं विं वामदेवायोत्तर-वक्त्राय०, चूडाधः—ह्रं वं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय नम" इति विन्यस्य, "ह्रां वां हृदयाय नमः, ह्रीं वीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं वूं शिखायै वषट्, ह्रैं वैं कवचाय हुं, ह्रौं वौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः वः अस्त्राय फडि"ति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषु च विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं छोटिकाभिर्दश-दिग्बन्धनं कृत्वा, पुनः 'ह्सौं[3]' इति प्रेतबीजेन प्राग्वत् षडङ्गन्यासं विधाय, शिरसि—'ह्स्क्ष्मीं[4] नमः', बाह्वोः—'ह्स्क्ष्मीं नमः' एवं लिङ्ग-नाभि-हस्ताङ्गु-लीषु पादाङ्गुलीषु चेदमेव बीजं न्यसेत् ।

ततो ब्रह्मरन्ध्रे—'क्रौं[5] नमः' एवं मुख-नेत्रद्वय-ग्रीवा-नासा-कपोलद्वय-चिबुक-ब्रह्मरन्ध्रेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य, पादयोः—'म्ल्ह्रौं नमः' एवं हस्तद्वय-

---

१. ख. जकारादि— । २. [—] अयमंशो नाऽस्ति ख पुस्तके । ३. पुस्तकद्वये हसहौं' इति पाठः सोऽप्ययुक्तः (सम्पा०) । ४ ख 'ह स लक्ष्मीं' । ५ पुस्तकद्वये श्रौं' इति पाठः ।

नेत्रद्वय - श्रोत्रद्वय - कुक्षिद्वय - लिङ्गेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य, चिबुके—'श्रूँ नमः' एवं पादद्वय-गल-पादद्वय-हृदय-पादद्वय-नाभि-पाद-[द्वयेषु चेदमेव बीज विन्यस्य, मुखे—'प्रूँ नमः' एवं हृदय-नाभि-हृदय-पादद्वय-हृदय-दक्षकुक्षि-हृदय-वामकुक्षि - हृदय-दक्षपाद - हृदय-वामपाद-हृदय - दक्षनेत्र - हृदय-वामनेत्र-हृदय-दक्षनासा-हृदय-वामनासा-हृदय - दक्षकर्ण-हृदय - वामकर्ण-हृदयेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य,][1] गलघण्टिकायां—'घ्रूँ नमः' एवं नाभि-घण्टिका-हृदय-पादद्वय-हृदय-कटि-मस्तक-मस्तक-कटि-स्तनद्वय-गुल्फद्वय-गुल्फद्वय-स्तनद्वयेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य, मस्तके—'ख्य्रूँ नमः' एवं पादद्वय-ग्रीवा-नाभि-गल-हृदय-जङ्घाद्वय-नेत्रद्वय +कर्णद्वय-+[2] बाहुद्वय-स्तनद्वयेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य, हृदये—'ॐ नमः' एवं पादद्वय-हस्तद्वय-कर्णद्वय-नासाद्वयेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य, मुखे—'भ्र्ल्स्ह्रीं[3] नमः' एवं नेत्रद्वय-कर्णद्वय - कपोलद्वय-गण्डद्वय-कण्ठ-स्तनद्वय-हृदय-पादद्वय-चिबुक-मस्तक - बाहुद्वय-स्कन्धद्वय-दन्तपङ्क्तिद्वय - ब्रह्मरन्ध्र - मूलाधार-भ्रूमध्येषु च विन्यस्य, शिरसि — 'म्भ्र्ल्म्र्क्ष्र्श्र्ह्सीं नमः' एवं गण्डद्वये मुखे चेदमेव विन्यस्य, नेत्रयोः — 'क्ल्स्र्स्त्रीं नमः' एवं कर्णद्वये-नाभि-लिङ्गगुदेषु चेदमेव बीजं विन्यस्य, कपोलयोः — 'क्ष्र्स्र्ह्सीं नमः' एवं ब्रह्मरन्ध्रे दन्तपङ्क्त्योश्चेदमेव बीजं विन्यस्य, मस्तके 'स्हस्ह्क्लीश्व्र्ल्व् ऊं[4] ईं नमः' एवं दक्षनेत्र-वामनेत्र-दक्षकर्ण-वामकर्ण-दक्षवामकपोल-दक्षवामगण्ड-चिबुक-गल-दक्षवामस्कन्ध - दक्षवामस्तन-हृदय-दक्षवामकुक्षि-नाभि-दक्षवामजङ्घा-लिङ्ग-दक्षवृषण-वामवृषण - मूलाधार-दक्षवामगुल्फ-दक्षवामपाद-तद्द्वयाङ्गुली-ब्रह्मरन्ध्र [मूलाधार-ब्रह्मरन्ध्रेषु][6] न्यसेत् ।

इत्येवं न्यासान् कृत्वा, ध्यानादि-मूर्त्तिकल्पनान्ते 'मूलं सद्योजाताय नमः' इति प्रागुक्तविधिनाऽऽवाह्य, मूलं वामदेवाय नमः' इति प्राग्वत् सस्थाप्य, मूलेन सन्निधाप्य, 'मूलं अघोरेभ्यो नमः' इति प्राग्वत् सन्निरुद्ध्य, सम्मुखीकरणादि-

---

१. [—] कोष्ठबद्धोंऽशो यद्यपि पुस्तकद्वये नाऽवलोक्यते तथाऽप्यस्यांऽशस्य पटलेऽस्मिन् 'लोहितोऽन्यासनो वामकर्णबिन्दुभिरद्रजे ।।४५।।' इत्यादिसूत्रेषु वर्णनादत्रोल्लेखः कृतोऽस्माभिः । अस्य स्थाने यदंशः पुस्तकद्वये दृश्यते तदंशोऽप्यध उद्ध्रियते—'तल-हृदय-नेत्र-हृदय-वामनेत्र - हृदय-दक्षनासा - हृदय-वामनासा - हृदय-दक्षकर्ण - हृदय-वामकर्ण- हृदयेषु विन्यस्य' । २ +—+ चिह्नान्तर्गतांशस्याऽभावः पुस्तकद्वये । ३. पुस्तकद्वये 'श्र्ल्स्ह्रीं' इति पाठः । ४. पुस्तकद्वये—'श्र' । ५. पुस्तकद्वये—'ऊ' स्थाने 'हुं' इति तथा 'श्र्' स्थाने 'श्र' इति एतद्द्वयमपि सूत्रविरुद्धम् । ६. [—] एतदंशः पुस्तकद्वये नाऽस्ति ।

प्राणप्रतिष्ठान्ते लिङ्गमुद्रा-दर्शनानन्तरं 'मूलं तत्पुरुषाय नमः' इति योनिमुद्रां प्रदर्श्य, त्रिशूलाद्यास्तु मुद्रा यथापूर्वमेव प्रदर्श्य, 'मूलं ईशानाय नमः' इति नमस्कार-मुद्रया प्रणम्याऽऽसनादिपुष्पान्तानुपचारानुपचर्य्य, ततो देवदेहेषु षडङ्गन्यासस्थानेषु 'ह्रां वां हृदयाय नम' इत्यादिनमोऽन्तान्येव षडङ्गानि सम्पूज्य, देहे[1] मूर्त्तिन्यास-स्थानेषु पञ्चदशस्वपि न्यासोक्तप्रकारेणैव त्रिरावृत्या पञ्चमूर्त्तीः सम्पूज्य, ततो व्योमपद्मकर्णिकायां पूर्वदक्षिणोत्तरपश्चिमेषु ईशानादिचतुर्मूर्त्तीः सम्पूज्य, पञ्चमीं देवस्य मूर्त्तौ पूजयेत् ।

ततोऽष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन "ॐ असिताङ्गभैरवाय नमः, एवं इं रुरुभैरवाय०, उं चण्डभैरवाय०, ऋं क्रोधभैरवाय०, लृं उन्मत्तभैरवाय०, एं कपालिभैरवाय०, ओं भीषणभैरवाय०, अं संहारभैरवाय०" ततः षट्कोणेषु स्ववामाग्रमारभ्याऽऽग्नेयेशाननैर्ऋतवायुकोणेषु हृदाद्यङ्गचतुष्टयं, देवाग्रकोणे नेत्रं, तदादिचतुर्दिक्षु चाऽस्त्रमिति षडङ्गानि प्राग्वत्सम्पूज्याऽष्टदलपद्माभ्यन्तरे षट्कोणा-द्बहिर्देवाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येनाऽष्टदिक्षु "ॐ डाकिनीपुत्रेभ्यो नमः, एवं राकिनी-पुत्रेभ्यः०, लाकिनीपुत्रेभ्यः०, काकिनीपुत्रेभ्यः०, साकिनीपुत्रेभ्यः०, हाकिनी-पुत्रेभ्यः०, मालिनीपुत्रेभ्यः०, देवीपुत्रेभ्यः०" इत्यष्टदिक्षु सम्पूज्य, देवस्य वामभागे ॐ उमापुत्रेभ्यः०, ॐ मातृपुत्रेभ्यः०, तत इन्द्रेशानयोर्मध्ये "ॐ ऊर्द्ध्वमुखीपुत्रेभ्यः०, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—अघोरमुखीपुत्रेभ्य" इत्यूर्द्ध्वाधो-बुद्धया सम्पूज्य, बहिरष्टदलेषु देवाग्रमारभ्य[2] प्रादक्षिण्येन "ॐ ब्रह्माणी-पुत्रवटुकाय नमः, एवं माहेशीपुत्र०, वैष्णवीपुत्र०, कौमारीपुत्र०, इन्द्राणीपुत्र०, महालक्ष्मीपुत्र०, वाराहीपुत्र०, चामुण्डापुत्र०", ततोऽष्टपत्राद्बहिश्चतुरश्राभ्यन्तरे तथैव "हेतुकाय०, त्रिपुरान्तकाय०, वेतालाय०, अग्निजिह्वाय०, कालान्तकाय०, करालाय०, एकपादाय०, भीमरूपाय" इत्यष्टदिक्षु सम्पूज्येन्द्रेशानयोर्मध्ये—"अचलाय, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—हाटकेशाय, ततस्तद्बहिश्चतुरश्रे देवाग्रादिप्राद-क्षिण्येन दिक्षु श्रीकण्ठानन्तसूक्ष्मत्रिमूर्त्तीशान्, अग्न्यादिकोणेष्वमरार्घीशभारभूति-तिथीशान्, दिक्कोणयोरन्तरालेषु देवस्य दक्षिणाग्रादिप्रादक्षिण्येनाऽष्टसु स्थाणुहरे-शादीन्महासेनेशान्तान् पूजयेत् । ततो द्वितीयरेखायामपि तथैव दिग्विदिक्ष्वन्तरालेषु च क्रोधीशाद्याषाढीशान्तानभ्यर्च्य, तृतीयरेखायामपि तथैव दण्डीशादिभृग्वीशान्ता-न्सम्पूज्य, नकुलीशशिवेशसंवर्त्तेशान्देवस्य वामभागे सम्पूज्य, तद्बहिर्देवस्य वामाग्र-कोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन 'सशक्तिकेभ्यो दिव्ययोगिनीभ्यो नमः' एवं "अन्तरिक्षयो-

---

१. ख. देवस्व देहे । २. ख. देवाग्रदलमारभ्य ।

गिनीभ्यः भूमिष्ठयोगिनीभ्यः, सर्वयोगिनीभ्यः" इति सम्पूज्य, तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रा-दींश्च प्रागुक्तविधिना सम्पूज्य प्राग्वद्धूपदीपादि दत्त्वा शेषं समापयेदिति । तथा—

जितेन्द्रियो हविष्याशी जपेदेनं मनुं प्रिये ।
पञ्चविंशत्सहस्राढ्यं पञ्चलक्षं दशांशतः ॥१३१॥

हुनेत्तिलैस्त्रिमध्वक्तैस्तर्प्पयेत्तद्दशांशतः ।
अभिषिच्याऽऽत्मनो मूर्द्धिन मूलमन्त्रेण साधकः ॥१३२॥

अभिषेकदशांशेन ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रिये ।

अयं कृतयुगजपः । कलावेतच्चतुर्गुणजपः कार्यः । एवमक्षरलक्षं वा तदर्द्धार्द्ध-मेव वेति यामलप्रोक्तत्वात् । अक्षरलक्षमेव विंशतिलक्षम् । एतत्संख्याकथनं तु कलियुगमारभ्य कृतयुगपर्यन्तपरिमितिर्ज्ञेयमीश्वरस्य स्वतन्त्रेच्छत्वात् । अत एव कलियुगजपप्रतिपादकेषु सङ्ग्रहग्रन्थेषु शारदातिलकादिषु वर्णलक्षमुक्तमिति ।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री नित्यनैमित्तिके रतः ॥१३३॥

विघ्नं दुर्गां समभ्यर्च्य बलिं दत्वा विधानतः ।
काम्यानि साधयेन्मन्त्री यथोक्तां सिद्धिमाप्नुयात् ॥१३४॥

अन्नं शालिसमुद्भूतं मांसं पक्वं सशर्करम् ।
लाजाचूर्णगुडापूपमाक्षिकेक्षुरसान्वितम् ॥१३५॥

घृतप्लुतं सर्वमेतदेकीकृत्य महेश्वरि ।
कृत्वा ग्रासं समाराध्य वटुकेशं सुरेश्वरि ॥१३६॥

प्रागुक्तेन विधानेन रक्तचन्दनसंयुतैः ।
रक्तपुष्पाक्षतैर्देवि धूपदीपैर्मनोहरैः ॥१३७॥

तस्याऽग्रे मण्डलं कृत्वा चतुरश्रं सुशोभनम् ।
त्रिकोणगर्भितं तत्र पात्रे हेममये शुभे ॥१३८॥

राजते वाऽथ कांस्ये वा निधाय कवलं शुभम् ।
अर्चयित्वाऽथ तत्पिण्डं गन्धाद्यैर्मूलमन्त्रतः ॥१३९॥

बलिद्रव्याय इत्युक्त्वा नम इत्यर्चयेत्ततः ।

ततो जलं समादाय चुलुकेन महेश्वरि ॥१४०॥

मूलमन्त्रं समुच्चार्य सम्बोध्य वटुकं प्रिये ।
इमं बलिं गृह्णयुग्मं स्वाहान्तं समुदीर्य च ॥१४१॥

जलं समर्प्ययेत्तत्र चिन्तयेद्वटुकं प्रिये ।
स्वहस्ते बलिमादाय भुञ्जानं वटुकं प्रभुम् ॥१४२॥

राजसोऽयं बलिर्देवि कथितः सर्वसिद्धिदः ।
सात्विको राजसश्चैव बलिः स्याद् द्विविधः प्रिये ॥१४३॥

राजसः कथितो देवि सात्विकं शृणु वल्लभे ।
पूर्वोक्तैः सकलैर्द्रव्यैर्मांसहीनैर्महेश्वरि ॥१४४॥

मुद्गरूपसमायुक्तैः पायसेन समन्वितैः ।
मधुरत्रयसंयुक्तैः प्राग्वद्द्याद्विचक्षणः ॥१४५॥

ब्राह्मणो नियतः शुद्धः सात्विकं बलिमाहरेत् ।
सात्विकं ध्यानमाख्यातं प्रागेव तव सुप्रभे ॥१४६॥

इदानीं राजसध्यानं शृणु वक्ष्ये सुरेश्वरि ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१४७॥

रक्ताङ्गरागमारक्तमाल्याम्बरविभूषितम् ।
स्मेराननं नीलकण्ठं नानाभरणभूषितम् ॥१४८॥

दक्षिणोर्द्ध्वकरे शूलं तदधो वरमद्रिजे ।
वामोर्द्ध्वहस्ते देवेशि कपालं तदधोऽभयम् ॥१४९॥

दधानं संस्मरेद्देवं स्मर्त्तृणामभयप्रदम् ।
काम्यकर्मसु देवेशि ध्यात्वा देव प्रभुं सदा ॥१५०॥

रुद्रयामले—'दक्षे त्रिशूलमभयं कपालं वामके वरमि' त्युक्तम् । यथारुचि ध्येयः ।

क्रूरकर्मसु देवेशि तामस ध्यानमुच्यते ।
अञ्जनाचलसङ्काशं मुण्डमालाविभूषितम् ॥१५१॥

चन्द्रखण्डलसत्पिङ्गकेशभारं दिगम्बरम् ।
त्रिनेत्रं दक्षिणैर्हस्तैर्डमरुं च शृणिं तथा ॥१५२॥

खड्गं शूलं च देवेशि दधानमपरैः करैः ।
अभयं नागपाशं च घण्टाञ्च नृकपालकम् ॥१५३॥

ऊर्द्ध्वादिक्रमतो देवि भीमदंष्ट्रं भयानकम् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तं मणिनूपुरमण्डितम् ॥१४५॥

किङ्किणीजालसंयुक्तं ध्यायेद्वटुकभैरवम् ।

यामले तु—'दक्षिणे अभयं वामे वर'मिति तामसे विशेषः ।

सात्विकध्यानमाख्यातमपमृत्युनिवारणम् ।
आयुरारोग्यजननमपवर्गफलप्रदम् ॥१५५॥

राजसं धर्मकर्मार्थसिद्धिदं तामसं प्रिये ।
शत्रुक्षयकरं भूतकृत्यापस्माररोगनुत् ॥१५६॥

एवं ध्यानं समाख्यातं साधकाभीष्टसिद्धिदम् ।
काम्यकर्मारम्भदिने तत्समाप्तिदिने तथा ॥१५७॥

बलिर्देयो महादेवि तत्तत्कर्मफलाप्तये ।
जितेन्द्रियः प्रजुहुयादाज्येनेष्टफलं भवेत् ॥१५८॥

इक्षुखण्डैर्हुनेद्देवि वशयेदखिलं जगत् ।
कैरवैः कुसुमैर्होमात्पुत्रलाभो भवेद् ध्रुवम् ॥१५९॥

तिलाढयतण्डुलैर्हुत्वा धनधान्यं लभेद्बहु ।
पुष्पैः[1] श्रीतरुसम्भूतैर्हुत्वा प्राप्नोति तां श्रियम् ॥१६०॥

त्रिस्वादुयुक्तलवणैर्होमः स्त्रीजनवश्यकृत् ।
होमो[2] वेतससम्भूतसमिद्भिर्वृष्टिदायकः ॥१६१॥

अन्नहोमाद्धान्यधनसम्पत्तिर्जायतेऽचिरात् ।
रोगोक्तौषधहोमेन रोगा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥१६२॥

कृत्यापस्मारभूतादिभये व्याघ्रादिजे शिवे ।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्स्यात्तच्चतुर्दशी ॥१६४॥

तिलैस्तण्डुलसम्मिश्रैर्मधुरत्रयलोलितैः ।
त्रिसहस्रं प्रतिदिनं जुहुयात्संस्कृतेऽनले ॥१६५॥

वटुकेश्वरमभ्यर्च्य भक्ष्यभोज्यफलान्वितम् ।
नित्यं विवेद्यं नैवेद्यमर्द्धरात्रे बलिं हरेत् ॥१६६॥

त्रिसहस्रं प्रतिदिनं जपित्वा प्रयतो वशी ।
समाप्तिदिवसे रात्रावजं हत्वा बलिं हरेत् ॥१६७॥

---

१. ख. पुष्पैः । २ ख. होम ।

तत: कारयिता राजा तोषयेत्साधकं धनैः ।
प्रयोगदिवसे नित्यं भक्ष्यभोज्यैः सदक्षिणैः ॥१६८॥

विप्रान् सप्त महादेवि तोषयेद्वाञ्छिताप्तये ।
समाप्तिदिवसे विप्रान् सप्त सप्त समाहितः ॥१६९॥

भोजयेद्वस्त्रवित्ताद्यैस्तोषयेज्जगदीश्वरि ।
विधिनाऽनेन सन्तुष्टो वटुकेशः प्रयच्छति ॥१७०॥

तेजो बलं यशः पुत्रान् कीर्त्ति लक्ष्मीं मनोगताम् ।
नश्यन्ति शत्रवस्तस्य वर्द्धन्ते मित्रबान्धवाः ॥१७१॥

अवग्रहो न जायेत राष्ट्रे तस्य महीपतेः ।
केवलैर्लवणैर्हुत्वा स्तम्भनं कुरुते ध्रुवम् ॥१७२॥

अनेनैव प्रयोगेन निगडान्मुच्यते नरः ।
पलं वचाया देवेशि चूर्णं कृत्वाऽतिसूक्ष्मकम् ॥१७३॥

मन्त्रयेन्मनुनाऽनेन देवि साग्रं सहस्रकम् ।
विभजेदूनपञ्चाशद्भागेन परमेश्वरि ॥१७४॥

दिनशो भागमेकैकं भक्षयेद् गोघृतान्वितम् ।
या नारी सा सुतं सूते मेधारोग्यबलान्वितम् ॥१७५॥

दीर्घायुष्यं च वन्ध्याऽपि किं पुनः कन्यकाप्रसूः ।
प्रयोगस्य तथाऽऽद्यन्ते वटुकाय बलिं हरेत् ॥१७६॥

रुद्रयामले तु—

वन्ध्याचिकित्सां कुर्वाणो बालार्काभं समर्पयेत्।

हरिद्रार्द्धपलं चैव वचाचूर्णं तु तत्समम् ॥१७७॥

पेषयित्वा तु गोमूत्रे गोलकं घृतसंयुतम् ।
पद्मपत्रे विनिक्षिप्य स्थापयेद्देवसन्निधौ ॥१७८॥

प्रणिपत्य नमस्कृत्य जपेदुच्चैः सहस्रकम् ।
देवादेशप्रकारेण प्राशयेत्तु महौषधम् ॥१७९॥

श्रीमन्तमायुष्मन्तं च बलवन्तं सुदर्शनम् ।
विद्यावन्तं पुत्रवन्तं सद्यः पुत्रमवाप्नुयात् ॥१८०॥

इत्युक्तम् । तथा **कोलेशकोटिप्रभेदे**—

साधयेद्विधिवद्भस्म मन्त्रेणाऽनेन सुव्रते ।
उशीरं चन्दनं देवि कुष्ठं कर्पूरकुङ्कुमे ॥१८१॥

सितार्कमूलवाराहीं श्रीं शतां परमेश्वरि ।
त्वचश्च क्षीरवृक्षाणां बिल्वमूलं च योजयेत् ॥१८२॥

सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा गोमयेन तु लेपयेत् ।
अन्तरिक्षे[१] गृहीतेन कृत्वा पिण्डानि पार्वति ॥१८३॥

शोषयित्वाऽऽतपेनाऽथ विधिवत् संस्कृतेऽनले ।
मूलमन्त्रेण दाहय्य भस्म सङ्गृह्य तत्पुनः १८४॥

शुद्धे पात्रे विनिक्षिप्य [शोधयित्वा यथाविधि ।
मालकीकेतकीपुष्पैर्वासितं संस्पृशञ् शिवे ॥१८५॥

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं तत्र सम्पूज्य भैरवम् ।
भस्माधारे विनिक्षिप्य संस्थाप्य][२] दिनशः शिवे ॥१८६॥

त्रिपुण्ड्रं तेन कुर्वीत वेदोक्तविधिना द्विजः ।
शूद्राद्यैर्मूलमन्त्रेण कर्त्तव्यं परमेश्वरि ॥१८७॥

मूलेनैवाऽथवा सर्वैः कर्त्तव्यं भस्मधारणात् ।
तस्य रोगाः प्रणश्यन्ति कृत्या दुष्टा महाग्रहाः ॥१८८॥

रिपुचोरमृगादिभ्यो भयं तस्य न जायते ।
वर्द्धन्ते सम्पदः सर्वाः पूज्यते सकलैर्जनैः ॥१८९॥

राजानो वशमायान्ति सामात्याः सपरिच्छदाः ।
वचाचूर्णं पलस्याऽर्द्धं तन्मानघृतसंयुतम् ॥१९०॥

पद्मपत्रे विनिक्षिप्य त्रिशतं प्रजपेद् बुधः ।
प्रजपन्नियतो भूत्वा पुनर्लक्षत्रयं जपेत् ॥१९१॥

तस्यैवं कुर्वतः प्रज्ञा निःसीमा च भवेद् ध्रुवम् ।
गद्यपद्यमयी वाणी श्रुतस्याऽप्यवधारणम् ॥१९२॥

---

१. ख. अन्तरिक्ष । २. [—] कोष्ठबद्धोंऽशः ख. पुस्तके नाऽस्ति ।

भवेत्तस्य महादेवि भैरवस्य प्रसादतः ।

अत्र वचाचूर्णभक्षणं तु यावद्भिर्दिनैस्त्रिलक्षजपो भवति, तावद्भागान् कृत्वा प्रत्यहमेकैकभागं प्राशयेदिति **साम्प्रदायिकाः**। अस्मिन् प्रयोगे विशेषमाह- **रुद्रयामले**—

शुक्लपक्षे द्वितीयायां शुक्रवारे समाहितः ।
पूर्ववत्पूजयेद्देवं सिद्धान्नं च निवेदयेत् ॥१९३॥

सिद्धान्नं तु प्रागेव हरिद्रागणेशप्रकरणे प्रोक्तम् ।

पलार्द्धं च वचाचूर्णं तन्मानघृतसंयुतम् ।
पद्मपत्रे विनिक्षिप्य सहस्रं तु जपेद् बुधः ॥१९४॥

अत्र सहस्रजपे विशेषः, अन्यत्सर्वं समानम् । **रुद्रयामले**—

विवादक्षेत्रविषये चतुर्थ्याङ्गारवारके ।
पूर्ववद्देवमाराध्य नैवेद्यं चैव पूर्ववत् ॥१९५॥

जपमानः स्वयं मन्त्रं नमस्कृत्यैव बुद्धिमान् ।
विवादक्षेत्रमध्ये तु देवं ध्यात्वा तु तत्क्षणात् ॥१९६॥

अभिमन्त्र्य मृदं प्राश्य सन्ध्योपास्य स्वयं प्रभुम्[1] ।
सप्ताहस्त्रिषु लोकेषु तत्क्षेत्रे तच्च सिद्ध्यति ॥१९७॥

मृत्युञ्जयमहं वक्ष्ये यथा[2] तच्छृणु सुन्दरि ।
उत्तरायणकाले तु दक्षिणायन एव च ॥१९८॥

कालज्ञानमिदं ज्ञात्वा तत्वज्ञानी जपेत्क्रमात् ।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्थ्यां वा अङ्गारकदिने ततः ॥१९९॥

सात्विकं बालरूपं च द्विभुजं चिन्तयन्बुधः ।
अर्चयित्वा यथान्यायं सिद्धान्नं च निवेदयेत् ॥२००॥

यद्रूपं कथितं पूर्वमादिपर्य्यन्तमध्यमम् ।
तुषारकनिकाभासं[3] ध्यात्वा देवं समाहितः ॥२०१॥

---

१. ख. प्रभुः । २. क. यथावत् । ३. ख. तुषारकणिकाभासं ।

भूचरीमुद्रया युक्तं खेचरीबहुमेलकम् ।
ध्यानयोगेन मन्त्रं च मनसाऽपि जपेद् बुधः ॥२०२॥

इत्येवं तु जपेल्लक्षं तदा मृत्युञ्जयो भवेत् ।
मृत्युभङ्गाभिकाङ्क्षी चेत्सात्विकं श्वेतरूपकम् ॥२०३॥

हृदये स्वासनं ध्यात्वा तन्मध्ये देवमास्थितम् ।
न तस्य कालनिःक्रान्तिर्मूर्त्तिमण्डलमाप्नुयात्[1] ॥२०४॥

कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यां भूमिपुत्रस्य वासरे ।
आराध्य विधिवद्देवं तस्याऽग्रे स्थापयेद् बुधः ॥२०५॥

रोचनाहेमजे[2] पत्रे सम्पूज्य विधिना तथा ।
गन्धपुष्पादिना स्पृष्ट्वा तं जपेदयुतत्रयम् ॥२०६॥

तद्गर्भवर्त्ति प्रज्वाल्य कपिलाघृतसेवितम् ।
सौवर्णे नृकपाले वा पात्रे सङ्गृह्य भाजनम् ॥२०७॥

सम्पूज्य चाऽयुतं जप्त्वा तन्मात्रं मन्त्रसङ्ग्रहम् ।
ध्यात्वा देवं दृशोरेतदाचरेदञ्जनं बुधः ॥२०८॥

वश्या भवन्ति ते सर्वे पापा नश्यन्ति साधकः ।
अथाऽभिषेकं कुर्वीत राज्ञो विजयकाङ्क्षिणः ॥२०९॥

पूर्वोक्ते मण्डले देवि वितानध्वजशोभिते ।
सर्वतोभद्रमालिख्य वेदिकायां सुरेश्वरि ॥२१०॥

अष्टद्रोणमितैस्तस्य कर्णिकां[3] शालिभिः शुभैः ।
आपूर्य्य तण्डुलैश्चाऽपि चतुर्द्रोणमितैः प्रिये ॥२११॥

प्रक्षाल्योपरि विन्यस्य कूर्च्चाक्षतसमन्वितम् ।
कुम्भं हेमादिरचितं नवरत्नसमन्वितम् ॥२१२॥

संस्थाप्य विधिवद्देवि शुद्धैस्तोयैश्च पूरयेत् ।
तस्मिन्क्षीरद्रुमोत्थानि पल्लवानि विनिक्षिपेत् ॥२१३॥

---

१. ख. कालनिः क्रान्तिर्मूर्त्ति० । २. ख. रोचनां हेमजे । ३. क. कर्णिकायां ।

कर्पूरं चन्दनं देवि कङ्कोलमगरुं पुनः ।
उशीरं कुङ्कुमं बिल्वं दूर्वां लक्ष्मीं सहामपि ॥२१४॥

चम्पकं पद्मिकां जातिमुत्पलं दाडिमं तथा ।
गोमेदं च विनिक्षिप्य पट्टवस्त्रद्वयेन तु ॥२१५॥

संवेष्टय तस्मिन्नावाह्य बटुकं देवि पूजयेत् ।
राजसं ध्यानरूपं तु ध्यात्वा सर्वोपचारकैः ॥२१६॥

प्रथमाष्टदलस्थेषु कुम्भेष्वष्टसु भैरवान् ।
असिताङ्गादिकान् देवि सम्पूज्य तदनन्तरम् ॥२१७॥

त्रयोदशसु कुम्भेषु बाह्यस्थेषु महेश्वरि ।
त्रयोदश गणान्यष्ट्वा तद्बाह्ये दशसु क्रमात् ॥२१८॥

लोकेशबटुकान्देवि कुम्भेषु परिपूजयेत् ।
चतुरश्रत्रयस्थेषु तेषु द्वयष्टसु पार्वति ॥२१९॥

कुम्भेषु देवि प्रागुक्तान् श्रीकण्ठादीन् यजेत् क्रमात् ।
प्रागुक्तक्रमयोगेन गन्धाद्यैः सुमनोहरैः ॥२२०॥

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं घण्टां स्पृष्ट्वा सुरेश्वरि ।
पृथक् सहस्रं जुहुयात्पायसैः सर्पिषा तिलैः ॥२२१॥

स्पृशन् कुम्भान्प्रतिदिनं रात्रौ तस्मै बलिं हरेत् ।
राजसोक्तविधानेन मासत्रयसमन्वितम् ॥२२२॥

मेषकुक्कुटमीनानां मांसत्रयमुदाहृतम् ।
सुदिने शुभलग्ने च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥२२३॥

वेदवेदाङ्गविद्भिश्च विप्रैर्मङ्गलवादिभिः ।
नदत्सु पञ्चवाद्येषु नमस्कृत्य च भैरवम् ॥२२४॥

भूपालं वाऽथवा विप्रं शुद्धदेहं जितेन्द्रियम् ।
आस्तिकं सत्यसन्धं तमभिषिञ्चेत्प्रसन्नधीः ॥२२५॥

अभिषिक्तो महादेवि प्रणिपत्य महेश्वरम् ।
अभिषेक्तारमसकृद् भूयसीं दक्षिणां प्रिये ॥२२६॥

दद्यात्प्रसीदेति तथा साधकस्तावदर्पयेत् ।
अभिषिक्तो नरपतिः शतक्रतुरिवापरः ॥२२७॥

शत्रूञ्जयति सङ्ग्रामे बलाढ्यान् रूपतेजनैः ।
अभिषिक्तस्तु देवेशि प्रतिमासं महीश्वरः ॥२२८॥

स एव मासावधिशश्चतुःसागरमेखलाम् ।
उर्वीं युद्धेषु महती शक्तिः स्यात्पूर्वतोऽधिका ॥२२९॥

शत्रुसैन्यविनाशाय राजा दद्याद्बलिं प्रिये ।
पूर्वोक्तं राजसं देवि बलिं निष्पाद्य मन्त्रवित् ॥२३०॥

सम्पूज्य पूर्ववद्देवमर्द्धरात्रे महेश्वरि ।
अन्यूनाङ्गमजं देवि सर्वलक्षणसंयुतम् ॥२३१॥

आनीय मूलमन्त्रेण रत्नपात्रे शुभैर्जलैः ।
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य देवस्याऽग्रे निधाय तम् ॥२३२॥

मूलमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य संरक्ष्याऽस्त्रेण तं प्रिये ।
कवचेनाऽवगुण्ठ्याऽथ मुद्रया धेनुसंज्ञया ॥२३३॥

अमृतीकृत्य सर्वान्ते देवतारूपिणे बलिम् ।
रूपाय पशवे चोक्त्वा नम इत्यर्च्चयेत्त्रिधा ॥२३४॥

गन्धाद्यैस्तं ततो देवि कर्णे तस्य तु दक्षिणे ।
पशुपाशाय इत्युक्त्वा विद्महे तदनन्तरम् ॥२३५॥

विप्रकर्णाय देवेशि धीमहीति ततः परम् ।
तन्नो जीवः समुच्चार्य्य वदेद्देवि प्रचोदयात् ॥

इत्येतां पशुगायत्रीं त्रिर्जपित्वा महेश्वरि ।
निधाय पुरतः खड्गमों ह्रीं कालि विधाय च ॥२३७॥

ईश्वरि च लोहितदण्डायै[1] नम इत्यथ[2] ।
खड्गं त्रिः पूजयेद्देवि मुष्टौ तस्य ततोऽर्पयेत् ॥२३८॥

वागीश्वरीं च ब्रह्माणं लक्ष्म्यै नारायण्यै नमः ।
मध्येऽग्रदेशे देवेशि उमामहेश्वरौ यजेत् ॥२३९॥

---

१. क. लेहित । २. ख. इत्यर्थः ।

अर्चितं[1] तं समादाय खड्गं हस्ते महेश्वरि ।
आदाय मन्त्रयेन्मन्त्री मन्त्रेणाऽनेन सुव्रते ॥२४०॥

खड्गायाऽसुरनाशाय देवकार्याय तत्पर ।
पशुं छेदय शीघ्रं त्व खड्गनाथ नमोऽस्तु ते ॥२४१॥

तत उच्चार्य विधिवत् तिथ्युल्लेखावसानकम् ।
गोत्रं नाम च सङ्कीर्त्य कामनां समुदीर्य च ॥२४२॥

श्रीभैरव इमां छागबलिं तुभ्यमहं वदेत् ।
प्रददेति समुच्चार्य्य कुशपुष्पाक्षतान्वितम् ॥२४३॥

जलं पशोस्तु निक्षिप्य शिरसि श्रीशिवे ततः ।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे पशुघातनम् ॥२४४॥
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ।
इति सम्बोधयेत्तस्य शिरः स्पृष्ट्वाऽथ तं पशुम् ॥२४५॥

अस्त्रमन्त्रं समुच्चार्य छिन्धियुग्मं ततो वदेत् ।
स्वाहेत्युच्चार्य तं खड्गं तस्य स्कन्धे नियोज्य च ॥२४६॥

स्वात्मानं भैरवं ध्यायंस्तं चैकेन महेश्वरि ।
प्रहारेण समुच्छेद्य बलिं मन्त्रमिमं पठेत् ॥२४७॥

शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिशितं च दिने दिने ।
भक्षय स्वगणैः सार्द्धं सारमेयसमन्वितः ॥२४८॥

शत्रुनामाक्षरैर्मन्त्रं विदर्भ्य मनुवित्तमः ।
सैन्यं शत्रोर्लिखित्वैनं कल्पयित्वा महेश्वरि ॥२४९॥

पशुना सह तं सैन्यं सम्यक् तस्मै निवेदयेत् ।
अनेन बलिदानेन सन्तुष्टो भैरवः स्वयम् ॥२५०॥

शत्रुसैन्यं विभज्याऽथ स्वगणेभ्यः प्रयच्छति ।
क्रुद्धः सन्नाशयेच्छीघ्रं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२५१॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ चतुस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥३४॥

---

१. क. अर्चितः ।

[पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः]

।। अथ गजाश्वादिप्रयोगः ।। तत्र सारसङ्ग्रहे—

गजानां चतुरङ्गानां विशेषाच्छान्तये ततः ।
तच्छालासु पुरा प्रोक्तं कुण्डं कृत्वा यथाविधि ।।१।।

जुहुयात्पायसाद्यैस्तु तिलैस्त्र्ययुतमुक्तवत् ।
हुत्वा विप्रान् भक्ष्यभोज्यैस्तोषयेच्च सदक्षिणैः ।।२।।

पूर्वोक्तेन प्रकारेण कलशांस्थापयेत्ततः ।
तत्र गन्धादिभिः सम्यग् वटुकेशं समर्चयेत् ।।३।

अभिषिञ्चेज्जलैस्तैस्तान् गजानश्वांश्च मन्त्रवित् ।
वर्द्धन्ते प्रत्यहं चैते गजाश्चाऽपि तुरङ्गमाः ।।४।।

तेषां च समरे शक्तिर्महती जायते ततः ।
गजाश्वानामजेयाश्च भवन्ति द्विषतां सदा ।।५।।

तस्मादन्यमहारक्षा नाऽस्ति भूमण्डलेऽखिले ।
अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि वटुकस्य सुरार्चिते ।।६।।

आलिख्याऽष्टदलं पद्मं कर्णिकायां समालिखेत् ।
श्रीं ह्रों क्लीं क्षौमिति तत्पत्रेषु परमेश्वरि ।।७।।

वटुकायेत्यक्षराणि द्विरावृत्त्या लिखेत्प्रिये ।
बहिः षोडशपत्राढ्यं पद्मं[1] कृत्वा सुशोभनम् ।।८।।

तत्पत्रेषु लिखेद्देवि शिष्टवर्णांस्तु षोडश ।
मन्त्रस्तु तद्बहिश्चाऽपि पद्मं षोडशपत्रकम् ।।९।।

तत्पत्रेषु लिखेद्देवि स्वरान् षोडश सुव्रते ।
द्वात्रिंशत्पत्रसंयुक्तं पद्मं कृत्वाऽथ तद्बहिः ।।१०।।

कादि-सान्तांल्लिखेत्तस्य पत्रेषु परमेश्वरि ।
वेष्टयेच्चतुरश्रेण यन्त्रमेतद् वरानने ।।११।।

---

१. क. नाऽस्ति

जयदं सुखदं वश्यं मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ।
श्रीप्रदं दुरितव्याधिदुष्टग्रहनिकृन्तनम् ।।१२।।

भूतापस्मारकृत्यादिभयरक्षाकरं परम् ।
अस्याः परतरा रक्षा नाऽस्ति नाऽस्ति न संशयः ।।१३।।

।। अथ वीरसाधनम् ।। तत्र श्रीरुद्रयामले—

देव्युवाच—

भगवन्देवदेवेश रहस्यं वटुकस्य मे ।
ब्रूहि येन वशीकुर्यात्साधको भैरवं शिवम् ।।१४।।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि परं गोप्यं कथयामि सुशोभने ।
रहस्यं सिद्धिदं साक्षाद्वटुकस्य महात्मनः ।।१५।।
सर्वे वटुकदेवस्य साधने ये निरूपिताः ।
उपाया निष्फला एव विनैकं वीरसाधनम् ।।१६।।

यो वीरसाधनं हित्वा उपायं चाऽन्यमाश्रयेत् ।
न च सिद्धिमवाप्नोति नरो वर्षशतैरपि ।।१७।।

माषान् मुग्द्मसूरांश्च चणकानोदनं तथा ।
क्षीरं तथाऽपूपमपि शष्कुलीरपि शोभनाः ।।१८।।

माषादीन् स्विन्नान् सिद्धमाषानिति स्वयमभिधानात्, क्षीरं पायसं, 'पायसं पात्र आरोप्य' इति स्वयमभिधानात् । शष्कुली सुहारी इति भाषा ।

आदाय सूत्रं कार्पासं कन्याकर्त्तितमेव च ।
कुङ्कुमेनाऽपि संरज्य कारयित्वाऽष्टकीलकान् ।।१९।।

स्तम्भार्थमेकं कीलं च गृहीत्वा सुरसुन्दरि ।
गच्छेच्छ्मशाननिकटे सुधीः सोत्तरसाधकः ।।२०।।

पापप्रक्षालनं दत्वा ततः स्मृत्वा स्वदेवताम् ।
बद्धाञ्जलिरिदं वाक्यं प्रवदेत्साधकोत्तमः ।।२१।।
अत्र श्मशाने याः काश्चिद्देवता निवसन्ति हि ।
ताः प्रयच्छन्तु मे सिद्धिं प्रसन्नाः सन्तु पान्तु माम् ।।२२।।

पूर्वे मां शङ्करः पातु तथाऽऽग्नेय्यां च शूलधृक् ।
कपाली दक्षिणे पातु नैर्ऋत्ये जटिलोऽवतु ॥२३॥

पश्चिमे पार्वती त्राता वायव्ये प्रमथाधिपः ।
उत्तरे मुण्डमालाढ्य ईशाने वृषभध्वजः ॥२४॥

ऊर्द्ध्वे पातु तथा शम्भुरधस्ताद् धूलिधूसरः ।
अग्रतो भैरवः पातु पृष्ठतः पातु खेचरः ॥२५॥

दक्षिणे भूचरः पातु वामे च पिशिताशनः ।
केशान्पातु विशालाक्षो मूर्द्धानं मे मरुत्प्रियः ॥२६॥

मस्तकं पातु भृग्वीशो नेत्रे पातु महामनाः ।
कपोलौ पातु वीरेशो गण्डौ चैवाऽरिमर्द्दनः ॥२७॥

उत्तरोष्ठं विरूपाक्षो ह्यधरे योगिनीप्रियः ।
दन्तेषु दक्षविध्वंसी चिबुके नृकपालधृक् ॥२८॥

कण्ठे रक्षतु मां देवो नीलकण्ठो जगद्गुरुः ।
दक्षस्कन्धे गिरीन्द्रेशो वामस्कन्धे च सुन्दरः ॥२९॥

भुजे च दक्षिणे सर्वमन्त्रनाथः सदाऽवतु ।
वामे भुजे सार्वभौमो हृदयं पातु पाण्डुरः ॥३०॥

दक्षस्तने पशुपतिर्वामे पातु महेश्वरः ।
उदरे सर्वकल्याणकारकोऽवतु मां सदा ॥३१॥

नाभौ कामप्रविध्वंसी जङ्घे पातु दयामयः ।
जानुनी पातु जामित्रो गुल्फौ गौरीपतिः सदा ॥३२॥

पादपृष्ठौ ज्ञाननिधिस्तथा पादाङ्गुलीर्हरः ।
पादाधः पातु सततं व्योमकेशी जगत्प्रियः ॥३३॥

इति रक्षां समाधाय मन्त्ररक्षां सदाऽऽचरेत् ।

ओं ह्लां ह्लीं ह्लू ह्लः पूर्वे ॐ ह्लीं ह्लू ह्लौं आग्नेये, ॐ ह्लि श्रि दक्षिणे, ॐ ग्लूं न्लूं स्लूं नगनग नैर्ऋत्ये, ॐ प्रूं म्रूं सं सः पश्चिमे, ॐ म्रां म्रं वायव्ये,

ॐ भ्रों भ्रां भैरव उत्तरे, ॐ व्रूं व्रूं स्रूं फट् ईशाने, ॐ प्लूँ[1] ऊर्द्ध्वे, 'ॐ स्रां स्रं सः'[2], अधः ।

एवं रक्षां समाधाय दिक्पालार्चनमारभेत् ।
ततो वाक्यं पुनर्ब्रूयात् साधकः प्रेमसयुतः ॥३४॥

'भ्रां भैरव भैरव भयङ्कर हर मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति प्रार्थयित्वा[3]—

एकस्मिन्भाजने कृत्वा पलाशस्य महामनाः ।
सिद्धमाषान् व्रजेत्प्राच्यां दिशि पूजार्थमादरात् ॥३५॥

तत्र स्थित्वा तु पुटकं करे कृत्वा विचक्षणः ।
मन्त्रमेनं सुधीः प्रोक्त्वा दद्यादिन्द्राय वै बलिम् ॥३६॥

ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूं समुच्चार्य भो इन्द्र सुरनायक ।
प्रसन्नो भव मे शीघ्रं देहि सिद्धिं सनातनीम् ॥३७॥

इमं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फडुच्चार्य साधकः ।
बलिं दद्यान्महाभागे सिद्धयर्थं प्राणवल्लभे ॥३८॥

ततो रं रां समुच्चार्य रुं रूं रिं रीमपि प्रिये ।
गृह्ण गृह्ण मया दत्तं बलिंहुं फट् समुच्चरेत् ॥३९॥

मुद्गान्पात्रे समाधाय प्रदद्याद्बलिमादरात् ।
ततो दक्षिणदेशांशे समागत्य विचक्षणः ॥४०॥

ॐ प्रां प्रीं प्रूं समुच्चार्य तथा प्रां प्रीमपि त्रिधा ।
प्रेतनाथपदस्याऽन्ते बलिं गृह्णेति चोच्चरेत् ॥४१॥

हुं फडन्तोऽयमाख्यातो[4] यममन्त्रो वरानने ।
अनेन दक्षिणे देशे पात्रं मासूरपूरितम् ॥४२॥

स्थापयित्वा नमस्कृत्य नैऋत्यांशे ततो व्रजेत् ।
बलिं चणकपात्रस्य दद्यात्साधकसत्तमः ॥४३॥

ॐ फ्रें फ्रें फ्रें समुच्चार्य ततो फ्रूं फ्रूं तथैव च ।
ख्रें ख्रें ख्रें च ततो ब्रूयात्ततो ह्रौं ह्रौं समुच्चरेत् ॥४४॥

---

१. ख. ग्लौं प्लूं । २. क. '—' ॐ स्रां स्रं स्रं सः इति पाठः । ३. ख. प्रार्थ्य ।
४. ख. हुं फडन्तः समाख्यातो ।

रक्षोनाथपदं ब्रूयाद् गृह्ण हुं फट्समन्वितः ।
अनेन मनुना दद्याद्रक्षोनाथबलिं बुधः ॥४५॥

ततः पश्चिमदेशस्थो भूत्वा साधकसत्तमः ।
जलनाथाय सुबलिं दद्यात्स्वस्याऽर्थसिद्धये ॥४६॥

ॐ व्रां व्रीं व्रूँ समुच्चार्य्यं ततो वरुणमुच्चरेत् ।
बलिमेनं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥४७॥

अनेन मन्त्रवर्य्येण वरुणायोदनस्य च ।
बलिं दद्यान्महाभागः स्वार्थसिद्धय आदरात् ॥४८॥

वायुदेशं समासाद्य ततो वायोर्बलिं हरेत् ।
पायसं पात्रमारोप्य परमादरसंयुतः ॥४९॥

ॐ प्रां प्रीं प्रूं समुच्चार्य प्रैं प्रौं प्रीं प्रूं तथैव च ।
हुं फडन्तो मनुरयं वायोः सिद्धिप्रदायकः ॥५०॥

अनेन मनुना प्राज्ञो वायव्ये बलिमाहरेत् ।
तत उत्तरदेशे तु गत्वा साधकसत्तमः ॥५१॥

अपूपपात्रमादाय कुबेरबलिमाहरेत् ।
ॐ क्रूं क्रूं क्रूं समुच्चार्य ततः क्रां क्रां समुच्चरेत् ॥५२॥

हुं फडन्तेन मनुना बलिं दद्याद्विचक्षणः ।
ऐशानीं दिशमाश्रित्य साधकप्रवरस्ततः ॥५३॥

ईशानाय बलिं दद्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ।
ॐ श्रीं श्रूं श्रूं समुच्चार्य श्रीं श्रीं श्रीं[1] श्रामथोच्चरेत् ॥५४॥

हुं फडन्तः समाख्यातो मन्त्रोऽयं लोकदुर्लभः ।
अनेन मनुना दद्याच्छष्कुलीः पात्रसंस्थिताः ॥५५॥

बल्यर्थं सर्वकामार्थसिद्धये साधकोत्तमः ।
एवमष्टबलीन् दत्वा सर्वकामार्थसिद्धये ॥५६॥

स्तम्भाधोभागमाश्रित्य कार्यमत्र समाचरेत् ।
पुष्पाक्षतान्समादाय ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूं ह्र उच्चरेत् ॥५७॥

१. ख. पुस्तके 'श्रीं' इत्यस्य द्विरावृत्तिरेव ।

स्तम्भमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकामार्थसिद्धिदः ।
अनेन मनुना प्राज्ञः स्तम्भं सम्पूज्य निर्भयः ॥५८॥

ततः पठेन्मन्त्रमयं कवचं कार्यसिद्धये[1] ।
यस्य प्रसादमासाद्य साधको निर्भयो भवेत् ॥५९॥

ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्ल उच्चार्य ॐ क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्र उच्चरेत् ।
ख्रां ख्रीं ख्रूं ख्रः समुच्चार्य घ्रां घ्रीं घ्रूँ घ्रस्ततो वदेत् ॥६०॥

म्रां म्रीं म्रूं म्र उच्चार्य म्रें म्रों म्रौं च ततो वदेत् ।
ह्लौ[2] ह्लों ह्लों ह्लों समुच्चार्य क्लौ[3] क्लों क्लों क्लों पुनर्वदेत् ॥६१॥

श्रों श्रों श्रों साधकः प्रोच्य ज्रों ज्रों ज्रों च समुच्चरेत् ।
हुं हुं हुं हुं समुच्चार्य हुं हुं हुं फडथोच्चरेत्[4] ॥६२॥

सर्वतो रक्ष रक्षेति रक्ष रक्षेति भैरवः ।
नाथनाथपदं प्रोक्त्वा फडयं च महामनुः ॥६३॥

सर्वरक्षाकरः प्रोक्तः साधकाभीष्टदायकः ।
एवं विधाय मतिमांस्तनौ रक्षां विशालधीः ॥६४॥

वीरशान्तिमथो कुर्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ।
यथा सिद्धयन्ति कार्याणि साधकानां महेश्वरि ॥६५॥

यावत्कुर्यान्न वीराणां साधनं साधकोत्तमः ।
तावन्न जायते सिद्धिः साधकस्य कथञ्चन ॥६६॥

श्मशानदेशे ये वीराः शिरसाऽऽदाय शासनम् ।
मनःस्थितानि कुर्वन्ति साधकानां मनोरथान् ॥६७॥

अपूरिताः पूजितास्ते सर्वकामफलप्रदाः ।
वीरशान्तिमथो वक्ष्ये साधकानां हिताय वै ॥६८॥

ः प्रसादमासाद्य साधकः सुखमेधते ।
पद्ममष्टदलं कृत्वा तद्बाह्ये षोडशच्छदम् ॥६९॥

---

१. क. कायसिद्धये । २. ख. ह्लों । ३. क. क्लां । ४. क. फडन्तोच्चरेत् ।

तद्बाह्येऽष्टदलं चाऽपि भूपुरे च ततो लिखेत् ।
एवं मण्डलमालिख्य साधको निर्भयः स्थितः ॥७०॥

मूलमन्त्रेण नैवेद्यं भैरवाय समर्पयेत् ।
आद्यपद्मस्य मध्ये तु ततश्चैवाऽष्टभैरवान् ॥७१॥

षोडशारे महापद्मे ततः साधकसत्तमः ।
सम्पूज्य प्रयतो दद्यान्नैवेद्यं पायसस्य च ॥७२॥

मित्राणि षोडश प्राज्ञो भैरवस्य महात्मनः ।
कुलिशं सुकुलिशं च जामित्रं रामठं रिभम् ॥७३॥

प्रचण्डं चण्डकेशं च चण्डात्मानं चराचरम् ।
चारित्रं च चमत्कारं चञ्चलं चारुभूषणम् ॥७४॥

चामीकरं चारुवक्त्रं चकितं चेति षोडश ।
नत्यन्तनामभिः पूज्याः षोडशाऽऽनन्दपूजिताः ॥७५॥

ततोऽष्टदलसम्पूज्या ब्राह्म्याद्या मातृका इमाः ।
स्वस्वदिक्षु महेन्द्रादीन् पूजयेत्साधकोत्तमः ॥७६॥

ततोऽक्षतान्समादाय विकिरंश्चक्रमण्डले ।
वीरशान्ति पठेत्सम्यक्साधकः प्रीतमानसः ॥७७॥

ॐ चण्डप्रचण्डोर्द्ध्वकेशं भीषणाभिधम् ।
व्योमकेशं व्योमवहं व्योमव्यापकमेव च ॥७८॥

एतान्वीरान्समाहूय आयाहीति समुच्चरन् ।
मण्डले साधकश्रेष्ठो नैवेद्यादिभिरर्चयेत् ॥७९॥

एवमर्चां समाधाय साधको निर्भयस्थितः ।
पूर्वप्रोक्तान्सुधीः कृत्वा न्यासानत्यन्तसिद्धिदान् ॥८०॥

पश्चिमाभिमुखो भूत्वा मालामादाय पाणिना ।
उच्चैस्तरां जपं कुर्यादागताय महात्मने ॥८१॥

भैरवाय समीपे तु वामहस्तेन पायसम् ।
सम्भोजयञ्जपं कुर्यान्निर्भयः प्रीतमानसः ॥८२॥

तृप्तो देवो यदा ब्रूयाद्वरं वरय वाञ्छितम् ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ वाञ्छितं वरमुच्चरेत् ॥८३॥

गृह आगत्य प्रयत उत्सवं च समाचरेत् ।
अनेन मनुना देवि सिद्धेन जगतीतले ॥८४॥

असाध्यं नाऽस्ति लोकेषु सत्यं सत्यं मयोदितम् ।

॥ अथाऽस्य प्रयोगः ॥

तत्र साधकेन्द्रः कृतनित्यक्रियः पलाशपत्रकृतपुटकेषु स्विन्नान्माषान्मुद्गान्मसूरांश्चणकानोदनं पायसमपूपान् शष्कुलीश्च पृथक् कृत्वा, कन्यया कर्त्तितं कार्पाससूत्रं कुङ्कुमरञ्जितं क्षीरवृक्षभवानष्टौ कीलकान् स्तम्भनार्थमेकं तेभ्यः स्थूलमिति नवकीलांश्च गृहीत्वोत्तरसाधकसहितः श्मशाननिकटे गत्वा, पादौ प्रक्षाल्याऽऽचम्य स्वेष्टदेवं स्मृत्वा, कृताञ्जलि'रत्र श्मशाने याः काश्चिदि'ति प्रमाणोक्तं श्लोकं पठित्वा, 'पूर्वे मां शङ्करः पात्वित्यादि जगत्प्रिय' इत्यन्तं प्रमाणोक्तं श्लोकैकादशकं पठित्वा, पुनः "पूर्वे—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः, अग्नये—ॐ ह्रिं ह्रूँ ह्रों नमः, इत्यादि स्वात्मानं परितो दशदिक्षु प्रमाणोक्तमन्त्रैरात्मरक्षां कृत्वा, पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्यश्मशाने च कीलाष्टकं स्तम्भं च निखाय, ॐ भां भैरव भैरव भयङ्कर मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहे'ति प्रार्थ्य सिद्धमाषभरितपुटकमादाय, सोदकपात्रहस्तो निर्भयः पूर्वकीलसमीपं गत्वा, शुद्धे समे भूतले गन्धजलेन चतुरश्रवृत्तत्रिकोणमण्डलं कृत्वा 'ॐ लं इन्द्र साङ्ग सपरिवार इहागच्छाऽऽगच्छे'त्यावाह्यैरावतारूढं वज्रहस्तं पीतवर्णं ध्यात्वा, "लं इन्द्राय एष ते गन्धो नमः' एवं इमानि पुष्पाणि वौषट्, एष धूपो नमः, एष दीपो नम" इति दीपाद्यैरुपचारैः सम्पूज्य, तत्पुरश्चतुरश्रमण्डलं जलेन कृत्वा, तत्र माषपुटकं निधाय, दक्षहस्ते जलं गृहीत्वा, वामहस्तेन तत्पात्रं स्पृशन् 'ॐ ह्रां[1] ह्रीं ह्रूं भो इन्द्र सुरनायक शीघ्रं मे प्रसन्नो भवे'ति मन्त्रेण सिञ्चन् बलिमुत्सृज्य, प्रणम्याऽऽग्नेयगतकीलसमीपं गत्वा, तत्र प्राग्वन्मण्डलं कृत्वा, तत्र 'रं अग्ने इहाऽऽगच्छे'त्यावाह्य मेषारूढं शक्तिहस्तं त्रिनेत्रं तेजोनिधिं रक्तं ध्यात्वा, रं बीजेन प्राग्वद्दीपान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, तथैव मुद्गभरितं पात्रं तदग्रे प्राग्वन्निधाय, तथैव जलमादाय, 'ॐ रं रां रुं रूं रिं रीं अग्ने तेजोनिधे मे शीघ्रं प्रसन्नो भव सिद्धिं देहि इमं मुद्गबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट्'इति प्राग्वद्बलिं दत्वा, प्रणम्य, दक्षिणकीलसमीपं गत्वा तत्र प्राग्वत् टमिति यमबीजेन यममावाह्य, तत्र यमं महिषारूढं दण्डहस्तं कृष्णवर्णं प्रेतगणपरिवृतं ध्यात्वा,

---

१. सूत्रे तु 'ह्रौं' इति पाठः (स). ।

सम्पूज्य, तदग्रे प्राग्वन्मण्डले मसूरपात्रं निधाय, जलमादाय, ॐ प्रां प्रीं प्रूं प्रौं प्रीं भो भो यम प्रेताधिप मे शीघ्रं प्रसन्नो भव इमं मसूरबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फडि'ति प्राग्वद्बलिं दत्वा, निर्ऋतिदिग्गतकीलसमीपं गत्वा, क्षं बीजेन निर्ऋतिमावाह्य, तं प्रेतारूढं धूम्रवर्णं खड्गहस्तं रक्षोभिः परिवृतं ध्यात्वा, 'क्षं' बीजेन तं सम्पूज्य, प्राग्वत्तदग्रे चणकपूरितं बलिपात्रं निधाय, जलमादाय, ॐ फ्रें फ्रें फ्रें 'फ्रूं फ्रूँ'[1] ख्रें ख्रें ख्रें ह्लौं ह्लौं भो भो रक्षोनाथ मे शीघ्रमित्यादि इमं चणकबलिं गृह्ण गृह्ण हुं हुं फडि'ति प्राग्वद्बलिं दत्वा, प्रणम्य, पश्चिमगतकीलसमीपं गत्वा, तत्र प्राग्वद् 'वं' बीजेन सम्पूज्य, तदग्रे ओदनपूरितं पात्रं प्राग्वन्निधाय, जलमादाय, ॐ व्रां व्रीं व्रूं भो भो वरुण जलनाथ मे शीघ्रमित्यादि इममोदनबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फडि'ति प्राग्वद्बलिमुत्सृज्य, प्रणम्य, वायुकोणगतकीलसमीपे प्राग्वन्मण्डलं कृत्वा, तत्र 'यं' बीजेन वायुमावाह्य, मृगवाहनं कृष्णवर्णमङ्कुशहस्तं सपरिवारं ध्यात्वा, यमिति सम्पूज्य, तदग्रे पायसपूरितं बलिपात्रं निधाय, प्राग्वज्जलमादाय, ॐ प्रां प्रीं प्रूँ प्रैं प्रौं प्रीं प्रूं भो भो वायो भुवःपते मे शीघ्रमित्यादीमं पायसबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फडि'ति मन्त्रेण प्राग्वद्बलिं दत्वा, प्रणम्योत्तरदिग्गतकीलसमीपे प्रागुक्तकुबेरबीजेन तमावाह्य, नरवाहनं गदाहस्तं शुक्लवर्णं यक्षगणवेष्टितं ध्यात्वा, प्राग्वत् सम्पूज्य, तदग्रे अपूपपूरितं पात्रं निधाय, प्राग्वज्जलमादाय, ॐ क्रूं क्रूं क्रूं क्रां क्रां भो भो यक्षनाथ मे शीघ्रमित्यादि इममपूपबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फडि'ति मन्त्रेण बलिं दत्वा, प्रणम्येशानदिग्गतकीलसमीपे 'हं' बीजेनेशानमावाह्य वृषभारूढं स्वच्छवर्णं शूलहस्तं विद्यागणवेष्टितमीशानं ध्यात्वा, 'हं' बीजेन प्राग्वदासनादिदीपान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, तदग्रे शष्कुलीपूरितं पात्रं निधाय, जलमादाय, '[ॐ श्रीं श्रूं श्रूं श्रीं श्रीं श्रौं श्राँ][2] भो भो ईशानाविद्याधिपते शीघ्रमित्यादि इमं शष्कुलीबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फडि'ति बलिं दत्वा, प्रणम्य, मध्यस्तम्भसमीपं गत्वा, पुष्पाक्षतानादाय, 'ॐ [3]ह्लीं ह्लीं ह्लूं ह्लः ह्लाँ ह्लीं ह्लूं ह्लः क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रः ख्रां ख्रीं ख्रूं ख्रः घ्रां घ्रीं घ्रूं घ्रः म्रां म्रीं म्रूं म्रः +म्रें म्रें[4]+ म्रों म्रौं [[5]ह्लौं ह्लों ह्लों ह्लों क्लौं क्लों क्लों क्लों] श्रों ३ ज्रों ४[6] हुं ६[7] फट् सर्वतो रक्ष रक्ष रक्ष रक्ष भैरवनाथ फट्' इति स्वरक्षां कृत्वा,

---

१. पुस्तकद्वये 'ह्लूं ह्लूं' इति पाठः परञ्चायं सूत्रविरुद्धः ।

२. [—] कोष्ठगांशस्य स्थाने क. पुस्तकेऽयमंशाः—'ॐ श्रीं श्रूं श्रूं श्रीं श्रां श्रां श्रां श्रौं श्रीं' । ख. पुस्तके—'ॐ श्रीं श्रूं श्रूँ श्रीं श्रां श्रां श्रीं श्रीं' इति किन्तु पाठद्वयस्य सूत्रविरुद्धत्वात् कोष्ठगोंऽश एव स्वीकृतोऽस्माभिः । ३. ख. 'ह्लां' । ४. + — + 'म्रें म्रें' इति स्थाने सूत्रे तु केवलं 'म्रें' इत्यऽस्ति । ५. [—] पुस्तकद्वये तु—ह्लों ह्लों ह्लों क्लों क्लों क्लों' इति । ६ सूत्रे तु 'ज्रों' इत्यस्य त्रिरावृत्तिरेवाऽस्ति । ७. सूत्रे 'हुं' इत्यस्यसप्तावर्त्तनम् ।

स्तम्भसमीपे स्वासने पूजिते पूर्वाभिमुख उपविश्य, स्वपुरतः सुसमे भूतलेऽष्टदलं पद्मं कृत्वा, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिः पुनरष्टदलं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरश्रत्रयं कृत्वा तन्मध्ये देवमावाह्य, प्राग्वत्सर्वोपचारैराराध्याऽङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु प्राग्वदसिताङ्गादिभैरवानभ्यर्च्य, तद्बहिःषोडशदलेषु "ॐ कुलिशाय नमः, एवं जामित्राय नमः, रामठाय०, रिभाय०, प्रचण्डाय०, चण्डकेशाय०, चण्डात्मने०, चराचराय०, चारित्राय०, चमत्काराय०, चञ्चलाय०, चारुभूषणाय०, चामीकराय०, चारुवक्त्राय०, चकिताय०" इति सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदले प्राग्वद्ब्राह्म्याद्यष्टमातृः सम्पूज्य, बहिश्चतुरश्रे प्राग्वल्लोकेशांस्तदस्त्राणि सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, पद्ममध्ये श्रीभैरवायाऽन्येषु दलेषु पूजितदेवताभ्यः पृथक् पृथक् पात्रेषु पायसनैवेद्यं विधिवत्समर्प्याऽक्षतान्हस्ताभ्यामादाय, पूजामण्डले विकिरन् 'ॐ चण्ड आयाहि, ॐ प्रचण्ड आयाहि, एवं ऊर्द्ध्वकेशं०, अभीषं, व्योमकेशं व्योमवहं व्योमव्यापकं, आयाही' त्याहूय, पृथक्पृथग्गन्धादिभिरुपचारैः सम्पूज्य, पायसं पृथक्पृथङ्नैवेद्यं समर्प्य, निर्भयः सन् पश्चिमाभिमुखः प्राणायामऋष्यादिन्यासपूर्वकं पूर्वोक्तानखिलान्न्यासान्कृत्वा, प्राग्वन्मालां सम्पूज्याऽऽदाय मूलमन्त्रं स्पष्टाक्षरपदोच्चारपूर्वकमुच्चैस्तरां जपन् वामहस्तेन पायसपात्रमादायाऽऽगतं देवं भोजयन् प्रसन्नचित्तो जपं कुर्यात् । ततस्तृप्तो देवो वरं वरयेति ब्रूयात्तदा दण्डवद्भूमौ प्रणम्य, निजेप्सितं वरं गृहीत्वा महोत्सवं कुर्यादिति **वीरसाधनम्** ।।

शारदातिलके—

> अर्घीशो वह्निशिखरो लान्तस्थो दान्त ईरितः ।
> फडन्तश्चण्डमन्त्रोऽयं त्रिवर्णात्मा समोरितः ।।८५।।

अर्घीश ऊकारः, दान्तो धकारः लान्तस्थः वकारस्थः वह्निशिखरः, तेन ध्वं इति । तथा—

> अस्याऽभिको मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
> चण्डेशो देवता प्रोक्तः कुर्यादङ्गविधिं पुनः ।।८६।।

उकारो बीजं, फट् शक्तिरिति ।

पदार्थादर्शे—

> हृदयं दीप्तं[2] फट् प्रोक्तं ज्वल फट् शिर ईरितम् ।
> शिखाज्वालिनि फट् ज्ञेया ततः कवचं मतम् ।।८७।।

---

१. ख. स्पृष्टाक्षर० । २. ख. दीप्त ।

हन फण्णेत्रमाख्यातं[1] सर्वज्वालिनि फट् शरम् ।
विन्यस्यैवं षडङ्गानि ततो देवं विचिन्तयेत् ॥८८॥

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि ।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं[2] बिभ्रतमिन्दुचूडम् ॥८९॥

पञ्चाक्षरोदिते पीठे चण्डेशं साधु पूजयेत् ।
मूर्त्तौ बीजेन क्लृप्तायां तत्क्रमो बिन्दुसंयुतः ॥९०॥

चण्डेश्वराय हृद्बीजं पूर्वः पूजामनुर्मतः ।
अङ्गैर्मातृभिरिन्द्राद्यैर्वज्राद्यैरायुधैर्यजेत् ॥९१॥

चतुरावरणं प्रोक्तं चण्डेशस्य समर्च्चने ।

प्रयोगः सुगमः । तथा—

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः ।
मधुरत्रयसंयुक्तैर्विशुद्धैस्तिलतण्डुलैः ॥९२॥

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री धनवाञ्जायतेऽचिरात् ।
तर्प्पयेन्मनुनाऽनेन नित्यमष्टोत्तरं शतम् ॥९३॥

श्रियमाप्नोति महतीं पुत्रपौत्रसमन्विताम् ।
प्रियङ्गुकुसुमैः फुल्लैस्तत्काष्ठज्वलितेऽनले ॥९४॥

जुहुयादयुतं मन्त्री पुरक्षोभः प्रजायते ।
साध्यवृक्षत्वचा लोणं पिष्ट्वा पिष्टसमन्वितम् ॥९५॥

पुत्तलीं रुचिरां कृत्वा प्रतिष्ठाप्य समीरणम् ।
छित्वा छित्वा प्रजुहुयादष्टोत्तरशतं निशि ॥९६॥

सप्ताहमेव कुर्वीत साध्यो दासो भवेत्स्वयम् ।
शिवमन्त्रेषु निष्णातश्चण्डेश्वरमनुं भजेत् ॥९७॥
सर्वकामानवाप्नोति परत्रेह च नन्दति ।

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

क्षेत्रपालमनुं वक्ष्ये शृणु देवि यथाविधि ।
संवर्त्तोऽनुग्रहेन्द्वाढ्यो रुद्रसंवर्त्तकौ पुनः ॥९८॥

---

१. क. फन्नेत्र० । २. क. कमण्डलं ।

आषाढी रेवतीयुक्तो लोहितोऽनन्तसंयुतः ।
पिनाकी चाऽनन्तयुतो वाली मेषस्ततो भवेत् ॥९९॥

महाकालो विसर्गाढ्यस्ताराद्योऽयं मनुः प्रिये ।

संवर्त्तः क्षकारः, अनुग्रह औ, इन्दुरनुस्वारस्तेन क्षौं इति; रुद्र एकारः, संवर्त्तः क्षस्तेन क्षें इति; आषाढी त, रेवती र, तेन त्र; लोहितः पः अनन्त आ, तेन पा; पिनाकी ल अनन्त आ, तेन ला इति; वाली य; मेषो न; महाकालो म, विसर्ग अ, तेन म इति; ताराद्यः प्रणवाद्यः । तथा—

मुनिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम् ॥१००॥

क्षेत्रपालो देवताऽस्य क्षं बीजं परिकीर्त्तितम् ।
नमः शक्तिरिति प्रोक्तमिष्टसिद्धिकरः स्मृतः ॥१०१॥

षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
ततः सञ्चिन्तयेद्देवं क्षेत्रपालमनन्यधीः ॥१०२॥

अञ्जनाद्रिप्रतीकाशमूर्द्ध्वपिङ्गजटाधरम् ।
वर्त्तुलोग्रत्रिनयनभीमसर्पविभूषणम् ॥१०३॥

दंष्ट्राकरालवदनं भीमरूपं दिगम्बरम् ।
द्विभुजं दक्षिणे हस्ते गदां वामे कपालकम् ॥१०४॥

दधन्तं चिन्तयन्देवं शैवे पीठे समर्चयेत् ।
पद्ममष्टदलं बाह्ये दिग्द्वारैर्भूगृहैर्वृतम् ॥१०५॥

कृत्वा तत्र समावाह्य गन्धाद्यैरर्चयेच्छिवम् ।
आदावङ्गानि सम्पूज्य पूर्ववत्परमेश्वरि ॥१०६॥

अर्चयेदष्टपत्रेषु किङ्कराष्टकमद्रिजे ।
अनलश्चाऽग्निकोशश्च करालस्तदनन्तरम् ॥१०७॥

घण्टारवो महाकोपः पिशिताशन एव च ।
पिङ्गाक्षश्चोर्द्ध्वकेशश्च क्षेत्रपालस्य किङ्कराः ॥१०८॥

लोकेशांश्च तदस्त्राणि पूर्ववत्परिपूजयेत् ।
धूपदीपादिकं कृत्वा ततस्तस्मै बलिं हरेत् ॥१०९॥

बलिनैवेद्यान्तमन्त्रः—

एह्येहीति समुच्चार्य्य विदुष्यन्ते पुरुद्वयम् ।
भञ्जयद्वितयं पश्चान्नर्त्तय-द्वितयं ततः ॥११०॥

विघ्नयुग्मं महान्ते स्याद्भैरवक्षेत्रपाल च ।
बलिं पदं समुच्चार्य देवि गृह्ण-द्वयं द्विठः ॥१११॥

बलिमन्त्रः समाख्यातः सर्वकामफलप्रदः ।

द्विठः स्वाहा, अन्यत्सुगमम्—

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते 'शिरसि-ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे-गायत्री-छन्दसे, हृदि—क्षेत्रपालाय देवतायै, गुह्ये-क्षं बीजाय, पादयोः—नमः शक्तये नमः' इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, 'क्षाँ हृदयाय नमः, क्षीं शिरसे स्वाहे'त्यादिकरषडङ्गन्यासं कृत्वा, ध्यानादिषडङ्गपूजान्ते अष्टदलेषु—'अनलाय०, अग्निकेशाय०, करालाय, घण्टारवाय, महाकोपाय०, पिशिताशनाय०, पिङ्गाक्षाय०, ऊर्द्ध्वकेशाय०' इति सम्पूज्य, लोकेशार्चादि सर्वं समापयेदिति । तथा—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥११२॥
चरुणा घृतसिक्तेन तर्प्पणादि ततश्चरेत् ।
रात्रौ गृहाङ्गणे रम्ये कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम् ॥११३॥
आवाह्य तत्र सम्पूज्य क्षेत्रे सम्पूज्य वर्त्मना ।
अन्नव्यञ्जनदुग्धाद्यैः कृत्वा वै सिक्थकं महत् ॥११४॥

पूर्वोक्तमनुना देवि तस्य हस्ते बलिं हरेत् ।
बलिनाऽनेन सन्तुष्टः क्षेत्रपालो मदान्वितः ॥११५॥

ऐश्वर्य्यविजयारोग्यश्रीसौभाग्यादिसम्पदः ।
ददाति रौद्रभूतार्त्तिकृत्याद्यास्तु निवारयेत् ॥११६॥

अत्र रात्रौ बलिदानं काम्यं नित्यपूजायामपि नैवेद्यं प्रोक्तमन्त्रेणैव देयम् ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः ॥३५॥

[षट्त्रिंशस्तरङ्गः]

श्रीकुलार्णवे देव्युवाच—

कुलेश श्रोतुमिच्छामि सर्वधर्मोत्तमोत्तमम् ।
ऊर्द्ध्वाम्नायं च तन्मन्त्रमाहात्म्यं वद मे प्रभो ॥१॥

श्रीईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण देवता सुप्रसीदति ॥२॥

कस्यचिन्न मयाऽऽख्यातमितः पूर्वं कुलेश्वरि ।
कथयामि तव स्नेहादूर्ध्वाम्नायं शृणु प्रिये ॥३॥

वेदशास्त्रपुराणानि प्रकाश्यानि सुरेश्वरि ।
शैवाद्याश्चागमाः सर्वे रहस्याः परिकीर्त्तिताः ॥४॥

रहस्यातिरहस्यानि कुलशास्त्राणि पार्वति ।
रहस्यातिरहस्यानां रहस्यमिदमम्बिके ॥५॥

ऊर्द्ध्वाम्नायार्थतत्वं हि पूर्णाहन्तात्मकं परम् ।
सुगोपितं मया यत्नादिदानीं तु प्रकाश्यते ॥६॥

मम पञ्चमुखेभ्यश्च पञ्चाम्नायाः समुद्गताः ।
पूर्वश्च पश्चिमश्चैव दक्षिणश्चोत्तरस्तथा ॥७॥

ऊर्द्ध्वाम्नायश्च पञ्चैते मोक्षमार्गाः प्रकीर्त्तिताः ।
आम्नाया बहवः[1] सन्ति नोर्ध्वाम्नायेन ते समाः ॥८॥

सत्यमेतद्वरारोहे नाऽत्र कार्या विचारणा ।
आम्नाया बहवो गुप्ताश्चतुराम्नायभेदजाः ॥९॥

अस्मिंस्तन्त्रे मयाऽऽख्याताः पूर्वं ते कुलनायिके ।
चतुराम्नायवेत्तारो बहवः सन्ति भामिनि ॥१०॥

ऊर्द्ध्वाम्नायार्थतत्वज्ञा विरला वीरवन्दिते ।
यावन्तः पांसवो भूमेस्तावन्तः समुदीरिताः ॥११॥

---

१. ख. बहयः ।

एकैकाम्नायजा मन्त्रा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।
उपमन्त्राश्च तावन्तः शाबराः समुदाहृताः ॥१२॥

मयैव कथितास्तेऽपि लोकानुग्रहकाङ्क्षया[1] ।
सर्वेषामपि मन्त्राणां देवतास्तत्फलप्रदाः ॥१३॥

आवयोरंशसम्भूताः समुद्दिष्टाः शुचिस्मिते ।
सर्वमन्त्रानहं वेद्मि नाऽन्यो जानाति कश्चन ॥१४॥

मत्प्रसादेन यः कोऽपि वेत्ति मानवकोटिषु ।
एकाम्नायं च यो वेत्ति स मुक्तो नाऽत्र संशयः । १५॥

किं पुनश्चतुराम्नायवेत्ता साक्षाच्छिवो भवेत् ।
चतुराम्नायविज्ञानादूर्द्ध्वाम्नायः परः प्रिये ॥१६॥

तस्मात्तमेव जानीयाद्यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
ऊर्द्ध्वत्वात्सर्वधर्माणामूर्द्ध्वाम्नायः प्रशस्यते ॥१७॥

ऊर्द्ध्वं नयत्यधस्तं[2] चेदूर्द्ध्वाम्नाय इतीरितः ।
ऊर्जितत्वात् कुलेशानि ध्वस्तसंसारसङ्कटात् ॥१८॥

ऊर्द्ध्वलोकैकसेव्यत्वादूर्द्ध्वाम्नाय इति स्मृतः ।
तस्माद्देवेशि जानीहि तस्मान्मोक्षैकसाधनम् ॥१९॥

सर्वाम्नायाधिकं पुण्यमूर्द्ध्वाम्नायं परात्परम् ।
सर्वलोकेषु सर्वेषामहं पूज्यो यथा प्रिये ॥२०॥

आम्नायेषु च सर्वेष्वप्यूर्द्ध्वाम्नायस्तथा प्रिये ।
देवतानां यथा विष्णुर्ज्योतिषां भास्करो यथा ॥२१॥

अश्वमेधः क्रतूनां तु पाषाणानां यथा मणिः ।
यथा रसानां मधुरो लोहानां काञ्चनं यथा ॥२२॥

चतुष्पदां यथा धेनुर्यथा हंसस्तु पक्षिणाम् ।
आश्रमाणां यथा भिक्षुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥२३॥

---

१. क. श्लोकानुग्रह० । २. ख. नयत्यधस्थं ।

मनुष्याणां यथा राजाऽवयवानां यथा शिरः ।
आमोदानां तु कस्तूरी यथा काञ्ची पुरीषु च ॥२४॥

तथैव सर्वधर्माणामूर्द्ध्वाम्नायोऽधिकः प्रिये ।
नानाजन्मार्जितापारपुण्यकर्मफलोदयात् ॥२५॥

ऊर्द्ध्वाम्नायं विजानीयान्नाऽन्यथा वीरवन्दिते ।
न वेदैर्नागमैः शास्त्रैः पुराणैश्च सुविस्तरैः ॥२६॥

न यज्ञैर्न तपोभिर्वा न तीर्थव्रतकोटिभिः ।
नाऽन्यैरुपायैर्देवेशि मन्त्रौषधिपुरःसरैः ॥२७॥

आम्नायो ज्ञायते चोर्द्ध्वः श्रीमद्गुरुमुखं विना ।
तमेवाऽन्वेषयेत्तस्मात्सर्वज्ञं करुणानिधिम् ॥२८॥

सर्वलक्षणसम्पन्नमूर्द्ध्वाम्नायार्थकोविदम् ।
तस्मादेव विजानीयादूर्द्ध्वाम्नायं कुलेश्वरि ॥२९॥

लभते काङ्क्षितां सिद्धिं सत्यं सत्यं वरानने ।
ऊर्द्ध्वाम्नायं विजानाति यः सम्यक् श्रीगुरोर्मुखात् ॥३०॥

शास्त्रमार्गेण स नरो जीवन्मुक्तो न संशयः ।
ईदृशं चोर्ध्वाम्नायं वै यो जानाति हि तत्वतः ॥३१॥

स वन्द्यः स गुरुः सोऽर्च्यः स दैवज्ञः स मान्त्रिकः ।
स सेव्यः स च मे स्तुत्यः स यष्टव्यः[1] स तात्विकः ॥३२॥

स व्रती स तपस्वी च सोऽनुष्ठाता स पूजकः ।
स वेदागमशास्त्रादिसर्वविद्याविशारदः ॥३३॥

स आचार्यः स च श्रीमान् स यतिः स च कौलिकः ।
स यज्वा स च पूतात्मा स जापी स च साधकः ॥३४॥

स योगी स कृतार्थस्तु स वीरः स च उत्तमः ।
स पुण्यात्मा स सर्वज्ञः स मुक्तः स शिवः प्रिये ॥३५॥

तत्कुलं पावनं देवि धन्या तज्जननी स्मृता ।
तत्पिताऽत्र कृतार्थः स्यान्मुक्तास्तत्पितरस्तथा ॥३६॥

---

१. क. इष्टव्यः ।

पुण्यास्तद्वंशजाः सर्वे पूतास्तन्मित्रबान्धवाः ।
बहुनेह किमुक्तेन चोर्द्ध्वाम्नायपरस्य च ॥३७॥

स्मरणं कीर्त्तनं चाऽपि दर्शनं वन्दनं तथा ।
सम्भाषणं च कुरुते राजसूयाधिकं फलम् ॥३८॥

स यत्र वसते देवि तत्र श्रीर्विजयो भवेत् ।
अनामयं सुवृष्टिश्च सुभिक्षं निरुपद्रवः ॥३९॥

तस्माद् गुरुप्रसादेन चोर्द्ध्वाम्नायं नरोत्तमः ।
यो वेत्ति तत्त्वतो देवि स मे प्रियतमो भवेत् ॥४०॥

पूर्वाम्नायः सृष्टिरूपः स्थितिरूपश्च दक्षिणः ।
संहारः पश्चिमो देवि उत्तरोऽनुग्रहो भवेत् ॥४१॥

मन्त्रयोगं विदुः पूर्वं भक्तियोगं तु दक्षिणम् ।
पश्चिमं कर्मयोगं तु ज्ञानयोगं तथोत्तरम् ॥४२॥

पूर्वाम्नायस्य सङ्केतश्चतुर्विंशतिरीरितः ।
दक्षिणाम्नायसङ्केतः पञ्चविंशतिरीरितः ॥४३॥

पश्चिमाम्नायसङ्केतो द्वात्रिंशत्समुदाहृतः ।
बिन्दुः षट्त्रिंशदाम्नायः सङ्केतः श्रीमदुत्तरे ॥४४॥

ऊर्द्ध्वाम्नायस्य चैतानि न सन्ति कुलनायिके ।
साक्षाज्ज्ञानस्वरूपत्वान्न किञ्चित्कर्म विद्यते ॥४५॥

ऊर्द्ध्वाम्नायस्य माहात्म्यमिति ते कथितं मया ।
समासेन कुलेशानि मन्त्रमाहात्म्यमुच्यते ॥४६॥

इतः पूर्वं मया नोक्तं यस्य कस्याऽपि पार्वति ।
तद्वदामि तव स्नेहाच्छृणु मत्प्राणवल्लभे ॥४७॥

श्रीप्रासादपरामन्त्रमूर्द्ध्वाम्नायमधिष्ठितम् ।
आवयोः परमाकारं यो वेत्ति स शिवः स्वयम् ॥४८॥

शिवादिक्रि(कृ)मिपर्यन्तं प्राणिनां प्राणवर्त्मनाम् ।
निःश्वासोच्छ्वासरूपेण मन्त्रोऽयं वर्त्तते प्रिये ॥४९॥

अनिलेन विना मेघो यथाऽऽकाशे न चेष्टते ।
पराप्रासादमन्त्रेण विना लोकस्तथा प्रिये ॥५०॥

पराप्रासादमन्त्रार्थस्यूतमेतच्चराचरम् ।
अभिन्नं तत्त्वतो देवि तालवृन्ते यथाऽनिलः ॥५१॥

बीजेऽङ्कुरस्तिले तैलमग्नावौष्ण्यंरवौ प्रभा ।
चन्द्रे ज्योत्स्नाऽनलः काष्ठे पुष्पे गन्धो जले रसः ॥५२॥

शब्दे चाऽर्थः शिवे शक्तिः क्षीरे सर्पिः फले रुचिः ।
शर्करायां च माधुर्यं घनसारे च शीतलम् ॥५३॥

निग्रहानुग्रहौ मन्त्रे प्रतिमायां च देवता ।
दर्प्पणे प्रतिबिम्बं च समीरे चलनं यथा ॥५४॥

पराप्रासादमन्त्रोऽयं प्रपञ्चेऽपि तथा स्थितः ।
वटबीजे यथा वृक्षः सूक्ष्मरूपेण तिष्ठति ॥५५॥

पराप्रासादमन्त्रेऽपि ब्रह्माण्डोऽपि तथा स्थितः ।
सुपक्वेषु पदार्थेषु सरसेषु कुलेश्वरि ॥५६॥

लवणेन विना स्वादुर्यथा भोक्तुर्न जायते ।
पराप्रासादमन्त्रेण ये मन्त्रा वा न सङ्गताः ॥५७॥

ते फलं न प्रयच्छन्ति मन्त्रशक्तिविवर्जिताः ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रगोपनाय कुलेश्वरि ॥५८॥

विचार्याऽहं पुराणानि दर्शनाम्नायवेदजाः ।
समवीक्ष्यन्त ये मन्त्राः शास्त्राणि विविधानि च ॥५९॥

भ्रमन्ति येषु मूढास्ते तव मायाविमोहिताः ।
जायन्ते च म्रियन्ते च संसारक्लेशभाजनाः ॥६०॥

न लभन्ते हि मोक्षन्ते त्वत्प्रसादविवर्जिताः ।
मद्रूपे श्रीगुरौ यस्य दृढा भक्तिः प्रजायते ॥६१॥

पूर्वजन्मसहस्रेषु शिवादिसमयोदितान् ।
चतुराम्नायजान्मन्त्रान् गुर्वनुज्ञां भजिष्यति ॥६२॥

स पापकञ्चुकोन्मुक्तः शूद्रात्मा गुरुवत्सलः ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रं विजानाति न चाऽऽन्यथा ॥६३॥

श्रीप्रासादपरामन्त्रं स ज्ञात्वाऽऽशु प्रमुच्यते ।
स ब्रह्मविष्णुरुद्राश्च शक्रादिसुरपुङ्गवाः ॥६४॥

वसुरुद्रार्कदिक्पालमनुचन्द्रादयः प्रिये ।
मार्कण्डेयादिमुनयो वसिष्ठादिमुनीश्वराः ॥६५॥

सनकाद्याश्च योगीशा जीवनन्मुक्ताः शुकादयः ।
यक्षकिन्नरगन्धर्वसिद्धविद्याधरादयः ॥६६॥

श्रीप्रसादपरामन्त्रप्रसादात् कामितं फलम् ।
प्राप्य मन्त्रपरं नित्यं जपन्त्यद्याऽपि पार्वति ॥६७॥

सामर्थ्यं पूज्यते[1] विद्या तेजः सौम्यमरोग्यता ।
राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च पराप्रासादजापिनः ॥६८॥

रुद्रेन्द्रब्रह्मविष्णूनामपि दूरायते पदम् ।
सर्वधर्मविहीनोऽपि पराप्रासादमन्त्रवित् ॥६९॥

सुखेन यां गतिं याति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ।
तस्य चिन्तामणिः कामधेनुः कल्पतरुर्गृहे ॥७०॥

कुबेरः किङ्करः साक्षात्पराप्रासादजापिनः ।
यथा दिव्यरसस्पर्शाल्लोहो भवति काञ्चनम् ॥७१॥

पराप्रासादजापी च पशुः पशुपतिस्तथा ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रं यो जानाति हि तत्वतः ॥७२॥

स मां च त्वां च जानाति चाऽऽवयोरपि स प्रियः ।
पराप्रासादमन्त्रज्ञः श्वपचो वाऽपि पार्वति ॥७३॥

देवतास्थापनेऽशक्तः प्रतिमादिष्वसंशयः ।
मन्त्रमात्रं च यो वेत्ति पराप्रासादसंज्ञकम् ॥७४॥

श्वपचो वाऽपि मुच्येत किम्पुनस्तद्विधानवित् ।
पराप्रासादमन्त्रज्ञो यत्करोति यदीच्छति ॥७५॥

---

१. ख. पूज्यता ।

यद्ब्रूते तन्महेशानि तपो ध्यानं जपो भवेत् ।
दीक्षापूर्वं महेशानि पारम्पर्यसमन्वितम् ॥७६॥

पराप्रासादमन्त्रं यो वेत्ति सो वां न संशयः ।
चराचरसमेतानि भुवनानि चतुर्द्दश ॥७७॥

पराप्रासादमन्त्रज्ञदेहे तिष्ठन्ति पार्वति ।
पराप्रासादमन्त्रज्ञा यत्र तिष्ठन्ति भामिनि ॥७८॥

दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं समं तादृशयोजनम् ।
पराप्रासादमन्त्रार्थतत्वज्ञं कुलनायिके ॥७९॥

सुरासुराश्च वन्दन्ते किं पुनर्मानवादयः ।
पराप्रासादमन्त्रज्ञमनुतिष्ठति पार्वति ॥८०॥

देवक्षेत्रनदीयोगिमुनिदेवगणैः सह ।
शैववैष्णवदौर्गार्कगाणपत्येन्दुसम्भवान्[1] ॥८१॥

सर्वमन्त्रान्स जानाति पराप्रासादमन्त्रवित् ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रो जिह्वाग्रे यस्य वर्तते ॥८२॥

तस्य सन्दर्शनादेव श्वपचोऽपि विमुच्यते ।
ब्राह्मणो वाऽन्त्यजो वाऽपि शुचिर्वाऽप्यशुचिः प्रिये ॥८३॥

पराप्रासादजापी यः स मुक्तो नाऽत्र संशयः ।
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ॥८४॥

पराप्रासादमन्त्रोऽयं देवेशि न च निःफलः ।
चिरेणैकैकफलदा मन्त्राः सन्ति सहस्रशः ॥८५॥

कुलेशि मन्त्रराजोऽयं शीघ्रं सर्वफलप्रदः ।
पराप्रासादमन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥८६॥

जानतोऽजानतो वाऽपि भजतां कामदो मणिः ।
शचीन्द्रौ रोहिणीचन्द्रौ स्वाहाग्नी च प्रभारवी ॥८७॥

---

१. क. ०गाणपत्येम्बुसम्भवान् ।

लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ ।
अग्नीषोमौ बिन्दुनादौ देवि प्रकृतिपूरुषौ ॥८८॥

आधाराधेयनाम्नी च भोगमोक्षौ कुलेश्वरि ।
प्राणापानौ च शब्दार्थौ प्रिये विधिनिषेधकौ ॥८९॥

सुखदुःखादि यद्द्वन्द्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
सर्वलोकेषु यत्सर्वमावामेव न संशयः ॥९०॥

पुंस्त्रीरूपाणि सर्वाणि चाऽऽवयोरंशजानि हि ।
पराप्रासादमन्त्रोऽयं तस्मात्सर्वात्मको भवेत् ॥९१॥

अरूपं भावनागम्यं परं ब्रह्म कुलेश्वरि ।
निष्कलं निर्मलं नित्यं निर्गुणं व्योमसन्निभम् ॥९२॥

अनन्तमव्ययं तत्वं मनोवाचामगोचरम् ।
पराप्रासादमन्त्रानुसन्धानात् सम्प्रकाशते ॥९३॥

तस्मान्मन्त्रमिमं देवि पराप्रासादसंज्ञकम् ।
परतत्वस्वरूपत्वात् सच्चिदानन्दलक्षणात् ॥९४॥

शिवशक्तिमयत्वाच्च भुक्तिमुक्तिप्रदानतः ।
सकर्माऽपि च निष्कर्मा सगुणं चाऽपि निर्गुणम् ॥९५॥

श्रीप्रासादपरामन्त्रं सर्वमन्त्रशिखामणिम् ।
जपन्मुक्तिं च भुक्तिं च लभते नाऽत्र संशयः ॥९६॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वसारं शृणु प्रिये ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रसमो मन्त्रो न विद्यते ॥९७॥

इदमेव परं ज्ञानमिदमेव परो जपः ।
इदमेव परं ध्यानमिदमेव पराऽर्च्चनम् ॥९८॥

इदमेव परा दीक्षा इदमेव परं तपः ।
इदमेव परं धर्ममिदमेव परं व्रतम् ॥९९॥

इदमेव परो यज्ञ इदमेव परात्परम् ।
इदमेव परं श्रेय इदमेव परं फलम् ॥१००॥

इदमेव परं तत्वमिदमेव परा गतिः ।
इदमेव परं गुह्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥१०१॥

इति मत्वा मनुवरं तन्निष्ठः स्यात्सदा प्रिये ।
नाऽस्ति गुर्वधिकं तत्वं न शिवाधिकदैवतम् ॥१०२॥

न हि वेदाधिका विद्या न कुलाधिकदर्शनम् ।
न कुलाढ्याधिको ज्ञानी ज्ञानाद्वा नाऽधिकं सुखम् ॥१०३॥

नाऽष्टाष्टकाधिका पूजा न हि मोक्षाधिकं फलम् ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रादधिकं नैव विद्यते ॥१०४॥

इदं सत्यमिदं सत्यमिदं सत्यं न संशयः ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रमाहात्म्यमिह वर्णितुम् ॥१०५॥

न शक्नोमि वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि ।
गिरौ सर्षपमात्रं तु सागरे चुलुकाम्बुवत् ॥१०६॥

तथा तन्मन्त्रमाहात्म्यं किञ्चित् कथितं मया ।
ऊर्द्ध्वाम्नायस्य माहात्म्यं श्रीप्रासादपरामनोः ॥१०७॥

श्रीदेव्युवाच—

कुलेश श्रोतुमिच्छामि श्रीप्रासादपरात्मकम् ।
मन्त्रराजं वदेशान न्यासध्यानादिभिः सह ॥१०८॥

श्रीईश्वर वाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण शिवाकारः प्रजायते ॥१०९॥

इतः पूर्वं मया नोक्तं मन्त्रोऽयं यस्य कस्यचित् ।
तव स्नेहाद्ददाम्यद्य शृणु मत्प्राणवल्लभे ॥११०॥

अनन्तं चन्द्रभुवनबिन्दुबिन्दुयुगान्वितम् ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१११॥

पराप्रासादमन्त्रस्तु सादिरुक्तः कुलेश्वरि ।

अनन्तः हकारः, चन्द्रः सकारः, भुवन औकारः, बिन्दुरनुस्वारः, बिन्दुयुगं

विसर्गः, एतैः 'ह्सौंः' इति बीजं सिद्धम् । अयं प्रासादपरामन्त्रः । अयमेव मन्त्रः सकारादिश्चेत् पराप्रासादमन्त्रो भवति । तथा—

प्रकाशानन्दरूपत्वात् प्रत्यक्षफलदानतः ॥११२॥

प्रसन्नचित्तरूपत्वात् प्रसिद्धार्थनिरूपणात् ।
प्राक्तनाघप्रशमनात् प्रपन्नार्त्तिनिवारणात् ॥११३॥

प्रसादकरणाच्छीघ्रं प्रसादमनुरीरितः ।
परतत्वस्वरूपत्वात् प्रसिद्धार्थनिरूपणात् ॥११४॥

परमानन्दजननात् परमैश्वर्य्यकारणात् ।
परोक्षफलदानाच्च परधर्मनिदर्शनात् ॥११५॥

परत्वात् सर्वमन्त्राणां परामन्त्र इतीरितः ।
कुलमन्त्रमिदं देवि न्यासात्र् शृणु वदामि ते ॥११६॥

अथ प्रातः समुत्थाय गुरुदेवात्मचिन्तनम् ।
क-हृन्मूलेषु कृत्वा च कुर्याद्विण्मूत्रमोचनम् ॥११७॥

शौचास्यशोधनं स्नानं सन्ध्यातर्प्पणमाचरेत् ।
एकान्ते द्वारयजनं विघ्नत्रयनिवारणम् ॥११८॥

पूजास्थानप्रवेशं च कुर्यात्समुपवेशनम् ।
देवि पूजागृहध्यानं शिवादिगुरुवन्दनम् ॥११९॥

आसनं गणपक्षेत्रपालवन्दनमीश्वरि ।
पादुकास्मरणं कुर्याद्दीपनाथार्चनं प्रिये ॥१२०॥

कराङ्गशोधनं प्राणायामं सब्रह्मरन्ध्रकम् ।
दिग्बन्धनं चाङ्गयुग्मं विधियुक्तां च मातृकाम् ॥१२१॥

दशप्रकारां भूताख्यलिपिः कमठसंज्ञकम् ।
षड्दीर्घमूलबीजेन षडङ्गानि च पार्वति ॥१२२॥

पञ्चब्रह्माणि च तथा चाऽङ्गुलिन्यासमेव च ।
आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रान्तमम्बिके ॥१२३॥

अन्तःषोढां कुलेशानि कुर्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना ।
महाषोढाह्वयं न्यासं ततः कुर्यात्समाहितः ॥१२४॥

वक्ष्यमाणेन विधिना देवताभावसिद्धये।
यस्य कस्याऽपि नैवोक्तं तव स्नेहाद्वदाम्यहम् ॥१२५॥

प्रपञ्चो भुवनं मूर्त्तिमन्त्रदैवतमातरः।
महाषोढाह्वयो न्यासः सर्वन्यासोत्तमोत्तमः ॥१२६॥

ललिताविलासे—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रीछन्द ईरितम्।
अर्द्धनारीश्वरो देवो देवता परिकीर्त्तिता ॥१२७॥

ओकाराद्यैः स्वरैर्ह्र्स्वैर्नपुंसकविवर्जितैः।
संयोज्य कूटद्वितयं विन्यसेन्मूर्तिपञ्चकम् ॥१२८॥

अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु मूर्द्धास्यहृदयेषु च।
गुह्ये पादद्वये पञ्च वक्त्रस्थानेषु विन्यसेत् ।१२९॥

ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं च तृतीयकम्।
चतुर्थं वामदेवं च सद्योजातं च पञ्चमम्। १३०॥

त्रितारान्ते हसौं सहोमीशानाय नमस्ततः।
अङ्गुलीषु च मूर्द्धादिष्वेवं विन्यस्य देशिकः ॥१३१॥

ईशानायोर्द्ध्ववक्त्राय नमो मूर्द्धनि विन्यसेत्।
एवं तत्पुरुषायान्ते पूर्ववक्त्राय हृन्मुखे ॥१३२॥

दक्षकर्णे च वामे च चूडाधश्च प्रविन्यसेत्।
दक्षिणं चोत्तरं वक्त्रं पश्चिमं शिष्टमूर्त्तिभिः ॥१३३॥

इति त्र्यङ्गं प्रविन्यस्य वक्ष्यमाणं स्मरन् शिवम्।
तत्राऽऽदौ परमेशानि प्रपञ्चन्यास उच्यते ॥१३४॥

प्रपञ्चद्वीपजलधिगिरिपट्टनपीठकाः।
क्षेत्रं वनाश्रमगुहानदीचत्वरकोद्भिजाः ॥१३५॥

स्वेदजाण्डजरायुजा इत्युक्ता हि च षोडश।
श्रीर्मायाकमला विष्णुवल्लभा पद्मधारिणी ॥१३६॥

समुद्रतनया लोकमाता कमलवासिनी।
इन्दिरा मा रमा पद्मा तथा नारायणप्रिया ॥१३७॥

सिद्धलक्ष्मी राजलक्ष्मीर्महालक्ष्मीरितीरिताः ।
शक्तयः स्युः प्रपञ्चानां स्वराणामधिदेवताः ॥१३८॥

लवस्त्रुटिः कला काष्ठा निमेषः श्वास एव च ।
घटिका च मुहूर्त्तश्च प्रहरो दिन एव च ॥१३९॥

सन्ध्या रात्रिस्तिथिश्चैव वारो नक्षत्रमेव च ।
योगश्च करणं पक्षो मासो राशिऋतुस्तथा ॥१४०॥

अयनं वत्सरयुगं प्रलयाः पञ्चविंशतिः ।
आर्योमा चण्डिका दुर्गा शिवाऽपर्णाऽम्बिका सती ॥१४१॥

ईश्वरी शाम्भवीशानी पार्वती सर्वमङ्गला ।
दाक्षायणी हैमवती महामाया महेश्वरी ॥१४२॥

मृडानी चैव रुद्राणी शर्वाणी[1] परमेश्वरी ।
काली[2] कात्यायनी गौरी भवानीति समीरिताः ॥१४३॥

शक्तयः स्युर्लवादीनां स्पर्शानामधिदेवताः ।
पञ्चभूताश्च तन्मात्राः कर्मज्ञानेन्द्रियानिलाः ॥१४४॥

गुणान्तःकरणावस्थाधातुदोषा दशेरिताः ।
ब्राह्मी वागीश्वरी वाणी सावित्री च सरस्वती ॥१४५॥

गायत्री वाक्प्रदा पश्चाच्छारदा भारती प्रिये ।
विद्यात्मिका पञ्चभूतव्यापकानामधीश्वराः ॥१४६॥

त्रितारमूलविद्यान्ते मातृकाक्षरतः परम् ।
वदेत् प्रपञ्चरूपायै श्रियै नम इति क्रमात् ॥१४७॥

प्रपञ्चादिभिरायोज्य वर्णशक्तीर्नियोजयेत् ।
मातृकान्याससम्प्रोक्तस्थानेषु परमेश्वरि ॥१४८॥

त्रितारमूलसकलप्रपञ्चः स्यात्स्वरूपतः ।
आयै पराम्बादेव्यै नम उक्त्वा व्यापकं न्यसेत् ॥१४९॥

प्रपञ्चन्यास एवं स्याद् भुवनन्यास उच्यते ।
त्रितारमूलविद्यान्ते अं आमिमतलं वदेत् ॥१५०॥

---

१. ख. सर्वाणी । २. क. कालि ।

लोकं च निलयं चैव शतकोटिपदं ततः ।
गुह्याद्ययोगिनीमूलदेवतान्ते युतं प्रिये ॥१५१॥

वदेदाधारशक्त्यम्बादेव्यै हृत्पादयोर्न्यसेत् ।
ईमुमूं वितलं गुह्यलोकं चाऽनन्तसंज्ञकम् ॥१५२॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा गुल्फयोर्विन्यसेत् प्रिये ।
ऋं ॠं लृं सुतलं चाऽपि गुह्यं च चिन्त्यसंज्ञकम् ॥१५३॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा जङ्घयोर्विन्यसेत्प्रिये ।
ॡमेमैं महातलं च महागुह्यं स्वतन्त्रकम् ॥१५४॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा देवि जान्वोः प्रविन्यसेत् ।
ओमौं तलातलं परमगुह्यं चोक्त्वाऽभिधानकम् ॥१५५॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा चोर्वोर्देवेशि विन्यसेत् ।
अमो रसातलं चैव रहस्यं ज्ञानसंज्ञकम् ॥१५६॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा गुह्यदेशे न्यसेत्प्रिये ।
कवर्गमपि पातालं सरहस्यं तव[1] क्रिया ॥१५७॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा मूलाधारे न्यसेत्प्रिये ।
चवर्गं भूरतिरहस्यं च श्रीडाकिनीमपि ॥१५८॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा स्वाधिष्ठाने न्यसेत्प्रिये ।
टवर्गं भुवश्च महारहस्यं राकिनीमपि ॥१५९॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा नाभिदेशे न्यसेत्प्रिये ।
तवर्गं स्वश्च परमरहस्यं लाकिनीमपि ॥१६०॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोत्क्त्वा हृदये विन्यसेत्प्रिये ।
पवर्गं च महागुप्तं काकिनीमपि च क्रमात् ॥१६१॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा कण्ठदेशे न्यसेत्प्रिये ।
यवर्गं च जनो गुप्ततरं श्रीशाकिनीमपि ॥१६२॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा चाऽऽज्ञायां विन्यसेत्प्रिये ।
शवर्गं च तपश्चाऽपि(ति)गुप्तं श्रीहाकिनीमपि ॥१६३॥

---

१. ख. च तत् । 'तरं' इति समीचीनः पाठः (सम्पादक) ।

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा ललाटे विन्यसेत्प्रिये ।
लं क्षं सत्यमहागुप्तं याकिनीमपि च प्रिये ॥१६४॥

शेषं च पूर्ववत्प्रोक्त्वा ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेत्सुधीः ।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते चतुर्द्दशभुवं वदेत् ॥१६५॥

नाऽऽधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै हृद्व्यापकं न्यसेत् ।
कृत्वैवं भुवनन्यासं मूर्तिन्यासमथाऽऽचरेत् ॥१६६॥

केशवनारायणमाधवगोविन्दविष्णवः ।
मधुसूदनसंज्ञश्च स्यात्त्रिविक्रमवामनौ ॥१६७॥

श्रीधरश्च हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदरः ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः ॥१६८॥

अक्षराद्यष्टदेशानाउग्रोर्ध्वनयनास्तथा ।
ऋद्धिश्च रूपिणी लुप्ता लूनदोषैकनायिका ॥१६९॥

ऐकारिणी चौघवती चौर्वका चाऽञ्जनप्रभा ।
अस्थिमालाधरा चेति सम्प्रोक्ताः स्वरदेवताः ॥१७०॥

भवः शर्वोऽथ रुद्रः पशुपतिश्चोग्र एव च ।
महादेवस्तथा भीम ईशस्तत्पुरुषाह्वयः ॥१७१॥

अघोरः सद्योजातश्च वामदेव इतीरिताः ।
करभद्रा खगबला गरिमादिफलप्रदा[1] ॥१७२॥

घोरपादा पङ्क्तिनासा तथा चन्द्रार्द्धधारिणी ।
छन्दोमयी जगत्स्थाना भङ्कृतिश्च ततः परा ॥१७३॥

ज्ञानदा च ततष्टङ्कढक्कधरा ठङ्कृतिश्च डामरी ।
कभादीनां ठडान्तानां वर्णानां देवतास्त्विमाः ॥१७४॥

ब्रह्मा प्रजापतिर्वेधा परमेष्ठी पितामहः ।
विधाताऽथ विरिञ्चिश्च स्रष्टा च चतुराननः ॥१७५॥

हिरण्यगर्भ इत्युक्ताः क्रमाद् ब्रह्मादयो दश ।
यक्षिणी रञ्जनी लक्ष्मीर्वज्रिणी शशिधारिणी ॥१७६॥

---

१. क. ० गरमादिफलप्रदाः ।

षडाधारालया सर्वनायिका हसितानना ।
ललिता च क्षमा चेति प्रोक्ता याद्यर्णदेवताः ॥१७७॥

त्रितारमूलविद्यान्ते[1] स्वरान्विष्णून् सशक्तिकान् ।
चतुर्थ्या नमसा युक्तान्मस्तके चाऽऽनने न्यसेत् ॥१७८॥

सस्कन्धपार्श्वकट्यूरुजानुजङ्घापदेषु च ।
दक्षादिवामपर्यन्तं विन्यसेत्परमेश्वरि ॥१७९॥

कभाद्यर्णयुतान्मन्त्रान् भवानीशक्तिसंयुतान् ।
पादपार्श्वबाहुकण्ठपञ्चवक्त्रेषु विन्यसेत् ॥१८०॥

दशाधारेषु[2] ब्रह्मादीन्यादिशक्तियुतान् न्यसेत् ।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते श्रीमूर्त्यम्बिका ततः ॥१८१॥

आयै पराम्बादेव्यै नम उक्त्वा व्यापकं न्यसेत् ।
मूर्तिन्यासं विधायेत्थं मन्त्रन्यासमथाऽऽचरेत् ॥१८२॥

त्रितारमूलमं आं इं एकलक्षं च कोटि च ।
भेदश्च प्रणवाद्येकाक्षरात्माखिलमन्त्रतः ॥१८३॥

ततोऽधिदेवतायै स्यात्सकलं च फलप्रदम् ।
आयै तथैककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमो वदेत् ॥१८४॥

ईमूमुं च द्विलक्षादि हंसादिं पूर्ववत्परम् ।
ऋं ॠं लृं च त्रिलक्षादि त्रिकूटं पूर्ववत्परम् ॥१८५॥

लॄं मेमैं च चतुर्लक्षं चन्द्रादिं पूर्ववत्परम् ।
ओमौमम: पञ्चलक्षं सूर्यादिं पूर्ववत्परम् ॥१८६॥

कं खं ग चैव षड्लक्षं स्कन्दादिं पूर्ववत्परम् ।
घं ङं चं सप्तलक्षं गणेशादिं पूर्ववत्परम् ॥१८७॥

छं जं झमष्टलक्षं वटुकादिं पूर्ववत्परम् ।
ञं टं ठं नवलक्षं च ब्रह्मादिं पूर्ववत्परम् ॥१८८॥

डं ढं णं दशलक्षादि विष्ण्वादिं पूर्ववत्परम् ।
तं थं दमेकादशलक्षं शैवादिं पूर्ववत्परम् ॥१८९॥

---

१. ख. मूलमन्त्रान्ते । २. ख. दक्षाधारेषु ।

धं नं पं द्वादशलक्षं वाण्यादिं पूर्ववत्परम् ।
फं बं भं त्रयोदशलक्षं लक्ष्म्यादिं पूर्ववत्परम् ॥१९०॥

मं यं रं चतुर्दशलक्षं गौर्यादिं पूर्ववत्परम् ।
लं वं शं पञ्चदशलक्षं दुर्गादिं पूर्ववत्परम् ॥१९१॥

षाद्यर्णं षोडशलक्षं त्रैपुरादिं च षोडश ।
क्षरात्माखिलमन्त्राधिदेवता सकलं भवेत् ॥१९२॥

तथा फलप्रदायै षोडशकूटेश्वरी पुनः ।
अम्बादेव्यै नमः प्रोक्तो मन्त्रन्यासो महेश्वरि ॥१९३॥

आधारलिङ्गयोर्नाभिहृत्कण्ठास्याक्षिकश्रुतौ ।
निरोधिकायामर्द्धेन्दौ बिन्दौ चैककलापदे ॥१९४॥

उन्मनादिषु वक्त्रेषु नादनादान्तयोरपि ।
ध्रुवमण्डलदेशे च विन्यसेत्कुलनायिके ॥१९५॥

त्रितारमूलमन्त्रान्ते सर्वमन्त्रात्मिकापदम् ।
आयै पराम्बादेव्यै च हृदये व्यापकं न्यसेत् ॥१९६॥

मन्त्रन्यासं विधायेत्थं दैवतन्यासमाचरेत् ।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते अं आं सहस्रकोटि च ॥१९७॥

योगिकुलशद्वान्ते सेवितायै पदं वदेत् ।
विधिनिवृत्यम्बादेव्यै नम इत्युच्चरेत्प्रिये ॥१९८॥

इं ईं योगिप्रतिमां (ष्ठां) च शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ।
उं ऊं तपस्विविद्यां च शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ॥१९९॥

ऋं ॠं शान्तं तथा शान्ति शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ।
लृं ॡं मुनि शान्त्यतीतां शेषं० ॥२००॥

एं ऐं देवं तु हृल्लेखां शेषं० ।
ओमौं राक्षसशब्दान्ते गगनां पूर्ववदुच्चरेत् ॥२०१॥

अमो विद्याधरं रक्तां शेषं० ।
कं खं सिद्धमहोच्छुष्मां शेषं० ॥२०२॥

गं घं साध्यं करालीं च शेषं० ।
ङं चं तथाऽप्सरजयां शेषं० ॥२०३॥

छं जं गन्धर्वविजयां शेषं० ।
झं ञं गुह्यकशब्दान्ते अजितां पूर्ववत्परात् ॥२०४॥

टं ठं यक्षापराजितां शेषं० ।
"डं ढं किन्नरवामां च शेषं० ॥२०५॥

णं तं च पन्नगज्येष्ठां शेषं०"[1] ।
+ थं दं च पितृरौद्रचम्बां शेषं० +[2] ॥२०६॥

[धं नं गणेशमायां च शेषं० ।
पं फं भैरवशब्दान्ते कुण्डलीं पूर्ववत्पराम् ॥२०७॥

बं भं बटुककालीं च शेष० ।
मं यं][3] क्षेत्रेशशब्दान्ते कालरात्रिं च पूर्ववत् ॥२०८॥

रं लं प्रमथभगवतीं शेषं० ।
वं शं ब्रह्मा च सर्वेशी शेषं० ॥२०९॥

षं सं विष्णुं च सर्वज्ञां शेषं० ।
हं ळं रुद्रं सर्वकर्त्रीं शेषं० ॥२१०॥

क्षं चराचरशक्तिं च शेषं पू० ।
अङ्गुष्ठगुल्फजङ्घा च जानूरुकटिपार्श्वयोः ॥२११॥

स्तनकक्षकरस्कन्धकर्णमूर्ध्नि च रन्ध्रके ।
दक्षभागादिवामान्तं विन्यसेत्कुलनायिके ॥२१२॥

त्रितारमूलमन्त्रान्ते सर्वदेवात्मिका ततः ।
आयै पराम्बादेव्यै च हृदयेन तु व्यापकम् ॥२१३॥

दैवन्यासं विधायेत्थं मातृकान्यासमाचरेत् ।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते कवर्गानन्तकोटिभू- ॥२१४॥

---

१. "–" चिह्नान्तःस्थोंऽशः क. पुस्तके नाऽस्ति ।
२. +–+ चिह्नान्तर्गतोंऽशः पुस्तकद्वयेऽपि नाऽस्ति किन्तु वक्ष्यमाणप्रयोगे दृश्यते ।
३. [—] कोष्ठबद्धोंऽशः क. पुस्तके नाऽस्ति ।

चरीकुलं च सहितायै श्रां क्षां मङ्गला-पदम्[1] ।
अम्बादेव्यै ततो ब्रूयादां क्षां ब्रह्माणितः पदम् ॥२१५॥

अम्बादेव्यै ततोऽनन्तकोटिभूतकुलं वदेत् ।
सहिताय च श्रं क्षं मङ्गलनाथाय श्रं वदेत् ॥२१६॥

क्षं चाऽसिताङ्गभैरवनाथाय नम उच्चरेत् ।
चवर्गं खेचरीमीं लां चर्चिकां च महेश्वरीम्[2] ॥२१७॥

वेतालमिं लं चर्चिकं च रुरुं शेषं च पूर्ववत् ।
टवर्गं पातालचरीमूं हां योगेश्वरीं वदेत् ॥२१८॥

कौमारीं पिशाचं उं हं वदेद्योगेशचण्डकौ ।
तवर्गं दिक्चरीं ऋं सां हरसिद्धाम्बा वैष्णवीम्[3] ॥२१९॥

अपस्मारं ऋं सं हरसिद्धक्रोधादि पूर्ववत् ।
पवर्गं सहचरीं लृं षां भट्टिनी वाराह्यतः परम् ॥२२०॥

स्याद्ब्रह्मराक्षसं लृं षं भट्टिन्युन्मत्तादि पूर्ववत् ।
यवर्गः स्याद्गिरिचरीं ऐं शां किलिकिलेति च ॥२२१॥

इद्राणीं चेटकं एं शं किलिकिलश्च कपालिकः ।
शवर्गः स्याद्वनचरी औं वां[4] कालादिरात्रि च ॥२२२॥

चामुण्डाप्रेत ओं वं च कालरात्रिश्च भीषणः ।
लं क्षं जलचरी अः लां भवेत्पश्चाच्च भीषणा ॥२२३॥

महालक्ष्मीश्च कूष्माण्ड अं लं पश्चाच्च भीषणः ।
संहारभैरवश्चेति शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ॥२२४॥

मूलाधारे लिङ्गनाभ्यनाहतविशुद्धिषु ।
आज्ञाभालतलब्रह्मरन्ध्रेष्वेवं प्रविन्यसेत् ॥२२५॥

त्रितारमूलमन्त्रान्ते मातृका मातृभैरवः ।
अधिपायै परम्बादेव्यै नमोक्त्वा व्यापकं न्यसेत् ॥२२६॥

मातृन्यासं कुलेशानि कुर्यादेवं समाहितः ।
एवं न्यस्ततनुर्देवि ध्यायेद्देवमनन्यधीः ॥२२७॥

---

१. ख. सङ्गतापदम् । २. क. वहेश्वरीम् । ३. क. वैदसवीम् । ४. ख. शां ।

अमृतार्णवमध्योद्यत्स्वर्णद्वीपे मनोरमे ।
कल्पवृक्षवनान्तःस्थे नवमाणिक्यमण्डपे ॥२२८॥

नवरत्नमये श्रीमत्सिंहासनगताम्बुजे ।
त्रिकोणान्तःसमासीनं चन्द्रसूर्यशतप्रभम् ॥२२९॥

अर्द्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्तविभूषणम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम् ॥२३०॥

मन्दस्मितमुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ।
दिव्याम्बरस्रगालेपं दिव्याभरणभूषितम् ॥२३१॥

पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः ।
विद्यां संसदि बिभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणम् ॥२३२॥

महाषोढोदिताशेषदेवतागणसेवितम् ।
एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्द्धनारीश्वरं विभुम् ॥२३३॥

पुंरूपं वा स्मरेद्देवि स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत् ।
अथवा निष्कलं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥२३४॥

सर्वतेजोमयं ध्यायेत्सचराचरविग्रहम् ।
ततः सन्दर्शयेन्मुद्रादशकं परमेश्वरि ॥२३५॥

योनिं लिङ्गं च सुरभिं हेतिमुद्राचतुष्टयम् ।
वनमालां महामुद्रां नभोमुद्रामपि क्रमात् ॥२३६॥

यथाशक्ति जपेन्मूलमन्त्रं श्रीपादुकामपि ।
मूर्द्ध्नि सञ्चिन्तयेद्देवं श्रीगुरुं शिवरूपिणम् ॥२३७॥

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभं,
 वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम् ।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं,
 स्मरेच्छिरसि सन्ततं तदभिधानपूर्वं गुरुम् ॥२३८॥

एवं न्यासे कृते देवि साक्षात्परशिवो भवेत् ।
मन्त्री न चाऽत्र सन्देहो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥२३९॥

महाषोढाह्वयं न्यासं यः करोति दिने दिने ।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः ।।२४०।।

महाषोढाह्वयं न्यासं यः करोति हि पार्वति ।
दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं समन्ताद्दशयोजनम् ।।२४१।।

कृत्वा न्यासमिदं देवि यत्र तिष्ठति मानवः ।
तत्र स्याद्विजयो लाभः स मान्यः पुरुषः प्रिये ।।२४२।।

महाषोढाकृतन्यासस्तदङ्गं वन्दते यदि ।
मासान्मृत्युमवाप्नोति यदि त्राता शिवः स्वयम् ।।२४३।।

दिव्यन्तरिक्षभूशैलजलारण्यनिवासिनः ।
उद्दण्डभूतवेतालदेवरक्षोग्रहादयः ।।२४४।।

देवाः सर्वेऽपि कुर्वन्ति ऋषियोगिमुनीश्वराः ।
बहुनोक्तेन किं देवि न्यासमेनं मम प्रिये । २४५।।

नाऽपुत्राय वदेद्देवि नाऽशिष्याय प्रकाशयेत् ।
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति रहसि न्यासमाचरेत् ।।२४६।।

अस्मात्परतरा रक्षा देवताभावसिद्धये ।
लोके नाऽस्ति न सन्देहः सत्यं सत्यं वरानने ।।२४७ ।

ऊर्द्ध्वाम्नायप्रवेशश्च पराप्रासादचिन्तनम् ।
महाषोढापरिज्ञानं न चाऽल्पतपसः फलम् ।।२४८।।

दिव्यौघे चाऽदिनाथश्च तच्छक्तिश्च सदाशिवः ।
तत्पत्नी चेश्वरस्तस्य भार्या रुद्रश्च तद्वधूः ।।२४९।।

विष्णुश्च तत्प्रिया ब्रह्मा तत्कान्ता द्वादशेरिताः ।
दिव्यौघे सनकश्चैव सनन्दनसनातनौ ।।२५०।।

सनत्कुमारश्च सनत्सुजातश्च ऋभुक्षजः ।
दत्तात्रेयो रैवतको कामदेवस्ततः परम ।।२५१।।

ततो व्यासः शुकश्चाऽपि एकादश समीरिताः ।
मानवौघे नृसिंहश्च महेशो भास्करस्तथा ।।२५२।।

महेन्द्रो माधवो विष्णुः षडेते परिकीर्तिताः ।
नामान्ते योजयेद्देवि दिव्यौघैः परमं शिवम् ॥२५३॥

महाशिवं च सिद्धौघे मानवौघे सदाशिवम् ।
देवतां पुरतो देवि गुरुपङ्क्तिं प्रपूजयेत् ॥२५४॥

पङ्क्तित्रयं क्रमेणाऽथ ध्यात्वा सम्यगनन्यधीः ।
षोडशैरुपचारैस्तु साङ्गं सावरणं शिवम् ॥२५५॥

पूजयेन्मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
महाषोढाश्रिताशेषपरिवारांश्च शाम्भवि[1] ॥२५६॥

प्रणवादिनमोन्तेन तत्तन्नाम्ना समर्चयेत् ।
वटुमन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कुलनायिके ॥२५७॥

तारत्रयं ततो देवीपुत्राय वटुकेति च ।
नाथः स्यात्कपिलजटाभारभासुरपिङ्गल ॥२५८॥

त्रिनेत्रेति पदं पश्चाज्ज्वालामुखपदं ततः ।
इमां पूजां बलिं गृह्णयुगं पावकवल्लभा ॥२५९॥

उक्तो वटुमनुश्चतुश्चत्वारिंशद्भिरक्षरैः ।
बलिदानेन सन्तुष्टो वटुकः सर्वसिद्धिदः ॥२६०॥

शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः ।
तारत्रयं ततः सर्वयोगिनीभ्यः पदं भवेत् ॥२६१॥

पश्चात्तु सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतादिवर्त्ति च ।
वन्दिभ्यो डाकिनीभ्यः शाकिनीभ्यस्ततः परम् ॥२६२॥

त्रैलोक्येति पदं चैव वासिनीभ्य इमां वदेत् ।
पूजां बलिं गृह्णयुग्मं स्वाहान्तो योगिनीमनुः ॥२६३॥

कथितोऽयं कुलेशानि एकपञ्चाशदक्षरः ।
या काचिद्योगिनी घोरा सौम्या घोरतरा परा ॥२६४॥

खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीतास्तु मे सदा ।
तारत्रयं वदेत्सर्वभूतेभ्यः सर्व एव च ॥२६५॥

---

१. ख. शाम्भवीम् ।

पश्चाद् भूतपतिभ्यो हृदुक्तः सप्तदशाक्षरः ।
भूता ये विविधाकारा दिव्या भौमान्तरिक्षगाः । २६६॥

पातालतलसंस्थाश्च शिवयोगेन भाविताः ।
ध्रुवाद्याः सत्यसन्धाश्चाऽपीन्द्राद्याशाव्यवस्थिताः ॥२६७॥

तृप्यन्तु प्रीतमनसः प्रीता गृह्णन्त्विमं बलिम् ।
तारत्रयं वदेदेहि-युग्मं देवीपदं ततः ॥२६८॥

पुत्राय बटुकनाथाय पश्चादुच्छिष्टहारिणे ।
गृह्णयुग्मं रुरु-पदं क्षेत्रपालपदं ततः ॥२६९॥

सर्वविघ्नान्पदं[1] पश्चान्नाशय-द्वितयं ततः ।
सर्वोपचारसहितामिमां पूजां बलिं वदेत् ॥२७०॥

गृह्ण-युग्मं द्विठान्तोऽयं क्षेत्रपालमनुः प्रिये ।
चतुःषष्ट्यक्षरैः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः । २७१॥

योऽस्मिन् क्षेत्रे निवासी च क्षेत्रपालः सकिङ्करः ।
प्रीतोऽयं बलिदानेन सर्वरक्षां करोतु मे ॥२७२॥

तारत्रयं वदेदाद्यं श्रीप्रासादपरामनुम ।
ह्रां ह्रीं ह्रूं च युगान्तेऽथ[2] भैरवाधिष्ठिताय च ॥२७३ ।

अक्षोभ्यानन्दतः पश्चादुदयाभीष्टतः परम् ।
सिद्धयर्थं पदमाभाष्य पश्चादवतरद्वयम् ॥२७४॥

क्षेत्रपालपदं पश्चान्महाशास्त्रं पदं ततः ।
मातृपुत्रपदं पश्चात्कुलपुत्रपदं वदेत्[3] ॥२७५॥

सिद्धपुत्रपदं चाऽस्मिन्स्थानाधिपतये ततः ।
अस्मिन्ग्रामाधिपतयेऽस्मिन् देशाधिपतये ततः ॥२७६॥

मेघनादपदं पश्चात्प्रचण्डोग्रपदं भवेत् ।
कृपाणभीम तत्पश्चाद्भीषणेति पदं भवेत् ॥२७७॥

---

१. ख. सर्वविघ्नान्यपदं । २. ख. युगान्तेऽद्य । ३. ख. भवेत् ।

स्यात्सर्वविघ्नाधिपते[1] इमां पूजां बलिं वदेत् ।
गृह्लयुग्मं तुरु-युगं मुरु-चूर्णय-युग्मकम् ॥२७८॥

ज्वलयुक्प्रज्ज्वलयुगं सर्वविघ्नं निवारय ।
नाशय-द्वितयं क्षां क्षां तत्पश्चात् क्षूमितीरयेत् ॥२७९॥

क्षेत्रपालाय वौषड्ढुं[2] षष्ट्युत्तरशताक्षरः ।
तारत्रय वदेत्पश्चादमुकक्षेत्रपाल च ॥२८०॥

राजराजेश्वर इमां पूजां बलिमतः परम् ।
गृह्ण-युग्म द्विठान्तोऽर्णैरष्टाविंशतिभिः स्मृतः ॥२८१॥

अनेन बलिदानेन बटुवर्गसमन्वितः ।
राजराजेश्वरो देवो मे प्रसीदतु सर्वदा ॥२८२॥

पश्चिमे वटुकं देवमुत्तरे योगिनीबलिम् ।
पूर्वे भूतबलिं दद्यात् क्षेत्रपालं च दक्षिणे ॥२८३॥

राजराजेश्वरं मध्ये पूजयेत्कुलनायिके ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु बटुकस्य बलिः स्मृतः ॥२८४॥

तर्जनीमध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्योगिनीबलिः ।
अङ्गुलीभिश्च सर्वाभिरुक्तो भूतबलिः प्रिये ॥२८५॥

अङ्गुष्ठतर्ज्जनीभ्यां तु क्षेत्रपालबलिर्भवेत् ।
अङ्गुष्टमध्यमाभ्यां तु राजराजेश्वरस्य च ॥२८६॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्रातःकृत्यादिमातृकान्यासान्ते "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—जगतीछन्दसे०, हृदि—श्रीमर्द्धनारीश्वराय देवतायै नम" इति विन्यस्य, महाषोढान्यासे विनियोग इति कृताञ्जलिरुक्त्वाऽङ्गुष्ठयोः—'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सों स्हों ईशानाय नमः, तर्ज्जन्योः—ह्सें स्हें तत्पुरुषाय०, मध्यमयोः—[ह्सुं स्हुं अघोराय०, अनामयोः—ह्सि स्हि वामदेवाय, कनिष्ठयोः—ह्सं स्हं (ह्रिम स्हि[3]) सद्योजाताय०, मूर्द्ध्नि—ह्सों स्हों ईशानाय०, मुखे—ह्सें स्हें तत्पुरुषाय०, हृदये—ह्सुं

१ ख. विघ्नाधिपतये । २. वंषड्गं । ३ पुस्तकस्थोऽयं पाठोऽसमीचीनः ।

स्हुं अघोराय०, गुह्ये][1] ह्सिं[2] स्हिं वामदेवाय०, पादयोः— +स्सं स्हं +[3] सद्योजाताय०, मूर्द्धिन—ह्सों स्हों ईशानायोर्ध्ववक्त्राय०, मुखे—ह्सें स्हें तत्पुरुषाय पूर्ववक्त्राय०,[4] दक्षकर्णे—ह्सुं स्हुं अघोराय दक्षिणवक्त्राय०, वामकर्णे—ह्सिं स्हिं वामदेवायोत्तरवक्त्राय, चोरकूपे ह्सं स्हं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय[4] नम" इति **अङ्गन्यासः** । अयं पञ्चवक्त्रन्यासः क्रमेणाऽङ्गुष्ठादिपञ्चाङ्गुलिभिरेकैकाङ्गुल्यैकैकवक्त्रो न्यस्तव्यः । ततः ह्सां ह्सीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं कृत्वा प्रमाणोक्त देवं ध्यात्वा न्यसेत् । तत्राऽऽदौ **प्रपञ्चन्यासो** यथा—

[4]ह्सौं स्हौं अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः, एवं ६ आं द्वीपरूपायै मायायै०, ६ इं जलधिरूपायै कमलायै०, ६ ईं गिरिरूपायै विष्णुवल्लभायै०, उं पत्तनरूपायै पद्मधारिण्यै०, ऊं पीठरूपायै समुद्रतनयायै०, ऋं क्षेत्ररूपायै लोकमात्रे, ६ ॠं वनरूपायै कमलवासिन्यै०, ऌं आश्रमरूपायै इन्दिरायै०, ॡं गुहारूपायै, मायै[5]० एँ नदीरूपायै रमायै०, 'ऐं 'चत्वररूपायै'[6] पद्मायै०, ओं उद्भिजरूपायै नारायणप्रियायै०, औं स्वेदजरूपायै सिद्धलक्ष्म्यै० अं अण्डजरूपायै राजलक्ष्म्यै०, अः जरायुजरूपायै० महालक्ष्म्यै०, कं लवरूपायै आर्यायै०, खं त्रुटिरूपायै उमायै०, गं कलारूपायै चण्डिकायै०, घं काष्ठारूपायै दुर्गायै०, ङं निमेषरूपायै शिवायै०, चं श्वासरूपायै अपर्णायै०, छं घटिकारूपायै अम्बिकायै०, जं मुहूर्त्तरूपायै सत्यै०, झं प्रहररूपायै ईश्वर्य्यै०, ञं दिनरूपायै शाम्भव्यै०, टं सन्ध्यारूपायै ईशान्यै०, ठं रात्रिरूपायै पार्वत्यै०, डं तिथिरूपायै मङ्गलायै० ढं वाररूपायै दाक्षायिण्यै०, णं नक्षत्ररूपायै हेमवत्यै०, तं योगरूपायै महामायायै०, थं करणरूपायै माहेश्वर्य्यै०, दं पक्षरूपायै मृडान्यै०, धं मासरूपायै रुद्राण्यै० नं राशिरूपायै शर्वाण्यै०, पं ऋतुरूपायै परमेश्वर्य्यै०, फं अयनरूपायै काल्यै०, बं संवत्सररूपायै कात्यायन्यै०, भं युगरूपायै गौर्यै०, मं प्रलयरूपायै भवान्यै०, यं पञ्चभूतरूपायै ब्राह्म्यै०, रं पञ्चतन्मात्रारूपायै वागीश्वर्य्यै०, लं पञ्चकर्मेन्द्रियरूपायै वाण्यै०, वं पञ्चज्ञानेन्द्रियरूपायै सावित्र्यै०, शं पञ्चप्राणरूपायै सरस्वत्यै०, षं गुणत्रयरूपायै गायत्र्यै०, सं अन्तःकरणचतुष्टयरूपायै वाक्प्रदायै०, हं अवस्थात्रयरूपायै शारदायै०, ळं सप्तधातुरूपायै भारत्यै०, क्षं दोषत्रयरूपायै विद्यात्मिकायै नम" इति मातृकास्थानेषु विन्यस्य, ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः

---

१. [—] कोष्ठगोंऽशः ख. पुस्तके नाऽस्ति । २. ख. ह्सुं । ३. +—+ चिह्नस्थोंऽशो नाऽस्ति ख. पुस्तके । ४—४ अयमंशः ख. पुस्तके नाऽवलोक्यते । ५. क. मायायै ।
६ '—' अयमंशो नाऽस्ति क. पुस्तके ।

स्हौः अं ५० सकलप्रपञ्चाधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नम' इति सर्वाङ्गे व्यापकं कुर्यादिति **प्रपञ्चन्यासः** ।

अथ भुवनन्यासः—

तत्र "पादयोः—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं आं इ अतललोकनिलयशतकोटिगुह्याद्ययोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः, गुल्फयोः—[६ ईं उं ऊं वितललोकनिलयशतकोटिगुह्यतरअनन्तयोगिनीमूलदेवता०, जङ्घयोः—६ ऋं ॠं लृं सुतललोकनिलयशतकोटयतिगुह्याचिन्त्ययोगिनीमूलदेवतायुत०, जान्वोः—][1] ६ लॄं एं ऐं महातललोकनिलयशतकोटिमहागुह्यस्वतन्त्रयोगिनीमूल०, ऊर्वोः—६ ओं औं तलातललोकनिलयशतकोटिपरमगुह्येच्छायोगिनीमूल०, स्फिचोः अं अः रसातललोकनिलयशतकोटिरहस्यज्ञानयोगिनीमूल०, मूलाधारे—६ कं ५ पाताललोकनिलयशतकोटिरहस्यतरक्रियायोगिनीमूल०, स्वाधिष्ठाने-६ चं ५ भूर्लोकनिलयशतकोटयतिरहस्यडाकिनीयोगिनीमूल० मणिपूरके—६ टं ५ भुवर्लोकनिलयशतकोटिमहारहस्यराकिनीयोगिनीमूल० अनाहते—६ तं ५ स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्यलाकिनीयोगिनीमूल०, विशुद्धौ-६ पं ५ महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्तकाकिनीयोगिनीमूल०, आज्ञायां-६ यं ४ जनलोकनिलयशतकोटिगुप्ततरसाकिनीयोगिनीमूल०, ललाटे—शं ४ तपोलोकनिलयशतकोटयतिगुप्तहाकिनीयोगिनीमूल०, ब्रह्मरन्ध्रे-लं क्षं सत्यलोकनिलयशतकोटिमहागुप्तयाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम" इति विन्यस्य, '६ अं ५० सकलभुवनाधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' इति व्यापकं कुर्यादिति **भुवनन्यासः** ।

अथ मूर्त्तिन्यास :—

तत्र "शिरसि—६ अं केशवायाऽक्षरशक्त्यै नमः, मुखे—६ आं नारायणायाऽऽद्यशक्त्यै०, दक्षांसे—६ इं माधवायेष्टदायै०, वामांसे—६ ईं गोविन्दायेशानायै०, दक्षपार्श्वे—६ उं विष्णवे उग्रायै०, वामे—ऊँ मधुसूदनायोर्ध्वनयनायै०, दक्षकटयां—६ ऋं त्रिविक्रमाय ऋद्ध्यै०, वामायां—ॠं वामनाय रूपिण्यै०, दक्षोरौ—लृं श्रीधराय लुप्तायै०, वामोरौ—लॄं हृषीकेशाय लूनदोषायै०, दक्षजानुनि—एं पद्मनाभायैकनायिकायै०, वामे—ऐं दामोदरायैकारिण्यै०, दक्षजङ्घायां—ओं वासुदेवायौघवत्यै०, वामायाम्—औं सङ्कर्षणायौवकाय०, दक्षपादे—अं प्रद्युम्नायाऽञ्जनप्रभायै०, वामे—अः अनिरुद्धायाऽस्थिमालाधारिण्यै०,

१. [-] कोष्ठबद्धोंऽशो नाऽस्ति क पुस्तके

दक्षपादाग्रादूरुमूलपर्यन्तम्–६ कं भं भवाय करभद्रायै०, वामपादाग्रादूरुमूलपर्यन्तम्–खं बं शर्वाय खगबलायै०, दक्षपार्श्वे—गं फं रुद्राय गरिमफलप्रदायै०, वामपार्श्वे—घं प पशुपतये घोरपादायै०, दक्षदोर्मूले—ङं नं उग्राय पङ्क्तिनासायै०, वामदोर्मूले—चं धं महादेवाय चन्द्रार्द्धधारिण्यै०, कण्ठे—छं द भीमाय छन्दोमय्यै०, वदने—जं थं ईशानाय जगत्स्थानायै०, दक्षकर्णे—झं तं तत्पुरुषाय झङ्कृत्यै०, वामे—ञं णं अघोराय ज्ञानदायै०, भाले—टं ढं सद्योजाताय टङ्कढक्कधरायै०, शिरसि—ठं डं वामदेवाय झङ्कृति[1]-डामर्यै०, मूलाधारे—यं ब्रह्मणे यक्षिण्यै०, स्वाधिष्ठाने—रं प्रजापतये रङ्खिन्यै०, मणिपूरके—लं वेधसे लक्ष्म्यै०, अनाहते—वं परमेष्ठिने वज्रिण्यै०, विशुद्धौ—शं पितामहाय शशिधरायै०, आज्ञायां—षं विधात्रे षडाधारलयायै०, अर्द्धेन्दौ—सं विरिञ्चये सर्वनायिकायै०, रोधिन्यां—हं स्रष्ट्रे हसिताननायै०, नादे—लं चतुराननाय ललितायै०, नादान्ते—क्षं हिरण्यगर्भाय क्षमायै नम" इत्येवं विन्यस्य, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः सकलत्रिमूर्त्यात्मिकायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यादिति **मूर्त्तिन्यासः** ।

अथ मन्त्रन्यासः—

तत्र "मूलाधारे—६ अं आं इं एकलक्षकोटिभेदप्रणवाद्येकाक्षरात्मकाखिलमन्त्रा—[धिदेवतायै सकलफलप्रदायै एककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः, एवं स्वाधिष्ठाने—६ ईं उं ऊं द्विलक्षकोटिभेदहंसादिद्व्यक्षरात्मकखिलमन्त्रा-][2] धिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्विकूटेश्वर्य्यम्बादेव्यै०, मणिपूरके—६ ऋं ॠं लृं[3] त्रिलक्षकोटिभेदवह्न्याादित्र्यक्षरात्मत्रिकूटेश्वर्यम्बादेव्यै०, अनाहते—ॡं एं ऐं चतुर्लक्षकोटिभेदचन्द्रादिचतुरक्षरात्म०चतुःकूटेश्व०, विशुद्धौ—ओं औं अं अः पञ्चलक्षकोटिभेदसूर्यादिपञ्चाक्षरात्म०पञ्चकूटे०, आज्ञायां—कं खं गं षड्लक्षकोटिभेदस्कन्दादिषडक्षरात्म०षट्कूटे०, बिन्दौ—घं ङं चं सप्तलक्षकोटिभेदगणपत्यादिसप्ताक्षरा०सप्तकूटे०, अर्द्धेन्दौ[4] छं जं झं अष्टलक्षकोटिभेदबटुकाद्यष्टाक्षरात्म०अष्टकूटेश्व० रोधिन्यां—ञं टं ठं नवलक्षकोटिभेदब्रह्मादिनवाक्षरात्म० नवकूटे०, नादे—डं ढं णं दशलक्षकोटिभेदविष्ण्वादिदशाक्षरात्म०दशकूटे०, नादान्ते—तं थं दं एकादशलक्षकोटिभेदरुद्राद्येकादशाक्षरा०एकादशकूटे०, शक्तौ—धं नं पं द्वादशलक्षकोटिभेदवाण्यादिद्वादशाक्षरा०द्वादशकूटे०, व्यापिकायां—

१ सूत्रानुसारेण 'ठङ्कृत्यै' इति भाव्यम्? । २. [—] कोष्ठगांशस्य ख पुस्तकेऽभावः ।
३. ख. नाऽस्ति । ४. नाऽस्ति ।

फं बं भं त्रयोदशलक्षकोटिभेदलक्ष्म्यादित्रयोदशाक्षरा० त्रयोदशकूटे०, समनास्थाने—मं यं र चतुर्दशलक्षकोटिभेदगौर्य्यादिचतुर्दशाक्षरात्म० चतुर्दशकूटे०, उन्मन्यां—लं वं शं पञ्चदशलक्षकोटिभेददुर्गादिपञ्चदशाक्षरा० पञ्चदशकूटे०, ध्रुवमण्डले—षं सं हं लं क्ष षोडशलक्षकोटिभेदत्रिपुरादिषोडशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै षोडशकूटेश्वर्य्यम्बादेव्यै नमः" इति विन्यस्य, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौंः स्हौंः अं ५० सकलमन्त्राधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौंः ह्सौंः श्रीं ह्रीं ऐं ओं' इति व्यापकं कुर्यादिति मन्त्रन्यासः ।

अथ दैवतन्यासः—

तत्र "दक्षपादे—६ अं आं सहस्रकोटिऋषिकुलसेवितायै निवृत्यम्बादेव्यै नमः, वामे—६ इं ईं सहस्रकोटियोगिकुलसेवितायै प्रतिष्ठाम्बादेव्यै०, दक्षगुल्फे—उं ऊं सहस्रकोटितपस्विकुलसेवितायै विद्याम्बा०, वामे—ऋं ॠं सहस्रकोटिशान्तकुलसेवितायै शान्त्यम्बादेव्यै०, दक्षजङ्घायां—ऌं ॡं सहस्रकोटिमुनिकुलसेवितायै शान्त्यतीताम्बादेव्यै०, वामायां—एं ऐं सहस्रकोटिदैवतकुलसेवितायै० हृल्लेखाम्बादेव्यै०, दक्षजानुनि—ओं औं सहस्रकोटिराक्षसकुलसेवितायै गगनाम्बादेव्यै०, वामे—अं अः सहस्रकोटिविद्याधरकुलसेवितायै रक्ताम्बादेव्यै०, दक्षोरौ[1]—कं खं सहस्रकोटिसिद्धकुलसेवितायै महोच्छुष्माम्बादेव्यै०, वामोरौ—गं घं सहस्रकोटिसाध्यकुलसेवितायै करालिकाम्बादेव्यै० दक्षोरुमूले—ङं चं सहस्रकोटिअप्सरः कुलसेवितायै जयाम्बा०, वामोरुमूले—छं जं सहस्रकोटिगन्धर्वकुलसेवितायै विजयाम्बा०, दक्षपार्श्वे—झं ञं सहस्रकोटिगुह्यकुलसेवितायै अजिताम्बादेव्यै०, वामे—टं ठं सहस्रकोटियक्षकुलसेवितायै अपराजिताम्बादेव्यै०, दक्षस्तने—डं ढं सहस्रकोटिकिन्नरकुलसेवितायै वामाम्बा०, वामे—णं तं सहस्रकोटिपन्नगकुलसेवितायै ज्येष्ठाम्बादेव्यै०, दक्षदोर्मूले—थं दं सहस्रकोटिपितृकुलसेवितायै रौद्रयम्बादेव्यै०, वामे—धं नं सहस्रकोटिगणेश्वरकुलसेवितायै मायाम्बादेव्यै०, दक्षभुजे—पं फं सहस्रकोटिभैरवकुलसेवितायै कुण्डलिन्यम्बादेव्यै०, वामे—बं भं सहस्रकोटिवटुककुलसेवितायै काल्यम्बादेव्यै० दक्षांसे—मं यं सहस्रकोटिक्षेत्रेशकुलसेवितायै कालरात्र्यम्बादेव्यै०, वामे—रं लं सहस्रकोटिप्रमथ[2]कुलसेवितायै भगवत्यम्बादेव्यै०, दक्षकर्णे—वं शं सहस्रकोटिब्रह्मकुलसेवितायै सर्वेश्वर्यम्बादेव्यै०, षं सं सहस्रकोटिविष्णुकुलसेवितायै सर्वज्ञाम्बादेव्यै०, भाले—हं लं सहस्रकोटिरुद्रकुलसेवितायै सर्वकर्त्र्यम्बादेव्यै०, ब्रह्मरन्ध्रे—६ क्षं सहस्रकोटिचराचरकुलसेवितायै कुलशक्त्यम्बादेव्यं नम" इति

---

१. ख दक्षरौ । २. क. प्रथम ।

विन्यस्य, '६ अं ५० समस्तदेवताधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं श्रीं' इति व्यापकं कुर्यादिति दैवतन्यास ।

अथ मातृन्यास —

तत्र मूलाधारे—६ कं ४ अनन्तकोटिभूचरीकुलसहितायै श्रां क्षां मङ्गलाम्बा- देव्यै श्रां क्षां ब्रह्माण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिभूतकोटिसहितायै श्रं क्षं मङ्गलनाथाय श्रं क्षं असिताङ्गभैरवाय (भैरवनाथाय) नमः, स्वाधिष्ठाने—६ चं ४ अनन्तकोटि- खेचरीकुलसहितायै ईं लां चर्चिकाम्बादेव्यै ईं लां माहेश्वर्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिवे- तालकुलसहितायै इं लं चर्चिकनाथाय इं लं रुरुभैरवाय[1]०, मणिपूरके—६ टं ४ अनन्तकोटिपातालचरीकुलसहितायै ऊँ हां योगेश्वर्य्यम्बादेव्यै ऊं हां कौमार्यम्बा- देव्यै अनन्तकोटिपिशाचकुलसहितायै उं हं योगेश्वरनाथाय उं हं चण्डभैरवाय०, अनाहते—६ तं ४ अनन्तकोटिदिक्चरीकुलसहितायै ॠं सां हरसिद्धाम्बादेव्यै ॠं सां वैष्णव्यम्बादेव्यै अनन्तकोट्यपस्मारकुलसहितायै ॠं सं हरसिद्धनाथाय ॠं सं क्रोधभैरवाय०, विशुद्धौ—६ पं ४ अनन्तकोटिसहचरीकुलसहितायै लॄं षां भट्टि- न्यम्बादेव्यै लॄं षां वाराह्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिब्रह्मराक्षसकुलसहितायै लृं षं भट्टिनाथाय लृं षं उन्मत्तभैरवाय०, आज्ञायां—६ यं ३ अनन्तकोटिगिरिचरी- कुलसहितायै ऐं शां किलिकिलाम्बादेव्यै ऐं शां इन्द्राण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटि- चेटककुलसहितायै एं शं किलिकिलनाथाय एं शं कपालिभैरवाय०, भाले—६ शं ३ अनन्तकोटिवनचरीकुलसहितायै औं वां कालरात्र्यम्बादेव्यै औं वां चामुण्डा- म्बादेव्यै अनन्तकोटिप्रेतकुलसहितायै ओं वं कालरात्रिनाथाय ओं वं भीषणभैर- वाय०, ब्रह्मरन्ध्रे—६ लं क्षं अनन्तजलचरीकुलसहितायै अः लां भीषणाम्बादेव्यै० अः लां महालक्ष्म्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिकूष्माण्डकुलसहितायै अं लं भीषणनाथाय अं लं सहारभैरवाय नम" इति विन्यस्य, '६ अं ५० समस्तमातृभैरवाधिपायै[2] श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यादिति मातृन्यासः ।

इति महाषोढान्यासः ।

ततः पूर्ववत्करषडङ्गन्यासं विधाय, पूर्वोक्तरूपं देवं स्वाभेदेन ध्यात्वा, योनि- लिङ्गधेनुकपालज्ञानत्रिशूलपुस्तकवनमालानमस्कारमहामुद्राख्या दशमुद्रा विरच्य, शिरसि-श्रीगुरुं 'सहस्रदलपङ्कजे' इत्यादिश्लोकोक्तरूपं ध्यात्वा, तद्विद्यया तत्पादुकां शिरसि विन्यस्य, प्रणम्य, स्वसङ्केतनाममूलाधारे विन्यस्य, शिवरूपमात्मानं ध्यात्वा,

१. क. रुद्रभैरवाय० । २. पुस्तकद्वये—०धिदेवतायै इति पाठः, परं सूत्रे तूपर्युक्तपाठलाभा- दयमेवाऽत्रोद्धः । (सं०) ।

महाषोढान्यासमाहात्म्यं पूर्वोक्तं स्मरेदिति महाषोढान्यासं विधाय, योगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—जगतीछन्दसे०, हृदि—श्रीमदर्द्धनारीश्वराय देवतायै नम" इति विन्यस्य, ह्सां ह्सीमि' त्यादिना करषडङ्गन्यासं कृत्वा, प्रमाणोक्तरूपं देवं ध्यात्वा, मानसोपचारैः सम्पूज्य, त्रिकोणगर्भमष्टदलकमलं[1] कृत्वा तद्बहिः षड्विंशतिदलं, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिरष्टत्रिंशद्दल, तद्बहिश्चतुर्दशदलं, तद्बहिः एकपञ्चाशद्दलमिति पूजाचक्र चतुरश्रोपेतं निर्माय, तत्र मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्राग्वत्पात्रस्थापनादिपुष्पोपचारान्ते 'ह्सां ह्सीमित्यादिना षडङ्गं सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टदलयोरन्तराले पङ्क्तित्रयेणोर्द्ध्वाम्नायगुरून् दिव्यसिद्धमानवक्रमेण ध्यात्वा,

प्रथमरेखायां—"दिव्यौघेभ्यः पराख्येभ्यो गुरुभ्यो नम' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आदिनाथाय परशिवाय नमः, एवं ४ आदिशक्तिपरशिवायै०, ४ सदाशिवायाऽपरशिवाय, ४ सदाशिवायाऽपरशिवायै०, ईश्वरपरशिवाय०, ईश्वरीपरशिवायै०, रुद्रपरशिवाय०, रुद्राणीपरशिवायै०, विष्णुपरशिवाय०, वैष्णवीपरशिवायै०, ब्रह्मपरशिवाय, ब्रह्माणीपरशिवायै नम" इति सम्पूज्य।

द्वितीयरेखायां—'सिद्धौघेभ्यः पराख्येभ्यो गुरुभ्यो नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनकमहाशिवाय नमः, ४ सनन्दनमहाशिवाय०, ४ सनातनमहाशिवाय, ४ सनत्कुमारमहाशिवाय०, ४ सनत्सुजातमहाशिवाय, ४ ऋभूमहाशिवाय०, दत्तात्रेयमहाशिवाय०, रैवतकमहाशिवाय०, वामदेवमहाशिवाय, व्यासम०, शुकमहाशिवाय नम" इति सम्पूज्य,

तृतीयरेखायां—"मानवौघेभ्यः पराख्येभ्यो गुरुभ्यो नम' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, नृसिंहसदाशिवाय०, महेशसदाशि०, भास्करसदा०, महेन्द्रसदाशिवाय०, माधवसदा०, विष्णुसदाशिवाय नम" इति सम्पूज्य, ततः सर्वबाह्यगतैकपञ्चाशद्दलकमले '४ एकपञ्चाशद्दलपद्माय नम' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा,

ततो देवाग्रदलमारभ्य—"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौं अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः, ६ आं द्वीपरूपायै मायायै नमः, एवं प्रपञ्चन्यासोक्तैकपञ्चाशद्देवता वामावर्त्तेन सम्पूज्य, '६ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं ५० सकलप्रपञ्चाधिदेवतायै पराम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, ६ अभीष्टसिद्धिमित्या-

---

१. क. ०मष्टसदलकमलं।

दिश्लोकं पठित्वा, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, 'प्रपञ्चदेवतामयूखाय श्रीमदर्द्धनारीश्वराय नम' इति प्रणमेत् ।

तत 'श्चतुर्द्दशदलपद्माय नम' इति पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, देवाग्रमारभ्य 'ॐ अं आं इं अतललोकनिलयेत्यादिशक्त्यम्बादेव्यै नम' इत्येव भुवनन्यासोक्त-चतुर्द्दशदेवता वामावर्त्तेन सम्पूज्य, '६ समस्तमातृकामुच्चार्य्य सकलभुवनाधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः हसौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्राग्वद् द्वितीयावरणपूजां समर्प्य,

ततः '६ अष्टत्रिंशद्दलकमलाय नम' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, 'अ केशवायाऽ-क्षरशक्त्यै नम' इत्यादिमूर्त्तिन्यासोक्ता अष्टत्रिंशद्देवता वामावर्त्तेन सम्पूज्य, '६ अं ५० सकलत्रिमूर्त्त्यात्मिकायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौः हसौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्राग्वत् तृतीयावरणपूजां समर्प्य,

ततः षोडशदलपद्माय नमः' इति प्राग्वत्सम्पूज्य, तथैव '६ अ आं इं एक-क्षकोटिभेदइत्यादिएककूटेश्वर्य्यम्बादेव्यै नमः' इत्येवं वामावर्त्तेन षोडशदेवतामन्त्र-न्यासोक्ताः सम्पूज्य, '६ अं ५० सकलमन्त्राधिदेवतायै नमः स्हौः हसौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ' इति प्राग्वत्सम्पूज्य, प्राग्वच्चतुर्थावरणं समर्प्य ।

'६ षड्विंशतिदलपद्माय नम' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, '६ अ आं इं सहस्र-कोटीत्यादिनिवृत्यम्बादेव्यै नम' इत्येवं दैवतन्यासोक्ताः षड्विंशतिदेवताः सम्पूज्य, '६ अं ५० समस्तदैवताधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नम' इति प्राग्वत्पञ्चमावरणं समर्प्य,

ततः 'अष्टदलकमलाय नम' इति प्राग्वत्सम्पूज्य, '६ कं ५ अनन्तकोटी-त्यादि-असिताङ्गभैरवाय नम' इत्येवं मातृन्यासोक्ता[१] अष्टदेवताः सम्पूज्य, '६ अं ५० समस्तमातृभैरवाधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नम' इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्राग्वत् षष्ठावरणं समर्प्य,

ततश्चतुरश्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपादि[२] विधाय,

नित्यहोमान्ते पूजाचक्रस्य पश्चिमभागे चतुरश्रवृत्तत्रिकोणात्मकं मण्डलं विरच्य, तत्र वटुकमन्त्रेण तमावाह्य, गन्धाद्यैरुपचारैः सम्पूज्य, तत्र सान्नव्यञ्जन-जलपूर्णं साधारं बलिपात्रं निधाय, ऐं ह्रीं श्रीं देवीपुत्र वटुकनाथ पिङ्गलजटाभार-भासुर पिङ्गलत्रिनेत्र ज्वालामुख इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहे'ति मन्त्रेण

१. मातृकान्यासोक्ताः । २ ख धूपांसि ।

वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यामर्घोदकधारादानेन बलिमुत्सृज्य, 'बलिदानेन सन्तुष्ट' इत्यादिमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा,

उत्तरे तथैव मण्डलं कृत्वा, योगिनीमन्त्रेण तथैव सम्पूज्य, तत्र प्राग्वद्बलिपात्रं निधाय 'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वयोगिनीभ्यः सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतवर्त्तिवन्दिनीभ्यो डाकिनीभ्यः शाकिनीभ्यस्त्रैलोक्यवासिनीभ्यः इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहे'ति वामतर्ज्जनीमध्यमानामाभिर्योन्याकारेण पूर्ववद्बलिमुत्सृज्य, 'या काचिद्योगिनी घोरे'ति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं समर्प्य,

ततः पूर्वे तथैव मण्डलं विधाय, तत्र सर्वभूतमन्त्रेण पूर्ववद्गन्धादिभिः सम्पूज्य, तत्र बलिपात्रं निधाय, 'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यो नम' इति मन्त्रेण वामाङ्गुलिभिः प्राग्वद्बलिमुत्सृज्य, 'भूता ये विविधाकारा' इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा.

ततो दक्षिणे तथैव मण्डलं कृत्वा, तत्र क्षेत्रपालमन्त्रेण सम्पूज्य, प्राग्वद्बलिपात्रं निधाय, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एहि एहि देवीपुत्राय बटुकनाथाय उच्छिष्टहारिणे गृह्ण गृह्ण रुरुक्षेत्रपाल सर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितामिमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहे'ति मन्त्रेण वामाङ्गुष्ठतर्ज्जनीभ्यां पूर्ववद्बलिमुत्सृज्य, 'योऽस्मिन्क्षेत्रे निवासी चेति' मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं समर्प्याऽथवा 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रां ह्रीं ह्रूं भैरवाधिष्ठितायाऽक्षोभ्यानन्दोदयायाभीष्टसिद्धचर्थमवतरावतर क्षेत्रपाल महाशास्त्र मातृपुत्र कुलपुत्र सिद्धपुत्राऽस्मिन् स्थानाधिपतये अस्मिन्ग्रामाधिपतये अस्मिन्देशाधिपतये मेघनाद प्रचण्डोग्रकृपाण भीमभीषण सर्वविघ्नाधिपते इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण तुरु तुरु[1] मुरु मुरु चूर्णय चूर्णय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वविघ्नान् निवारय नाशय नाशय क्षां क्षीं क्षूं क्षेत्रपालाय वौषट् हुँ' इति मन्त्रेण वा पूर्ववद्बलिमुत्सृजेत् ।

ततः आग्नेयकोणे प्राग्वन्मण्डले राजराजेश्वरमावाह्य, गन्धादिभिः सम्पूज्य, तत्र प्राग्वद्बलिपात्रं निधाय, ऐं ह्रीं श्रीं अमुकक्षेत्रपाल राजराजेश्वर इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहे'ति मन्त्रेणाऽङ्गुष्ठमध्यमाभ्यामर्घोदकधारादानेन बलिमुत्सृज्याऽ'नेन बलिदानेने'ति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा नीराजनादिकं शेषं समापयेदिति । तथा—

मन्त्री विशुद्धहृदयः पूर्वोक्तनियमान्वितः ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रं तत्वलक्षं जपेत्प्रिये ॥२८७॥

---

१. सूत्रेह्ययमेव पाठः, अतोऽत्र स्वीकृतः । पुस्तकद्वये तु 'रुरु रुरु' इत्यस्ति ।

दशांशं जुहुयाद्देवि संस्कृते हव्यवाहने ।
गन्धपुष्पाक्षताकल्पधेनुवस्त्रादिभिः प्रिये ।।२८८।।

भक्ष्यभोज्यान्नपानाद्यैः कुलद्रव्यैर्मनोहरैः ।
तोषयेद्योगिनीचक्रं यथाविभवविस्तरम् ।।२८९।।

एवं न्यासजपध्यानसहोमार्चनतर्प्पणैः ।
मन्त्री सिद्धमनुर्देवि साक्षात्परशिवो भवेत् ।।२९०।।

ततः स्वमनसोऽभीष्टान् प्रयोगान्कुलनायिके ।
मन्त्रेणाऽनेन मतिमान् साधयेद् भुक्तिमुक्तये ।।२९१।।

सिद्धमन्त्रस्य सिध्यन्ति षट्कर्माणि न संशयः ।
नैव सिध्यत्यसिद्धस्य देवताशापमाप्नुयात् ।।२९२।।

काम्यप्रयोगकर्तॄणां परलोको न विद्यते ।
प्रयोगसिद्धिरेवैषां फलमन्यन्न च प्रिये ।।२९३।।

एकस्याऽपि विधानस्य न कुत्राऽपि फलद्वयम् ।
देवेशि दृश्यते तस्मान्निःकामो देवतां भजेत् ।।२९४।।

होमतर्पणयन्त्राद्यैर्नानाध्यानविशेषजैः ।
आत्मनश्च परस्याऽपि षट्कर्माणि समाचरेत् ।।२९५।।

प्रयोगान्ते चक्रपूजां तिथिनैव समाचरेत् ।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं ध्यानन्याससमन्वितः ।।२९६।।

प्रयोगदोषशान्त्यर्थमात्मरक्षार्थमेव च ।
न चेत्फलं च नाऽऽप्नोति देवताशापमाप्नुयात् ।।२९७।।

तिथिवारर्क्षकरणयोगमासर्त्तुपक्षकम् ।
द्वीपेशकूर्मचक्रादि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ।।२९८।।

पञ्चशुद्ध्यासनं प्राणायामं न्यासाक्षमालिकाः ।
दोषसंस्कारमुद्रादीन् ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ।।२९९।।

द्विषद्बान्धवदाराख्यराशिवर्णानुकूलताम् ।
भूतमैत्रीमथाऽऽद्यन्तं ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ।।३००।।

मन्त्रविद्याभेदनिद्राबोधाग्नीषोमरूपकम् ।
पुंस्त्रीनपुंसकादिं च ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ।।३०१।।

अथनासनदिग्वर्णनाडीतत्वानुसङ्गतिम् ।
देवताकालमुद्रादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥३०२॥

साध्यसाधककर्माणि लेखनी द्रव्यपञ्चकम् ।
स्थानं यन्त्रप्रमाणं च ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ॥३०३॥

उत्पत्तिरसनावर्णमूर्त्तिसंस्कारसंस्थितम् ।
कुण्डद्रव्यप्रमाणादीन् ज्ञात्वा होमं समाचरेत् ॥३०४॥

धामप्रभाधूमवर्णध्वनिगन्धशिखाकृतिम् ।
दूतचेष्टादिकं ज्ञात्वा कथयेत शुभाशुभम् ॥३०५॥

मन्त्रतत्वानुसन्धानं देहावेशादिलक्षणम् ।
मन्त्रोच्चारणभेदं च ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ॥३०६॥

मण्डलं कलशक्वाथोदकं गन्धाष्टकादिकम् ।
दीक्षानामप्रदानादि ज्ञात्वा दीक्षां समाचरेत् ॥३०७॥

नित्यनैमित्तिकं काम्यं नियमं नामवासनाम् ।
पूजाधारणयन्त्रादि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥३०८॥

पूजागृहप्रवेशादिकुलपूजकलक्षणम् ।
कुलद्रव्यादिसिद्धिं च ज्ञात्वा पूजां समाचरेत् ॥३०९॥

अन्तर्यागं बहिर्यागमर्घ्यादिस्थापनार्चनम् ।
पञ्च पुष्पाञ्जलिं देवि ज्ञात्वा पूजां समाचरेत् ॥३१०॥

पात्राधारादिपिशितं कुलमेलनतर्प्पणम् ।
बटुकादिबलिं देवि ज्ञात्वा पूजां समाचरेत् ॥३११॥

कुलाकुलाख्यासहजाशक्तिभेदं च लक्षणम् ।
शुभलक्षणसंयुक्तं स्त्रीसंस्कारार्चनादिकम् ॥३१२॥

देवि सम्भोगकालं च ज्ञात्वा शक्तिं परिग्रहेत् ।
इत्याद्याः कथिताः केचिद्विशेषाः कुलनायिके ॥३१३॥

सर्वेषामपि मन्त्राणां विधिं साधारणक्रमः ।
मन्त्राः फड्देवता हुं फडन्ताः प्राणे च दक्षिणे ॥३१३॥

प्रबुध्यन्ते द्विठान्ताः स्युर्विद्याः स्त्रीदेवताः प्रिये ।
वामे प्राणे प्रबुध्यन्ते नमोऽन्ताः स्युर्नपुंसकाः ॥३१५॥

नाडीद्वयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति च ।
शान्तिके मनवः सौम्या भूयिष्ठा न मृतादराः (दयः?)॥३१६॥

स्वाहान्ताः स्युर्वियत्साक्षाच्चाऽऽग्नेयाः क्रूरकर्मसु ।
फडुच्चाटे वषड् वश्ये हुं द्वेषे स्फें च मारणे ॥३१७॥

स्तम्भने च नमः प्रोक्त स्वाहा शान्तिकपौष्टिके ।
होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः ॥३१८॥

मन्त्रान्ते योजयेन्मन्त्री जपकाले यथास्थितम् ।
शान्तिके राजतं ताम्रं भूर्जपत्र तु वश्यके ॥३१९॥

सर्वकार्येषु सौवर्णं क्रूरे स्यात्प्रेतकर्पटम्[1] ।
त्रिगन्धं शान्तिके प्रोक्तं पञ्चगन्धं तु वश्यके ॥३२०॥

सर्वकार्येषु गन्धः स्यात्क्रूरे चाऽष्टविषाणि च ।
शान्तिके लेखनी दूर्वा वश्यादौ शिखिपिच्छिका ॥३२१॥

हेम्ना सर्वाणि कार्याणि क्रूरे स्यात्काकपिच्छिका ।
गृहे तु शान्तिकर्म स्याद्वश्याद्यं चण्डिकालये ॥३२२॥

सर्वकार्यं देवगृहे श्मशाने क्रूरकर्म च ।
लक्षणान्येवमादीनि ज्ञात्वा गुरुमुखात्प्रिये ॥३२३॥

सर्वकर्माणि कुर्वीत मन्त्री तत्तत्फलाप्तये ।
मूले प्रासादबीजं तमरुणायुतसन्निभम् ॥३२४॥

उत्तमाङ्गे पराबीजं चन्द्रायुतसमप्रभम् ।
परस्परकरस्पर्शज्वलितानन्दनिर्भरैः ॥३२५॥

मूलादिब्रह्मरध्रान्तमनवच्छिन्नरूपिभिः ।
परामृतरसासेकैः सिक्तमापादमस्तकम् ॥३२६॥

आत्मानं भावयेन्नित्यं स भवेदजरामरः ।
एवं ध्यात्वा कुलेशानि सर्वकर्माणि साधयेत् ॥३२७॥

सिद्ध्यन्ति तरसा देवि नाऽत्र कार्या विचारणा ।
ध्यानभेदं प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं प्रिये ॥३२८॥

---

१. ख कर्परम् ।

ईप्सितं लभते येन पूजाहोमादिकं विना ।
स्थाने मनोहरे देवि साधकः स्थिरमानसः ॥३२६॥

स्थित्वा मृद्वासने ध्यायेद् गुरुवन्दनपूर्वकम् ।
मस्तकस्थितसम्पूर्णचन्द्रमण्डलमध्यमे (गे?) ॥३३०॥

श्रीप्रासादपराबीजं षोडशस्वरसंयुतम् ।
मुक्तास्फटिककर्पूरकुन्देन्दुधवलं प्रिये ॥३३१॥

सच्चन्द्रबिम्बसञ्जातसुधाप्लावितविग्रहम् ।
आत्मानं भावयेद्देवि निश्चलेनाऽन्तरात्मना ॥३३२॥

श्रीप्रासादपरामन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
तरुणोल्लाससहितो मण्डलं प्रजपेत्प्रिये ॥३३३॥

अपमृत्युमहारोगजरामरणजं भयम् ।
ग्रहापस्मारवेतालभूतोन्मादादिजं भयम् ॥३३४॥

जित्वाऽऽधिव्याधिरहितः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं पूजितः[1] सर्वमानवैः ॥३३५॥

अश्रुतं बुध्यते शास्त्रं कविता निर्मला भवेत् ।
चिन्मयो जायते साक्षान्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३३६॥

ज्वरोन्मादादिरोगेषु जपेच्छिरसि सिञ्चयेत् ।
शूलवातव्रणग्रन्थिमूत्रकृच्छ्रादिसम्भवैः ॥३३७॥

ततः स्थानेषु देवेशि पूर्ववच्चिन्तयञ् जपेत् ।
महारोगेषु जातेषु सर्वाङ्गेषु विचिन्तयेत् ॥३३८॥

तत्क्षणाच्छान्तिमायान्ति रोगाः सर्वे न संशयः ।
दशेन्द्रियेषु यो ध्यायेल्लभेदिन्द्रियसौष्ठवम् ॥३३६॥

यत्र बीजं स्मरेत्तत्र तत्फलं भवति ध्रुवम् ।
सदा सञ्चिन्तयेन्मूर्द्धिन स भवेदजरामरः ॥३४०॥

सर्वरोगहरं विद्यादारोग्यं[2] च पदं प्रिये ।
अस्मात्परतरं ध्यानं नाऽस्ति सत्यं न संशयः ॥३४१॥

---

१. क. पूजितं । २. ख. विन्द्यादा० ।

सात्विकं ध्यानजं देवि फलमेतदुदीरितम् ।
शान्तिकर्मणि विधिना ध्यानेनाऽनेन साधयेत् ॥३४२॥

द्वादशाधारपद्मेषु द्वादशस्वरसंयुतम् ।
बीजं सञ्चिन्तयेद्यस्तु स भवेदजरामरः ॥३४३॥

षडाधारेषु षड्दीर्घयुतं बीजं विचिन्तयेत् ।
षडाधारस्थदेवीभिः पूज्यते कुलनायिके ॥३४४॥

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सूर्यमण्डलसंस्थितम् ।
पराप्रासादबीजं तदरुणारुणसन्निभम् ॥३४५॥

जपाबन्धूकसिन्दूरपद्मरागप्रभोज्ज्वलम् ।
पञ्चविंशतिभिः स्पर्शाक्षरैरावीतमम्बिके ॥३४६॥

तत्प्रभापटलच्छायारत्नीकृतजगत्त्रयम् ।
आत्मानं संस्मरेद्देवि निश्चलेनाऽन्तरात्मना ॥३४७॥

पराप्रासादबीजन्तं[1] यौवनोल्लाससंयुतः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु मण्डलं प्रजपेत्सुधीः ॥३४८॥

देवदानवगन्धर्वसिद्धगुह्यककिन्नरान् ।
विद्याधरान् मुनीन् यक्षानन्यानप्यप्सरःस्त्रियः ॥३४९॥

सिंहव्याघ्रोरगेन्द्रादीनन्यान् दुष्टमृगानपि ।
वशीकरोत्यसन्देहः किं पुनर्मानवादिकान् ॥३५०॥

महदैश्वर्य्यमाप्नोति स्वर्गभोगादिकं प्रिये ।
यस्य मूर्द्धिन स्मरञ्जप्यात्स वश्यो जायतेऽचिरात् ॥३५१॥

राजसध्यानजं देवि फलमेतदुदीरितम् ।
वश्यकर्माणि सर्वाणि विधिनाऽनेन साधयेत् ॥३५२॥

सर्ववश्यकरं देवि सर्वैश्वर्य्यफलप्रदम्[2] ।
अस्मात्परतरं ध्यानं नाऽस्ति सत्यं न संशयः ॥३५३॥

मूलाधारसरोजान्तर्वन्हिमण्डलमध्यगम् ।
पराप्रासादबीजन्तं कालान्ताग्निसमप्रभम् ॥३५४॥

१. ख. पराप्रासबीजं तं । २. ख. ०फलप्रभम ।

प्रतिलोमैस्तु संवीतं दशभिर्व्यापकाक्षरैः ।
स्वयं जल्पानलः सम्यक् सर्वभूतभयङ्करः ॥३५५॥

दक्षिणाशान्वितमुखश्चोग्रदृष्टिर्मलीमसः ।
यौवनोल्लाससहितः पराप्रासादसंज्ञकम् ॥३५६॥

मन्त्रं तु मण्डलं जप्यादष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अनिष्टकारिणः सत्वान् कलहायासकारिणः ॥३५७॥

वृथाद्वेषकरान् क्रूरान् सपर्याविघ्नकारिणः ।
भूतोग्रग्रहवेतालपिशाचब्रह्मराक्षसान् ॥३५८॥

तद्वह्निमध्यपतितान्निर्दग्धांश्च विचिन्तयेत् ।
क्षणेन नाशमायान्ति शरभा इव पार्वति ॥३५९॥

यस्य मूर्द्धिन स्मरेद्बीजं स मृत्युमधिगच्छति ।
ध्यानेनाऽनेन देवेशि कालादीनपि नाशयेत् ॥३६०॥

ग्रहरोगादिदुष्टादिविनाशनकरं प्रिये ।
अस्मात्परतरं ध्यानं नाऽस्ति सत्यं न संशयः ॥३६१॥

तामसध्यानजं देवि फलमेतदुदीरितम् ।
दुष्टमारणकर्माणि विधिनाऽनेन साधयेत् ॥३६२॥

इत्यादिध्यानभेदांश्च ज्ञात्वा गुरुमुखात्प्रिये ।
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत नाऽन्यथा वीरवन्दिते ॥३६३॥

खदिरश्वेतमन्दारामृताभानुसमिद्वरैः ।
पनसौदुम्बराश्वत्थप्लक्षापामार्गसद्वरैः ॥३६४॥

नन्द्यावर्त्तसिताम्भोजभयाद्रिकुसुमादिभिः ।
सितैरन्यैः शुभद्रव्यैः समित्पत्रफलार्त्तवैः ॥३६५॥

भक्ष्यैश्च पायसैर्दूर्वासहविस्तिलतण्डुलैः ।
मधुरत्रयसंयुक्तैर्मन्त्रवित्कुलनायिके ॥३६६॥

एकेन वाऽथ सर्वैर्वा तत्कार्यगुरुलाघवम् ।
जाप्यं देवि सहस्रं वा त्रिसहस्रं तु पञ्च वा ॥३६७॥

अयुतं नियुतं वाऽपि प्रयुतं वा कुलेश्वरि ।
तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे संस्कृते हव्यवाहने ॥३६८॥

आवाह्य देवतामस्मिन्ध्यात्वा सावरणं प्रिये ।
विधिवज्जुहुयाद्देवि तद्गतेनाऽन्तरात्मना ॥३६९॥

सर्वरोगज्वरोन्मादापस्मारोत्पातकृत्यजम् ।
सर्वदुःखं प्रशमयेत्तत्क्षणान्नाऽत्र संशयः ॥३७०॥

अनेन सर्वशान्तिश्च विद्याज्ञानं लभेत्प्रिये ।
कदम्बाशोकवकुलपुन्नागाम्रमधूकजैः[1] ॥३७१॥

चम्पकद्वयपालाशपाटलश्रीकपित्थजैः ।
मालतीमल्लिकाजातिबन्धूकारुणपङ्कजैः ॥३७२॥

कल्हारारुणमन्दारजातिकुन्दजपादिभिः ।
रक्तैरन्यैः शुभद्रव्यैः समित्पत्रफलार्त्तवैः ॥३७३॥

पूर्ववज्जुहुयाद्देवि विधिवन्मन्त्रवित्तमः ।
महीपतींश्च पुरुषान् कान्ता यौवनगर्वितान् ॥३७४॥

सिंहान् मत्तगजान् व्याघ्रान् सर्पान्दुष्टमृगानपि ।
सिद्धदेवाप्सरोयक्षगन्धर्ववनिता अपि ॥३७५॥

देवानपि कुलेशानि वशयेन्नाऽत्र संशयः ।
राजीलवणहोमेन स्त्रियमाकर्षयेद् ध्रुवम् ॥३७६॥

विधिनाऽनेन देवेशि सौभाग्यमतुलं भवेत् ।
पीतद्रव्यैर्हरिद्राद्यैः समित्पत्रफलार्त्तवैः ॥३७७॥

गृहधूमचिताङ्गारत्रिकट्वग्निविषाञ्जनम् ।
उन्मत्तरससंसिक्तं पिष्ट्वा सम्यक् प्रसेवितैः ॥३७८॥

साध्यपादरजोभिश्च चिताभस्मसमन्वितैः ।
साध्यप्रतिकृतिं कुर्यादेकां नक्षत्रवृक्षजाम् ॥३७९॥

सम्यक्प्रतिष्ठितप्राणां कुण्डस्योपरि लम्बयेत् ।
खनेन्मृत्प्रतिमां मन्त्री कुण्डस्याऽधो यथाविधि ॥३८०॥

---

१. क. ०मधूकज० ।

मलीमसेन मनसा उग्रदृष्टिरमर्षणः ।
चितानले विषतरून्मत्तकाष्ठसमेधिते ॥३८१॥

[1]तद्द्रव्यैर्जुहुयाद्देवि विधिवन्मन्त्रवित्तमः ।
कुर्याद्विद्वेषणोच्चाटमारणानि न संशयः ॥३८२॥

शान्तिके सात्विकं देवि श्वेतवर्णं विचिन्तयेत् ।
वश्ये तु राजसं देवि रक्तवर्णं विचिन्तयेत् ॥३८३॥

आत्मरक्षां पुरा कृत्वा पश्चात्कर्माणि साधयेत् ।
तामसे तामसं देवि कृष्णवर्णं विचिन्तयेत् ॥३८४॥

योऽन्यथा कुरुते मोहात्स भवेद्देवतापशुः ।
तस्माद्देव्यामथ न्यासं कारयेत्तु बलिं सुधीः ॥३८५॥

कृत्वा कर्माणि कुर्वीत नाऽन्यथा वीरवन्दिते ।
लिखेत्त्रिकोणषट्कोणमष्टारं च महीपुरम् ॥३८६॥

मूलमन्त्रं लिखेन्मध्ये साध्यनामसमन्वितम् ।
षट्कोणेषु षडङ्गानि विलिखेत्परमेश्वरि ॥३८७॥

केसरेषु स्वरानष्टौ वर्गान्पत्रेषु पार्वति ।
भूगृहेषु चतुष्कोणेष्वालिखेन्मूलमम्बिके ॥३८८॥

पञ्चवर्णरजोभिस्तु शुभदृष्टिमनोहरम्[2] ।
एवं यन्त्रं समालिख्य विधिवन्मन्त्रवित्तमः ॥३८९॥

एकत्रिषट्वसुचतुःकलशांस्थापयेत्प्रिये ।
मध्यादिचतुरश्रान्तं द्वाविंशतिघटान्क्रमात् ॥३९०॥

अथवाऽष्टदले देवि दश वा सप्त वा प्रिये ।
चतुरो वाऽप्यथैकं वा कुर्यात्साधकशक्तितः ॥३९१॥

अस्थिरत्नं शिरातन्तुर्मून्मांसं रुधिरं जलम् ।
चर्मवस्त्रं शिखाकूर्चं नालिकेरफलं शिरः ॥३९२॥

मन्त्रप्राणसमायुक्तां[3] यजेत्कलशदेवताम् ।
साम्बत्रिमूर्त्तिरीशानि मातरो भैरवान्विताः ॥३९३॥

---

१ क तद्द्रव्ये जु० । २. ख. शुभं दृष्टि० । ३. ख. ०समायुक्तं ।

विदिक्षु गुरुविघ्नेशदुर्गाक्षेत्रपतीन्प्रिये ।
कलशेषु समभ्यर्च्य विधिवन्मन्त्रवित्तमः ॥३९४॥

अभिषिञ्चेत्प्रियं शिष्यं सर्वपापप्रशान्तये ।
आयुःश्रीकान्तिसौभाग्यविद्यारोग्यादिकं[1] भवेत् ॥३९५॥

राजाऽभिषिक्तो लभते चतुःसागरगां महीम् ।
अकिञ्चनोऽभिषिक्तस्तु महदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३९६॥

वन्ध्याऽभिषिक्ता लभते पुत्रं सर्वगुणान्वितम् ।
भूतापमृत्युरोगाद्या विनश्यन्ति न संशयः ॥३९७॥

त्रिलोहे वाऽपि भूर्जे वा लिखित्वा यन्त्रमुत्तमम् ।
विधृतं बाहुना देवि सर्वरक्षाकरं भवेत् ॥३९८॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यविद्यालाभं यशो जयम् ।
यद्यत्स्वमनसोऽभीष्टं सर्वमाप्नोत्यसंशयः ॥३९९॥

खड्गादृश्यवशस्तम्भयक्षिण्यञ्जनपादुकाः ।
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यादिमहारसरसायनम् ॥४००॥

सञ्जीवयोगगुटिकाप्रमुखाखिलसिद्धयः ।
पराप्रासादमन्त्रज्ञे दृश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥४०१॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन त्रिषु लोकेषु मन्त्रिणः ।
अनेन मन्त्रराजेन नाऽसाध्यं विद्यते क्वचित् ॥४०२॥

ऊर्द्ध्वाम्नायैकनिष्णातः पराप्रासादमन्त्रवित् ।
कुलार्णवार्थतत्वज्ञो जीवन्मुक्तः कुलेश्वरि ॥४०३॥

सुतीर्थे वाऽप्यतीर्थे वा जन(ल)मध्येऽपि वा वसन् ।
पराप्रासादमन्त्रज्ञो मुक्त एव न संशयः ॥४०४॥

आगमोक्तेन विधिना क्रमपूजापुरःसरम् ।
श्रीप्रासादपराबीजमष्टोत्तरशतं जपेत् ॥४०५॥

मुच्यते ब्रह्महत्यादिमहापापैश्च पञ्चभिः ।
द्विशतं यो जपेद्देवि श्रीप्रासादपरामनुम् ॥४०६॥

---

१ क. ०विषारोग्यादिकं ।

चतुराशीतिलक्षाङ्गधारणाचरितैरपि ।
अयोनिजाङ्गचरितैरसंख्यजननार्जितैः ॥४०७॥

वार्द्धके यौवने बाल्ये जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
कर्मणा मनसा वाचा ज्ञानाज्ञानकृतैरपि ॥४०८॥

महापातकसङ्घैश्चाऽप्युपपातकराशिभिः ।
मुच्यते नाऽत्र सन्देहः सत्यमेतद्वरानने ॥४०९॥

त्रिशतं यो जपेद्देवि श्रीप्रासादपरामनुम् ।
सर्वक्रतुषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥४१०॥

सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं लभते देवि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४११॥

चतुःशतं जपेद्यस्तु श्रीप्रासादपरामनुम् ।
सदा तस्य गृहद्वारमणिमाद्यष्टसिद्धयः ॥४१२॥

सेवन्ते नाऽत्र सन्देहः सर्वसिद्धिसमन्वितः ।
यद्यन्मनोऽभिलषितं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयः[1] ॥४१३॥

धर्मार्थकाममोक्षाश्च साक्षात्तस्य करे स्थिताः ।
सालोक्यप्रमुखां देवि लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ॥४१४॥

जपेत्पञ्चशतं यस्तु श्रीप्रासादपरामनुम् ।
तत्फलं नैव शक्नोमि कथितुं कुलनायिके ॥४१५॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रं प्रजपेद् भुक्तिमुक्तये ॥४१६॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ षट्त्रिंशस्तरङ्गः ॥३६॥

---

१. ख ०त्यसंशयम् ।

अथ सिंहसिद्धान्तसिन्धोर्द्वितीयखण्डस्य

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२	१३	वायावायसंहितायाम्	वायवीयसंहितायाम्
४	५	तत्तकल्पप्रकाशितम्	तत्तत्कल्पप्रकाशितम्
८	८	कुर्यात्पुरश्चर्या	कुर्यात्पुरश्चर्यां
१४	५	रुद्राक्षामाहात्म्यम्	रुद्राक्षमाहात्म्यम्
१९	३	• वैदूर्यकाञ्चनै	वैदूर्यकाञ्चनै:
१९	१०	त्रिपुण्डरहितो	त्रिपुण्ड्ररहितो
१९	१३	वि	भुवि
१९	१४	रकान्	नरकान्
२०	८	लकरादि•	लकारादि०
२०	१३	क्षकारोऽन्त्यतत:	क्षकारोऽन्त्यस्तत:
२४	३	तावम्रर्णाया	ताम्रवर्णाया
२५	२०	भूशुद्धचादिका	भूतशुद्धचादिकां
२६	६	ततस्तूत्तोल्यतां	ततस्तूत्तोल्य तां
२६	२६	तत्संख्ययेत्यरर्थ:	तत्संख्ययेत्यर्थः
२७	५	• ऽवबघ्नयीान्	ऽवबध्नीयान्
२९	१	न्यस्तस्स्तमान्मे	न्यस्तस्तस्मान्मे
३५	१६	वाचक:	वाचिक:
३८	१७	तथाऽतर्प्ययत:	तथाऽतर्प्पयत:
४१	२०	स्मरेद्वामां	स्मरेद्वा मां
४३	२	नसङ्गश्च	जनसङ्गश्च
४४	२६	....	२. 'भं' इति स्थाने 'षं' इति सम्भाव्य: (सं०)।
४५	२३	द्विसन्ध्मेकसन्ध्यं	द्विसन्ध्यमेकसन्ध्यं
४७	१	०प्रशान्तये।	०प्रशान्तये।
४७	८	द्विज।	द्विज:।
६०	१८	गृह्ल २	गृह्ण २
६१	१३	०मूर्द्ध मुखं	मूर्द्ध्वमुखं
६२	१०	मन्त्रमष्ठोत्तरशतं	मन्त्रमष्टोत्तरशतं
६२	२२	स्वेष्ट्रदेदताक०	स्वेष्टदेवताक०
८७	१	तत्:	तत:
९५	८	वरदपद	०वरदपदं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
९५	१०	प्रोक्तीऽयं	प्रोक्तोऽयं
६८	१२	शलपाशौ	शूलपाशौ
१०१	८	विघ्नकर्त्तृट्राविणीभ्यां	विघ्नकर्त्तृद्राविणीभ्यां
१०१	१६	ग सवशक्ति०	गं सर्वशक्ति०
१०३	६	ॐ ऊं कौमार्य्यै	ॐ ऊं कौमार्य्यै
१०७	१	जलाशयस्थाः	जलाशयस्थः
१०७	२४	प्रभावल्किल	प्रभावात्किल
१०८	१४	कुर्याद्विधानद्	कुर्याद्विधानाद्
११२	१३	समुक्त	समुक्तं
११३	६	प्रताप्प	प्रताप्य
११६	१२	तर्प्वणानि	तर्प्पणानि
१२१	१६	मूलमन्त्रमुच्यार्य्य	मूलमन्त्रमुच्चार्य्य
१२३	१५	मदनावर्त्ती	मदनावर्ती
१२३	३०	साऽत्राऽक्ष्पेक्ष्या	साऽत्राऽपेक्ष्या
१३४	२५	करषषडङ्गन्यासो	करषडङ्गन्यासो
१३६	६	सद्वीज	सद्वीजं
१४२	९	०रवशष्टवर्णाः	०रवशिष्टवर्णाः
१४६	३	जयमाप्नुयात्	जयमाप्नुयात्
१४८	१४	प्रतत्यक्तवस्त्रे	प्रेतत्यक्तवस्त्रे
१५१	२३	खड्गीशपवकौ	खड्गीशपावकौ
१५२	११	वदेति	वदेदिति
१५६	२५	नागास्य	नागास्यं
१६०	२३	मे वश	मे वशं
१६२	१३	चतुशतम्	चतुःशतम्
१६४	१५	पक्वं	पक्वं
१६६	५	०त्रिशिखिक	०त्रिशिखिकं
१६८	२१	वकार	बकार
१७६	२०	भन्त्रवर्णाः	मन्त्रवर्णाः
१७९	१३	मूसमन्त्रेण	मूलमन्त्रेण
१७६	१९	फट्कार	फट्कारं
१८०	२१	स्तस्बेरमास्यं	स्तम्बेरमास्यं
१८१	१२	सकलेष्टद	सकलेष्टदं
१८२	१८	०विध्वसनसक्तमेक	०विध्वंसनसक्तमेकं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१८१	२६	सर्वेशवन्द्य	सर्वेशवन्द्यं
१८२	२२	कवच	कवचं
१८६	३	शीषक्षि०	शीर्षाक्षि
१८९	६	मुखे-ए	मुखे-एं
१९०	१७	उद्धृत्याऽमस्तकं	उद्धृताऽऽमस्तकं
१९१	४	दारिद्राच०	दारिद्रच०
१९४	१९	अन्तद्धचानं	अन्तर्द्धानं
१९८	४	तवाऽह	तवाऽहं
१९८	६	सम	समं
१९८	७	सविशेयु:	संविशेयुः
२००	८	सरक्षयेत्तत:	संरक्षयेत्ततः
२००	१४	नवनाभ	नवनाभं
२००	२०	प्रत्यह	प्रत्यहं
२०२	८	विभज्याऽम्यो	विभज्याऽऽम्यो
२०५	७	मञ्जा	मञ्जा
२०६	२	षडङ्ग	षडग्ङ
२०६	३	बिभ्राण	बिभ्राणं
२०६	४	बन्धूकाभ त्रिनेत्र	बन्धूकाभं त्रिनेत्रं
२०८	१६	त्रिनयन	त्रिनयनं
२०८	१९	०पूजन	०पूजनं
२०९	१५	श्रिय	श्रियं
२१०	४	सौरचक्रमिद	सौरचक्रमिदं
२१७	२४	श्रृण्वतमेतद्०	श्रृण्वतामेतद्०
२२०	७	कारण	कारणं
२३०	५	षडग्ङन्यास	षडग्ङन्यासं
२३२	३	साममर्च०	सोममर्च०
२३२	१०	सौभाग्य पुष्कल	सौभाग्यं पुष्कलं
२३३	१९	नमाम्यगङ्राकं	नमाम्यङ्गारकं
२३६	२	आग्निप्रिया	अग्निप्रिया
२३६	१६	०जपस्त्रकस्त्र्वा०	०जपस्त्रक्स्त्र्कस्त्र्वा०
२३८	४	तद्बहिचतुरस्त्रे	तद्बहिश्चतुरस्त्रे
२३८	११	स्वय	स्वयं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२३८	१२	होम	होमं
२३८	१४	०शत	शतं
२३८	१५	दशाहमेव	दशाहमेवं
२३९	१३	०मष्टोत्तर	०मष्टोत्तरं
२३९	१५	सशयः	संशयः
२३९	२२	लोहिताक्षपद	लोहिताक्षपदं
२४०	१२	स्वरा; बीज	स्वराः, बीजम्
२४१	१९	०मणिचय	०मणिचयं
२४१	५	०र्भवेदाज्यैः	०र्भवेदाज्यैः
२४१	११	साग्र	साग्रं
२४१	१६	०त्रमसंयुतैः	०त्रयसंयुतैः
२४२	१५	हुताशन	हुताशनः
२४२	१६	नवरत्न	नवरत्नं
१४२	२३	साध्य विनीत	साध्यं विनीतं
२४४	२०	सिंहद्धिान्त०	सिंहसिद्धान्त०
२४६	१९	ॐकार	ॐकारं
२५०	३	द्वादशाक्षररसंयुता:	द्वादशाक्षरसंयुताः
२५०	४	विष्णवतः	विष्णवन्तः
२५२	१	पराद्य मेष्ठिन	पराद्यं मेष्ठिनं
२५२	२०	दक्षोर्द्ध्वतदधवं:, वामोर्द्ध्व	दक्षोर्द्ध्व तदधः, वामोर्द्ध्वं
२५७	१२	०निरूपाणम्	निरूपणम्
२५८	२	एकहस्तप्रणाम	एकहस्तप्रणामं
२५९	२६	केशवाय धात्र०,	केशवाय धात्रे०,
२६४	३	सर्वेषां	सर्वेषां
२६४	४	षाडशर्चस्य	षोडशर्चस्य
२६४	१०	०र्क्ससिष्ठश्च	०र्वसिष्ठश्च
२६५	८	हल	हलं
२६७	२३	प्रध्वसय०	प्रध्वंसय०
२७३	६	ब्लूं स: 'ग्र' सः	ब्लूं सः 'ग्रं' सः
२७४	२३	जपेमन्त्र	जपेन्मन्त्रं
२७८	४	कमल	कमलं
२७८	६	वासुदेव	वासुदेवं
२८२	१२	श्रेष्ठ	श्रेष्ठः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२८५	६	हृदाद्युदार०	हृदाद्युदर०
२८६	१५	अश्चर्यभूत०	आश्चर्यभूत०
२९०	८	०थाऽस्यतम्	०मथाऽस्य तम्
२९७	१	सिद्वमनु०	सिद्धमनु०
२९७	११	०मतुल	०मतुलं
२९८	६	शुक्ल रक्त	शुक्लं रक्तं
३१२	८	स्याद्रक्तानि	स्वाद्वक्तानि
३१३	६	तत्ववर्ण०	तत्ववर्ण०
३१७	२१	ज्यरशान्ति०	ज्वरशान्ति०
३१८	२८	विलिख्यऽन्तिम	विलिख्याऽन्तिम०
३२०	१	०मर्द्धं मर्द्धं:	०मर्द्धं मर्द्धं
३२४	२२	स्थानेषूतेषु	स्थानेषु तेषु
३२५	२२	ततोऽष्टभिर्नृसिंहैश्च	ततोऽष्टभिर्नृसिंहैश्च
३२७	४	उग्र वीरं	उग्रं वीरं
३२८	६	अह नम:	अहं नम:
३२८	८	नमाम्यह	नमाम्यहं
३२८	९	ज्वलन्त	ज्वलन्तं
३२८	२५	०हृदयपर्यन्द	०हृदयपर्यन्तं
३२८	२६	त सवेतों	तं सर्वतो
३२८	२८	म्यह	म्यहं
३३४	६	णान्तराल	णान्तराले
३३७	१५	तल्लक्षण	तल्लक्षणं
३३७	२२	पूजयेब्दाह्यत:	पूजयेद्बाह्यत:
३३८	२१	तिलराजी	तिलराजीं
३३९	६	०चिन्तामणिबीज	०चिन्तामणिबीजं
३४०	५	वोषट्	वौषट्
३४६	१	जायायै	जयायै
३४७	१५	दष्ट	दष्टं
३५४	२४	अ अनुस्वार:	अं अनुस्वार:
३५५	४	ज····युक्ता	जातियुक्ता
३५५	१३	प्रणव	प्रणवं
३५८	७	घट	घटं
३६०	६	शूनां	पशूनां

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
३६१	९	गर्भिणीगभ०	गर्भिणीगर्भ०
३६२	२४	कुरु हम्	कुरु हुम्
३७२	५	दोपय	दापय
३७४	१४	लक्ष्मणाङ्गद०	लक्ष्मणाङ्गद०
३७४	२१	वामदेव	वामदेवं
३८६	८	०पातकं	पातकैः
३८८	११	नेत्र	नेत्रं
३८८	१२	जितेन्द्रियश्च	जितेन्द्रियश्च
३९८	१५	त····	ततः
३९८	१८	देवेश	देवेशं
४००	१२	प्रतर्प्ययें०	प्रतर्प्पये०
४०२	११	पूववद्भवेत्	पूर्ववद्भवेत्
४०६	१४	इन्द्रीनल०	इन्द्रनील०
४०७	१७	पीतम्बर०	पीताम्बर०
४०७	२१	सष्ठुशोणा०	सुष्ठुशोणा०
४१०	२	ऋषिसङ्घ	ऋषिसङ्घं
४१५	४	स्थित्वा,	स्थित्या,
४१५	२६	वामा यां-	वामायां-
४१६	६	तद्दक्ष	तद्दक्षे
४१६	१३	पूर्वोक्त पञ्जरन्यास	पूर्वोक्तं पञ्जरन्यासं
४१६	२०	दलाग्रपु	दलाग्रेषु
४२०	१७	०धारिणं	०धारिणं
४२०	२३	०द्रुताङ्ग	०द्रुताङ्गं
४२०	२४	०करन्यास	०करन्यासं
४२३	१२	प्रयच्छन्त	प्रयच्छन्तं
४२८	१६	०द्वादशक	०द्वादशकं
४२८	१९	विश्वाधिप	विश्वाधिपं
४२८	२४	ससाराब्धि०	संसाराब्धि०
४३०	१५	नन्दपुत्रपद	नन्दपुत्रपदं
४३३	५	पूर्वाक्तकृष्ण०	पूर्वोक्तकृष्ण०
४३४	१८	सपावेष्टित	समावेष्टितं
४३४	१९	निखिलसुखद	निखिलसुखदं
४३४	२२	वर्णत्रय	वर्णत्रयं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
४३५	७	भृङ्गसङ्गसमासपक्तद्य०	भृङ्गसङ्गसमासक्तपद्म०
४३६	२	०रम्भाफल	रम्भाफलं
४३९	१५	नन्दात्मज	नन्दात्मजं
४३९	१७	सुवृत्त	सुवृत्तं
४३९	१९	भूमिगृहीतस्तैर्या	भूमिगृहीतहस्तैर्या
४४१	९	इन्द्रादीन्यूज०	इन्द्रादीन्पूज०
४४५	१	ब्रह्माक,	ब्रह्मा क,
४४५	२०	अशुकैरर्चयेत्कृष्ण	अंशुकैरर्चयेत्कृष्णं
४४५	२०	मासमात्र	मासमात्रं
४४५	२१	सकल: कृच्छ्रै: पाप०	सकलैः कृच्छ्रैः पापै०
४४६	६	कुन्द समुद्भ	कुन्दसमुद्भवैः
४४७	११	पुनराविृत्ति०	पुनरावृत्ति०
४५०	२२	वरैदिव्य०	०वरैर्दिव्य०
४५३	२०	बहिर्बर्हे०	वर्हिबर्हं०
४५६	१७	प्रयोगमनुना	प्रयोगममुना
४५७	२	०हेमनिभ	हेमनिभं
४५८	३	वृन्दवान०	वृन्दावन०
४६७	१२	धारणायन्त्रं	धारणयन्त्र
४६९	१७	प्रणव	प्रणवं
४७०	३	नाथ कृष्णाय	णाय कृष्णाय
४७७	१०	मध्यस्थबीज	मध्यस्थबीजं
४८३	१८	रुक्मिणोवल्ल-	रुक्मिणीवल्ल-
४८४	५	कमलै	कमलैः
४८४	२०	कवच	कवचं
४८४	२४	हतकस	हतकंसं
४८७	९	नवनीतायुत	नवनीतायुतं
४८७	२७	हरिमह	हरिमहं
४८८	३	चाग्रऽदेशतः	चाऽग्रदेशतः
४८८	४	सुरतिं	सुरभिं
४९०	१२	तत्रः	तत्र
४९०	१३	श्रीकृष्णय	श्रीकृष्णाय
४९३	२३	बाल	बालं
४९३	२३	०निलय	निलयं
४९४	२६	०र्मधुराप्पुतैः	०र्मधुराल्पुतैः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
४९६	२४	विभावयँन्मुर०	विभावयन्मुर०
४९६	१	विशार्गोऽय	विंशार्गोऽय
५००	२	तथाऽऽत्मान	तथाऽऽत्मान
५००	९	अ ऊं आं	अं ऊं आं
५००	१०	इ ऊं ईं	इं ऊं ईं
५००	१०	ओं ऊ	ओं ऊं
५०१	२	नरारग०	नरोरग०
५०८	१९	पञ्चकामन्त्रान्	पञ्चकमन्त्रान्
५२०	२	शरादिन्दु०	शरदिन्दु०
५२५	२१	गृह्यते	गृह्यते
५२५	२८	प्रागद्धशिशिना	प्रागर्द्धशिशिना
५२६	१६	तदारुढै०	तदारूढै०
५२८	१०	जङ्घया:	जङ्घयो:
५२९	१९	प्रकाश्यमेसद्यन्त्रं	प्रकाश्यमेतद्यन्त्रं
५३०	२५	०चक्रहरेरशा०	चक्रहरेरंशा०
५३१	१८	समहच्छत्रु०	सह मच्छत्रु०
५३३	५	कार्त्तादिनवाक्षरणि	कार्त्तादिनवाक्षराणि
५३४	८	या वकै०	यावकै०
५३७	२	पञ्चाङ्ग	पञ्चाङ्गं
५३८	१६	एव	एवं
५३८	२३	राज्यैश्वय०	राज्यैश्वर्य०
५४३	१८	विजय	विजयं
५४६	१	जपेमन्त्रं	जपेन्मन्त्रं
५४६	९	नाऽऽसां	नासां
५४६	१४	०ध्यानादिक	ध्यानादिकं
५४८	२०	षट्कोण	षट्कोणं
५४८	२१	मारबीज	मारबीजं
५५०	९	नादयुत	नादयुतं
५५२	३	देव	देवं
५६०	३	बलप्रमथन्यै०,	बलविकरण्यै[१]०, बलप्रमथन्यै,
५६०	११	शात्यतीतायै	शान्त्यतीतायै
५६२	१७	जप्तवाऽ०	जप्त्वाऽ०
५६७	२	श्रृणु	श्रृणु

१. "बलविकरण्यै' इति पदं यद्यपि क.ख. आदिपुस्तकेषु नोपलभ्यते, परन्त्विदम्पदमत्यावश्यकं यथोक्तं सूत्रे-'विकरण्याह्वया प्रोक्ता बलाद्या विकरण्यथ । बलप्रमथनी पश्चात्० इति ।"

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
५६९	१८	महासक्ष्म्यै	महालक्ष्म्यै
५७०	९	हुल्लेखा०	हृल्लेखा०
५७१	८	०सौम्यमध्येषु	०सौम्यमध्येषु
५७७	२०	अशुमालिन्यै	अंशुमालिन्यै
७७५	२०	मूर्दध्नि	मूर्द्ध्नि
५८०	२८	०ऽनुष्पुटुछन्दः	०ऽनुऽटुप्छन्दः
५८४	१७	मना:	मनं.:
५८५	२	असयो०	अंसयो०
५९०	१६	आद्योपान्त्याद्य सयुतम्	आद्योपान्त्याद्यसंयुतम्
५९०	२६	०पूर्ववदेवेशं	०पूर्ववद्देवेशं
६०४	१४	खङ्ग	खङ्गं
६०४	१५	त्रिशिख चैव कपाल	त्रिशिख चैव कपालं
६१७	२५	०तन्त्रोक्तापदुद्धाकर०	०तन्त्रोक्तापदुद्धारक
६१८	२४	सुदुर्लमम्	सुदुर्लभम्
६२१	१	पुनर्न्यसेत्	पुनर्न्यसेत्
६२१	१९	वामकर्णेन्दुनादवान्	वामकर्णेन्दुनादवान्
६२३	१८	यामाक्षि	वामाक्षि
६२५	१६	बीज	बीजं
६२६	२६	मूलाद्यन	मूलाद्येन
६२७	३	डङ्गैः	षडङ्गैः
६२७	४	षपरमीकरणं	परमीकरणं
६३१	१८	ब्यात्वा देव	ध्यात्वा देवं
६३४	१३	तिलाढय०	तिलाढ्य०
६४१	४	त्व	त्वं
६४४	२४	ह्लीं हू	ह्लीं हूं
६५०	२१	ईशानाविद्या०	ईशानविद्या०
६५३	४	क्ष्रौं	क्षौं
६५५	१८	पञ्चैते	पञ्चैते
६७१	१२	यं	मं यं
६७७	६	तारत्रय	तारत्रय
६७८	१	+स्सं	+ह्स
६७८	४	स्ह सद्यो०	स्हं सद्यो०
६७८	७	प्रमाणोक्त देव	प्रमाणोक्तं देवं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
६७९	४	अं आं इ	अं आं इं
६७९	५	ईं उं ऊ	ईं उं ऊं
६७९	६	ऋं ॠ	ऋं ॠं
६७९	२७	०यौर्वंकाय	०यौर्वंकायै
६८३	२५	०पञ्चाशद्द्वता	०पञ्चाशद्देवता
६८४	१२	क्षकोटि०	लक्षकोटि०
६९२	१६	०हामेन	०होमेन

विषयानुक्रमः

७	१३	०नृसिंहस्याऽयो०	०नृसिंहस्याऽन्यो०
११	३०	०प्रयोगकस्त्ृणां	०प्रयोगकर्त्तृणां
११	३३	प्रयोगकस्त्ृणां	प्रयोगकर्त्तृणां